# श्रीमद्भागवतम्

## दशमः स्कन्धः

(द्वितीय-खण्ड अध्याय ९—१६)

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीमद्कृष्णद्वैपायनवेदव्यास प्रणीतम्

# श्रीमद्भागवतम्

## दशमः स्कन्धः

(द्वितीय-खण्ड अध्याय ९—१६)

[श्लोक, अन्वय, श्लोकानुवाद, सारार्थदर्शिनी टीका,
सारार्थदर्शिनी टीकाके भावानुवाद एवं भावप्रकाशिकावृत्ति सहित]

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी श्रीगौड़ीय मठोंके
प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय दशमाधस्तनवर
श्रीगौड़ीयाचार्य केशरी नित्यलीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री

**श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके**

अनुगृहीत

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री

**श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज**

द्वारा सम्पादित

**गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन**

**गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन**

**प्रथम संस्करण**—श्रील रूप गोस्वामीकी तिरोभाव तिथि
३० जुलाई, २०१२ ई॰

**प्राप्तिस्थान**

श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ
दानगली, वृन्दावन (उ॰प्र॰)
०९७६०९५२४३५

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा (उ॰प्र॰)

श्रीरमणविहारी गौड़ीय मठ
बी-३, जनकपुरी, नई दिल्ली
०९७१७३२११४२

श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ
राधाकुण्ड रोड, गोवर्धन (उ॰प्र॰)
०९६२७४२६३४३

जयश्री दामोदर गौड़ीय मठ
चक्रतीर्थ रोड, जगन्नाथपुरी,
उड़ीसा
०६७५२-२२७३१७

श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
कोलेरडाङ्गा लेन
नवद्वीप, नदीया (प॰बं॰)
०९७३४८२५३६२

श्रीराधामाधव गौड़ीय मठ
२९३, सैक्टर-१४
फरीदाबाद, हरियाणा
०९९११२८३८६९

खण्डेलवाल एण्ड सन्स
अठखम्भा बाजार,
वृन्दावन (उ॰प्र॰)
०५६५-२४४३१०१

Please visit us at www.purebhakti.com

# समर्पण*

भक्त–भागवतके सम्पूर्ण आनुगत्यमें ही ग्रन्थ–भागवतके अनुशीलनका दृढ़ अनुमोदन करनेवाले, भागवतके सिद्धान्तोंमें विशेष पारदर्शी, प्राकृत कनक–कामिनी–प्रतिष्ठाके लिए भागवतका पाठ करनेवालोंके लिए पाषण्ड–गजैकसिंह स्वरूप और शुद्ध–भागवत–परम्पराका आनुगत्य स्वीकारकर समस्त अप–उप–छलादि धर्मरूपी मेघके आवरणसे गौड़ीय–गगनमें भागवत–अर्कके प्रकाशको निर्मुक्त रखनेवाले 'वैकुण्ठप्रिय' अस्मदीय श्रीगुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी प्रेरणासे यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।

श्रीगुरुपादपद्मकी अपनी ही वस्तु उन्हींके श्रीकरकमलोंमें समर्पित है।

* श्रील गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके द्वारा दशम–स्कन्धके प्रथम–खण्डके लिए लिखित समर्पण

## प्रकाशन-मण्डली

**अनुवादक**—श्रीपाद भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज

**प्रूफ-संशोधन**—श्रीपाद भक्तिवेदान्त माधव महाराज, श्रीमान् परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी, श्रीमान् अमलकृष्ण दास ब्रह्मचारी, श्रीमान संजय दास ब्रह्मचारी, श्रीमती शान्ति दासी

**टाइप**—श्रीपाद भक्तिवेदान्त सिद्धान्ती महाराज, श्रीमान् सुबलसखा दास ब्रह्मचारी, श्रीमान् अच्युतानन्द दास ब्रह्मचारी, श्रीमान् प्राणकृष्ण दास ब्रह्मचारी, श्रीमान् दामोदर दास ब्रह्मचारी, श्रीमान् सुन्दरगोपाल दास ब्रह्मचारी

**ले-आउट**—श्रीमती शान्ति दासी

**कवर डिजाइन**—श्रीमान् कृष्णकारुण्य दास ब्रह्मचारी

**चित्र**—श्रीमती श्यामरानी दासी

**प्रकाशन संयोजना**—श्रीमान् माधवप्रिय दास ब्रह्मचारी

**आभार**—श्रीमान् विजयकृष्ण दास ब्रह्मचारी, श्रीमान् वंशीवदन दास ब्रह्मचारी, श्रीमान् कृष्णदास ब्रह्मचारी, श्रीमान् मधुकर दास ब्रह्मचारी, श्रीमान् मदनमोहन दास ब्रह्मचारी, श्रीमती व्रजकिशोरी दासी

---

इस ग्रन्थके प्रकाशन हेतु श्रील गुरुदेवके चरणाश्रित—(१) श्रीकान्तिलाल पुञ्जा और श्रीमती जया पुञ्जा, (२) श्रीजगन्नाथ पुञ्जा और परलोकगत श्रीमती कृष्णलीला पुञ्जा, (३) श्रीनितिन पुञ्जा और श्रीमती निर्मला पुञ्जा, (४) जयश्री दासी और दामोदर दास—आर्थिक सेवानुकूल्य प्रदानकर श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गके कृपा-भाजन हुए हैं। प्रकाशन-मण्डली इन सबके प्रति आन्तरिक कृतज्ञता ज्ञापन करती है।

# विषय-सूची

**प्रस्तावना** ..... **क-घ**

**नवम अध्यायकी कथाका सार** ..... **१-२**
**नवमोऽध्यायः**—श्रीकृष्णकी दाम-बन्धन-लीला ..... **३-५४**

**दसवें अध्यायकी कथाका सार** ..... **५५-५६**
**दशमोऽध्यायः**—यमलार्जुनका उद्धार ..... **५७-१०४**

**ग्यारहवें अध्यायकी कथाका सार** ..... **१०५-१०६**
**एकादशोऽध्यायः**—श्रीकृष्णका दामबन्धन-मोचन, फल विक्रयिणीकी कथा, श्रीवृन्दावनमें आगमन, श्रीकृष्ण द्वारा नन्दादिका वत्सपालन, वत्सासुर और बकासुरका विनाश ..... **१०७-१८०**

**बारहवें अध्यायकी कथाका सार** ..... **१८१-१८२**
**द्वादशोऽध्यायः**—श्रीकृष्णकी अघासुर उद्धार-लीला ..... **१८३-२४४**

**तेरहवें अध्यायकी कथाका सार** ..... **२४५-२४६**
**त्रयोदशोऽध्यायः**—ब्रह्माजीका मोह और उसका नाश..... **२४७-३३२**

**चौदहवें अध्यायकी कथाका सार** ..... **३३३-३३४**
**चतुर्दशोऽध्यायः**—ब्रह्माजीके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति ..... **३३५-४७८**

**पन्द्रहवें अध्यायकी कथाका सार** ..... **४७९-४८०**
**पञ्चदशोऽध्याय**—धेनुकासुरका उद्धार और ग्वालबालकोंकी कालियनागके विषसे रक्षा ..... **४८१-५४६**

**सोलहवें अध्यायकी कथाका सार** ..... **५४७-५४८**
**षोडशोऽध्यायः**—कालियनागका दमन और नागपत्नियों द्वारा स्तुति ..... **५४९-६६२**

**श्लोक-सूची** ..... **६६३-६७०**

# प्रस्तावना*

परमाराध्यतम श्रीगुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी अहैतुकी कृपा और प्रेरणासे आज श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासके द्वारा रचित श्रीमद्भागवतम्‌के दशम-स्कन्धके द्वितीय-खण्ड (अध्याय ९-१६) का राष्ट्रभाषा हिन्दीमें संस्करण प्रकाशित करके अपार आनन्दका अनुभव कर रहा हूँ। वर्त्तमानमें हिन्दी भाषामें ऐसा कोई भी संस्करण उपलब्ध नहीं है जो श्रीमद्भागवत पर गौड़ीय-वैष्णव आचार्योंकी टीकाओं एवं उन टीकाओंके अनुवादकी सम्पदसे युक्त हो। इस प्रस्तुत संस्करणमें इस अभावको पूर्ण करनेकी चेष्टा की गयी है।

ग्रन्थराज श्रीमद्भागवत भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात् स्वरूप है। इसके प्रथमसे नवम, एकादश तथा द्वादश-स्कन्ध श्रीकृष्णके अप्राकृत वपुके विभिन्न अङ्ग हैं, किन्तु दशम-स्कन्ध तो श्रीकृष्णका मुखकमल-स्वरूप ही है। श्रीकृष्णके मुखमण्डल-स्वरूप दशम-स्कन्धमें अप्राकृत कामदेवकी समस्त अप्राकृत भङ्गिमाओंका विलास विराजमान है जिसके द्वारा प्राकृत कामसे जर्जरित जीव अप्राकृत कामदेवके विलाससे आकर्षित होकर परमानन्दमें निमग्न होनेका सौभाग्य प्राप्त करते हैं। कलियुग पावन अवतारी श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा जीवोंके परम प्रयोजनके रूपमें जिस श्रीकृष्णप्रेमका दान या वितरण हुआ, उसका एकमात्र आधार एवं प्रमाण श्रीमद्भागवत विशेषकर दशम-स्कन्ध ही है।

*आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं*
*रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।*
*श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्*
*श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥*

---

* श्रील गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके द्वारा दशम-स्कन्धके प्रथम-खण्डके लिए लिखित प्रस्तावनाके कतिपय अंश।

भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण और उनके तद्रूपवैभव-स्वरूप श्रीधाम वृन्दावन ही आराध्य वस्तु हैं। व्रजवधुओंने जिस भावसे श्रीकृष्णकी उपासना की थी, वह उपासना ही सर्वोत्कृष्ट है। श्रीमद्भागवत ग्रन्थ ही निर्मल शब्द प्रमाण एवं प्रेम ही परम पुरुषार्थ है—यही श्रीचैतन्य महाप्रभुका मत है। इसी सिद्धान्तके प्रति ही हमारा परम आदर है, अन्य मतोंके प्रति नहीं।

रसिक गौड़ीय-वैष्णव आचार्योंके मुकुटमणि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुरने उक्त श्लोकमें जिस प्रकारसे श्रीमन्महाप्रभुके अवदान सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनात्मक मतका सार-गर्भित विचार प्रस्तुत किया है, उसका भी एकमात्र प्रमाण एवं आधार श्रीमद्भागवतम् विशेषकर दशम-स्कन्ध ही है। इस श्लोकके पद—*"आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्त"*—सम्बन्ध, *"रम्या काचिदुपासना व्रजवधुवर्गेण"*—अभिधेय तथा *"प्रेमा पुमर्थो महान्"*—प्रयोजनका निर्देश करते हैं। इन तीनोंका विवरण तथा माधुर्य-आस्वादन दशम-स्कन्धमें ही उपलब्ध है।

विश्वव्यापी गौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादने अपनी वक्तृताओं एवं लेखनीमें श्रीमद्भागवतको एक अपूर्व दार्शनिक ग्रन्थके रूपमें स्वीकार करते हुए कहा है—"श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धकी एक विवृति रचना करनेकी आवश्यकता है। यह विवृति केवल कुछेक अनुस्वार-विसर्गके पण्डितों अथवा प्राकृत-सहजियोंके वागाडम्बरकी प्रदर्शनीमात्र नहीं होगी, किन्तु जिनकी वास्तविक रूपसे अप्राकृत सौन्दर्यके प्रति पिपासा उदित हुई है, यह विवृति उन सभी लौल्ययुक्त व्यक्तियोंके लिए प्रयोजनीय पाठ्यके रूपमें होगी।"

श्रील प्रभुपादके इस मनोऽभीष्टकी पूर्ति हेतु एवं मदीय ज्येष्ठ सतीर्थ नित्यलीलाप्रविष्ट प्रपूज्यचरण श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजके द्वारा मुझे श्रीमद्भागवतको गौड़ीय-वैष्णव आचार्योंकी टीकाओंके अनुवाद सहित हिन्दी भाषामें प्रकाशित करनेके लिए पुनः-पुनः उत्साह प्रदान करनेवशतः मैं इस महान साम्प्रदायिक सेवाके लिए चेष्टाशील हुआ हूँ। इस उद्देश्यसे मैंने श्रीमान् भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजको श्रीमद्भागवत दशम-स्कन्धके मूल-श्लोक, अन्वय, श्लोकानुवाद, श्रील विश्वनाथ

चक्रवर्त्ती ठाकुरकी टीका एवं उसके भावानुवादको; तथा श्रील जीव गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी एवं अन्यान्य वैष्णव आचार्योंकी टीकाओंके आधारपर एक 'भावप्रकाशिका वृत्ति' प्रस्तुत करनेका निर्देश दिया। श्रीमान् भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजने अत्यन्त लगन एवं अक्लान्त परिश्रमसे उक्त विशेषताओंसे समन्वित पाण्डुलिपिको प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् मैंने बहुत सावधानीपूर्वक इस पाण्डुलिपिका निरीक्षण किया तथा यथा-स्थान संशोधनके साथ-साथ विषयवस्तुको स्पष्ट करनेका प्रयास किया है।

इस विशाल ग्रन्थमें मुद्रागत कुछ त्रुटि-विच्युतियोंका रह जाना अस्वाभाविक नहीं है। सुधी पाठकों द्वारा उनका संशोधनपूर्वक पाठ करनेसे हम आनन्दित होंगे।

परमार्थ प्राप्ति विशेषकर रूपानुग भजनके इच्छुक श्रद्धालुजन इस ग्रन्थका पठन-पाठनकर व्रजेन्द्रनन्दन श्रीश्यामसुन्दरके गुण-रूप-लीला-विलासका माधुर्य आस्वादन करते हुए श्रीशचीनन्दन गौरहरिके द्वारा वितरित प्रेमधर्म—व्रजभक्तिमें अधिकार प्राप्त करें—अभिन्न श्रीश्यामसुन्दर श्रीशचीनन्दनके चरणकमलोंमें यही विनीत प्रार्थना है। अलमतिविस्तरेण।

श्रीश्रीराधाष्टमी
१६ सितम्बर, २०१०
श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ
नई दिल्ली

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-कृपालेश-प्रार्थी
त्रिदण्डिभिक्षु
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

# नवम अध्यायकी कथाका सार

इस अध्यायमें माताके द्वारा स्तनपानमें रत कृष्णको अपनी गोदसे उतारकर चूल्हेपर उफनते हुए दूधकी रक्षाके लिए जाना, कृष्णका क्रुद्ध होकर दहीका बर्तन तोड़ना तथा माताके द्वारा कृष्णका बन्धन—इन विषयोंका वर्णन हुआ है।

एकदिन घरकी दासियोंके घरके अन्य कार्योंमें व्यस्त रहनेके कारण माता यशोदा स्वयं ही दधिमन्थन कर रही थीं। उसी समय कृष्ण वहाँपर आ गये तथा उन्हें दधिमन्थन करनेसे रोक दिया। यह देखकर माता स्नेहसे उन्हें गोद लेकर स्तनपान कराने लगीं। उसी समय चूल्हेपर रखा हुआ दूध उफनकर गिरने लगा। यह देखकर माता कृष्णको भूमिपर बैठाकर दूधको उतारने चली गयीं। अभी स्तनपानसे तृप्त न होनेके कारण बालकृष्णको क्रोध आ गया। उन्होंने एक पत्थरका टुकड़ा लेकर दधिमन्थनके बर्तनको फोड़ दिया तथा घरके भीतर एकान्तमें जाकर वहाँ रखा हुआ बासा माखन खाने लगे। माता दूधको उतारकर आयी तो देखा कि दधिका बर्तन फूटा हुआ है। इससे वे समझ गयी कि अवश्य ही यह कार्य कृष्णका ही है। अतः वे जब घरके भीतर गयीं, तो देखा कि कृष्ण ओखलीपर चढ़कर शङ्कित नेत्रोंसे इधर-उधर देखते हुए छीकेपर रखा हुआ माखन बन्दरोंको खिला रहे हैं। यह देखकर माता हाथमें छड़ी लेकर धीरे-धीरे उनके पीछे जाकर खड़ी हो गयीं। मैयाको देखते ही कृष्ण ओखलीसे कूदकर भागने लगे, मैया भी उनका पीछा करने लगीं तथा कुछ दूर जाकर उन्हें पकड़ लिया। माताने देखा कि कृष्ण अपने द्वारा किये गये अपराधके कारण भयभीत होकर क्रन्दन कर रहा है। मैया उन्हें डाँटते हुए रस्सीके द्वारा ओखलीसे बाँधनेका प्रयास करने लगीं। किन्तु जिस रस्सीसे वे उन्हें बाँधनेका प्रयास कर रही थीं, वह रस्सी दो अङ्गुली छोटी पड़ गयी। यह देखकर उन्होंने उसमें एक अन्य रस्सी जोड़ दी, परन्तु वह भी दो अङ्गुली छोटी पड़ गयी।

इस प्रकार वे जितनी बार प्रयास करतीं, उतनी ही बार रस्सी दो अङ्गुली छोटी पड़ जाती। अन्तमें मैयाको क्लान्त देखकर भक्तवत्सल भगवान् कृपापूर्वक स्वयं ही बँध गये। महावात्सल्यवती माता यशोदाकी कृष्णके प्रति लेशमात्र भी ऐश्वर्य बुद्धि नहीं हुई।

तत्पश्चात् माताके घरके कार्योंमें व्यस्त होनेपर ओखलीसे बँधे हुए कृष्णकी दृष्टि नारदके शापसे भ्रष्ट होकर यमलार्जुन वृक्षोंके रूपमें परिणत कूबेरके दो पुत्रों नलकूबर तथा मणिग्रीवपर पड़ी।

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

# श्रीमद्भागवतम्

## दशमः स्कन्धः

### नवमोऽध्यायः

श्रीकृष्णकी दाम-बन्धन-लीला

**श्रीशुक उवाच—**

**एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी।**
**कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि॥ १॥**

**यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च।**
**दधिनिर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत॥ २॥**

**अन्वयः—**श्रीशुकः उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा) एकदा नन्दगेहिनी (एक समय नन्दराजकी पत्नी) यशोदा गृहदासीषु (यशोदाजी अपने घरकी दासियोंके) कर्मान्तर-नियुक्तासु (अन्य गृहकार्योंमें नियुक्त होनेपर) स्वयं दधि निर्ममन्थ (स्वयं दधि-मन्थन करनेमें प्रवृत्त होकर) तद्बालचरितानि (श्रीकृष्णकी बाल-लीलाओंसे सम्बन्धित) यानि यानि गीतानि (जो गीत हैं) [उनका] स्मरन्ती (स्मरणकर) दधि निर्मन्थने काले तानि (दधि-मन्थनके समय उन गीतोंका) अगायत च (गान करने लगीं)॥ १-२॥

**अनुवाद—**श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—एकदिन घरकी दासियोंके अन्य कार्योंमें नियुक्त होनेपर यशोदादेवी स्वयं ही दधि-मन्थन करने

लगीं एवं दधि-मन्थन करते-करते श्रीकृष्णकी बाल-लीलाओंसे सम्बन्धित गीतोंका स्मरणपूर्वक गान करने लगीं॥ १-२॥

## श्रील-विश्वनाथ-चक्रवर्त्ति-ठक्कुर-कृता 'सारार्थदर्शिनी' टीका

निषिद्धमन्थनं पीत्वा स्तनञ्चातृप्तिमान् क्रुधा।
भाण्डं भित्वा द्रुतं मात्रा नवमे बद्ध ईश्वरः॥

चोर्यक्रोधादिमज्जीवान् गुणैर्बद्धैव रोदयेः।
चोर्यक्रोधादिमान् मात्रा बद्धस्त्वं कृष्ण रोदिषि॥

अतिचमत्कारकस्यासाधारणस्य श्रीकृष्णविषयकनन्दयशोदाश्रयकमहावात्सल्य-प्रेम्णः साधनमप्यसाधारणमपूर्वं श्रेयो भवितुमर्हतीति तदनाकर्णितवतः प्रश्नकर्तुः राज्ञोऽपि चित्तं नातिप्रसन्नमालक्ष्य तत्र मुख्यं सिद्धान्तमभिव्यञ्जयितुं दिनान्तरगतां दामबन्धनलीलां वक्तुमुपक्रमते—एकदेति। दीपमालिकामहोत्सवदिन इति श्रीवैष्णवतोषणी। अत्र श्यामैककर्णतुरङ्गमवत् परार्द्धसंख्यास्वपि गोषु मध्ये व्रजराजस्य याः पद्मगन्धिन्याद्या अतिसुस्वादु सुगन्धिपयसः सुगन्धितृणमात्रचारिण्यः सप्ताष्टा एव गावो वर्त्तन्ते तासामेव दुग्धदध्यादिकं मत्पुत्रस्य रोचकं भविष्यतीति विचारयन्ती श्रीयशोदा निर्ममन्थ। स्वयमिति स्वपुत्ररोचनीयनवनीतोत्क्रमणदुग्धावर्त्तनादौ वात्सल्यप्रेमोत्थहठादेव दासीनां विज्ञत्वमसम्भाव्यम् अद्यारभ्य बालकस्य भक्ष्यनवनीतदुग्धादिकं सर्वमहमेव साधु साधयिष्यामि यथा तत्तदेव रोचयन् कृष्णश्चौर्यार्थं परगृहं न यास्यतीति भावः। दधीत्यनन्तानां दध्नां मध्ये यदेकं सारभूतं पूर्वेद्युः स्वयमेव साधितं तदेवेति भावः। निर्ममन्थेत्युपलक्षणं दुग्धमप्यावर्तयामास॥ १॥

स प्रसिद्धो यो बालः कृष्णस्तस्य चरितानि यानि गीतानि गीतच्छन्दसा कविपुरन्ध्रीभिः स्वयं वा निबद्धानि तानि स्मरन्ती अनुसन्दधती अगायत। गृहान्तःशायितकृष्णादर्शनोत्थस्य स्वान्तः क्षोभस्योपशान्तये इति भावः॥ २॥

## श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर-रचित 'सारार्थदर्शिनी' टीकाका भावानुवाद

जब कृष्णने यशोदा माताको दधि-मन्थन करनेसे रोक दिया, तो वे कृष्णको गोदमें लेकर स्तन पान कराने लगीं। उसी समय चूल्हेपर रखा दूध उफनकर आगपर गिरने लगा, यह देखकर वे कृष्णको अतृप्त अवस्थामें ही छोड़कर दूधको उतारनेके लिए चली

गयीं, जिससे क्रुद्ध होकर कृष्णने दहीका बर्तन फोड़ दिया, तब तीव्र गतिसे भागनेवाले ईश्वरको माताने बाँध दिया—इस नवम अध्यायमें यह वर्णन किया गया है।

हे कृष्ण! आप चोरी करनेवाले एवं काम, क्रोधादिसे युक्त जीवोंको मायाके गुणों द्वारा बाँधकर रुलाते हैं, परन्तु इस समय चोरीरूपी अपराध तथा क्रोध आदिसे युक्त होनेके कारण आप स्वयं ही माता यशोदा द्वारा बँधकर रो रहे हैं।

श्रीकृष्णके प्रति नन्द-यशोदाका जैसा अति चमत्कारपूर्ण एवं असाधारण महावात्सल्यप्रेम है, उस प्रेमका साधन भी असाधारण एवं अपूर्व रूपसे मङ्गलमय होना चाहिये। परन्तु ऐसा कुछ भी श्रवण न करनेके कारण प्रश्नकर्त्ता महाराज परीक्षित्‌का मन अधिक प्रसन्न नहीं हुआ। यह जानकर इस विषयमें मुख्य सिद्धान्तको प्रकाशित करनेके लिए श्रील शुकदेव गोस्वामी *'एकदा'* इत्यादि श्लोकके द्वारा श्रीकृष्णकी एकदिन घटित दाम-बन्धन लीलाका वर्णन कर रहे हैं। श्रीवैष्णवतोषणीमें कहा गया है कि यह लीला दीपावली महोत्सवके दिन हुई थी।

जिसका एक कान काला हो, ऐसा अश्व जिस प्रकार दुष्प्राप्य होता है, उसी प्रकार व्रजराजकी असंख्य गायोंमें अति दुष्प्राप्य पद्मगन्धिनी, अतिसुस्वादु सुगन्धित दुग्धवती तथा सुगन्धित घास ही खानेवाली केवल सात-आठ गायें थीं। उन गायोंका दूध, दही आदि मेरे पुत्रको रुचिकर होगा, यह विचारकर यशोदा मैया एकदिन स्वयं ही दही-मन्थन कर रही थीं। उनके स्वयं दही-मन्थन करनेका कारण था—वात्सल्यप्रेमके उदित होनेवशतः वे सोचने लगीं मेरी दासियाँ दूध गर्म करना, उसे जमाना तथा मक्खन निकालना आदि अच्छी तरहसे नहीं जानती हैं, इसीलिए उनके द्वारा निकाला गया मक्खन आदि मेरे पुत्रको अच्छा नहीं लगता और वह दूसरोंके घरोंमें जाकर चोरी करके दूध, मक्खन आदि खाता है। अतः आजसे अपने पुत्रके खाने योग्य दही, दूध, मक्खन आदि मैं स्वयं ही तैयार करूँगी, जिससे कि वह उन द्रव्योंकी चोरी करनेके लिए दूसरोंके घरोंमें नहीं जायेगा। *'निर्ममन्थ'*—वे दधी-मन्थन कर रही थीं, साथ ही चूल्हेपर दूधको भी उबाल रही थीं। *'तद्‌बालचरितानि'*—बालकृष्णकी लीलाओंका, जिन्हें

कवि-पुरन्ध्रि आदिने गीतछन्दोंमें निबद्ध किया था अथवा स्वयं उन्होंने ही जिनकी रचना की है, उन सबका स्मरणकर मन्थन करते-करते मैया यशोदा गान कर रही थीं। मानो घरमें शयन कर रहे कृष्णका दर्शन न हो पानेके कारण उनका चित्त क्षुब्ध हो गया था तथा वे अपने चित्तको शान्त करनेके लिए ही कृष्णकी लीलाओंका गान कर रही थीं॥ १-२॥

**क्षौमं वासः पृथुकटितटे विभ्रती सूत्रनद्धं**
**पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकम्पञ्च सुभ्रूः।**
**रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कङ्कणौ कुण्डले च**
**स्विन्नं वक्त्रं कवरविगलन्मालती निर्ममन्थ॥ ३॥**

**अन्वयः**—सुभ्रूः विभ्रति (सुरम्य भ्रूयुगलशालिनी सती यशोदा) पृथुकटितटे (अपने विशाल नितम्बदेशमें) सूत्रनद्धं (काञ्चीबद्ध) क्षौमं (सूक्ष्मपीत रेशमी) वासः (वस्त्र धारणकर) निर्ममन्थ (दधि-मन्थन कर रही थीं) रज्ज्वाकर्षश्रम-भुजचलत्कङ्कणौ (उस समय रस्सी खींचनेके श्रमसे उनकी भुजाओंके कङ्कण चलायमान) कुण्डले च (अङ्ग सञ्चालनसे कुण्डल दोलायमान) [एवं] जातकम्पं (सम्पूर्ण शरीर कम्पित हो रहा था) पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं (पुत्रस्नेहसे उनके स्तनयुगलसे दूध झर रहा था) स्विन्नं वक्त्रं (वे परिश्रमजनित पसीनेसे लथपथ हो रही थीं) [तथा] कवर विगलन्मालती (उनकी चोटीसे मालती पुष्प गिर रहे थे)॥ ३॥

**अनुवाद**—सुन्दर भौंहोंवाली यशोदा देवी अपने विशाल नितम्बदेशमें काञ्ची द्वारा बद्ध सूक्ष्मवस्त्र धारणकर दधि-मन्थन कर रही थीं। उस समय दधि-मन्थन दण्डकी रस्सीको खींचनेके कारण उनकी थकी हुई दोनों भुजाओंके कङ्कन सुमधुर ध्वनि कर रहे थे। सारे शरीरके हिलनेके कारण उनके दोनों कानोंमें धारण किये हुए कुण्डल दोलायमान हो रहे थे तथा उनका शरीर काँप रहा था। पुत्र-स्नेहवशतः उनके दोनों स्तनोंसे दूध स्वतः ही क्षरित हो रहा था। उनके मुख-मण्डलपर पसीनेकी बूँदें झिलमिला रही थीं और चोटीमें गुँथी हुई मालती-मालाके पुष्प गिर रहे थे॥ ३॥

**सारार्थदर्शिनी**—वात्सल्यप्रेम्णा रूपगुणाभ्यां च कृष्णस्य यशोदैवानुरूपा मातेति द्योतयन् वात्सल्यरसोपासकानां अवश्यकर्तव्यं श्रीकृष्णमातुर्ध्यानमाह—क्षौमं अतसीतन्तूत्थं पीतचित्रमतिसूक्ष्मं भवेत्। तेनास्याः श्यामवर्णत्वं क्रमदीपिकोक्तं ध्वनितम्। सूत्रनद्धं नीव्या निबद्धम्। पृथुकटितटे सुभ्रूरित्याभ्यां सर्वाङ्गसौन्दर्यत्वञ्च व्यञ्जितम्। रज्ज्वोराकर्षेण श्रमो ययोस्तयोर्भुजयोश्चलन्तौ कङ्कणौ वक्त्रमित्यन्तानां विभ्रतीत्यनेन सम्बन्धः। मेघतुल्यात् कवराद्विगलन्ती जलबिन्दुश्रेणीव मालती यस्याः सा। क प्रत्ययाभाव आर्षः॥ ३॥

**भावानुवाद**—वात्सल्यप्रेममें रूप और गुणोंके द्वारा श्रीयशोदा मैया ही श्रीकृष्णके अनुरूप माता हैं, इसीको प्रकाशित करते हुए वात्सल्यरसके उपासकोंके लिए अवश्य कर्त्तव्यके रूपमें श्रीकृष्ण-जननीके ध्यानका वर्णन करते हुए कह रहे हैं—*'क्षौमं वासः'* अर्थात् यशोदा मैयाने अति सूक्ष्म एवं विचित्र पीले रङ्गका रेशमी वस्त्र धारण किया हुआ था, जो उनके विशाल नितम्बदेशमें काञ्चीके द्वारा बँधा हुआ था। इससे क्रम-दीपिकामें उक्त मैया यशोदाका श्याम वर्ण ही सूचित होता है। *'पृथु कटितटे'*—विशाल नितम्बयुक्त एवं *'सुभ्रूः'*—मनोहर भ्रूयुगलशालिनी—इन दो पदोंके द्वारा उनका सर्वाङ्ग सौन्दर्य प्रकाशित हो रहा है। *'रज्वाकर्षश्रम भुजचलतकङ्कणौ'*—उन्होंने दोनों भुजाओंमें कङ्कण एवं कानोंमें कुण्डल धारण कर रखे थे, जो मथानीकी डोरी खींचनेके कारण दोलायमान हो रहे थे। *'कवर-विगलन्मालती'*—उनकी मेघके समान कवरी (चोटी) से जलकी बूदोंके समान मालतीके पुष्प गिर रहे थे॥ ३॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामी परीक्षित् महाराजके सामने श्रीकृष्णकी विशुद्ध बाल-लीलाका वर्णन कर रहे थे। महाराज परीक्षित् नन्द और यशोदाके विशुद्ध वात्सल्यप्रेमके विषयमें सुनकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए तथा उन्होंने उनके पूर्व जन्मके साधन-अनुष्ठानके विषयमें प्रश्न किया। श्रीशुकदेवने स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णके नित्यसिद्ध पिता-माता नन्द और यशोदाके अंशरूप द्रोण और धराके साधन-अनुष्ठानके विषयमें वर्णन करते हुए अन्तमें कहा कि द्रोण और धराने ही ब्रह्माके वरदानसे नन्द और यशोदाके रूपमें व्रजमें जन्म लिया। इस विषयमें श्रीशुकदेव गोस्वामीका कहना है—नन्द

और यशोदाके अंश द्रोण और धराने ही साधनकर नन्द और यशोदामें प्रवेश किया तथा प्रकटलीलामें व्रजमें जन्म लिया। श्रीकृष्णके प्रति वात्सल्यप्रेमकी प्राप्ति ज्ञान-योगादिके साधन-अनुष्ठानसे सम्भव नहीं है।

*ज्ञानतः सुलभः मुक्तिर्भुक्तिर्यज्ञादि पुण्यतः।*
*सेयं साधनसहस्रैर्हरिभक्तिः सुदुर्लभा॥*
(श्रीभ॰र॰सि॰)

*नित्यसिद्ध कृष्ण-प्रेम 'साध्य' कभु नय।*
*श्रवणादि- शुद्ध- चित्ते करये उदय॥*
(श्रीचै॰च॰म॰ २२/१०९)

ज्ञानयोगके अनुष्ठानसे मुक्ति एवं अश्वमेध यज्ञ आदिके अनुष्ठानसे स्वर्ग आदिकी प्राप्ति सहज ही हो जाती है, परन्तु हजारों साधन करनेपर भी हरिभक्ति प्राप्ति करना सुदुर्लभ है। जो भगवान्‌के नित्यसिद्ध पार्षद अनादि कालसे अपने-अपने भावोंके अनुसार भगवान्‌की सेवामें संलग्न हैं, उन्हींके भावोंके प्रति लुब्ध होकर जो भाग्यवान् साधक श्रवण-कीर्त्तनादि साधनोंका अनुष्ठान करता है, नित्यसिद्ध परिकरोंके हृदयमें विराजमान भाव उनके हृदयमें प्रकाशित हो जाता है।

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णके प्रति नन्द-यशोदाके प्रेमकी कोई तुलना नहीं है। उनके वात्सल्यप्रेमके अधीन होकर श्रीकृष्णने कितनी मधुर-मधुर लीलाएँ की हैं, जिनकी कोई सीमा नहीं है।

श्रीकृष्ण बाल-लीलाके आवेशमें व्रजवासी गोपियोंके घरोंमें माखन, दूध आदिकी किस प्रकार चोरी करते थे—इसका वर्णन पहले किया जा चुका है। अब अपने ही घरमें दूध एवं मक्खन आदिकी चोरी किस प्रकार करते हैं, इसका वर्णन किया जा रहा है। श्रीकृष्णकी इस लीलामें यशोदाके अगाध वात्सल्यप्रेमका परिचय मिलता है, जिस प्रेमके बलपर उन्होंने श्रीकृष्णको पूर्णतः वशीभूत कर लिया।

वात्सल्यप्रेमवती व्रजरमणियाँ प्रतिदिन यशोदा मैयाके सामने कन्हैयाकी चोरीका उलाहना देती हैं। यद्यपि वे यशोदानन्दनके प्रति कोई द्वेष-भाव नहीं रखती हैं और न ही उनके द्वारा मक्खनकी चोरीसे असन्तुष्ट होती हैं, अपितु वे यशोदानन्दनकी चोरी करनेकी चतुराई देखकर अत्यन्त आनन्दित ही होती हैं। किन्तु फिर भी वे यशोदा मैयाके पास जाकर उलाहना देती हैं—इसका उद्देश्य यह है कि वे चाहती थीं कि यशोदा मैया भी कृष्णकी चोरीकी चतुराईका आनन्द उपभोग करें। इस प्रकार व्रजरमणियोंसे पुनः-पुनः अपने पुत्रकी चोरीकी शिकायत सुनकर वात्सल्यप्रेमकी साक्षात् मूर्त्ति नन्दरानी यशोदा मन-ही-मन इस प्रकार विचार करने लगीं कि मेरा पुत्र प्रतिदिन दूसरोंके घरोंमें जाकर मक्खन चोरी करके क्यों खाता है?

यशोदा माता इस प्रकार मन-ही-मन सोच-विचारकर इस निर्णयपर पहुँचीं कि अवश्य ही मेरे घरकी दासियाँ ठीक प्रकारसे दूध, मक्खन नहीं निकालती होंगी। यही कारण है कि वह मेरे पुत्रको अच्छा नहीं लगता तथा वह व्रजरमणियोंके घरोंमें मक्खन चुराकर खाता है। वे सब व्रजरमणियाँ मेरे पुत्रको अपने पुत्रकी अपेक्षा अधिक प्यार करती हैं। उसे अपने घरमें आया हुआ देखकर सभी परमानन्दमें विभोर होकर उसे दूध-मक्खन आदि खानेके लिए देती होंगी, परन्तु मेरा पुत्र लज्जाशील होनेके कारण सबके सामने खा नहीं पाता होगा, इसलिए पीछेसे चोरी करके खाता है। अतः इसमें मेरे पुत्रका कोई दोष नहीं है, भूखके कारण ही वह ऐसा करता है। अतः उसे पेट भरकर खिलानेपर वह कभी ऐसा नहीं करेगा। ऐसा विचारकर माता यशोदाने निश्चय किया कि अब दासियोंसे मक्खन न निकलवाकर अपने हाथोंसे ही मक्खन तैयार करूँगी और उसे खिलाऊँगी।

माता यशोदाकी ऐसी अद्भुत धारणा एवं प्रेमोचित व्यवहार उनके नित्यसिद्ध वात्सल्यप्रेमको प्रदर्शित करता है। इस प्रेमकी महिमाके आधारपर ही उनका 'यशोदा' नाम सार्थक हुआ है। जो यशको देनेवाली हैं, वे ही यशोदा हैं। श्रीकृष्णकी जननी अपने विशुद्ध वात्सल्यप्रेमके बलसे ही सर्वनियन्ता स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णको कभी

आँचलमें धारणकर स्तनपान कराती हैं, कभी डाँट-फटकार लगाती हैं तथा कभी उन्हें बाँध भी देती है। सर्वेश्वर श्रीकृष्ण भी उनकी प्रेमाधीनता स्वीकारकर जगत्में भक्तवत्सल, प्रेमाधीन आदि नामोंसे प्रसिद्ध हुए हैं। श्रीकृष्णकी जननी यशोदाका ऐसा विशुद्ध वात्सल्यप्रेम और व्यवहार न रहनेपर श्रीकृष्णके भक्तवात्सल्य, प्रेमाधीनता आदि सद्गुणोंका विकास नहीं हो सकता। विशेषकर यशोदा मैयाके बन्धनमें आबद्ध होकर श्रीकृष्णका 'दामोदर' नाम जगत्में प्रकाशित हुआ है। इस प्रकार यशोदा मैयाने ही अपने विशुद्ध वात्सल्यप्रेमके द्वारा भगवान्को भी भक्तवत्सल, प्रेमाधीन आदि नामोंसे यश प्रदान किया है। इसी प्रकार नन्द बाबाका नाम भी वात्सल्यप्रेमके कारण ही सार्थक हुआ हैं। *'नन्दयति जगत्'*—जो जगत्का आनन्द विधान करते हैं—यह व्युत्पत्तिगत अर्थ नन्द बाबाके नामसे प्रकट होता है।

वात्सल्यप्रेमकी आधार नन्दरानी यशोदा अपने पुत्रको खिलानेके लिए अपने हाथोंसे दूध, माखन आदि तैयार करनेका दृढ़ सङ्कल्प करके भी वैसा करनेमें समर्थ नहीं हो पाती थीं, क्योंकि उनकी गृह-दासियाँ उन्हें कोई भी काम करने ही नहीं देती थी। वे यशोदा मैयाको कहती—हमारी जैसी सैकड़ों दासियोंके रहते हुए आप स्वयं अपने हाथोंसे दधि-मन्थन करेंगी, यह कैसे सम्भव हो सकता है? इस प्रकार यशोदा मैयाकी अभिलाषा पूर्ण नहीं हो पा रही थी, जिससे उनकी व्याकुलता दिन प्रतिदिन बड़ रही थी। यशोदा मैयाकी गृह-दासियाँ श्रीकृष्णको अपने गर्भजात पुत्रकी अपेक्षा अधिक प्यार करती थी। उनका हृदय वात्सल्यरससे परिपूर्ण था, नहीं तो वे यशोदाकी दासी होकर श्रीकृष्णकी बाल-लीलामें सेवाका अधिकार कैसे प्राप्त कर पातीं? जो ब्रह्मादि देवताओंके लिए भी सम्भव नहीं है, वह अधिकार उन दासियोंको प्राप्त हुआ। वे यशोदानन्दनको गोदमें लेती हैं, स्तनपान कराती और कभी-कभी उनकी चञ्चलता देखकर उन्हें डाँट-डपट भी लगा देती। अतएव उनका अधिकार सामान्य नहीं था। वे सभी अपने प्राणोंसे कृष्णकी सेवा करती और प्रेमपूर्वक नवनीत आदि प्रस्तुत करती। फिर भी वात्सल्यप्रेमके अतृप्त स्वभावके कारण माताको सर्वदा ऐसा ही लगता था कि मेरा पुत्र तृप्त नहीं

हुआ है। इसलिए वे अपने हाथोंसे नवनीत आदि प्रस्तुतकर कुष्णको खिला-पिलाकर तृप्त करनेके लिए लालायित रहतीं थी। परन्तु गृह-दासियोंके आग्रहके कारण मैया यशोदाकी अभिलाषा पूर्ण नहीं हो पा रही थी। ऐसे ही कुछ दिन बीतनेपर एकदिन यशोदा मैयाकी अतृप्त अभिलाषाके पूर्ण होनेका समय उपस्थित हुआ।

नन्दबाबाके पिता पर्जन्य गोपके समयसे ही प्रतिवर्ष कार्त्तिक महीनेकी शुक्ल प्रतिपदाके दिन गोवर्द्धनमें इन्द्रयागका अनुष्ठान होता आ रहा था। एकबार उस अवसरपर एक दिन पूर्व ही यशोदा मैयाने दीपमालाका उत्सव तथा इन्द्रयागकी तैयारीके लिए सब दासियोंको गोवर्द्धन भेज दिया।

यशोदा मैया यह विचारकर बहुत प्रसन्न थीं कि भगवान् नारायणकी कृपासे आज मेरी मनोवासना पूर्ण होगी। नन्द महाराजकी नौ लाख गायोंमें कुछ विशेष पद्मगन्धा आदि गायें भी थीं। यशोदा मैयाने सायंकालमें अपने हाथोंसे उन गायोंका दूध काढ़कर उसे गरम करके दही जमाया।

यशोदा मैयाके वात्सल्यप्रेमसे परिभावित हृदयमें अखिल ब्रह्माण्ड पालक श्रीकृष्णके बालरूपकी छवि निरन्तर विद्यमान रहती है। वे नित्य नये-नये रूपोंमें उनके माधुर्यका आस्वादन करती रहती हैं। जब यशोदा मैयाने प्रातःकाल दधि-मन्थन करना आरम्भ किया, तब मन्थनकी ध्वनिरूप तालमें उनके हृदयने भी श्रीकृष्णकी लीला-माधुरीमें नाचना आरम्भ कर दिया। उनका माधुर्यप्रेम उद्वेलित होकर गानके रूपमें उनके मुखसे बाहर निकलने लगा। इस प्रकार यशोदा मैया अपने हाथोंसे बाल-गोपालके लिए दधि-मन्थन कर रही थीं तथा मुखसे उनकी लीलाओंका गान कर रही थीं। उनके हृदयमें बाल-गोपालकी मधुर लीलाओंकी स्फूर्ति हो रही थी। उस समय यशोदा मैयाके वस्त्र, आभूषण और अङ्गोंकी अनुपम माधुरी जिस प्रकारसे प्रकाशित हो रही थी, वह वर्णनातीत होनेपर भी भक्तजन सदा यशोदा मैयाके उस स्वरूपका चिन्तन करते रहते हैं। उस समय वे विचित्र चित्रावलीसे परिशोभित पीत वर्णका रेशमी लहँगा पहने हुए थीं। उससे उनके शरीरकी शोभा इन्द्रनीलमणिके समान प्रकाशित हो

रही थी। माता यशोदाकी अङ्गशोभाके विषयमें कुछ मतभेद देखा जाता है। क्रमदीपिका ग्रन्थमें यशोदा मैयाका अङ्ग इन्द्रनीलमणिके समान श्यामवर्णका बतलाया गया है। गौतमीयतन्त्रके अनुसार वे गौराङ्गी हैं। उसमें वर्णन है—"गौरवर्णवाली यशोदा मैयाकी गोदीमें श्यामाङ्ग बाल-गोपाल अतीव शोभा पाते हैं।" परन्तु क्रमदीपिकाके अनुसार यशोदा मैयाका श्यामवर्ण ही समुचित है, क्योंकि शास्त्रोंके अनुसार यदि बालकका वर्ण एवं मुख माताके समान हो, तो यह शुभसूचक और सुलक्षण है। जबसे श्रीकृष्णने अपनी लीला प्रकट की, तबसे सभी व्रजवासी यही जानते हैं कि श्रीकृष्ण यशोदानन्दन हैं, परन्तु व्रजवासियोंके अतिरिक्त संसारके सभी लोग उन्हें देवकीनन्दन कहते हैं। अक्रूर, उद्धव आदिने व्रजवासियोंको बताया कि श्रीकृष्णका मथुरामें जन्म हुआ था और वसुदेवजी उन्हें नन्दालयमें गुप्त रूपसे लेकर आये थे। ये सभी बातें नन्द, यशोदा और व्रजवासियोंके अज्ञातमें हुई थीं, परन्तु श्रीकृष्णका मुख और वर्ण यशोदाके अनुरूप होनेके कारण सबकी यही धारणा थी कि श्रीकृष्ण निश्चित ही यशोदानन्दन हैं। उन्हें जो देवकीनन्दन कहते हैं, वास्तवमें वे अनभिज्ञ हैं। यशोदा मैया यदि गौराङ्गी होतीं, तो श्रीकृष्णका वर्ण एवं मुख यशोदा मैयाके समान न होने कारण व्रजवासियोंको अक्रूर एवं उद्धव आदिकी बातोंपर विश्वास हो सकता था एवं उस समय उनके मनमें भावान्तर भी आ सकता था, जिससे कृष्णके प्रति उनका प्रेम शिथिल हो सकता था॥ ३॥

**तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नन्तीं जननीं हरिः।**
**गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत् प्रीतिमावहन्॥ ४॥**

**अन्वयः**—स्तन्यकामः (स्तनपानके अभिलाषी) हरिः (कृष्ण) तां मथ्नन्तीं जननीं (दधि-मन्थनरत मैया यशोदाके) आसाद्य (समीप उपस्थित होकर) प्रीतिं आवहन् (मैयाका प्रेम एवं आनन्द वर्द्धन करते हुए) दधिमन्थानं (दधि-मन्थन दण्डको) गृहीत्वा (पकड़कर) न्यषेधत् (उन्हें मन्थन करनेसे निषेध करने लगे)॥ ४॥

**अनुवाद**—उसी समय श्रीकृष्ण स्तनपान करनेकी अभिलाषासे मन्थनमें व्यस्त मैयाके समीप आकर उनका प्रेम एवं आनन्दवर्द्धन करते हुए मन्थनदण्डको पकड़कर उन्हें दधि-मन्थन करनेसे निषेध करने लगे॥ ४॥

**सारार्थदर्शिनी**—आसाद्य प्रातरन्तर्गृहात् प्रबुद्ध्य बहिर्निःसृत्य क्षुधा रुदन्मुखः सन्नित्यर्थः। मन्थानं मन्थनदण्डं। गृहीत्वेति मातर्मामथानेति स्ववचनं मानयिष्यन्तीं मातरमभिज्ञायेति भावः। अतस्तच्चातुर्यं ज्ञात्वा या मातुः प्रीतिस्तां आवहन्॥ ४॥

**भावानुवाद**—*'आसाद्य'*—प्रातःकाल जगकर श्रीकृष्ण घरके भीतरसे बाहर आये तथा भूखसे पीड़ित होनेके कारण अश्रुपूरित नेत्रोंसे जननीके समीप उपस्थित हुए। वे जानते थे कि यदि मैं माताको दधि-मन्थन करनेसे निषेध करूँगा, तो वे अवश्य ही मेरी बात मानेंगी। ऐसा विचारकर उन्होंने मन्थनदण्डको दोनों हाथोंसे पकड़ लिया। इस प्रकार कृष्णके चातुर्यको जानकर मैयाका प्रीतिवर्धन हुआ, अथवा कृष्णने मन्थनदण्डको पकड़कर मैयाकी प्रीतिको अपनी ओर आकर्षित किया॥ ४॥

**तमङ्कमारूढमपाययत् स्तनं**
**स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखम्।**
**अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा यया-**
**वुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते॥ ५॥**

**अन्वयः**—सा (मैया यशोदा) अङ्कम् आरूढं (गोदमें स्थित) [पुत्रके] सस्मितं मुखं (सहास्ययुक्त मुखमण्डलको) ईक्षती (निहारती हुई) तं स्नेहस्नुतं (उसे स्नेहवश स्वतः झरित) स्तनं अपाययत् (दूध पान कराने लगीं) तु (किन्तु) अधिश्रिते (चूल्हेपर चढ़ाये हुए) पयसि (दूधके) उत्सिच्यमाने (अतिशय तापसे उफननेपर) [वे] अतृप्तं (स्तनपानसे अतृप्त) [बालकको] उत्सृज्य (छोड़कर) जवेन (वेगसे) ययौ (उस ओर चली गयीं)॥ ५॥

**अनुवाद**—यशोदा मैया गोदमें स्थित पुत्रके मुसकानयुक्त मुखमण्डलका निरीक्षण करते-करते स्नेहवश उसे स्तनोंसे स्वतः झरनेवाला दूध

पिलाने लगीं। उसी समय चूल्हेपर रखा हुआ दूध अत्यधिक तापके कारण उफनकर बाहर गिरने लगा। यह देखकर मैया पुत्रको अतृप्त अवस्थामें ही गोदसे उतारकर तेजीसे दूधको बचानेके लिए चली गयीं॥ ५॥

**सारार्थदर्शिनी—**अहो बालस्यास्य बुद्धिरित्युक्त्वा मथनाद्विरम्योपविष्टा स्वयमेवाङ्कमारूढं तम् उत्सृज्येत्यत्र हेतुः जवेनेति। तत्रापि हेतुः उत्सिच्यमाने अतितापेनोद्रिच्यमाने सति पयसि उत्तारणार्थमित्यर्थः। अधिश्रिते चुल्लीमारोपिते। ननु, कृष्णादपि तस्या दुग्धमतिममतास्पदमभूत्, यदनुरोधेनातृप्तः कृष्णोऽप्युपेक्षितः? सत्यं—*"तद्भक्ष्यपेयादिषु काप्यपेक्षता यया पुनः सोऽपि समेत्युपेक्षताम्। प्रेम्णा विचित्रा परिपाट्युदीरिता बोध्या तथा प्रेमवतीभिरेव या"*॥ ५॥

**भावानुवाद—**"अहो! इस बालककी कैसी बुद्धि है!"—ऐसा कहकर माता मन्थन बन्दकर बैठ गयीं तथा कृष्ण स्वयं ही उनकी गोदमें चढ़ गये। तब मैया उन्हें स्तनपान कराने लगीं। *'तम उत्सृज्य'*—किन्तु शीघ्र ही वे उन्हें गोदसे उतारकर भूमिपर बिठाकर चली गयीं। इसका कारण था—*'उत्सिच्यमाने'*—उस समय अतिशय तापके कारण चूल्हेपर स्थित दूध उफनकर गिरनेवाला था, उसे उतारनेके लिए ही मैया तेजीसे दौड़कर गयीं। यदि कहो कि क्या मैयाके लिए श्रीकृष्णसे अधिक ममताकी वस्तु वह दूध था, जिसके लिए मैयाने अतृप्त कृष्णकी भी उपेक्षा कर दी? तो इसके उत्तरमें कह रहे हैं—हाँ, यह सत्य है, क्योंकि जितनी भी भक्ष्य-पेयादि (खाने-पीनेकी वस्तुएँ) हैं, वे सभी श्रीकृष्णके लिए ही हैं। कुछ देरके पश्चात् ही कृष्ण आकर पुनः कहेंगे—"मैया दही दो, मक्खन दो", इसीलिए मैया उन वस्तुओंकी रक्षा करती हैं। यहाँ प्रेमकी यह विचित्र परिपाटी उक्त हुई है, जिसे केवल प्रेमवती गोपियाँ ही जानती हैं॥ ५॥

**सञ्जातकोपः स्फुरितारुणाधरं,**
**सन्दश्य दद्भिर्दधिमन्थभाजनम्।**
**भित्त्वा मृषाश्रुर्दृषदश्मना रहो,**
**जघास हैयङ्गवमन्तरं गतः॥ ६॥**

**अन्वयः**—सः सञ्जातकोपः (क्रोधाविष्ट होकर कृष्ण) मृषाश्रुः (मिथ्या अश्रुपात करते-करते) स्फुरितारुणाधरं (क्रोधके कारण कम्पित अरुणवर्णके होठोंको) दद्भिः (दाँतोंसे) सन्दश्य (दंशन करते हुए) दृषदश्मना (लोढ़ेके द्वारा) दधि-मन्थन-भाजनं (दधि-मन्थनके पात्रको) भित्त्वा (फोड़कर) अन्तरं गतः (घरके भीतर जाकर) रहः (निर्जनमें) हैयङ्गवं (बासा मक्खन) जघास (खाने लगे)॥ ६॥

**अनुवाद**—इससे श्रीकृष्ण क्रोधित हो गये तथा उन्होंने मिथ्या अश्रुपात करते हुए दाँतोंके द्वारा अपने कम्पित लाल-लाल होठोंको काटते हुए लोढ़ेके द्वारा दधिके मटकेको फोड़ दिया। तत्पश्चात् वे घरके भीतर जाकर निर्जनमें बासा मक्खन खाने लगे॥ ६॥

**सारार्थदर्शिनी**—मृषा वृथापि बाल्यस्वभावादेवाश्रुर्यस्य सः। दृषदश्मना शिलापुत्रेण निःशब्दछिद्रार्थं तत्तले इति ज्ञेयम्। अन्तरं गृहाभ्यन्तरम्। हैयङ्गवं ह्योगोदोहस्य सद्यो नवनीतम्॥ ६॥

**भावानुवाद**—*'मृषाश्रु'*—वृथा अर्थात् कोई उचित कारण न होनेपर भी बाल-स्वभाववशतः जिनके नेत्रोंमें अश्रु हैं, ऐसे कृष्णने *'दृषदश्मना'*—लोढ़ेके द्वारा दहीके मटकेको नीचेकी ओरसे फोड़ दिया जिससे कि कोई शब्द न हो। *'अन्तरं गतः'*—उसके पश्चात् घरमें प्रवेशकर वहाँ रखा *'हैयङ्गव'*—बासा मक्खन खाने लगे॥ ६॥

**उत्तार्य गोपी सुश्रृतं पयः पुनः,**
**प्रविश्य संदृश्य च दध्यमत्रकम्।**
**भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्मत-**
**ज्जहास तञ्चापि न तत्र पश्यती॥ ७॥**

**अन्वयः**—गोपी (मैया यशोदा) सुश्रृतं (अत्यन्त गर्म) पयः (दूधको) उत्तार्य (चूल्हेसे उतारकर) पुनः प्रविश्य (पुनः दधि-मन्थनके स्थानपर आयीं) [एवं] दध्यमत्रकं (दहीके पात्रको) भग्नं विलोक्य च तं च (टूटा हुआ तथा कृष्णको) तत्र न पश्यती (वहाँ नहीं देखकर) तत् (दधिपात्रका टूटना) स्वसुतस्य (अपने बालकका) कर्म (कार्य) (समझकर) जहास (हँसने लगीं)॥ ७॥

**अनुवाद**—इधर यशोदा मैयाने उफनते हुए दूधको चूल्हेसे नीचे उतारकर पुनः दधि-मन्थनके स्थानपर आकर देखा कि दहीका मटका फूटा हुआ है एवं कृष्ण भी वहाँ दिखायी नहीं दे रहा है। तब यशोदादेवी इसे कृष्णका ही कार्य जानकर हँसने लगीं॥ ७॥

**सारार्थदर्शिनी**—सुशृतं सुपक्वम्। दधिमन्थनस्थानं प्रविश्य दध्यमत्रकं, दधिपात्रम् अतिचिक्वणत्वेन अतिदृढत्वेनानुकम्पायां कन्। भग्नं विलोक्येति वामतर्जन्या नासाग्रं स्पृष्ट्वेति ज्ञेयम्॥ ७॥

**भावानुवाद**—*'सुश्रुतम्'*—अच्छी तरहसे उबले हुए दूधको चूल्हेसे उतारकर यशोदा मैया पुनः दधि-मन्थनके स्थानपर आयी और देखा कि *'दध्यमत्रकम्'*—दधिका पात्र अत्यन्त चिकना और अतिदृढ़ होनेपर भी *'भग्नं विलोक्य'*—फूट गया है। यह देखकर यशोदा मैया बायें हाथकी तर्जनी अँगुलिसे नाकके अग्रभागको स्पर्शकर इसे अपने पुत्रका कार्य जानकर हँसने लगी॥ ७॥

**उलूखलाङ्घ्रेरुपरि व्यवस्थितं,**
**मर्काय कामं ददतं शिचि स्थितम्।**
**हैयङ्गवं चौर्यविशङ्कितेक्षणं,**
**निरीक्ष्य पश्चात् सुतमागमच्छनैः॥ ८॥**

**अन्वयः**—उलूखलाङ्घ्रेः उपरि व्यवस्थितं (उलटे रखे हुए ऊखलके ऊपर बैठकर) शिचिस्थितं (छीकेमें रखा हुआ) हैयङ्गवं (मक्खन) मर्काय ददतं कामं (बन्दरोंको यथेष्ट रूपमें बाँटते हुए) [एवं] चौर्यविशङ्कितेक्षणं (चोरीके कारण भयभीत नेत्रयुक्त) सुतं (कृष्णको) निरीक्ष्य शनैः (देखकर वे धीरे-से) पश्चात् (बालकके पीछे) आगमत् (आ गयीं)॥ ८॥

**अनुवाद**—उस समय कृष्ण गृहमें उलटे रखे हुए ऊखलके ऊपर बैठकर छीकेमें रखे मक्खनको इच्छानुसार बन्दरोंमें बाँट रहे थे। इस चोरीके अपराधवशतः उनके नेत्रयुगल शङ्काग्रस्त थे। यशोदा मैया उन्हें इस अवस्थामें देखकर धीरे-धीरे उनके पीछे आकर खड़ी हो गयीं॥ ८॥

**सारार्थदर्शिनी**—दधिक्लिन्नचरणचिह्नेन किङ्किणीशब्देन च तच्चालित-भाण्डादिशब्देन च गृहान्तःस्थितं नवनीतं भुञ्जानं अनुमाय हसन्ती किञ्चिद्विलम्ब्य यावत्तत्र यियासति स्म, तावदेव पक्षद्वारेण निःसृत्य बहिःप्राङ्गणान्तरे काकादि-भयादधोमुखीकृतोलूखलस्योपरि कृष्णे स्वस्तिकासनेनोपविष्टे सति यदभूत्तदाह—उलूखलेति। शिचि शिक्ये स्थितं ततश्चोरयित्वा आनीतमित्यर्थः। चौर्याद्धेतोर्मातृताडन-भयाद्विशङ्किते तदागमनानुसन्धानपरे ईक्षणे यस्य तं। गृहान्तर्गतैरतिर्यग्ग्रीवं निरीक्ष्य पश्चात् तद्दृष्टिवञ्चनार्थं तत्पृष्ठतस्तं जिघृक्षन्ती शनैरिति स्वचरणशब्दाभावार्थः॥ ८॥

**भावानुवाद**—श्रीकृष्णके दधिसे सने हुए चरणचिह्नोंको देखकर एवं उनकी किङ्किणी एवं मटकोंको हिलानेसे उत्पन्न ध्वनिको सुनकर यशोदा मैयाने अनुमान लगाया कि अवश्य ही वह घरके भीतर माखन खा रहा है। यह सोचकर मैयाको हँसी आ गयी और कुछ क्षण पश्चात् उन्होंने वहाँ जानेकी इच्छा की। उधर श्रीकृष्ण द्वारसे बाहर जाकर बाहरी प्राङ्गणमें कौवे आदि पक्षियोंके भयसे उलटे रखे हुए ऊखलके ऊपर स्वस्तिक आसनमें बैठे हुए थे। *'उलूखलाङ्घ्रेः'* इत्यादि पदोंसे उसके पश्चात्की घटनाका वर्णन कर रहे हैं श्रीकृष्ण छीकेमें रखा हुआ बासा मक्खन चोरी करके इच्छानुसार बन्दरोंमें बाँट रहे हैं। *'चौर्यविशङ्कितेक्षणम्'*—चोरीके कारण मैयाके डाँटनेके भयसे विशङ्कित, अर्थात् मैयाके आगमनकी आशङ्कासे जिनके नेत्रयुगल चञ्चल हो रहे हैं। अब घरके भीतरसे ही कृष्णको देखकर मैया यशोदा उनकी दृष्टि बचाकर उन्हें पकड़नेके लिए *'शनैः'*—इस प्रकार धीरे-धीरे चलते हुए जिससे कि उनके चरणोंकी ध्वनि न हो, अपने पुत्रके पीछे पहुँच गयीं॥ ८॥

**तामात्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वर-**
**स्ततोऽवरुह्यापससार भीतवत्।**
**गोप्यन्वधावन्न यमाप योगिनां,**
**क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः॥ ९॥**

**अन्वयः**—[कृष्ण] तां (मैया यशोदाको) आत्तयष्टिं (छड़ी हाथमें लिये हुए) प्रसमीक्ष्य (देखकर) सत्वरः (शीघ्रतापूर्वक) ततः (ऊखलसे) अवरुह्य भीतवत् (कूदकर भयभीत व्यक्तिकी भाँति) अपससार (भागने

लगे) योगिनां मनः तपसा ईरितं (योगियोंकी तपस्यासे प्रेरित चित्त) प्रवेष्टुं (ब्रह्ममें लीन होने योग्य होनेपर भी) क्षमं (जिन्हें प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता है) [उन्हें पकड़नेके लिए] गोपी (मैया यशोदा) अन्वधावत् (उनके पीछे दौड़ने लगीं)॥ ९॥

**अनुवाद**—श्रीकृष्ण माताको हाथमें छड़ी लेकर वहाँ आते देखकर शीघ्रतापूर्वक ऊखलसे कूद पड़े और भयभीत व्यक्तिकी भाँति वहाँसे भागने लगे। योगियोंका तपोबलसे प्रेरित चित्त ब्रह्ममें लीन होनेके योग्य होनेपर भी जिन्हें प्राप्त नहीं कर पाता, यशोदादेवी अपने उसी पुत्र कृष्णको पकड़नेके लिए उसके पीछे-पीछे दौड़ीं॥ ९॥

**सारार्थदर्शिनी**—पुत्रभीषणार्थमात्तयष्टिम्। भीतवदिति साहजिकमातृस्नेहभरज्ञानेन तत्त्वतोऽन्तर्भयाभावात्। यद्वा, भीतवदिति मतुवन्तं भययुक्तं यथा स्यात्तथापससार दुद्रावेत्यर्थः। *"भयभावनया स्थितस्य"* (श्रीमद्भा॰ १/८/३०) इति कुन्त्युक्तेः। गोपी यशोदा योगः समाधिस्तद्वतां मनः तपसा ज्ञानेनेरितमपि प्रवेष्टुं ब्रह्मणि लीनीभवितुं क्षममपि यं नाप, *"नायं सुखाप"* (श्रीमद्भा॰ १०/९/२१) इत्यादौ स्पष्टीभावित्वात्॥ ९॥

**भावानुवाद**—*'ताम आत्तयष्टिम्'*—पुत्रको भय दिखानेके लिए माताने हाथमें छड़ी ले रखी थी। माताको छड़ी लेकर आते देखकर श्रीकृष्ण शीघ्रतापूर्वक ऊखलसे कूदकर *'भीतवत्'* अर्थात् वास्तवमें जिन्हें कोई भय नहीं है, किन्तु अतिशय मातृस्नेहके वशीभूत होकर भयभीत व्यक्तिके समान भागने लगे। जिस प्रकार कुन्तीदेवीकी स्तुतिमें वर्णन है—*"भयभावनया स्थितस्य"* (श्रीमद्भा॰ १/८/३०) अर्थात् "हे श्रीकृष्ण! जब तुमने दहीका मटका फोड़ दिया और इस अपराधके कारण तुम्हारी मैया यशोदाने तुम्हें बाँधनेके लिए रस्सी हाथमें ले ली, उस समय तुम्हारी जो स्थिति हुई थी, वह मेरे स्मृति-पटलपर उदित होकर मुझे विमोहित कर रही है। यशोदाको देखकर तुम्हारे दोनों नेत्र भयसे व्याकुल हो रहे थे एवं उनमें स्थित काजल अश्रुजलमें मिश्रित हो रहा था एवं जो भय भी तुमसे भयभीत होता है, उसी भयकी भावनासे अर्थात् यशोदा मैयाके द्वारा ताड़नके विचारसे भयभीत होकर तुम्हारा मुख झुक गया था।" *"योगिनां तपसेवितं मनः"*—समाधिमें स्थित योगियोंके ज्ञानके द्वारा प्रेरित मन ब्रह्मलीन होनेमें समर्थ होनेपर

भी जिन्हें प्राप्त नहीं कर पाता, उन्हीं श्रीकृष्णको पकड़नेके लिए मैया यशोदा उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगीं॥ ९॥

**अन्वञ्चमाना जननी बृहच्चल-**
**च्छ्रोणिभराक्रान्तगतिः सुमध्यमा।**
**जवेन विस्रंसितकेशबन्धन-**
**च्युतप्रसूनानुगतिः परामृशत्॥ १०॥**

**अन्वयः**—जवेन (अतिवेगसे) विस्रंसित-केशबन्धन-च्युतप्रसूनानुगतिः (भागनेके कारण उनके केशपाशसे पुष्पसमूह गिरकर उनका अनुगमन कर रहे थे) अन्वञ्चमाना (कृष्णके पीछे भागते-भागते) बृहच्चल-च्छ्रोणिभराक्रान्तगतिः (विशाल नितम्बोंके भारसे मन्थरगतियुक्त) सुमध्यमा (पतली कमरवाली) जननी परामृशत् (यशोदाने अन्ततः कृष्णको पकड़ ही लिया)॥ १०॥

**अनुवाद**—कृष्णको पकड़नेके लिए उनके पीछे भागते-भागते सुमध्यमा (पतली कमरवाली) यशोदादेवीकी गति उनके हिलते हुए एवं विशाल नितम्बोंके कारण धीमी पड़ गयी। शीघ्र गतिसे भागनेके कारण उनकी चोटीमें बँधे पुष्प स्खलित होकर उनका अनुगमन करने लगे। किन्तु इस प्रकार भागते हुए भी अन्ततः उन्होंने कृष्णको पकड़ ही लिया॥ १०॥

**सारार्थदर्शिनी**—न च योगिदुष्प्रापं तमनुधावनेन सा न प्रापेति वाच्यमित्याह—अवञ्चेति। विस्रंसितात् केशबन्धात् च्युतैः प्रसूनैरनुगतिरनुगमनं यस्याः सा। परा पृष्ठतोऽमृशत् तं धृतवती॥ १०॥

**भावानुवाद**—योगियोंके लिए भी जो भगवान् दुष्प्राप्य हैं, उनका अनुधावन करके यशोदा मैया उन्हें पकड़ नहीं सकीं—यह नहीं कहा जा सकता। इसीलिए *'अन्वञ्चमाना'* इत्यादि पद कह रहे हैं। (अर्थात् जो योगियोंके लिए दुष्प्राप्य हैं, वे यशोदा मैयाके लिए सुलभ हैं।) *'विभ्रंसितकेशबन्धन'*—वेगसे भागनेके कारण चोटीसे पुष्पसमूह स्खलित होकर यशोदा मैयाके गमनके साथ-साथ गिरते जा रहे थे।

*'परामृशत्'*—इस प्रकार भागते-भागते मैयाने श्रीकृष्णको पीछेसे पकड़ लिया॥ १०॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति—**यशोदा मैया श्रीकृष्णकी बाल-लीलाओंके चिन्तनमें निमग्न होकर मुखसे गान कर रही थीं एवं हाथसे श्रीकृष्णकी सेवाके लिए दधि-मन्थन कर रही थीं। कुछ समय बाद पलङ्कपर सोये हुए यशोदानन्दनकी निद्रा भङ्ग हो गयी। तब वे अपने हाथोंसे आँखोंको मलते हुए मैया! मैया! कहकर रोते हुए शय्यापर बैठ गये।

जब उन्होंने देखा कि मैया यहाँ नहीं है, तब वे कक्षमें इधर-उधर घूमते हुए जहाँ माँ यशोदा दधि-मन्थन कर रही थीं, वहाँ पहुँच गये तथा एक हाथसे दहीकी मथानी पकड़ ली एवं दूसरे हाथसे मैयाका आँचल पकड़ लिया। उनका उद्देश्य था—मैया मुझे दूध पिलाये।

उस समय यशोदा मैया श्रीकृष्णकी बाल-लीलाओंके स्मरणसे गद्गद हो रही थीं, अतः कृष्णको अपने सामने उपस्थित हुआ देखकर उन्होंने कृष्णको गोदमें उठा लिया तथा उन्हें स्तनपान कराने लगीं। अगाध वात्सल्यप्रेमके कारण उनके स्तनोंसे दूधकी प्रचुर धारा प्रवाहित होने लगी। परन्तु इधर चूल्हेपर गरम करनेके लिए चढ़ाया हुआ दूध अधिक गरम हो जानेके कारण उफन-उफनकर चूल्हेमें गिरकर जलने लगा।

यशोदानन्दन यदि अनन्तकाल तक यशोदा मैयाकी गोदमें स्थित होकर उनके स्तनोंसे क्षरित हो रही वात्सल्यप्रेमकी पीयूष-धाराका पान करते रहें तथा यशोदा मैया भी यदि अनन्तकाल तक अपने प्राणोंसे प्रिय पुत्रको स्तनपान कराती रहें, तो भी न तो कृष्णका पेट भरेगा तथा न ही माताके स्तनोंका दूध समाप्त होगा। यशोदा मैयाके स्तनोंके दूधको पान करनेसे श्रीकृष्णकी भूख बढ़ती जाती है और श्रीकृष्णकी भूखके बढ़नेसे यशोदा मैयाके स्तनोंका दूध भी बढ़ जाता है।

परन्तु चूल्हेपर उफनते हुए दूधको देखकर माँ यशोदाने अपने जीवनके जीवन-स्वरूप कृष्णको भूमिमें बैठा दिया तथा दूध उतारनेके लिए चली गयीं।

यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उस समय यशोदा मैया श्रीकृष्णको गोदमें लेकर स्तनपान कराकर तथा उनके मन्द मुसकानयुक्त मुखकमलका दर्शनकर आनन्दित हो रही थीं, परन्तु जब उन्होंने देखा कि दूध उफनकर चूल्हेमें गिर रहा है, तब वे विचार करने लगीं कि यदि दूध नष्ट हो गया, तो बादमें कृष्ण क्या खायेगा। इसलिए अपने उस आनन्दको भी त्यागकर वे दूधको बचाने चली गयीं। प्रेमवान भक्तोंका यही स्वभाव होता है कि वे भगवान्‌की सेवाके लिए अपने सुखका भी त्याग कर देते हैं।

वात्सल्यप्रेमवती माताओंका पुत्रसे भी बढ़कर पुत्रके खाने-पीनेकी वस्तुओंमें अधिक आग्रह देखा जाता है, क्योंकि उससे पुत्रका लालन-पालन होता है। परन्तु अबोध बालक यह समझ नहीं पाता और वह सर्वदा जननीकी गोदमें ही रहना चाहता है। परन्तु माता पुत्रको केवल गोदमें लेकर ही बैठी नहीं रहती है, वह पुत्रको रुला करके भी उसके लिए भोजन प्रस्तुत करती है।

श्रीकृष्णके भोजन-पान आदिकी वस्तुओंमें माँ यशोदाकी ऐसी कुछ रुचि है, जिससे कि उनकी रक्षा करनेके लिए वे कृष्णकी उपेक्षा करनेमें भी संकोच नहीं करती है। यशोदा मैयाका यह अद्भुत व्यवहार वात्सल्यप्रेमकी एक विचित्र छविको प्रस्तुत करता है। इसका अनुभव केवल वात्सल्यप्रेमवती जननियोंको ही है, उनके अतिरिक्त दूसरा कोई इसे समझ भी नहीं सकता। जब यशोदा मैया दूध उतारने चली गयीं, उस समय श्रीकृष्ण प्रथमतः किङ्कर्त्तव्यविमूढ़ हो गये, परन्तु कुछ क्षण पश्चात् वे समझ गये कि मैया उन्हें स्तनपानसे छुड़ाकर दूसरा काम करनेके लिए चली गयी है। तब स्तनपानसे अतृप्त श्रीकृष्णके मनमें क्रोधका सञ्चार होने लगा।

क्रोधके कारण उनके पके हुए बिम्बफलके समान लाल-लाल होंठ फड़कने लगे, नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगीं तथा वे दाँतोंसे अधरको दबाकर इधर-उधर दृष्टिपात करने लगे। तभी उनकी दृष्टि सामने रखे हुए दधिके मटकेपर पड़ी। वे मन-ही-मन सोचने लगे कि मैयाने मुझे स्तनपान करने नहीं दिया, इसलिए मैं भी उनके दहीके मटकेको फोड़ दूँगा। यह सोचकर यशोदानन्दन क्रोधके आवेशमें

दहीके मटकेके पास पहुँचे। पहले तो उन्होंने उसे पलटनेकी चेष्टा की, परन्तु वे उसे हिला-डुला भी न सके। तब उन्होंने और भी क्रोधित होकर हाथमें लोढ़ा लेकर उससे मटकेके नीचे चोट मार दी, जिससे मटका फूट गया और सारी दही उनके चरणोंको सिक्त करती हुई भूमिपर फैलने लगी।

इस प्रकार फूटे हुए मटकेसे बहनेवाली दहीके ऊपर छोटे-छोटे चरणोंसे चलते हुए वे उस कक्षमें पहुँच गये जिस कक्षमें मक्खनका मटका छीकेपर रखा हुआ था। वहाँ जाकर उन्होंने पीछेका दरवाजा भी खोल दिया तथा उलटायी हुई ओखलीपर चढ़कर छींकेपर रखे मक्खनके मटकेसे मक्खन खाने लगे तथा बन्दरों और कौओंको भी बाँटने लगे।

यशोदानन्दन उन बन्दरोंको देखकर परमानन्दित होकर मधुर वचनोंसे कहने लगे—तुमलोग आये हो, यह लो, पेट भरकर मक्खन खाओ। ऐसा कहकर वे छींकेके ऊपर रखे मटकेसे मक्खन लेकर कुछ स्वयं खा रहे थे, कुछ बन्दरोंको खिला रहे थे। बन्दरोंको इतने आदरपूर्वक खिलाते हुए देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो वे त्रेतायुगका ऋण अब चुका रहे हैं। त्रेतायुगमें राम-लीलामें वे बन्दरोंको कुछ खिला नहीं सके, इसलिए इस कृष्ण-लीलामें हृदय खोलकर उन्हें खिला रहे हैं।

इधर यशोदा मैया जब लौटकर मन्थन स्थानपर आयीं, तो देखा कि दहीका मटका फूटा हुआ है तथा सारी दही कक्षमें फैली हुई है। इस प्रकार मैयाका सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया था। वे समझ गयीं कि इस चञ्चल बालकने ही बाल-चपलतामें दहीका मटका फोड़ दिया है। अब वे विचार करने लगीं कि वह गया कहाँ? तभी उनकी दृष्टि दहीसे सने हुए कृष्णके चरणचिह्नोंपर पड़ी, जो घरके भीतरकी ओर जा रहे थे। यह देखकर वे समझ गयीं कि वह मक्खन चोर पासके कक्षके भीतर गया है। यशोदा मैया मन-ही-मन सोचने लगीं—सर्वनाश हो गया। उस कक्षमें तो नारायण-सेवा, अतिथि-सेवा एवं इन्द्रयागके लिए मक्खन रखा हुआ है। इस चञ्चल बालकने यदि उसे जूठा कर दिया, तो बड़ा अनर्थ हो जायेगा। यह

सोचकर वे चुपचाप हाथमें एक छड़ी लेकर दरवाजेकी आड़में आकर खड़ी हो गयीं तथा अपने लाड़लेकी करतूत देखने लगीं। फिर कृष्णकी दृष्टि बचाकर चुपचाप धीरे-धीरे उनके पीछे जा पहुँची। उन्हें देखते ही कृष्ण ओखलीसे कूदकर तीव्र गतिसे पीछेके दरवाजेसे राजमार्गकी ओर भागने लगे।

उन्हें भागता हुआ देखकर मैया भी उन्हें पकड़नेके लिए उनके पीछे-पीछे भागने लगी। वे भागते हुए बार-बार कह रही थी—"दुष्ट बालक! आज तू मेरे हाथसे बच नहीं पायेगा। तू आज जहाँ भी जायेगा, वहींसे मैं तुझे पकड़कर लाऊँगी तथा दण्ड दूँगी।"

यह सुनकर भयभीत होकर कृष्ण और भी तीव्र गतिसे भागने लगे। इधर विशाल नितम्बोंके भारवशतः मन्द गतिसे भागनेके कारण यशोदा मैया उन्हें पकड़ नहीं पा रही थीं। भागनेसे उनके केशपाश बिखर गये और उनकी चोटीसे पुष्प खिसककर गिरने लगे। इससे ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो श्रीकृष्णके पीछे भागनेवाली यशोदा मैयाके चरणकमलोंकी पूजा करनेकी अभिलाषासे उनके मस्तकके केशपाश कुसुमाञ्जलि प्रदान कर रहे हैं। यशोदानन्दनने सोचा कि राजमार्गमें सभी लोग चलते-फिरते रहते हैं, इसलिए लज्जाके कारण मैया वहाँ जायेंगी नहीं और इस प्रकार आज उनके कोपसे बचा जा सकता है। परन्तु वे अधिक दूर तक भाग नहीं सके, क्योंकि मैयाने जैसे ही कहा—"रुकता है या छड़ी फेंककर मारूँ," तो वे भयसे खड़े हो गये तथा मैयाने झटसे उन्हें पीछेसे पकड़ लिया॥ ४-१०॥

**कृतागसं तं प्ररुदन्तमक्षिणी,**
**कषन्तमञ्जन्मसिणी स्वपाणिना।**
**उद्वीक्षमाणं भयविह्वलेक्षणं,**
**हस्ते गृहीत्वा भिषयन्त्यवागुरत्॥ ११॥**

**अन्वयः**—उद्वीक्ष्यमाणं (मैया यशोदाको देखकर) भयविह्वलेक्षणं (भयसे अत्यन्त कातर दृष्टिसम्पन्न) तं (श्रीकृष्ण) कृतागसं (स्वयंकृत अपराधके कारण) प्ररुदन्तं (रोते-रोते) स्वपाणिना (अपने हाथोंसे) अक्षिणी (नेत्रोंको) कषन्तं (मल रहे थे) अञ्जन्मसिणी (जिससे नेत्रोंमें

स्थित काजल उनके सम्पूर्ण मुखपर फैल गया) [तदनन्तर] हस्ते गृहीत्वा (उनका हाथ पकड़कर) भिषयन्ती (मैया भय दिखाते हुए) अवागुरत् (उन्हें डाँटने लगीं)॥ ११॥

**अनुवाद**—[यशोदा मैयाने देखा] अपराधी बालक रोते-रोते दोनों हाथोंसे अपने नेत्रोंको मल रहा है जिससे उसके नेत्रोंमें स्थित काजल अश्रुओंके साथ मिलकर सम्पूर्ण मुखपर फैल गया है। यशोदा मैयाको देखकर उसके दोनों नेत्र भयसे विह्वल हैं। ऐसी अवस्थामें पुत्रका हाथ पकड़कर यशोदा मैया उसे भय दिखाते हुए उसकी भर्त्सना करने लगी॥ ११॥

**सारार्थदर्शिनी**—योगिदुष्प्रापं तं न केवलं धृतवत्येव, किन्तु ब्रह्मरुद्रादिभिरनिशं स्तूयमानं तमभर्त्सयदपि, महाकालयमादीनामपि भयहेतुं तं यष्टिमात्रेणाप्यभाययदपीत्याह—कृतागसमिति। अञ्जन्मसिणी अञ्जन्ती सर्वतः प्रसरन्ती मसी ययोस्ते अक्षिणी स्वपाणिना स्ववामपाणिपृष्टेनैव सम्मर्दयन्तं, दक्षिणपाणेर्मातृगृहीतत्वात्। भिषयन्ती यष्ट्या भाययन्ती। ह्रस्वसुगावार्षौ। यद्वा, भीषयमाण। तदा ह्रस्वपरस्मैपदे आर्षे। अवागुरत—*"भो अशान्तप्रकृते! वानरबन्धो! मन्थनीस्फोटक! अद्य नवनीतादिकं कुतः प्राप्स्यसि तथा बध्नाम्यद्य यथा सहचरबालकैः सह खेलितुं नवनीतमपहर्तुं च न प्रभविष्यसि। इदानीं यष्टिताडनात् किं बिभेषि"* इति तर्जयन्ती यष्ट्युत्थानेन ताडनोद्यमं चकार, न तु तताड। *"गुरी उद्यमे"*॥ ११॥

**भावानुवाद**—योगियोंके लिए भी जो अत्यन्त दुर्लभ हैं—ऐसे श्रीकृष्णको यशोदा मैयाने केवल पकड़ा ही नहीं, अपितु ब्रह्मा-रुद्र आदिके द्वारा जो निरन्तर स्तवनीय हैं, उनकी भर्त्सना करने लगीं एवं जिनसे महाकाल और यम आदि भी भयभीत रहते हैं, उन्हें केवल छड़ीसे ही डराने लगीं—इसे *'कृतागसम्'* इत्यादि पदोंके द्वारा कह रहे हैं। श्रीकृष्णके दाहिने हाथको मैयाने पकड़ लिया, इसलिए वे अपने बायें हाथके पिछले भागके द्वारा अपने नेत्रोंको मलने लगे जिससे उनके नेत्रोंका काजल उनके मुखपर चारों ओर फैल गया। *'भिषयन्ती'*—मैया छड़ीसे उन्हें भय दिखाती हुई कहने लगीं—*'अवागुरत'*—"हे अशान्त स्वभाववाले! बन्दरबन्धु! दहीका पात्र तोड़नेवाले! अब तू मक्खन कहाँ-से खायेगा? आज तुझे ऐसे बाँधूगी कि तू अपने सहचर बालकोंके साथ खेलने और मक्खन चोरी करनेमें समर्थ नहीं

हो सकेगा। अब हाथमें छड़ी देखकर क्यों डर रहा है?" इस प्रकार तर्जन करते-करते मैया यशोदाने छड़ी उठाकर केवल उन्हें मारनेका भय दिखाया, मारा नहीं॥ ११॥

**त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला।**
**इयेष किल तं बद्धुं दाम्नाऽतद्वीर्यकोविदा॥ १२॥**

**अन्वयः**—[तत्पश्चात्] अर्भकवत्सला अतद्वीर्यकोविदा (पुत्रके प्रति अत्यन्त प्रगाढ़ स्नेहवशतः पुत्रके प्रभावसे अज्ञात मैया यशोदाने) सुतं भीतं विज्ञाय (पुत्रको भयभीत देखकर) दाम्ना (रस्सीके द्वारा) बद्धुं (उसे बाँधकर रखनेकी) इयेष किल (इच्छासे) यष्टिं त्यक्त्वा (छड़ी फेंक दी)॥ १२॥

**अनुवाद**—इस प्रकार पुत्रको भयभीत देखकर माता यशोदाके हृदयमें वात्सल्यस्नेह उमड़ आया। उन्होंने हाथसे छड़ी फेंक दी तथा उसे रस्सीसे बाँधनेकी इच्छा करने लगीं। वास्तवमें उन्हें अपने पुत्रके ऐश्वर्यका पता ही नहीं था॥ १२॥

**सारार्थदर्शिनी**—*"मातर्मां मा ताडयेत्युक्ते", "ताडने यदि तवातिशया भीः, तत् किमद्य दधिभाण्डमभाङ्क्षीः?", "मातरेवमथ नैव करिष्ये पातय स्वकरतो बत यष्टिम्"* इति पुत्रोक्तिकातर्यविक्लवमना *"हन्त! कदाचिदयं मन्युना वनं प्रविशेत्"* इति शङ्कया तन्निरोधार्थमुपायं निश्चिकायेत्याह—त्यक्त्वेति। तद्वीर्यस्य सर्वव्यापकत्व-लक्षणस्य तदैश्वर्यस्य न कोविदा, शुद्धतन्माधुर्यैकनिमग्नत्वादिति भावः॥ १२॥

**भावानुवाद**—"मैया! मुझे मत मारो!" कृष्णके इस प्रकार कहनेपर मैयाने कहा—"यदि तुझे मारसे इतना भय लगता है, तो तूने दहीका मटका क्यों फोड़ डाला?" यह सुनकर कृष्ण कहने लगे—"मैया! मैं फिर कभी ऐसा नहीं करूँगा। तुम हाथसे छड़ी फेंक दो।" पुत्रकी ऐसी कातर वाणीसे व्याकुल होकर माँ यशोदा सोचने लगी, कहीं यह बालक दुःखी मनसे वनकी ओर भाग न जाये। इस आशङ्कासे मैयाने छड़ी फेंककर बालकको बाँधकर रखनेका निश्चय किया—*'त्यक्त्वा'* इत्यादिके द्वारा यही कह रहे हैं। *'अतद्वीर्यकोविदा'*—श्रीकृष्णके शुद्ध माधुर्यप्रेमके सिन्धुमें निमग्न होनेके कारण मैया यशोदा

उनके सर्वव्यापक ऐश्वर्यके विषयमें अनभिज्ञ थीं। अथवा *'तद्वीर्य-कोविदा'*, मेरे बालकमें कितनी शक्ति है, यह भलीभाँति जाननेके कारण ही मैयाने उसे बाँधनेकी इच्छा की। मैया जानती थी कि बाँधकर रखनेसे यह गाँठ खोल नहीं पायेगा॥ १२॥

**न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम्।**
**पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्चयः॥ १३॥**

**तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम्।**
**गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा॥ १४॥**

**अन्वयः**—यस्य बहिः न अन्तः न पूर्वं न अपरं च अपि न (जिनका अन्दर-बाहर या आदि-अन्त नहीं है) यः जगतः (जो ब्रह्माण्डके) पूर्वापरं बहिः अन्तः च (पूर्व-पश्चात्, बाहर-भीतर सर्वत्र हैं) [एवं जो] जगच्चयः (जगत्के समष्टिरूप हैं) अधोक्षजं (प्राकृत ज्ञानसे अतीत) अव्यक्तं (अव्यक्त) मर्त्यलिङ्गं (मनुष्य रूपमें प्रकट) तं (उन श्रीकृष्णको) मत्वा आत्मजं (अपना पुत्र मानकर) गोपिका (मैया यशोदाने) प्राकृतं यथा (साधारण बालककी भाँति) दाम्ना (रस्सीके द्वारा) उलूखले बबन्ध (ऊखलसे बाँध दिया)॥ १३-१४॥

**अनुवाद**—सर्वव्यापक होनेके कारण जिनका न बाहर है और न भीतर, न आदि है, न अन्त, जो जगत्से पहले भी थे, बादमें भी रहेंगे, जो सर्वकाल एक ही स्वरूपमें नित्य विराजमान रहते हैं, जो जगत्के कार्य और कारण हैं, जगत्के भीतर एवं बाहर हैं तथा जगत्-स्वरूप हैं, उन अव्यक्त इन्द्रियज्ञानसे अतीत मनुष्याकृति श्रीकृष्णको अपना पुत्र मानकर यशोदादेवीने उन्हें साधारण बालकके समान रस्सीसे ऊखलके साथ बाँध दिया॥ १३-१४॥

**सारार्थदर्शिनी**—ब्रह्मादिस्तम्भपर्यन्तं स्वमायागुणैर्निबध्नन्तमपि सर्वव्यापकमपि महामहेश्वरं तं स्वप्रेमबलादेव पट्टमयदाम्ना बबन्धापीत्याह—न चेति द्वाभ्याम्। बन्धनं हि बहिःपरीतेन दाम्ना आवृतस्य परिच्छिन्नस्य वस्तुनः सम्भवति, यस्य तु विभुत्वाद्बहिर्न विद्यते तत्प्रतियोगित्वादन्तश्च न विद्यते तत्र क्व वा दाम्ना स्थातव्यम्? किंवा, तेनावरीतव्यमिति भावः। सर्वदेशव्यापकत्वमुक्त्वा प्रसङ्गात्

सर्वकालव्यापकत्वमाह—न पूर्वं नापि चापरमिति। यस्मात् प्राक् पश्चात् कालौ न स्त इत्यर्थः। किञ्च, व्यापकेन व्याप्यस्य बन्धो भवति तच्चात्र विपरीतमित्याह—पूर्वापरमिति। जगच्च य इति तच्छक्तिकार्यत्वादित्यर्थः। ततश्च सम्पूर्णेन जगतापि तद्बन्धो न सम्भवेत्, किं पुनर्जगदंशांशभूतेन दाम्नेत्यर्थः। न च साकारत्वेन तस्य विभुत्वं सम्भवेदिति वाच्यं, साकारस्यैव तस्योदरे सर्वजगत इदन्तास्पदस्य यशोदया दृष्टत्वात्। तर्हि सा कथं बबन्ध? तत्राह—तं आत्मजं मत्वा, असाधारण वात्सल्यप्रेमविषयीकृत्वेत्यर्थः। तस्य प्रेमाधीनत्वात् विभुत्वेऽप्यचिन्त्यशक्त्यैव बन्धनमिति भावः। अव्यक्तं प्रेमवश्यत्वादेव प्रच्छन्नीभूतमहैश्वर्यं मर्त्यलिङ्गं मनुष्याकारं तदप्यधोक्षजमतीन्द्रियम्। यथा प्राकृतं बध्नाति, तथैव चित्पुञ्जमपि तं बबन्धेत्यहो प्रेमबलं तस्या इति भावः॥ १३-१४॥

**भावानुवाद—**जो ब्रह्मादि देवताओंसे लेकर तृण तक सभीको अपनी मायारूपी रस्सीके द्वारा बाँधते हैं एवं जो सर्वव्यापक महामहेश्वर हैं, उन्हें यशोदा मैयाने अपने प्रेमके बलसे रस्सीके द्वारा बाँध दिया। इसीका *'न चान्तम्'* आदि दो श्लोकोंमें वर्णन किया जा रहा है। रस्सीके द्वारा परिछिन्न (सीमित) वस्तुका ही बन्धन सम्भव है, किन्तु विभु होनेके कारण जिनका बाहर-भीतर नहीं है, वहाँ रस्सी कहाँ बँधेगी तथा उनका आवरण भी किस प्रकार सम्भव है? सर्वदेश-व्यापकत्व कहकर प्रसङ्गतः सर्वकाल-व्यापकत्व कह रहे हैं। *'न पूर्वं नापि चापरम्'*—जिनका पूर्व नहीं है और अपर भी नहीं है, अर्थात् जो भूत एवं भविष्यसे अतीत, नित्य वर्त्तमान हैं, यह अर्थ है। वास्तवमें व्यापकके द्वारा व्याप्यका बन्धन होता है, परन्तु यहाँ विपरीत हो रहा है, अर्थात् व्याप्यके द्वारा व्यापकको बाँधा जा रहा है। 'पूर्वापरं'—वे जगत्के पूर्व और अपर अर्थात् कार्य और कारण हैं, वे सर्वव्यापक होनेके कारण जगत्के बाहर और भीतर हैं। *'जगच्च यः'*—जगत् उनकी माया शक्तिका ही कार्य होनेके कारण वे जगत्-स्वरूप हैं। अतएव सम्पूर्ण जगत्के द्वारा भी उनका बन्धन सम्भव नहीं है? तब फिर जगत्के अंशके अंश-स्वरूप सामान्य रस्सीसे उनका बन्धन किस प्रकार सम्भव हो सकता है? यदि कहा जाय कि उनके साकार होनेसे उनमें विभुत्व सम्भव नहीं है—ऐसा भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यशोदा मैयाने उनके साकार उदरमें ही परिदृश्यमान सम्पूर्ण जगत्का दर्शन किया था। तब फिर मैयाने

उन्हें कैसे बाँध लिया? इसके उत्तरमें कहते हैं—*'तम आत्मजं मत्वा'*, उन्हें अपना गर्भजात पुत्र मानकर, अर्थात् असाधारण वात्सल्यप्रेमके विषयीभूतकर यशोदा मैयाने उनका बन्धन किया। भगवानने् प्रेमाधीन होनेके कारण विभु होनेपर भी अचिन्त्यशक्तिके द्वारा बन्धनको स्वीकार किया। *'अव्यक्तम्'*—प्रेमके वशीभूत होनेके कारण ही उनका महान ऐश्वर्य छिपा रहता है। *'मर्त्यलिङ्गम्'*—मनुष्याकार होनेपर भी जो *'अधोक्षजम्'* अतीन्द्रिय हैं, अर्थात् प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंके द्वारा अगोचर हैं—यह भावार्थ है। *'यथा प्राकृतम्'* इस जगत्में माताएँ जिस प्रकार अपने बालकोंको बाँध देती हैं, उसी प्रकार मैया यशोदाने भी श्रीकृष्णको रस्सीके द्वारा ऊखलसे बाँध दिया। अहो! मैया यशोदाके प्रेममें कैसा बल है, जो उन्होंने सच्चिदानन्द विग्रह कृष्णको बाँध दिया॥ १३-१४॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—कितने ही योगीन्द्र-मुनीन्द्र जिनका ध्यान करनेपर भी उन्हें ढूँढ़ नहीं पाये, कितने चतुरानन (ब्रह्मा), पञ्चानन (शिव) आदि सर्वदा जिनका स्तुतिगान करते रहते हैं, महाकाल तक जिनके भयसे सर्वदा भयभीत रहता है, ऐसे सर्वेश्वर स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णको मक्खन चोरी और दधिभाण्ड फोड़नेके अपराधके कारण वात्सल्यप्रेमवती यशोदा मैया बायें हाथसे पकड़कर डाँट-डपट रही हैं एवं वे भी जननीके भयसे भयभीत होकर सिर झुकाकर रो रहे हैं।

यशोदा मैयाका वात्सल्यप्रेम एवं यशोदानन्दनकी प्रेमाधीनता—इन दोनों अप्राकृत भावोंके मिलनेसे जिस लीलामाधुर्यका विकास होता है, उसकी तुलना ही नहीं हो सकती। महाप्रलयमें जो अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डोंको चूर्ण करके भी किसीके सामने अपराधी नहीं हुए, एक दहीका मटका फोड़नेके कारण माँ यशोदा उन्हें अपराधी मानकर उन्हें बायें हाथसे पकड़कर डाँट-फटकार लगा रही हैं। केवलमात्र मैया ही उन्हें दधिका मटका फोड़नेके लिए अपराधी मान रही हैं, ऐसा नहीं, अर्थात् श्रीकृष्ण भी अपने किये हुए कार्यके लिए अपनेको अपराधी मान रहे हैं, इसीलिए वे माँ यशोदाकी मारसे डरकर तथा लज्जित होकर उनसे क्षमाके लिए अनुनय-विनय कर रहे हैं। अनन्त

ब्रह्माण्डोंमें कितने ही चतुरानन (ब्रह्मा), पञ्चानन (शिव) आदि जिन्हें स्तुतियोंके द्वारा प्रसन्न करनेका प्रयास करते रहते हैं, उन्हींको यशोदा मैया कह रही हैं—"अरे नटखट! क्रोधी! बन्दरबन्धो! घर लुटानेवाले! मक्खनचोर! आज तुझे दूध, मक्खन आदि कुछ भी खानेको नहीं दूँगी। मैं आज तुझे घरमें बाँधकर रखूँगी, बच्चोंके साथ खेलने नहीं दूँगी तथा तेरे जितने खिलौने हैं, सब ले लूँगी।" यशोदाके ऐसे तिरस्कारयुक्त वचन सुनकर यशोदानन्दन बायें हाथसे नेत्रोंको मलते हुए रुँधे हुए करुण कण्ठसे बोले—*'मातरेवं पुनर्न करिष्यामि'*—"मैया! मैं फिर ऐसा कार्य कभी नहीं करूँगा।"

इस प्रकार कृष्णके बार-बार अनुरोध करनेपर भी मैयाने उन्हें डाँटना बन्द नहीं किया। वे विचार कर रही थीं—अच्छी प्रकारसे शासन नहीं करनेपर इसका नटखट भाव दूर नहीं होगा। इसलिए वे बार-बार छड़ी उठाकर मारनेका भय दिखा रही थीं जिस कारण यशोदानन्दन और भी भयभीत हो रहे थे। उनके अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे निकलकर कपोलोंपर बहनेवाले अश्रुबिन्दु ऐसे सुशोभित हो रहे थे, जैसे नीलकान्त मणिके ऊपर मोतियोंकी लड़ियोंकी शोभा होती है। यशोदानन्दन द्वारा अपने बायें हाथसे नयनोंको मलनेसे उनके नेत्रोंका काजल कपोलों तक फैल गया और बायें हाथमें भी लग गया। वे भयभीत नेत्रोंसे कभी मैयाकी ओर देख रहे थे, तो कभी भूमिपर दृष्टिपात कर रहे थे।

यशोदानन्दनने आज तक कितनी बार चञ्चलता की, कितने दहीके मटके फोड़े और कितने द्रव्योंको नष्ट किया, इसकी कोई गिनती नहीं है, किन्तु माँ यशोदाने आज तक कभी भी उन्हें डाँट-फटकार नहीं लगायी या भय दिखानेके लिए छड़ी हाथमें नहीं उठायी। पुत्रकी चञ्चलता देखकर यशोदा कभी हँसती और कभी मीठी झिड़की लगा देती थीं, परन्तु उन्होंने कभी भी कृष्णपर शासन करनेके लिए हाथमें छड़ी नहीं ली थी। अतएव यशोदानन्दनने भी आज पहली बार ही अपनी जननीको क्रोधित होकर हाथमें छड़ी धारण किये हुए देखा। इसलिए वे भयसे अधीर हो गये एवं बार-बार जननीसे अनुनय-विनय करने लगे—"मैया! मुझे छोड़ दो, मैं अबसे

कभी भी ऐसी दुष्टता नहीं करूँगा।" बार-बार पुत्रके मुँहसे यह सुनकर यशोदा मैया कहने लगीं—

"अरे अबोध नटखट बालक! यदि तुझे मारसे इतना भय लगता है, तो तूने दहीका मटका क्यों फोड़ा?" यह सुनकर यशोदानन्दन कहने लगे—"मैया! मैं फिर कभी भी ऐसा कार्य नहीं करूँगा। तुम अपने हाथसे छड़ी फेंक दो, तुम्हारे हाथमें छड़ी देखकर मुझे भय लग रहा है।" यशोदा मैयाने पुनः कहा—"अरे दुष्ट बालक! तू बार-बार कह रहा है, ऐसा कार्य फिर नहीं करूँगा। ऐसा करना दुष्टता है, यदि तुझे इसका ज्ञान है, तो तू बार-बार ऐसा क्यों करता है? तू सच-सच बता कि तूने दहीका बर्तन क्यों फोड़ा, मैं तुझे कुछ नहीं कहूँगी।" यशोदा मैयाकी इस बातको सुनकर यशोदानन्दन रुँधे हुए स्वरमें कहने लगे—

*त्वय्युद्भटं प्रवदन्त्यामङ्घ्रोः कटक घट्टनात्।*
*अस्फुटिद्दधिमण्डस्य घटः का मम दुष्टता॥*

*कीदृशोऽयमीश निर्दिष्टः प्रविष्टः सद्मसुष्टये।*
*कृष्टः सर्पिः परामृष्टो मया का मम दुष्टता॥*

*तथापि त्वामात्तयष्टिं दृष्ट्वादुद्रुव चौरवत्।*
*त्वं पुनर्मा वृथा भीतमपि दुद्रोह निर्दयम्॥*

(श्रीगोपालचम्पूः)

"मैया! तुम जब मुझे गोदसे उतारकर भूमिपर बैठाकर शीघ्रतापूर्वक जा रही थी, तब तुम्हारे चरणोंके कड़ेके आघातसे दहीका बर्तन टूट गया। इसमें मेरा क्या अपराध है? तत्पश्चात् कुछ बन्दर घरमें प्रवेशकर दही, नवनीत आदि चोरी करके खा रहे थे, मैंने उन्हें भगानेका प्रयास किया तो इसमें मुझसे क्या अपराध हो गया? फिर तुम्हें छड़ी लेकर आती हुई देखकर मैं भी भयभीत होकर भागने लगा। मैया तुम मुझे भयभीत हुआ देखकर भी क्यों डाँट रही हो?"

अपना दोष छिपानेके लिए अपने पुत्रकी इस प्रकारकी प्रखर बुद्धि और युक्तिपूर्ण बातोंको सुनकर यशोदा मैया मन-ही-मन विस्मित होकर कहने लगीं—

*रे वाचोयुक्तिसत्तम, चोरोत्तम! त्वं नरोत्तम,*
*जातोऽपि वानरप्रियो वानर प्रकृतिरेवासि॥*
(श्रीगोपालचम्पूः)

"अरे बातें बनानेमें चतुर! अरे चोरोंके राजा! तू नरश्रेष्ठ गोपराज नन्दका पुत्र होकर भी बन्दरोंका बन्धु और बन्दरके जैसा नटखट स्वभाववाला क्यों हो गया है?"

यशोदाके इस प्रकार फटकारनेसे कृष्ण भयसे अधीर होकर रोने लगे और कहने लगे—*'ततो वनमेव प्रविश्य स्थास्थामि'*—मैया! तुम मुझे छोड़ दो, मैं वनमें जाकर बन्दरोंके साथमें निवास करूँगा, फिर तुम्हारे पास नहीं आऊँगा और मक्खन भी नहीं खाऊँगा। आजसे मैं वनमें ही वास करूँगा।

पुत्रके इन अभिमान-मिश्रित वचनोंको सुनकर यशोदा मैया भयभीत हो गयीं तथा मन-ही-मन विचार करने लगीं—

*को जानीया् कुर्यादपीदं मानी, तर्हि तन्निबन्धनं बन्धनमेव सन्धेयम्।*
*यदेकया मयालय बालयोरवधानं दुर्धानं भविता॥*
(श्रीगोपालचम्पूः)

मेरा यह अभिमानी पुत्र अभिमान करके कहीं वनमें ही न चला जाय। हाय! मैं इसकी रक्षा कैसे करूँ? आज सभी व्रजवासी यज्ञानुष्ठानके लिए गोवर्द्धन चले गये हैं। ऐसे समयमें यदि मेरा पुत्र कहीं चला गया, तो उसे कौन ढूँढ़कर लायेगा? और मैं यदि इसे पकड़कर ही बैठी रहूँगी, तो घरका कोई काम भी नहीं होगा, क्योंकि आज सभी सेविकाएँ इन्द्रयागके लिए गोवर्द्धन गयी हैं। इस प्रकार यशोदा मैयाने बहुत सोच-विचारकर स्थिर किया कि इस अभिमानी नटखट बालकको बाँधकर रखनेसे इसकी रक्षा और घरका काम दोनों हो जायेंगे।

ऐसी भावनाकर वे पुत्रके मुँहकी ओर देखने लगीं। जब उन्होंने देखा कि उनके पुत्रका मुख भय तथा दुःखसे सूख गया है, तो उनका हृदय व्यथित हो उठा। उन्होंने तुरन्त हाथकी छड़ी फेंक दी एवं उसे रस्सीके द्वारा बाँधनकी चेष्टा करने लगीं। माँ यशोदाके वात्सल्यप्रेमके

बन्धनमें यशोदानन्दन चिरकालसे बँधे ही हुए हैं, फिर भी माँ यशोदाने उन्हें बाहरसे बाँधनेका सङ्कल्प किया।

माँ यशोदा उन्हें बाँधने जा रही हैं, जिनकी कोई सीमा नहीं है, जो असीम तथा अनन्त हैं। जब किसी भी सीमा-विशिष्ट वस्तुका उससे अधिक परिमित वस्तुके द्वारा वेष्टन किया जाता है, तो उसीको बन्धन कहा जाता है। परन्तु भगवान्‌का बन्धन कैसे सम्भव है? अनन्त करोड़ ब्रह्माण्ड यदि एकसाथ मिलकर भी उनकी सीमा निर्दिष्ट करना चाहें, तो वे सभी उनके एक लोमकूपमें ही समा जायेंगे। अतएव इन सर्वव्यापक नित्य स्वप्रकाश परमानन्दघन वस्तुका बाहर कहाँ है? जिनसे बाहर किसी भी वस्तुकी कल्पनातक नहीं हो सकती, उनका भीतर भी कैसे सम्भव हो सकता है? किसी भी वस्तुकी अन्तर्सीमाका निर्देशकर, उस सीमासे लेकर मध्यवर्त्ती भाग तक का 'अन्दर' या 'भीतर' रूपमें व्यवहार होता है। परन्तु जिनमें स्वरूप, ऐश्वर्य और माधुर्य—ये तीनों भाव अनन्त हैं, उनमें अन्तर्सीमा नामकी कोई वस्तु ही नहीं हो सकती। अतएव उनका भीतर भी नहीं है और बाहर भी नहीं है—*न चान्तर्न बहिर्यस्य।*

वे देश और काल दोनोंसे ही अपरिच्छिन्न हैं। वे सबके आदि और सबके अन्तमें अवस्थित हैं। उनका कोई आदि या अन्त नहीं है। जो काल संसारकी सृष्टि करता और उसे ध्वंस करता है, जो काल जगत्‌का अद्भुत परिवर्त्तन कराकर सबको आश्चर्यचकित कर देता है, जो काल जगत्‌की सभी वस्तुओंकी उत्पत्तिका कारण है, वह काल भगवान्‌की शक्ति-विशेष है एवं भगवान्‌की इच्छासे ही सभी वस्तुओंकी सीमाका निर्देश करता है। अतः ऐसे कालके द्वारा काल-नियन्ता भगवान्‌की नित्य स्थितिकी सीमाका निरूपण करना सम्भव नहीं है। उनकी नित्य स्थितिसे पहले या पश्चात् कोई काल नहीं है—*न पूर्वं न चापरम्।*

इस प्रकार यशोदानन्दन अचिन्त्य, अनन्त शक्तिसम्पन्न एवं अधोक्षज होते हुए भी नराकृति बाल-गोपालके स्वरूपमें हैं। यशोदा मैया वात्सल्यप्रेमके कारण उन्हें अपना गर्भजात पुत्र समझती हैं और उन्हें दुष्ट या नटखट मानती हैं। उनकी अव्यक्तता और अधोक्षजता

माँ यशोदाकी वात्सल्यप्रेममयी दृष्टिके गोचर नहीं होती है। यशोदा मैयाके विशुद्ध वात्सल्यप्रेम और श्रीभगवान्‌की अचिन्त्य महाशक्तिके मिलनसे सर्वव्यापी, सर्वेश्वर स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी दाम-बन्धन-लीला सम्पन्न हुई है। यशोदा मैयाने वात्सल्यप्रेमके प्रभावसे उन असीम और अनन्त प्रभुको रस्सीसे बाँध दिया तथा कृष्णने भी अपनी अचिन्त्य महाशक्तिके प्रभावसे असीम होकर भी सीमामें आकर भक्तवात्सल्य गुणका परिचय दिया है॥ ११-१४॥

**तद्दामबध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः।**
**द्व्यङ्गुलोनमभूत्तेन सन्दधेऽन्यच्च गोपिका॥ १५॥**

**अन्वयः**—गोपिका (मैया यशोदाके द्वारा) स्वार्भकस्य कृतागसः (अपने अपराधी बालकको) बध्यमानस्य (बाँधते समय) तत् दाम (बाँधनेकी रस्सी) द्व्यङ्गुलोनं अभूत् (दो अङ्गुली छोटी पड़ गयी) तेन (इस कारण) [उन्होंने] अन्यत् च (उसमें दूसरी रस्सी) सन्दधे (जोड़ दी)॥ १५॥

**अनुवाद**—जब यशोदा मैया अपने नटखट और अपराधी पुत्रको बाँधने लगीं, तब बाँधनेकी रस्सी दो अँगुली छोटी पड़ गयी। तब मैयाने उसके साथ दूसरी रस्सी जोड़ दी॥ १५॥

**सारार्थदर्शिनी**—प्रेम्णा सम्भविष्यत्यपि तस्य बन्धने प्रथमं तदाकारस्य मातृक्रोडपरिच्छिन्नस्यापि विभुत्वमाह त्रिभिः—तद्दामेति। सहचरैः सह खेलनं, परगृहेषु दधिचौर्यं चावश्यकं प्रात्यर्हिकं कृत्यं चिकीर्षोर्मम बन्धनं मा भवत्विति तदिच्छायां जातायां मत्प्रभुं का बध्नीयादिति तदीयसत्यसङ्कल्पता-शक्त्या प्रेरिता विभुताशक्तिः सहसैव तद्देहे प्रादुरभूदित्याह—द्व्यङ्गुलोनं द्वाभ्यामङ्गुलीभ्यामपूर्णम्। ततश्च तेन दाम्ना सह अन्यद्दाम सन्दधे ग्रन्थिं दत्वा जुगुम्फेत्यर्थः॥ १५॥

**भावानुवाद**—प्रेमके द्वारा श्रीकृष्णका बन्धन सम्भव होनेपर भी, उनके बन्धनका वर्णन करते समय पहले यह दिखा रहे हैं कि यद्यपि माताकी गोद परिच्छिन्न (सीमित) थी, परन्तु उनकी गोदमें स्थित कृष्णका स्वरूप विभु ही था। 'तद्दाम' इत्यादि तीन श्लोकोंमें श्रीकृष्णके विभुत्वका वर्णन कर रहे हैं। सखाओंके साथ क्रीड़ा एवं

दूसरोंके घरोंमें दहीकी चोरी आदि आवश्यक प्रतिदिनके कार्य करनेकी इच्छासे श्रीकृष्णके मनमें ऐसी इच्छा जागृत हुई—"मैया मुझे न बाँध पाये", उनके इस प्रकार इच्छा करनेके साथ ही, "कौन मेरे प्रभुका बन्धन कर सकता है?"—इस प्रकार उनकी सत्य-सङ्कल्पता शक्तिके द्वारा प्रेरित विभुताशक्ति सहसा ही श्रीकृष्णकी देहमें प्रादुर्भूत हो गयी। 'तद्दामवध्यमानस्य' द्वारा इसे ही कह रहे हैं, अर्थात् अपराध करनेवाले अपने पुत्रको बाँधनेके लिए मैयाने जो रस्सी ग्रहण की, *'द्व्यङ्गुलोनम्'*—वह दो अङ्गुलि कम हो गयी। तब उन्होंने उस रस्सीके साथ दूसरी रस्सी जोड़ी॥ १५॥

**यदाऽसीत् तदपि न्यूनं तेनान्यदपि सन्दधे।**
**तदपि द्व्यङ्गुलं न्यूनं यद्यदादत्त बन्धनम्॥ १६॥**

**अन्वयः**—[किन्तु] यत् (जोड़ी गयी रस्सी भी) तत् अपि द्व्यङ्गुलं न्यूनं आसीत् (दो अङ्गुल छोटी रह गयी) तेन अन्यत् अपि सन्दधे तत् अपि द्व्यङ्गुलं न्यूनं (पुनः दूसरी रस्सी जोड़नेपर वह भी उसी प्रकार दो अङ्गुल छोटी रह गयी) एवं यत् यत् बन्धनं आदत्त (इस प्रकार वह जितनी भी रस्सियाँ जोड़तीं, वे सभी दो अङ्गुल कम रह जातीं)॥ १६॥

**अनुवाद**—वह रस्सी भी दो अङ्गुल छोटी पड़ गयी। पुनः उसके साथ दूसरी रस्सी जोड़ी। वह भी उसी प्रकार छोटी पड़ गयी। इस प्रकार यशोदा मैया जितनी भी रस्सियाँ लाकर जोड़ती गयीं, वे सारी-की-सारी दो-दो अङ्गुल छोटी पड़ती गयीं॥ १६॥

**सारार्थदर्शिनी**—बद्ध्यतेऽनेनेति बन्धनं दाम॥ १६॥

**भावानुवाद**—*'बन्धनम्'*—जिसके द्वारा बन्धन होता है, वह बन्धन अर्थात् रस्सी। (इस प्रकार मैया जितनी भी रस्सियाँ जोड़ रही थीं, वे सभी दो अङ्गुल कम पड़ती जा रही थीं)॥ १६॥

**एवं स्वगेहदामानि यशोदा सन्दधत्यपि।**
**गोपीनां सुस्मयन्तीनां स्मयन्ती विस्मिताभवत्॥ १७॥**

**अन्वयः**—एवं (इस प्रकार) स्वगेहदामानि (अपने घरकी सभी रस्सियाँ) सन्दधती अपि यशोदा (जोड़कर भी कृष्णको बाँधनेमें मैया यशोदाके असमर्थ होनेपर) गोपीनां स्मयन्ती (निकटस्थ गोपियाँ हँसने लगीं) [एवं यशोदा भी] सुस्मयन्तीनां (हँसते-हँसते) विस्मिता (अतिशय विस्मित) अभवत् (हो गयीं)॥ १७॥

**अनुवाद**—यशोदा मैया अपने घरकी सारी रस्सियाँ जोड़कर कृष्णको बाँधनेका भरपूर प्रयास कर रहीं थीं, फिर भी वे अपने पुत्रको बाँध न सकीं। यह देखकर पड़ोसकी गोपियाँ हँसने लगीं और यशोदा मैया भी हँसती हुई आश्चर्यचकित हो गयीं॥ १७॥

**सारार्थदर्शिनी**—गोपीनां गोपीषु प्रतिवेशि-पुरन्ध्रीषु सुस्मयमानासु सतीषु विस्मितेत्यहो मुष्टिपरिमितमस्योदरं शतहस्तपरिमितेन दाम्नापि न वेष्ट्यते। तत्रोदरं तिलमात्रमपि न विपुलीभवति, दामाप्यङ्गुलिमात्रमपि न न्यूनीभवति, तदपि वेष्टनं न पूर्यत इत्येको विस्मयः। प्रतिवारमेव वेष्टने द्व्यङ्गुलन्यूनतैव, न तु त्र्यङ्गुल-चतुरङ्गुलादि न्यूनतेति द्वितीयश्च विस्मयः॥ १७॥

**भावानुवाद**—*'गोपीनां सुस्मयन्तीनाम्'*—पड़ोसकी गोपियाँ यह देखकर हँसने लगीं। यशोदा मैया भी हँसते-हँसते अत्यन्त विस्मयमें डूब गयीं। विस्मयका कारण कह रहे हैं—इस बालकका मुट्ठीभरका उदर सौ हाथ लम्बी रस्सीसे भी बाँधा नहीं गया। उदर तिलमात्र भी बढ़ नहीं रहा है तथा रस्सी भी अङ्गुलिमात्र भी कम नहीं हो रही है, अपितु लम्बी होती जा रही है, फिर भी इस बालकका उदर बँध नहीं रहा है—यह पहला विस्मय है। बँधनके समय रस्सी प्रत्येक बार दो अङ्गुल ही कम हो रही है, कभी भी तीन या चार अङ्गुल कम नहीं हो रही है—यह दूसरा विस्मय है॥ १७॥

**स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकवरस्रजः।**
**दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयासीत् स्वबन्धने॥ १८॥**

**अन्वयः**—[तदनन्तर परिश्रमवशतः] स्वमातुः (अपनी मैयाकी) स्विन्नगात्रायाः (पसीनेसे लथपथ देह) विस्रस्त-कवरस्रजः (केशबन्धनमें स्थित स्खलित होती पुष्पमाला) [एवं] परिश्रमं दृष्ट्वा (अत्यन्त

क्लान्तिको देखकर) कृष्णः कृपया स्वबन्धने आसीत् (कृष्णने कृपापूर्वक स्वयं ही बन्धन स्वीकार कर लिया)॥ १८॥

**अनुवाद**—अत्यधिक परिश्रमसे यशोदा मैया पसीनेसे लथपथ हो गयीं। उनकी चोटीमें गुँथी हुई मालाएँ गिर रही थीं। तब माताको बहुत थकी हुई देखकर श्रीकृष्णने कृपापूर्वक स्वयं ही बन्धन स्वीकार कर लिया॥ १८॥

**सारार्थदर्शिनी**—ततश्चाहो मणिमयानतिदीर्घकिङ्किणीवेष्टितावलग्नस्यास्य गृहस्थितसर्वदामभिरपि यद्बन्धनं न निष्पाद्यते, तदस्य शुभं यत् बालकस्य ललाटपत्रे विधात्रा बन्धनं न लिखितमित्यनुमीयते तदित उद्यमात्, *"प्रियसखि यशोदे! विरम्यतां"* इति पुरन्ध्रीजनप्रबोधितयापि यशोदयाद्य सन्ध्यापर्यन्तमप्येतद्ग्राम-स्थैरपि दामभिर्ग्रथितैरेतदुदरस्यावधिरधिजिगमिषणीय इति प्रौढवादवत्या पुत्राभिमत्या परमेश्वरबन्धनोद्यमे ह्यपरित्यक्ते सति भक्तभगवतोर्मध्ये भक्तहठ एव तिष्ठेदित्यतो मातुः श्रममालक्ष्य मातृवत्सलो भगवानेव स्वहठं तत्त्याजेत्याह—स इति। स्वमातुरिति च पाठः कृपयेति सर्वशक्तिचक्रवर्तिनी परमभास्वती कृपाशक्तिरेव भगवच्चित्तं नवनीतमिव विद्रुतीकृत्य तत्र स्वयं प्रादुर्भूय पूर्वोद्भूते सत्यसङ्कल्पता-विभुताशक्ती तत्र सहसैवान्तर्धापयामासेत्यर्थः। अत्र परिश्रममिति कृपयेत्येताभ्यां द्व्यङ्गुलन्यूनता-समाहिता भक्तनिष्ठा भजनोत्था, श्रान्तिस्तद्दर्शनोत्था, स्वनिष्ठा कृपा चेति द्वाभ्यामेव भगवान् बद्धो भवेत्। ते द्वे यावन्नाभूतां तावद्द्व्यङ्गलन्यूनता आसीत्। तयोरुद्भूतयोस्तु बद्धोऽभूदिति प्रेम्णा स्वबन्धनप्रकारः स्वमातरि स्वयमुदाहृतो भगवतेति ज्ञेयम्॥ १८॥

**भावानुवाद**—[उस समय पड़ोसमें रहनेवाली अन्य गोपियाँ कहने लगीं—]"अहो! इस बालककी कमरमें छोटी-सी मणिमय किङ्किणी (करधनी) बँधी हुई है, किन्तु घरकी सारी रस्सियाँ जोड़कर भी जो इस बालकका बन्धन सम्भव नहीं हुआ, यह इस बालकका शुभलक्षण है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि विधाताने इसके ललाटपर बन्धन नहीं लिखा है। अतएव हे प्रियसखि यशोदे! अब इसे बाँधनेकी चेष्टा बन्द कर दो।" पड़ोसकी गोपियोंके इस प्रकार समझानेपर मैया यशोदा कहने लगीं—"आज प्रातःकालसे लेकर सन्ध्या तक इस गाँवकी सभी रस्सियोंको जोड़कर इस बालककी उदरकी कितनी सीमा है अर्थात् इसका उदर कितना बड़ा है, मैं यह जानना चाहती हूँ।" इस प्रकार सुदृढ़ वचनोंके द्वारा श्रीकृष्णमें पुत्र अभिमानवती

मैया यशोदाने जब परमेश्वरको बाँधनेका प्रयास नहीं छोड़ा, तो "भक्त और भगवान्‌में परस्पर हठ ठन जानेपर भक्तके हठका ही सम्मान रहता है"—इस रीतिके अनुसार माताके परिश्रमको देखकर मातृवत्सल भगवान्‌ने अपनी हठ परित्याग कर दी। इसके लिए कह रहे हैं—*'स मातुः'*—माताका परिश्रम देखकर, यहाँ *'स्वमातुः'*—इस पाठान्तरमें कृष्णका स्नेह ही अधिक बतलाया गया है। उस समय 'कृपया' अर्थात् समस्त शक्तियोंमें जो श्रेष्ठ शक्ति है—उस परमोज्ज्वला कृपाशक्तिने भगवान्‌के चित्तको नवनीतकी भाँति विगलित करके स्वयं ही प्रादुर्भूत होकर पूर्व-उदित सत्यसङ्कल्पता और विभूतिशक्तिको तत्क्षणात् अन्तर्धान कर दिया। यहाँ 'परिश्रम' और 'कृपा'—इन दोनोंके द्वारा दो अङ्गुल रस्सीकी न्यूनताका समाधान किया गया है। भक्तका भजनजनित परिश्रम एवं उसे देखकर भगवान्‌की कृपा—इन दोनोंसे ही भगवान् बँध जाते हैं। ये दोनों जब तक पूर्ण नहीं थे, तब तक दो अङ्गुलियोंकी न्यूनता थी, इन दोनोंके पूर्ण होनेके साथ ही भगवान् बँध गये। इसके द्वारा भगवान्‌ने स्वयं ही अपने बन्धनका उपाय अपनी मैयाको बतलाया—यह समझना होगा॥ १८॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—वात्सल्यप्रेमवती यशोदा मैयाने अपने नटखट पुत्रको शासन करने और भय दिखानेके लिए उसे डोरीसे बाँधनेका सङ्कल्प किया। माँ यशोदाका हृदय वात्सल्यप्रेमसे परिपूर्ण है। वे कभी भी अपने पुत्रको दुःख देना नहीं चाहती हैं। परन्तु आज वे कृष्णके हितके लिए उन्हें शासन करनेमें प्रवृत्त हुई हैं। नटखट पुत्रको बाल्यकालमें यथायोग्य शासन न करनेसे क्रमशः वह अधिक नटखट हो जायेगा, जिससे लोक समाजमें निन्दाका पात्र बन जायेगा। इसलिए पुत्रको शासन करना नितान्त आवश्यक है—ऐसा विचारकर माँ यशोदा श्रीकृष्णको डाँटने लगीं तथा हाथमें छड़ी लेकर भय दिखाने लगीं। परन्तु फिर यह सोचकर कि इसे डाँटकर छोड़ देनेसे कहीं दुःख और अभिमानके कारण यह भाग न जाय, इसलिए उन्होंने चोटी बाँधनेकी डोरीसे उन्हें बाँधनेका प्रयास किया, क्योंकि ऐसा करनेसे वे निश्चिन्त होकर घरका काम कर सकती थीं।

वात्सल्यप्रेमवती यशोदा मैयाके द्वारा श्रीकृष्णको बाँधकर रखनेका सङ्कल्प भी उनके वात्सल्यप्रेमका ही विलास है एवं श्रीकृष्णके हितकी अभिलाषासे पूर्ण है। माँ यशोदाके द्वारा प्रदत्त यह बन्धन श्रीकृष्णने भी अति आदरपूर्वक ग्रहण किया एवं इसकी पवित्र स्मृति बनाये रखनेके लिए आज भी वे 'दामोदर' नामसे प्रसिद्ध हैं।

वात्सल्यप्रेममयी यशोदा मैयाने श्रीकृष्णको कहा—

*रे चौर! चञ्चल! विलोल विलोचनश्री।*
*निक्षिप्त मोह! मानुषे न निवारणं नः॥*

*बद्धा भवन्तमहमाशु चलामि गेहं।*
*शक्तिर्यदि प्रथयतां कुरु चौर्यमन्यत्॥*

(श्रीगोपालचम्पूः)

"अरे चोर! अरे नटखट! तू अपनी नयन शोभाके द्वारा सर्वत्र ही मोहका सञ्चार करता है, किन्तु मेरी बात नहीं सुनता है। आज तुझे बाँधकर ही मैं घरके कार्य करूँगी। यदि तेरी शक्ति है, तो बन्धनसे मुक्त होकर प्रसन्नतासे चोरी कर।"

यह कहकर यशोदा मैयाने अपने सिरकी कवरीसे पट्टडोरी खोलकर उसे श्रीकृष्णके उदरमें बाँधनेका प्रयास किया। हरिवंशमें भी वर्णन है—*"दाम्ना चैवोदरे बद्धा प्रत्यबन्धदुद्खले।"*

यशोदा मैयाने श्रीकृष्णके उदरको बाँधकर उस रस्सीको ओखलके साथ बाँध दिया। यशोदा मैयाने श्रीकृष्णके उदरको बाँधा था, इसलिए श्रीकृष्ण 'दामोदर' नामसे प्रसिद्ध हैं। कुछ लोगोंकी धारणा यह है कि यशोदा मैयाने श्रीकृष्णका हाथ बाँध दिया था, परन्तु यह धारणा निर्मूल है, क्योंकि यदि ऐसा होता, तो उनका नाम 'दामोदर' न होकर 'दामकर' होता।

यशोदा मैयाके द्वारा पट्टडोरीको श्रीकृष्णके उदरमें लपेटनेपर वह दो अङ्गुल कम रह गयी। तब उन्होंने उससे एक अन्य रस्सी जोड़ी, परन्तु वह भी दो अङ्गुल कम रह गयी। इस प्रकार वे जितनी रस्सियाँ जोड़ती गयीं, वे सब केवल दो अङ्गुल छोटी होती गयीं। अतः सिद्धान्त यह है कि भक्तके साधनका परिश्रम और भगवान्‌की कृपा—इन दोनोंके नहीं होनेसे भगवान्‌को बाँधा नहीं जा सकता।

मैयाका परिश्रम देखकर श्रीकृष्ण जब करुणासे द्रवित हो गये, तब उनकी ऐश्वर्यशक्ति वहाँसे अन्तर्धान हो गयी और श्रीकृष्ण प्रथम रस्सीसे ही अर्थात् सिरकी कवरीकी डोरीसे ही बँध गये॥ १८॥

**एवं सन्दर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भृत्यवश्यता।**
**स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे॥ १९॥**

**अन्वयः**—अङ्ग (हे महाराज परीक्षित्!) सेश्वरं (महेश्वर सहित) इदं यस्य वशे (सम्पूर्ण विश्व जिनके वशीभूत है) स्ववशेन (उन्हीं स्वतन्त्र) हरिणा कृष्णेन एवं (भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार) भृत्यवश्यता (अपनी भक्ताधीनता) सन्दर्शिता (प्रकाशित की)॥ १९॥

**अनुवाद**—हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण परम स्वतन्त्र हैं। ब्रह्मा, शिव और इन्द्र आदिके साथ यह सम्पूर्ण जगत् उनके वशीभूत है। फिर भी इस प्रकार बँधकर उन्होंने जगत्को यह दिखला दिया कि वे अपने प्रेमीभक्तोंके वशीभूत रहते हैं॥ १९॥

**सारार्थदर्शिनी**—भगवतः परमपारमैश्वर्ये सत्यपि प्रेमवश्यता-निबन्धनं बन्धनमिदं परमचमत्कारित्वाद्भूषणमेव न तु दूषणमित्याह—एवं हरिणा स्वस्य आत्मारामत्वेऽपि बुभुक्षया, पूर्णकामत्वेप्यतृप्त्या, शुद्धसत्वस्वरूपत्वेऽपि कोपेन, स्वराज्यलक्ष्मीमत्वेऽपि चौर्येण, महाकालयमादिभयदत्वेऽपि भयपलायनाभ्यां, मनोऽग्रयानत्वेऽपि मात्रा बलाद्-ग्रहणेन, आनन्दमयत्वेऽपि दुःखरोदनेन, सर्वव्यापकत्वेऽपि बन्धनेन भक्तवश्यता स्वाभाविक्येव स्वस्य सम्यक् दर्शिता। अज्ञान् प्रतिदर्शनाय उपयोगाभावात् ब्रह्मभव-सनत्कुमारादीन् विज्ञानमप्यतिचमत्कारं प्रापयानुभावितेति नेदमनुकरणमात्रत्वेन व्याख्येयम्, *"दर्शयंस्तद्विदां लोके आत्मनो भक्तवश्यताम्"* (श्रीमद्भा॰ १०/११/९) इत्यत्र तद्विदामिति प्रयोगादिति भावः। स्ववशेन स्वाधीनेनापि। ननु, तर्हि कुतः स्वाधीनत्वं? तत्राह—यस्येति। चिच्छक्तिसारभूतेन प्रेम्णैव तस्यानन्दातिशयार्थमेव भक्तवश्यत्वं निष्पाद्यत इति प्राक् प्रपञ्चितम्॥ १९॥

**भावानुवाद**—श्रीभगवान्के अतुलनीय ऐश्वर्यके विद्यमान रहनेपर भी प्रेमवश्यताके कारण उनका यह बन्धन परम चमत्कारपूर्ण भूषण ही है, दूषण नहीं। इसे ही *'एवं हरिणा'* द्वारा कह रहे हैं—इस प्रकार श्रीहरि आत्माराम होकर भी बुभुक्षा (भोक्ता), पूर्णकाम होकर भी अतृप्त, शुद्धसत्त्व-स्वरूप होकर भी कोप करते हैं, स्वयं सर्वैश्वर्यसे

परिपूर्ण होकर भी चोरी करते हैं तथा महाकाल और यम आदिके भय-प्रदाता होकर भी भयभीत होकर भागते हैं। मनके अग्रगामी अर्थात् मनकी गतिसे भी अधिक गतिवान होकर भी जननीके द्वारा बलपूर्वक पकड़ लिये जाते हैं, आनन्दमय होकर भी दुःखसे रोते हैं एवं सर्वव्यापक होकर भी बन्धन स्वीकार करते हुए अपनी स्वाभाविकी भक्तवश्यताको भलीभाँति प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार उन्होंने अज्ञ लोगोंके प्रति प्रदर्शनकी कोई उपयोगिता नहीं रहनेपर भी, विज्ञ ब्रह्मा, शिव एवं सनत्कुमार आदिको अतिशय चमत्कारिताका अनुभव कराया। श्रीकृष्णने अनुकरणमात्र किया था—ऐसी व्याख्या भी असङ्गत है, क्योंकि *"दर्शयन् तद्विदां लोके आत्मनो भक्तवश्यताम्"* (श्रीमद्भा० १०/११/९), अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण जगत्में ऐश्वर्य ज्ञानपरायण ब्रह्मा आदि भक्तोंको अपनी भक्त-अधीनता दिखलाकर बाल-सुलभ लीलासे व्रजवासियोंका आनन्द वर्धन करते हैं। *'स्ववशेन'*—वे स्वाधीन होकर भी भक्तवश्यता स्वीकार करते हैं। यदि कहो कि ऐसा होनेपर उनकी स्वाधीनता किस प्रकार रह सकती है? तो इसके उत्तरमें कह रहे हैं—*'यस्येदम्'* अर्थात् ईश्वरों सहित यह सम्पूर्ण विश्व जिनके वशीभूत है, ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण चित्-शक्तिके सार-स्वरूप प्रेमके द्वारा अतिशय आनन्दित होनेके लिए स्वयं भक्तवश्यताको स्वीकार करते हैं॥ १९॥

**नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।**
**प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात्॥ २०॥**

**अन्वयः**—गोपी (मैया यशोदाने) विमुक्तिदात् (जगत्के मुक्तिदाता श्रीकृष्णसे) यत् तत् प्रापः (जो अनुग्रह प्राप्त किया) विरिञ्चः न (ब्रह्मा) भवः (शिव) [एवं] न अङ्ग संश्रया (सर्वदा भगवान्की अर्द्धाङ्ग-विलासिनी) श्रीः (लक्ष्मीजीको भी) अपि इमं प्रसादं (वह अनुग्रह) न लेभिरे (प्राप्त नहीं हुआ)॥ २०॥

**अनुवाद**—ग्वालिनी यशोदाने जगत्के मुक्तिदाता श्रीकृष्णसे जैसा अनुग्रह प्राप्त किया था, वैसा अनुग्रह पुत्र होनेपर भी ब्रह्मा, आत्मीय

होनेपर भी महेश्वर, यहाँ तक कि सर्वदा भगवान्‌की अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मीदेवी भी प्राप्त नहीं कर सकी॥ २०॥

**सारार्थदर्शिनी—**भक्तवश्यस्य तस्य भक्तेष्वपि मध्ये व्रजेश्वर्या आधिक्यमपार-वश्यत्वातिशयदर्शनेन सरोमाञ्चमाह—नेममिति। विशिष्टा मुक्तिः विमुक्तिः प्रेमा तत्प्रदादपि कृष्णात् यत् प्रसादं गोपी श्रीयशोदा प्राप, तत् तं प्रसादं विरिञ्चो भवः श्रीरपि न लेभिरे न लेभिरे न लेभिरे इत्यन्वयः। नञ् त्रयेण लेभिरे इत्यस्य त्रिरावृत्त्या प्राप्त्यभावातिशय उक्तः। यद्वा विरिञ्चो भवः श्रीरपि प्रसादं न लेभिरे, अपि तु प्रसादं लेभिरे एव, किन्तु गोपी यं प्रसादं प्राप, इमं न लेभिरे इत्यन्वयः। विरिञ्चः पुत्रोपि *"स आदिदेवो जगतां परो गुरुः"* (श्रीमद्भा॰ २/९/५) इत्युक्तेः भक्तानामादिगुरुरपि, भवः स्वात्मापि *"वैष्णवानां यथा शम्भु"* (श्रीमद्भा॰ १२/१३/१६) इत्युक्तेस्ततोप्युत्कर्षवानपि, श्रीर्जायापि अङ्गसंश्रयत्वेन सख्यभक्तिरसवत्वात् दासाभ्यां ताभ्यामुत्कर्षवत्यपि यस्याः सकाशात् प्रेम्णा न्यूना एव सा यशोदा साधनसिद्धा पूर्वजन्मनि ब्रह्मदत्तवरा धरा आसीदिति महानेवान्यायः। न हि ब्रह्मणो वरदानलभ्यमेतादृशं प्रेमसौभाग्यं भवितुमर्हति, स ब्रह्मापि *"तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्याम्"'* (श्रीमद्भा॰ १०/१४/३४) इति प्रार्थयमानोऽस्या न्यूनातिन्यूनकक्षायामेव गण्यत इत्यतः श्रुतिस्मृत्यागमप्रसिद्धे नित्यसिद्धे एव नन्दयशोदे त्वया ज्ञेये। *"नन्दः किमकरोद्ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम्।* यशोदा च*"* (श्रीमद्भा॰ १०/८/४६) इत्यल्पविमर्शे त्वदीय-प्रश्ने मयापि स्वल्पप्रायं *"द्रोणो वसूनां प्रवर"* (श्रीमद्भा॰ १०/८/४८) इति तदेकांशाश्रयं प्रत्युत्तरं दत्तमिति भावः॥ २०॥

**भावानुवाद—**भक्तोंके वशीभूत रहनेवाले श्रीभगवान्‌की व्रजदेवी यशोदाके प्रति अतिशय वशीभूतता देखकर पुलकित होकर श्रीशुकदेव गोस्वामी कह रहे हैं—*'नेमम्'* इत्यादि। *'विमुक्तिदात्'*—विमुक्ति अर्थात् विशेष रूपसे मुक्ति अर्थात् प्रेम, उन प्रेमप्रदाता श्रीकृष्णसे जो कृपा गोपी यशोदाने प्राप्त की, वह कृपा ब्रह्मा, शिव यहाँ तक कि लक्ष्मीदेवी भी प्राप्त नहीं कर सकीं, प्राप्त नहीं कर सकीं, प्राप्त नहीं कर सकीं। यहाँ श्लोकमें तीन बार 'न' शब्दका प्रयोग होनेसे 'लेभिरे' इसकी भी तीन बार आवृत्तिके द्वारा प्राप्तिके अतिशय अभावको सूचित किया गया है।

अथवा—ब्रह्मा, शिव और लक्ष्मीदेवी भी अनुग्रह प्राप्त नहीं कर सके, ऐसा नहीं है, अर्थात् उन्होंने अनुग्रह प्राप्त किया, किन्तु गोपी यशोदाने जैसा अनुग्रह (मुक्तिदाताके द्वारा भी बन्धनरूपी भक्तवश्यता)

प्राप्त किया, वैसा अनुग्रह प्राप्त नहीं कर सके। *'विरिञ्चः'*—ब्रह्मा भगवान्‌के पुत्र हैं एवं भक्तोंके आदिगुरु हैं। जैसा कि कहा गया है—*"स आदि देवो जगतां परो गुरुः"* (श्रीमद्भा० २/९/५) अर्थात् ब्रह्मा जगत्‌के परमगुरु (भक्ति रहस्यके उपदेष्टा) हैं, ब्रह्माको तत्त्वज्ञान भगवान्‌की कृपासे ही प्राप्त हुआ है। भवः—महेश्वर भगवान्‌के आत्मीय हैं। जैसा कि कहा गया है—*"वैष्णवानां यथा शम्भुः"* (श्रीमद्भा० १२/१३/१६) अर्थात् वैष्णवोंमें जैसे शम्भु श्रेष्ठ हैं। 'श्रीः'—लक्ष्मीदेवी श्रीभगवान्‌की पत्नी एवं अङ्गाश्रिता होनेके कारण सख्य-भक्तिरसयुक्ता हैं, इसलिए पूर्वोक्त (ब्रह्मा-शिव) दोनों दास भक्तोंसे श्रेष्ठ होनेपर भी वे लक्ष्मीदेवी प्रेममें जिनसे न्यूना हैं, वह यशोदादेवी पूर्व जन्ममें ब्रह्माजीसे वर प्राप्त करनेवाली साधनसिद्धा धरा थीं—ऐसा कहना भी असङ्गत है, क्योंकि ब्रह्माजीके वरदानसे कभी भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकता। इसका कारण है कि ब्रह्माजी स्वयं ही प्रार्थना कर रहे हैं—*"तद्भूरि भाग्यमिह जन्म किमप्यटव्याम्"* (श्रीमद्भा० १०/१४/३४)—इस मनुष्य-लोकमें, उसमें भी वृन्दावनमें, उसमें भी जिन्होंने गोकुलमें जन्म ग्रहण किया, वे ही परम भाग्यवान हैं, क्योंकि गोकुलमें जन्म होनेपर किसी-न-किसी गोकुलवासीकी पदरजमें अभिषिक्त होनेकी सम्भावना है। अतः वे ब्रह्माजी यशोदादेवीसे न्यूनातिन्यून अर्थात् बहुत नीचेकी कक्षामें परिगणित होते हैं। अतएव श्रुति, स्मृति और आगम पुराणमें प्रसिद्ध नन्द और यशोदा—दोनों नित्यसिद्ध हैं। स्वयं परीक्षित् महाराजने श्रीशुकदेव गोस्वामीसे प्रश्न किया—"नन्द महाराजने ऐसा कौन-सा महापुण्यजनक मङ्गल कार्य किया था और महाभागा यशोदाने भी ऐसा कौन-सा पुण्य कर्म किया था।" (श्रीमद्भा० १०/८/४६), इसके उत्तरमें श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—वसुश्रेष्ठ द्रोण और उनकी पत्नी धराने अपनी कठोर तपस्याके फलस्वरूप नन्द-यशोदाके एकांशका आश्रय ग्रहण किया था—यही भावार्थ है॥ २०॥

**नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।**
**ज्ञानिनाञ्चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह॥ २१॥**

**अन्वयः**—अयं भगवान् गोपिकासुतः (ये यशोदानन्दन भगवान् श्रीकृष्ण) इह (इस जगत्में) यथा (जिस प्रकार) भक्तिमतां (भक्तोंको) सुखापः (सुलभ हैं) [उस प्रकार] देहिनां (देहाभिमानी तपस्वी) आत्मभूतानां (आत्मदर्शी) [एवं] ज्ञानिनां (ज्ञानियोंको) न (सुलभ नहीं हैं)॥ २१॥

**अनुवाद**—गोपिकासुत (यशोदानन्दन) भगवान् श्रीकृष्ण भक्तोंके लिए जिस प्रकारसे सुलभ हैं, देहाभिमानी तपस्वियों अथवा आत्मदर्शी ज्ञानियोंके लिए वे उस प्रकारसे सुलभ नहीं हैं॥ २१॥

**सारार्थदर्शिनी**—किञ्च, श्रीभागवतेऽस्मिन् भगवत्प्रेमैव सर्वपुरुषार्थशिरोमणित्वेनोद्घुष्यते, तस्य मूलभूताश्रयाणां भक्तानां मध्ये नित्यसिद्धत्व एव तस्य नित्यस्थितिः सम्भवेत्, तेष्वपि मध्ये गोकुलवर्तिनस्तन्मात्रादय एव श्रेष्ठाः, येषां वात्सल्यादिभावविषयीभूतः कृष्णस्तदनुगमन-भक्तिमद्भिरेव सुलभो नान्यैरित्याह—नायमिति। अयं गोपिकासुतो न सुखापः। केषां? देहिनां देहाध्यासवतां; ज्ञानिनां देहाध्यासरहितानां आत्मारामभक्तानां, तथाभूतत्वे सत्येव प्राप्तियोग्यतायां निषेधसम्भवात्; आत्मभूतानां पूर्वश्लोकनिर्दिष्टानां विरिञ्चभवश्रियां, तत्र विरिञ्चभवयोः स्वावतारत्वेन लक्ष्म्याः स्वरूपशक्तित्वेनात्मभूतत्वं; एवं त्रिविधजनानां गोपिकासुतो भगवान्न सुखापः। किं तदिति विकुण्ठ-कौसल्यादिसुत एव दुःखमेवाभिव्यञ्जयति। यथा इह श्रीयशोदायामेतदुपलक्षितेषु वात्सल्यसख्यकान्तभावाश्रयेषु व्रजलोकेषु या भक्तिः, *"स्त्रियः उरगेन्द्रभोगभुजदण्ड"* (श्रीमद्भा॰ १०/८७/२३) इत्यादिना, यथा *"त्वल्लोकवासिन्य"* इत्यादिना च व्यञ्जिता। श्रुत्यादिभिरनुगतिमयी तद्वतां यथा सुखापस्तथा नेति, तेन गोपिकाद्यनुगतिमय-स्वन्यूनता-दुःखाङ्गीकारस्तु विरिञ्चि-भव-लक्ष्म्यादिभिरीश्वराभिमानिभिः स्वस्व-लोकस्थितैर्दुःशक्य एव, अन्येषान्तु तादृशोपदेशस्यालाभादरोचकत्वाद्वा तदनुगत्यभाव एवेति भावः। अत्र सुखाप-दुष्प्रापशब्दाभ्यां प्राप्त्यप्राप्ती एवोच्यते इति केचिदाहुः॥ २१॥

**भावानुवाद**—श्रीमद्भागवतमें भगवत्-प्रेम ही समस्त प्रकारके पुरुषार्थोंमें शिरोमणिके रूपमें उद्घोषित हुआ है। उस प्रेमके मूलभूत आश्रय भक्तगण हैं। उनमेंसे नित्यसिद्ध भक्तोंके हृदयमें ही उस प्रेमकी नित्यस्थिति सम्भव है। उन नित्यसिद्ध भक्तोंमें भी गोकुलवासी श्रीकृष्णकी माता आदि ही श्रेष्ठ हैं, जिनके वात्सल्य आदि भावोंके विषयीभूत श्रीकृष्ण उनके लिए ही सुलभ हैं, दूसरोंके लिए नहीं। इसे ही *'नायम्'* इत्यादिके द्वारा कह रहे हैं। *'अयं गोपिकासुतः'*—ये

यशोदादुलाल सुलभ नहीं हैं। किसके लिए सुलभ नहीं हैं? इसके उत्तरमें कह रहे हैं—*'देहिनाम्'* अर्थात् देहाभिमानी व्यक्तियोंके लिए, देहके प्रति अभिमानरहित ज्ञानियोंके लिए तथा आत्माराम भक्तोंके लिए सुलभ नहीं हैं। इस प्रकारकी प्राप्तिकी योग्यता रहनेपर भी निषेधकी सम्भावनासे कह रहे हैं—*'आत्मभूतानाम्'*, पूर्व श्लोकमें निर्दिष्ट हुआ है कि ब्रह्मा, शिव और लक्ष्मीदेवीके लिए भी सम्भव नहीं हैं। उनमेंसे ब्रह्मा और शिव उनके अवतारके रूपमें एवं लक्ष्मीदेवी स्वरूपशक्तिके रूपमें उनके आत्मभूत हैं। इस प्रकार इन तीन जनोंके लिए भी गोपिकासुत भगवान् श्रीकृष्ण सुलभ नहीं हैं। यहाँ तक कि महानारायण और भगवान् श्रीरामचन्द्रके भक्तोंके लिए भी वे सुलभ नहीं हैं, यही प्रकाशित होता है। *'यथा इह'*—जिस प्रकार इन यशोदादेवीका वात्सल्यप्रेम दुर्लभ है, उसी प्रकार ही वात्सल्य, सख्य और कान्ताभावके आश्रित व्रजजनोंकी भक्ति भी सुलभ नहीं है। जैसे—*"स्त्रियः उरगेन्द्र-भोगभुजदण्ड"* (श्रीमद्भा० १०/८७/२३) अर्थात् जो रमणियाँ सर्पराजकी देहके समान आपके भुजदण्ड-युगलके प्रति लालसावशतः परिच्छिन्न दृष्टिसम्पन्ना हैं, वे एवं आपके चरणकमलोंको सुष्ठु रूपसे धारण करनेवाली अपरिच्छिन्न दृष्टिसम्पन्ना हम (श्रुतियाँ) आपके लिए समान रूपसे कृपापात्री हैं। एवं *"यथा त्वल्लोक वासिन्यः"*—जैसे आपके लोकनिवासी इत्यादिके द्वारा व्रजलोककी भक्ति ही प्रकाशित हुई है। अतएव श्रुति आदि भी जिस भक्तिका अनुगमन करती हैं, जो उस भक्तिका आनुगत्य करते हैं अर्थात् जो व्रजभावके अनुगत भक्त हैं, उनके लिए ये यशोदादुलाल जिस प्रकार सुलभ हैं, उस प्रकार दूसरोंके लिए सुलभ नहीं हैं। उसमें भी व्रजगोपियोंके आनुगत्यमें अपनी न्यूनतारूप दुःखको अङ्गीकार करना ईश्वराभिमानी ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी आदिके लिए अपने-अपने लोकोंमें अवस्थानपूर्वक दुःसाध्य ही है। किन्तु दूसरोंके लिए ऐसे उपदेशकी अप्राप्ति अथवा अरोचकता (अरुचि) ही व्रजजनोंके आनुगत्यके अभावका कारण है—यह भावार्थ है। यहाँ सुखाप और दुष्प्राप शब्दोंके द्वारा प्राप्ति और अप्राप्तिका ही वर्णन हुआ है—कोई-कोई ऐसा कहते हैं॥ २१॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति—**परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामीने महाराज परीक्षित्‌के निकट अखिल-ब्रह्माण्ड-भाण्डोदर स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णकी दामोदर-लीलाका वर्णन किया है। श्रीभगवान्‌के भक्तवश्यता गुणकी स्फूर्ति होनेपर आत्मविभोर होकर जगत्‌में इन गुणोंकी घोषणा करनेके लिए उन्होंने महाराज परीक्षित्‌को प्रेमपूर्वक सम्बोधन करते हुए कहा—"महाराज! भगवान्‌के भक्तवश्यता गुणके विषयमें अधिक क्या कहूँ! भगवान्‌ने माँ यशोदाके बन्धनमें आबद्ध होकर अतिशय भक्तवश्यता गुणका परिचय दिया है।" इस लीलामें आदिसे अन्त तक केवल श्रीकृष्णकी भक्तवश्यता गुणका ही पूर्ण विकास हुआ है। *"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"* आदि श्लोकोंकी चर्चा करनेपर श्रीकृष्णकी स्वयं भगवत्ताके विषयमें किसीके हृदयमें किसी भी प्रकारका सन्देह नहीं रह सकता। किन्तु उनकी भक्तवश्यता गुणका सामञ्जस्य करना बहुत कठिन है। भगवान्‌ने अपने नित्यसिद्ध पार्षदोंके साथ विशुद्ध प्रेमकी लीला करते हुए जगत्‌में भक्तवश्यता गुणकी घोषणा की है।

स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णकी पूतना-वध, विश्वरूप-प्रदर्शन आदि लीलाओंको सुनकर किसीके हृदयमें सन्देह उत्पन्न नहीं हो सकता। भगवान्‌की सर्वेश्वरता, सर्वशक्तिमत्ता आदि गुणोंको देखकर ऐश्वर्यमयी लीलाओंका सामञ्जस्य हो जाता है, परन्तु दामोदर-लीलामें उन्होंने जो कुछ प्रदर्शित किया है, उसका समाधान भक्तवश्यता गुणके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारसे नहीं हो सकता। जो केवल भगवान्‌के स्वरूप और ऐश्वर्यभावमें ही डूबे हुए हैं, वे कभी भी माधुर्यभावकी लीलाओंके तत्त्वको समझ नहीं सकते। इसलिए परम करुणानिकेतन श्रीयशोदानन्दनने इस माधुर्य-लीलाको प्रकाशितकर माधुर्य-रससे चिर-वञ्चित योगी, ज्ञानी एवं ऐश्वर्यज्ञानमिश्र भक्तोंके भगवत्-स्वरूप एवं ऐश्वर्यज्ञानसे चिर-शुष्क हृदयमें भक्तवश्यता गुणकी मन्दाकिनी-धाराको प्रवाहित किया है।

*इतीदृक् स्वलीलाभिरानन्द कुण्डे*
*स्वघोषं निमज्जन्तमाख्यापयन्तं।*
*तदीयेशितज्ञेषु भक्तैर्जितत्वं*
*पुनः प्रेमतस्तं शतावृत्ति वन्दे॥*

(पद्मपुराणीय दामोदराष्टकम्)

श्रीभगवान्‌ने अपनी दामोदर-लीलामें व्रजवासियोंको आनन्दसमुद्रमें निमज्जित किया है एवं अपने स्वरूप एवं ऐश्वर्यज्ञान-परायण योगी, ज्ञानी एवं ऐश्वर्यज्ञाननिष्ठ भक्तोंके निकट अपने भक्तवश्यता गुणकी घोषणा की है।

जिन भगवान्‌के चरणकमलोंका भजन करके योगीन्द्रगण आत्मारामता प्राप्त करते हैं एवं भूख-प्याससे अतीत हो जाते हैं, ऐसे आत्मारामोंके भी परमाराध्य आत्माराम-शिरोमणि स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण भूखसे पीड़ित होकर माँ यशोदाका स्तनपान करनेके लिए लालायित रहते हैं, नित्यतृप्त होकर भी माँ यशोदाके स्तनपान द्वारा सदा अतृप्त ही रहते हैं एवं शुद्धसत्त्व विग्रह होकर भी माँ यशोदाके स्तनपानसे वञ्चित होनेपर क्रोधित हो जाते हैं। समस्त सम्पदाओंकी अधिष्ठातृदेवी लक्ष्मीदेवी भी जिनके चरणकमलोंकी सेवाका अधिकार पानेके लिए तपस्या करती हैं, वे मक्खनकी चोरी करते हैं एवं जिनसे स्वयं महाकाल भी भयभीत रहता है, वे यशोदा मैयाके भयसे भयभीत होते हैं। वे सर्वव्यापी होकर भी भागते हैं, साक्षात् आनन्दस्वरूप होकर भी रोते हैं एवं अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डोंके आश्रय होकर भी यशोदाके बन्धनमें आबद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार भगवान्‌में परस्पर विरोधी धर्मोंका समावेश है—*"अणोरणीयान् महतो महीयान्"*—उनमें अणुत्व और महत्त्व दोनों ही देखा जाता है। जैसे कि—

*अवर्णः सर्वतः प्रोक्तः श्यामो रक्तान्त लोचनः।*
*ऐश्वर्ययोगाद्भगवान् विरुद्धार्थोऽभिधीयते॥*

(कूर्मपुराण)

श्रीभगवान् अवर्ण अर्थात् श्याम-पीतादि वर्णविहीन होकर भी श्यामवर्ण एवं कमललोचन हैं। उनके अचिन्त्य ऐश्वर्यके कारण उनमें इन परस्पर विरुद्ध धर्मोंका समावेश एवं सामञ्जस्य सहज ही हो जाता है।

श्रीभगवान्‌की लीलाएँ एवं उनका लीलाविग्रह यदि प्राकृत जीवोंकी भाँति मायिक एवं अनित्य होता, तो परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेव गास्वामी अनगिनत राजर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि एवं महर्षियोंके समक्ष भगवान्‌की लीलाओंका वर्णन करते समय परमानन्दमें विभोर

नहीं होते। वास्तवमें भगवान्‌की लीलाओंमें ही उनका सर्वाधिक यथार्थ स्वरूप एवं गुण प्रकाशित होता है एवं लीलागत समस्त प्रकारके विरुद्ध धर्मोंका सामञ्जस्य उनकी अचिन्त्यशक्तिके बलसे ही होता है। अतः उनकी लीलाओंमें विरुद्ध-धर्मोंका समावेश देखकर उसे मायिक, प्रातीतिक या काल्पनिक आदि नहीं मानना चाहिये। वे अचिन्त्य अनन्त ऐश्वर्य-माधुर्यके समुद्र हैं—ऐसा समझनेसे समस्त विरोधोंका समाधान हो जाता है। महाराज परीक्षित्‌के प्रश्नके उत्तरमें श्रीशुकदेव गोस्वामीने द्रोण-धराका वर्णनकर नन्द-यशोदाके जन्मान्तरीय पुण्यका वर्णन किया है। तत्पश्चात् उनका और कोई प्रश्न न होनेपर श्रीशुकदेव गोस्वामीने कृष्ण-जननी यशोदादेवीके विशुद्ध वात्सल्यप्रेमका परिचय प्रदान करनेके लिए स्वयं ही दामबन्धन-लीलाका वर्णन किया है।

नित्यसिद्ध वात्सल्यप्रेममयी यशोदा मैयाने स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णका जो सेवा-अधिकार प्राप्त किया है, वह सामान्य जीवकी बात तो दूर रहे ब्रह्मा, शिव और लक्ष्मीदेवीके लिए भी कल्पनातीत है। ब्रह्माने भगवान्‌के नाभि-कमलसे जन्म-ग्रहणकर उन्हींसे अष्टादशाक्षर गोपाल-मन्त्रका उपदेश पाकर, उन्हींके ही नाभि-कमलमें बैठकर जप करते हुए सिद्धि प्राप्त की एवं वैकुण्ठधामका दर्शन किया। उसके पश्चात् भगवान्‌की करुणासे ही ब्रह्मा वेदज्ञान और सृष्टिशक्ति प्राप्त करके ब्रह्माण्डके सृष्टिकर्त्ता हुए। वे गोपालमन्त्रके उपासकों और वेदोक्त कर्म, ज्ञान आदिके अनुष्ठानकारियोंके आदि गुरु हैं, क्योंकि उन्होंने ही सर्वप्रथम भगवान्‌से गोपालमन्त्र एवं वेद प्राप्त किये। इस प्रकार गोपालमन्त्र एवं वेद आदि उनकी ही परम्पराक्रमसे जगत्‌में आये हैं। ब्रह्माजीने अनेक प्रकारसे भगवान्‌की कृपा प्राप्त की है, परन्तु माँ यशोदाने जैसे भगवान्‌की जननी होकर पुत्रके रूपमें उनका लालन-पालन आदि करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है, वह ब्रह्माजीके लिए कल्पनामें भी सम्भव नहीं है।

किसी-किसी कल्पमें कोई जीव तीव्र साधनाकर ब्रह्मा-पद लाभ करते हैं एवं कभी किसी कल्पमें भगवान् ही ब्रह्माके रूपमें अवतीर्ण होकर सृष्टि कार्य करते हैं।

*क्वचित् क्वचिन्महाकल्पे ब्रह्म जीवोऽप्युपासनैः।*
*कदाचिच्च महाविष्णुर्ब्रह्मत्वं प्रतिपद्यते॥*

(स्कन्दपुराण)

इस प्रकार ब्रह्मा भगवान्‌के गुणावतार, शिव भगवान्‌की अभिन्न मूर्त्ति एवं लक्ष्मी भगवान्‌की नित्य प्रेयसी है, परन्तु यशोदा मैयाका सेवाधिकार इन सबसे बहुत श्रेष्ठ है। विशेषकर जो भगवान्‌को सर्वेश्वर जानकर ऐश्वर्यभावसे उनका भजन करते हैं, वे भी भगवान्‌की सेवा प्राप्त करते हैं, परन्तु व्रजके गोप-गोपियोंकी भाँति शुद्ध प्रेमसेवा प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

यद्यपि ब्रह्मा, शिव एवं लक्ष्मी आदि कर्म, ज्ञान, योग, तपस्या आदि साधन नहीं करते या भुक्ति, मुक्ति, सिद्धिकी भी कोई कामना नहीं करते एवं उनकी कृपासे जगत्‌के लोग भुक्ति, मुक्ति, सिद्धि प्राप्त करते हैं, परन्तु वे स्वयं-भगवान्‌की सेवाप्राप्तिका लोभ त्याग नहीं पाते हैं। इसलिए ब्रह्मा चार मुँखोंसे तथा शिव पाँच मुँखोंसे श्रीकृष्णका गुणगान करते रहते हैं। लक्ष्मीदेवी तो देवताओंकी उपास्या होकर भी नारायणकी सेवाका त्याग नहीं करती हैं। परन्तु व्रजके गोप-गोपियों जैसी सेवा-प्राप्ति उनके लिए भी दुर्लभ है, क्योंकि वे व्रजके गोप-गोपियोंकी भाँति ऐश्वर्य गन्ध-विहीन विशुद्ध ममतामय प्रेमके द्वारा नन्दनन्दनके साथ सम्बन्ध स्थापन नहीं कर पातीं हैं। इस विशुद्ध भावपर व्रजके गोप-गापियोंका ही एकाधिकार है। उनके आनुगत्यके बिना कोई भी इस व्रजभावको प्राप्त नहीं कर सकता।

जो भगवान्‌के सर्वविध ऐश्वर्यको भूलकर केवलमात्र उनके लीलामाधुर्यसे आकृष्ट होते हैं, वे ही नन्दनन्दनकी सेवामें अधिकार प्राप्त कर सकते हैं।

*न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।*
*न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥*

(श्रीमद्भा० ११/१४/२०)

भगवान्‌ने उद्धवसे कहा—हे उद्धव! अष्टाङ्ग-योग, ज्ञान, वेदाध्ययन, तपस्या, त्याग आदि साधनोंके द्वारा कोई भी मुझे प्राप्त नहीं कर

सकता। मैं तो केवल विशुद्ध प्रेमवान भक्तोंकी प्रेमभक्तिके द्वारा ही सुलभ होता हूँ।

अतएव विशुद्ध वात्सल्यप्रेमवती यशोदामाताने अपने विशुद्ध वात्सल्यप्रेमके बलपर प्रेमाधीन भगवान्‌की प्रेमसेवाका जो अधिकार प्राप्त किया है, वह ब्रह्मादिके लिए भी दुर्लभ और अगम्य है॥ १९-२१॥

**कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः।**
**अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ॥ २२॥**

**अन्वयः**—[तदनन्तर] मातरि (मैया यशोदाके) गृहकृत्येषु (अन्य गृहकार्योंमें) व्यग्रायां (व्यस्त होनेपर) प्रभुः कृष्णः पूर्वं (सर्व-समर्थवान् श्रीकृष्णने पूर्व जन्ममें) गुह्यकौ (देवयोनि-विशेषमें उत्पन्न) [एवं] अर्जुनौ (इस जन्ममें अर्जुन-वृक्षके रूपमें उत्पन्न) धनदात्मजौ (कुबेरके पुत्रोंको) अद्राक्षीत् (देखा)॥ २२॥

**अनुवाद**—इसके उपरान्त माता यशोदा घरके कामोंमें व्यस्त हो गयीं। तब ओखलीसे बँधे हुए मुक्तिप्रदाता भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुन-वृक्षोंके रूपमें परिणत हुए यक्षराज कुबेरके दोनों पुत्रोंकी ओर देखा॥ २२॥

**सारार्थदर्शिनी**—भक्तैर्बद्धस्याप्यन्यमोचकत्वं वक्तुमाह—कृष्णस्त्विति॥ २२॥

**भावानुवाद**—भक्तोंके बन्धनमें आबद्ध दामोदर दूसरोंके मुक्तिदाता हैं। इस प्रसङ्गको कहनेके लिए श्रीशुकदेव गोस्वामी *'कृष्णस्तु'* इत्यादि द्वारा नवीन लीलाकी अवतारणा कर रहे है॥ २२॥

**पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात्।**
**नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ॥ २३॥**

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ब्रह्मसूत्रभाष्ये पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे उलूखलबन्धनं नाम नवमोऽध्याय॥ ९॥**

**अन्वयः**—तौ (ये दोनों) पुरा (पूर्व जन्ममें) नलकूबर-मणिग्रीवौ इति ख्यातौ (नलकूबर और मणिग्रीवके नामसे प्रसिद्ध थे) [किन्तु] श्रिया अन्वितौ (अत्यन्त ऐश्वर्यसम्पन्न होनेके) मदात् (गर्वके कारण) नारद शापेन (नारद मुनिके अभिशापसे) वृक्षतां प्रापितौ (वृक्षयोनिको प्राप्त हो गये)॥ २३॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके नवम अध्यायका अन्वयः समाप्त।

**अनुवाद**—ये पूर्वजन्ममें नलकूबर एवं मणिग्रीव नामसे विख्यात थे। अपने सौभाग्य एवं सौन्दर्यके कारण ये अत्यन्त अभिमानी थे। इनके गर्वके कारण नारद मुनिने इन्हें वृक्षयोनि प्राप्त करनेका अभिशाप दे दिया था॥ २३॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके नवम अध्यायका श्लोकानुवाद समाप्त।

**सारार्थदर्शिनी—**

ऋणित्वादेव बद्धोऽहं मात्रा तदनृणीभवन्।
किं कुर्वे इति संचिन्त्य मोचयत्तत् पुरद्रुमौ॥ २३॥

इति सारार्थदर्शिन्यां हर्षिण्यां भक्तचेतसाम्।
दशमे नवमोऽध्यायः सङ्गतः सङ्गतः सताम्॥

इति श्रीमद्भागवत-दशमस्कन्धे श्रीविश्वनाथचक्रवर्ति-ठक्कुर-कृता नवमोऽध्यायस्य सारार्थदर्शिनी-टीका समाप्ता॥ ९॥

**भावानुवाद**—मैं ऋणी होनेके कारण ही माताके द्वारा बद्ध हुआ हूँ, परन्तु ऋणसे मुक्त होनेके लिए मैं क्या करूँ—यह विचार करके श्रीकृष्णने सामने स्थित दोनों अर्जुन-वृक्षोंको मुक्त किया॥ २३॥

इस प्रकार दशम-स्कन्धके नौवें अध्यायकी सज्जन-सम्मत भक्तचित्त-आनन्ददायिनी 'सारार्थदर्शिनी' टीका समाप्त।

इस प्रकार श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके नवम अध्यायकी श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर विरचित सारार्थदर्शिनी टीकाका भावानुवाद समाप्त।

**भावप्रकाशिकावृत्ति—**इस प्रकार परमहंसचूड़ामणि श्रीशुकदेव गोस्वामीने श्रीकृष्णकी दामबन्धन-लीलाका वर्णन करते हुए श्रीकृष्णकी प्रेमाधीनता एवं माता यशोदाके प्रेमके प्रभावका वर्णन किया। वे अब परवर्त्ती लीलाका वर्णन करनेमें प्रवृत्त हो रहे हैं।

वात्सल्यप्रेमवती यशोदा मैयाने पहले श्रीकृष्णकी कमरपर रस्सी लपेटकर उससे उनकी पीठपर गाँठ लगा दी। तत्पश्चात् उस रस्सीसे ओखलको भी पीछेसे बाँध दिया, जिससे बालकृष्ण हाथ बढ़ाकर उसे खोल न सकें। इस प्रकार कृष्णको बाँधकर यशोदा मैया मन-ही-मन यह सोचकर निश्चिन्त हो गयीं कि अब यह चञ्चल बालक कहीं भाग नहीं सकता और इस बन्धनके भयसे फिर कभी मक्खनकी चोरी भी नहीं करेगा। अब मैया यह भी सोचने लगीं कि अभी तक इसने कुछ खाया नहीं है, इसे भूख लग गयी होगी, अतः इसके लिए भोजनकी व्यवस्था करनी होगी। अभी तक घरका सारा काम पड़ा हुआ है तथा आज घरमें दासियाँ भी नहीं हैं। ऐसा विचारकर वे घर आयी हुई गोपियोंसे बोलीं—चलो, अब हमलोग अपना-अपना काम करें। इसे इसी प्रकार बँधा रहने दो। यशोदा मैयाका आदेश पाकर इच्छा न रहनेपर भी गोपियाँ जाने लगीं। तब यशोदा कृष्णको भय दिखाती हुई कहने लगी—*"यदि शक्नोषि गच्छ त्वचरे चञ्चल चेष्टितम्।"* (विष्णुपुराण) "अरे चञ्चल बालक! मैं तुझे बाँधकर जा रही हूँ, यदि तुझमें शक्ति है, तो इस बन्धनको खोलकर मक्खन चुरानेके लिए जा।"

यह कहकर वे अन्तःपुरमें प्रवेशकर घरके कामोंमें मन लगाने लगीं। घर आयी हुई गोपियाँ भी यशोदा माताके भयसे एक-एककर चली गयीं और जाते समय कृष्णको उपदेश देकर गयीं—"नीलमणि! फिरसे कभी मक्खन नहीं चुराना और दहीके मटके मत फोड़ना।"

जिनके मायाजालमें अनन्त ब्रह्माण्डोंके बहिर्मुख जीव अनादि कालसे बद्ध हैं, जिनकी कृपा डोरसे अनन्त ब्रह्माण्ड और वैकुण्ठके भक्तवृन्द चिरकालसे बँधे हुए हैं तथा जिनके चरणाश्रयमात्रसे ही जीवोंका भवबन्धन खुल जाता है, वे सर्वेश्वर सर्वनियन्ता श्रीहरि माँ यशोदाकी डोरीके बन्धनमें बँधकर नन्दभवनके उस निर्जन स्थानमें बैठे

हैं तथा सैंकड़ों प्रयास करके भी उस बन्धनसे मुक्त नहीं हो पा रहे हैं। माँ यशोदाके वहाँसे चले जानेके बाद कृष्णके सखा गोप-बालक भी धीरे-धीरे उनके निकट उपस्थित हुए। तब श्रीकृष्ण उनसे कहने लगे—"अरे सखाओ! तुमलोग यदि थोड़ा-सा प्रयास करो, तो मैं बन्धनसे मुक्त हो सकता हूँ। मेरी मैयाने ओखलके साथ मेरा उदर बाँध दिया है। वहाँ तक मेरा हाथ नहीं पहुँच रहा है। तुम पीछे जाकर ओखलका बन्धन खोल दो, तब मैं उदरका बन्धन खोलकर तुम्हारे साथ बाहर जाऊँगा तथा मुझे बाँधनेके लिए जो-जो गोपियाँ अपने-अपने घरोंसे रस्सियाँ लेकर आयी हैं, उनके घरोंमें जाकर सारा मक्खन चुराऊँगा और जितने भी मटके हैं, उन सबको फोड़ डालूँगा।"

श्रीकृष्णकी बात सुनकर सखा धीरे-धीरे ओखलके पीछे जाकर यशोदा मैयाके आगमनकी आशङ्कासे भयभीत होकर बार-बार घरके भीतरकी ओर देखते हुए रस्सीकी गाँठको खोलनेका प्रयास करने लगे। परन्तु बहुत प्रयास करके भी वे रस्सीको खोल नहीं सके। तब वे श्रीकृष्णसे कहने लगे—"कन्हैया! मैयाका बन्धन बड़ा कठोर है, हम किसी भी प्रकारसे इसे खोल नहीं पा रहे हैं।" श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान होकर भी भक्तकी इच्छाके विरुद्ध कुछ नहीं करते, ऐसा ही उनका नित्य स्वभाव है।

उसी समय श्रीकृष्णकी दृष्टि आँगनके एक ओर स्थित दो अर्जुन-वृक्षोंपर पड़ी। तभी उनकी सर्वज्ञताशक्तिने उन्हें स्मरण दिला दिया—"हे दामोदर! ये दोनों अर्जुन-वृक्ष आपकी कृपा पानेके लिए देव परिमाणसे एक सौ (३६,०००) वर्षोंसे अपनी भुजाओंको उठाकर तपस्वियोंकी भाँति खड़े हैं। ये पूर्व जन्ममें कैलाशपति शङ्करके अनुचर कुबेरके पुत्र थे। उस समय इनका नाम नलकूबर और मणिग्रीव था। इन्होंने धनमदमें मत्त होकर आपके प्रियभक्त नारदमुनिके चरणोंमें अपराध किया था, जिसके फलस्वरूप नारदजीने इन्हें शाप दिया था। उसी शापके फलसे इन्होंने आपके आँगनके इस भागमें अर्जुन-वृक्षोंके रूपमें जन्म लिया है। तबसे ये सर्दी-गर्मी, आँधी-तूफान आदि विभिन्न

कष्टोंका भोग कर रहे हैं। यदि इनके प्रति आपकी कृपादृष्टि हो जाय, तो ये बन्धनसे मुक्त हो जायेंगे।"

स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण व्रजवासी गोप-गोपियोंके प्रेममें मत्त होकर प्राकृत बालककी भाँति अल्पबुद्धिसम्पन्न होकर लीला करते हैं। सर्वज्ञकी इस प्रकारकी अज्ञताकी लीला बड़ी ही मधुर है। तब आँगनमें स्थित अर्जुन-वृक्षोंकी ओर सर्वज्ञताशक्ति-समन्वित कृपा कटाक्षपात करके भगवान् दामोदरने मन-ही-मनमें विचार किया कि इन कुबेर-पुत्रोंका अवश्य ही उद्धार करना होगा। तब उन्होंने उन्हें बन्धनसे मुक्त करनेके लिए उनकी ओर जाना चाहा। इसके लिए वे अपने घुटनों और हाथोंके बलपर ओखलको खींचनेका प्रयास करने लगे, परन्तु खींच नहीं पाये। तब वे अपने सखाओंसे कहने लगे—"सखाओ! आगेसे मैं ओखलको खींचता हूँ, पीछेसे तुमलोग धक्का लगाओ। इस प्रकार हम इसे खींचते हुए सामने स्थित दोनों वृक्षोंके बीचमें ले जाते हैं तथा जब यह दोनों वृक्षोंके बीचमें फँस जायेगा, तो मैं दूसरी ओर निकलकर इसे जोरसे खीचूँगा, जिससे इसकी रस्सी टूट जायेगी।" यह सुनकर गोप-बालक पीछसे ओखलको ढकेलने लगे तथा कृष्ण आगेसे घुटनों एवं हाथोंके बलपर उसे खींचने लगे।

वात्सल्यप्रेमवती यशोदा मैयाने भगवान्के उदरको रस्सीसे बाँध दिया, इसलिए वे बन्धनके कष्टको अनुभवकर कुबेरके पुत्रोंके उद्धारके लिए आगे बढ़ने लगे। अर्थात् जीव भगवान्की मायाके पाशमें आबद्ध होकर कितनी दुःसह यातनाएँ भोग करते हैं, आज स्वयं ही माँ यशोदाके बन्धनमें बँधनेपर कृष्ण बन्धनका मर्म समझ रहे हैं। इसीलिए कुबेर-पुत्रोंका बन्धन देखकर उनका हृदय द्रवित हो गया तथा उन्हें बन्धनसे मुक्त करनेके लिए वे उत्कण्ठित हो गये। भगवान् अपने भक्तोंके बन्धनमें रहकर भी जगत्का बन्धन खोलते हैं। वे यदि भक्तके बन्धनमें आबद्ध नहीं होते, तो जगत्के जीव कभी भी मायाके बन्धनसे मुक्त नहीं हो पाते, क्योंकि भक्तोंकी रक्षाके लिए ही वे युग-युगमें इस जगत्में अवतीर्ण होते हैं एवं धर्म-स्थापन आदि

करते हैं। उन्होंने अपने भक्तचूड़ामणि ब्रह्माके हृदयमें वेदज्ञानका सञ्चारकर विविध साधन-पद्धतियोंका जगत्में प्रचार किया, जिससे कि उनका अवलम्बनकर जीव भगवान्को प्राप्त कर सकें। अतएव भक्तिबाध्य एवं भक्तबद्ध भगवान् ही जीवोंकी एकमात्र गति हैं। इस प्रकार माँ यशोदाके बन्धनमें आबद्ध दामोदरने कुबेरके पुत्रोंको बन्धनसे मुक्तकर भक्तप्रदत्त बन्धनके गौरवको प्रकाशित किया॥ २२-२३॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके नवम अध्यायकी भावप्रकाशिकावृत्ति समाप्त।

# दसवें अध्यायकी कथाका सार

इस दसवें अध्यायमें यमलार्जुन-भञ्जनका रहस्य तथा यमालार्जुन वृक्षोंसे बाहर निकलकर दिव्य देहधारी कुबेरके दोनों पुत्रोंके द्वारा कृष्णकी स्तुतिका वर्णन हुआ है।

रुद्रके अनुचर होते हुए भी कुबेरके दोनों पुत्र ऐश्वर्यके मदमें मत्त होकर एकदिन मन्दाकिनीके तटपर निर्वस्त्र होकर स्त्रियोंके साथ विहार कर रहे थे। उसी समय भ्रमण करते हुए देवर्षि श्रीनारद वहाँपर उपस्थित हुए। किन्तु वे दोनों ऐश्वर्यके मदमें इतने उन्मत्त थे कि देवर्षिको देखकर भी उन्हें कोई ज्ञान नहीं हुआ। ऐश्वर्यके मदसे उनके ज्ञानचक्षु नष्ट हो गये थे। ऐश्वर्य ही समस्त अनर्थोंका मूल है। ऐश्वर्याभिमानी अजितेन्द्रिय व्यक्ति साधुओंकी भी उपेक्षा कर देते हैं। ऐसे ऐश्वर्यके मदमें मत्त लोगोंके लिए दरिद्रता ही परम अञ्जन-स्वरूप है। दरिद्र व्यक्तियोंमें अभिमान कुछ कम रहता है, जिस कारण वे दूसरोंके सुख-दुःखमें सहानुभूतियुक्त होते हैं तथा साधुओंके कृपापात्र होते हैं। दरिद्रताका कष्ट इन्द्रियोंको संयम करनेका उपाय है। अतः महाभागवत श्रीनारद ऋषिने विचार किया कि कुबेरके इन दोनों पुत्रोंके लिए आच्छादित-चेतन स्थावर वृक्ष-देह प्राप्त करना ही अच्छा होगा। अतः उन्होंने कुबेरके पुत्रोंको वृक्षयोनि प्राप्तिका अभिशाप प्रदान कर दिया तथा साथ ही उन्हें यह भी बता दिया कि देवताओंके एक-सौ वर्ष पश्चात् उनकी इस शापसे मुक्ति होगी। कृपामय वैष्णवोंका दण्ड भी जीवके लिए कल्याणजनक ही होता है। अतः वैष्णवोंका दण्ड दया ही है, जीव हिंसा नहीं। देवर्षि नारदके शापसे उन दोनोंका गोकुलमें यमलार्जुन वृक्षोंके रूपमें जन्म हुआ। श्रीनारद ऋषिकी कृपासे उनकी पूर्व स्मृति जागरूक थी। देवताओंके एक-सौ वर्ष पश्चात् अपने प्रिय भक्तकी वाणीको सत्य करनेके लिए बाल्यलीलामें ओखलसे बँधे हुए ही भगवान्‌ने उन दोनों वृक्षोंको उखाड़ दिया। उन वृक्षोंसे दिव्य देहधारी कुबेरके पुत्रोंने बाहर

निकलकर सर्वकल्याण-विधाता सर्वेश्वर श्रीकृष्णकी परम तत्त्वपूर्ण वाक्योंसे स्तुति की। तत्पश्चात् अपने प्रति देवर्षि नारद द्वारा शाप प्रदानरूप अनुग्रहका ज्ञापनकर उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके निकट भक्त और भगवान्के प्रति रति (अनुराग) की प्रार्थना की। भगवान्ने भी उनके समक्ष भक्त-माहात्म्य एवं भक्तोंकी कृपासे भगवान्के दर्शनकी प्राप्तिका वर्णन किया। तब कुबेरके दोनों पुत्र श्रीकृष्णकी तीन बार परिक्रमा करके उत्तर दिशाकी ओर चले गये।

# दशमोऽध्यायः

## यमलार्जुनका उद्धार

**श्रीराजोवाच—**

**कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम्।**
**यत्तद् विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः॥ १॥**

**अन्वयः**—श्रीराजा उवाच—(महाराज परीक्षित्ने श्रीशुकदेव गोस्वामीसे कहा—) हे भगवन् (हे मुनिवर!) तयोः (उन दोनों कुबेर पुत्रोंके) शापस्य एतत् कारणं कथ्यतां (शापका कारण वर्णन करें) [एवं] यत् विगर्हितं कर्म (उन दोनोंके द्वारा किये गये निन्दनीय कर्मका) तत् वा (वर्णन करें) येन (जिस कर्मके कारण) देवर्षेः (परम भागवत होकर भी नारद मुनिको) तमः (क्रोध उत्पन्न हुआ)॥ १॥

**अनुवाद**—महाराज परीक्षित्ने पूछा—हे भगवन्! कृपया यह बतलाइये कि देवर्षि नारदने उन दोनों कुबेर पुत्रोंको किस कारणसे शाप दिया? उन्होंने ऐसा कौन-सा निन्दित कर्म किया था, जिससे परम शान्त देवर्षि नारदजी भी क्रोधित हो गये थे॥ १॥

### सारार्थदर्शिनी टीका

कुबेरात्मजयोः शापःकथाप्रोक्ता पुरातनी।
तद्विमोचयिता कृष्णस्ताभ्यास्तु दशमे स्तुतः॥

तयोर्विगर्हितं यत् कर्म येन वा कर्मणा देवर्षेरपि तमः क्रोध एतत्तयोः शापस्य कारणं कथ्यतामित्यन्वयः॥ १॥

**भावानुवाद**—इस दशम अध्यायमें कुबेरके दोनों पुत्रोंके पूर्व जन्मके अभिशापका कारण तथा उनके द्वारा अपने विमुक्ति-दाता श्रीकृष्णकी स्तुतिका वर्णन किया गया है॥ १॥

हे भगवन्! *'तद्विगर्हितं'*—उन कुबेर पुत्रोंने ऐसा कौन-सा निन्दित कर्म किया था, जिससे देवर्षि नारदको भी उनपर क्रोध आ गया? उनके प्रति देवर्षि नारद द्वारा दिये गये शापका कारण बतालइये॥ १॥

**श्रीशुक उवाच—**

**रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ।**
**कैलासोपवने रम्ये मन्दाकिन्यां मदोत्कटौ॥ २॥**

**वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ।**
**स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चेरतुः पुष्पिते वने॥ ३॥**

**अन्वयः—**श्रीशुक उवाच—(श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—) धनदात्मजौ (कुबेरके वे दोनों पुत्र) सुदृप्तौ (अत्यन्त गर्वित होकर) रुद्रस्य (महादेवके) अनुचरौ (सहचर) भूत्वा (होकर) [भी] रम्ये (सुन्दर) कैलासोपवने (कैलाश पर्वतस्थित उपवनमें) मन्दाकिन्यां (मन्दाकिनीमें) मदोत्कटौ (अतीव मदयुक्त होकर) वारुणीं (वारुणी नामकी) मदिरां पीत्वा (मदिरा पीकर) मदाघूर्णितलोचनौ (मत्तताके कारण घूर्णित नेत्रोंसे) अनुगायद्भिः (उन दोनोंके पीछे-पीछे गान करनेवाली) स्त्रिजनैः (स्त्रियोंके साथ) पुष्पिते वने चेरतुः (पुष्पोंसे सुशोभित वनमें विचरण करते थे)॥ २-३॥

**अनुवाद—**श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! धनाध्यक्ष कुबेरके वे दोनों पुत्र रुद्रके अनुचर होनेपर अत्यन्त अभिमानी हो गये थे। वे दोनों कैलाशके सुरम्य उपवनमें मन्दाकिनीके तटपर वारुणी मदिरा पीकर मदोन्मत्त होकर पुष्पोंसे सुशोभित वनमें स्त्रियोंके साथ विहार कर रहे थे। मदके कारण उनके नेत्र घूम रहे होते थे। उस समय वे दोनों गान कर रहे थे तथा वे स्त्रियाँ भी उनके पीछे-पीछे गा रही थीं॥ २-३॥

**अन्तः प्रविश्य गङ्गायामम्भोजवनराजिनि।**
**चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभिः॥ ४॥**

**अन्वयः—**अम्भोजवनराजिनि (कमलवनसे सुशोभित) गङ्गायां अन्तः (गङ्गामें) प्रविश्य गजौ (प्रवेशकर मत्त हाथी) करेणुभिः इव

(जिस प्रकार हथिनियोंके साथ क्रीड़ा करता है, वैसे ही वे) युवतीभिः (युवतियोंके साथ) चिक्रीडतुः (क्रीड़ा विहार करने लगे)॥४॥

**अनुवाद**—उस समय भगवती गङ्गाजीमें पाँत-के-पाँत कमल खिले हुए थे। वे उन नवयुवतियोंको साथ लेकर गङ्गाजीके जलमें प्रवेश कर गये और उनके साथ नाना प्रकारकी क्रीड़ा करते हुए इस प्रकार विहार करने लगे, जैसे उन्मत्त हाथी हथिनियोंके साथ जल-क्रीड़ा करता है॥४॥

**सारार्थदर्शिनी**—गङ्गायां चिक्रीडतुः किं कृत्वा? अन्तर्मध्ये प्रविश्य, कीदृशे? अम्भोजानां वनराजिर्यत्र तस्मिन्॥४॥

**भावानुवाद**—*'गङ्गायां चिक्रीडतुः'*—एकदिन वे कमलवनसे परिशोभित गङ्गामें युवतियोंके साथ विहार कर रहे थे॥४॥

**यदृच्छया च देवर्षिर्भगवांस्तत्र कौरव।**
**अपश्यन्नारदो देवौ क्षीवाणौ समबुध्यत॥५॥**

**अन्वयः**—हे कौरव (हे परीक्षित्!) भगवान् देवर्षिः नारदः यदृच्छया (भगवान् देवर्षि नारदने उन दोनोंका कोई भाग्य उदय होनेके कारण) तत्र (वहाँ उपस्थित होकर) देवौ (उन दो देव कुमारोंको) अपश्यत् (देखा) क्षीवाणौ (उस समय उन्होंने उन दोनोंको नशेमें मत्त हुआ) समबुध्यत (समझा)॥५॥

**अनुवाद**—हे परीक्षित्! उसी समय परमपूज्य देवर्षि नारदने उनकी किसी भक्ति-उन्मुखी सुकृतिके फलसे वहाँपर उपस्थित होकर उन दोनों यक्ष-कुमारोंको देखा। वे समझ गये कि मदिरापानके कारण ये मदोन्मत्त हैं॥५॥

**सारार्थदर्शिनी**—दृष्ट्वा च क्षीवाणौ मत्तौ समबुद्ध्यतेति मत्तयोरनयोर्मम कृपा न फलवती भविष्यतीति तयोर्मदापनोदनार्थं दध्याविति भावः॥५॥

**भावानुवाद**—*'दृष्ट्वा च'*—उसी समय देवर्षि नारदने दैव-संयोगसे वहाँपर उपस्थित होकर उन कुमारोंको देखा एवं देखनेमात्रसे ही वे

समझ गये कि ये इतने मदमत्त हैं कि मेरी कृपा इनके प्रति फलवती नहीं होगी। अतएव वे उनकी मत्तताको दूर करनेके विषयमें विचार करने लगे॥ ५॥

**तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यो विवस्त्राः शापशङ्किताः।**
**वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ नैव गुह्यकौ॥ ६॥**

**अन्वयः**—तं (नारदको) दृष्ट्वा (देखकर) विवस्त्राः (नग्न) देव्यः (देवकन्याओंने) व्रीडिताः (लज्जित होकर) शाप शङ्किताः (अभिशापके भयसे युक्त होकर) शीघ्रं वासांसि पर्यधुः (शीघ्रतासे वस्त्र परिधान किया) [परन्तु] विवस्त्रौ (दोनों नग्न) गुह्यकौ (कुबेर पुत्रोंने) न (वस्त्र धारण नहीं किये)॥ ६॥

**अनुवाद**—उस समय जैसे ही वस्त्रहीन देवकन्याओंने देवर्षि नारदको देखा, तो वे लज्जित हो गयीं और उन्होंने अभिशापके भयसे भीत होकर अतिशीघ्र ही अपने-अपने वस्त्र पहन लिये, किन्तु उन दोनों कुबेर पुत्रोंने वस्त्र धारण नहीं किये॥ ६॥

**तौ दृष्ट्वा मदिरामत्तौ श्रीमदान्धौ सुरात्मजौ।**
**तयोरनुग्रहार्थाय शापं दास्यन्निदं जगौ॥ ७॥**

**अन्वयः**—तौ सुरात्मजौ (उन दोनों देवपुत्रोंको) श्रीमदान्धौ (ऐश्वर्यके मदमें अन्धा) [और] मदिरामत्तौ (शराब पीकर मत्त) दृष्ट्वा (देखकर) तयोः अनुग्रहार्थाय (उन दोनोंके मङ्गलके लिए) शापं दास्यन् (शाप देते हुए) इदं (इस प्रकार) जगौ (बोले)॥ ७॥

**अनुवाद**—जब देवर्षि नारदने देखा कि ये यक्षराज कुबेरके पुत्र ऐश्वर्य एवं मदिराके मदसे मत्त हो रहे हैं, तब उनपर अनुग्रह करनेके लिए उन्हें शाप देते हुए श्रीनारदने उच्च स्वरसे कहा॥ ७॥

**सारार्थदर्शिनी**—अनुग्रहस्य अर्थः फलं भगवत्साक्षात्कारस्तदर्थं शापं दास्यन्निति। यथा अतिवत्सलः पित्रादिकोऽतिमधुरं क्षीरादिकं भोजयिष्यन् पुत्रादिकमतिनिद्राणमालक्ष्य तन्निद्राभङ्गार्थं नखद्वयाघातं करोति तद्वदित्यर्थः। जगावित्यन्येऽपि श्रुत्वा स्वहितं जानन्त्विति भावः॥ ७॥

**भावानुवाद—** *'अनुग्रहार्थाय'*—अनुग्रहका फल भगवान्‌का साक्षात्कार है। अतः इसके लिए ही श्रीनारद उसी प्रकार शाप प्रदान देनेके लिए उद्यत हो गये, जिस प्रकार अतिशय स्नेहपरायण माता-पिता सुस्वादु खीर आदि भोजन खिलानेके लिए गाढ़ निद्रामें सोये हुए बालकको नींदसे उठानेके लिए नखोंसे चिउँटी काटते हैं—यह भाव है। *'जगौ'*—जिससे कि दूसरे लोग भी सुनकर अपने कल्याणके विषयमें विचार कर सकें, इसलिए श्रीनारद उच्चस्वरमें स्पष्ट शब्दों द्वारा कहने लगे॥ ७॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति—**ये दोनों अर्जुन-वृक्ष पूर्व जन्ममें नलकूबर और मणिग्रीव नामक कुबेरके दो पुत्र थे। ये धन एवं सौन्दर्य आदिके गर्वमें मत्त होनेके कारण श्रीनारद ऋषिके अभिशापसे वृक्ष-योनिको प्राप्त हो गये थे। पहले अध्यायके अन्तमें श्रीशुकदेव गोस्वामीसे यह सुनकर महाराज परीक्षित् कौतूहलयुक्त होकर पूछने लगे—"हे सर्वज्ञ-शिरोमणे! आप भूत-भविष्य सबकुछ जानते हैं एवं सर्वतत्त्व-पारदर्शी हैं। इसलिए मैं यह जानना चाहता हूँ कि देवर्षि नारदने क्रुद्ध होकर नलकूबर और मणिग्रीवको शाप क्यों दिया? नलकूबर और मणिग्रीवने ऐसा कौन-सा निन्दित कर्म किया था जिससे कि परमशान्त देवर्षि नारदको भी क्रोध आ गया? कृपापूर्वक इसका विस्तारसे वर्णन कीजिये।"

महाराज परीक्षित्‌के इस परम आग्रहमय प्रश्नको सुनकर परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामी अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा इस प्रकार कहने लगे—कैलाशपति रुद्रके किङ्कर नलकूबर और मणिग्रीव देवताओंके कोषाध्यक्ष कुबेरके पुत्र हैं, अतएव पितृधनके घमण्डमें चूर होकर वे उन्मादग्रस्त हो गये थे। युवावस्थामें स्वाभाविक रूपसे ही व्यक्तिके हृदयमें भोग-वासनाएँ प्रबल रूपमें रहती हैं। उस समय यदि किसीकी कुप्रवृत्ति हो और उसे प्रचुर धन-सम्पद तथा विपुल प्रभुता प्राप्त हो जाय, तो वह व्यक्ति सर्वमान्य देव-सिंहासनमें अधिष्ठित होकर भी देखते-ही-देखते पशुसे भी अधम हो जाता है। अतृप्त भोग-वासनाओंकी पूर्तिके लिए वह पागल-सा हो जाता है। उस समय वह जगत्‌की सभी वस्तुओंसे अपनी भोग-वासनाको शान्त

करनेकी चेष्टा करता है, परन्तु उसकी भोग-वासना शान्त न होकर दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही रहती है।

कुबेर पुत्र नलकूबर और मणिग्रीवकी अवस्था भी वैसी ही थी। वे युवावस्था एवं प्रचुर धन-सम्पदासे युक्त तो थे ही, साथ ही रुद्रके किङ्कर होनेके कारण प्रभुतासम्पन्न भी थे। इसलिए वे गर्वसे उन्मत्त एवं विवेकहीन हो गये थे। मदिरा और वार-विलासिनियाँ उनकी जीवन-सङ्गिनी बन गयी थीं। शान्त, स्निग्ध, परम पवित्र शिव-सदन कैलाश पर्वतको भी उन्होंने विलास-भूमि बना दिया था। कैलाशकी सात्त्विक शोभा नयनगोचर होनेसे परम तामसिक हृदयमें भी सत्त्वगुणका सञ्चार होने लगता है। किन्तु धन-अभिमानसे गर्वित एवं अदम्य भोग-वासनाओंसे परिपूर्ण नलकूबर और मणिग्रीवके हृदयमें उस सात्विक शोभाका बिन्दुमात्र भी स्पर्श नहीं हुआ। परम पवित्र कैलाश-उपवनमें अप्सराओंके साथ रमण करनेमें उन्हें लेशमात्र भी सङ्कोच नहीं होता था। एकदिन वे वारुणी मदिरा पानकर मद-विह्वल होकर एवं हास्य, लास्य, भङ्गि, कटाक्ष, नृत्य एवं गीतपरायणा अमर वार-विलासिनियोंके साथ पुष्पवनमें विचरण करते-करते अनगिनत कमलसमूहोंसे परिशोभित गङ्गामें अवतरणकर उसी प्रकार अप्सराओंके साथ जल-विहार करने लगे, जैसे प्रमत्त हाथी अनेक हथिनियोंके साथ मदमत्त होकर जल-विहार करता है।

उसी समय देवर्षि नारद वीणायन्त्रमें स्वर-संयोगपूर्वक भगवान् श्रीहरिका गुणगान करते हुए परमानन्दमें मग्न होकर उसी मार्गसे कैलाश शिखरपर स्थित शिव-सदनकी ओर जा रहे थे। नारद ऋषिके मुख-निःसृत भगवान्‌के गुणगानसे कैलाश पर्वतपर निवास करनेवाले समस्त जीवोंके हृदयमें एक अभूतपूर्व भाव-माधुर्यका सञ्चार हो रहा था। देवर्षि नारदजीकी कण्ठ-ध्वनि सुनकर नलकूबर-मणिग्रीवकी सङ्गिनी अप्सराओंने शापके भयसे बाहर निकलकर अपने-अपने वस्त्र धारण कर लिये तथा हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी, किन्तु धनके गर्वमें गर्वित और मदिरापानसे मत्त नलकूबर और मणिग्रीवने नारद ऋषिके आगमनका तनिक भी विचार नहीं किया। वे दोनों पूर्ववत् जल-क्रीड़ाके आवेशमें निवस्त्र होकर गङ्गाके तटपर

आकर विविध अङ्गभङ्गियों द्वारा चिल्ला-चिल्लाकर अप्सराओंको बुलाने लगे।

उस समय देवर्षि श्रीनारद हरिलीलाके गान-रसमें तन्मय थे। परन्तु उन दोनों कुबेर पुत्रोंकी विकट चिल्लाहटसे उनका ध्यान भङ्ग हो गया और उनकी दृष्टि उन दोनोंपर पड़ी। उन्होंने देखा कि शिवभक्त-चूड़ामणि कुबेरके दोनों पुत्र असत् मार्गपर अग्रसर होकर लोक एवं वेद-निन्दित आचरण कर रहे हैं एवं मदिरापानसे मत्त होकर अपना सत्-असत् विवेक खोकर पशुओंसे भी अधम होते जा रहे हैं। धनके मदसे तथा मदिराके मदसे प्रमत्त होनेके कारण देवयोनिमें जन्म लेकर भी ये देवोचित व्यवहारसे भ्रष्ट हो गये हैं। यह धनगर्व ही इनके पतनका मूल कारण है। धनके मदने ही इन्हें मदिरापान, वेश्यासक्ति एवं महत्-पुरुषोंका तिरस्कार आदि दुर्व्यवहार प्रदान किया है। उनकी दुर्नीति-परायणता और दुर्व्यवहारको देखकर परम भागवतोत्तम श्रीनारद ऋषिके हृदयमें क्रोध या क्षोभका उदय नहीं हुआ, अपितु उनके हृदयमें कृपाका आविर्भाव हुआ। उन्होंने सोचा कि इन्हें शाप देकर इनकी धनमदकी मत्तता दूर करना ही सर्वथा उचित होगा। ऐसा नहीं करनेसे इनका कल्याण नहीं होगा।

तब देवर्षि श्रीनारद नलकूबर और मणिग्रीवको शाप देनेके पूर्व धनमदके दोषोंका वर्णन करने लगे॥ १-७॥

**श्रीनारद उवाच—**

**न ह्यन्यो जुषतो जोष्यान् बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः।**
**श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्री द्यूतमासवः॥ ८॥**

**अन्वयः—**श्रीनारद उवाच (श्रीनारदने कहा) जोष्यान् (प्रिय उपभोग्य विषयोंकी) जुषतः (सेवा करते हुए) [पुरुषका] श्रीमदात् (धनके गर्वसे बुद्धिका जितना नाश होता है, वैसा) अन्यः (दूसरे) आभिजात्यादिः (सत्कुल, विद्या आदिसे उत्पन्न मद) रजोगुणः (जो कि रजोगुणसे उत्पन्न होता है) न हि बुद्धिभ्रंशः (वैसा बुद्धि नाशकारी नहीं होता है) यत्र (धनके मदमें मत्त होकर ही) स्त्री (स्त्री-सम्भोग) द्यूतं (जुआ, सट्टा, पाशाक्रीड़ा आदि) आसवः (एवं मदिरा पान आदि निरन्तर चलता रहता है)॥ ८॥

**अनुवाद**—श्रीनारद ऋषिने कहा—जो पुरुष अपने प्रिय उपभोग्य विषयोंके सेवनमें आसक्त रहते हैं, उनके धनका गर्व उनकी बुद्धिको नष्ट कर देता है। धन-सम्पत्तिका मद जिस प्रकार बुद्धिको भ्रष्ट करता है, कुलीनता, विद्या आदिके मदसे उस प्रकार बुद्धिका नाश नहीं होता, क्योंकि धनका मद उत्पन्न होनेपर स्त्री-सम्भोग, जुआ एवं मद्यपान आदि निरन्तर चलते ही रहते हैं॥ ८॥

**सारार्थदर्शिनी**—जोष्यान् प्रियविषयान् जुषतः सेवमानस्य पुंसः श्रीमदादन्य आभिजात्यादिर्बुद्धिभ्रंशको हि निश्चयेन न भवति। यथा श्रीमदः अवश्यमेव बुद्धिं भ्रंशयतीत्यर्थः। अभिजातिः सत्कुलं तदुद्भवः आदिशब्दाद्विद्यादि-मदः। रजो-गुणोद्भवत्वाद्रजोगुणः श्रीमदे सति यथा पापानि जायन्ते, तथा नान्यत्रेत्याह—यत्रेति, चतुर्भिः॥ ८॥

**भावानुवाद**—*'जोष्यान् जुषतः'*—अपने प्रिय उपभोग्य विषयोंका भोग करनेसे मनुष्यके ऐश्वर्यगर्वके अतिरिक्त श्रेष्ठकुलगर्व, विद्यागर्व आदि निश्चय ही उस प्रकार उसकी बुद्धिभ्रष्ट नहीं करते जिस प्रकार धनगर्वसे उसकी बुद्धि भ्रष्ट होती है। उच्चकुलमें जन्म तथा नृत्य-गीत आदि विद्याओंमें पारदर्शी होनेसे भी मद होता है, किन्तु रजोगुणसे उत्पन्न होनेके कारण धनगर्वसे जैसा पापकार्य होता है, वैसा अन्य किसी अभिमानसे नहीं होता, क्योंकि धन-सम्पदके अभिमानसे स्त्री-सङ्गकी लालसा, जुआ, सट्टा तथा शराब आदिकी लत सहज ही लग जाती है॥ ८॥

**हन्यन्ते पशवो यत्र निर्द्दयैरजितात्मभिः।**
**मन्यमानैरिमं देहमजरामृत्यु नश्वरम्॥ ९॥**

**अन्वयः**—यत्र (ऐश्वर्यका मद होनेपर) अजितात्मभिः (अजितेन्द्रिय) निर्दयैः (निष्ठुर व्यक्ति) इमं नश्वरं देहं अजरामृत्यु (इस नश्वर देहको जरा-मृत्युसे रहित) मन्यमानैः (मानकर) पशवः (उपभोगके लिए या आनन्द प्राप्तिके लिए पशुओंकी) हन्यन्ते (हत्या करते हैं)॥ ९॥

**अनुवाद**—ऐश्वर्यका मद हो जानेपर इन्द्रियोंके वशीभूत क्रूर व्यक्ति इस नश्वर देहको जरा एवं मृत्युसे रहित अजर-अमर मान

लेते हैं तथा उपभोग एवं आनन्द प्राप्तिके लिए पशुओंकी हत्या करते हैं॥ ९॥

**सारार्थदर्शिनी—**जरामृत्युभ्यां दृष्टाभ्यामपि इमं देहं न नश्वरं मन्यमानैः॥ ९॥

**भावानुवाद—** *'जरामृत्यु'*—विषयी व्यक्ति जरा और मृत्युको देखकर भी इस शरीरको अविनाशी मानता है और अजितेन्द्रिय होकर इस शरीरके लिए निर्दयतापूर्वक प्राणियोंकी हिंसा करता है॥ ९॥

**देवसंज्ञितमप्यन्ते कृमिविड् भस्मसंज्ञितम्।**
**भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः॥ १०॥**

**अन्वयः—**देवसंज्ञितं (देव-शरीरके नामसे जाना जानेवाला शरीर) अपि (भी) अन्ते (विनाश होनेपर) कृमिविड् भस्मसंज्ञितं (कुत्ते आदिके द्वारा खाये जानेपर विष्ठा, जलानेपर भस्म और सड़ जानेपर कीड़े बन जाता है) तत्कृते (ऐसे विनाशशील शरीरकी तृप्तिके लिए) भूतध्रुक् (प्राणियोंसे शत्रुता करनेवाले) स्वार्थं किं वेद (अपने स्वार्थके विषयमें क्या जानें) [अर्थात् वे कुछ भी नहीं जानते हैं] यतः (क्योंकि इस प्राणी द्रोहसे) निरयः (नरकमें जाना पड़ता है)॥ १०॥

**अनुवाद—**जीवित रहते समय जिस शरीरको देव, नरदेव, भूदेव कहा जाता है, वही शरीर मृत्युके पश्चात् कृमि, विष्ठा अथवा भस्मके रूपमें परिणत हो जाता है। ऐसे नाशवान् शरीरकी तृप्तिके लिए जो व्यक्ति प्राणियोंकी हिंसा करते हैं, इससे उनका कौन-सा स्वार्थ सिद्ध होता है वह इसे नहीं जानते। प्राणी-हिंसाके कारण अन्तमें उन्हें नरककी ही प्राप्ति होती है॥ १०॥

**सारार्थदर्शिनी—**नरदेव-भूदेवसंज्ञितमपि अन्ते मरणान्तरं श्वादिभिरभक्षितं पुत्रादिभिरदग्धं चेत्कृमिसंज्ञितं भक्षितञ्चेत विट्संज्ञितं दग्धञ्चेत् भस्मसंज्ञितं भवेत् तस्य देहस्य कृते यो भूतध्रुक्, यतो भूतद्रोहात्॥ १०॥

**भावानुवाद—** *'देव-संज्ञितम्'*—जो देह जीवित अवस्थामें नरदेव या भूदेव आदिके रूपमें जानी जाती है, मरनेके बाद यदि उसे कुत्ते आदि प्राणी न खायें या पुत्र आदि न जलायें, तो वह कीड़ेके रूपमें,

प्राणियोंके द्वारा खा लिये जानेपर विष्ठा तथा जलाये जानेपर भस्मके रूपमें परिणत हो जाती है। ऐसी देहके लिए जो व्यक्ति प्राणी-हिंसा करता है, वह अपना हित बिलकुल नहीं जानता है॥ १०॥

**देहः किमन्नदातुः स्वं निषेक्तुर्मातुरेव च।**
**मातुः पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा॥ ११॥**

**अन्वयः**—[वर्त्तमान शरीरमें 'मैं-मेरा' आदिका अभिमान करना भी उचित नहीं है] देहः (यह शरीर) किं अन्नदातुः (क्या अन्न देनेवालेका है) निषेक्तुं (वीर्य प्रदानकर जन्म देनेवाले पिताका है) मातुः (गर्भ-धारिणी माताका है) मातुः पितुः वा (मातामहका है) बलिनः क्रेतुः (या खरीदनेवालेका है) अग्ने वा शुनः (अग्निका है या कुत्तेका है) [परन्तु] स्वं (सभी अपने अधिकारका विषय जानकर इस अपना मानते हैं)॥ ११॥

**अनुवाद**—[यह शरीर किसकी सम्पत्ति है?] जीवितकालमें अन्न देकर पालन-पोषण करनेवालेकी या गर्भाधान करनेवाले पिताकी, उसे नौ महीने गर्भमें धारण करनेवाली माताकी या माताके भी जन्म-दाता नानाकी, मूल्य देकर बन्धक बना लेनेवाले क्रेताकी या बलपूर्वक ग्रहण करके अपना दास बना लेनेवालेकी, प्राणोंके अन्तके पश्चात् दग्ध कर देनेवाली अग्निकी या खा जानेवाले कुत्ते-सियारोंकी अथवा स्वयंकी—इस विषयमें कुछ भी नहीं कहा जा सकता। अतएव देहमें 'मैं-मेरा'—इस प्रकारका अभिमान नहीं करना चाहिये॥ ११॥

**सारार्थदर्शिनी**—देहे ममता निर्द्धारणमपि न घटते बहुविप्रतिपत्तेरित्याह,—देह इति। निषेक्तुः पितुः स्वं धनम्। मातुः पितुः मातामहस्य वा पुत्रिकाकरणे सति। बलिनो बलाद्विष्ट्यर्थं गृह्णतः॥ ११॥

**भावानुवाद**—यह शरीर किसका है—इस विषयमें विविध प्रकारके संशय होनेके कारण इस शरीरके प्रति ममता ('मैं-मेरा' अभिमान) करना उचित नहीं है। इसके लिए ही *'देह किम्'* आदि कह रहे हैं।

गर्भाधान करनेवाला पिता पुत्रके शरीरपर अपना अधिकार समझता है, कन्यादान करनेवाला मातामह (नाना) इसपर अपना अधिकार समझता है तथा बलपूर्वक दास बनानेवाला भी समझता है—इसका शरीर मेरा है॥ ११॥

**एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम्।**
**को विद्वानात्मसात्कृत्वा हन्ति जन्तूनृतेऽसतः॥ १२॥**

**अन्वयः**—असतः ऋते (दुर्जनके अतिरिक्त) कः विद्वान् (कौन पण्डित व्यक्ति) एवं (पूर्वोक्त क्रमसे) अव्यक्त प्रभवाप्ययं (अव्यक्त प्रकृतिसे उत्पन्न और अव्यक्तमें ही विलीन होनेवाले ऐसे) साधारणं (सभीके द्वारा अधिकारकी वस्तु माने जानेवाले) देहं (शरीरको) आत्मसात्कृत्वा (आत्मा मानकर उसकी प्रीतिके लिए) जन्तून् हन्ति (प्राणियोंकी हिंसा करते हैं)॥ १२॥

**अनुवाद**—प्रकृतिसे इस देहकी उत्पत्ति होती है एवं प्रकृतिमें ही इसका लय हो जाता है। ऐसे अति साधारण भोग्य-वस्तु इस जड़-देहको 'मैं' मानकर इसकी प्रीतिके लिए जीव-हिंसा करना या दूसरोंको कष्ट पहुँचाना दुर्जनों और पशुओंके अतिरिक्त क्या कोई बुद्धिमान व्यक्ति कर सकता है?॥ १२॥

**सारार्थदर्शिनी**—अव्यक्तात् प्रभवस्तस्मिन्नेवाप्ययो यस्य तम्। आत्मसात्कृत्वा आत्मत्वेनाङ्गीकृत्य असतोऽज्ञान् बिना॥ १२॥

**भावानुवाद**—*'अव्यक्त प्रभवाप्ययम्'*—जो अव्यक्त अर्थात् प्रकृतिसे उत्पन्न होकर प्रकृतिमें ही विलीन हो जाती है, ऐसी देहको जो कोई व्यक्ति आत्मा जानकर इसके लिए प्राणियोंकी हिंसा करता है—वह असत् एवं अज्ञानी है॥ १२॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—नलकूबर और मणिग्रीवको धनमदमें मत्त होकर असत् कार्यमें प्रवृत्त हुआ देखकर देवर्षि श्रीनारद धनमदके दोषोंका वर्णन कर रहे हैं। धनमदसे जीवकी बुद्धि जैसी भ्रष्ट होकर चित्तको चञ्चल कर देती है, वैसा दूसरी किसी वस्तुसे नहीं होता।

धनमद, सत्कुलमें जन्मसे उत्पन्न मद और विद्यामद—ये तीन प्रकारके मद हैं।

धनवान व्यक्तिको धनका गर्व होनेपर वह धनके बलपर निर्धन व्यक्तियोंका उत्पीड़न करता है तथा विविध प्रकारके विषयोंका भोग करता है। इसी प्रकार विद्यामद जीवको पशुतुल्य बना देता है। इससे मानव-जीवनका लक्ष्य भ्रष्ट हो जाता है। यदि सौभाग्यवश किसी धनवान व्यक्तिको धनका अभिमान न हो, तो उसके द्वारा जगत्का कल्याण साधित होता है। वैसे ही कुलका गर्व नहीं रहनेसे उच्चकुलमें उत्पन्न व्यक्ति नीचकुलमें उत्पन्न व्यक्तियोंकी सहायताकर उनका पालन करते हैं।

यदि धनहीन व्यक्तिकी कोई कुप्रवृत्ति होती है, तो धनके अभावके कारण वह फलवती नहीं होती है। धन-गर्वित व्यक्तिकी सैकड़ों सत् प्रवृत्तियाँ रहनेपर भी वे क्रमशः कुप्रवृत्ति और कुक्रियामें ही परिणत हो जाती हैं। धन-गर्वकी भाँति मानवका हानिकारक शत्रु और कोई नहीं है, क्योंकि परस्त्रीसङ्ग, पाशाक्रीड़ादि एवं मद्यपान आदि व्यसन धनगर्वित व्यक्तिके नित्य सहचर हैं। धन-गर्वित व्यक्ति ही वैश्यागमन, पाशाक्रीड़ा (जुआ, सट्टा) आदि नीच कर्मोंकी ओर प्रवृत होते हैं। विविध प्रकारसे मानवताको नष्ट करनेवाले परपीड़ा-दायक विलास-व्यसन एवं हास्य-कौतुक आदि धन-गर्वित व्यक्तिके अङ्गोंके भूषण हैं। जब कोई व्यक्ति विषय-मदमें प्रमत्त होता है, तो वह अपना हिताहित विवेक खो देता है। उस समय उसे इसका भी ज्ञान नहीं रहता कि जिस शरीरके लिए वह इतना कुछ कर रहा है, अन्तमें उसका परिणाम क्या है? निर्धन हो, चाहे धनी हो—सबकी देहके तीन ही परिणाम हैं—कृमि, विष्ठा और भस्म। फिर भी इस नश्वर देहके द्वारा जो क्षणिक आनन्दके लिए परपीड़न और परहिंसा करता रहता है, उसके लिए नरकके द्वार सदा खुले रहते हैं॥ ८-१२॥

**असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमञ्जनम्।**
**आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते॥ १३॥**

**अन्वयः**—श्रीमदान्धस्य (धनगर्वमें प्रमत्त) असतः (दुर्जन व्यक्तिके लिए) दारिद्र्यं (दरिद्रता) परं (श्रेष्ठ) अञ्जनं (गर्वरूप अन्धताको नाश करनेवाला अञ्जन-स्वरूप है) दरिद्रः आत्मौपम्येन (दरिद्रः व्यक्ति अपने समान ही) परं (प्रकृष्ट रूपसे) भूतानि (दूसरे-प्राणियोंको) इक्षते (देखते हैं)॥ १३॥

**अनुवाद**—धनके मदसे अन्धे दुर्जन व्यक्तिके लिए दरिद्रता ही सर्वश्रेष्ठ अञ्जन-स्वरूप है, क्योंकि दरिद्रता घमण्डरूपी अन्धताको दूरकर आँखोंमें यथार्थ दृष्टि प्रदान करती है। दरिद्र व्यक्ति ही भलीभाँति दूसरे प्राणियोंको अपने जैसा देख सकता है॥ १३॥

**सारार्थदर्शिनी**—श्रीमदरोगप्रतीकारं निश्चिनोति—असतः इति। परं केवलम्॥ १३॥

**भावानुवाद**—ऐश्वर्य-गर्वरूप रोगका दमन करनेका उपाय वर्णन कर रहे हैं—धनमदमें अन्धे व्यक्तियोंके लिए दरिद्रता ही एकमात्र उपाय है॥ १३॥

**यथा कण्टकविद्धाङ्गो जन्तोर्नेच्छति तां व्यथाम्।**
**जीवसाम्यं गतो लिङ्गैर्न तथाविद्धकण्टकः॥ १४॥**

**अन्वयः**—कण्टकविद्धाङ्गः (जिसका शरीर काँटेसे बिंधा हो, वह) लिङ्गैः (दूसरेके मुख-मालिन्य आदि लक्षणोंको देखकर) जीव-साम्यं गतः (समस्त जीवोंके प्रति समान भाव रखता है) जन्तोः (दूसरेको) तां व्यथां यथा (ऐसी पीड़ा) न इच्छति (नहीं हो, ऐसी इच्छा प्रकट करता है) अबिद्धकण्टकः (किन्तु जिसे कभी भी कोई पीड़ाका अनुभव नहीं हुआ है) तथा न (वह दूसरेकी पीड़ा नहीं समझ सकता)॥ १४॥

**अनुवाद**—जिसके शरीरमें कभी काँटा चुभा हो वही व्यक्ति दूसरेके मुखपर छाये हुए दुख-उदासीनतारूप चिह्न देखकर समझ सकता है कि यह व्यक्ति भी काँटा चुभनेकी पीड़ासे पीड़ित है। अतः काँटा चुभनेका कष्ट दूसरोंको भी हो, वे ऐसी दुर्भावना कभी नहीं

करता। किन्तु जिसे कभी काँटा चुभा ही नहीं, वह किसी दूसरेकी पीड़ाका अनुमान ही नहीं कर सकता॥ १४॥

**सारार्थदर्शिनी—**लिङ्गैर्मुखम्लान्यादिभिर्दृष्ट्रैर्जीवे परस्मिन् साम्यङ्गतः। पूर्वानुभूत स्वव्यथासादृश्यं तत्रानुमिमान इत्यर्थः। अबिद्धकण्टकः कण्टकेनाबिद्धः राज-दन्तादिः॥ १४॥

**भावानुवाद—** *'लिङ्गैः'*—दूसरेके मुखकी उदासीनता आदि चिह्नोंको देखकर ही उन्हें उसकी पीड़ाका अनुभव हो जाता है। जिसे कभी काँटा चुभा ही नहीं, वह दूसरोंकी भी काँटा चुभनेकी पीड़ा नहीं समझ सकता है॥ १४॥

**दरिद्रो निरहंस्तम्भो मुक्तः सर्वमदैरिह।**
**कृच्छ्रं यदृच्छयाप्नोति तद्धि तस्य परं तपः॥ १५॥**

**अन्वयः—**निरहंस्तम्भः (जिसका अहङ्काररूपी गर्व दूर हो गया है) सर्वमदैः (समस्त प्रकारके मदोंसे) मुक्तः दरिद्रः (रहित दरिद्र व्यक्ति) इह यदृच्छया (स्वभावसे) कृच्छ्रं (आहार, वस्त्र आदि अभाव-जनित जो कष्ट) आप्नोति (प्राप्त करता है) हि (निश्चित ही) तस्य तत् (उसका वह कष्ट) परं तपः (उत्तम तपस्या है) [अर्थात् जिस प्रकार तप व्यक्तिको गर्वरहित कर देता है, वैसे ही दरिद्रता भी व्यक्तिको गर्वरहित कर देती है]॥ १५॥

**अनुवाद—**अहङ्काररूप गर्वसे रहित एवं समस्त प्रकारके मदोंसे मुक्त दरिद्र व्यक्ति इस लोकमें आहार एवं वस्त्रादिका अभाव होनेके कारण स्वाभाविक रूपमें ही कष्टका अनुभव करता है। उसके वह कष्ट ही उसके लिए तपस्या-स्वरूप हैं, क्योंकि तपस्याकी ही भाँति दरिद्रता उसके गर्वको नष्ट कर देती है॥ १५॥

**सारार्थदर्शिनी—**दारिद्र्ये सति मोक्षसाधनानि स्वतः एव भवन्तीत्याह—दरिद्र इति त्रिभिः। अहङ्कारेण धनित्वादिगर्वेण यः स्तम्भः नम्रत्वाभावः स निर्गतो यस्मात् सः। सर्वमदैर्मुक्त इति दरिद्रस्य सर्वैरनादृतत्वात् सत्कुलमदादयोऽपि प्रायो नश्यन्तीति भावः॥ १५॥

**भावानुवाद**—दरिद्रताकी दशामें मुक्तिका साधन-स्वरूप तपस्या आदि स्वाभाविक रूपसे ही हो जाती है। इसीका ही 'दरिद्रता' इत्यादि तीन श्लोकोंमें वर्णन कर रहे हैं। *'निरहंस्तम्भः'*—धन-मानादि गर्ववशतः जो व्यक्ति स्तम्भके समान हैं, अर्थात् जिनमें नम्रताका अभाव है। ऐसा अहङ्काररूप गर्व जिनमें नहीं रहा है, अर्थात् दरिद्र व्यक्तिके हृदयमें अहङ्कार नहीं रहता है। दरिद्र लोग सब प्रकारके अहङ्कारोंसे मुक्त होते हैं, क्योंकि दूसरोंसे तिरस्कृत होनेके कारण दरिद्र व्यक्तिका सत्कुल और विद्या आदिका अभिमान प्रायः नष्ट हो जाता है॥ १५॥

**नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकाङ्क्षिणः।**
**इन्द्रियाण्यनुशुष्यन्ति हिंसापि विनिवर्त्तते॥ १६॥**

**अन्वयः**—[पुनः दरिद्रताकी तपस्यासे समानता दिखा रहे हैं] नित्यं (सदा-सर्वदा) क्षुत्क्षामदेहस्य (भूखसे पीड़ित क्षीण शरीरवाले) अन्नकाङ्क्षिणः (भोजनकी अभिलाषा करनेवाले) दरिद्रस्य इन्द्रियाणि अनुशुष्यन्ति (निर्धनकी इन्द्रियाँ उत्तेजनारहित होती हैं) हिंसा अपि विनिवर्त्तते (उनकी हिंसा-प्रवृत्ति भी दूर हो जाती है)॥ १६॥

**अनुवाद**—सर्वदा भूखसे पीड़ित होनेके कारण दुर्बल शरीरवाले भोजनके अभिलाषी दरिद्र व्यक्तिकी इन्द्रियाँ क्रमशः उत्तेजनाशून्य होकर स्थिर हो जाती हैं, जिससे वह हिंसा आदिसे भी निवृत्त हो जाता है॥ १६॥

**दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः।**
**सद्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत आराद्विशुध्यति॥ १७॥**

**अन्वयः**—समदर्शिनः (सर्वत्र समभावसम्पन्न) साधवः (महात्मागण) दरिद्रस्य एव युज्यन्ते (निर्धनके ही सङ्गमें जाते हैं) सद्भिः (साधुओंके सङ्गसे) तं तर्षं (उनकी विषय-तृष्णा) क्षिणोति (दूर हो जाती है) ततः च आरात् (उससे शीघ्र ही) विशुद्ध्यति (वह शुद्ध हो जाता है)॥ १७॥

**अनुवाद**—समदर्शी साधुजन भी दरिद्रका ही सङ्ग करते हैं। साधुसङ्गके प्रभावसे दरिद्र व्यक्तिके भी हृदयकी विषय-वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं तथा शीघ्र ही उसका चित्त शुद्ध हो जाता है॥ १७॥

**सारार्थदर्शिनी**—नच दरिद्रस्यैका तृष्णैव सर्व्वदोषमयीति वाच्यं, तस्या अपि प्रतिकारसम्भवादित्याह—दरिद्रस्यैवेति। धनित्वदारिद्र्ययोस्तुल्यदर्शित्वेनोभयगृहान् कृपया गच्छन्तोपि साधवो दरिद्रस्यैव युज्यन्ते दरिद्रेणैव तद्वन्दन-सम्भाषण-सम्वादादि-सम्भवात् तस्यैव ते स्वयं संयोगजनित-फलदायका भवन्तीत्यर्थः। न तु धनिनो मदान्धस्य अत्रानयोः सन्निधौ वर्त्तमानोऽहमेव प्रमाणमिति भावः। ततश्च सद्भिः सत्सङ्गमहिम्नैव तं तर्षं तृष्णां दरिद्रः स्वयमेव क्षिणोति क्षीणीकरोति। तत्-कृपालब्धस्य भक्त्यमृतस्य तृष्णाहरस्वभावत्वात्, अतएव पूर्वमुक्तं कृच्छ्रं यदृच्छयाप्नोतीति कृच्छ्रस्य यादृच्छिकत्वं ननु कर्मजनितत्वं भक्तस्य कर्मानङ्गीकारात्॥ १७॥

**भावानुवाद**—दरिद्र व्यक्तिकी एकमात्र कामना धन प्राप्तिकी ही होती है। अतः उनकी धनकी कामनाको ही समस्त दोषोंका मूल नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसका भी प्रतिकार सम्भव है। इसके लिए ही *'दरिद्रस्य'* इत्यादि पद कह रहे हैं। साधुजन धनी और निर्धन दोनोंके प्रति समदर्शी होनेके कारण दोनोंके गृहमें गमन करनेपर भी वे निर्धनके साथ अति सहज रूपसे मिल जाते हैं, क्योंकि दरिद्र व्यक्ति ही साधुओंकी वन्दना, उनसे सम्भाषण और वार्त्तालाप आदि करता है, परन्तु धनगर्वित धनी व्यक्ति ऐसा नहीं करते। इस विषयमें इन कुबेर पुत्रोंके समक्ष वर्त्तमान मैं ही प्रमाण हूँ—ऐसा भाव है।

इसके पश्चात् साधुसङ्गके प्रभावसे दरिद्र व्यक्तिकी विषय-तृष्णा अपने आप दूर हो जाती है, क्योंकि साधुकृपासे प्राप्त होनेवाला भक्तिरूपी अमृत स्वाभाविक रूपसे ही विषय-तृष्णाका हरण करनेवाला होता है। अतएव पूर्वोक्त *'कृच्छ्रं यदृच्छया आप्नोति'* (श्लोक १५)—स्वभावतः ही जो कष्ट अनुभव करते हैं, यहाँ जो कृच्छ्र और यादृच्छिकत्व उक्त हुआ है वह प्रारब्धकर्मसे उत्पन्न नहीं है, क्योंकि भक्तों द्वारा कर्म अङ्गीकार नहीं होता है॥ १७॥

**साधूनां समचित्तानां मुकुन्दचरणैषिणाम्।**
**उपेक्षैः किं धनस्तम्भैरसद्भिरसदाश्रयैः॥ १८॥**

**अन्वयः**—[यदि कहो कि साधुओंको प्रायः धनी व्यक्ति ही प्रिय होते हैं, दरिद्र नहीं। तो इसके उत्तरमें कहते हैं] मुकुन्दचरणैषिणां (अनन्यचित्त होकर श्रीभगवान्‌के चरणकमलोंकी प्राप्तिकी अभिलाषासे भजन करनेवाले) समचित्तानां (सर्वत्र समदर्शी) साधूनां (महापुरुषगण) धनस्तम्भैः (धनगर्वित) असदाश्रयैः (दुर्जन सङ्गपरायण व्यक्तिको) उपेक्ष्यै (दूरसे ही परित्याग कर देते हैं) असद्भिः (दुष्ट धनाभिमानी व्यक्तियोंसे) किं (उन्हें क्या प्रयोजन है?)॥ १८॥

**अनुवाद**—जिनका चित्त केवलमात्र श्रीभगवान्‌के चरणकमलोंका मकरन्द पान करनेके लिए उत्सुक रहता है, ऐसे समदर्शी साधुओंको धनका गर्व करनेवाले अथवा दुराचारियोंके साथ रहनेवाले तथा दुर्गुणोंके भण्डार असत् धनवानोंसे क्या प्रयोजन है? ऐसे लोग तो साधुओंकी उपेक्षाके ही पात्र हैं॥ १८॥

**सारार्थदर्शिनी**—न च साधूनां धनोपाधिको धनिकसंयोगः सम्भवतीत्याह—साधूनामिति। धनेन स्तम्भो गर्वो येषां तैः। असद्भिरवैष्णवैः असदाश्रयैरवैष्णवसेविभिः तेन गर्वरहिता दरिद्रा वैष्णवसेविनो धनिनोऽपि साधुभिः संयुज्यन्त एवेति भावः॥ १८॥

**भावानुवाद**—साधुओंकी धनप्राप्तिके उद्देश्यसे धनके मदमें मत्त अहङ्कारी व्यक्तियोंसे संयोगकी कोई सम्भावना नहीं रहती है। धनगर्वित व्यक्तियोंसे उनका कोई प्रयोजन नहीं रहता, ऐसे अवैष्णव एवं अवैष्णव-सेवी धनी उनकी उपेक्षाके ही पात्र होते हैं। इससे स्पष्ट है कि गर्वरहित दरिद्र और वैष्णवसेवा-परायण धनी व्यक्तियोंके साथ भी साधुओंका संयोग होता है॥ १८॥

**तदहं मत्तयोर्माध्व्या वारुण्या श्रीमदान्धयोः।**
**तमोमदं हरिष्यामि स्त्रैणयोरजितात्मनोः॥ १९॥**

**अन्वयः**—तत् अहं (इसलिए मैं) माध्व्या (माध्वी नामकी) वारुण्या (मदिरा पीकर) मत्तयोः (मत्त) श्रीमदान्धयोः (धनगर्वित) स्त्रैणयोः (कामिनी-आसक्त) अजितात्मनोः (अजितेन्द्रिय युवाओंका) तमोमदं (अज्ञानजनित मदको) हरिष्यामि (दूर करूँगा)॥ १९॥

**अनुवाद**—इसलिए मैं वारुणी (माधवी) नामक मदिरा पानसे मत्त एवं विषयमदसे अन्ध, स्त्री-लम्पट एवं अजितेन्द्रिय इन दोनोंके अज्ञानसे उत्पन्न मदको अभी दूर कर देता हूँ॥ १९॥

**सारार्थदर्शिनी**—तदनयोर्गर्वरोगस्य कां चिकित्सां करोमीति मनसि विचार्य निश्चिनोति-तदहमिति चतुर्भिः। माध्व्या मधुमय्या तमोऽज्ञानम्॥ १९॥

**भावानुवाद**—इसलिए इन दोनों कुबेर-पुत्रोंके घमण्डरूपी रोगकी क्या चिकित्सा करूँ? इस प्रकार मन-ही-मन विचारकर देवर्षि श्रीनारद *'तदहम्'* इत्यादि चार श्लोकोंमें निश्चय कर रहे हैं। *'माध्व्या'*—वारुणी नामक सुरापानमें उन्मत्त इनके अज्ञानसे उत्पन्न गर्वको नष्ट करूँगा॥ १९॥

**यदिमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमःप्लुतौ।**
**न विवाससमात्मानं विजानीतः सुदुर्मदौ॥ २०॥**

**अतोऽर्हतः स्थावरतां स्यातां नैवं यथा पुनः।**
**स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात्॥ २१॥**

**वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते।**
**वृत्ते स्वर्लोकतां भूयो लब्धभक्ती भविष्यतः॥ २२॥**

**अन्वयः**—यत् (जिससे) इमौ (ये दोनों युवा) लोकपालस्य (कुबेरके) पुत्रौ भूत्वा तमःप्लुतौः (पुत्र होकर मदिरा पानमें मत्त) सुदुर्मदौ (अति गर्वित होकर) आत्मानं (अपने शरीरको) विवाससं (कपड़ोंसे रहित नग्न होकर भी) न विजानीतः (नहीं जान सके) अतः (इस अपराधके कारण) स्थावरतां अर्हतः (स्थावरत्व लाभ करने योग्य हैं) तत्र अपि (ऐसी स्थावरता लाभ करनेसे) यथा (जिससे) पुनः एवं न स्यातां (पुनः ऐसा अपराध नहीं होगा) [और] मत्प्रसादेन (मेरे अनुग्रहसे) स्मृतिः (स्मरण) स्यात् (रहे) मदनुग्रहात् दिव्यशरच्छते (मेरे अनुग्रहसे देवताओंके परिमाणमें सैकड़ों वर्षोंके) वृत्ते (अतीत होनेपर) वासुदेवस्य (श्रीकृष्णका) सान्निध्यं (सान्निध्य)

लब्धा (प्राप्तकर) भक्ति (कृष्णमें अनुरागयुक्त होकर) भूयः (फिरसे) स्वर्लोकतां (देवत्व) भविष्यतः (प्राप्त करेंगे)॥ २०-२२॥

**अनुवाद**—देखो तो, ये दोनों लोकपाल कुबेरके पुत्र होकर भी मदिरापानसे उन्मत्त तथा अतिशय गर्वित हो रहे हैं जिससे कि इन्हें इस बातका भी बोध नहीं है कि ये बिलकुल नग्न हैं। अतः इस अपराधके कारण ये दोनों स्थावर वृक्षयोनिमें जाने योग्य हैं। स्थावरत्व प्राप्त करनेके बाद भी ये पुनः इस प्रकारका अपराध न करें, इसके लिए मेरे अनुग्रहसे इनकी पूर्व-स्मृति भी बनी रहेगी। इन दोनोंको वृक्षयोनि प्राप्त होनेके पश्चात् मेरी कृपासे देवताओंके सौ वर्ष बीतनेपर भगवान् श्रीकृष्णका सान्निध्य प्राप्त होगा एवं ये कृष्णभक्ति परायण होकर पुनः देवत्व प्राप्तकर अपने लोकमें चले जायेंगे॥ २०-२२॥

**सारार्थदर्शिनी**—स्थावरतामिति निरावरणयोः स्तब्धयोरब्रुवाणयोरनयोः स्थावर-त्वमेवोचितमिति भावः। स्थावरत्वेऽपि मत्प्रसादेन स्मृतिरस्तु। स्मृतौ सत्यामपि मदनुग्रहादित्यादि। देवमानेन शरच्छते वर्षशते वृत्ते सति वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा लब्धभक्ती सन्तौ स्वर्लोकतां भविष्यतः प्राप्स्यतः। भूप्राप्तौ परस्मैपद-मार्षम्॥ २०-२२

**भावानुवाद**—वस्त्रहीन एवं स्तब्ध इन दोनोंके लिए स्थारत्व ही उपयुक्त है। वृक्षयोनि प्राप्त करनेपर भी मेरी कृपासे इनकी स्मृति बनी रहेगी। देवताओंके सौ वर्ष बीत जानेपर मेरे अनुग्रहसे भगवान् वासुदेवके स्पर्शसे ये भक्ति प्राप्तकर देवत्वको प्राप्त होंगे॥ २०-२२॥

**श्रीशुक उवाच—**

**एवमुक्त्वा स देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम्।**
**नलकूबरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्ज्जुनौ ॥ २३॥**

**अन्वयः**—श्रीशुकः उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा) सः देवर्षिः (नारद) एवं उक्त्वा नारायणाश्रमं गतः (इस प्रकार कहकर नारायण आश्रममें चले गये) [इधर] नलकूबेरमणिग्रीवौ यमलार्ज्जुनौ (नलकूबर और मणिग्रीव दोनों यमज अर्जुनवृक्ष) आसतुः (बन गये)॥ २३॥

**अनुवाद**—श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—देवर्षि श्रीनारद इस प्रकार कहकर नर-नारायणके आश्रममें चले गये और नलकूबर एवं मणिग्रीव यमज (जुड़वाँ) अर्जुनवृक्ष बन गये॥ २३॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—नलकूबर और मणिग्रीवको धनमदमें मत्त देखकर देवर्षि श्रीनारदने विविध प्रकारसे धनमदके दोषोंका विचार किया। उसके पश्चात् उन्होंने धनमदसे अन्धे उन दोनोंकी चिकित्सा करनेका सङ्कल्प लिया। किसीमें कोई दोष रहनेपर उस दोषके लिए बहुत-से व्यक्ति उसका तिरस्कार या दमन कर सकते हैं, परन्तु उसके दोषोंको दूर करनेकी प्रवृत्ति कितने लोगोंकी होती है? एकमात्र भगववान्‌के भक्तोंका ही ऐसा स्वभाव होता है कि वे किसीके भी दोषोंको नहीं देखते या किसीका दोष ग्रहण नहीं करते हैं, क्योंकि वे स्वभावतः ही अदोषदर्शी होते हैं। किन्तु यदि किसीका कोई दोष उनके दृष्टिगोचर होता है, तो वे भक्तचूड़ामणि शाप देकर या अनुग्रहकर किसी भी प्रकारसे उसके दोषको धो देते हैं। यदि ऐसा सामर्थ्य न हो, तो दूसरोंका दोष दर्शन करनेसे अपना ही अनिष्ट होता है। विशेषकर दोषी व्यक्तिके दोषका वर्णन करनेसे अथवा सूचना देनेसे भी पापकी आशङ्का होती है। *'यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत्'* (श्रीमद्भा॰ १/१७/२२)। पापाचरणमें आसक्त व्यक्ति पाप करके जिस प्रकार नरक-यातना भोग करता है, उसके पापकी सूचना देने या वर्णन करनेपर निष्पाप व्यक्तिको भी उसी प्रकार नरकका दुःख भोग करना पड़ता है। इसलिए भक्तगण कभी किसीका कोई दोष देखकर या उसके दोषका वर्णनकर अपने लिए नरकका द्वार नहीं खोलते। वे *'पर स्वभाव कर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत्'* (श्रीमद्भा॰ ११/२८/१) अर्थात् "साधु दूसरेके स्वभाव एवं सत् या असत् कार्यकी प्रशंसा या निन्दा नहीं करते।" श्रीभगवान्‌की इस आदेशवाणीका स्मरणकर भक्तजन दूसरोंके दोषों या गुणोंमें लिप्त न होकर केवल श्रीभगवान्‌के चरणकमलोंका ही स्मरण करते रहते हैं।

परमभागवतोत्तम देवर्षि श्रीनारदने नलकूबर और मणिग्रीवका दोष देखकर उसे दूरकर उन्हें विशुद्ध करनेका सङ्कल्प लिया।

श्रीनारदमें यदि उन दोनोंके दोषको दूर करनेका सामर्थ्य नहीं होता, तो वे कभी भी उनके प्रति दृष्टिपात नहीं करते या उनके दोषोंका विचार करके अपनी रसनाको कलुषित नहीं करते। देवर्षि नारदने विचार किया कि जिस कारणसे नलकूबर और मणिग्रीव इस दोषसे ग्रस्त हो गये हैं, यदि उस कारणको ही नष्ट कर दिया जाय, तो इनके दोषकी निवृत्ति स्वतः ही हो जायेगी। इनके दोषका एक ही कारण है—धनमद। धनमदके कारण ही ये दोनों मदान्ध एवं मोहान्ध हो गये हैं। इसलिए इनके धनमदका निवारण करनेसे ही इनकी अन्धता दूर होगी। दरिद्रता ही धनमद निवारणकी सिद्ध-महौषधि है। जो धनमदमें अन्ध होकर विविध असत् आचरणोंमें लिप्त होता है, यदि वह किसी कारणवश दरिद्र हो जाता है, तो विनम्रतावशतः उसका साधु-स्वभाव हो जाता है।

इसलिए भक्तगण अपराधीको दण्ड देकर ही शान्त नहीं हो जाते, बल्कि वे दण्ड देकर अपराधीके हृदयको भी शुद्धकर उसे श्रीगोविन्द-भजनका अधिकार प्रदान करते हैं। जैसे किसान हलके द्वारा जमीनको जोतकर ही निश्चिन्त नहीं होते, बल्कि उसमें बीज बोकर फल उत्पन्न करके ही शान्त होते हैं, वैसे ही भक्तगण बहिर्मुख जीवोंके कठोर हृदयको दण्डरूपी हलके द्वारा जोतकर उसमें कृष्ण-भक्तिरूप बीज बोकर वहाँ प्रेम-सेवारूप फलको उत्पन्न करते हैं।

नलकूबर और मणिग्रीवको वृक्ष होनेका शाप देनेके बाद देवर्षि श्रीनारदने कृपापूर्वक उन दोनोंसे कहा—देव परिमाणमें एक सौ वर्ष (मनुष्य परिमाणमें ३६००० हजार वर्ष) पश्चात् स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण अपनी गोलोककी नित्य-लीलाओंको भूलोकमें प्रकाशित करेंगे। वे बाललीलाके आवेशमें जिस समय तुम्हारे निकट होंगे, उस समय उनके चरणकमलोंके स्पर्शसे तुम्हारी वृक्षयोनिसे मुक्ति होगी एवं तुम पुनः देवदेह प्राप्त करोगे। श्रीकृष्णके चरणकमलोंके स्पर्शकी महिमासे तुम्हें पुनः कभी भी धनका अभिमान नहीं होगा। तुमलोग अपनी वृक्षयोनिसे मुक्त होनेके पश्चात् देवदेह प्राप्तकर श्रीकृष्णके चरणकमलोंके सेवन-परायण होओगे।

नलकूबर और मणिग्रीवकी वृक्षयोनि-प्राप्तिका वर्णनकर परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामीने परीक्षित् महाराजसे कहा—"महाराज! परमभागवत-चूड़ामणि देवर्षि श्रीनारद फिरसे वीणायन्त्रमें हरिका गुणगान करते हुए नारायण ऋषिके आश्रम (बद्रिकाश्रम) की ओर चले गये। नलकूबर और मणिग्रीव भी उस समयसे वृक्षयोनि प्राप्त करके गोकुलमें अवस्थान करने लगे।"

वास्तवमें परम भागवत-चूड़ामणि देवर्षि श्रीनारद नलकूबर और मणिग्रीवके व्यवहारसे बिन्दुमात्र भी क्रुद्ध नहीं थे। उन्होंने उनकी बहिर्मुखतासे उत्पन्न दुर्दशाको देखकर उनके प्रति अनुग्रह प्रकाश किया। श्रीकृष्णके भक्त-चूड़ामणियोंके हृदयको जागतिक किसी भी प्रकारका भाव स्पर्श नहीं करता, क्योंकि उनके हृदयमें सर्वदा श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण और लीलामृतकी रसधारा प्रवाहित होती रहती है। नलकूबर और मणिग्रीवने नारद ऋषिकी अवज्ञा की, इसलिए उन्होंने दोनोंको दण्ड प्रदान किया, ऐसा नहीं; अपितु उन्होंने उन दोनोंके प्रति परम अनुग्रह ही किया। शोक, हर्ष, भय, क्रोध, हिंसा, अशान्ति आदि कृष्ण-बहिर्मुख जीवोंके नित्य-सहचर हैं। जिन्होंने श्रीकृष्णके चरणोंमें शरण ग्रहण की है, उनके समीप ये सभी महाशत्रु कदापि नहीं आ सकते। इसलिए श्रीनारदके दृष्टिपथपर आकर धन-मदान्ध नलकूबर और मणिग्रीव कृतार्थ हो गये। उनका यह वृक्षजन्म तो देवजन्मसे भी श्रेष्ठ है, क्योंकि देवर्षिके अनुग्रहसे उन्होंने वृक्षके रूपमें निश्चल रूपसे व्रजमें वास करनेका सौभाग्य प्राप्त किया॥ १३-२३॥

**ऋषेर्भागवतमुख्यस्य सत्यं कर्त्तुं वचो हरिः।**
**जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्ज्जुनौ॥ २४॥**

**अन्वयः**—हरिः (कृष्ण) भागवतमुख्यस्य (परम भगवद्भक्त) ऋषेः (नारद ऋषिके) वचः सत्यं कर्त्तुं (वचनोंको यथारूप सत्य करनेके लिए) यमलार्ज्जुनौ आस्तां (जहाँ यमलार्जुन हैं) तत्र शनकैः जगाम (धीरे-धीरे वहाँ उपस्थित हुए)॥ २४॥

**अनुवाद**—भगवान् श्रीकृष्ण परम भागवत श्रीनारद मुनिके वचनोंको सत्य करनेके लिए जिस स्थानपर यमलार्जुन वृक्ष थे, ओखलको घसीटते हुए धीरे-धीरे उसी ओर चल पड़े॥ २४॥

**देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ।**
**तत् तथा साधयिष्यामि यद्गीतं तन्महात्मना॥ २५॥**

**अन्वयः**—यत् (जिससे) देवर्षिः (नारद) मे (मेरे) प्रियतमः (प्रियतम हैं) [और] इमौ (ये दोनों) धनदात्मजौ (धनकुबेरके पुत्र हैं) तत् (इसलिए) महात्मना (नारदजीने) यत् गीतं (जो कुछ कहा) तथा (वैसे ही) तत् (इन दोनोंका उद्धार) साधयिष्यामि (करूँगा)॥ २५॥

**अनुवाद**—देवर्षि नारद मेरे परम प्रिय हैं एवं ये दोनों भी मेरे ही भक्त कुबेरके पुत्र हैं। अतः महात्मा श्रीनारदने पहले जैसा कहा था, मैं उसीके अनुसार ही इनका उद्धार करूँगा॥ २५॥

**सारार्थदर्शिनी**—प्रस्तुतमाह ऋषेरिति। यद्यस्माद्देवर्षिर्मे प्रियतमस्तस्मादिमौ तथा साधयिष्यामि यद्यथा तेन महात्मना गीतमित्यन्वयः॥ २५॥

**भावानुवाद**—*'प्रस्तुतमाह'*—अब पूर्वकी बातोंका समापनकर प्रस्तुत प्रकरणगत घटनाओंका वर्णन कर रहे हैं। श्रीकृष्णने मन-ही-मन निश्चय किया कि देवर्षि नारद मेरे प्रियतम भक्त हैं, अतएव उन्होंने कुबेर-पुत्रोंके उद्देश्यसे जो कुछ भी कहा है, मैं उसे तदनुरूप ही पूर्ण करूँगा॥ २४-२५॥

**इत्यन्तरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ।**
**आत्मनिर्वेशमात्रेण तिर्यग्गतमुलूखलम्॥ २६॥**

**अन्वयः**—इति (इस प्रकार विचारकर) कृष्णः यमयोः अर्जुनयोः (कृष्णने अर्जुनवृक्षोंके) अन्तरेण (बीचमें) ययौ (प्रवेश किया) आत्मनिर्वेशमात्रेण (कृष्णके उनके बीचमें प्रवेश करनेके साथ-साथ) उलूखलं तिर्यग्गतं (ओखल टेढ़ा होकर अटक गया)॥ २६॥

**अनुवाद**—ऐसा विचारकर श्रीकृष्ण उन अर्जुनवृक्षोंके बीचमें प्रवेशकर दूसरी ओर निकल गये। उनके प्रवेशमात्रसे ही ओखल टेढ़ा होकर वहीं अटक गया॥ २६॥

**सारार्थदर्शिनी**—इति विचार्य्य यमयोः सहजातयोर्द्वयोरन्तरेण मध्ये ययौ, ततश्च आत्मनः प्रवेशमात्रेण उलूखलं तिर्य्यग्गतं तिरश्चीनमभूत्॥ २६॥

**भावानुवाद**—*'इति'*—ऐसा सोचकर, *'यमयोः'*—श्रीकृष्ण दोनों अर्जुन-वृक्षोंके बीचमें प्रवेश कर गये। उनके बीचमें प्रवेश करनेके साथ-साथ ओखल तिरछा होकर वहाँ अटक गया॥ २६॥

**बालेन निष्कर्षयतान्वगुलूखलं तद्**
**दामोदरेण तरसोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ।**
**निष्पेततुः परमविक्रमितातिवेप-**
**स्कन्धप्रवालविटपौ कृतचण्डशब्दौ॥ २७॥**

**अन्वयः**—अन्वक् (पीछे-पीछे घिसटनेवाले) तत् उलूखलं (उस तिरछे ओखलको) तरसा (बलपूर्वक) निष्कर्षयता (आकर्षण करते हुए) दामोदरेण (जिनके उदरमें रस्सी बँधी हुई है, ऐसे) बालेन (बालकृष्णने) उत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ (वृक्षोंको जड़सहित उखाड़कर फेंक दिया) परमविक्रमितातिवेपस्कन्ध-प्रवालविटपौ (परम बलशाली श्रीकृष्णके विक्रमसे उसके स्कन्ध, प्रवाल, शाखा आदि काँपते हुए) कृतचण्डशब्दौ (भयानक शब्दके साथ) निष्पेततुः (भूमिपर गिर पड़े)॥ २७॥

**अनुवाद**—बालक श्रीकृष्णका उदर रस्सीसे बँधा हुआ था, जैसे ही उन्होंने अपने पीछे लुढ़कनेवाले और दोनों वृक्षोंके बीचमें अटके हुए ओखलको तनिक बलके साथ खींचा, वैसे ही दोनों वृक्षोंकी जड़ें उखड़ गयीं। परम पुरुषके किञ्चित् विक्रमसे ही दोनों वृक्षोंके तने, शाखाएँ, छोटी-छोटी डालियाँ, पल्लव अतिशय रूपसे काँप उठे और दोनों वृक्ष प्रचण्ड शब्द करते हुए भूमिपर गिर पड़े॥ २७॥

**सारार्थदर्शिनी**—तत्तिरश्चीनमेवोलूखलम् अन्वक् स्वानुकूलं यथास्यात्तथा निःशेषेण कर्षता बालेन उत्कलित उत्पाटितोऽङ्घ्रिबन्धो ययोस्तौ। परमविक्रमितेन

अतिबलेनाकर्षणेनातिवेपा अतिकम्पमानाः स्कन्धादयो ययोस्तौ दामोदरेणेति *"स च तेनैव नाम्ना तु कृष्णो वै दामबन्धनात्। गोष्ठे दामोदर इति गोपीभिः परिगीयते"* इति हरिवंशोक्ता प्रसिद्धिः स्मारिता॥ २७॥

**भावानुवाद**—तिरछे अटके हुए ओखलको बालकृष्णने जब जोरसे खींचा, तो दोनों वृक्ष जड़सहित उखड़ गये। उनके द्वारा अतिशय बलपूर्वक खींचे जानेसे वृक्षोंके तने, शाखाएँ, पल्लव आदि कम्पित होकर प्रचण्ड शब्दके साथ भूतलपर गिर पड़े। *'दामोदरेण'*—जिनकी कमर डोरीसे ओखलके साथ बँधी हुई है, ऐसे कृष्णके द्वारा। डोरीसे बँधनेके कारण व्रजमें गोपियाँ उन्हें दामोदर कहा करती थीं॥ २७॥

**तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरन्तौ**
**सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः।**
**कृष्णं प्रणम्य शिरसाखिललोकनाथं**
**बद्धाञ्जली विरजसाविदमूचतुः स्म॥ २८॥**

**अन्वयः**—[वृक्षोंके गिरनेके पश्चात्] तत्र (वहाँसे) परमया श्रिया (परम शोभाके द्वारा) ककुभः स्फुरन्तौ (दिशाओंको प्रकाशित करते हुए) जातवेदाः इव (अग्निकी भाँति) सिद्धौ (दो महापुरुष) कुजयोः (उन दोनों वृक्षोंसे) उपेत्य (बाहर निकलकर) शिरसा अखिल लोकनाथं (मस्तक झुकाकर समस्त लोकोंके प्रभु सर्वेश्वर) कृष्णं प्रणम्य (कृष्णको प्रणामकर) बद्धाञ्जली (हाथ जोड़कर) विरजसौ (गर्वरहित होकर) इदं (इस प्रकार कहने लगे)॥ २८॥

**अनुवाद**—तदनन्तर उसी समय दोनों वृक्षोंसे मूर्त्तिमान अग्नितुल्य दो उज्ज्वल महापुरुष निकले और उनके परम शोभामय सौन्दर्यसे सभी दिशाएँ दमक उठीं। उन्होंने मस्तक झुकाकर अखिल लोकोंके स्वामी श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रणाम किया एवं हाथ जोड़कर शुद्ध हृदयसे उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे॥ २८॥

**सारार्थदर्शिनी**—ककुभो व्याप्य स्फुरन्तौ कुजयोर्वृक्षयोः जातवेदा अग्निर्मिथो ज्योतिर्मिलनादेक एव जातवेदा इव स्फुरन्तावित्यर्थः॥ २८॥

**भावानुवाद**—*'ककुभः स्फुरन्तौ'*—दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए। *'जातवेदाः'*—दोनों वृक्षोंके भीतरसे साक्षात् अग्निकी भाँति समुज्ज्वल रूपवाले दो सिद्धपुरुष निकल आये। उस समय दो ज्योतियोंके मिलनसे ऐसा प्रतीत होने लगा मानो साक्षात् अग्निदेव ही प्रकाशित हो गये हों॥ २८॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—श्रीभगवान् अपने भक्तोंके वचनोंकी सत्यताकी रक्षा करनेमें सचेष्ट रहते हैं और ऐसा करके परम सुखी होते हैं। ऐसा करनेके लिए यदि उन्हें अपनी प्रतिज्ञा भी तोड़नी पड़ जाये, तो भी उन्हें कोई आपत्ति नहीं होती। भगवान् श्रीकृष्णने बाल-लीलाके आवेशमें जैसे ही आँगनके एक भागमें स्थित उन दो अर्जुनवृक्षोंकी ओर दृष्टिपात किया, तभी उन्हें श्रीनारद ऋषिके शापका स्मरण हो आया और उन्होंने उनके वचनोंकी सत्यताकी रक्षा करनेकी इच्छा की। वे अपने पास खड़े हुए गोपबालकोंसे बोले—"सखाओ! तुमलोग पीछेसे ओखलको धकेलो। मैं उन वृक्षोंके बीचमेंसे निकलकर दूसरी ओर चला जाऊँगा और जब ओखल उनके बीचमें अटक जायेगा तो मैं उसे खीचूँगा जिससे मेरी कमरमें बँधी हुई यह रस्सी टूट जायेगी।" व्रजराजनन्दनकी बात सुनकर गोपबालक बड़े कौतूहलसे पीछेसे ओखलको धकेलने लगे और बालकृष्ण भी बिना आहट किये घुटनोंके बल चलते हुए अर्जुनवृक्षोंकी ओर बढ़ने लगे तथा वे बालसखाओंको सावधान भी करते जा रहे थे—"सखाओ! शब्द मत करो। यदि मैयाने सुन लिया और वे यहाँ आ गयीं, तो मुझे मारेगी।" यशोदानन्दनकी यह बात सुनकर गोपसखा भयभीत हो गये और चुपचाप ओखलको धीरे-धीरे धकेलने लगे।

इस प्रकार उन अर्जुनवृक्षोंके निकट जाकर श्रीकृष्ण सोचने लगे—"देवर्षि नारद मेरे प्रियतम भक्त हैं। अतएव उन्होंने इनके विषयमें जो कुछ कहा है, मैं वही करूँगा। मैं इन दोनों वृक्षोंको अपने पादस्पर्शसे मुक्ति दान करूँगा एवं इनके अनन्त करोड़ जन्मोंके सञ्चित कामना-वासनामय पाप-ताप आदिको दूरकर इन्हें पराभक्ति प्रदान करूँगा।" यह विचारकर व्रजराजनन्दन स्वयं तो उन अर्जुनवृक्षोंके बीच सँकरें स्थानसे प्रवेशकर दूसरी ओर निकल गये। उनके दूसरी ओर

निकलते ही पीछेका ओखल यमलवृक्षोंके बीचमें तिरछा होकर अटक गया। सच्चिदानन्द-विग्रह श्रीकृष्णकी लीला-सम्पादनके योग्य उनके वसन-भूषण, बाल-क्रीड़ाके उपकरण आदि सभी वस्तुएँ सच्चिदानन्दमय हैं। जड़बुद्धिसे या जड़दृष्टिसे देखनेपर सभी वस्तुएँ जड़ प्रतीत होती हैं। पद्मपुराणमें दामोदराष्टक-नामक स्तवमें *'नमस्तेऽस्तु दाम्ने'*—श्रीकृष्णके उदर-बन्धनकी रस्सीको सच्चिदानन्दमय जानकर ही प्रणाम किया गया है।

जब श्रीकृष्ण आगे नहीं बढ़ सके, तब वे वृक्षोंमें अटके ओखलको बलपूर्वक खींचने लगे। उससे सैकड़ों वर्ष प्राचीन दोनों ही अर्जुनवृक्ष जड़से उखड़कर भीषण मड़्-मड़् शब्दसे दसों दिशाओंको कँपाते हुए भूतलपर गिर पड़े। परन्तु उन गगनस्पर्शी वृक्षोंके पतनसे व्रजस्थित कोई भी गृह नष्ट नहीं हुआ और न ही उनके भारसे दूसरे वृक्ष गिरे, अर्थात् किसी भी प्रकारका अनिष्ट नहीं हुआ।

दोनों वृक्षोंके गिरते ही उनके भीतरसे दो अलौकिक ज्योतिर्मय देवपुरुष निकल आये। उन दोनोंकी अङ्गज्योति प्रज्ज्वलित अग्नि-शिखासे भी अधिक दीप्तिशाली थी और उससे दसों दिशाएँ समुद्भासित हो रही थीं। वे दोनों देवपुरुष इधर-उधर देखने लगे। तभी उन्होंने निकटमें ही एक दिव्यातिदिव्य इन्द्रनीलमणिसे भी अधिक प्रकाशमान श्यामवर्णके बालकका दर्शन किया, जो वृक्षोंके गिरनेके शब्दसे भयभीत होकर भागनेकी चेष्टा कर रहा था। परन्तु पीछे ओखल बँधे होनेके कारण भाग नहीं पा रहा था। यह अद्भुत मनोरम दृश्य देखकर उन दोनोंके हृदयमें एक अनिर्वचनीय भाव उत्पन्न हो गया। वे पलक झपके बिना उन अभिनव श्यामल सुन्दर बालकके ओखल-आकर्षणरूप माधुर्यका आस्वादन करने लगे। तभी मानो उनके कानोंमें किसीने कह दिया—"हे नलकूबर-मणिग्रीव! जिन्हें तुम बालक समझ रहे हो, ये कोई साधारण बालक नहीं हैं। ये अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डोंके स्रष्टा और पालक हैं। इन्हींके परमभक्त देवर्षि नारदके अनुग्रहसे तुमलोगोंने व्रजभूमिको स्पर्श करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है। जाओ जाओ, उनके चरणोंमें नतमस्तक हो जाओ। इससे अनादि जन्मोंमें सञ्चित तुम्हारे पाप राशिका जो कुछ अवशेष रह गया है, वह भी तुम्हारे

सिरसे उतर जायेगा और तुम चिरकालके लिए धन्यातिधन्य हो जाओगे।"

यह सुनकर वे दोनों देवपुरुष ओखल खींचनेवाले नन्दनन्दनके चरणोंमें मस्तक झुकानेके लिए आगे बढ़े। यद्यपि वे नन्दनन्दनके भक्तचूड़ामणि देवर्षि नारदके चरणोंमें महापराध करनेके कारण ही वृक्षयोनिको प्राप्त हुए थे, तथापि उन्हें नन्दनन्दनके पास जानेमें किसी प्रकारकी लज्जाका बोध नहीं हुआ। उन्होंने विचार किया—"जो सबके अन्तर्यामी हैं एवं सबके समस्त कर्मोंके प्रेरणाकारी और साक्षी हैं, उनसे लज्जा करके क्या लाभ होगा?" इस प्रकार नलकूबर और मणिग्रीव धीरे-धीरे श्रीकृष्णके चरणोंमें उपस्थित हुए, उस समय श्रीकृष्णके असमोर्ध्व ऐश्वर्य-सिन्धुमें बाल-माधुर्यकी तरङ्ग उच्छ्वसित होकर नलकूबर और मणिग्रीवको गौरव-मिश्रित प्रीति भावसे परिपूर्ण करने लगी। ऐश्वर्य-ज्ञानमिश्र प्रीतिसे उनका हृदय गद्गद हो गया और वे हाथ जोड़कर गद्गद कण्ठसे श्रीकृष्णकी महिमाका गान करने लगे।

नलकूबर और मणिग्रीवके बहिर्मुखतारूप महारण्यमें दुर्वासना, कुप्रवृतिादि रूप जितने भी महावृक्ष थे, वे समस्त देवर्षि नारदके शापसे पहले ही जलकर भस्म हो गये थे। इसके पश्चात् देव परिमाणमें सैकड़ों वर्ष तक वृक्षयोनि प्राप्तकर उनके पूर्व-पूर्व जन्मोंके कुकुर्मोकी स्मृति एवं उसके कारण होनेवाले भयङ्कर अनुतापरूपी अग्निमें सबकुछ दग्ध हो गया था एवं जो कुछ अवशेष था, वह भी साक्षात् रूपमें कृष्णदर्शन और उनके चरणोंमें शरणागतिके कारण सम्पूर्ण रूपसे समाप्त हो गया। अब नलकूबर और मणिग्रीवका हृदय परमपवित्र हो गया तथा दीर्घकाल व्रजवासके कारण उनके हृदयमें कृष्णसेवाकी वासना अङ्कुरित हो गयी थी॥ २४-२८॥

**कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः।**
**व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः॥ २९॥**

**अन्वयः**—हे कृष्ण कृष्ण महायोगिन् (हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे अचिन्त्य प्रभावशालिन्) त्वं आद्यः (तुम ही कारणस्वरूप) परः पुरुषः (परमपुरुष हो) व्यक्ताव्यक्तं (स्थूल-सूक्ष्मात्म स्वरूप) इदं विश्वं (यह

विश्व) ते (तुम्हारा) रूपं (स्वरूप है) [इति] ब्राह्मणाः विदुः (विद्वान पुरुष ऐसा जानते हैं)॥ २९॥

**अनुवाद**—[नलकूबर और मणिग्रीवने कहा—]हे श्रीकृष्ण! हे परम योगेश्वर श्रीकृष्ण! आपका प्रभाव अचिन्त्य है। आप परम पुरुष एवं जगत्के मूल निमित्त एवं उपादान कारण हैं। विद्वान लोग इस व्यक्त-अव्यक्त जगत्को आपके ही स्वरूपमें देखते हैं॥ २९॥

**सारार्थदर्शिनी**—उलूखले बद्धं गोपालबालं मां युवां देवौ किमिति प्रणतावित्यत आहतुः—कृष्णकृष्णेति। द्वित्वं द्वयोरेव युगपदुक्तेः। त्वं परः पुरुषो भगवान् तत्राप्याद्यः स्वयं भगवान् अतस्त्वं गोपालबालो भवस्येवेति भावः। हे महायोगिन्नचिन्त्यप्रभाव अस्मन्मोचकस्य तवैतद्बन्धनकारणमतर्क्यमिति भावः। सर्व-स्वरूपस्य तव केन बन्धनं सम्भवेदित्याहतुः—व्यक्ताव्यक्तं कार्यकारणात्मकम्॥ २९॥

**भावानुवाद**—यदि कहो कि आप लोग देवता हैं और मैं ग्वालबाल हूँ, तो फिर आप मुझे क्यों प्रणाम कर रहे हैं? इसके उत्तरमें कह रहे हैं—"कृष्ण कृष्ण।" यहाँपर दोनोंने एक ही साथ 'कृष्ण! कृष्ण!' कहा—इसलिए यहाँपर दो बार वर्णन हुआ है। "हे कृष्ण! आप परमपुरुष भगवान् हैं, उसमें भी आप स्वयं-भगवान् हैं, इसलिए गोपबालक हुए है। आप स्वेच्छामय हैं। हे महायोगिन्! आप अचिन्त्य प्रभाव-विशिष्ट हैं। हे हमारे मोचन कर्त्ता! आपके इस बन्धनका कारण भी तर्कातीत है। सर्वस्वरूप आपका बन्धन किस प्रकार सम्भव हो सकता है, क्योंकि ब्रह्मविद्गण इस कार्य-कारणात्मक विश्वको आपका स्वरूप जानते हैं॥"२९॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—ओखलको खींचते हुए यशोदानन्दन आश्चर्य-चकित होकर गर्दन घुमाकर उन देवपुरुषोंको देखने लगे। कुबेरनन्दन भी बालगोपालकी भक्त-वात्सल्य मूर्त्ति देखकर प्रेममें विभोर हो गये। उनके नेत्रोंसे झर-झर अश्रुधारा प्रवाहित होकर भूतलको प्लावित करने लगी। वे भूमिपर घुटने टेककर हाथ जोड़कर गद्गद कण्ठसे बालगोपालकी स्तुति करने लगे। कृष्णनामका यही स्वभाव है कि अपराधरहित विशुद्ध रसनामें यदि एकबार भी वह उच्चारित होता है, तो फिर स्वतः ही स्फूर्ति प्राप्त होनेके कारण निरन्तर उच्चारित होने

लगता है। नलकूबर और मणिग्रीव दोनोंने ही श्रीनारदके अनुग्रहसे अपराधशून्य होकर श्रीकृष्णके चरणोंमें भक्ति प्राप्त की है।

तत्त्वज्ञानाभिमानी या भक्तिरससे अनभिज्ञ व्यक्ति कहते हैं कि भगवान् अखण्ड सच्चिदानन्द वस्तु हैं, वे पाणि-पाद आदिसे विहीन हैं। यदि ऐसा ही होता, तो बाल-क्रीड़ापरायण और रस्सीसे बँधे हुए ग्वालबालको देखकर नलकूबर और मणिग्रीव ऐसे आत्मविभोर क्यों हुए? नलकूबर और मणिग्रीवने कहा—"हे महायोगिन्! आप आदि परमपुरुष हैं—हे बाललीला-रसामोदिन्! आप अचिन्त्य, अनन्त शक्तिके निकेतन हैं।" श्रीकृष्णकी अचिन्त्यशक्तिमें जिसे विश्वास नहीं है, वह उनका तत्त्व नहीं समझ सकता *'अणोरणीयान् महतो महीयान्'* आदि श्रुति वाक्योंसे जाना जाता है कि भगवान् क्षुद्रसे क्षुद्र हैं और बृहत्-से भी बृहत् हैं। परन्तु भगवान्की अचिन्त्यशक्तिमें विश्वास नहीं रहनेसे कोई भी उनकी क्षुद्रता और बृहत्त्वका सामञ्जस्य नहीं कर सकता है।

*विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यथो विदुः।*
*एकन्तु महतः स्रष्ट्र द्वितीयं तण्डसंस्थितः॥*
*तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञाता प्रमुच्यते॥*

श्रीश्रीधरस्वामिपादने कहा है—"श्रीभगवान् त्रिविध पुरुषरूपोंमें प्रकृति और प्रकृतिके कार्यरूप ब्रह्माण्डमें अवतीर्ण होकर जगत्का सृजन और पालन करते हैं। उनमेंसे प्रथम पुरुषावतारके रूपमें प्रकृतिमें दृष्टिपातकर महत्तत्त्व आदिकी सृष्टि करते हैं। (*तदैक्षत बहुस्याम् प्रजायेयम्*) द्वितीय पुरुषावतारके रूपमें प्रकृतिसृष्ट ब्रह्माण्डमें प्रवेशकर ब्रह्माण्डकी स्थितिका सम्पादन करते हैं—(*त्वत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्*) तृतीय पुरुषावतारके रूपमें प्रत्येक जीवके हृदयमें अधिष्ठित होकर उनकी समस्त इन्द्रियोंकी परिचालना करते हैं—(*ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति*)।" हे भगवन्! ये सभी पुरुषावतार आपके ही अंश हैं, अतएव आप *'परः पुरुषः'* अर्थात् आप पुरुषोत्तम हैं। वेदान्तविद् लोग आपको जगत्के एकमात्र मूल पुरुषके रूपमें निरूपण करते हैं। व्यक्त अर्थात् स्थूल-जगत् एवं

अव्यक्त अर्थात् जगत्के कारण पञ्चभूत, उसके कारण पञ्च तन्मात्राएँ, महत्तत्त्व एवं उनका कारण त्रिगुणमयी प्रकृति—ये सभी आपके स्वरूप हैं। आपके दृष्टिपात करनेसे ही क्रमानुसार महत्तत्त्व आदि उत्पन्न होते हैं। अतएव आप ही जगत्के एकमात्र मूल कारण हैं। जगत् आपका ही रूप है। आप ही जगत्के एकमात्र नियन्ता हैं॥ २९॥

**त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः।**
**त्वमेव कालो भगवान् विष्णुरव्यय ईश्वरः॥ ३०॥**

**त्वं महान् प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी।**
**त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित्॥ ३१॥**

**अन्वयः**—एकः (केवलमात्र) त्वं सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः (आप ही देह, प्राण, आत्मा, अहङ्कार तथा इन्द्रिय आदिके ईश्वर, एवं नियन्ता हैं) त्वं एव भगवान् विष्णुः (आप ही भगवान् विष्णु हैं) अव्ययः ईश्वरः (आप ही अव्यय और ईश्वर हैं) त्वं कालः (आप ही निमित्त कारण हैं) रजःसत्त्वतमोमयी (सत्त्व, रजः तमोमयी त्रिगुणात्मिका) सूक्ष्मा प्रकृतिः (सूक्ष्म प्रकृति हैं) त्वं महान् (आप ही महत्तत्त्व हैं) त्वं एव सर्वक्षेत्रविकारवित् (आप ही सभी क्षेत्रोंमें विकारवान् मन आदिके ज्ञाता हैं) [आप ही] अध्यक्षः पुरुषः (अन्तर्यामी पुरुष हैं)॥ ३०-३१॥

**अनुवाद**—हे भगवान्! सभी प्राणियोंकी देह, प्राण, अहङ्कार एवं इन्द्रियोंके नियन्ता या ईश्वर एकमात्र आप ही हैं। आप ही सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और अविनाशी ईश्वर हैं। आप ही काल एवं त्रिगुणात्मिका सूक्ष्म प्रकृति हैं। आप ही महत्-तत्त्व हैं। अन्तर्यामी होनेके कारण आप ही समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणके ज्ञाता हैं। आप ही समस्त स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंके कर्म, विकार, भाव, धर्म और सत्ताको जाननेवाले सबके साक्षी परमात्मा हैं। [तात्पर्य यह है कि वस्तु—भगवान्, वस्तुशक्ति—प्रकृति, वस्तुका अंश—पुरुष, वस्तुका कार्य—महत्-तत्त्व—ये सभी शुद्धाद्वैत विचारसे वास्तव-वस्तु हैं। अतः

वस्तु-तत्त्वके विचारसे ये सब अभिन्न हैं। गौड़ीय-वैष्णवोंके विचारमें स्वरूप, तद्रूपवैभव, जीव एवं प्रधान—परतत्त्वसे स्वतन्त्र नहीं हैं]॥ ३०-३१॥

**सारार्थदर्शिनी—**नच त्वदन्यो बन्धकः कोऽपीश्वरोऽस्तीत्याहतुः—त्वमिति। असवः प्राणाः आत्मा अहङ्कारः सर्वात्मकत्वात्त्वमेवैक ईश्वर इत्याहतुः—त्वमिति। कालो नाम तव चेष्टा महान् कार्यं प्रकृतिः शक्तिः पुरुषो अंशः कीदृशः अध्यक्षोऽन्तर्यामी सर्वेषु क्षेत्रेषु देहेषु विकारान् मन आदीन् वेत्ति अतो विष्णुरीश्वर एको भगवांस्त्वमेव॥ ३०-३१॥

**भावानुवाद—**हे प्रभो! आपके बिना संसारमें संयोजन करनेवाला दूसरा कोई समर्थ पुरुष नहीं है। एकमात्र आप ही समस्त प्राणियोंकी देह, प्राण, आत्मा और इन्द्रियसमूहके ईश्वर हैं। सर्वात्मक होनेके कारण आप ही एकमात्र ईश्वर हैं। काल आपकी चेष्टा है, महत्-तत्त्व आपका कार्य, प्रकृति आपकी शक्ति एवं पुरुष आपका अंश है। आप अध्यक्ष अर्थात् अन्तर्यामी हैं, समस्त शरीरोंके, मन आदि विकारोंके ज्ञाता हैं। अतएव आप ही विष्णु, आप ही ईश्वर, आप ही भगवान् हैं॥ ३०-३१॥

**गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः।**
**कोन्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः॥ ३२॥**

**अन्वयः—**गृह्यमाणैः (दृश्य रूपसे वर्त्तमान) प्राकृतैः विकारैः गुणैः (बुद्धि, अहङ्कार, इन्द्रिय आदिके द्रष्टा होकर भी) त्वं अग्राह्यः (आप उनके द्वारा ग्रहणीय नहीं होते हैं) [तब क्या जीवात्मा आपको जाननेमें समर्थ है? इसके उत्तरमें कह रहे हैं] गुणसंवृतः (गुणमय देहमें आबद्ध) कः नु (कौन् व्यक्ति) प्राक् सिद्धं (स्वप्रकाश रूपमें पूर्वसिद्ध) विज्ञातुम् अर्हति (आपको जाननेमें समर्थ हो सकता है?)॥ ३२॥

**अनुवाद—**[यदि मैं ही सबकुछ हूँ, तब क्या घटादि प्राकृत वस्तुके ज्ञानसे मेरा (स्वरूप) ज्ञान नहीं होता? यदि होता, तब तो सभी ब्रह्मवित् हो गये—इसी तत्त्वको परिस्फुट करनेके उद्देश्यसे इस श्लोककी अवतारणा हुई है] द्रष्टास्वरूप आप दृश्यरूपमें वर्त्तमान प्रकृतिजात बुद्धि, अहङ्कार एवं इन्द्रिय आदिके द्वारा ग्राह्य नहीं हैं।

(तो क्या जीवात्मा आपको जाननेमें समर्थ है, इसके उत्तरमें कह रहे हैं) इस संसारमें गुणमय देहमें आबद्ध कोई जीव अपने कारण रूपमें देह-उत्पत्तिके पहलेसे ही स्वतःप्रकाश स्वरूपमें वर्त्तमान आपको जाननेमें समर्थ हो सकता है क्या? अर्थात् स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरोंके आवरणसे ढका हुआ जीव समस्त कारणोंके कारण आपको अपनी बुद्धिसे नहीं जान सकता॥ ३२॥

**सारार्थदर्शिनी—**त्वत्कृपयैव त्वं दृश्यसे वस्तुतस्त्वमदृश्य एवेत्याहतुः—गृह्यमाणैस्त्वया दृश्यमाणैर्विकारैर्बुद्धीन्द्रियादिभिर्द्रष्टा त्वं न गृह्यसे, कीदृशैः? प्राकृतैर्गुणकार्यैस्तेनाप्राकृतैरगुणकार्यैर्बुद्धीन्द्रियादिभिः त्वं दृश्य एवेति भावः। नन्व-प्राकृत्वाज्जीवो जानातु नैवेत्याहतुः—कोऽन्विति। प्राक्सिद्धमिति त्वदीय-तटस्थशक्ति-विलासत्वाज्जीवस्यापि त्वं कारणमित्यर्थः। गुणसंवृत इति गुणातीतस्तु स तद्भक्त्या कथञ्चित् त्वां जानातीति भावः॥ ३२॥

**भावानुवाद—**आप कृपापूर्वक स्वयं ही दर्शन दे रहे हैं, अन्यथा वास्तवमें आप अदृश्य ही हैं, इसे ही *'गृह्यमाणैः'* आदि द्वारा कह रहे हैं। आप द्रष्टास्वरूप होनेके कारण दृश्यके रूपमें वर्त्तमान प्रकृति-सम्भूत बुद्धि, अहङ्कार और इन्द्रिय आदिके द्वारा ग्राह्य नहीं हैं। यहाँ प्राकृत गुणोंके कार्य द्वारा ग्रहणीय नहीं है, यह कहनेसे स्पष्ट है कि अप्राकृत निर्गुण बुद्धि और इन्द्रिय आदिके द्वारा आप दृश्य होते हैं। यदि कोई कहे कि जीवात्मा अप्राकृत है, अतएव वह आपको जान ले? इसके उत्तरमें कहते हैं—*'कोऽन्विह'*। अर्थात् इस संसारमें देह, गृह आदिमें आसक्त जीव सबके आदि स्वयं प्रकाश-स्वरूपमें वर्त्तमान परमपुरुष आपकी सत्ताको कैसे जान पायेंगे? जीव आपकी तटस्थाशक्तिका प्रकाश होनेपर भी आप ही उन जीवोंके भी कारण हैं। *'गुणसंवृतः'*—प्राकृत मायागुणोंसे आच्छादित, यह कहनेका तात्पर्य यह है कि गुणातीत (अप्राकृत) जीव आपकी भक्तिसे ही आपको जान सकता है॥ ३२॥

**तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे।**
**आत्मद्योतगुणैश्छन्न-महिम्ने ब्रह्मणे नमः॥ ३३॥**

**अन्वयः—**आत्मद्यौतैः (स्वप्रकाश-स्वरूप) गुणैः छन्नमहिम्ने (गुणोंके द्वारा आपकी महिमा प्रच्छन्न है) भगवते (महावैकुण्ठपति नारायण-स्वरूप)

वासुदेवाय (चतुर्व्यूहके अन्तर्गत प्रथमव्यूह वासुदेव-स्वरूप) वेधसे (प्राकृत-सृष्टिकर्त्ता सङ्कर्षण-स्वरूप एवं सर्वात्मक-स्वरूप) ब्रह्मणे (सर्वोपेक्षा बृहत्तम-स्वरूप) तुभ्यं नमः (आपको प्रणाम करता हूँ)॥ ३३॥

**अनुवाद**—हे भगवन्! स्वतःप्रकाशित गुणोंसे आपकी महिमा छिपी रहती है, आप महावैकुण्ठपति नारायण, चतुर्व्यूहके अन्तर्गत प्रथमव्यूह वासुदेव, प्राकृत सृष्टिकर्त्ता सङ्कर्षण-स्वरूप एवं सर्वात्मक ब्रह्म-स्वरूप हैं। आपको बार-बार नमस्कार है॥ ३३॥

**सारार्थदर्शिनी**—अतो दुर्ज्ञेयत्वात् केवलं प्रणमतस्तस्मैः इति। वेधसे विश्वकर्त्रे दुर्ज्ञेयत्वस्य कारणं गुणसंवृत इति। संवृतत्वमुक्तमेव पुनरपि स्पष्टयतः। आत्मना त्वयैव द्योतन्ते इति त्वत्प्रकाश्यैर्गुणश्छन्नो महिमा मेघैरिव रवेर्यस्य तस्मै॥ ३३॥

**भावानुवाद**—अतएव भगवान्के दुर्ज्ञेय होनेके कारण वे दोनों *'तस्मै'* आदिके द्वारा केवल उन्हें प्रणाम कर रहे हैं। *'वेधसे'*—विश्वविधाता। दुर्ज्ञेय होनेका कारण है कि *'आत्मद्योत-गुणैः'*—स्वतः प्रकाश गुणोंके द्वारा आपकी महिमा वैसे ही आच्छादित है, जैसे बादलोंके द्वारा सूर्यका प्रकाश आच्छादित होता है॥ ३३॥

**यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः।**
**तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसंगतैः ॥ ३४॥**

**स भवान् सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च।**
**अवतीर्णोऽशभागेन साम्प्रतं पतिराशिषाम्॥ ३५॥**

**अन्वयः**—[यदि कहो कि मैं परमेश्वर हूँ, यह तुमने कैसे जाना? इसके उत्तरमें कह रहे हैं] शरीरिषु (विग्रहधारी मत्स्य आदि अवतारोंमें) देहिषु असङ्गतैः (प्राकृत शरीरोंमें असम्भव) तैः तैः अतुल्यातिशयैः (उन अनुपम गुणयुक्त) वीर्यैः (पराक्रमोंको देखकर) यस्य अशरीरिणः अवताराः (जिनके प्राकृत शरीररहित अवतारके आविर्भावका) ज्ञायन्ते (लोग अनुमान करते हैं) सः भवान् (ऐसे आप) आशिषां पति (सर्वकल्याण प्रदाता) साम्प्रतं (इस समय)

सर्वलोकस्य (समस्त लोकोंको) भवाय (ऐश्वर्य भोग) च (और) विभवाय (मुक्ति प्रदान करनेके लिए) अंशभागेन (पूर्ण रूपसे) अवतीर्णः (आविर्भूत हुए हैं)॥ ३४-३५॥

**अनुवाद**—कूर्म, मत्स्य आदि रूप धारण करके आपने जैसा अतुलनीय पराक्रम दिखाया, वह साधारण प्राकृत शरीरधारियोंके लिए असम्भव है। ऐसा अतुलनीय पराक्रम देखकर ही लोग प्राकृत शरीररहित महापुरुषके आविर्भावका अनुमान लगा लेते हैं। प्रभो! आप ही समस्त प्रकारके कल्याणोंके प्रदाता हैं। इस समय आप समस्त जीवोंको सम्पद एवं मोक्ष प्रदान करनेके लिए ही पूर्ण रूपसे अवतीर्ण हुए हैं॥ ३४-३५॥

**सारार्थदर्शिनी**—सत्यं परमेश्वर एवम्भूतो भवत्येव, युवां तु मामेव परमेश्वरं केन लक्षणेन ब्रुवाथे तत्राहतुः-यस्य अवतारा मत्स्यादयः शरीरिषु मत्स्यादिजातिषु मध्ये ज्ञायन्ते अनुमीयन्ते। अशरीरिणः प्राकृतशरीररहितस्य तव कैः देहिषु जीवेष्वसङ्गतैरघटमानैः वीर्य्यैः प्रभावैः। स भवानवतारी खल्वेव भवसि। हस्तिसहस्रेणापि दुरुत्पाटनयोरावयोरर्ज्जुनयोरर्ज्जुनसमौजसो बाल्यलीलोदित-बललवेनाप्युत्पाटनात् रज्जूलूखलयोरपि तादृश-शक्त्यर्पणादिति भावः। भवाय भूत्यै विगतो भवो यस्मात्तस्मै मोक्षाय अंशभागेन अंशांशेन ब्रह्म रुद्रादिना आशिषां सर्वकामनानां पतिर्दाता यः स एवेत्यर्थः॥ ३४-३५॥

**भावानुवाद**—यह सच है कि परमेश्वर ऐसे ही होते हैं, परन्तु तुम कौन-से लक्षणोंके द्वारा मुझे परमेश्वर कह रहे हो? इसके उत्तरमें कह रहे हैं—मत्स्य, कूर्म आदि अवतारोंमें आपने जो असाधारण ऐश्वर्य दिखाया, वह प्राकृत देहोंमें असम्भव है। उसे देखकर ही लोग जान जाते हैं कि उनके बीच आपका अवतार हुआ है। निश्चित रूपमें आप वही अवतारी हैं, क्योंकि हजारों हाथी मिलकर भी जिन वृक्षोंको उखाड़ नहीं सकते थे, ऐसे अर्जुनके समान तेजस्वी हम दोनों अर्जुनवृक्षोंको आपने बाललीलामें सामान्य बलका प्रयोग करके ही उखाड़ दिया एवं रस्सी तथा ओखलको भी आपने वैसा ही सामर्थ्य अर्पित किया—यह भाव है। आप 'भवाय' जीवोंको सम्पद एवं 'विभवाय' जन्म-मरणरूप संसार जिससे समाप्त होता है, वह मोक्ष प्रदान करते हैं। *'अंशभागेन'*—अपने अंशके अंश ब्रह्मा तथा शिव

आदिके द्वारा जो सबकी कामनाओंको भी पूर्ण करनेवाले हैं, ऐसे आप ही पूर्ण रूपमें अवतीर्ण हुए हैं॥ ३४-३५॥

**नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल।**
**वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः॥ ३६॥**

**अन्वयः**—परमकल्याण (हे परमकल्याण!) [आपको] नमः (प्रणाम है) परममङ्गलं, (हे परममङ्गल-स्वरूप!) [आपको] नमः (प्रणाम है) शान्ताय यदूनां पतये वासुदेवाय नमः (हे शान्त-स्वरूप! हे यदुपति! हे वासुदेव! आपको प्रणाम है)॥ ३६॥

**अनुवाद**—हे परम कल्याण-स्वरूप! आपको नमस्कार है। हे परम मङ्गल-स्वरूप! आपको हमारा बार-बार प्रणाम है। हे परम शान्त-स्वरूप! आपको नमस्कार है। सभीके हृदयमें विहार करनेवाले यदुवंश-शिरोमणि वासुदेव! आपको नमस्कार है॥ ३६॥

**सारार्थदर्शिनी**—परमं कल्याण यस्मात्तस्मै, हे स्वयं च परममङ्गलस्वरूप॥ ३६॥

**भावानुवाद**—जिनसे परम कल्याण होता है एवं जो स्वयं परम मङ्गल-स्वरूप है, ऐसे आपको हम प्रणाम कर रहे हैं॥ ३६॥

**अनुजानीहि नौ भूमंस्तवानुचरकिङ्करौ।**
**दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात्॥ ३७॥**

**अन्वयः**—भूमन् (हे भूमन! हे विश्वरूप!) तव अनुचर किङ्करौ (आपके अनुचर शिवजीके किङ्कर) नौ (हम दोनोंको) अनुजानीहि (जानेके लिए आज्ञा प्रदान करें) ऋषेः (श्रीनारदके) अनुग्रहात् (अनुग्रहसे) नौ (हम दोनोंको) भगवतः (आपका) दर्शनं आसीत् (दर्शन प्राप्त हुआ)॥ ३७॥

**अनुवाद**—हे विश्व-स्वरूप! हम आपके अनुचर महादेवजीके सेवक हैं। अब हमें जानेकी अनुमति प्रदान कीजिये। देवर्षि श्रीनारदके अनुग्रहसे हमने आपके साक्षात् दर्शन प्राप्त किये हैं॥ ३७॥

**सारार्थदर्शिनी**—अनुचरस्य नारदस्य किङ्करौ॥ ३७॥

**भावानुवाद**—हम आपके अनुचर (भक्त) देवर्षि नारदके सेवक हैं। [श्रीधरस्वामीकी व्याख्याके अनुसार श्रीमहादेवके किङ्कर है]॥ ३७॥

**वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां**
**हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।**
**स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे**
**दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्॥ ३८॥**

**अन्वयः**—नः (हम दोनोंकी) वाणी तव गुणानुकथने (वाणी आपके गुणोंके कीर्त्तनमें) अस्तु (नियुक्त हो) श्रवणौ (कान) कथायां (आपके गुणोंका श्रवण करनेमें) हस्तौ कर्मसु (हम दोनोंके हाथ आपकी सेवामें) मनः तव पादयोः स्मृत्यां (मन आपके चरणकमलोंका स्मरण करनेमें लगे) शिरः तव निवास जगत् प्रणामे (मस्तक आपके अधिष्ठित सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको प्रणाम करनेमें नियुक्त हो) दृष्टिः (नेत्र) भवत्तनूनां (आपकी श्रीमूर्त्ति और) सतां (साधुओंके) दर्शने अस्तु (दर्शनमें नियुक्त हो)॥ ३८॥

**अनुवाद**—हे जगन्निवास! हमारी वाणी आपके मङ्गलमय गुणगानमें, कान आपकी रसमयी कथाके श्रवणमें, दोनों हाथ आपकी प्रीतिपूर्वक सेवामें, मन आपके चरणकमलोंके स्मरणमें, मस्तक आपके द्वारा अधिष्ठित इस निखिल ब्रह्माण्ड विशेषतः नारदादि भक्तोंको प्रणाम करनेमें एवं नेत्र आपके मूर्त्ति-स्वरूप सन्तोंके दर्शनमें रत रहें॥ ३८॥

**सारार्थदर्शिनी**—त्वदनुचर—किङ्करत्वादेवावयोस्त्वद्वात्सल्यातिशयमालक्ष्यान्यै र्दुर्ल्लभमपीदं प्रार्थयितुमुत्सहावहे इत्यभिव्यञ्जन्तावाहतुः वाणीति। अत्रैक एव चकार एवार्थकः प्रतिसप्तम्यन्तं योज्यः तेन तव गुणानुकथन एव वाणी भवतु न त्वन्यकथयामित्येवं सर्व्वत्र व्याख्येयम्। नः आवयोर्मनस्त्वदीय-पादयोः स्मृत्यां, निवासभूतानां जगतां जङ्गमानां नारदादिभक्तानां प्रणामे शिरोऽस्तु। हे निवास-जगदिति सम्बोधनपदं वा। भवत्तनूनां त्वन्मूर्ति-रूपाणाम्॥ ३८॥

**भावानुवाद**—आपके भक्तके सेवक होनेके कारण हमारे प्रति आपका असीम वात्सल्य लक्ष्यकर दूसरोंके लिए दुर्लभ होनेपर भी

ऐसी प्रार्थना करनेके लिए हम उत्साहित हुए हैं। हे कृष्ण! हमारी वाणी केवल आपके गुणानुवादमें रत रहे, अन्य किसी कथामें नहीं। हमारा मन आपके चरणयुगलोंके स्मरणमें ही रत रहे, अन्य किसी स्मरणमें नहीं। हमारा मस्तक आपके निवासस्वरूप श्रीनारद आदि भक्तोंको प्रणाम करनेमें सदा नियुक्त रहे। हमारे नयन सदा आपकी मूर्त्तिरूप साधुओंका दर्शन करनेमें अनुरक्त रहें, अन्य किसीके दर्शनमें नहीं॥ ३८॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—नलकूबर और मणिग्रीव श्रीकृष्णसे प्रार्थना करते हुए कहने लगे—हे भगवन्! आप सभीके देह, मन, प्राण, अहङ्कार तथा इन्द्रियाँ हैं। तात्पर्य यह है कि श्रीभगवान्‌की मायाशक्तिसे ही देह, प्राण आदिकी सृष्टि होती है, अतएव ये सभी उन्हींके स्वरूप हैं। केवल इतना ही नहीं, श्रीभगवान् अपनी मायाशक्तिके द्वारा ब्रह्माण्डरूपमें एवं ब्रह्माण्डस्थित देहादिरूपमें परिणत होकर स्वयं अन्तर्यामीरूपमें उनकी परिचालना भी करते हैं।

अतएव जगत्‌के जीव उचित-अनुचित जो कुछ भी करते हैं, वह आपकी मायाशक्तिके विकारस्वरूप अहङ्कारके कारण होता है। जीव श्रीभगवान्‌की मायाशक्तिके द्वारा रचित देहमें उन्हींकी मायाके द्वारा मुग्ध होकर आत्मबुद्धि करके सत्-असत् कर्म करते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि जीव अपने किये हुए कर्मके लिए उत्तरदायी नहीं है, परन्तु देखा जाता है कि जीव निरन्तर अपने शुभाशुभ कर्मका फल भोग रहा है। इसका कारण है कि जीव जगन्नियन्ताका कर्त्तृत्त्व न स्वीकार करके अपनेको कर्त्ता मान बैठा है। 'मैं कर्त्ता हूँ, यह मैंने ही किया'—वह ऐसा अभिमान करता है। इस दुरभिमानके कारण ही जीव विविध प्रकारके कर्मफलोंका भोग कर रहा है। नलकूबर और मणिग्रीवने देवर्षि श्रीनारदकी कृपासे सुबुद्धि प्राप्त की है, इसलिए वे अपने किये हुए अपराधके लिए लज्जित होकर तथा अपना कर्त्तृत्त्व छोड़कर दुरभिमानसे मुक्तिके लिए श्रीकृष्णके चरणोंमें शरणागत हुए हैं।

श्रीभगवान्‌की अचिन्त्य महाशक्ति उनकी लीलाकी सहायिका है। इसलिए उनकी एक-एक लीलामें ऐसे कुछ अलौकिक भाव रहते हैं

जिन्हें कोई ग्रहण नहीं कर सकता। भगवान् सर्वव्यापी हैं—सभी शास्त्रोंमें इसकी घोषणा की गयी है एवं इसे सभी जानते हैं। परन्तु वे अपनी अचिन्त्य अनन्त शक्तिके प्रभावसे बालक देह प्रकट करके श्रीवृन्दावनमें ग्वालबालोंके साथ लीला करते हैं—यह देखकर या सुनकर मायामुग्ध जीव किसी प्रकारसे भी उनके अखिल ब्रह्माण्ड-पालक होनेकी धारणा नहीं कर सकते। वे आप्तकाम और परिपूर्ण आनन्दस्वरूप होकर भी श्रीवृन्दावनमें गोपरमणियोंके साथ लीला-विनोद करते हैं, मूढ़ जीव इसे नहीं समझ सकते, क्योंकि वे अपार संशय और अविश्वासमें अन्धे हो चुके हैं। *'अज्ञश्चाश्रद्धानश्च संशयात्मा विनश्यति'*—जो श्रीभगवान्‌की लीला एवं स्वरूपादिके ज्ञानसे विहीन, श्रद्धाहीन और संशययुक्त हैं, वे अतिशीघ्र विनाशको प्राप्त होते हैं।

मायामुग्ध जीवोंको श्रीभगवान्‌के नाम, रूप, गुण और श्रीविग्रह आदिमें भी विश्वास नहीं होता। उनकी बात तो दूर रहे, यहाँ तक कि जो चिरकालसे भगवान्‌के नाम, रूप, गुण और लीलाकथाका आश्रय ग्रहण किये हुए हैं एवं जिन्होंने श्रीविग्रहकी सेवामें आत्मनियोग किया है, ऐसे भक्तगण भी कभी-कभी भगवान्‌के दुर्विज्ञेय और दुर्वितर्क्य लीलातत्त्वको ग्रहण नहीं कर पाते हैं।

नलकूबर और मणिग्रीव अपनी विद्या, बुद्धि, बल, पौरुषसे भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करनेके प्रयासको तिलाञ्जलि देकर उनके चरणोंमें शरणागत होकर कहने लगे—हे भगवन्! आपके स्वरूपतत्त्वको जाननेकी शक्ति किसीमें भी नहीं है। इसलिए हम भी इसके लिए लालायित नहीं हैं। केवल आपके चरणोंमें मस्तक झुकाकर हम प्रणाम कर सकें, यही हमारी प्रार्थना है। आपके चरणोंमें शरणागत होनेके लिए या प्रणाम करनेके लिए हमें आपके स्वरूपज्ञानकी आवश्यकता नहीं है। आप इस व्रजधाममें बाललीला-रसके आवेशमें स्वरूपानन्दका आस्वादन कर रहे हैं। पुनः आप ही महावैकुण्ठमें नारायणरूपमें महा-ऐश्वर्यका प्रकाशकर अवस्थित हैं। आप ही वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धके रूपमें चतुर्व्यूहका विस्तारकर जगत्‌का पालनादि कार्य कर रहे हैं। जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणोंके द्वारा वाष्पके रूपमें समुद्र आदिसे जल आकर्षणकर

उसे बादलरूपमें परिणत कर देते हैं, फिर स्वयं ही बादलोंसे आच्छादित होकर जगत्से अदृश्य हो जाते हैं, उसी प्रकार आप भी अर्थात् जगत्की सृष्टि करनेकी इच्छासे अपनी बहिरङ्गाशक्ति मायाको अपनेसे पृथक्कर, उसके प्रति दृष्टिपातकर उसे महत्-तत्त्व आदि जगत्-रूपमें परिणत करते हैं एवं उससे अपनेको आच्छादितकर जगत्के लिए अदृश्य हो जाते हैं। आप अपने भक्तवात्सल्य, प्रेमाधीनता आदि गुणोंसे अपने स्वरूपको ढककर प्रेमवान भक्तोंके प्रेमके अनुरूप अवस्थान करते हैं।

जो मायामुग्ध भी नहीं हैं तथा प्रेमवान भी नही हैं, ऐसे भक्तिमिश्र ज्ञानसिद्ध और योगसिद्ध लोगोंके निकट आप निर्विशेष ब्रह्मरूपमें या परमात्माके रूपमें प्रकाशित होकर अपने नाम, रूप, गुण आदिको आच्छादित करके रहते हैं। हे प्रभो! आपके चरणोंमें शरणागति ही जीवोंके लिए एकमात्र उपाय है। आपके चरणोंमें शरणागत होनेके लिए हम पुनः-पुनः प्रार्थना करते हैं।

भगवान् जब मत्स्य, कूर्म आदि रूपोंमें अवतरित होकर लीला करते हैं, तो उन अवतारोंके शरीरोंका प्राकृत शरीरके साथ क्या पार्थक्य है, इसकी धारणा करना अति कठिन होता है। भगवान् जब वराहके रूपमें जलमग्न पृथ्वीको ढूँढ़ने जा रहे थे, तब प्राकृत वराहकी भाँति पथको सूँघते हुए जा रहे थे। *'घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन्'* (श्रीमद्भागवत)। श्रीभगवान् मायामुग्ध जीवोंके निकट आत्मगोपन करनेके लिए इसी प्रकार प्राकृत आचरण करते हैं। *'लुकाइते नारे कृष्ण भक्तगण स्थाने।'* परन्तु वे अपने अप्राकृत स्वरूपको प्राकृत आचरण द्वारा जितना भी छिपानेका प्रयास क्यों न करें, उनके चरणाश्रित भक्तगण उन्हें पहचान ही लेते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण अपने नित्यसिद्ध सच्चिदानन्द स्वरूपका प्राकृत अनुकरणके द्वारा कितना ही आच्छादन क्यों न करें, उस आच्छादनमें भी ऐसा कुछ अलौकिक विशेषत्व होता है, जो प्राकृत देहमें सम्भव नहीं हो सकता। उनके चरणाश्रित भक्तगण इस अलौकिक महाप्रभावको देखकर उन्हें भगवान्के रूपमें पहचान लेते हैं तथा तत्क्षणात् उनके चरणोंमें पतित होकर प्रणाम करते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

*यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदुर्ज्जितमेव वा।*
*तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽंश सम्भवम्॥*

(गीता १०/८२)

अर्थात् हे अर्जुन! ऐश्वर्य, सौन्दर्य या सम्पत्तियुक्त तथा शक्ति, प्रभाव आदिसे युक्त जो-जो वस्तुएँ हैं, उन समस्त वस्तुओंको तुम मेरे तेज या शक्तिके अंशसे उत्पन्न जानो।

नलकूबर और मणिग्रीव बाल-गोपाल श्रीकृष्णका कोई कृपा-आदेश पानेके लिए विविध प्रकारसे प्रार्थना करने लगे। परन्तु यशोदानन्दनने उन्हें कोई उत्तर नहीं दिया। तब दोनोंने मन-ही-मन विचार किया कि हम इस देव-देहसे इनकी साक्षात् सेवाका अधिकार प्राप्त नहीं कर सकते। शुद्धभक्तिका अनुष्ठान करते-करते यदि हमें साक्षात् सेवाके उपयुक्त गोप-गोपी देह प्राप्त हो जाये, तभी श्रीकृष्ण हमें अपनी सेवाके लिए कृपादेश प्रदान कर सकते हैं।

श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण, लीला आदिका श्रवण और कीर्त्तन करनेपर ही हमारी इन्द्रियोंकी सार्थकता होगी। अब हम श्रवण, कीर्त्तन आदि शुद्धाभक्तिका पालन करके अपने जीवनको सफल बनायेंगे। इस प्रकार उन दोनोंके हृदयमें भगवान्‌की भक्ति करनेकी भावनाका उदय श्रीनारद मुनिके अमोघ-दर्शन और क्षणभरके सङ्गके कारण ही हुआ॥ ३०-३८॥

**श्रीशुक उवाच—**

**इत्थं सङ्कीर्तितस्ताभ्यां भगवान् गोकुलेश्वरः।**
**दाम्ना चोलूखले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ॥ ३९॥**

**अन्वयः—**श्रीशुकः उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा) ताभ्यां इत्थं (उन दोनोंके द्वारा पूर्वोक्त प्रकारसे) सङ्कीर्तितः (स्तव-स्तुति किये जानेपर) भगवान् गोकुलेश्वरः दाम्ना (गोलोकपति भगवान् श्रीकृष्णने रस्सीके द्वारा) उलूखले बद्धः (ओखलमें आबद्ध होकर ही) प्रहसन् (हँसते हुए) गुह्यकौ (कुबेरपुत्रोंको) आह (कहा)॥ ३९॥

**अनुवाद**—श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—उनके द्वारा इस प्रकारसे स्तुति किये जानेपर सौन्दर्य-माधुर्यनिधि गोकुलेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने, जो कि स्वयं ही ओखलसे बँधे हुए थे, मुसकराते हुए उन कुबेरके दोनों पुत्रोंसे कहा॥ ३९॥

**सारार्थदर्शिनी**—सङ्कीर्तितः संस्तुतः दाम्ना चकारात् प्रेम्णा च बद्धः प्रहसन्निति प्रहासोऽयमेते उपदेवादयो मन्मायया बद्धाः स्वमोचनार्थं यं मां स्तुवन्ति सोऽयं यशोदादिगोपीभिर्दाम्ना प्रेम्णा च बद्धोऽभीक्ष्णं भर्त्सितः स्नेहेन गोकुले तिष्ठामि। अत्रत्यानां तासां भर्त्सनेनाहं यथा प्रीये न तथाऽनयोः स्तुत्येति व्यञ्जयति॥ ३९॥

**भावानुवाद**—*'सङ्कीर्तितः'*—इस प्रकार दोनों कुबेरपुत्रोंके द्वारा प्रार्थना करनेपर माँ यशोदाके प्रेमवशतः रज्जु द्वारा बँधे हुए भगवान् दामोदरने हँसते-हँसते उनसे कहा। *'प्रहसन्'*—यहाँ श्रीकृष्णके हँसनेके कारणका वर्णन कर रहे हैं—ये उपदेवता नलकूबर और मणिग्रीव मेरी मायाके द्वारा बद्ध होकर अपने उद्धारके लिए जो मेरी स्तुति कर रहे हैं, परन्तु वही मैं मैया यशोदा आदि गोपियोंकी प्रेम-डोरीमें बँधकर बार-बार उनके स्नेहसे डाँट-डपट खाते हुए गोकुलमें वास कर रहा हूँ। इस व्रजमें गोपियोंकी फटकारसे मैं जितना तृप्त होता हूँ, उतनी तृप्ति मुझे इन दोनोंकी स्तुतिसे नहीं हो रही है॥ ३९॥

**श्रीभगवानुवाच—**

**ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना।**
**यच्छ्रीमदान्धयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोऽनुग्रहः कृतः॥ ४०॥**

**अन्वयः**—श्रीभगवान् उवाच (श्रीभगवान्ने कहा) करुणात्मना (परम दयालु) ऋषिणा (नारदजीने) श्रीमदान्धयोः (धनमदमें मत्त आप दोनोंके प्रति) वाग्भिः (शापके द्वारा) विभ्रंशः (स्वर्गसे पतनरूप जो) अनुग्रहः (कृपा) कृतः एतत् पुरा एव मम ज्ञातं (की, उससे मैं पहलेसे ही अवगत हूँ)॥ ४०॥

**अनुवाद**—श्रीभगवान्ने कहा—तुम दोनों ऐश्वर्यमदसे उन्मत्त हो रहे थे। परम कारुणिक देवर्षि नारदने शापके द्वारा तुम्हें सौन्दर्य एवं

स्वर्गसे भ्रष्ट करके तुम्हारे ऊपर जो महान् अनुग्रह किया, उसे मैं पहलेसे ही जानता हूँ॥ ४०॥

**सारार्थदर्शिनी**—वाग्भिः *"न ह्यन्यो जुषतो ज्योष्यानि"* इत्यादिभिः श्रीविभ्रंशरूपोऽनुग्रह एव कृत इति॥ ४०॥

**भावानुवाद**—परम दयालु देवर्षि श्रीनारदने अभिशापके द्वारा सौन्दर्य तथा ऐश्वर्यसे भ्रष्ट कराकर तुमलोगोंपर परम अनुग्रह ही किया है॥ ४०॥

**साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम्।**
**दर्शनान्नो भवेद्बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा॥ ४१॥**

**अन्वयः**—सुतरां (अतएव) मत्कृतात्मनां (एकान्तिक भावसे मेरे प्रति आसक्तचित्त) समचित्तानां (सर्वत्र तुल्यदर्शी) साधूनां (महापुरुषोंके) दर्शनात् (साक्षात्कारसे) सवितुः यथा (सूर्यके दर्शनसे जैसे) अक्ष्णोः (आँखोंका बन्धन अर्थात् अन्धकार नहीं रहता, वैसे ही) पुंसः (जीवमात्रका संसार-बन्धन समाप्त हो जाता है)॥ ४१॥

**अनुवाद**—जिस प्रकार सूर्यके दर्शनसे नेत्रोंका अन्धकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार मेरे प्रति एकान्त भक्तिभावमें आसक्त समदर्शी महापुरुषोंके साक्षात् दर्शनसे जीवोंका किसी प्रकारका बन्धन नहीं रह सकता है॥ ४१॥

**सारार्थदर्शिनी**—ननु, तं दृष्ट्वाप्यसंमानयतोरावयोस्तदनुग्रहः कथं सम्भवेत्तत्राह—साधुनामिति। समचित्तानां स्वमानापमानाभ्यामक्षुभ्यतां सुतरामतिशयेन मय्येव कृत आत्मा मनो यैस्तेषां दर्शनान्तःदर्शनपर्यन्त एव। यद्वा, दर्शनेनान्तो नाशो यस्य सः। सवितुर्दर्शनादक्ष्णोर्बन्धस्तमःकृतो यथा नश्यति तथेति तेनान्धानां सवितुर्दर्शनादपि यथा तमो न नश्यति तथैव नानापराध मलीमस-मानसानामसुराणां श्रीनारदादिदर्शनादपि न बन्धक्षय इति विज्ञापितम्॥ ४१॥

**भावानुवाद**—यदि तुम (नलकूबर और मणिग्रीव) कहो कि देवर्षि नारदको देखकर भी हमने उनका कोई सम्मान नहीं किया, फिर हमारे प्रति उनका अनुग्रह कैसे सम्भव है? इसके उत्तरमें

श्रीभगवान् कह रहे हैं—साधुलोग सर्वत्र समदर्शी होते हैं। अपने मान-अपमानमें वे कभी विचलित नहीं होते। जिन्होंने सर्वान्तःकरणसे मेरे चरणोंमें आत्मसमर्पण कर दिया है, ऐसे साधुओंके दर्शनमात्रासे ही जीवका भवबन्धन उसी प्रकार नष्ट जाता है, जिस प्रकार सूर्यके दर्शनसे नेत्रोंका अन्धकार नष्ट हो जाता है। किन्तु जिस प्रकार सूर्यके दर्शन द्वारा भी अन्धे व्यक्तिका अन्धकार दूर नहीं होता है, उसी प्रकार विविध प्रकारके अपराधोंके द्वारा मलिनचित्त असुरोंका नारद आदि ऋषियोंके दर्शनसे भी बन्धन क्षय नहीं होता है—ऐसा जानना होगा॥ ४१ ॥

**तद्गच्छतं मत्परमौ नलकूबर सादनम्।**
**सञ्जातो मयि भावो वामीप्सितः परमोऽभवः॥ ४२ ॥**

**अन्वयः**—नलकूबर (हे नलकूबर!) तत् (इसलिए) मत्परमौ (मुझमें चित्तको लगाकर) सादनं गच्छतम् (तुमलोग अपने स्थानमें जाओ) मयि (मेरे प्रति) वां (आप दोनोंका) परमः इप्सितः (परम अभिलषित) भावः सञ्जातः (प्रेम उदय हुआ है) [अतएव] अभवः (तुम्हें संसार-दशा प्राप्त नहीं होगी)॥ ४२ ॥

**अनुवाद**—हे नलकूबर! मेरे परायण तुम दोनों अब अपने स्थानपर चले जाओ। तुम दोनोंके हृदयमें मेरे प्रति परम वाञ्छित और अभीष्ट भक्तिभावका अङ्कुर उत्पन्न हो गया है, जिसके फलस्वरूप तुम्हें कभी भी संसार-दशा प्राप्त नहीं होगी॥ ४२ ॥

**सारार्थदर्शिनी**—प्राधान्यादेकं सम्बोध्याह—हे नलकूबर! अहमेव परमः सेव्यो ययोस्तथाभूतौ सन्तौ। सादनं सदनं, न भवः संसारो यतः सः॥ ४२ ॥

**भावानुवाद**—यहाँ प्रधानताके कारण एकको सम्बोधनपूर्वक कह रहे हैं—हे नलकूबर! मैं ही एकमात्र परम सेव्य हूँ। इस प्रकार तुम्हारी मुझमें पराभक्ति हो गयी है। अब तुम दोनों मेरा चिन्तन करते हुए अपने भवनको प्रस्थान करो। *'अभवः'*—जिस भावको प्राप्त करनेसे संसार-बन्धन नहीं होता, मेरे प्रति तुम्हारे हृदयमें वही परम वाञ्छित भक्तिभाव उत्पन्न हुआ है॥ ४२ ॥

**श्रीशुक उवाच—**

**इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः।**
**बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम्॥ ४३॥**

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ब्रह्मसूत्रभाष्ये पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे यमलार्ज्जुनभञ्जनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥**

**अन्वयः—**श्रीशुकः उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा) इति उक्तौ (इस प्रकार श्रीभगवान्‌के द्वारा कहे जानेपर) बद्धोलूखलं (ओखलमें बँधे हुए) तं (कृष्णकी) परिक्रम्य (प्रदक्षिणाकर) पुनः पुनः प्रणम्य (पुनः-पुनः प्रणामकर) च (तथा) आमन्त्र्य (आज्ञा लेकर) उत्तरां दिशं जग्मतुः (उत्तर दिशाकी ओर चले गये)॥ ४३॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके दशम अध्यायका
अन्वयः समाप्त।

**अनुवाद—**श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—जब भगवान्‌ने इस प्रकार कहा, तब उन दोनोंने ओखलसे बँधे हुए श्रीकृष्णकी परिक्रमा की, उन्हें पुनः-पुनः प्रणाम किया एवं उनकी आज्ञा लेकर उनकी स्तुति करते हुए उत्तर दिशाकी ओर चले गये॥ ४३॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके दशम अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

**सारार्थदर्शिनी—**उलूखले बद्धं बद्धोलूखलम्। आहिताग्न्यादिः॥ ४३॥

इति सारार्थदर्शिन्यां हर्षिण्यां भक्तचेतसाम्।
दशमे दशमोऽध्यायः सङ्गतः सङ्गतः सताम्॥

इति श्रीमद्भागवत-दशमस्कन्धे श्रीविश्वनाथचक्रवर्ति-ठक्कुर-कृता
दशमोऽध्यायस्य सारार्थदर्शिनी-टीका समाप्ता॥ १०॥

**भावानुवाद—**यहाँ *'बद्धोलूखलम्'*—उलूखले बद्धः, यहाँ *'आहिताग्नि'* इत्यादि पदकी भाँति समास हुआ है, अर्थात् ओखलमें बँधे हुए बालगोपालकी पुनः-पुनः प्रदक्षिणा और प्रणामकर उनकी आज्ञा लेकर वे उत्तर दिशाकी ओर चले गये॥ ४३॥

इस प्रकार भक्तोंको आनन्द देनेवाली दशम-स्कन्धके दसवें अध्यायकी सज्जन-सम्मत 'सारार्थदर्शिनी' टीका समाप्त हुई।

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके दसवें अध्यायकी श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर विरचित सारार्थदर्शिनी टीकाका भावानुवाद समाप्त।

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—नलकूबर और मणिग्रीवने ओखलमें बँधे हुए यशोदानन्दनके स्वरूप, ऐश्वर्य और महिमा आदिके वर्णनके द्वारा उनकी स्तुति की और अन्तमें *'वाणी गुणानुकथने'* आदि श्लोकोंके माध्यमसे निरन्तर श्रवण-कीर्त्तनादि साधनभक्ति याजनकी शक्ति और प्रवृत्ति प्राप्त करनेके लिए वरकी प्रार्थना की। श्रवण, कीर्त्तन आदि नवधा साधनभक्तिमेंसे नलकूबर और मणिग्रीवने सहजसाध्य समझकर केवल छः प्रकारकी भक्ति याजन करनेके लिए ही वरकी प्रार्थना की। अवशेष तीन अङ्ग उनके द्वारा सम्भव न होनेके कारण उन्होंने दैन्यवश उनके लिए प्रार्थना नहीं की।

*'वाणी गुणानुकथने'* आदि श्लोककी चर्चा करनेपर स्पष्ट देखा जाता है कि उन्होंने श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, अर्चन, पादसेवन और वन्दन—इन छः प्रकारके भक्ति-अङ्गोंके याजनका अधिकार माँगा है। दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—इन तीन भक्ति-अङ्गोंके लिए उन्होंने प्रार्थना नहीं की, क्योंकि श्रवण-कीर्त्तन आदि करते-करते चित्त शुद्ध होनेपर दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन करनेकी शक्ति स्वतः प्राप्त होती है। श्रवण, कीर्त्तन आदि भक्ति-अङ्गोंका अशुद्ध चित्तसे भी अनुष्ठान किया जा सकता है। हमारा चित्त कितना भी अशुद्ध क्यों न हो, मुखसे कृष्णनाम करनेमें, कानसे कृष्णकथा सुननेमें, भक्तके मुखसे सुनकर कृष्णकथाका स्मरण करनेमें, पुष्प-तुलसी आदि चयन करनेमें, *'कृष्णाय नमः'* कहकर सचन्दन तुलसी पत्र आदि उनके चरणोंमें अर्पण करनेमें या श्रीकृष्णके उद्देश्यसे प्रणाम करनेमें कोई भी बाधा नहीं है। परन्तु "मैं उनका दास हूँ" ऐसी भावना करनेमें या "कृष्ण मेरे प्रियतम हैं" इस प्रकारकी भावना होनेके लिए या विक्रीत पशुकी भाँति अपने देह-दैहिकादिको श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पण

करनेके लिए चित्तशुद्धि अति आवश्यक है। चित्त शुद्ध न होनेपर या हृदयमें सांसारिक वस्तुओंके प्रति आसक्ति रहनेपर मुखसे तो कहा जा सकता है कि "मैं कृष्णका दास हूँ", "मेरे स्त्री-पुत्र आदि सब कृष्णके दास-दासी हैं", "यह सम्पूर्ण विषय-वैभव कृष्णका है", परन्तु व्यवहारके समय सबकुछ विपरीत ही होगा।

नलकूबर और मणिग्रीवने पहले *'तवानुचरकिङ्करौ'*—"हम आपके दासोंके दासानुदास हैं", इस प्रकार अपना परिचय देकर साधनभक्तिके याजनके लिए श्रीकृष्णके चरणोंमें दीनतापूर्वक निवेदन किया। श्रीकृष्णने भी प्रसन्नचित्तसे हँसते हुए कहा—"हे नलकूबर-मणिग्रीव! परम दयालु नारद ऋषिके अनुग्रहसे तुमलोग कृतार्थ हुए हो। अन्यथा अपने भक्तोंके चरणोंमें अपराध करनेवालोंका तो मैं मुख भी नहीं देखता। तुम दोनों केवल देवर्षि नारदकी कृपासे ही मेरा दर्शन कर पाये हो, इसका तुम्हें अनुभव है। जैसा कि पहले तुम दोनोंने कहा था—*'दर्शनं नौ भगवत् ऋषेरासीदनुग्रहात्'*—'हे भगवन्! एकमात्र देवर्षि नारदकी कृपासे ही हमने आपका दर्शन प्राप्त किया है।' तुम दोनोंके इस कथनसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। मेरे भक्तोंके चरणोंमें अपराध होनेपर यदि वे क्षमा न करें, तो कोई व्यक्ति कभी भी कृपा प्राप्त नहीं कर सकता। अब तुम्हें चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि देवर्षि नारदकी कृपासे तुम कृतार्थ हो गये हो, तुम्हारे हृदयमें अनन्य भक्ति-वासनाका बीज अङ्कुरित हो गया है। अतः तुमलोग निश्चिन्त होकर अपने स्थानको लौट जाओ एवं भक्तिका याजनकर उसके रसास्वादनमें अपने जीवनको धन्य करो।"

श्रीकृष्णकी कृपाशीर्वादरूपी वाणीको श्रवणकर नलकूबर और मणिग्रीव अपनेको महा-सौभाग्यशाली मानते हुए विचार करने लगे—'हमारा जीवन धन्य हो गया। अब हम श्रीकृष्णके इस आशीर्वादको शिरोधार्यकर उनके नाम, रूप, गुण लीलादिका श्रवण, कीर्त्तन आदि करते हुए जीवन व्यतीत करेंगे।' यह निश्चितकर वे व्रजधाम छोड़कर देवधाममें जानेके लिए तत्पर हुए। जानेसे पहले वे ओखलसे बद्ध श्रीकृष्णकी परिक्रमा करने लगे। परिक्रमा करते समय उनके अतुल ऐश्वर्य और अपार करुणाका स्मरणकर दोनोंके नेत्रोंसे

अविरल अश्रुधारा विगलित होने लगी। वे विचार करने लगे—भगवान् यदि अपने अनन्त-ब्रह्माण्डव्यापी विग्रहमें विराजमान रहते, तो उनकी परिक्रमा करनेका सामर्थ्य किसमें हो सकता था? इसलिए वे अनुग्रह-कातर होकर अपने विग्रहको बालकके रूपमें प्रकट कराकर व्रजमें लीला कर रहे हैं। इस प्रकार हमें भी परिक्रमा करनेका सुयोग देकर कृतार्थ कर रहे हैं।

नलकूबर-मणिग्रीव श्रीकृष्णकी परिक्रमा करके पुनः-पुनः प्रणाम करने लगे। मानो बार-बार प्रणाम करके भी उनकी तृप्ति नहीं हो रही थी। इतने दिन तक धनके अभिमानसे उन्नत उनका सिर कभी नीचे नहीं झुका, परन्तु आज देवर्षि नारदकी अपार करुणासे उनका गर्वित मस्तक श्रीकृष्णके चरणोंमें बार-बार प्रणत हो रहा था। इस प्रकार श्रीकृष्णको पुनः-पुनः प्रणाम करनेके पश्चात् उन्होंने माँ यशोदा द्वारा प्रदत्त डोरी, जिससे कृष्णकी कमर बँधी हुई थी, उसे तथा श्रीकृष्णके पीछे स्थित ओखलको भी प्रणाम किया। *'नमस्तेऽस्तु दाम्ने स्फुरद्दीप्तिधाम्ने'* आदि पद्मपुराणीय दामोदराष्टक स्तुतिमें देखा जाता है—श्रीकृष्णकी उदर-बन्धन-रस्सी सबके लिए प्रणम्य है। तत्पश्चात् व्रजस्थित गोप, गोपी, पशु-पक्षी, तृण, गुल्म, लता, वृक्ष आदि सभीको प्रणामकर वे दोनों श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रार्थना करने लगे। हे दामोदर! हे भक्तवात्सल्यके समुद्र! हम जहाँ कहीं भी रहें, आपकी अपार करुणा और भक्तवात्सल्यको कभी न भूलें। इस प्रकार श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रार्थनाकर वे दोनों देवर्षि नारदकी अयाचित कृपा तथा कृष्णकी कृपाका स्मरणकर भावविभोर होकर 'कृष्ण-कृष्ण' कहते हुए उत्तर दिशामें अपने भवनकी ओर चले गये॥ ३९-४३॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके दसवें अध्यायकी
भावप्रकाशिकावृत्ति समाप्त।

# ग्यारहवें अध्यायकी कथाका सार

इस अध्यायमें नन्दादि गोपोंकी सपरिवार वृन्दावनकी यात्राका तथा कृष्णकी वत्सासुर और वकासुर-वध लीलाओंका वर्णन हुआ है।

दोनों यमलार्जुन वृक्षोंके गिरनेका भयङ्कर शब्द सुनकर वज्रपातकी आशङ्कासे समस्त गोप घटना स्थलपर उपस्थित हुए। वहाँपर उन्होंने देखा कि दोनों यमलार्जुन वृक्ष टूटकर गिरे हुए हैं तथा कृष्ण भी वहींपर ओखलसे बँधे हुए हैं। वे लोग वृक्षोंके टूटनेका क्या कारण है, इसका निर्णय न कर सके। अतः उन्होंने विचार किया कि अवश्य ही कृष्णका अनिष्ट करनेकी इच्छासे किसी असुरका ही यह कार्य है। वहाँपर उपस्थित गोपबालकोंने उन्हें यमलार्जुन वृक्षोंके गिरनेका यथायथ कारण बतलाया, तथापि ऐश्वर्य-ज्ञानशून्य गोपोंको उन बालकोंकी बातोंपर विश्वास नहीं हुआ। तत्पश्चात् नन्द महाराजने कृष्णको ओखलके बन्धनसे खोला। इस प्रकार कृष्ण नित्य नयी-नयी बाल-लीलाओंके द्वारा व्रजवासियोंको वात्सल्यरसका आस्वादन करा रहे थे। एकदिन एक फल बेचनेवालीको देखकर कृष्ण अपने छोटे-छोटे हाथोंमें अन्नके दाने लेकर उसके पास गये। शीघ्र गातिसे जाते समय उनके हाथोंसे अन्नके दाने प्राय गिर गये थे, केवल कुछ दाने ही उनके हाथोंमें बच गये। परन्तु कृष्णका दर्शन करते ही फल बेचनेवालीका हृदय स्नेहसे द्रवित हो गया तथा उसने कृष्णके हाथोंसे उन कुछेक अन्नके दानोंको लेकर ही कृष्णके दोनों हाथोंको फलोंसे भर दिया। उधर कृष्णने भी उसकी खाली टोकरीको रत्नोंसे भर दिया। तत्पश्चात् गोकुलमें नाना प्रकारके उत्पात होते देखकर समस्त गोपोंने वृद्ध उपानन्दजीसे परामर्शकर गोकुलसे वृन्दावन जानेका निश्चय किया। दूसरे दिन ही सभी व्रजवासी गोकुलको त्यागकर वृन्दावन आ गये। वहाँपर कृष्ण-बलरामने बाल्यलीला समाप्तकर पौगण्डलीलामें गोचारण आदि करते हुए बछड़ोंके बीचमें बछड़ेका रूप

धारणकर प्रविष्ट हुए वत्सासुरका एवं बकरूपी बकासुरका वध किया। कृष्णके सखागण व्रजमें आकर अपने माता-पिता आदिको कृष्णकी उन समस्त लीलाओंको सुनाते थे, किन्तु वे व्रजवासीजन वात्सल्यरसमें मुग्ध होनेके कारण कृष्णकी इन ऐश्वर्यपूर्ण लीलाओंके विषयमें सुनकर अथवा देखकर भी उनपर विश्वास नहीं कर पाते थे।

# एकादशोऽध्यायः

## श्रीकृष्णका दामबन्धन-मोचन, फल विक्रयिणीकी कथा, श्रीवृन्दावनमें आगमन, श्रीकृष्ण द्वारा नन्दादिका वत्सपालन, वत्सासुर और बकासुरका विनाश

**श्रीशुक उवाच—**

**गोपा नन्दादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम्।**
**तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशङ्किताः॥ १॥**

**अन्वयः**—श्रीशुकः उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले) कुरुश्रेष्ठ (हे कुरुश्रेष्ठ!) नन्दादयः गोपाः (नन्द-महाराज आदि गोपगण) पततोः द्रुमयोः रवं श्रुत्वा निर्घात भयशङ्किताः (गिरते हुए वृक्षोंके शब्दको सुनकर वज्रपातकी आशङ्कासे) तत्र आजग्मुः (वहाँपर उपस्थित हुए)॥ १॥

**अनुवाद**—श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे कुरुश्रेष्ठ! जब दोनों वृक्ष गिरे, तब ऐसा प्रचण्ड शब्द हुआ जिसे सुनकर नन्द आदि गोपोंके मनमें भयपूर्वक सन्देह हुआ कि कहीं वज्रपात तो नहीं हुआ है। ऐसा सोचकर वे लोग वृक्षोंके निकट उपस्थित हुए॥ १॥

### सारार्थदर्शिनी टीका

एकादशे हरेर्मोक्षः फलक्रयकथादिकम्।
वृन्दावनागम वत्सावनं वत्सबकार्द्दनम्॥

**भावानुवाद**—इस ग्यारहवें अध्यायमें दामबन्धनसे श्रीकृष्णका मोचन, फलविक्रयिणीकी कथा, श्रीवृन्दावनमें आगमन, वत्सपालन,

वत्सासुर और बकासुरका विनाश आदि लीलाओंका वर्णन हुआ है॥ ०॥

**भूम्यां निपतितौ तत्र ददृशुर्यमलार्ज्जुनौ।**
**वभ्रमुस्तदविज्ञाय लक्ष्यं पतनकारणम्॥ २॥**

**अन्वयः**—तत्र भूम्यां निपतितौ यमलार्ज्जुनौ ददृशुः (वहाँपर भूमिपर गिरे हुए यमलार्ज्जुन वृक्षोंको देखा) लक्ष्यं (प्रत्यक्ष रूपसे सामने देख कर भी) पतन कारणं अविज्ञाय वभ्रमुः (वृक्षोंके पतनका कारण जाननेमें सन्देह युक्त हो गये)॥ २॥

**अनुवाद**—वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने देखा कि दोनों अर्जुनवृक्ष भूमिपर गिरे हुए हैं। यद्यपि वृक्षोंके गिरनेका कारण-स्वरूप बालक (कृष्ण) सामने ही था, तथापि वे इसे लक्ष्य न कर पानेके कारण संशययुक्त हो गये॥ २॥

**सारार्थदर्शिनी**—तत् तयोः पतनकारणं बालकं लक्ष्यं लक्षयितुं शक्यमपि अविज्ञाय प्रेम्णा तादृशयोग्यताकत्वेनासम्भाव्य बभ्रमुः॥ २॥

**भावानुवाद**—*'तत्पातन-कारणम्'*—उन दोनों अर्जुनवृक्षोंके गिरनेके प्रत्यक्ष कारण-स्वरूप बालगोपालको सम्मुख देखकर भी श्रीनन्द महाराज आदि गोपोंने प्रेमकी अधिकताके कारण ऐसे कार्यको सम्भव नहीं माना और संशययुक्त हो गये॥ २॥

**उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धञ्च बालकम्।**
**कस्येदं कुत आश्चर्यमुत्पात इति कातराः॥ ३॥**

**अन्वयः**—च (और) दाम्ना (रस्सीसे) बद्धं उलूखलं विकर्षन्तं (बँधे हुए ओखलको खींचते हुए) बालकं (कृष्णको देखकर) कस्यं इदं आश्चर्यं (यह आश्चर्यजनक कार्य किसका है) कुतः (कहाँ-से, कैसे) उत्पातः (यह उत्पातः हुआ) इति कातराः (यह विचारकर वे उद्विग्न हो गये)॥ ३॥

**अनुवाद**—कृष्ण तो रस्सीसे बँधे होकर ओखलको खींच रहे थे। अतः नन्दादि गोपोंके सन्देहयुक्त होनेका कारण था कि यह आश्चर्यजनक कार्य किसका है एवं कहाँ-से और किस कारणसे यह उत्पात उपस्थित हुआ है? यह सोचकर वे लोग बहुत ही उद्विग्न हो पड़े॥ ३॥

**सारार्थदर्शिनी**—भ्रममेवाह कस्येदं कर्म? कुतो हेतोस्तस्मादाश्चर्यमेतदुत्पात इति निश्चित्य कातराः। भाग्येन विधात्रा बालः कृष्णो रक्षित इति व्याकुला बभूवुः॥ ३॥

**भावानुवाद**—नन्दादि गोपोंके सन्देहका कारण कह रहे हैं—*'कस्येदम्'*—यह किसका कार्य है? अर्थात् किस व्यक्तिने ऐसा आश्चर्यजनक कार्य किया है? कहाँ-से एवं किस कारणसे यह उत्पात आकर उपस्थित हुआ है? सौभाग्यसे आज विधाताने इस बालकृष्णकी रक्षा की है। इस प्रकार कहते हुए वे अत्यधिक व्याकुल हो गये॥ ३॥

**बाला ऊचुरनेनेति तिर्यग्गतमुलूखलम्।**
**विकर्षता मध्यगेन पुरुषावप्यचक्ष्महि॥ ४॥**

**अन्वयः**—बालाः (वहाँपर अवस्थित गोपबालकोंने) ऊचुः (श्रीनन्द महाराज आदिसे कहा) तिर्यग् गतं (तिरछे अवस्थित) उलूखलं विकर्षता मध्यगेन (ओखलको दोनों वृक्षोंके बीचमेंसे जाकर खींचकर) अनेन (कृष्णने) इति (वृक्षोंको उखाड़ दिया) [तब इन वृक्षोंसे] पुरुषौ (दो दिव्य पुरुषोंको) [निकलते हुए] अदि (भी) अचक्ष्महि (हमने देखा)॥ ४॥

**अनुवाद**—वहींपर अवस्थित गोपबालकोंने कहा—अरे, यह कार्य तो इसी कन्हैयाका ही है। यह दोनों वृक्षोंके बीचमें फँसे हुए ओखलको खींच रहा था, इतनेमें ही ये वृक्ष गिर पड़े। इन वृक्षोंमेंसे दो दिव्य पुरुष भी प्रकट हुए, यह हमने अपनी आँखोंसे देखा है॥ ४॥

**सारार्थदर्शिनी**—अनेन कृष्णेन वृक्षयोर्मध्यगतेन तिर्यग्गतमुलूखलं विकर्षतेत्येतन्मात्रं बाला ऊचुः। सम्भ्रान्तत्वेन पूर्णवचनाशक्तरेतावुत्पाटिताविति तु नोचुः। अविश्वसतस्तान् पुनरूचुः। वृक्षाभ्यां निर्गतौ द्वौ पुरुषावप्यचक्ष्महि दृष्टवन्तो वयमिति॥४॥

**भावानुवाद**—*'अनेन'*—"इस कृष्णने दोनों वृक्षोंके बीचमें प्रवेशकर तिरछे गिरे हुए ओखलको खींचते-खींचते"—गोपबालकोंने केवल इतना ही कहा, किन्तु 'वृक्षोंको उखाड़ दिया'—सम्पूर्ण वाक्य नहीं कहा। यह सुनकर गोपोंने इस बातपर विश्वास नहीं किया। अतः फिरसे बालकोंने कहा—"हमने अपनी आँखोंसे इन गिरे हुए वृक्षोंसे दो पुरुषोंको भी निकलते हुए देखा है॥"४॥

**न ते तदुक्तं जगृहुर्न घटेतेति तस्य तत्।**
**बालस्योत्पाटनं तर्वोः केचित् सन्दिग्धचेतसः॥५॥**

**अन्वयः**—ते (नन्द महाराज आदिका कृष्णके प्रति ममतासे द्रवीभूत चित्त होनेके कारण उन्होंने उसके प्रभावका विचार नहीं किया) तस्य बालस्य (इस कृष्णके) [द्वारा] तत् तर्वोः उत्पाटनं (उन दोनों वृक्षोंको उखाड़ना) न घटेत (सम्भव नहीं है) इति (इस कारण) तदुक्तं (बालकोंकी बात) न जगृहुः (सत्य नहीं हो सकती, ऐसा मानने लगे) [किन्तु] केचित् (उनमेंसे कोई-कोई 'गुणोंमें नारायणके समान', ऐसे गर्गवचनका स्मरणकर) सन्दिग्ध चेतसः (गोपजन सन्देहयुक्त होने लगे)॥५॥

**अनुवाद**—श्रीकृष्णके प्रति अत्यधिक ममताके कारण नन्द आदि प्रमुख गोपोंने नन्हेसे बालककृष्णके द्वारा वृक्षोंका उखाड़ना असम्भव मानकर गोपबालकोंकी बातोंपर विश्वास नहीं किया। किन्तु उनमेंसे कोई-कोई गोप "यह बालक नारायणके समान गुणोंसे युक्त होगा"—गर्गाचार्यके इन वचनोंका स्मरण करके "ऐसा हो भी सकता है"—इस प्रकारसे सन्देह करने लगे॥५॥

**सारार्थदर्शिनी**—ते नन्दादयः तस्मिन्ममतार्द्रचित्तत्वात् तत्प्रभावाननुसन्धानात् तदुक्तं न जगृहुः। केचिदन्ये तु *"नारायणसमो गुणैः"* इति गर्गोक्तिस्मृत्या स्वाभाविकप्रेमोदयेन च सन्दिग्धचेतस एव बभूवुः॥५॥

**भावानुवाद**—*'न ते'*—कृष्णके प्रति अत्यधिक ममताके कारण द्रवित चित्तवाले तथा कृष्णके प्रभाव एवं ऐश्वर्यकी अनदेखी करनेवाले श्रीनन्द महाराज आदि गोपोंने बालकोंकी बातोंपर विश्वास नहीं किया। किन्तु "यह बालक नारायणके समान गुणोंवाला है"—गर्गाचार्यके इस वचनका स्मरणकर स्वाभाविक प्रेम उदित होनेके कारण कोई-कोई गोप सन्देह भी करने लगे॥ ५॥

**उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजम्।**
**विलोक्य नन्दः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह॥ ६॥**

**अन्वयः**—नन्दः दाम्नाबद्धं उलूखलं विकर्षन्तं स्वं आत्मजं विलोक्य प्रहसद्वदनः (नन्द महाराजने अपने पुत्रको रस्सीसे बँधी हुई स्थितिमें ओखलको खींचते हुए देखकर हँसते हुए) विमुमोच ह (उसे बन्धनसे मुक्त कर दिया)॥ ६॥

**अनुवाद**—नन्द महाराजने रस्सीसे बँधी हुई अवस्थामें ओखलको खींचनेवाले अपने प्राणोंसे भी प्यारे पुत्रको देखकर हँसते हुए उसे बन्धनसे मुक्त कर दिया॥ ६॥

**सारार्थदर्शिनी**—विलोक्य विशेषेणाङ्गप्रत्यङ्गं निर्बाधं दृष्ट्वा प्रहसद्वदन इति मत्क्रोडादपि यस्याः क्रोडं त्वमतिप्रियं मन्यसे सा त्वज्जननी त्वामल्पापराधेनैव बध्नाति स्म तत्त्वामहं कथं मोचयामीत्युपालम्भनद्योतकः प्रहासः। *"त्वं माययैव जीवानां बन्धमोक्षौ यथा व्यधाः। तथा त्वत्पितरौ तौ ते प्रभो प्रेम्णैव चक्रतुः"*॥ ६॥

**भावानुवाद**—*'विलोक्य'*—श्रीनन्द महाराज रस्सीसे बँधकर ओखलको खींचनेवाले अपने पुत्रके सिरसे पैर तक समस्त अङ्गोंको विशेष रूपसे देखकर हँसने लगे। "मेरी गोदसे भी तुम्हें जिसकी गोद अत्यधिक प्रिय है, तुम्हारी उसी मैयाने तुम्हें अल्पमात्र अपराधके कारण बाँध दिया है। अतएव मैं तुम्हें कैसे मुक्त करूँ?" इस प्रकारके उलाहनेका प्रकाश करते हुए नन्द बाबाने हँसते-हँसते कृष्णके बन्धनको खोल दिया।

*'त्वं माययैव'* इत्यादि कारिकाका अर्थ यह है—हे प्रभो! तुम जिस प्रकार मायाके द्वारा जीवोंको बाँधते तथा खोलते हो, उसी प्रकार ही तुम्हारे माता-पिताने तुम्हें प्रेमसे बाँध दिया तथा बन्धनसे

मुक्त भी कर दिया। (अर्थात् माता यशोदाने प्रेमसे तुम्हें बाँध दिया एवं पिता नन्द महाराजने उस बन्धनसे तुम्हें मुक्त कर दिया)॥ ६॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने ओखलको खींचनेके बहाने दोनों अर्जुनवृक्षोंको उखाड़कर नलकूबर और मणिग्रीवका उद्धार किया। उन दोनों वृक्षोंके गिरनेपर व्रजवासी गोपोंने सैकड़ों वज्रपातोंसे भी भीषणतर प्रचण्ड शब्द सुना। शब्द सुनकर सभी कृष्णके अमङ्गलकी आशङ्कासे व्याकुल हो गये। सभी विचार करने लगे कि कृष्णके जन्मके पश्चात् व्रजमें बहुत-सी आकस्मिक दुर्घटनाएँ देखी जा रही हैं जो केवल कृष्णका अमङ्गल करनेके लिए ही हो रही हैं। अतः आज न जाने कौन-सी विपत्ति फिरसे आ गयी। "हे नारायण! रक्षा करो, रक्षा करो, व्रजके जीवनस्वरूप कृष्णके जीवनकी रक्षा करो।"—इस प्रकार आर्त्तनाद करते हुए कृष्णके लिए व्याकुल होकर समस्त व्रजवासी गोपगण नन्दालयकी ओर दौड़ पड़े।

वे लोग यह विचार करते हुए जा रहे थे कि आकाशमें मेघोंके बिना वज्रपात कैसे हो गया? अथवा यशोदानन्दनका अनिष्ट करनेके लिए फिरसे कोई दैत्य आ गया है? इस प्रकार विचार करते-करते वहाँपर आकर उन्होंने देखा कि उनके जन्मके बहुत पहलेसे ही जो दो विशाल अर्जुनवृक्ष नन्दालयके एक भागमें खड़े थे, वे दोनों जड़ सहित उखड़कर धराशायी हो गये हैं। यह देखकर नन्दादि गोपगण अत्यन्त विस्मित होकर कहने लगे—"यह क्या हो गया? अचानक दोनों महावृक्ष कैसे गिर गये?"

*बिना वातं बिना वर्षां विद्युत्प्रपतनं विना।*
*बिना हस्तिकृतं दोषं केनासौ पातितौ द्रुमौ॥*

(श्रीगोपालचम्पूः)

इस समय आँधी, तूफान, वर्षा, वज्रपात आदि कुछ भी तो नहीं हुआ और न ही यहाँपर कोई हाथी है कि जिसने इन्हें खींचकर गिरा दिया हो। तो फिर ये दोनों गगनचुम्बी वृक्ष कैसे गिर पड़े? क्या किसी महाबली, महापराक्रमी व्यक्तिने इन महावृक्षोंको गिरा दिया? इस

प्रकार वे अनेक प्रकारकी कल्पना करके भी वृक्षोंके गिरनेका कोई कारण स्थिर नहीं कर सके।

वृक्षोंके गिरनेका यथार्थ कारण-स्वरूप नन्दनन्दन ही ओखलके साथ रस्सीसे बँधे हुए उन लोगोंके पास अवस्थित थे। परन्तु उनका बाल-विग्रह विशाल वृक्षोंकी शाखाओंकी आड़में रहनेके कारण नन्द आदि गोप वहाँ आकर भी उन्हें देख नहीं पाये।

नन्द महाराज आदि गोपगण वात्सल्यप्रेमकी घनीभूत मूर्त्ति हैं। अतएव वे यदि ओखलसे बँधे हुए यशोदानन्दनको देख भी लेते, तो भी वे कृष्णको वृक्षोंके उखड़नेका कारण नहीं समझते, क्योंकि उनके वात्सल्यप्रेम-सिन्धुमें कृष्णका कोई भी ऐश्वर्य दृष्टिगोचर नहीं होता है। वे उन्हें केवल अपना पुत्र ही मानते हैं। वे जानते हैं कि हमारे गृहदेवता नारायण ही सभी प्रकारसे हमारे पुत्रकी समस्त विपत्तियोंसे रक्षा करते हैं।

इस प्रकार अभी वे इस विषयमें सोच-विचार कर ही रहे थे कि तभी वहाँपर उपस्थित कृष्णके सहचर ग्वालबाल अङ्गुलीसे कृष्णको दिखाकर कहने लगे—वृक्षोंके गिरनेका कारण हम जानते हैं। हमने अपनी आँखोंसे देखा कि यह कृष्ण ओखलको खींचते हुए दोनों वृक्षोंके बीचमेंसे जा रहा था। जब यह दूसरी ओर निकल गया तो पीछेसे घिसटनेवाला यह ओखल इन वृक्षोंके बीचमें तिरछा अटक गया और जब इसने जोरसे ओखलको खींचा, तो ये दोनों वृक्ष गिर पड़े। केवल इतना ही नहीं, हमने देखा कि दोनों वृक्षोंके गिरनेके बाद इनसे दो देवता निकले, जो कृष्णके निकट जाकर इससे कुछ कहने लगे। फिर कृष्णने भी हाथ हिलाकर उन्हें कुछ कहा। तब वे कृष्णको बीचमें रखकर कई बार इसके चारों ओर घूमे तथा बार-बार इस कृष्णको प्रणाम करके उत्तर दिशामें चले गये। बालकोंके अङ्गुलीसे सङ्केत करनेपर नन्द आदि गोपोंकी दृष्टि वृक्षोंकी शाखाओं, पत्तोंसे ढके हुए कृष्णपर पड़ी। उन्होंने देखा कि कृष्ण रस्सीके द्वारा ओखलसे बँधा हुआ है एवं भयभीत होकर चकित दृष्टिसे ओखलको खींचनेका प्रयास कर रहा है। यह दृश्य देखकर नन्द महाराज शीघ्रतासे कृष्णके निकट पहुँचे एवं उसके शरीरके समस्त अङ्गोंको

ध्यानसे देखने लगे कि कहीं गिरे हुए वृक्षोंकी शाखा-प्रशाखा आदिके आघातसे इसके सुकोमल अङ्गोंमें चोट तो नहीं लगी। परन्तु जब उन्होंने देखा कि इसके शरीरपर एक खरोंच तक नहीं आयी है, तो उन्हें कुछ शान्ति मिली तथा उन्होंने अपने आराध्य भगवान् नारायणको धन्यवाद दिया। परन्तु मन-ही-मन विचार करने लगे कि इस सुकोमल अङ्गवाले बालकको इस प्रकार ओखलके साथ किसने बाँधा?

नन्द बाबाको निकट आते हुए देखकर नन्दनन्दन पहले तो डर गये। वे मन-ही-मन विचार करने लगे—आज मैंने दहीका मटका तोड़ दिया, माक्खन बिखेर दिया, इसलिए मैयाने मुझे बाँध दिया। अब न जाने बाबा इस अपराधके कारण मुझे कौन-सा दण्ड देंगे। नन्द बाबाने कृष्णको भयभीत देखकर उन्हें सान्त्वना देनेके लिए अपने हृदयके सभी भावोंको छिपाकर हँसते-हँसते—'मेरे लाड़ले! मेरे जीवन-स्वरूप' इस प्रकार कहते हुए उन्हें गोदमें लेनेके लिए दोनों हाथोंको बढ़ाया। नन्दबाबाके मुसकराते मुखमण्डलको देखकर नन्दनन्दन आनन्द-समुद्रमें डूब गये। उन्होंने भी बाबाकी गोदमें जानेके लिए दोनों हाथोंको बढ़ा दिया। तब नन्दबाबाने कृष्णकी कमरमें बँधी हुई रस्सीको खोल दिया और उन्हें गोदमें उठाकर बार-बार उनके मुखकमलका चुम्बन करने लगे तथा मस्तक सूँघने लगे।

इससे पहले जब माता यशोदा कृष्णको बाँधकर घरके कार्योंमें व्यस्त हो गयीं, तो उस समय पहले तो कृष्णने स्वयं ही उस रस्सीको खोलनेका प्रयास किया, परन्तु सफल न हो सके। तत्पश्चात् सखाओंने भी बहुत प्रयास किया, परन्तु वे भी उनका बन्धन खोल नहीं सके। तत्पश्चात् कृष्ण द्वारा ओखलको खींचते-खींचते वृक्षोंके बीचमें ले जाकर बलपूर्वक खींचनेसे दोनों वृक्षोंके पातालस्पर्शी जड़ोंका बन्धन भी टूट गया, परन्तु माँ यशोदाकी सुकोमल डोरीका बन्धन नहीं टूटा। इससे स्पष्ट है कि माँ यशोदाका बन्धन अतीव सुदृढ़ है। उनके वात्सल्यप्रेममें इतनी शक्ति है कि सर्वशक्तिमान स्वयं-भगवान् भी विविध चेष्टा करके उनके वात्सल्य प्रेमके बन्धनसे मुक्त नहीं हो सके। परन्तु नन्द बाबाने आकर उस बन्धनको बायें

हाथके अङ्गुठे और तर्जनीके संयोगसे सहज ही खोल दिया एवं कृष्णको बन्धनसे मुक्तकर गोदमें लेकर प्यार करने लगे।

इसलिए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्तिपादने कहा है—

*त्वं माययैव जीवानां बन्धमोक्षौ यथा व्यधाः।*
*तथा तत्पितरौ तौ ते प्रभो प्रेम्नैव चक्रतुः॥*

हे सर्वेश्वर! आप जिस प्रकार अपनी मायाके द्वारा जगत्-जीवोंका बन्धन करते हैं एवं उनके बन्धनका मोचन भी करते हैं, वैसे ही आपके माता-पिताने प्रेमके द्वारा आपको बाँधा एवं बन्धनसे मुक्त भी किया है।

श्रील जीव गोस्वामीने स्वरचित गोपालचम्पूः ग्रन्थमें उसके पश्चात् की लीलाका वर्णन करते हुए लिखा है—तब नन्दबाबा कृष्ण-बलरामको लेकर यमुनाके तटपर पहुँचे तथा दोनों बालकोंको स्नान कराकर उन्होंने स्वयं भी स्नान किया। तत्पश्चात् गोशालामें जाकर उन्हें मिश्रीके साथ भरपेट धारोष्ण-दूध (गायके थनसे मुखमें उष्ण दूधकी धार) पिलाया तथा अपने अन्तःभवनसे लगे बैठकमें बालकोंके साथ कुछ देर विश्राम करने लगे। अब शाम हो गयी थी। इधर रोहिणी माता जो प्रातःकालसे ही उपानन्दजीके घर गयी थीं, वे भी आ गयी थीं। वृक्षोंके गिरनेके भयानक दृश्यको देखकर यशोदा मैया चेतनारहित कठपुतली जैसी बन गयी थीं। रोहिणी मैयाने सोचा कि किसी भी प्रकारसे बालगोपालको यशोदाकी गोदमें बिठाना है। अतः उन्होंने बलरामसे कहा—"बलराम! जाकर कृष्णका हाथ पकड़कर यहाँ ले आ।" बड़े भइया बलराम कन्हैयाके पास जाकर उसका हाथ पकड़कर खींचते हुए कहने लगे—"कन्हैया मैयाके पास चल।" परन्तु आज कृष्णने उनके हाथको ऐसा झटका मारा कि बलराम भूमिपर गिर पड़े।

यह देखकर रोहिणी मैया स्वयं आकर कन्हैयासे कहने लगीं—"कन्हैया! चल! मैयाके पास चल।"

कृष्ण बोले—"नहीं, मैं नहीं जाऊँगा।"

तब रोहिणी बोलीं—"मैयाके पास नहीं जाओगे, तो खाओगे क्या?"

कृष्ण बोले—"बाबा मिश्री खिलायेंगे और जब गैयाका दूध काढ़ेंगे तब मैं धारोष्ण दूध पीऊँगा।"

रोहिणी मैयाने पूछा—"अच्छा, तो तू सोयेगा कहाँ?"

कन्हैयाने कहा—"बाबाके पास सोऊँगा।"

रोहिणी बोलीं—"अच्छा, तो तू मैयाके पास बिलकुल नहीं जायेगा?"

कृष्ण बोले—"नहीं।"

यह सुनकर रोहिणी बोलीं—"अच्छा, तेरी मैया यदि 'जय सियाराम' हो जाय (अर्थात् परलोक सिधार जाये), तब क्या करेगा?"

यह सुनते ही कन्हैया हाथ पसारकर 'मैया! मैया!' कहकर जोर-जोर-से रोने लगे। तब रोहिणी मैया कन्हैयाको गोदमें उठाकर भीतर भवनमें ले गयीं और यशोदा मैयाकी गोदमें बैठा दिया। कृष्ण 'मैया, मैया' कहकर यशोदाका गला पकड़कर रोने लगे। यशोदा मैया भी अपनेको रोक नहीं सकीं। वे भी कृष्णको अपनी छातीसे चिपकाकर जोर-जोर-से रोने लगीं। उस समय वहाँपर जितनी भी माताएँ थीं एवं नन्दबाबा आदि वहाँ थे, वे सभी रोने लगे। तब यशोदा मैयाने कृष्णको स्तनपान कराया। रोहिणी मैयाने आसन बिछाकर नन्दबाबा और कृष्ण-बलरामको बैठाया। नन्द बाबाने कृष्णसे कहा—"बेटा! अपनी मैयाको पकड़कर यहाँ ले आओ।" अभी तक यशोदा माँ छिपकर बैठी थीं, लज्जाके कारण वे नन्द महाराजके सामने नहीं आ पा रही थीं। बाबाकी बात सुनकर कृष्ण भीतर गये तथा मैयाका आञ्चल पकड़कर उन्हें बाहर ले आये। तब मैयाने भोजन परोसा। नन्द बाबाने पहले कृष्ण-बलरामको खिलाया, तत्पश्चात् स्वयं भी भोजन किया। तब घरके सभी लोगोंने भोजन किया। धन्य है महान वात्सल्यप्रेम! धन्य हैं प्रेमाधीन भगवान्! धन्य हैं प्रेमवान परिकर! प्रभु निरन्तर जिनके प्रेमके वशीभूत रहते हैं॥ १-६॥

**गोपीभिः स्तोर्भितोऽनृत्यद्भगवान् बालवत् क्वचित्।**
**उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयन्त्रवत्॥ ७॥**

**अन्वयः**—क्वचित् (कभी) गोपीभिः स्तोभितः (गोपियोंके द्वारा हाथ ताली बजाकर कृष्णको प्रोत्साहित किये जानेपर) भगवान् अखिलैश्वर्य (अखिल ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान्) बालवत् (बालककी भाँति) मुग्धः (मुग्ध होकर) उद्गायति (गान करते हैं) क्वचित् (कभी) दारुयन्त्रवत् (कठपुतलीकी भाँति) तद्वशः (उनके वशीभूत) [होकर] अनृत्यत् (नृत्य करते हैं)॥ ७॥

**अनुवाद**—कृष्ण! यदि तुम नृत्य करोगे तो तुम्हें खाँड़का लड्डू देंगी, इत्यादि बातोंसे और कभी ताली बजाकर गोपियाँ उन्हें फुसलाया करती थीं। तब वे अखिल ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् होकर भी भोले-भाले अनजान बालकके समान मुग्ध होकर गान करने लगते और कभी कठपुतलीकी भाँति गोपियोंके वशीभूत होकर नृत्य करने लगते थे॥ ७॥

**सारार्थदर्शिनी**—पित्रोस्तयोः सौभाग्यमहिमा केन वक्तुं शक्य-स्तदीय-व्रजवासिमात्रस्याप्यतिमात्रवश्यो ब्रह्मादिवशीकर्त्तापि कृष्ण इत्याह—सार्द्धत्रयोदशभिः। स्तोभितः यदि नृत्यसि तदा तुभ्यं खण्डलड्डुकं दास्यामीति प्रोत्साहितः। बालवत् यथान्यः प्राकृतो बालस्तद्वदेवेत्यर्थः। मुग्धस्तासां प्रेम्णैव निजैश्वर्याननुसंधानात्। दारुयन्त्रं सूत्रप्रोत-पुत्तलिका॥ ७॥

**भावानुवाद**—माता यशोदा एवं नन्दबाबाके सौभाग्यकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है? जिन्होंने ब्रह्मादिको भी वशीभूत किया है, ऐसे परब्रह्म श्रीकृष्ण समस्त व्रजवासियोंके प्रेमाधीन बने हुए हैं। इसे ही साढ़े तेरह श्लोकोंमें कह रहे हैं। गोपियाँ उन्हें प्रलोभन देती हैं—हे कृष्ण! यदि तुम नाच दिखाओगे, तो तुम्हें यह खोयेका लड्डू देंगी। इस प्रकार कृष्ण भी साधरण बालककी भाँति गोपियोंके वात्सल्यप्रेमके अधीन होकर अपना ऐश्वर्य भूलकर कठपुतलीकी भाँति कभी नाचते और कभी गान करते॥ ७॥

**बिभर्त्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम्।**
**बाहुक्षेपञ्च कुरुते स्वानाञ्च प्रीतिमावहन्॥ ८॥**

**अन्वयः**—क्वचित् (कभी) आज्ञप्तः (यह ले आ, ऐसा आदेश पाकर) पीठकोन्मानपादुकं (पादुका, पीढ़ी, उन्मान-गेहूँ, चावल आदि नापनेवाले पात्र-विशेष आदिको) बिभर्त्ति (लानेमें असमर्थ होनेपर, केवल उसे पकड़कर बैठ जाते) स्वानां (अपने जनोंकी) प्रीतिं च आवहन् (प्रीति उत्पादन करते हुए) बाहुक्षेपं च क कुरुते (दोनों हाथ ऊपर उठाते हुए पराक्रम दिखाने लगते)॥ ८॥

**अनुवाद**—कभी-कभी गोपियाँ कृष्णको आदेश करती—"कृष्ण! वह पादुका लाओ, कृष्ण! (दुसेरी आदि तौलनेका) बटखरा लाओ, चावल आदि मापनेका पात्र लाओ। कृष्ण! पीढ़ी लाओ।" यह सुनकर कृष्ण मानो इन सब वस्तुओंको लानेमें समर्थ नहीं हैं—ऐसा भाव प्रकाशित करके उन वस्तुओंको पकड़कर वहीं बैठ जाते और कभी आत्मीयजनोंको आनन्दित करनेके लिए बार-बार दोनों भुजाओंको उठाकर पहलवानोंकी भाँति अपना पराक्रम दिखाने लगते॥ ८॥

**सारार्थदर्शिनी**—पीठकेति। कियदस्य बलमभूदिति जिज्ञासुभिः प्रथमं हे कृष्ण! पादुकामानयेति ततस्ततोऽधिकभारमुन्मानमानयेति, ततस्ततोऽप्यधिकभावं पीठकमानयेत्याज्ञप्त आदिष्टस्तत्तदानयन् बिभर्त्ति स्वमृदुलजठरोपरीत्यर्थः। बाहुक्षेपं तत्र तत्र कर्माणि भुजौ मुहुरुत्थाप्य स्वपराक्रमदर्शनात् स्वानां ज्ञातीनाम्॥ ८॥

**भावानुवाद**—कृष्णका कितना दैहिक बल हुआ है, इसे जाननेके लिए गोपियाँ पहले कृष्णको कहतीं—"कन्हैया! बाबाकी पादुका तो ले आ।" तब वे पादुका उठा लाते। फिर वे उससे भी अधिक भारी उन्मान (धान, गेहूँ आदि मापनेका पात्र) लानेको कहतीं, फिर उससे भी भारी पीढ़ा लानेको कहतीं। इस प्रकार गोपियोंके आदेशोंका पालन करनेके लिए कभी तो कृष्ण उन्हें उठा लाते तथा कभी उन वस्तुओंको पकड़कर वहींपर बैठ जाते या उन वस्तुओंको अपने कोमल पेटसे लगाकर खड़े रह जाते, जिससे यह प्रकाशित हो, कि वे उन वस्तुओंको लानेमें असमर्थ हैं। कभी आत्मीय स्वजनोंका आनन्दवर्द्धन करनेके लिए बार-बार अपनी दोनों भुजओंको ऊपर उठाते हुए वे पहलवानोंकी भाँति अपना पराक्रम दिखाते॥ ८॥

**दर्शयंस्तद्विदां लोके आत्मनो भृत्यवश्यताम्।**
**व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान् बालचेष्टितैः॥ ९॥**

**अन्वयः**—भगवान् (श्रीकृष्ण) लोके (संसारमें) तद्विदां (उनके माहात्म्यको जाननेवाले ज्ञानियोंके निकट) आत्मनः (अपनी) भृत्यवश्यतां (भक्ताधीनता) दर्शयन् (प्रकाश करते हुए) बालचेष्टितैः (बालकके समान व्यवहारके द्वारा) [अनायास ही] व्रजस्य हर्षं उवाह वै (व्रजजनोंका आनन्द बढ़ाया करते हैं)॥ ९॥

**अनुवाद**—इस प्रकार सर्वशक्तिमान भगवान् अपनी लीलाओंसे व्रजवासियोंको आनन्दित किया करते और ऐश्वर्यज्ञान-परक भक्तोंको अपना भृत्याधीन-भाव दिखलाते॥ ९॥

**सारार्थदर्शिनी**—न केवलं ज्ञातीनामेव अपि तु सर्वेषामेव व्रजवासिनां प्रीतिप्रदो वश्यत्वादित्याह-दर्शयन्निति, तद्विदां तदैश्वर्य्यविज्ञान् ब्रह्मादीनिति नैतदनुकरणत्वेन व्याख्येयम्॥ ९॥

**भावानुवाद**—कृष्ण केवल अपने बन्धु-बान्धवोंके ही वशीभूत हैं, ऐसा नहीं, अपितु वे समस्त व्रजवासियोंके प्रेमास्पद और वशीभूत हैं। इस लोकमें जो भगवान्‌की भक्तवश्यताको नहीं जानते, जो केवल ऐश्वर्य मार्गके उपासक हैं, ऐसे ऐश्वर्य-ज्ञानमिश्र अर्थात् ब्रह्मादि देवताओंको अपनी भक्तवश्यता दिखलानेके लिए भगवान् श्रीकृष्ण बाल-लीलाओंके द्वारा व्रजवासियोंका आनन्दवर्द्धन करते। वे केवल अनुकरण नहीं, वास्तविक रूपमें लीला कर रहे थे॥ ९॥

**क्रीणीहि भोः फलानीति श्रुत्वा सत्त्वरमच्युतः।**
**फलार्थी धान्यमादाय ययौ सर्वफलप्रदः॥ १०॥**

**अन्वयः**—भोः (हे व्रजजन!) फलानि क्रीणीहि (फल खरीदो) इति श्रुत्वा (इस प्रकारके फल बेचनेवालीका वचन सुनकर) सर्वफलप्रदः (धर्म, अर्थ, काम और मोक्षफल प्रदाता) अच्युतः (श्रीकृष्ण) फलार्थी (फल लेनेकी अभिलाषासे) धान्यं (मूल्य-स्वरूप धान) आदाय सत्त्वरं ययौ (लेकर अतिशीघ्र उसके पास पहुँच गये)॥ १०॥

**अनुवाद**—एकदिन कोई फल बेचनेवाली गोकुलमें आकर ऊँचे स्वरसे पुकार रही थी—"फल लो, फल लो।" यह सुनते ही सर्वफल-प्रदाता बालक कृष्ण फल खरीदनेकी इच्छासे उसके मूल्य-स्वरूप अपनी छोटी-सी अञ्जलिमें अनाज लेकर शीघ्र ही उसकी ओर दौड़ पड़े॥ १०॥

**सारार्थदर्शिनी**—तेष्वतिनीचानां पुलिन्दजातीनामपि प्रीतिप्रद इत्याह-क्रीणीहीति। अच्युतः परिपुर्णोऽपि फलमात्रार्थी सर्वफलप्रदोऽपि त्वरया पुरतः स्थितधान्यमात्रप्राप्ते-र्धायाञ्जलिमादाय ययौ॥ १०॥

**भावानुवाद**—श्रीकृष्णने उन व्रजवासियोंमें अति साधारण पुलिन्द जातिके लोगोंको भी आनन्दित किया। एकदिन हे व्रजजनों 'फल लो, फल लो' इस प्रकारसे पुकारनेवाली एक फल बेचनेवालीकी पुकार सुनकर सर्वार्थ-परिपूर्ण और सर्वफल-प्रदाता होकर भी कृष्ण फलके अभिलाषी बनकर अपनी छोटी-सी अञ्जलिमें अनाज लेकर अतिशीघ्र उसकी ओर चल पड़े॥ १०॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—परमहंस-चूड़ामणि श्रीशुकदेव गोस्वामी व्रजराज-नन्दनकी दामबन्धन-लीलाके वर्णनके द्वारा माता यशोदाकी प्रेमाधीनता प्रकाशकर अब पुनः और एक बाल-लीलाकी अवतारणा कर रहे हैं। इस लीलामें भगवान् श्रीकृष्ण मातृस्थानीय दूसरी व्रजगोपियोंके वात्सल्यप्रेमके भी अधीन बने हुए हैं—यह परिस्फुट हुआ है।

जिस समय बाल-कृष्ण अपने सहचर बालकोंके साथ नन्दभवनके आङ्गनमें विविध प्रकारकी बाललीला-रसमें डूबे रहते, ऐसे समयमें कुछ वात्सल्यप्रेमवती गोपियाँ आङ्गनमें खड़ी होकर अपलक नेत्रोंसे उन्हें निहारने लगती थीं। यशोदानन्दन बाललीला-रसमें मत्त होनेपर भी उनके वात्सल्यप्रेमके प्रबल आकर्षणसे आकर्षित होकर उनकी ओर देखने लगते। यशोदानन्दनके उन गोपियोंकी ओर देखते ही वे अपने वस्त्रोंमेंसे लड्डू निकालकर उन्हें दिखाकर उसे फिरसे छिपा लिया करती थीं। वात्सल्यप्रेमवती गोपियोंके वात्सल्यप्रेमसे ओत-प्रोत लड्डूको देखकर नन्दनन्दन भी अपने लोभको सम्वरण नहीं कर पाते थे। अतः खेलकूद छोड़कर उनके पास जाकर दोनों हाथ उठाकर

मुझे लड्डू दो, लड्डू दो, कहने लगते। मानो वैसा लोभनीय लड्डू उन्होंने कभी देखा नहीं, या कभी खाया नहीं। धन्य है उनकी प्रेमाधीनता! धन्य है उनका भक्तवात्सल्य! संसारमें कोई निर्धन व्यक्ति यदि किसी धनी व्यक्तिको शाक-अन्न भोजनके लिए निमन्त्रण दे, तो धनी व्यक्ति अनादरपूर्वक उसे निमन्त्रणको अस्वीकार कर देगा। परन्तु घनीभूत परमानन्द-विग्रह श्रीकृष्णका गोपियोंके द्वारा दिखाये गये लड्डूमें कितना प्रेम है कि उसके लिए वे तरस रहे हैं।

व्रजराजनन्दनका इतना आग्रह देखकर कोई गोपी कहने लगती—नन्दलाल! यदि तू हमारी हाथकी तालीके साथ ताल मिलाकर नाचेगा, तो हम तुझे लड्डू देंगी। यह सुनकर यशोदानन्दन लड्डू खानेके लोभसे उनके सामने विविध प्रकारकी मुद्राओंके साथ नृत्य करने लगते। जिनकी मायाके वशीभूत होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड नाच रहा है, जिनकी इच्छासे अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डोंके चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारे आदि परिचालित हो रहे हैं, ऐसे सर्वनियन्ता भगवान् गोपियोंके लड्डूके लोभसे नाचने लगते।

एक समय वात्सल्यवती गोपियाँ यशोदानन्दनकी मङ्गल-गीति गा रही थीं, उस समय यशोदानन्दन भी परमानन्दमें विविध प्रकारके हाव-भाव प्रकाशित करते हुए उनके साथ उच्चःस्वरसे गान करने लगे, यह सुनकर गोपियाँ आनन्दमें डूब गयीं और लड्डूगोपालसे कहने लगीं—"अरे लाला! तुम अकेले ही हमें एक गान सुनाओ। यदि हमें अच्छा लगेगा, तो तुझे मक्खन खिलायेंगी।" उनकी बातें सुनकर यशोदानन्दन अनेकों प्रकारकी अङ्गभङ्गि, मुखभङ्गि, नयन-भङ्गि आदि दिखाकर उच्चस्वरसे गाने लगे, मानो वे गोपियोंके हाथके खिलौने या कठपुतली हों। इस प्रकार वात्सल्यप्रेमवती गोपियाँ जैसे चाहती वैसे ही कृष्णको नचाती थीं।

नन्दनन्दनकी बाल-माधुरी और बाल-क्रीड़ा देखनेके लिए गोपियाँ सदा-सर्वदा नन्दभवनमें आना-जाना करती रहती थीं। वे किसी प्रकारसे शीघ्रतापूर्वक अपना गृहकार्य समापनकर नन्दालयमें उपस्थित हो जाती थीं एवं नन्दनन्दनको घेरकर अपने वात्सल्यप्रेमके

अनुरूप उनसे विविध प्रकारकी बाल-क्रीड़ाएँ कराती थीं एवं सदा आनन्द-सागरमें निमज्जित होती रहती थीं।

एकदिन वात्सल्यवती गोपियाँ परस्पर कहने लगीं—"अब हमारे व्रजजीवनने सभी व्यवहारिक वस्तुओंके नाम सीख लिये हैं। उसे जो कुछ भी लानेको बोलो, वही ले आता है।" उसी समय एक गोपी बोली—"कन्हैया! तेरे बाबा अभी आयेंगे और भोजन करेंगे, अतः उनके बैठनेकी पीढ़ी तो ले आ।" यशोदानन्दन भी दौड़कर पीढ़ी उठाकर ले आये।

एकदिन व्रजराजनन्दन आङ्गनमें स्थित धानके ढेरमें खेल रहे थे। उसी समय वात्सल्यवती व्रजरमणियाँ आकर कहने लगीं—कन्हैया! घरके अन्दरसे 'उन्मान' (धान मापनेका यन्त्र) तो ले आ। वे सोच रही थीं कि अवश्य ही यह उन्मान क्या है, समझ नहीं पायेगा। परन्तु यशोदानन्दन दौड़कर घरके अन्दर गये तथा उसे उठाकर ले आये। यह देखकर गोपियाँ विस्मय और आनन्द-समुद्रमें डूब गयीं।

सच्चिदानन्दघन-विग्रह भगवान् श्रीकृष्ण परिपूर्ण ऐश्वर्य और माधुर्यके निकेतन हैं। उनकी सर्ववशीकारित्व शक्तिका नाम ऐश्वर्य एवं नाम, रूप, गुण, लीला आदि द्वारा सर्वमनोहरत्व शक्तिका नाम माधुर्य है। ऐश्वर्य-ज्ञाननिष्ठ भक्तगण भगवान्‌के ऐश्वर्यको ग्रहण करते हैं, उनके असमोर्द्ध्व माधुर्यकी ओर उनकी दृष्टि नहीं जाती। तथा माधुर्यमें आकृष्ट भक्त भगवान्‌के माधुर्यको ही ग्रहण करते हैं, उनकी दृष्टि भगवान्‌के ऐश्वर्यकी ओर नहीं जाती है।

व्रजवासी गोप-गोपियाँ श्रीकृष्णके माधुर्यके प्रति आकृष्ट भक्त (परिकर) हैं। वे भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, लीला आदिकी मनोहरतामें मुग्ध होकर निरन्तर उनके विविध लीलारसमें डूबे रहते हैं। वे कभी भी उन्हें सर्वेश्वर भगवान् नहीं समझते तथा कृष्ण भी विविध प्रकारकी लीलाएँ करते हुए व्रजवासियोंको आनन्दित करते हैं एवं ऐश्वर्य ज्ञाननिष्ठ भक्तोंको दिखलाते हैं कि वे केवलमात्र ऐश्वर्यके ही नहीं, माधुर्यके भी महासिन्धु हैं। वे उन्हें यह भी दिखलाते हैं कि मैं तो केवल प्रेमवान् भक्तोंके वशमें ही रहता हूँ। भगवान् श्रीकृष्ण अन्यत्र सर्वत्र सभीको वशमें रखकर ही लीला करते हैं, किन्तु

व्रजलीलामें वे स्वयं व्रजवासी गोप-गोपियोंके वशीभूत होकर लीला करते हैं॥ ७-९॥

**फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यकरद्वयम्।**
**फलैरपूरयद्रत्नैः फलभाण्डमपूरि च॥ ११॥**

**अन्वयः**—फलविक्रयिणी (फल बेचनेवालीने) तस्य (श्रीकृष्णके) च्युतधान्यकरद्वयम् (दोनों हाथोंको जिनमेंसे सब धान गिर गये थे) फलैः अपूरयत् (फलोंसे भर दिया) [और] फलभाण्डं च रत्नैः अपूरि (फलकी टोकरी भी रत्नोंसे भर गयी)॥ ११॥

**अनुवाद**—शीघ्र चलनेके कारण श्रीकृष्णके हाथोंसे अनाजके लगभग सभी दाने मार्गमें ही गिर गये थे। फिर भी फल-बेचनेवालीने उनके दोनों हाथोंको फलोंसे भर दिया और इधर उसकी टोकरी भी रत्नोंसे पूर्ण हो गयी॥ ११॥

**सारार्थदर्शिनी**—न च तावन्मात्रमपि धान्यं तया प्राप्तमित्याह—च्युतेति। अभ्यन्तरात्त्वरया बहिर्निर्गमे वर्त्मन्येव सर्वधान्यानि पतितानि ततश्च द्वित्रिमात्रधान्ययुक्ते केवलाञ्जलावेव नीयतामित्युक्त्वा फलपात्रे न्यस्ते फलविक्रयिण्यप्युद्भूतस्नेह फलैः पील्वादिभिसर्वैरेवापूरयत फलेषु तस्य जातलोभत्वेन स्तोकेऽपि तत्करतलद्वये तदीयवैभवशक्तेः साहाय्यात् ततश्च रत्नैरिति तदीयसर्वफलप्रदत्वशक्त्या तत्प्रेमपर्यन्ता सर्वैव सम्पत्तिरभूदिति ज्ञेयम्॥ ११॥

**भावानुवाद**—कृष्णकी छोटी-सी अञ्जलि भर दाने भी फल बेचनेवालीको प्राप्त नहीं हुए। इसे 'च्युत' इत्यादि द्वारा कह रहे हैं कृष्ण जब घरके भीतरसे हाथोंमे कुछ धान लेकर तीव्र गतिसे बाहर आ रहे थे तो रास्तेमें ही उनके छोटे-छोटे हाथोंसे धानके प्राय सभी दाने गिर गये। केवलमात्र दो-तीन दाने ही उनकी अञ्जलिमें बच गये थे, जिसे उन्होंने "यह लो, यह लो"—कहकर फलकी टोकरीमें डाल दिया। कृष्णका दर्शन करते ही फल बेचनेवालीका हृदय स्नेहसे भर गया। उसने टोकरीमें रखे हुए समस्त फलोंको कृष्णकी छोटी-सी अञ्जलिमें भर दिया। समस्त फलोंके प्रति कृष्णका लोभ होनेके कारण उनकी अञ्जलि छोटी होनेपर भी उनकी वैभवशक्तिके कारण

टोकरीके सभी फल उनकी अञ्जलिमें आ गये तथा साथ ही श्रीकृष्णकी वैभवशक्तिने विविध रत्नोंके द्वारा फल बेचनेवालीकी फलकी टोकरीको भी भर दिया। केवल इतना ही नहीं, भगवान्‌की स्वाभाविक सर्वफलप्रदाता शक्तिके द्वारा प्रेम प्राप्ति तक सभी प्रकारकी सम्पत्ति भी उसे प्राप्त हो गयी—ऐसा समझना चाहिये॥ ११॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति—**श्रीव्रजराजनन्दनने दामबन्धन-लीलामें माँ यशोदाकी प्रेमाधीनताका प्रदर्शनकर प्रेमवान भक्तोंका आनन्दवर्द्धन किया। माँ यशोदाकी समान आयुवाली वात्सल्यवती गोपियोंके आदेशसे वे पीढ़ा, उन्मान, पादुका आदि उठाकर उनके पास ले आते थे। इस प्रकार उन्होंने यह दिखलाया कि वे केवल माँ यशोदाके ही नहीं, अपितु समस्त व्रजवासियोंके ही वशीभूत हैं। कृष्ण केवल व्रजके गोप-गोपियोंके ही प्रेमाधीन हैं—ऐसा नहीं है। यदि अति नीच पुलिन्द जातिके लोग भी उनके प्रति प्रेमवान हों, तो कृष्ण उनके भी अधीन होनेमें विमुख नहीं होते हैं।

यशोदा मैया कृष्णको आङ्गनसे बाहर जाने नहीं देती थीं, क्योंकि पड़ोसन गोपियाँ आकर प्रतिदिन कन्हैयाकी माखन-चोरीके विषयमें उलाहना देती थीं। यशोदानन्दन भी मैयाके भयसे आङ्गनके बाहर जानेका साहस नहीं करते थे। वे गोप बालकोंके साथ आङ्गनमें ही खेला करते। एकबार हेमन्त कालमें आङ्गनमें धानका ढेर लगा हुआ था। प्रातःकाल यशोदानन्दन उसीमें खेल रहे थे। माँ यशोदा घरके कार्योंमें व्यस्त थीं। उसी समय नन्द महाराजके भवनके पाससे ही एक फल बेचनेवाली पुलिन्दी विविध प्रकारके फलोंको टोकरीमें भरकर निकली। वह बीच-बीचमें "फल लो, फल लो" कह रही थी। यह सुनकर कृष्णकी फल लेनेकी इच्छा हो गयी। अतः वे आङ्गनसे बाहर आये तथा हाथ उठाकर आवाज लगाते हुए कहने लगे—"ओ फलवाली! इधर आ, मैं फल लूँगा।" जैसे ही कृष्णकी वाणी फल बेचनेवालीके कानोंमें प्रविष्ट हुई, उसे लगा जैसे किसीने उसके कानोंमें अमृत उड़ेल दिया हो। वह ठिठककर रुक गयी तथा जहाँसे आवाज आ रही थी, पलटकर उस ओर देखने लगी। तभी उसकी

दृष्टि नीलमणिके समान दिव्यातिदिव्य एक छोटे-से बालकपर पड़ी। उस बालकके अङ्गोंकी छटासे दशों दिशाएँ उद्भासित हो रही थीं। उसका मुख करोड़ों चन्द्रोंकी शोभाको भी फीका कर रहा था। उसके काले-काले घुंघराले केश उसके मुखकी शोभाको और भी अधिक वर्द्धित कर रहे थे। ऐसा लग रहा था, मानो काले-काले भ्रमरसमूह कमलपुष्पपर बैठकर मकरन्दका पान कर रहे हैं। उसके बड़े-बड़े चञ्चल नयन, प्रफुल्लित नील कमलपर स्थित नृत्यपरायण खञ्जनको भी लज्जित कर रहे थे। उसके अधर, ओष्ठ, चिबुक, गण्ड आदिकी शोभाकी तुलना त्रिजगत्की किसी भी वस्तुके साथ नहीं हो सकती थी। उसके गलेमें व्याघ्रनख तथा कटिमें किङ्किणी बँधी हुई थी। उसके धूलसे भरे अङ्ग-प्रत्यङ्ग आदि सभी अति सुन्दर एवं मधुरसे भी सुमधुर थे।

फल-विक्रयिणी बाल-कृष्णको दूरसे ही देखकर आत्मविभोर हो गयी तथा मन्त्रमुग्धकी भाँति धीरे-धीरे बालकके निकट आकर उसके सामने फलकी टोकरी उतारकर गद्गद कण्ठसे कहने लगी—"फल लोगे?"

यशोदानन्दनने सिर हिलाकर सहमती दी।

फल बेचनेवालीने पूछा—"फलोंका दाम कौन देगा?"

यशोदानन्दनने कहा—"अरी! दाम किसे कहते हैं, मैं तो जानता नहीं।"

फल बेचनेवालीने कहा—"फल लेना जानते हो, क्या फलोंका दाम देना नहीं जानते हो? किसीसे कुछ सामान खरीदनेपर बदलेमें उसे कुछ देना होता है।"

यशोदानन्दनने कहा—"मेरी माँ और मेरी पड़ोसी गोपियाँ कितना-सारा खीर, मलाई, मक्खन आदि देती हैं, परन्तु उन्हें तो उसके बदलेमें कुछ देना नहीं होता है।"

फल बेचनेवालीने कहा—"ओहे! मन-प्राणोंको चुरानेवाले अबोध बालक! तुम अपने मुखसे उन्हें माँ कहते हो और उनकी गोदीमें चढ़ते हो, उससे उन सबका मूल्य देना हो जाता है। परन्तु मैं तो फल बेचनेवाली हूँ, विधाताने मुझे नीच कुलमें जन्म दिया है। मेरा

तो ऐसा भाग्य नहीं है जिससे कि तुम मुझे माँ कहो तथा मेरी गोदीमें बैठ जाओ। इसलिए मुझसे फल लेकर तुम्हें कुछ तो देना ही होगा।"

यह कहते हुए उस फल बेचनेवालीके हृदयाकाशमें मानो एक अनिर्वचनीय नवीन भावरूपी बादलका सञ्चार हुआ, जिससे उसके दोनों नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बरसने लगी। उसका गला अवरुद्ध हो गया जिसके कारण अब उसके मुखसे एक शब्द नहीं निकल पा रहा था। वह केवल आँसूभरे अपलक नेत्रोंसे मन और प्राणोंका हरण करनेवाले बालककी ओर देखती ही रह गयी।

फल बेचनेवालीका यह अभिनव भाव देखकर अन्तर्यामी यशोदानन्दनने कहा—"ओहे फल बेचनेवाली! तुम ऐसे क्यों रो रही हो? मैंने तो तुम्हें कुछ कहा नहीं। तुम थोड़ी देर ठहर जाओ, मैं अभी धान लेकर आता हूँ। तुम मुझे फल दिये बिना मत जाना।"

यह कहकर यशोदानन्दन शीघ्र ही धानके ढेरके पास गये और उसमेंसे एक अञ्जलि धान उठाकर दौड़ते हुए आने लगे। उनका मन फल बेचनेवालीकी टोकरीमें एवं दृष्टि फल बेचनेवालीकी ओर लगी हुई थी। अतः ऐसेमें उन्हें हाथोंमें लिये हुए धानका ध्यान कहाँ रह सकता था? शीघ्रतासे चलनेके कारण उनकी छोटी-सी अञ्जलिसे धानके दाने एक-एक करके गिरते जा रहे थे।

श्रीकृष्ण जब भक्तोंको देते हैं, तब सम्पूर्ण रूपसे ही देते हैं, कुछ रखते नहीं हैं, परन्तु जब भक्तोंके दिये हुए द्रव्य ग्रहण करते हैं, तब कुछ त्यागते नहीं हैं, सभी कुछ ले लेते हैं। जैसे इस लीलामें फल बेचनेवालीके पास जाते समय उनकी छोटी-सी अञ्जलिसे धानके सभी दाने गिर गये तथा फल लेते समय टोकरीके सभी फल उनकी उसी छोटी-सी अञ्जलिमें समा गये, एक भी गिरा नहीं।

इस प्रकार यशोदानन्दन जब फल बेचनेवालीके पास पहुँचे, तब उनकी अञ्जलि खाली थी। केवलमात्र अङ्गुलियोंके बीचमें ही दो-तीन दाने बचे हुए थे। परन्तु अपनी अञ्जलिकी ओर तो यशोदानन्दनका ध्यान ही नहीं था। उन्होंने फल-विक्रयिणीके मुखकी ओर ताकते-ताकते अञ्जलिको टोकरीमें खाली करते हुए कहा—"लो, यह लो।" यशोदानन्दनकी खाली अञ्जलिसे फल बेचनेवालीकी

टोकरीमें दो-तीन धान गिर गये। इधर फल-विक्रयिणी मुग्ध होकर अपलक नेत्रोंसे यशोदानन्दनकी अङ्गभङ्गिको निहार रही थी।

कृष्णने कहा—"ओ फल बेचनेवाली! मैंने धान तो दे दिया, अब फल दो।"

वह प्रेममुग्ध होकर कहने लगी—"अबोध बालक! मेरी एक टोकरी फलका मूल्य क्या केवल एक-दो दाने धान ही हैं?"

यशोदानन्दनने विस्मयके साथ जब टोकरीकी ओर देखा तो सचमुच, उसमें धान नहीं थे। उन्होंने अञ्जलि झाड़कर दो-चार दाने धान ही दिये थे। वे भी फलकी टोकरीमें गिरकर अदृश्य हो गये थे। यशोदानन्दन तब फल बेचनेवालीके मुखकी ओर देखकर छोटे-छोटे हाथ हिलाकर कातर कण्ठसे कहने लगे—"ओ फल बेचनेवाली! हमारे घरमें बहुत-सारा धान है, परन्तु अभी मैं ला नहीं सकता, क्योंकि मेरी मैया मुझे आङ्गनसे बाहर जाने नहीं देती। इस समय भी मैं छिपकर आया हूँ। यदि मैं दोबारा धान लेने जाऊँगा, तो वे मुझे आने नहीं देंगी। इसलिए अभी तुम मुझे फल दे दो, मैं दूसरे दिन तुम्हें इसके बदलेमें बहुत-सारा धान दे दूँगा।"

फल-बेचनेवालीने कहा—"मैं किसीको उधार नहीं देती। यदि तुम मुझे दाम दोगे, तभी मैं तुम्हें फल दूँगी। बालक होनेके कारण यदि खेलमें मग्न होकर तुम भूल गये, तो फिर मुझे दाम नहीं मिलेगा।"

यशोदानन्दनने ललचाई दृष्टिसे फलोंकी ओर देखते हुए कहा—"ओ फल बेचनेवाली! यदि तुम मुझे फल दोगी, तो मैं तुम्हें कभी भूलूँगा नहीं।"

फल बेचनेवालीने कहा—"अरे बालक! मुझे इसका कोई भरोसा नहीं है। तुम मुझे नकद दो, तभी फल मिलेंगे। यदि तुम धान नहीं दे सकते हो, तो दूध, मलाई, मक्खन खाकर अपनी मैया और पड़ोसन गोपियोंको जो देते हो, वही मुझे दे दो।"

श्रीकृष्ण आश्चर्यचकित होकर उसके मुखकी ओर देखने लगे और कहने लगे—"मैं तो उन्हें कुछ नहीं देता। वे जितना भी मक्खन दूध-मलाई देती हैं, उसके बदलेमें मेरे पास उन्हें देनेके लिए कुछ

भी नहीं है। यह देखो, मैं तुमसे फल माँग रहा हूँ, परन्तु तुम दाम लिये बिना नहीं दोगी। परन्तु मेरी मैया और पड़ोसन गोपियाँ बिना मूल्यके ही मुझे खिलाती-पिलाती हैं, उनके समान संसारमें कोई नहीं है, जो बिना मूल्यके मुझे कुछ दे। इसीलिए मेरी मैया मुझे आङ्गनसे बाहर जाने नहीं देती।"

श्रीकृष्णकी ऐसी मधुर वाणी सुनकर फल बेचनेवाली अपनेमें खो गयी और कहने लगी—"ओ बालक! मैं दूसरा कुछ नहीं माँग रही हूँ। मैं यही कह रही हूँ कि तुम जैसे दूध, मलाई, मक्खन खानेके लिए अपनी मैयाको अपने मुखसे माँ कहकर पुकारते हो, अपनी पड़ोसन गोपियोंकी गोदमें चढ़ जाते हो, वैसे ही तुम एकबार मेरी गोदमें बैठकर मुझे माँ कहो। यदि तुम ऐसा करोगे तो मैं भी तुम्हें टोकरीके सभी फल दे दूँगी और चिरकाल तुम्हारी मैया और तुम्हारी पड़ोसन गोपियोंकी दासी बनकर रहूँगी।"

फल बेचनेवालीकी टोकरीमें भरे हुए रसीले फलोंके प्रति कृष्णका बहुत लोभ था, इसलिए उन्होंने मन-ही-मन विचार किया कि मैं इसे धान तो नहीं दे सकता। अतः केवल एकबार इसकी गोदमें बैठकर माँ कहनेसे यदि इतने फल मिल जायें, तब हानि क्या है? और फिर इसकी गोदीमें बैठनेसे यह मुझे मेरी मैयासे छीनकर तो ले नहीं जायेगी। यह तो मैयाकी दासी बनना चाहती है। अतएव इसकी गोदीमें बैठनेमें कोई हानि नहीं है। यह विचारकर यशोदानन्दनने एकबार इधर-उधर देखा कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा है। जब उन्हें विश्वास हो गया कि कोई देख नहीं रहा है, तो वे झटसे उसकी गोदमें बैठे तथा उसे माँ कहकर उठ गये।

कृष्णके गोदमें बैठते ही फल बेचनेवालीको क्या मिला—इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। वह एक अनिर्वचनीय आनन्द-स्रोतमें डूब गयी। बड़े-बड़े योगीन्द्र, मुनीन्द्र आदि हजारों वर्षों तक ध्यान करके भी जिन्हें अपनी धारणामें नहीं ला पाते हैं, आज नीच जातिकी एक फल बेचनेवालीने उन्हें साक्षात् रूपमें अपनी गोदमें धारण किया। धन्य है व्रजलीला! धन्य है व्रजराजनन्दनका दान! ऐसा आत्मदान केवल व्रजलीलामें इसी नन्दनन्दन स्वरूपमें ही सम्भव

है। दूसरी किसी लीलामें, किसी भी मूर्त्तिमें, किसी स्वरूपमें भगवान्‌ने इस प्रकार आत्मदान किया है, ऐसा कभी न सुना गया, न देखा गया। इसलिए व्रजका दान व्रजमें ही सम्भव है।

जब कृष्ण फल बेचनेवालीकी गोदीसे उठकर उसके सामने हाथ पसारकर खड़े होकर बोले—"अब मुझे फल दो।"

तब वह भी आनन्द-समुद्रमें डूबते हुए अपनी टोकरीसे एक-एक करके फलोंको कृष्णकी अञ्जलिमें भरने लगी और कहने लगी, "हे नयनानन्दवर्द्धन! तुमने धान लाते समय जैसे एक-एक करके सभी धान गिरा दिये थे, वैसे ही कहीं मेरे दिये फलोंको मत गिरा देना। ये फल अतीव सुस्वादु, रसीले और मीठे हैं।"

तब कृष्ण उससे कहने लगे—"अब मैं जाता हूँ। यदि मैयाने मुझे आङ्गनसे बाहर देख लिया तो बहुत डाँटेगी। तुम फिर आना और कोई अच्छा फल मिले, तो मुझे देना, दूसरे किसीको मत देना। मैं तुम्हारे सारे फल ले लूँगा।"

यह कहकर यशोदानन्दन प्रसन्न होकर धीरे-धीरे घरके भीतरकी ओर चलने लगे। फल बेचनेवाली अपनी खाली टोकरी सामने रखकर उन्हें जाते हुए देखती रही। जब यशोदानन्दन उसकी दृष्टिसे ओझल हो गये, तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो सारा दृश्यजगत् अन्धकारमय हो गया है। परन्तु उस बालककी स्निग्ध नवीन मेघके समान मूर्त्ति उसके हृदयमें बस गयी थी। उसकी मधुर वाणी, हाथ हिला-हिलाकर बातें करना, फल माँगना, गोदमें बैठना, माँ कहकर बुलाना, ये सभी लीलाएँ एक-एक करके उसके हृदयमें उदित होने लगीं। इस प्रकार उसे वहाँपर बैठे-बैठे बहुत देर हो गयी थी। उसी समय वहाँसे गुजरनेवाली एक गोपीने उसके कन्धेपर हाथ रखकर उसे हिलाया और कहा—"अरी! यहाँ कब तक बैठी रहेगी। उठ अपने घर जा।" तब उसे कुछ बाह्य ज्ञान आया और वह सिरपर खाली टोकरी रखकर इच्छा न रहते हुए भी धीरे-धीरे अपने घरकी ओर चल पड़ी।

इस प्रकार कृष्णका स्मरण करते हुए आत्मविभोर होकर वह कहाँ जा रही थी, इसका उसे कुछ अता-पता नहीं था। उसी समय

उसे मस्तकपर स्थित फलहीन टोकरी बड़ी भारी लगने लगी। उसने अत्यन्त विस्मित होकर उसे उतारकर देखा, तो उसमें विविध प्रकारके दिव्य रत्नसमूह भरे हुए थे। वह सोचने लगी—"यह क्या है? एक वनवासिनी फल बेचनेवालीकी खाली टोकरीमें इतने रत्न कहाँ-से आये?" उसी क्षण उसके हृदयमें दिव्य ज्ञानका सञ्चार हुआ, तब वह सबकुछ समझ गयी और रोती हुई कहने लगी—"हे यशोदानन्दवर्द्धन! मैं ज्ञानहीन वनवासिनी हूँ। मैंने अपने स्वभाववश तुमसे फलोंका मूल्य चाहा और तुमने मुझे मणि-माणिक्य दे दिये। ये मुझे नहीं चाहिये।" ऐसा कहकर उसने रत्नोंसे भरी हुई टोकरी यमुनामें फेंक दी और वहाँ-से आगे चल पड़ी। इसके बाद वह कहाँ गयी, किसीने फिर उसे नहीं देखा।

इधर कृष्ण विविध प्रकारके फलोंसे अञ्जलि भरकर आङ्गनमें आये एवं फलोंको आङ्गनमें रखकर इधर-उधर देखने लगे कि कहीं किसीने मुझे उस फल बेचनेवालीकी गोदमें बैठते हुए तथा माँ कहते हुए देखा तो नहीं। इतनेमें माँ यशोदा उनके सामने आकर खड़ी हो गयीं और कहने लगीं—"कन्हैया! तुझे इतने फल कहाँ-से मिले?" माँको देखकर कृष्ण घबरा गये एवं हिचकिचाते हुए बोले—"मैया! एक फल बेचनेवाली रास्तेमें जा रही थी। उसने मुझे बुलाकर खानेको ये फल दिये।" यशोदा बोलीं—"अच्छा! यह बता कि उसने तुझे बुलाकर दिये या तू उससे माँगकर लाया?" कृष्ण अब लज्जासे मुख नीचा करके सोचने लगे—"कहीं मैयाने हमारी बातचीत सुनी तो नहीं!"

इतनेमें यशोदा मैया कहने लगी—"क्यों रे! तू माँ कहकर उसकी गोदीमें बैठ गया था?"

यह सुनकर कृष्ण अवाक रह गये। उन्होंने सोचा भी नहीं था कि मैयाको इसका पता चल जायेगा। अतः वे कुछ भयभीत हो गये। उन्हें भयभीत देखकर यशोदा मैया उन्हें गोदीमें लेकर बार-बार चुम्बन करने लगीं और कहने लगीं—"कन्हैया! तू जगत्‌की सभी स्त्रियोंको माँ कहकर सबका आशीर्वाद लेकर दीर्घ जीवन प्राप्त कर।"

उसी समय सभी गोपबालक "हो-हो, हा-हा, ही-ही" करते हुए वहाँपर आ गये। तब सभी सखा कृष्णको बीचमें बैठाकर उनके चारों ओर मण्डली बनाकर बैठ गये तथा मैयाने फलोंको अच्छी प्रकारसे धोकर-काटकर अपने हाथोंसे सबको विरतण किया। सभी गोपबालक आनन्दमग्न होकर फल खाने लगे। तत्पश्चात् कृष्ण सखाओंके साथ आङ्गनमें बालक्रीड़ा रसमें निमग्न हो गये तथा माँ यशोदा और दासियाँ भी अपने-अपने कार्योंमें लग गयीं॥ १०-११॥

**सरित्तीरगतं कृष्णं भग्नार्ज्जुनमथाह्वयत्।**
**रामञ्च रोहिणीदेवी क्रीडन्तं बालकैर्भृशम्॥ १२॥**

**अन्वयः**—अथ देवी रोहिणी बालकैः (अनन्तर रोहिणी माता बालकोंके साथ) भृशं (अतिशय) क्रीडन्तं सरित्तीरगतं (नदीतटपर क्रीड़ा-परायण) भग्नार्ज्जुनं (यमलार्जुनको उखाड़नेवाले) कृष्णं रामञ्च आह्वयत् (राम और कृष्णको आह्वान करने लगीं)॥ १२॥

**अनुवाद**—इसके बाद एकदिन ग्वालबालोंके साथ खेलते-खेलते यमुनाके तटपर जाकर खेलमें ही मग्न हुए तथा यमलार्जुन वृक्षोंको उखाड़नेवाले कृष्ण एवं बलरामको रोहिणीदेवी पुकारने लगीं—"ओ कृष्ण! ओ बलराम! शीघ्र आओ॥"१२॥

**सारार्थदर्शिनी**—रोहिण्याः सकाशादपि श्रीयशोदायामतिवात्सल्यवत्यां राम-कृष्णावतिस्नेहवशाविति दर्शयन् यमलार्जुनभङ्गदिन एव लीलान्तरमाह-सरित्तीरे खेलनार्थं गतं कृष्णं रामञ्च उत्तरवाक्यानुरोधात् तद्भोजनसाधनासक्तया श्रीयशोदया प्रेषिता रोहिणीति कर्त्तृपदं ज्ञेयम् ॥ १२॥

**भावानुवाद**—यशोदा मैयाका वात्सल्यप्रेम रोहिणीसे भी बढ़कर है। कृष्ण-बलराम दोनों यशोदादेवीके स्नेहसे वशीभूत होनेके कारण उनसे डरते हैं। इसे दिखानेके लिए कृष्णकी यमलार्जुन-भञ्जन दिनकी ही एक दूसरी लीलाका वर्णन कर रहे हैं। यमुना-किनारे खेलनेके लिए गये हुए कृष्ण और बलरामको रोहिणी मैया बुलाने लगीं। परन्तु कृष्ण-बलराम खेलनेमें इतने मत्त थे कि मैयाकी बात

उन्होंने अनसुनी कर दी। यशोदा मैया रसोई-घरमें व्यस्त थीं, इसलिए उन्होंने बालकोंको बुलानेके लिए रोहिणीको भेजा था॥ १२॥

**नोपेयातां यदाहूतौ क्रीडासङ्गेन पुत्रकौ।**
**यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलाम्॥ १३॥**

**अन्वयः**—क्रीडासङ्गेन पुत्रकौ (क्रीड़ामें आसक्त राम और कृष्णको) आहूतौ अपि (भोजनके लिए रोहिणी द्वारा बुलाये जानेपर भी) यदा नउपेयातां (जब वे नहीं आये तब) रोहिणी (रोहिणीने पुत्रको लानेके लिए) पुत्रवत्सलाः यशोदां प्रेषयामास (पुत्र-वत्सला यशोदाको भेजा)॥ १३॥

**अनुवाद**—वे दोनों खेलनेमें इतने रम गये थे कि रोहिणीदेवीके पुकारनेपर भी नहीं आये। तब रोहिणीदेवीने अति वात्सल्यमयी यशोदाको उन्हें बुलानेके लिए भेजा॥ १३॥

**सारार्थदर्शिनी**—यशोदां प्रेषयामासेति तस्या एवाधिक वात्सल्य-वत्यास्तद्द्वयाकर्षणसामर्थ्यनिर्णयात्॥ १३॥

**भावानुवाद**—अधिक वात्सल्यवती यशोदा ही कृष्ण-बलराम दोनोंको लानेमें समर्थ हैं, इस प्रकार विवेचना करती हुई रोहिणीदेवीने यशोदाको भेजा॥ १३॥

**क्रीडन्तं सा सुतं बालैरतिवेलं सहाग्रजम्।**
**यशोदाऽजोहवीत् कृष्णं पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी॥ १४॥**

**अन्वयः**—सा पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी (पुत्रस्नेहके कारण जिनके स्तनोंसे दूध झर रहा है, ऐसी) यशोदा बालैः (यशोदा बालकोंके साथ) अतिवेलं (अधिक समयतक) क्रीडन्तं सहाग्रजं (बलरामके साथ क्रीड़ा परायण) सुतं कृष्णं अजोऽवीत् (पुत्र कृष्णको बुलाने लगीं)॥ १४॥

**अनुवाद**—वात्सल्य स्नेहकी अधिकताके कारण यशोदादेवीके स्तनोंसे दूध झर रहा था। श्रीकृष्ण और बलराम ग्वाल-बालोंके साथ बहुत देरसे खेल रहे थे। अतः वे जोर-जोर-से पुकारने लगीं—हे प्यारे कन्हैया! हे प्यारे बेटा बलराम!॥ १४॥

**सारार्थदर्शिनी**—अजोऽवीत् पुनः पुनराजुहाव निकटगमने पलायनशङ्केयेति दूरत एवेति भावः॥ १४॥

**भावानुवाद**—अचानक निकट जानेसे बालक इधर-उधर भाग सकते है, इस आशङ्कासे यशोदा मैया उन्हें दूरसे ही बुलाने लगीं॥ १४॥

**कृष्ण कृष्णारविन्दाक्ष तात एहि स्तनं पिब।**
**अलं विहारैः क्षुत्क्षान्तः क्रीडाश्रान्तोऽसिपुत्रक॥ १५॥**

**अन्वयः**—कृष्ण कृष्णारविन्दाक्ष (हे कृष्ण! हे कमलनयन!) एहि स्तनं पिब (आ! दूध पी) तात विहारैः अलं (हे पुत्र! अब खेलना बन्द कर) क्षुत्क्षान्तः (तू भूखसे व्याकुल हो रहा है) क्रीडश्रान्तः (खेलते हुए थक चुका है)॥ १५॥

**अनुवाद**—हे कमललोचन! हे प्यारे कन्हैया! मेरे पास आ और स्तन पान कर। हे वत्स! अब तू खेलते-खेलते थक गया होगा और तुझे भूख भी लग रही होगी। अब और खेलनेकी आवश्यकता नहीं है॥ १५॥

**सारार्थदर्शिनी**—कृष्णकृष्णेति वीप्सा दूरतः श्रवणाय॥ १५॥

**भावानुवाद**—दूरसे ही कृष्ण सुन सकें—इसलिए 'कृष्ण-कृष्ण' दो बार प्रयोग हुआ है॥ १५॥

**हे रामागच्छ ताताशु सानुजः कुलनन्दनः।**
**प्रातरेव कृताहारस्तद्भवान् भोक्तुमर्हति॥ १६॥**

**अन्वयः**—हे कुलनन्दनः (हे कुलनन्दन!) तात, राम सानुजः (हे पुत्र राम! कृष्णको साथ लेकर) आशु (शीघ्र) आगच्छ (आ) भवान् प्रातः एव कृताहारः (तुमने प्रातःकाल ही भोजन किया था) तत् (इसलिए) [अब पुनः] भोक्तुं अर्हति (भोजन करना चाहिये)॥ १६॥

**अनुवाद**—हे कुलके आनन्द-स्वरूप पुत्र बलदेव! अपने छोटे भाईको साथ लेकर शीघ्र आ जा। आज तुम लोगोंने प्रातःकाल ही कलेवा किया था, अब तो तुम्हें भोजन करना चाहिये॥ १६॥

**प्रतीक्षते त्वां दाशार्ह भोक्ष्यमाणो व्रजाधिपः।**
**एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान् यात बालकाः॥ १७॥**

**अन्वयः**—दाशार्ह! (हे राम) भोक्ष्यमाणः (भोजन करनेकी इच्छा करनेवाले) व्रजाधिपः (नन्द महाराज) त्वां (तुम्हारी) प्रतीक्षते (प्रतीक्षा कर रहे हैं) एहि आवयोः (आओ, हम दोनोंका) प्रियं धेहि (प्रीति विधान करो) हे बालकाः (हे व्रज बालको!) [तुम सब भी] स्वगृहान् (अपने-अपने घर) यात (जाओ)॥ १७॥

**अनुवाद**—हे पुत्र बलराम! व्रजेश्वर भोजनके लिए बैठ गये हैं और तुम दोनोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अतः आओ और हम सबको आनन्दित करो। हे बालको! तुम सब भी अपने-अपने घर जाओ॥ १७॥

**सारार्थदर्शिनी**—भोक्षमाण इति युवां विना भोक्तुंमशक्नुवन्तं तं स्वपितरं किं क्षुधया पीडयसीति भावः। स्वगृहान् यातेति युष्मन्मातापितरोऽपि वयमिव क्लिश्यन्ति तान् सुखयेति भावः। वस्तुतस्तु क्रीडाविच्छेद एव तात्पर्यम्॥ १७॥

**भावानुवाद**—व्रजेश्वर भोजन करनेके लिए तुम्हारी प्रतीक्षामें बैठे हुए हैं। तुम्हारे बिना वे भोजन नहीं करेंगे। क्या तुमलोग अपने पिताजीको भूखा रखोगे? हे बालको! तुमलोग भी अपने-अपने घर जाओ। तुम्हारे माता-पिता भी हमारी ही भाँति कष्ट अनुभव कर रहे होंगे। अतएव घर जाकर उनका प्रीति विधान करो—यही भावार्थ है। वास्तवमें उन्हें खेलनेसे हटाना ही तात्पर्य था॥ १७॥

**धूलिधूसरिताङ्गस्त्वं पुत्र मज्जनमावह।**
**जन्मर्क्षं तेऽद्य भवति विप्रेभ्यो देहि गाः शुचिः॥ १८॥**

**अन्वयः**—पुत्र (हे पुत्र!) त्वं (तेरा) धूलिधूसरिताङ्गः (सारा शरीर धूलि-मिट्टीसे भर गया है) मज्जनं आवह (अब स्नान कर लो)

अद्य ते (आज तुम्हारा) जन्मर्क्षं (जन्म नक्षत्र है) शुचिः (पवित्र होकर) विप्रेभ्यः (ब्राह्मणोंको) गाः (गायें) देहि (दान कर)॥ १८॥

**अनुवाद**—[तदनन्तर यशोदा मैया कृष्णसे कहने लगीं—]बेटा, देख तो, तेरे सारे शरीरमें धूल-ही-धूल लगी है। अतः जल्दी-से आकर स्नान कर ले। आज तेरा जन्म-नक्षत्र है, अतः पवित्र होकर ब्राह्मणोंको गायें दान कर॥ १८॥

**सारार्थदर्शिनी**—तदप्यनायान्तं क्रीडोत्साहाद्विरामयितुं दानोत्साहमुत्पादयति विप्रेभ्य इति॥ १८॥

**भावानुवाद**—दोनों बालक खेलनेमें इतने मस्त थे कि लौटनेका नाम ही नहीं ले रहे थे। तब मैयाने उन्हें क्रीड़ाके उत्साहसे निवृत्त करानेके लिए दानका उत्साह उत्पन्न करते हुए कृष्णसे कहा—हे कृष्ण! आज तेरा जन्म-नक्षत्र है, इसलिए स्नान द्वारा पवित्र होकर ब्राह्मणोंको गायें दान कर॥ १८॥

**पश्य पश्य वयस्यांस्ते मातृमृष्टान् स्वलंकृतान्।**
**त्वञ्च स्नातः कृताहारो विहरस्व स्वलंकृतः॥ १९॥**

**अन्वयः**—पश्य पश्य (देखो देखो) मातृमृष्टान् (अपनी-अपनी माताओंसे स्नान आदिके द्वारा स्वच्छ होकर) [तथा] स्वलंकृतान् (अलङ्कार आदिसे भूषित होकर) ते (तेरे) वयस्यान् (सहचरगण) त्वं च स्नातः कृताहारः स्वलंकृतः (तू भी स्नान, भोजन एवं अलङ्कार धारणकर) विहरस्व (खेल)॥ १९॥

**अनुवाद**—देख, अपने सखाओंको तो देख। उनकी माताओंने उन्हें नहला-धुला दिया है और सुन्दर आभूषणोंसे सजा दिया है। अब तू भी स्नान करके भोजन कर ले। इसके बाद अच्छे-अच्छे अलङ्कार पहनकर खूब खेल॥ १९॥

**सारार्थदर्शिनी**—तदैवागतानन्यान् बालान् दर्शयित्वा मात्सर्यं जनयति पश्येति॥ १९॥

**भावानुवाद**—इतनेमें खेलनेके लिए आये हुए अन्यान्य बालकोंको दिखाकर मात्सर्य भाव उत्पन्न करनेके लिए अर्थात् प्रेमजनित क्रोध या खेदके साथ यशोदा मैया कृष्णको कहने लगीं—देखो! देखो! तुम्हारे सहचर बालकोंको उनकी माताओंने स्नान कराकर विभिन्न अलङ्कारोंसे सजा दिया है। तुम भी स्नान-भोजन करके आभूषणोंसे सुसज्जित होकर खेलते रहो॥ १९॥

**इत्थं यशोदा तमशेषशेखरं,**
**मत्वा सुतं स्नेहनिबद्धधीनृप।**
**हस्ते गृहीत्वा सहराममच्युतं,**
**नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम्॥ २०॥**

**अन्वयः**—नृप (हे राजन!) इत्थं (पूर्वोक्त प्रकारसे) अशेषशेखरं (निखिल चूड़ामणि) तं (कृष्णको) सुतं मत्वा (अपना पुत्र मानकर) स्नेहनिबद्धधीः (पुत्र स्नेहासक्त बुद्धि) यशोदा सहरामं (यशोदा मैयाने रामके साथ) अच्युतं (कृष्णको) हस्ते गृहीत्वा स्ववाटं (हाथ पकड़कर अपने भवनमें) नीत्वा अथ (लाकर, फिरसे) उदयं (स्नान, भोजन, अलङ्कार आदि मङ्गल) कृतवती (कार्य कराये)॥ २०॥

**अनुवाद**—हे राजन्! इस प्रकारसे यशोदा मैया निखिल लोकोंके चूड़ामणि स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णको अपना पुत्र समझकर उनके प्रति सर्वदा स्नेहासक्त रहती हैं। वे एक हाथसे बलरामको और दूसरे हाथसे कन्हैयाको पकड़कर घर ले आयीं। तब उन्होंने उन्हें स्नान कराया, भोजन कराया और अलङ्कार आदि पहनाकर सभी माङ्गलिक कार्य सम्पन्न किये॥ २०॥

**सारार्थदर्शिनी**—तं अशेषस्य शेखरं चूडामणिं सुतं मत्वा नत्वशेषशेखरं मत्वेत्यर्थः। स तु अशेषशेखरः सुतश्च भवतीत्यर्थः। यद्वा, तं सुतं अशेषस्य स्वकुलस्य शेखरं मत्वा स्ववाटं निजस्थानं उदयं स्नपनभोजनालङ्कारादिमङ्गलम्॥ २०॥

**भावानुवाद**—सभीके चूड़ामणिके समान शिरोधार्य उस कन्हैयाको यशोदादेवीने अपना पुत्र मानकर, किन्तु सभीके शिरोमणि मानकर नहीं, यह अर्थ है। अथवा पुत्रको अपने कुलका चूड़ामणि मानकर

रामके साथ उसका हाथ पकड़कर अपने घरपर ले आयीं। इसके पश्चात् उसे स्नान, भोजन और अलङ्कार आदि धारण कराकर मङ्गलकार्योंका सम्पादन किया॥ २०॥

**श्रीशुक उवाच—**

**गोपवृद्धा महोत्पातानानुभूय बृहद्वने।**
**नन्दादयः समागम व्रजकार्यममन्त्रयन्॥ २१॥**

**तत्रोपनन्दनामाह गोपो ज्ञानवयोऽधिकः।**
**देशकालार्थतत्त्वज्ञः प्रियकृद्रामकृष्णयोः॥ २२॥**

**अन्वयः—**श्रीशुकः उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले) [इसके पश्चात् एकदिन] नन्दादयः गोपवृद्धाः (नन्द महाराज आदि वृद्ध गोपगण) बृहद्वने महोत्पातान् (महावनमें बहुत-से उपद्रवोंको) अनुभूय समागम्य (अनुभवकर सभी मिलकर) व्रजकार्यं (उत्पातके विषयमें व्रजवासियोंका क्या कर्त्तव्य है) आमन्त्रयन् (इस विषयपर विचार करने लगे)। तत्र (उस मन्त्रणाके विषयमें) रामकृष्णयोः प्रियकृत् (राम और कृष्णके प्रिय हितकारी होनेके कारण) देशकालार्थतत्त्वज्ञः ज्ञानवयोऽधिकः (देश, काल और अर्थके विषयमें जाननेवाले ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्ध) उपानन्दनामा गोपः आहः (उपानन्द नामके गोपने कहा)॥ २१-२२॥

**अनुवाद—**श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—इसके बाद नन्द आदि बड़े-बूढ़े गोपोंने जब अनुभव किया कि महावनमें विविध प्रकारके उत्पात हो रहे हैं, तो एकदिन सब एकत्रित हुए और इस विषयपर विचार-विमर्श करने लगे कि अब व्रजवासियोंका क्या कर्त्तव्य है। उस समय नन्द बाबाके बड़े भाई उपानन्द नामक गोप जो ज्ञानकी दृष्टिसे भी श्रेष्ठ थे तथा इस बातके अनुभवी थे कि कब किस स्थानपर किस वस्तुसे कैसा व्यवहार करना चाहिये, राम और कृष्णके नित्य कल्याणकी इच्छासे कहने लगे॥ २१-२२॥

**सारार्थदर्शिनी—**महावने विहृत्यैवं विजिहीर्षा यदाऽजनि। वृन्दावने हरेस्तर्ह्येवौपनन्दी रराज गीः॥ २१॥

उपानन्दो नन्दराजस्य ज्येष्ठो मन्त्रीति प्राज्ञः॥ २२॥

**भावानुवाद**—इस प्रकार महावनमें विहार करनेके बाद जब कृष्णकी वृन्दावनमें विहार करनेकी इच्छा हुई, तब उपानन्द आदि गोपोंके हृदयमें भी इस बातकी प्रेरणा हुई, अर्थात् श्रीकृष्णकी इच्छासे ही उपानन्द आदि ऐसा कहने लगे॥ २१॥

विद्वानोंका कथन है कि उपानन्द नन्दमहाराजके ज्येष्ठ भ्राता और मन्त्रणा-दाता हैं॥ २२॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—सर्वेश्वर स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने नन्द-यशोदा आदि गोप-गोपियोंके शुद्ध वात्सल्यप्रेममें मुग्ध होकर बाल-लीलाओंके द्वारा उनका आनन्दवर्द्धन किया। वे उन शुद्ध वात्सल्यमयी यशोदाके वात्सल्यप्रेमके बन्धनको स्वीकार करनेमें बिन्दुमात्र भी हिचके नहीं। यह दाम-बन्धन-लीलामें स्पष्ट प्रमाणित हुआ है। भगवान् श्रीकृष्ण अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्यको भुलाकर यशोदा मैयाके प्रेमके अधीन होकर विविध बाल-लीलाएँ करते हैं, जिनमें यशोदाका वात्सल्य एवं भगवान्‌की प्रेमाधीनता ही पूर्ण रूपमें प्रकाशित होती है। परमहंस-चूड़ामणि श्रीशुकदेव गोस्वामी इस परम तत्त्वकी घोषणा करनेके लिए यमलार्जुन-भञ्जन-लीलाके दो-चार दिन पश्चात्‌की किसी एक लीलाका वर्णन करनेमें प्रवृत्त हो रहे हैं। एकदिन प्रातःकाल भोजनके पश्चात् यशोदानन्दन कृष्ण एवं बलदेव गोपबालकोंके साथ खेलते-खेलते यमुना किनारे उपस्थित हुए। वहाँ यमुनाकी रेतीली भूमिपर सभी मिलकर हास-परिहास करते हुए विविध प्रकारकी बाल-क्रीड़ाएँ करने लगे। वात्सल्यप्रेमवती यशोदा प्रतिदिनकी भाँति आज भी अपने बालकके लिए अपने हाथोंसे ही भोजन बना रही थीं। वे रसोई-घरसे ही गोपबालकोंकी हो-हो ध्वनि सुनकर बलदेवकी जननी रोहिणीसे कहने लगीं—रोहिणी दीदी! लगता है कि आज कृष्ण-बलराम बालकोंके साथ यमुना किनारे खेलने गये हैं। तुम जाकर उन्हें बुला लाओ। उन दो अर्जुनवृक्षोंके गिरनेके पश्चात् अब तक भी मेरा मन घबराता रहता है।

रोहिणीदेवी यमुनाके किनारे जाकर राम-कृष्णको बुलाने लगीं। परन्तु राम-कृष्ण दोनों भाई सहचर बालकोंके साथ खेलनेमें इतने मग्न थे कि रोहिणीदेवीकी पुकार उनके कानोंमें प्रवेश ही नहीं कर

पायी। रोहिणीदेवी जब उन्हें पकड़ने जातीं, वे इधर-उधर भाग जाते। तब रोहिणीदेवी लौटकर आयीं एवं यशोदाको कहने लगीं—"ओ यशोदे! कृष्ण-बलराम मेरी बात नहीं सुन रहे हैं। जब मैं उन्हें पकड़ने जाती हूँ, तो वे भाग जाते हैं। यहाँका काम मैं कर लूँगी, तुम एकबार यमुना किनारे जाकर उन्हें ले आओ। राम-कृष्ण दोनों ही तुम्हारी बात सुनते हैं और तुमसे डरते भी हैं। अतएव तुम्हारे बुलाये बिना वे नहीं आयेंगे।"

पुत्रस्नेहसे ओत-प्रोत-हृदयवाली यशोदा मैया रसोईका कार्य छोड़कर तीव्र गतिसे यमुना किनारे उपस्थित हुईं। वात्सल्यप्रेमवती यशोदा मैयाने जब राम-कृष्णको क्रीड़ामें मत्त देखा, तो वे बड़े स्नेहसे उच्चस्वरसे उन दोनोंको कहने लगीं—"कृष्ण! कृष्ण! कमलनयन! तुम बहुत देरसे मेरी गोदीमें नहीं आये हो तथा अभी तक तुमने दूध भी नहीं पिया, क्या खेल-खेलमें सबकुछ भूल गये हो?" उनके बुलानेपर कृष्णने घूमकर उनकी ओर देखा तथा हाथसे सङ्केत करते हुए कहा—"मैया! अभी आ रहा हूँ।" ऐसा कहकर वे फिरसे खेलमें मग्न हो गये।

जब यशोदाने देखा कि राम-कृष्णका खेलना बन्द ही नहीं हो रहा है, तो उन्होंने गोपबालकोंसे कहा—"बालको! तुमलोग कृष्ण-बलरामको छोड़कर अपने-अपने घर जाओ। तुमलोगोंके रहते यह खेलना बन्द नहीं करेगा।" यह सुनकर यशोदानन्दन खेलना बन्दकर माँके मुखकी ओर देखने लगे तथा मन-ही-मन सोचने लगे—"मैं खेल-कूदमें मग्न होनेके कारण यदि माँके पास नहीं गया, तो माँ बिगड़कर मुझे फिरसे बाँध देंगी।" बलराम भी खेलना बन्दकर कृष्णके पास खड़े हो गये तथा कहने लगे—"कन्हैया! चल, देर मत कर! मैया बहुत देरसे बुला रही है।"

यशोदादेवी तब कृष्ण-बलरामको स्नान-भोजनादिके लिए उत्साहित करनेके लिए कहने लगीं—"देखो, तुम्हारे सखा ग्वालबालोंको उनकी माताओंने स्नान, भोजनादि कराकर विविध प्रकारके आभूषणोंसे सजा दिया है। तुम भी स्नान-भोजन कर सुन्दर रूपसे सजकर उनके साथ सुखपूर्वक खेलते रहना। चलो पुत्र! अभी तुम्हारे बाबा भोजनके लिए

तुम दोनोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" इस प्रकार यशोदाने बड़े दुलारके साथ कृष्ण-बलरामको बुलाया। राम-कृष्ण भी माँके दुलारसे तथा उनकी स्नेहमयी वाणीसे आत्मविस्मृत होकर उनकी ओर चल पड़े। पासमें आनेपर यशोदा मैयाने दोनों बालकोंके मुखका बार-बार चुम्बन किया तथा दोनोंका हाथ पकड़कर घर ले आयीं।

माँ यशोदाका वात्सल्यप्रेम अतीव चमत्कारपूर्ण है। बड़े-बड़े योगीन्द्र, मुनीन्द्र सैकड़ों-हजारों वर्षों तक निरन्तर ध्यान करनेपर भी जिनके स्वरूपका अनुभव नहीं कर सकते, माँ यशोदा उन सर्वेश्वर-सर्वनियन्ता श्रीकृष्ण और उनकी अभिन्न मूर्त्ति श्रीबलदेव प्रभुको अपने वात्सल्यप्रेम द्वारा वशीभूतकर उनके हाथ पकड़कर ले जा रही हैं। वे भी साधारण बालकोंकी भाँति माँका हाथ पकड़कर घरकी ओर जा रहे हैं। माँ यशोदाने राम और कृष्ण दोनों भाईयोंको घरमें लाकर उन्हें स्नान-भोजनादि कराकर विविध अलङ्कारोंसे सजाया॥ १२-२०॥

**उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुलस्य हितैषिभिः।**
**आयान्त्यत्र महोत्पाता बालानां नाशहेतवः॥ २३॥**

**अन्वयः—**गोकुलस्य हितैषिभिः अस्माभिः इतः (गोकुलका हित चाहनेवाले हमलोगोंको इस गोकुलसे) उत्थातव्यं (दूसरे स्थानमें जाना चाहिये) अत्र (इस गोकुलमें) बालानां (राम-कृष्ण आदि बालकोंका) नाशहेतवः महोत्पाताः (नाश करनेके लिए सर्वदा ही महा उत्पात) आयान्ति (आ रहे हैं)॥ २३॥

**अनुवाद—**हे गोप भाइयो! अब हमारा इस स्थानपर रहना हमारे और गोकुलके हितकी दृष्टिसे उचित नहीं है। यहाँ सर्वदा ऐसे-ऐसे भयङ्कर उत्पात हो रहे हैं, जिनसे हमारे बलराम, कृष्ण आदि बालकोंके लिए प्राणोंका सङ्कट उत्पन्न हो रहा है॥ २३॥

**सारार्थदर्शिनी—**गोकुलस्य गोकुलवासिमात्रस्य॥ २३॥

**भावानुवाद—***'गोकुलस्य'*—हम गोकुलवासियोंका हित चाहते हैं, इसलिए हमारे लिए बहुत शीघ्र ही यहाँसे दूसरी जगह जाना अति आवश्यक है॥ २३॥

**मुक्तः कथञ्चिद्राक्षस्या बालघ्न्या बालको ह्यसौ।**
**हरेरनुग्रहान्नूनमनश्चोपरि नापतत्॥ २४॥**

**अन्वयः**—असो बालकः (यह बालक कृष्ण) हि (निश्चित रूपसे) कथञ्चित् (दैवसे) बालघ्न्याः (बालघातिनी) राक्षस्याः (पूतनासे) मुक्तः (सुरक्षित हुआ) नूनं (निश्चित रूपसे) हरेः (श्रीभगवान्‌के) अनुग्रहात् (अनुग्रहसे) अनः (शकट) च उपरि न अपतत् (इसके ऊपर गिरा नहीं)॥ २४॥

**अनुवाद**—देखो! यह बालक कृष्ण भाग्यवशतः जैसे-तैसे बालघातिनी, राक्षसी पूतनाके चङ्गुलसे मुक्त हुआ है। इसके बाद एक दिन फिर इसके ऊपर छकड़ा गिर गया, तब भी भगवान्‌की कृपासे यह बच गया, इसे कुछ हुआ नहीं॥ २४॥

**चक्रवातेन नीतोऽयं दैत्येन विपदं वियत्।**
**शिलायां पतितस्तत्र परित्रातः सुरेश्वरैः॥ २५॥**

**अन्वयः**—चक्रवातेन (चक्रवातके रूपमें) दैत्येन (दैत्य तृणावर्त्तके द्वारा) वियत् (आकाशमें ले जाये जानेपर) विपदं (मृत्यु-स्वरूपको) नीतः (प्राप्त होनेपर भी) अयं (इस कृष्णके) शिलायां (पत्थरके ऊपर) पतितः तत्र (गिरनेपर भी वहाँ) सुरेश्वरैः (भगवत्प्रेरित पार्षदोंने या विष्णुने) परित्रातः (इसकी रक्षा की)॥ २५॥

**अनुवाद**—बवण्डर रूपधारी तृणावर्त्त नामका दैत्य जिस समय इसे आकाशमें ले गया था, उस समय यह मृत्युके मुखमें चला ही गया था। जब आकाशसे यह एक बड़ी शिलाके ऊपर गिरा, उस समय भी हमारे कुलदेवता विष्णुने ही इसकी रक्षा की थी॥ २५॥

**सारार्थदर्शिनी**—चक्रवातेन तृणावर्त्तेन वियदाकाशं विपत्प्रापकत्वाद्विपदम्। सुरैश्वरैः सुरेश्वरेण विष्णुना, बहुत्वं गौरवेण। तत्रापीत्युत्तर-वाक्ये अपिकारात्॥ २५॥

**भावानुवाद**—*'चक्रवातेन'*—चक्रवातरूपी तृणावर्त्त दैत्यके द्वारा यह पक्षियोंके विहार-स्थल आकाश मार्गमें उठाकर ले जाया गया। ऐसी विपत्तिमें देवताओंके ईश्वर विष्णुने इसकी रक्षा की थी॥ २५॥

**यत्र म्रियेत द्रुमयोरन्तरं प्राप्य बालकः।**
**असावन्यतमो वापि तदप्यच्युतरक्षणम्॥ २६॥**

**अन्वयः**—असौ (यह कृष्ण) वा [या] अन्यतमः (दूसरे कोई) अपि बालकः द्रुमयोः (बालक भी यमलार्जुन वृक्षोंके) अन्तरं प्राप्य (बीचमें आकर) यत न म्रियते (जो मरे नहीं) तत्र अपि अच्युत रक्षणं (वहाँपर भी श्रीभगवान्ने ही रक्षा की है)॥ २६॥

**अनुवाद**—उस दिन भी कृष्ण या अन्य कोई बालक यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमें आकर उनके गिरनेपर भी जो मरे नहीं, उसे भी भगवान्के द्वारा की गयी रक्षा समझना चाहिये॥ २६॥

**सारार्थदर्शिनी**—असौ कृष्णः॥ २६॥

**भावानुवाद**—असौ—यह बालक कृष्ण॥ २६॥

**यावदौत्पातिकोऽरिष्टो व्रजं नाभिभवेदितः।**
**तावद्बालानुपादाय यास्यामोऽन्यत्र सानुगाः॥ २७॥**

**अन्वयः**—[इसलिए] यावत् (जब तक) औत्पातिकः (उत्पात-जनित) अरिष्टः (मृत्युका कारण) इतः (फिरसे) व्रजं (गोकुलमें) न अभिभवेत् (हानि न पहुँचाये) तावत् (उससे पहले ही) सानुगाः (अपने सङ्गी-साथी सहित हम सभी लोग) बालान् उपादाय अन्यत्र यास्यामः (बालकोंको लेकर अन्यत्र जायेंगे)॥ २७॥

**अनुवाद**—अब इसके बाद और कोई अनिष्टकारी विपत्ति आकर हमारे व्रजको नष्ट न कर दे, उसके पहले ही हमें अपने बालकोंको लेकर सहचरोंके साथ कहीं ओर चले जाना चाहिये॥ २७॥

**सारार्थदर्शिनी**—पूर्वमस्मिन्नगरे विष्णुकथा-कीर्तन-दर्शन-परिचर्यादिकं बहुत-रमासीत्। यावन्नन्दस्य बालकोऽयमभूत्तावदास्थान्यादिषु सर्वत्रास्यैव कथाकीर्तन-दर्शनादिकं प्रतीक्षणं भवत्यतस्तादृशं च कुतोऽस्माकं सम्प्रति तद्भजनं येन सदा विष्णुनैव रक्षा स्यादतस्तदादिष्ट-नीति शास्त्रमेवानुसरणीयमित्याह—यावदिति॥ २७॥

**भावानुवाद**—पहले इस नगरमें विष्णुकी कथाका कीर्त्तन, दर्शन एवं परिचर्यादि प्रचुर रूपमें होती थी। जबसे नन्दके इस पुत्रने जन्म लिया है, तबसे सर्वत्र, बाजारमें, गोष्ठमें, घरमें या किसी सभा-स्थलीमें इस बालककी ही कथाका कीर्त्तन और दर्शनादि निरन्तर हो रहा है। पहलेकी भाँति अब हमसे भगवान्‌का भजन-साधन भी कहाँ हो पाता है, जिससे अब नारायण हमारी रक्षा कैसे करेंगे? इसलिए नीति-शास्त्रके अनुसार इस उत्पातपूर्ण स्थानका तुरन्त परित्याग करना ही न्यायसङ्गत है। अर्थात् जब तक कोई अन्य असुर आकर इस व्रजभूमिको नष्ट करे, उससे पहले ही गोधन, भृत्य आदिके साथ बालकोंको लेकर हम कहीं अन्यत्र चले जाना चाहिये॥ २७॥

**वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम्।**
**गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम्॥ २८॥**

**अन्वयः**—[नन्दगाँव और महावनका मध्यवर्त्ती स्थान ही हमारे निवासके लिए उपयुक्त होगा] पशव्यं (वहाँ पशुओंके हितके लिए घास आदिसे परिपूर्ण) नवकाननं (नवीन कानन तथा दूसरे-दूसरे वन-समुदाय जिसमें हैं, ऐसे) पुण्याद्रितृणवीरुधं (पवित्र पर्वत, तृण, लता आदिसे युक्त) गोप-गोपी-गवां-सेव्यं (गोप-गोपी और गायोंके लिए सुखदायी) वृन्दावनं नाम वनं (वृन्दावन नामका वन है)॥ २८॥

**अनुवाद**—नन्दगाँव और महावनके बीचमें वृन्दावन नामका एक वन है। वह हमारे वासके लिए उपयुक्त स्थान है। वह स्थान हरा-भरा होनेके कारण पशुओंके लिए हितकारी है। उस स्थानपर सुरम्य नवीन वन वर्त्तमान हैं एवं पवित्र पर्वतों, हरी-हरी घास तथा लता-वनस्पति आदिसे भरपूर होनेके कारण वह स्थान गोप, गोपी एवं गायोंके लिए परम सुखदायक है॥ २८॥

**सारार्थदर्शिनी**—न चास्मत्प्राचीन-राजधानी नन्दीश्वरो गन्तुं शक्यः, याद्भयान्नन्दीश्वरात् पलाय्यात्र महावने वयं अवसाम तस्यारिष्टस्य संप्रत्यपि तत्रैव स्थितेः। न च व्रजभूमेरन्यत्र यियासा संभवेदरोचकत्वादेव, तस्मात, नन्दीश्वरमहावन

योर्मध्यवर्त्तिस्थानमेवावासार्थं युज्यते इति विचार्याह—वनमिति। पशव्यं पशुभ्यो हितं, नवानि काननान्यवान्तराणि यत्र तत्॥ २८॥

**भावानुवाद**—यदि कहो कि हमारे लिए अपनी प्राचीन राजधानी नन्दगाँव जाना ही उचित है। किन्तु वह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि जिस अरिष्टासुरके उत्पातसे नन्दीश्वरको छोड़कर हमने इस महावनमें आकर निवास किया था, वह अरिष्ट आज भी नन्दगाँवमें ही है, इसलिए वहाँ जाना अभी उचित नहीं होगा। और फिर व्रजभूमि छोड़कर हम अन्यत्र जाना भी नहीं चाहते, क्योंकि दूसरा कोई स्थल हम लोगोंको रुचिकर भी नहीं है। अतएव नन्दीश्वर और महावनका मध्यवर्त्ती स्थान ही हमारे वासके लिए उपयुक्त स्थान है। उस वृन्दावन नामके वनमें पशुओंके चरनेके लिए अनेक छोटे-छोटे उपवन भी हैं॥ २८॥

**तत् तत्राद्यैव यास्यामः शकटान् युङ्क्त मा चिरम्।**
**गोधनान्यग्रतो यान्तु भवतां यदि रोचते॥ २९॥**

**अन्वयः**—तत् (इसलिए) अद्य एव तत्र यास्यामः, मा चिरं (हम बिना किसी विलम्बके आज ही वहाँ प्रस्थान करेंगे) शकटान् युङ्क्त (बैलगाड़ियोंको जोड़ लो) यदि भवतां रोचते (यदि आप लोगोंकी सम्मति हो) [तब] अग्रतः (आगे) गोधनानि (गायोंको) यान्तु (भेजा जाय)॥ २९॥

**अनुवाद**—यदि तुम सब लोगोंकी सम्मति है तो हम आज ही वहाँ चल पड़ें। अब और विलम्ब करनेकी आवश्यकता नहीं है। सभी लोग शीघ्र ही सारे छकड़ोंको जोत लें और अपनी एकमात्र सम्पत्ति गायोंको सबसे आगे रखकर चल पड़ें॥ २९॥

**सारार्थदर्शिनी**—तत्तस्मात् तत्र वृन्दावने, भवतां भवद्भ्यः॥ २९॥

**भावानुवाद**—*'तत्'*—अतएव आज ही हम सभी वृन्दावनकी यात्रा करें। यदि आप सभीका यह अभिमत हो, तो हम चलनेकी तैयारी करें॥ २९॥

**तच्छ्रुत्वैकधियो गोपाः साधु साध्वितिवादिनः।**
**व्रजान् स्वान् स्वान् समायुज्य ययूरूढपरिच्छदाः॥ ३०॥**

**अन्वयः**—तत् (उपानन्दकी बात) श्रुत्वा (सुनकर) एकधियः (एक निश्चय करते हुए) गोपाः साधु साधु (गोपोंने कहा—साधु साधु आपने अति उत्तम बात कही) इति वादिनः (ऐसा कहकर) स्वान् स्वान् व्रजान् (इधर-उधर घूमनेवाली अपनी-अपनी गायोंको) समायुज्य (एकत्रितकर) रूढ परिच्छदाः (गाड़ियोंमें सारा सामान भरकर) ययुः (यात्रा आरम्भ की)॥ ३०॥

**अनुवाद**—उपानन्दके ये वचन सुनकर सभी गोपोंने एकमत होकर "अति उत्तम, अति उत्तम" कहकर उनका समर्थन किया। फिर सभीने अपनी-अपनी गायोंको एकत्रित किया और घरकी सभी वस्तुओंको छकड़ोंपर लादकर वृन्दावनकी ओर चल पड़े॥ ३०॥

**सारार्थदर्शिनी**—व्रजान् व्रजवर्त्तिगवादीन् एकत्र मेलयित्वारूढाः शकटान्यारूढाः परिच्छदा येषां ते॥ ३०॥

**भावानुवाद**—*'व्रजान्'*—इस प्रकार सभी गोपगण व्रजके गाय आदि पशुओंको एकत्रितकर अपनी-अपनी बैलगाड़ियोंको जोड़कर उनमें सभी उपकरणोंको रखकर वृन्दावनकी ओर अग्रसर होने लगे॥ ३०॥

**वृद्धान् बालान् स्त्रियो राजन् सर्वोपकरणानि च।**
**अनःस्वारोप्य गोपाला यत्ता आत्तशरासनाः॥ ३१॥**

**गोधनानि पुरस्कृत्य शृङ्गाण्यापूर्य सर्वतः।**
**तूर्यघोषेण महता ययुः सहपुरोहिताः॥ ३२॥**

**अन्वयः**—हे राजन् (हे महाराज!) गोपालाः यत्ताः (गोपगण अति यत्नके साथ) आत्तशरासनाः (धनुष धारणकर) वृद्धान् बालान् स्त्रियः सर्वोपकरणानि च अनःसु आरोप्य (वृद्ध, बालक, स्त्री और समस्त उपकरणसमूहको गाड़ीमें चढ़ाकर) गोधनानि पुरस्कृत्य (गायोंको आगेकर) महता तूर्यघोषेण (महा भेरीनादके साथ) सर्वतः शृङ्गानि

(चारों ओर शृङ्गा) आपूर्य (बजाते हुए) सह पुरोहिताः ययुः (पुरोहित वर्गके साथ चलने लगे)॥ ३१-३२॥

**अनुवाद**—हे राजन्! ग्वालोंने बूढ़ों, बालकों, स्त्रियों एवं सब सामग्रियोंको छकड़ोंपर चढ़ा दिया तथा गायों एवं बछड़ोंको आगेकर धनुष-बाण धारणकर बड़ी सावधानीके साथ वृन्दावनके लिए चल दिये। पुरोहित उनके साथ-साथ चल रहे थे। उस समय गोपोंके द्वारा बजायी गयी भेरी एवं सींगोंकी उच्च-ध्वनिसे चारों दिशाएँ गूँज उठीं॥ ३१-३२॥

**सारार्थदर्शिनी**—यत्ता प्रयत्नवन्तः॥ ३१-३२॥

**भावानुवाद**—यत्ताः—उन सबकी रक्षाके लिए गोपोंने सावधानी पूर्वक धनुष धारणकर यात्रा आरम्भ की॥ ३१-३२॥

**गोप्यो रूढरथा नूत्न-कुचकुङ्कुमकान्तयः।**
**कृष्णलीला जगुः प्रीत्या निष्ककण्ठ्यः सुवाससः॥ ३३॥**

**अन्वयः**—नूत्न-कुचकुङ्कुमकान्तयः (नित्य नूतन स्तनयुगलमें रञ्जित कुङ्कुमकी कान्तिसे सुशोभित होकर) निष्ककण्ठ्यः (कण्ठदेशमें पदक धारणकर) [तथा] सुवाससः (मनोहर वस्त्र पहनकर) रूढरथाः (रथमें बैठकर) गोप्यः प्रीताः (गोपियाँ परम आनन्दके साथ) कृष्णलीला (कृष्ण चरित्रका) जगुः (गान करने लगीं)॥ ३३॥

**अनुवाद**—गोपियोंने अपने नित्य नवीन स्तनोंपर कुङ्कुमराग (केसर) लगा रखा था, गलेमें पदकयुक्त स्वर्ण हार धारण कर रखे थे और बड़े सुन्दर एवं मनोरम वस्त्र पहन रखे थे। रथपर सवार होकर वे बड़ी प्रीतिके साथ कृष्णलीला सम्बन्धित गीत गाती जा रही थीं॥ ३३॥

**तथा यशोदारोहिण्यावेकं शकटमास्थिते।**
**रेजतुः कृष्णरामाभ्यां तत्कथाश्रवणोत्सुके॥ ३४॥**

**अन्वयः**—तथा यशोदा रोहिण्यौ तत्कथाश्रवणोत्सुकै (यशोदा और रोहिणी दोनों राम और कृष्णकी बातें सुननेकी इच्छासे) एकं

शकटं आस्थिते (एक ही शकटमें बैठकर) कृष्णरामाभ्यां (कृष्ण और रामके साथ) रेजतुः (सुशोभित हो रही थीं)॥ ३४॥

**अनुवाद**—यशोदा मैया एवं रोहिणीदेवी दोनों ही सज-धजकर अपने-अपने प्यारे पुत्रों कृष्ण और बलरामके साथ एक ही छकड़ेपर शोभायमान हो रही थीं। वे अपने दोनों बालकोंकी सुमधुर तोतली बोली सुननेके लिए उत्सुक रहती थीं॥ ३४॥

**सारार्थदर्शिनी**—एकं शकटमिति द्वयोरेव पुत्रद्वयविरहसहनाशक्तेः॥ ३४॥

**भावानुवाद**—*'एकं शकटम्'*—यशोदा और रोहिणी दोनों बालकोंका विरह सहन करनेमें असमर्थ होनेके कारण कृष्ण और बलरामके साथ एक ही बैलगाड़ीमें बैठकर सुशोभित होने लगीं॥ ३४॥

**वृन्दावनं सम्प्रविश्य सर्वकालसुखावहम्।**
**तत्र चक्रुर्व्रजावासं शकटैरर्द्धचन्द्रवत्॥ ३५॥**

**अन्वयः**—सर्वकालसुखावहं (समस्त ऋतुओंमें सुखदायी) वृन्दावनं संप्रविश्य (वृन्दावनमें प्रवेशकर) तत्र शकटैः अर्द्धचन्द्रवत् (वहाँपर बैलगाड़ियोंको अर्द्धचन्द्राकारमें स्थापितकर) व्रजावासं (व्रजवासियोंके रहनेके लिए स्थान) चक्रुः (बनाया गया)॥ ३५॥

**अनुवाद**—तत्पश्चात् गोपोंने सभी ऋतुओंमें सुखदायी वृन्दावनमें प्रवेशकर वहाँ छकड़ोंको अर्द्धचन्द्राकारमें खड़ाकर गायों और व्रजवासियोंके रहनेयोग्य निवासस्थान बना दिया॥ ३५॥

**सारार्थदर्शिनी**—अर्द्धचन्द्रवदिति पश्चाद्भागं प्रति स्वद्रव्यस्थापनार्थं, अग्रभागे विस्तीर्णे गवादीनां सुखनिर्गमार्थञ्च। *"शकटीवाटपर्यन्तश्चन्द्रार्द्धाकार संस्थिते"* इति श्रीविष्णुपुराणे च एवं तद्दिने शकटैरेव चक्रुः। दिनान्तरे तु यथा श्रीहरिवंशे—*"कण्टकीभिः प्रवृद्धाभिस्तथा कण्टकीभिर्द्रुमैः। निर्वातोच्छ्रितशाखाभिरभिगुप्तं समन्ततः"* इति॥ ३५॥

**भावानुवाद**—*'अर्द्धचन्द्रवत्'*—पीछेकी ओर सामान आदि रखनेके लिए तथा सामनेके विशाल भागमें गायोंके रहनेके लिए बैलगाड़ियोंको अर्द्धचन्द्राकार रूपमें स्थापितकर व्रजवासियोंके रहनेके लिए पहले अस्थायी रूपमें निवास स्थान बनाया गया। विष्णुपुराणमें भी कहा

है—*"शकटी-वाट-पर्यन्तश्चन्द्रार्द्धाकार-संस्थितिः"* (५/६/३१) अर्थात् सभी व्रजवासी वृन्दावनमें छट्टीकरा तक अर्द्धचन्द्राकारमें वासस्थान निर्माणकर निवास करने लगे। उस दिन इस प्रकारसे ही बैलगाड़ियोंके द्वारा वासस्थान बनाया गया, किन्तु दूसरे दिन जैसा श्रीहरिवंशमें वर्णन हुआ है—"व्रजवासियोंने वासस्थानके चारों ओर काँटेदार वृक्षोंकी बड़ी-बड़ी शाखाएँ गाड़कर चारों ओरसे सुरक्षाकी पक्की व्यवस्था की॥"३५॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति—** *"रसो वै सः"* श्रुति-प्रतिपाद्य अखिल रसामृतमूर्त्ति स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण व्रजमें गो, गोप और गोपियोंके साथ सख्य, वात्सल्य और मधुर रसका आस्वादन करते हैं एवं अपनी परम मधुर लीला-माधुरीसे त्रिजगत्को मुग्ध करते हैं। सच्चिदानन्द-विग्रह श्रीकृष्ण क्षय, वृद्धि, परिणाम आदिसे रहित होकर भी रसास्वादन और प्रेमदानके लिए तीन प्रकारकी अवस्थाओंको प्रकट करते हैं। उन्होंने वात्सल्यरसके आस्वादनसे अपनी बाल्य-अवस्था, सख्यरसके आस्वादनसे पौगण्ड-अवस्था एवं मधुररसके आस्वादनसे कैशौर-अवस्थाको सफल किया। यद्यपि वे नित्य नवकिशोर नटवर-स्वरूप हैं, फिर भी वे नन्द-यशोदाके पुत्रके रूपमें जन्म-ग्रहण करते हैं, दिन-प्रतिदिन वर्द्धित होते हुए नित्य नवीन-नवीन बाललीलाओंको प्रकाशितकर पिता-माताका आनन्दवर्द्धन करते हैं। श्रीकृष्णके जन्मसे लेकर यमलार्जुन-भञ्जन तककी लीलाएँ गोकुलमें होती हैं। इसके पश्चात् श्रीदाम, सुबल आदि गोपबालकोंके साथ गोचारण आदि पौगण्ड-लीला एवं श्रीराधा आदि गोपरमणियोंके साथ किशोरावस्थामें रास आदि लीलाएँ श्रीवृन्दावनमें ही प्रकाशित हुई हैं।

बृहद्वन या गोकुल उनकी बाल्य-लीलाके लिए उपयुक्त स्थान है, किन्तु वहाँपर पौगण्ड एवं कैशौर-लीला प्रकाशित नहीं होती, क्योंकि गोकुलमें लोक-संख्या तो अधिक है, परन्तु स्थान सङ्कीर्ण है। इसके अतिरिक्त वहाँ गोचारणके लिए पर्याप्त स्थानका अभाव है, गोवर्द्धन पर्वत नहीं है तथा विविध प्रकारकी लीलाओंके लिए उपयोगी लताएँ और कुञ्ज आदि भी नहीं हैं। इसलिए वहाँपर पौगण्ड एवं कैशोर लीलारसका आस्वादन नहीं हो सकता है। अतः श्रीभगवान्की लीलाशक्तिने नन्द महाराज आदि गोपोंके हृदयमें एक ऐसी प्रेरणा जगा

दी, जिससे उन्होंने अपना पैतृक वासस्थान छोड़कर दूसरे स्थानपर जानेका निश्चय किया।

अब यमलार्जुन-उद्धारके कुछ दिन पश्चात् व्रजवासी गोपगण नन्द महाराजकी राजसभामें व्रजभूमिके शुभ-अशुभका विचार करनेके लिए एकत्रित हुए। गोपराज श्रीनन्दके ज्येष्ठ भ्राता एवं मन्त्री श्रीउपानन्द गोप-गोष्ठीमें सबसे अधिक वयोवृद्ध, दूरदर्शी, सद्-विवेचक एवं परम ज्ञानी थे।

जिस समय नन्द महाराज आदि गोपगण व्रजके कल्याणके लिए विविध प्रकारकी चर्चा कर रहे थे, ऐसे समयमें उपानन्द सभीको सम्बोधनकर कहने लगे—"आदरणीय गोपो! इस वृद्धकी एक बात सुन लो। यदि तुमलोग इस व्रजराज्यका यथार्थ हित चाहते हो, तो अपना समस्त काम-काज छोड़कर गोकुलसे अपना-अपना सारा सामान गाड़ियोंमें भरकर दूसरे किसी सुरक्षित स्थानमें चलो। यद्यपि गोकुल हम सबकी जन्मभूमि एवं पैतृक निवासभूमि है, फिर भी आत्मरक्षाके लिए यह स्थान त्याग करनेमें हमें कोई दोष नहीं लगेगा। ज्ञानीलोगोंने भी कहा है कि आवश्यकता होनेपर आत्मरक्षाके लिए जन्मभूमिकी तो बात ही क्या पृथ्वीको भी छोड़ देना चाहिये। आप सभी लोग विचार करके देखें—कृष्णके जन्मके पाँच-छह दिनके बादसे ही व्रजमें असुर-राक्षस आदिका उत्पात प्रारम्भ हो गया है। नाना प्रकारके उत्पातोंके कारण हमारे बालकोंका यदि कोई अनिष्ट हो गया, तो हमारा राज्य, सम्पदा सबकुछ व्यर्थ हो जायेगा। नन्द महाराजकी गोदमें यह जो बालक बैठा हुआ है, जो अपनी अङ्ग-माधुरीसे तथा मनमोहक मुसकानसे सबके मनको हरण कर रहा है, यह बालक समस्त व्रजवासियोंका प्राण-स्वरूप है।

"पूतना राक्षसीके आगमनसे लेकर यमलार्जुन-भञ्जन तक जितनी भी घटनाएँ हुईं, वे सभीको विदित हैं। यहाँपर असुर-राक्षस आदिका बहुत उपद्रव हो रहा है और आगे कितना क्या होगा, यह भी कहना कठिन है। घटनाओंपर विचार करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो सब उत्पात केवल नन्दनन्दनका अनिष्ट करनेके लिए आ रहे हैं। किन्तु हमारे पितृ-पुरुषोंके निष्कपट भजनके फलस्वरूप

श्रीनारायण हमपर प्रसन्न हैं, इसीलिए इतने बड़े-बड़े उत्पातोंमें भी बालकका कोई अनिष्ट नहीं हुआ है। अतएव समय रहते हमलोगोंको बालकोंके सहित अन्यत्र चले जाना चाहिये।

"मैंने पहलेसे ही सोच-विचारकर स्थिर किया है कि यहाँसे कुछ ही दूरीपर एक अति सुन्दर रमणीय वन है, उसका नाम वृन्दावन है। वह वन अत्यन्त सुकोमल घाससे परिपूर्ण है। इसके अतिरिक्त निर्मल जलाशयों एवं यमुनाके सुविशाल पुलिन आदिके कारण वह गायोंके लिए अत्यन्त हितकारी है। वहाँ गायोंके सुखपूर्वक घूमने-फिरने एवं चरनेके लिए स्थानका कोई अभाव नहीं है। विशेषकर इस गोकुलमें गोप-गोपी एवं गायोंके लिए पर्याप्त सुविधा भी नहीं है। परन्तु वृन्दावन गो, गोप, गोपी सबके लिए सुविधाजनक है। वहाँपर सभी परमानन्दपूर्वक निवास कर सकेंगे एवं स्वच्छन्द रूपसे विचरण कर सकेंगे। वृन्दावनमें गोवर्द्धन पर्वतकी शोभा अतीव मनोरम है एवं वह अनेकों प्रकारके वृक्ष-लता आदिके द्वारा सुशोभित है। एक स्थानको छोड़कर दूसरे स्थानमें जानेसे पहले अच्छी प्रकारसे गन्तव्य स्थलकी जाँच कर लेनी चाहिये—इस नीति-वाक्यके अनुसार मैंने पहले ही जाँच करके स्थिर किया है कि वृन्दावन हम सबके लिए सर्व प्रकारसे उपयुक्त है।"

उपानन्दजीकी यह युक्तिपूर्ण बात सुनकर गोपगण वृन्दावनमें वास करनेके लिए बड़े ही उत्साहित हो उठे। अतः सभीने एक स्वरसे उपानन्दजीके वचनोंका समर्थन किया तथा उनकी बहुत प्रशंसा की। अब सभी लोग वृन्दावन जानेके लिए तैयारियाँ करने लगे। उस समय गोकुलमें एक अभिनव उत्साहका वातारण छा गया।

देखते-देखते ही व्रजवासियोंने परम उत्साहके साथ अति अल्प समयमें ही असंख्य बैलगाड़ियोंको जोड़ दिया। तदनन्तर सभीने अपना-अपना सामान गाड़ियोंमें भर लिया एवं स्त्री, वृद्ध, बालकोंको बैलगाड़ियोंमें बिठाया। व्रजके पुरोहित धान, दही आदि माङ्गलिक द्रव्योंसे यात्रा प्रारम्भ करते समय स्वस्तिवाचन और मङ्गलवाचन आदि करने लगे। गोपगण परमानन्दमें सींगा, तुरही आदि बजाने लगे। इस

प्रकार उपयुक्त समयमें श्रीनारायणके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए गोकुलवासियोंने वृन्दावनकी यात्रा आरम्भ की।

यात्राके समय व्रजरमणियाँ बहुमूल्य वस्त्र, अलङ्कार आदिसे सुशोभित हो रही थीं। उनके कण्ठस्थित मणि-माणिक्य आदिसे जड़ित स्वर्णपदक और वक्षःस्थलपर लिप्त नवीन कुङ्कुमकी कान्तिसे चारों ओर एक अपूर्व प्रकाश छा रहा था। उनके सुमधुर कण्ठसे निःसृत व्रजराजनन्दनके बाल्य-लीला गानसे वनपथ भी मुखरित हो गया। इस प्रकार सभी लोग अभिनव परमानन्द-रसमें डूबकर वृन्दावनकी ओर चलने लगे।

एक बैलगाड़ीमें यशोदा और रोहिणी भी कृष्ण और बलरामको गोदीमें लेकर आमने-सामने बैठी थीं। वे कभी कृष्णकी बाल-लीलाओंका गान कर रही थीं, कभी कृष्णके मधुर वचनोंको सुनती थीं और कभी बलराम एवं कृष्णके परस्पर आलापको श्रवण कर रही थीं।

कुछ दूर जानेपर कन्हैयाने दाहिने हाथसे मैयाकी ठोड़ी पकड़कर कहा—"मैया! लोग हम कहाँ जा रहे हैं?" कृष्णकी बात सुनकर यशोदामैयाने कहा—"हे वत्स! हम वृन्दावन नामक वनभूमिमें जा रहे हैं।" कृष्णने फिर पूछा—"मैया! हम कब घर लौटेंगे?" यशोदाने कहा—"हम घरके साथ ही वृन्दावन जा रहे हैं। यह तेरे बड़े भईया बलदाऊ, बड़ी मैया रोहिणी और यहाँसे थोड़ी दूरीपर बैलगाड़ीमें तुम्हारे बाबा बैठे हैं। इसके अतिरिक्त अन्यान्य गाड़ियोंमें तुम्हारे श्रीदाम, सुबलादि सखागण हैं एवं जो तुम्हें प्रतिदिन माखन खिलाती हैं, वे वात्सल्यवती व्रजरमणियाँ भी हैं। हमारे आगे-आगे सभी गायें भी चल रही हैं।" इस प्रकार वनपथमें जाते समय पीपलके वृक्षोंपर दृष्टि पड़ते ही स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण बालभावमें मुग्ध होकर बड़े कौतूहलसे पूछने लगे—"मैया! चारों ओर असंख्य पत्रयुक्त, वायुके वेगसे विचलित, ये जो गगनस्पर्शी वृक्ष खड़े हैं—इनका क्या नाम है?" यशोदामैयाने कहा—"पुत्र! ये पीपलके वृक्ष हैं।" उसी समय गूलरके वृक्षपर दृष्टि पड़ते ही कृष्णने पूछा—"ये जो करोड़ों-करोड़ों अण्डे अपने अङ्गोंमें धारणकर खड़े हैं, ये कौन-से वृक्ष हैं।" यशोदा मैयाने

कहा—"ये गूलरके वृक्ष हैं।" कृष्णने कहा—"मैया! इन बड़ी-बड़ी जटाओंवाले वृक्षोंका क्या नाम है?" यशोदा मैयाने कहा—"ये बरगदके वृक्ष हैं।" इस प्रकार वृन्दावन-गमनके समय माता और पुत्रका मनमोहक सम्वाद सबके कानोंमें अमृतकी धारा प्रवाहित कर रहा था, जिससे सभी परमानन्दित हो रहे थे।

इस प्रकार व्रजवासीगण 'सट्टीकरा' (शकटीकरा—छट्टीकरा) नामक स्थानमें आकर उपस्थित हुए। यही स्थान व्रजवासियोंके निवासस्थानके रूपमें चयन किया गया था। तब व्रजराज नन्दमहाराजके आदेशसे तुरही बजाकर अपने गन्तव्य स्थानपर पहुँचनेकी सूचना दी गयी। तब नन्द महाराजने सभीको अपना-अपना वासस्थान बनानेके लिए आदेश दिया। सभी लोग अर्द्धचन्द्राकारमें गाड़ियोंको खड़ाकर रहनेयोग्य निवासस्थान बनाने लगे। इस प्रकार पहले दिन तो अस्थायी रूपमें ही निवासस्थान बनाये गये, फिर दूसरे दिनसे वासस्थानके चारों ओर काँटेदार वृक्षोंकी बड़ी-बड़ी शाखाएँ गाड़कर उसे सुरक्षित किया गया। इतने दिन तक वृन्दावनकी भूमि सो रही थी, परन्तु अब गोप-गोपियोंके आगमनसे जाग्रत हो उठी।

श्रीहरिवंशमें देखा जाता है—

*निवेशं विपुलं चक्रे गवाञ्चैव हिताय च।*
*शकटावर्त्त पर्यन्तं चन्द्रार्द्धाकारसंस्थितम् ॥*

(श्रीहरिवंश)

गोपोंने वृन्दावनमें उपस्थित होकर गायोंका पालन एवं सुखपूर्वक विचरण करनेके लिए 'शकटावर्त्त' नामक स्थानपर अर्द्धचन्द्राकाररूपमें गोप-आवासोंका निर्माण किया।

वृक्षोंसे सुशोभित स्थानपर गोवर्धन पर्वतको सम्मुख रखकर उन्होंने अपने अनुरूप वासस्थानोंका निर्माण किया। लोकदृष्टिमें आठ कोस दीर्घ तथा चार कोस विस्तृत स्थानमें व्रजवासियोंका निवासस्थान स्थापित हुआ। यथार्थ रूपमें श्रीभगवान्‌का धाम अचिन्त्य एवं अनन्त शक्तिसे युक्त है। वृन्दावन-स्थित नवनिर्मित गोप-आवासोंके बीचमें गोपराज नन्दका भवन था, उसके पास ही उपानन्द, सनन्द आदि नन्दमहाराजके भ्राताओंके भवन थे।

इस प्रकार समस्त व्रजवासी वहाँपर परम आनन्दपूर्वक निवास करने लगे। उन्हें गोकुल छोड़नेका कोई कष्ट अनुभव नहीं हुआ, अपितु वृन्दावन सबके लिए सुखदायी होनेके कारण वे सब वहाँपर गोकुल-वाससे भी अधिक सुखका अनुभव करने लगे। वृन्दावनमें आकर राम-कृष्ण दोनों भाइयोंके आनन्दकी कोई सीमा नहीं रही। वे वृन्दावन, यमुनापुलिन और गोवर्द्धन आदि देखकर बहुत आनन्दित थे।

विविध प्रकारके पीठ, पर्यङ्क (पलङ्क) आदिकी भाँति शिलाखण्ड युक्त गोवर्द्धन पर्वत भी अत्यन्त मनोरम एवं सुखमय विहारका स्थान था। यमुना पुलिनकी भूमि, कर्पूर-चूर्णसे विनिर्मित रङ्गभूमिका भी तिरस्कार कर रही थी। अतएव गोवर्द्धन पर्वत और यमुना पुलिनादि राम और कृष्णके लिए परमानन्ददायक बन गये थे। इस प्रकार सभी प्रकारसे सुखमय विहार-स्थानको देखकर उन दोनोंने अपने सखा गोपबालकोंके साथ इधर-उधर विहार करते हुए नूतन गोप-आवास भूमिको कृतार्थ करते हुए उसे वैकुण्ठसे भी अधिक श्रेष्ठ गौरव प्रदान किया॥ २१-३५॥

**वृन्दावनं गोवर्द्धनं यमुनापुलिनानि च।**
**वीक्षासीदुत्तमा प्रीति राममाधवयोर्नृप॥ ३६॥**

**अन्वयः**—हे नृप (हे महाराज परीक्षित्!) वृन्दावनं गोवर्द्धनं (वृन्दावन, गोवर्द्धन) यमुना-पुलिनानि च (और यमुना-पुलिनका) वीक्ष्य राममाधवयोः उत्तमा प्रीतिः आसीत् (दर्शनकर राम-कृष्ण अत्यधिक प्रसन्न हुए)॥ ३६॥

**अनुवाद**—हे महाराज! वहाँपर वृन्दावन, गोवर्द्धन एवं यमुना-पुलिनका दर्शनकर राम-कृष्णको अत्यधिक आनन्द हुआ॥ ३६॥

**एवं व्रजौकसां प्रीतिं यच्छन्तौ बालचेष्टितैः।**
**कलवाक्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः॥ ३७॥**

**अन्वयः**—एवं (इस प्रकार) बालचेष्टितैः (बालकोचित कार्योंके द्वारा) [तथा] कलवाक्यैः (मधुर वचनोंके द्वारा) व्रजौकसां (व्रजजनोंका)

प्रीतिं यच्छन्तौ (आनन्दवर्धन करते हुए) स्वकालेन (यथा समयमें) [वे दोनों] वत्सपालौ (गोवत्स-पालक) बभूवतुः (बने)॥ ३७॥

**अनुवाद**—इस प्रकार बलराम एवं कृष्ण दोनों अपनी बालकोचित क्रीड़ाओं एवं मधुर तोतली बोलीसे सब व्रजवासियोंको आनन्दित करते रहते थे। समय आनेपर बलराम एवं कृष्ण बछड़ोंको चरानेमें समर्थ हो गये तथा बछड़ोंको चरानेके लिए जाने भी लगे॥ ३७॥

**सारार्थदर्शिनी**—स्वकालेन स्वोचितसमयेन॥ ३७॥

**भावानुवाद**—*'स्वकालेन'*—उपयुक्त समय अर्थात् कौमारकालकी मध्यम अवस्थामें ही राम और कृष्ण दोनों वत्सपालक बन गये॥ ३७॥

**अविदूरे व्रजभुवः सह गोपालदारकैः।**
**चारयामासतुर्वत्सान् नानाक्रीडापरिच्छदौ॥ ३८॥**

**अन्वयः**—नानाक्रीडापरिच्छदौ (विविध प्रकारके क्रीड़ाके उपकरण आदि लेकर वे दोनों) व्रजभुवः अविदूरे (व्रजके निकटवर्ती स्थानमें ही) गोपालदारकैः सह (गोपबालकोंके साथ) वत्सान् चारयामासतुः (बछड़ोंको चराने लगे)॥ ३८॥

**अनुवाद**—वे दोनों घरसे खेलनेके लिए अनेक प्रकारके उपकरण लेकर व्रजभूमिके पास ही (गोष्ठके समीप ही) दूसरे ग्वालबालोंके साथ मिलकर बछड़े चराने लगे॥ ३८॥

**क्वचिद्वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित्।**
**क्वचित्पादैः किङ्किणीभिः क्वचित् कृत्रिमगोवृषैः॥ ३९॥**

**वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परम्।**
**अनुकृत्य रुतैर्जन्तूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा॥ ४०॥**

**अन्वयः**—क्वचित् (किसी स्थानमें) वेणुं (वंशी) वादयतः (बजाते) क्वचित् क्षेपणैः (किसी स्थानमें यन्त्रविशेष गुलेलसे) क्षिपतः

(बेल, आँवला आदिको दूरमें फेंकते) क्वचित् किङ्किणीभिः (कभी किङ्किणीसे युक्त) पादैः (पैरोंसे आँवला, बेल आदि दूर फेंकते) क्वचित् कृत्रिम गोवृषैः (कभी कम्बल आदिके द्वारा शरीरको ढककर, नकली बैलका रूप धारणकर गोपबालकोंके साथ) वृषायमाणौ (बैलोंकी भाँति आचरण करते हुए) नर्द्दन्तौ (उच्चःस्वरसे शब्द करते हुए) परस्परं युयुधाते (परस्पर युद्ध करने लगते) जन्तून् (प्राणियोंकी) रुतैः (बोलीका) अनुकृत्य प्राकृतौ यथा (अनुकरण करते हुए साधारण बालककी भाँति) चेरतुः (क्रीड़ा विहार करने लगे)॥ ३९-४०॥

**अनुवाद**—किसी स्थानपर वे वंशी बजाते, किसी स्थानपर गुलेलसे बेल या आँवला आदि फेंकते, कहींपर किङ्किणीयुक्त चरणोंसे बेल आँवला आदिको फेंकते, कभी बनावटी बैल और गायोंका रूप धारणकर साँड़की भाँति शब्द करते हुए परस्पर बनावटी युद्ध करने लगते। कभी पशु-पक्षियोंकी बोलीका अनुकरण करते हुए साधारण बालकोंके समान खेलते रहते थे॥ ३९-४०॥

**सारार्थदर्शिनी**—क्षेपणैर्डोरीयन्त्रैर्बिल्वामलकादिकं क्षिपतः दूरे चालयतः किङ्किणीयुक्तैः पादैः क्षिपतस्ताडयन्तः कृत्रिमगोवृषैः कम्बलादिपिहितबालकैर्वृषाकारैः सह स्वयमपि तथैव वृषायमाणौ नर्दन्तौ तदनुकारिशब्दान् कुर्वाणौ युयुधाते जन्तून् हंसमयूरादीन्॥ ३९-४०॥

**भावानुवाद**—*'क्षेपणैः'*—कृष्ण-बलराम कभी गुलेलसे बेल, आँवला आदिको दूर फेंकते या कभी अपने किङ्किणीयुक्त चरणोंसे बेल या आँवलेको गेंद बनाकर खेलते। कभी कम्बल आदि ओढ़कर बनावटी गाय और बैलरूपधारी सखाओंके साथ स्वयं भी साँड़के समान शब्द करते हुए परस्पर लड़ते। कभी हंस, मयूर और बन्दरोंकी बोलीका अनुकरण करते हुए साधारण बालककी भाँति खेलते॥ ३९-४०॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—श्रीनन्दनन्दन वृन्दावनमें आकर विविध प्रकारकी अभिनव बाललीला-माधुरीके द्वारा व्रजवासियोंका आनन्दवर्द्धन करने लगे। वे जब गोकुलसे चले थे, तब तीन वर्ष चार मासके हो गये थे। अब उनका शिशुभाव क्रमशः अन्तर्हित होकर कौमार भाव प्रकाशित होने लगा था।

अब राम और कृष्ण दोनों भाइयोंका मातृ स्तनपान भी कम होने लगा। उनका शरीर क्रमशः सुगठित होने लगा। वेगसे दौड़ना, वृक्ष आदिपर चढ़ना तथा शृङ्गा बजाना आदि कौमार अवस्थाकी चपलता उनमें प्रकाशित होने लगी। नानाविध कौतुकके कारण उनका मुख सर्वदा ही मुसकानसे युक्त रहने लगा। वे अपने समआयुके गोपबालकोंके साथ विविध प्रकारकी कौमार-क्रीड़ाएँ करने लगे। अब राम और कृष्ण दोनों भाइयोंने स्वयं ही वस्त्र धारण करना भी प्रारम्भ कर दिया।

यद्यपि यशोदा मैया बड़े स्नेहसे कृष्ण, बलरामको वस्त्र पहना देती थीं, परन्तु कृष्ण उन्हें खोल देते तथा अपने हाथोंसे पहननेके लिए मैयासे वस्त्र माँगने लगते। स्वयं वस्त्र पहननेपर उनके शरीरका आधा भाग तो ढक जाता, परन्तु आधा भाग खुला रह जाता, जिससे लज्जित होकर वे पूरे शरीरको ही ढकनेका प्रयास करते। इस प्रकार सर्वजन-मनोहारी नन्दनन्दन वस्त्र धारण करते हुए उपस्थित गोपियोंको हास्य-रसमें सराबोरकर आनन्दित करते।

जब नन्द महाराज कभी-कभी गायोंको देखनेके लिए वनमें जाते, तो राम-कृष्ण दोनों भाई भी उनके साथ जानेका हठ करने लगते। तब नन्द महाराज दोनों बालकोंको गोदीमें लेकर वनमें जाते थे।

*आगच्छतां तत्र वने जनानां, स्नेहार्थिनां क्रोडगतौ पितुश्च।*
*अपृच्छतां तत्प्रतिवस्तु नाम, व्ययच्छतां शर्म च रामकृष्णौ॥*

(श्रीगोपालचम्पूः)

राम और कृष्ण दोनों भाई नन्दबाबाकी गोदमें बैठकर वनमें जाकर स्नेहपरायण गोपोंसे वनके वृक्षों और पशु-पक्षियोंके नाम पूछने लगते, जिससे वे भी उनके प्रश्नोंका उत्तर देकर आनन्दित होते। कभी वे दोनों नन्दबाबाकी गोदीसे उतरकर गायोंके पीछे दौड़ने लगते, कभी चञ्चल और उद्धत गाय और बैलोंके सींग पकड़कर उन्हें खींचकर ले आते। इस प्रकार वे गाय-बैलोंको भी अपने वशमें करने लगे।

एकदिन कृष्ण-बलराम दोनों भाई नन्दबाबासे हठ करने लगे—"पिताजी! हम गाय चराने जायेंगे। हमें गायोंके साथ जाने दो।

हम वहाँ जाकर खेलते रहेंगे।" भला नन्दबाबा और यशोदा मैया उन्हें कैसे छोड़ सकते थे। वे अपने हृदयकी एकमात्र निधि कृष्णको अपनेसे दूर भेजनेके लेशमात्र भी इच्छुक नहीं थे। फिर भी बालकोंकी वनमें खेलनेकी प्रबल इच्छा है, यह देखकर अन्तमें उन्होंने विचार किया कि इन दोनोंको छोटे-छोटे बछड़ोंको साथमें लेकर यहीं आस-पास भेज देना चाहिये, जिससे ये वहाँपर खेलते रहेंगे। इस प्रकार इनकी इच्छा भी पूरी हो जायेगी तथा ये हम लोगोंकी दृष्टिसे बहुत दूर भी नहीं जा सकेंगे।

अतः एकदिन नन्दबाबाने अपने बड़े भाई उपानन्दसे परामर्शकर किसी ज्योतिषीसे शुभ दिन निकलवाकर एवं उस दिन ब्राह्मण पण्डितोंके द्वारा शुभ माङ्गलिक अनुष्ठान कराकर राम-कृष्ण दोनोंको वत्सचारणमें नियुक्त किया।

व्रजके अन्यान्य गोपोंने राम और कृष्णके साथ अपने-अपने बालकोंको भी बछड़े चरानेके लिए भेजनेका निश्चय किया। माँ यशोदाने कृष्ण-बलरामको स्नान, भोजन, विचित्र वस्त्र और अलङ्कार आदि धारण कराकर वेत्र, सींगा, वेणु आदिसे उन्हें सुशोभित किया। कृष्णके ऐसे वत्सचारण वेशने सबके मनको हर लिया।

इस प्रकार बलराम और कृष्ण श्रीदाम, सुबल, मधुमङ्गल आदि सखाओंके साथ बछड़ोंको लेकर नन्दालयके निकट ही उन्हें चराने लगे। वहाँपर वे बछड़ोंपर दृष्टि रखते हुए सखाओंके साथ विविध प्रकारके क्रीड़ा-कौतुक करने लगे।

इस प्रकार बलराम और कृष्ण दोनों भाई प्रतिदिन क्रीड़ाकी वस्तुएँ लेकर गोपबालकोंके साथ बछड़ोंको चरानेके लिए वनमें जाते तथा वहाँ विविध प्रकारके क्रीड़ा-रसमें मत्त होकर ग्वालबालोंका आनन्दवर्द्धन करते एवं स्वयं भी परमानन्द रसका आस्वादन करते थे। कभी वे आनन्दसे सींगा, वेणु आदि बजाते, कभी बेल, आँवला आदि फलोंको गुलेलसे दूर फेंकते तथा कभी चरणोंमें धारण किये हुए नूपुरोंको बजाते हुए मधुर नृत्य करते। कभी अपने शरीरको कम्बलसे ढककर साँड़ोंकी भाँति सिरसे सिर लगाकर लड़ते-भिड़ते तथा कभी-कभी मोर और हंस आदि पक्षियोंकी बोलीका अनुकरण

करते थे। इस प्रकार वन-विहार करते हुए वे दोनों भाई गोपबालकोंके साथ परमानन्दमें निमग्न रहते थे॥ ३७-४०॥

**कदाचिद्यमुनातीरे वत्सांश्चारयतोः स्वकैः।**
**वयस्यैः कृष्णबलयोर्जिघांसुर्दैत्य आगमत्॥ ४१॥**

**अन्वयः**—कदाचित् यमुनातीरे स्वकैः (किसी एक दिन यमुनाके तटपर अपने) वयस्यैः (सखाओंके साथ) वत्सान् चारयतोः (बछड़ोंको चरानेवाले) कृष्णबलयोः (कृष्ण और बलरामको) जिघांसुः (मारनेकी इच्छासे) दैत्यः (असुर) आगमत् (उपस्थित हुआ)॥ ४१॥

**अनुवाद**—किसी एक दिन बलराम और कृष्ण अपने सखाओंके साथ यमुनाके तटपर बछड़े चरा रहे थे। उसी समय उन्हें मारनेकी इच्छासे एक दैत्य वहाँ आ पहुँचा॥ ४१॥

**सारार्थदर्शिनी**—कृष्णबलयोरिति षष्ठी आर्षी॥ ४१॥

**भावानुवाद**—एक दिन यमुनाके किनारे खेलते हुए कृष्ण-बलरामको मारनेके उद्देश्यसे एक दैत्य बछड़ेका रूप धारणकर वहाँ उपस्थित हुआ॥ ४१॥

**तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः।**
**दर्शयन् बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवासदत्॥ ४२॥**

**अन्वयः**—हरिः वत्सयूथगतं (श्रीहरि गोवत्सयूथमें प्रविष्ट होकर) वत्सरूपिणं (बछड़ेका रूप धारणकारी) तं (उस असुरको) वीक्ष्य (देखकर) बलदेवाय दर्शयन् शनैः (बलदेवको दिखाते हुए धीरे-धीरे) मुग्ध इव (अनजानकी भाँति) आसदत् (उसके समीप उपस्थित हुए)॥ ४२॥

**अनुवाद**—श्रीहरिने देखा कि वह असुर बनावटी बछड़ेका रूप धारणकर बछड़ोंके झुण्डमें मिल गया है। बलरामको भी नेत्रोंके सङ्केतसे दिखाकर वे धीरे-धीरे उस वत्स रूपधारी असुरके समीप इस

प्रकार पहुँचे, मानो उन्होंने असुरको पहचाना नहीं और वे उस सुन्दर सुडौल वत्सपर मुग्ध हैं॥ ४२॥

**सारार्थदर्शिनी—**दर्शयन् भ्रूसंज्ञया बलदेवं ज्ञापयन् मुग्ध इव अजानन्निव आसदत् निकटं प्राप॥ ४२॥

**भावानुवाद—**कृष्णने बछड़ोंके झुण्डमें बछड़ेके रूपमें प्रविष्ट उस असुरको देखकर बलरामजीको नेत्रोंके सङ्केतसे बतला दिया तथा स्वयं मानो कुछ जानते ही नहीं, ऐसा भाव प्रकटकर धीरे-धीरे उसके समीप पहुँचे॥ ४२॥

**गृहीत्वापरपादाभ्यां सह लाङ्गुलमच्युतः।**
**भ्रामयित्वा कपित्थाग्रे प्राहिणोद्गतजीवितम्।**
**स कपित्थैर्महाकायः पात्यमानैः पपात ह॥ ४३॥**

**अन्वयः—**अच्युतः अपरपादाभ्यां (श्रीकृष्णने उस वत्सरूपी असुरके पीछेके दोनों पैर) सह लाङ्गुलं गृहीत्वा (पूँछ-सहित पकड़कर) भ्रामयित्वा (घुमाते हुए) गत जीवितं (मृत असुरको) कपित्थाग्रे (कैथके वृक्षपर) प्राहिणोत् (फेंक दिया) सः महाकायः (यह विशाल असुर) पात्यमानैः (अपने भारसे) कपित्थैः (कैथके वृक्षोंके साथ) पपात (भूमिपर गिर पड़ा)॥ ४३॥

**अनुवाद—**श्रीकृष्णने उस बछड़ेरूपी असुरके पिछले दोनों पैरोंके साथ पूँछको भी पकड़कर आकाशमें घुमाया तथा उसके प्राण निकल जानेपर उसे कैथके वृक्षपर पटक दिया। इस प्रकार उस विशालकाय असुरकी देह बहुत-से कैथके वृक्षोंको गिराकर स्वयं भी गिर पड़ी॥ ४३॥

**सारार्थदर्शिनी—**अपराभ्यां पादाभ्यां सहितं लाङ्गुलं तस्य गृहीत्वा अच्युतः संसारसिन्धौ च्युतिं तस्य दूरी कुर्वन् कपित्थाग्रे इति। तद्देहेनैव क्रीडोपयोगि कपित्थफल पातनार्थमिति भावः। गतं जीवितं यतस्तत्न्यथास्यात्तथा प्राहिणोत्। स वत्सासुरः॥ ४३॥

**भावानुवाद**—*'अपरपादाभ्याम्'*—अच्युत श्रीकृष्णने उस वत्सरूपी दैत्यके दोनों पिछले पैर पूँछ-सहित पकड़ लिये। *'अच्युतः'* अर्थात् संसारसिन्धुमें उसकी च्युति (पतन) को समाप्त करते हुए, *'कपित्थाग्रे'*—क्रीड़ाके उपयोगी कैथफल तोड़नेके लिए उन्होंने उस असुरके देहको ही कैथके वृक्षपर फेंका, जिससे वह विशालकाय वत्सासुर कैथके बहुत-से वृक्षोंके साथ भूमिपर गिर पड़ा॥ ४३॥

**तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधु साध्विति।**
**देवाश्च परिसन्तुष्टा बभूवुः पुष्पवर्षिणः॥ ४४॥**

**अन्वयः**—बालाः (गोपबालकगण) तं (मरे हुए असुरको) वीक्ष्य विस्मिताः (देखकर विस्मित हुए) [तथा] साधु साधु शशंसुः (साधु-साधु कहते हुए कृष्णकी प्रशंसा करने लगे) परिसन्तुष्टाः देवाः च पुष्पवर्षिणः बभूवुः (एवं देवतागण भी सन्तुष्ट होकर पुष्पवर्षण करने लगे)॥ ४४॥

**अनुवाद**—गोपबालक उस विशालकाय असुरको मरा हुआ देखकर 'साधु-साधु' ('वाह-वाह') कहकर कन्हैयाकी प्रशंसा करने लगे। देवता भी परम आनन्दित होकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे॥ ४४॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—नन्दालयके निकटवर्त्ती भूभागमें बलराम-कृष्णको बछड़े चराते हुए कुछ दिन बीत गये। अब यशोदा मैयाको कृष्णके बाहर जानेमें या बछड़े चरानेमें कोई विशेष अनिष्टकी आशङ्का नहीं रही। वे विचार करने लगीं कि भगवान् नारायणकी अपार करुणासे मेरा बालगोपाल अब बछड़े चरानेके उपयुक्त हो गया है। किन्तु नन्दालयके निकटवर्त्ती भूभागमें ग्वालबालोंके साथ क्रीड़ा करते हुए नन्दनन्दन मानो पूर्ण रूपसे तृप्त नहीं हो पा रहे थे। उनके मनमें कुछ दूर जाकर विस्तृत स्थानमें खेल-कूद करनेकी इच्छा होने लगी। इसलिए नन्दनन्दन प्रतिदिन बछड़ोंको चरानेके लिए यमुनाके तटीय स्थानोंपर जाने लगे। यद्यपि अब यशोदा मैयाको भी किसी अनिष्टकी विशेष आशङ्का नहीं थी, फिर भी कृष्णके प्रतिदिन गोष्ठमें जाते समय

वे बलराम और बालकोंको सावधान कर देती थीं—"तुमलोग कृष्णके साथ-साथ रहना, इसे कभी अकेला मत छोड़ना। घने वनमें मत जाना, यमुनामें मत जाना तथा कृष्णको भी मत जाने देना।"

एक दिन नन्दनन्दन श्रीकृष्ण बलदेव और अपने प्रिय सखा ग्वालबालोंके साथ यमुनाके तटवर्त्ती 'वत्स-क्रीड़नक' नामक स्थानपर गोचारणके लिए गये। वहाँ सुकोमल घाससे परिपूर्ण मैदानमें बछड़ोंको चरनेके लिए छोड़कर कृष्ण निकट ही एक वृक्षके नीचे बैठ गये। बलदेव और गोप बालकगण भी कन्हैयाको चारों ओरसे घेरकर बैठ गये। ऐसे समयमें कंसकी प्रेरणासे एक असुर कृष्णको मार डालनेकी अभिलाषासे वहाँपर उपस्थित हुआ। पूतना, शकटासुर, तृणावर्त्त आदिकी मृत्युसे वह असुर अन्दरसे अत्यन्त भयभीत था। अतः दूरसे ही कृष्णको देखकर उसका हृदय काँप उठा एवं वह मन-ही-मन विचार करने लगा—"यही वह नन्दपुत्र है, जिसने पूतना आदिका विनाश किया है। इसके साथ शत्रुता करनेके पश्चात् यहाँसे जीवित लौटना किसी भी प्रकारसे सम्भव नहीं है। अतः कंसके आदेशका पालन और मेरे प्राणोंकी रक्षा—ये दोनों कार्य कैसे सम्भव हो सकते हैं?"

इस प्रकार उस असुरने अपनी रक्षाके विषयमें विविध प्रकारसे सोच-विचारकर देखा कि नन्दनन्दनको बछड़े अत्यन्त प्यारे हैं। बछड़ोंके निकट जाकर वे अपने हाथोंसे उनके शरीरकी मालिश करते हैं, उन्हें कोमल-कोमल घास खिलाते हैं एवं उनकी पीठपर अपने शरीरका भार अर्पणकर खड़े रहते हैं।

बछड़ोंके साथ कृष्णका ऐसा प्रीतिपूर्ण व्यवहार देखकर असुरने सोचा कि यदि मैं बछड़ेका रूप धारणकर इन बछड़ोंके साथ मिल जाऊँ, तब मुझे कोई पहचान नहीं सकेगा। उसके पश्चात् नन्दनन्दन जब मेरे निकट आयेगा, तब मैं उसे सहज ही मार डालूँगा। और यदि मैं उसका वध नहीं भी कर सका, तो भी वह मुझे मारेगा नहीं, क्योंकि गोपजातिके ग्वाले कभी गो-हत्या नहीं करते हैं। अतएव बछड़ेका रूप धारण करनेपर कंसका आदेश पालन तथा मेरी रक्षा—दोनों कार्य एक साथ पूर्ण हो जायेंगे। ऐसा विचारकर वह

महापराक्रमी असुर आसुरिक मायाके द्वारा बछड़ेका रूप धारणकर कृष्णके बछड़ोंके दलमें मिल गया एवं बछड़ोंकी भाँति घास चरने लग गया। उस असुरके बछड़ोंके दलमें मिलनेपर कृष्णके बछड़ोंने उसके अङ्गकी गन्धसे उसे पहचान लिया कि यह हमारे साथियोंमेंसे नहीं है, अतः सभी डरके कारण इधर-उधर भागने लगे तथा पुनः-पुनः सकातर दृष्टिसे कृष्णकी ओर देखने लगे। बछड़ोंकी चञ्चलतासे तत्क्षणात् कृष्ण असुरकी दुष्टता समझ गये। परन्तु पहले उसे कुछ भी न कहकर उन्होंने केवल नेत्रोंके सङ्केतसे उसे बलदेवजीको दिखा दिया। मानो वे कह रहे हों कि जब यहाँपर असुरविनाशकारी आप उपस्थित हैं ही, तब फिर इस असुरके आगमनसे क्या चिन्ता है?

तब कृष्ण धीरे-धीरे बछड़ोंको प्यार करते-करते उसके निकट इस प्रकार पहुँचे, मानो वे उस असुर रूपधारी वत्सासुरको पहचान ही न पाये हों। असुरने विचार किया कि अब मेरा कार्य सहज रूपमें हो जायेगा। उसने देखा कि कृष्ण बछड़ोंके निकट जाकर उनके अङ्गों तथा गलदेशको सहला रहा है, यह देखकर वत्सरूपधारी वह असुर भी अपना गला लम्बा करते हुए धीरे-धीरे कृष्णके निकट आ गया। यह देखकर कृष्ण अब अपने बछड़ोंके पीछे जाकर उनकी पूँछ सहलाने लगे। यह देखकर असुर भी कृष्णके समीप पीछेकी ओरसे आया। अब कृष्ण भी अन्य बछड़ोंकी ही भाँति उसके शरीरका मार्जन करने लगे। उसी क्षण असुरने सोचा कि अब पीछेसे पैरोंका प्रहारकर अपने शत्रुका विनाश कर डालूँ। परन्तु असुरने जैसे ही पीछेका पैर उठाया, वैसे ही कृष्णने तीव्रगतिसे उसके पैर पूँछ-सहित पकड़ लिए तथा उसे ऊपर उठाकर तीव्र गतिसे चक्रकी भाँति घुमाने लगे। इस प्रकार दो-चार बार घुमानेसे प्राणोंके निकलनेके साथ-साथ ही उसका संसार-चक्रमें घूमना भी समाप्त हो गया। मरते समय उसने बछड़ेका कपटरूप त्यागकर अपना असुररूप धारण कर लिया। कृष्णने उसकी मृतदेहको प्रबल वेगके साथ एक कैथके वृक्षपर पटक दिया, जिससे उसकी मृतदेहके साथ ही कैथ वृक्ष भी धराशायी हो गया। इस आश्चर्यमयी घटनाको देखकर गोपबालकोंने कृष्णकी बहुत प्रशंसा की तथा स्वर्गसे देवता भी पुष्प वर्षण करने लगे।

*वयं गां गोपालाः परिचिनुमहे तद्विषामपि।*
*प्रतिच्छन्ने रूपेऽप्यनुमितिनिदान व्यतिकरात्॥*

*अतो रे रे वत्साकृति सुररिपो मद्विधकरात्।*
*कथं ते मोक्षः स्यादिह लषसि चेत् प्रेत्य भवतु॥*

(श्रीगोपालचम्पूः)

कृष्णने कहा—हम गोपाल हैं, अतएव गोजाति एवं गोजातिके शत्रुओंको हम स्वभावसे ही पहचानते हैं। यदि कोई गायके रूपमें अपनेको छिपा ले, तो भी हमें उसे पहचाननेके लिए किसी अनुमानकी आवश्यकता नहीं होती। अरे गोवत्सरूपी असुर! मेरे जैसे गोपालके हाथसे तुम्हारा छुटकारा नहीं है। यदि तुम्हारी मुक्तिकी ही इच्छा है, तो इस असुर शरीरके रहते हुए यह सम्भव नहीं है। अतः पहले मेरे हाथोंसे तुम्हारी देहका नाश हो, फिर तुम मुक्ति प्राप्त करो। इस प्रकार कहकर श्रीकृष्णने चक्रवत् घुमाते हुए पहले उसके प्राणोंको निकालकर उसे संसारचक्रसे मुक्त किया॥ ४०-४४॥

**तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ।**
**सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः॥ ४५॥**

**अन्वयः**—सर्वलोकैकपालकौ (सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र पालक) तौ वत्सपालकौ भूत्वा सप्रातराशौ (वे राम-कृष्ण दोनों वत्सपालक बनकर प्रातः कालका भोजन करके) गोवत्सान् चारयन्तौ (बछड़ोंको चराते हुए) विचेरतुः (विचरण करने लगे)॥ ४५॥

**अनुवाद**—जो सम्पूर्ण जगत्के पालक हैं, वे राम और कृष्ण ही इस समय चरवाहे बने हुए हैं। वे प्रातःकाल ही कलेवा कर लेते हैं और बछड़ोंको चराते हुए एक वनसे दूसरे वनमें घूमते रहते हैं॥ ४५॥

**सारार्थदर्शिनी**—एकपालकौ मुख्यपालकौ प्रातराशः प्रातर्भोजनम्॥ ४५॥

**भावानुवाद**—*'एकपालकौ'*—वे कृष्ण-बलराम समस्त जगत्के मुख्य पालक होकर भी वत्सपालक बने हुए हैं। इस प्रकार वे प्रातःकालीन

भोजन समापनकर या भोजन-सामग्री साथमें लेकर बछड़ोंको चराते हुए विचरण करने लगे॥ ४५॥

**स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यन्त एकदा।**
**गत्वा जलाशयाभ्यासं पाययित्वा पपुर्जलम्॥ ४६॥**

**अन्वयः**—एकदा सर्वे (एक दिन राम-कृष्ण आदि सभीने) स्वं स्वं वत्सकुलं (अपने-अपने बछड़ोंके समुदायको) पाययिष्यन्तः (जल पिलानेकी अभिलाषासे) जलाशयाभ्यासं (जलाशयके समीपमें) गत्वा (ले जाकर) पाययित्वा (जल पिलाकर) जलं पपुः (स्वयं भी जल पिया)॥ ४६॥

**अनुवाद**—एक दिन सभी ग्वालबाल अपने-अपने बछड़ोंके झुण्डको जलपान करानेके लिए जलाशयके तटपर ले गये। उन्होंने वहाँ पहले बछड़ोंको जल पिलाया और इसके बाद स्वयं भी पिया॥ ४६॥

**ते तत्र ददृशुर्बाला महासत्त्वमवस्थितम्।**
**तत्रसुर्वज्रनिर्भिन्नं गिरेः शृङ्गमिव च्युतम्॥ ४७॥**

**अन्वयः**—तत्र (उस जलाशयके निकट) ते बालाः (उन बालकोंने) वज्रनिर्भिन्नं (वज्राघातसे छिन्न होकर) च्युतं (गिरे हुए) गिरेः शृङ्गम् इव (पर्वत-शिखरकी भाँति) अवस्थितं महासत्त्वं (अवस्थित महा-भयानक प्राणी विशेष या महाबलशाली प्राणीको) ददृशुः (देखा) (और) तत्रसुः (भयभीत हो गये)॥ ४७॥

**अनुवाद**—उस जलाशयके समीप ग्वालबालोंने इन्द्रके वज्रसे कटकर पहाड़के टुकड़ेके समान गिरा हुआ एक भीषण प्राणी देखा, जिसे देखकर ग्वालबाल डर गये॥ ४७॥

**सारार्थदर्शिनी**—वज्रेण निर्भिन्नं छिन्नं गिरिशृङ्गमिव॥ ४७॥

**भावानुवाद**—*'वज्र-निर्भिन्नम्'*—वज्रके आघातसे विदीर्ण होकर भूमिपर पतित पर्वत-टुकडेकी भाँति एक भयानक प्राणीको देखकर ग्वालबाल भयभीत हो गये॥ ४७॥

**स वै बको नाम महानसुरो बकरूपधृक्।**
**आगत्य सहसा कृष्णं तीक्ष्णतुण्डोऽग्रसद्बली॥ ४८॥**

**कृष्णं महाबकग्रस्तं दृष्ट्वा रामादयोऽर्भकाः।**
**बभूवुरिन्द्रियाणीव विना प्राणं विचेतसः॥ ४९॥**

**अन्वयः**—तीक्ष्णतुण्डः (अत्यन्त तीखी चोंचवाला) बकरूपधृक् (बगुलेका रूपधारी) बली (महाबलशाली) बकः नाम सः महान् असुरः (बक नामक उस महा असुरने) वै सहसा आगत्य कृष्णं अग्रसत् (अचानक आकर कृष्णको निगल लिया) रामादयः अर्भकाः (राम आदि बालकगण) कृष्णं (कृष्णको) महाबकग्रस्तं दृष्ट्वा (महाबकके द्वारा निगला हुआ देखकर) प्राणं बिना इन्द्रियाणि इव (प्राणरहित इन्द्रियोंकी भाँति) विचेतसः बभूवुः (अचेतन हो गये)॥ ४८-४९॥

**अनुवाद**—वास्तवमें वह एक 'बक' नामका बलवान महादैत्य था, जो बगुलेका रूप धारण करके आया था। उसकी चोंच बड़ी तीखी थी और उसने सहसा ही आकर कृष्णको निगल लिया। जब बलराम तथा अन्य बालकोंने देखा कि उस महाबकने कृष्णको निगल लिया है, तो उन सबकी दशा वैसी ही हो गयी, जैसी प्राणोंसे रहित इन्द्रियोंकी होती है। वे सब अचेतन हो गये॥ ४८-४९॥

**सारार्थदर्शिनी**—रामादय इति रामस्य सर्वज्ञस्यापि तद्वधसमर्थस्यापि मोहे भ्रातृस्नेह एव हेतुर्द्रष्टव्यः रुक्मिणीहरणेऽपि *"श्रुत्वैतद्भगवान् रामो विपक्षीयनृपोद्यमम्"* इत्यादौ तस्य तादृशत्वस्य तद्रक्ष्यमाणत्वात॥ ४९॥

**भावानुवाद**—*'रामादयः'*—बलरामजी कृष्णके अभिन्न स्वरूप हैं, अतएव सर्वज्ञता आदि शक्तियोंका उनमें कोई अभाव नहीं है। यद्यपि वे जानते थे कि कृष्णका कोई अनिष्ट नहीं होगा एवं उस समय बकासुरका विनाश करनेमें वे स्वयं भी समर्थ थे, तथापि उनके मोहका कारण भ्रातृस्नेह ही है। आगे रुक्मिणी-हरण प्रसङ्गमें भी वर्णन हुआ है—*"श्रुत्वैतद् भगवान् रामो विपक्षीय नृपोद्यमम्"* (श्रीमद्भा० १०/५३/२०) अर्थात् जब भगवान् बलदेवने सुना कि कृष्ण अकेले ही विपक्षी राजाओंकी विशाल सेनासे रक्षित रुक्मिणीका हरण करनेके

लिए गये है, तो भ्रातृस्नेहसे उनका हृदय विगलित हो गया और वे चतुरङ्गिनी सेनाके साथ कुण्डिन नगरमें पहुँच गये। अत्यधिक भ्रातृस्नेहके कारण सर्वज्ञता आदि शक्ति आच्छादित रहती है, इसलिए श्रीबलरामकी ऐसी व्याकुलता स्वाभाविक है॥४९॥

**तं तालुमूलं प्रदहन्तमग्निवद्-**
**गोपालसूनुं पितरं जगद्गुरोः।**
**चच्छर्द सद्योऽतिरुषाक्षतं बक-**
**स्तुण्डेन हन्तुं पुनरभ्यपद्यत॥५०॥**

**अन्वयः**—बकः अग्निवत् तालुमूलं प्रदहन्तं (उस बकासुरका तालुमूल अग्निकी भाँति जलानेसे उसने) जगद्गुरोः (ब्रह्माके) पितरं (भी जनक) गोपालसूनुं (कृष्णको) सद्यः (तत्क्षणात्) चच्छर्द (मुहँसे निकाल दिया) ततः (तब) अक्षतं (बिना किसी क्षतिके कृष्णको देखकर) [वह बकासुर] पुनः च (फिरसे) अतिरुषा (अतिशय क्रोधसे युक्त होकर) तुण्डेन (चोंचके द्वारा) हन्तं अभ्यपद्यत (मारनेके लिए कृष्णके निकट आया)॥५०॥

**अनुवाद**—[हे राजन्!] श्रीकृष्ण तो जगद्गुरु ब्रह्माजीके भी पिता हैं। इस समय वे क्रीड़ाहेतु गोपबालक बने हुए हैं। जब बकासुरने कृष्णको निगल लिया, तब वे उसके तालुके मूलमें जाकर उसे अग्निके समान जलाने लगे, जिससे उस दैत्यने तुरन्त ही उन्हें उगल दिया। जब उसने देखा कि कृष्णके अङ्गोंमें एक भी घाव नहीं है, तो वह अत्यन्त क्रोधित होकर फिरसे अपनी कठोर चोंचसे उन्हें मार डालनेके लिए उनपर टूट पड़ा॥५०॥

**सारार्थदर्शिनी**—तं कृष्णं प्रदहन्तमिति तस्य नीलोत्पलसुकुमार शीतलस्यापि स्पर्शो वह्नेरिव वज्रस्येव तत्तालुदोषादेव जातो जिह्वादोषातसिताया अपि तिक्तत्वमिवेति ज्ञेयम्। अक्षतं क्षतरहितमिति तत्र श्रीकृष्णगात्रस्य वज्रायितत्वं ध्वनितम्॥५०॥

**भावानुवाद**—*'तं कृष्णम्'*—बकासुरने अग्निकी भाँति तालुके मूलको दग्ध करनेवाले कृष्णको तत्क्षणात् मुखसे उगल दिया। श्रीकृष्णका स्पर्श नीलकमलकी भाँति सुकोमल एवं सुशीतल होनेपर

भी बकासुरको वह अग्नि और वज्रकी भाँति अनुभूत हुआ। अर्थात् जिस प्रकार जिह्वाके दोषसे मधुर मिस्री भी कड़वी लगती है, बकासुरको वैसा ही अनुभव होने लगा। इससे यह सूचित होता है कि *'अक्षतम्'*—कृष्णके शरीरमें क्षत-विक्षत होनेका चिह्न भी नहीं था। उस समय उनका शरीर वज्र जैसा कठोर बन गया था॥ ५०॥

**तमापतन्तं स निगृह्य तुण्डयो-**
**र्दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां पतिः।**
**पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया,**
**मुदावहो वीरणवद्दिवौकसाम्॥ ५१॥**

**अन्वयः**—सः सतां पतिः (उन सज्जन-पालक कृष्णने) आपतन्तं (फिरसे आये हुए) कंससखं (कंसके अनुचर) तं (बकासुरकी) तुण्डयोः (दोनों चोंचको) दोर्भ्यां (दोनों भुजाओंके द्वारा) निगृह्य (पकड़कर) दिवौकसां (देवताओंका) मुदावहः (आनन्दवर्धन करते हुए) पश्यत्सु बालेषु (देखनेवाले गोपबालकोंके सामने) लीलया (अति सहज रूपसे) वीरणवत् (वीरण नामके तृणकी भाँति) ददार (चीर दिया)॥ ५१॥

**अनुवाद**—कंसका अनुचर वह बकासुर सज्जन-पालक भगवान् श्रीकृष्णपर पुनः झपट ही रहा था कि उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे उसकी चोंचके दोनों ठोर पकड़ लिये और गोपबालकोंके देखते-देखते खेल-ही-खेलमें उसे वैसे ही चीर डाला, जैसे कोई वीरणके तिनकेको चीर डालता है। इससे देवताओंको भी बड़ा आनन्द हुआ॥ ५१॥

**सारार्थदर्शिनी**—तुण्डयोश्चञ्च्वोर्निगृह्य नितरां गृहीत्वा मुदावहः प्रकर्षेण आनन्दप्रापकः। उशीरं यस्य मुलं तद्वीरणं तद्वत्॥ ५१॥

**भावानुवाद**—*'तुण्डयोः'*—दोनों हाथोंसे बकासुरकी दोनों चोंचको पकड़कर देवताओंको प्रचुर आनन्द देनेवाले श्रीकृष्णने सभी गोपबालकोंके सम्मुख खेल-खेलमें ही उसे वीरण नामक तिनकेकी भाँति चीर दिया॥ ५१॥

**तदा बकारिं सुरलोकवासिनः,**
**समाकिरन् नन्दनमल्लिकादिभिः।**
**समीड़िरे चानकशङ्खसंस्तवै-**
**स्तद्वीक्ष्य गोपालसुता विसिस्मिरे॥ ५२॥**

**अन्वयः**—तदा सुरलोकवासिनः (तब स्वर्गमें स्थित देवतागण) नन्दनमल्लिकादिभिः (नन्दनकाननजात मल्लिका, चमेली आदि फूलोंके द्वारा) बकारिं समाकिरन् (बकनाशक श्रीकृष्णके ऊपर वर्षा करने लगे) आनकशङ्खसंस्तवैः च (दुन्दुभि, शङ्खध्वनि और स्तोत्र आदिके द्वारा) समीड़िरे (उनका स्तव करने लगे) तत्वीक्ष्य (यह देखकर) गोपालसुताः विसिस्मिरे (गोपबालकगण विस्मित हो गये)॥ ५२॥

**अनुवाद**—तब स्वर्गसे देवता लोग बक-विनाशक श्रीकृष्णके ऊपर नन्दनवनमें उत्पन्न मल्लिका, चमेली आदि पुष्पोंकी वर्षा करने लगे तथा नगाड़े, दुन्दुभि एवं शङ्खकी ध्वनिके साथ स्तोत्रोंके द्वारा उनकी स्तुति करने लगे। यह देखकर गोपबालक विस्मित रह गये॥ ५२॥

**सारार्थदर्शिनी**—समाकिरन् सम्यगाकीर्णं व्याप्तं चक्रुरित्यर्थः। संस्तवैः प्राचीनैः॥ ५२॥

**भावानुवाद**—*'समाकिरन्'*—देवताओंने फूलोंके द्वारा श्रीकृष्णको ढक दिया। अर्थात् वे श्रीकृष्णके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे तथा पुरुषसूक्त आदि प्राचीन मन्त्रोंके द्वारा उनकी स्तुति करने लगे॥ ५२॥

**मुक्तं बकास्यादुपलभ्य बालका,**
**रामादयः प्राणमिवेन्द्रियो गणः।**
**स्थानागतं तं परिरभ्य निर्वृताः,**
**प्रणीय वत्सान् व्रजमेत्य तज्जगुः॥ ५३॥**

**अन्वयः**—रामादयः बालकाः (राम आदि बालकगण) ऐन्द्रियः गणः (इन्द्रियोंमें) प्राणं इव बकास्यात् (प्राणोंके लौटनेपर जैसे वह स्वस्थ हो जाती हैं, वैसे ही बकासुरके मुखसे) मुक्तं स्थानागतं

(निकलकर आये हुए) तं (श्रीकृष्णको) परिरभ्य (आलिङ्गनकर) निर्वृताः (परमानन्दित हुए) [तथा] वत्सान् प्रणीय (बछड़ोंको एकत्रितकर) व्रजं एत्य (व्रजमें आकर) तत् जगुः (बकासुर-वधका गान करने लगे)॥ ५३॥

**अनुवाद**—जिस प्रकार प्राणोंके सञ्चार होनेपर इन्द्रियाँ स्वस्थ होकर सचेतन एवं आनन्दमय हो जाती हैं, उसी प्रकार बकासुरके मुखसे निकलकर अपने समीप आये हुए कृष्णको देखकर बलराम आदि सभी ग्वालबाल परम आनन्दित हुए। उन सबने कृष्णको गले लगाया। तदनन्तर बछड़ोंको एकत्र किया और उन्हें हाँककर व्रजमें ले आये तथा बकासुरके वधकी कथा सबको सुनायी॥ ५३॥

**सारार्थदर्शिनी**—स्वस्थानमागतं प्राणमिव कृष्णम्, प्रकर्षेणेतस्ततः सकाशादानीय तत् वत्सवकवधचरित्रं जगुरुच्चैः स्वरेणोचुः। यद्वा, स्वरतालादिना गीतं जग्रन्थुर्दिनान्तरेऽपि गानार्थमिति भावः॥ ५३॥

**भावानुवाद**—*'स्वस्थानमागतम्'*—प्राणोंके अपने-अपने स्थानपर लौट आनेपर जिस प्रकार आनन्द होता है, उसी प्रकार प्राणोंके समान प्रिय कृष्णको बकासुरके मुखसे विमुक्त होकर अपने पास आया देखकर ग्वालबाल उन्हें आलिङ्गनकर परम आनन्दित हुए। तत्पश्चात् समय नष्ट न कर शीघ्र ही इधर-उधर विचरण करते हुए बछड़ोंको एकत्रितकर सभी बालक अपने-अपने घरोंमें लौट आये। घर जाकर वे लोग वत्सासुर, बकासुरवध आदिका वृत्तान्त जोर-जोरसे कहने लगे। अथवा दूसरे दिन भी स्वर, ताल, लय आदिके साथ गीतोंकी रचनाकर कृष्णकी उन लीलाओंको गाने लगे॥ ५३॥

**श्रुत्वा तद्विस्मिता गोपा गोप्यश्चातिप्रियादृताः।**
**प्रेत्यागतमिवौत्सुक्यादैक्षन्त तृषितेक्षणाः॥ ५४॥**

**अन्वयः**—अतिप्रियादृताः (अत्यन्त प्रीतिके साथ समादर प्राप्त) गोपाः गोप्यः च तत्श्रुत्वा विस्मिताः (गोप और गोपियाँ यह सुनकर विस्मित हो गये) ओत्सुक्यात् (अत्यधिक आग्रहके कारण) तृषितेक्षणाः

(अतृप्त नेत्रोंसे) प्रेत्य आगतं इव (यमलोकसे लौटकर आये हुए की भाँति) [श्रीकृष्णको] ऐक्षन्त (देखा)॥ ५४॥

**अनुवाद**—[परीक्षित्!] व्रजमें सभी गोप एवं गोपियाँ बकासुरके वधका वृत्तान्त सुनकर आश्चर्यचकित हो गये। श्रीकृष्णने उन्हें दर्शन देकर उनका यथायथ समादर किया। वे सब भी यमालयसे लौटे व्यक्तिकी भाँति कृष्णको प्यासे नेत्रोंसे उत्सुकतापूर्वक देखने लगे॥ ५४॥

**सारार्थदर्शिनी**—अतिप्रियेण श्रीकृष्णेन स्वदर्शनदानेनैवादृताः तृषितान्यमृतं पिबन्तीवेक्षणानि येषां ते, ऐक्षन्त क्षतादिशङ्कया सर्वाङ्गेषु, न्यभालयन्तः॥ ५४॥

**भावानुवाद**—*'अतिप्रियादृतः'*—व्रजवासीगण अति प्रिय श्रीकृष्णका दर्शन पाकर परमानन्द एवं आदरको प्राप्त हुए तथा बकासुर-वध आदि घटनाओंको श्रवणकर वे परम विस्मित हुए। *'तृषितेक्षणाः'*—जैसे कि वे अमृत पान कर रहे हों, इस प्रकारसे अतृप्त नेत्रोंसे श्रीकृष्णके शरीरमें क्षत-विक्षतकी आशङ्कासे उनके समस्त अङ्गोंको पुनः-पुनः देखने लगे॥ ५४॥

**अहो बतास्य बालस्य बहवो मृत्यवोऽभवन्।**
**अप्यासीद्विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतो भयम्॥ ५५॥**

**अन्वयः**—अहो वत (अत्यन्त आश्चर्यका विषय है कि) अस्य बालस्य (इस बालकृष्णके लिए) बहवः मृत्यवः (बहुत-से मृत्युके कारण) अभवन् (उपस्थित हुए) अपि (किन्तु) यतः (जिन हिंसक दैत्योंसे) पूर्व (पहले) भयं (लोगोंको भय होता था) तेषां (उन हिंसक दैत्योंका) विप्रियं (विनाश) आसीत् (हो गया)॥ ५५॥

**अनुवाद**—उस समय नन्द आदि गोपगण आपसमें कहने लगे—अरे! यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि आज तक इस बालकके लिए कितने ही मृत्युके कारण उपस्थित हुए, परन्तु जिन हिंसक असुरोंने पहले इसका अनिष्ट करनेके लिए भयभीत किया, बादमें उनका ही विनाश हो गया॥ ५५॥

**सारार्थदर्शिनी**—तत्र गोपानामन्योन्यं विस्मयोक्तिमाह—त्रिभिः। मृत्यवः मृत्युहेतवः भयं कृतं निरपराधानामस्माकं बालकस्यास्य च यस्मादपकारः प्रथमं कृतः तस्मात्॥५५॥

**भावानुवाद**—गोपोंकी परस्पर विस्मयपूर्ण उक्तियोंका वर्णन तीन श्लोकोंके द्वारा किया जा रहा है। इस बालकृष्णकी मृत्युके बहुत-से कारण उपस्थित होनेपर भी जो इसकी मृत्युका कारण बनकर आया, उसीका विनाश हुआ। इसका कारण है कि अनिष्टकारी उन असुरोंने निरपराधी हमलोगोंके प्रति तथा इस बालकके प्रति भय उत्पादन किया, इसलिए वे ही विनष्ट हो गये॥५५॥

**अथाप्यभिभवन्त्येनं नैव ते घोरदर्शनाः।**
**जिघांसयैनमासाद्य नश्यन्त्यग्नौ पतङ्गवत्॥५६॥**

**अन्वयः**—अथ (अनन्तर) घोरदर्शनाः (भीषण आकारवाले) अपि ते (दैत्य-दानव) एनं (बालकृष्णको) न एव अभिभवन्ति (नाश करनेमें समर्थ नहीं हुए) जिघांसया (मारनेकी इच्छासे) एनं (कृष्णके पास) आसाद्य (आकर) अग्नौ पतङ्गवत् (अग्निमें पतङ्गोंकी भाँति गिरकर) नश्यन्ति (विनष्ट हुए)॥५६॥

**अनुवाद**—उन सभी दैत्योंकी आकृति बड़ी भयङ्कर थी, पर वे बालकृष्णका कुछ भी बिगाड़ नहीं सके। वे इस बालकृष्णको मार डालनेकी इच्छासे इसके समीप आये, किन्तु अग्निमें पतङ्गोंकी भाँति स्वयं ही नष्ट हो गये॥५६॥

**सारार्थदर्शिनी**—नन्वनेन बालकेन पूर्वजन्मनि तेषां विप्रियं प्रथमं कृतमत एवास्मिन् जन्मनि हन्तुमेनं एते एवायान्तीति कथं न सम्भाव्यते, तत्राहुः—अथापि। यद्येवमपि स्यात्तर्हि तैरयमभिभूयेतैवेत्यर्थः। किन्तु ते नाभिभवन्ति अभिभवितुं न शक्नुवन्ति प्रत्युत जिघांसयेत्यादि॥५६॥

**भावानुवाद**—यदि कोई ऐसा कहे कि हो सकता है कि इस बालकने ही पिछले जन्ममें उनका अनिष्ट किया था, इसलिए ही वे शत्रु बनकर आ रहे हैं। इसके उत्तरमें कह रहे हैं—*'अथापि'*—यदि

ऐसा होता, तो वे दैत्य इस बालकको अवश्य ही मार डालते। किन्तु वे इसका अनिष्ट करनेमें समर्थ नहीं हुए। विनाशकी अभिलाषासे आकर अग्निमें पतङ्गोंके समान गिरकर स्वयं विनष्ट हो गये॥५६॥

**अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः सन्ति कर्हिचित्।**
**गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत्॥५७॥**

**अन्वयः**—अहो! ब्रह्मविदां (ब्रह्मतत्त्वको जाननेवालोंका) वाचः (वाक्य) कर्हिचित् (कभी भी) न असत्याः (झूठ नहीं) सन्ति (होता है) भगवान् (महापुरुष) गर्गः (गर्गमुनिने) यत् आह (पहले जो कुछ कहा था) तत् तथा एव अन्वभावि (वही सब हम साक्षात् अनुभव कर रहे हैं)॥५७॥

**अनुवाद**—अरे भाई! सत्य ही है! ब्रह्मतत्त्वको जाननेवालोंके वचन कभी भी झूठे नहीं हो सकते। यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि महात्मा गर्गमुनिने पहले जैसा कहा था, इस समय हमें उसीका अनुभव हो रहा है॥५७॥

**सारार्थदर्शिनी**—तत्र हेतुरस्य नारायणसमत्वमेवेत्याहुः—अहो इति। गर्गो यदाह—*"नारायणसमो गुणैः"* इत्यादि॥५७॥

**भावानुवाद**—कोई असुर इसका कुछ भी बिगाड़ नहीं पाता है, इसका कारण यही है कि यह बालक गुणोंमें नारायणके समान है—इसे ही 'अहो' इत्यादि पदोंमें कह रहे है। अहो! वेदवादियोंके वचन कभी भी मिथ्या नहीं होते हैं। श्रीगर्गाचार्यने इस बालकके लिए कहा था कि यह गुणोंमें नारायणके समान है। इस प्रकार उन्होंने जो-जो कहा था, अब हम वही सब अनुभव कर रहे हैं॥५७॥

**इति नन्दादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा।**
**कुर्वन्तो रममाणाश्च नाविन्दन् भववेदनाम्॥५८॥**

**अन्वयः**—नन्दादयः गोपाः (नन्द महाराज आदि गोपोंने) इति (इस प्रकारसे) मुदा (हर्षके साथ) कृष्ण राम कथां कुर्वन्तः (कृष्ण रामकी कथाका वर्णन करते हुए) रममाणाः च (और उसमें

आसक्तियुक्त होकर) भववेदनां (संसार दुःखः) न अविन्दन् (अनुभव नहीं किया)॥५८॥

**अनुवाद**—इस प्रकार नन्द आदि गोपगण बड़े आनन्दके साथ बलराम-कृष्णकी चर्चा करते रहते और इनमें इतने आसक्त हो जाते कि संसारके दुःख-सङ्कटोंकी उन्हें कुछ सुध ही नहीं रहती॥५८॥

**सारार्थदर्शिनी**—कथां कुर्वन्तः आस्थान्यामुपविश्य बाल्यचापल्यकथां वत्सबकादिवधकथाञ्च पुनः पुनः संलपन्तः गीतपद्यादिभिरुपनिबध्नन्तो वा भवस्य संसारस्य वेदनां ज्ञापनम्। भो व्रजराज! वयस्तावद्भवतामर्द्धं व्यतीतमेव अधुनापि कथं पुत्रकलत्रकुटुम्बादिकथासु निमज्जथ? घोरः संसारोऽयं वर्त्तते अस्मादुद्धारार्थं ज्ञानवैराग्यतपोनारायणस्मरणादिषु कथं न यतध्वे? इति देशान्तरागतवृद्धगोपादिभिर्ज्ञापितम्। नाविदन् नैवावदधुः। व्याख्यान्तरं त्याज्यं। *"न पुनः कल्पते राजन्! संसारोऽज्ञानसम्भवः"* इति पूर्वोक्तेस्तेषां संसारस्यैव निषेधात् कुतस्तदीयपीडाशङ्केति इति॥५८॥

इति सारार्थदर्शिन्यां हर्षिण्यां भक्तचेतसाम्।
एकादशोऽयं दशमे सङ्गतः सङ्गतः सताम्॥

इति श्रीमद्भागवत-दशमस्कन्धे श्रीविश्वनाथचक्रवर्ति-ठक्कुर-कृता
एकादशोऽध्यायस्य सारार्थदर्शिनी-टीका समाप्ता॥११॥

**भावानुवाद**—*'कथां कुर्वन्तः'*—इस प्रकार नन्द महाराज आदि गोपगण सभामें बैठकर आनन्दके साथ बलराम-कृष्णकी बाल-चपलता और वत्सासुर, बकासुर आदिके वध-विषयक कथाओंकी पुनः-पुनः चर्चा करते रहते या गीत-पद्य आदिके द्वारा उन कथाओंका गान करते रहते थे। इसलिए वे संसारकी बातोंको भूल जाते थे। जैसा कि किसी दूसरे देशसे आये हुए किसी वयोवृद्ध गोपने कहा—"हे व्रजराज! आपकी आयु आधीसे भी अधिक हो गयी है, अभी भी आप स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब आदिमें क्यों आसक्त हैं? यह संसार भीषण है, अतः इससे उद्धार पानेके लिए ज्ञान, वैराग्य, तपस्या और नारायण स्मरण आदि क्यों नहीं कर रहे हैं?" उनके इस प्रकारके उपदेशका नन्द महाराजजने समादर नहीं किया, क्योंकि *"न पुनः कल्पते राजन्! संसारोऽज्ञान सम्भवः"* (श्रीमद्भा० १०/६/४०) अर्थात् श्रीकृष्णमें नित्य ही पुत्र-भाव रखनेवाले गोप और गोपियोंका अज्ञानजनित संसार कभी सम्भव नहीं है। इस प्रकार पूर्व कथित

सिद्धान्तके अनुसार जब उनके संसारका ही निषेध किया गया है, तब फिर उनकी संसार-पीड़ाकी आशङ्का ही कहाँ है? अर्थात् वे कृष्णके अलौकिक संसारमें ही निवास करते हैं, इस लौकिक संसारसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है॥ ५८॥

इस प्रकार भक्तोंको आनन्द देनेवाली दशम-स्कन्धके ग्यारहवें अध्यायकी सज्जन-सम्मत 'सारार्थदर्शिनी' टीका समाप्त हुई।

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके ग्यारहवें अध्यायकी श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर विरचित सारार्थदर्शिनी टीकाका भावानुवाद समाप्त।

**एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे।**
**निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः॥ ५९॥**

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ब्रह्मसूत्रभाष्ये पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे वत्सबकवधो नाम एकादशोऽध्यायः॥ ११॥**

**अन्वयः**—[रामकृष्ण दोनोंने] एवं निलायनैः (क्रीड़ा विशेषके कारण किसी बालकके वृक्ष आदिकी आड़में छिपनेपर दूसरा उसे खोज निकालता, इस प्रकार) सेतुबन्धैः (कृत्रिम सेतुबन्धनके द्वारा) मर्कटोत्प्लवनादिभिः (बन्दरोंकी भाँति छलाँग आदिके द्वारा) कौमारैः (कुमारजनोचित) विहारैः (क्रीड़ाओंके द्वारा) व्रजे कौमारं जहतुः (व्रजमें कौमार अवस्थाको अतिक्रम किया)॥ ५९॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके ग्यारहवें अध्यायका अन्वयः समाप्त।

**अनुवाद**—बलराम-कृष्ण कभी लुका-छिपीका खेल खेलते, कभी सेतु-निर्माण करते, कभी वानरोंके समान उछलते-कूदते और कभी कोई दूसरा विचित्र खेल खेलते। इस प्रकार बालकोचित क्रीड़ाओं द्वारा बलराम-कृष्णने व्रजमें अपना कौमारकाल व्यतीत किया॥ ५९॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके ग्यारहवें अध्यायका श्लोकानुवाद समाप्त।

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—वत्सासुरके वधके पश्चात् बलराम-कृष्ण दोनों ही गोपबालकोंके साथ घर लौट आये, किन्तु उन्होंने इस वृत्तान्तको व्रजमें किसीसे भी नहीं कहा। इसका कारण था कि यदि नन्द-यशोदा आदि व्रजवासी यह जान लेते कि वत्सचारण करते हुए ऐसी विपत्ति आयी थी, तब उन्हें जहाँ-तहाँ, यमुना किनारे आदि स्थानोंमें जाने नहीं देते।

अब बलराम-कृष्ण तथा गोपबालकगण प्रतिदिन वत्सचारणके बहाने परमानन्दपूर्वक वन-वनमें विहार करने लगे। समस्त जगत्के पालक होकर भी व्रजमें वत्सपालन अङ्गीकारकर उन्होंने जगत्में अपने भक्तवात्सल्य और प्रेमाधीनता गुणोंका परिचय प्रदान किया है, तथा बछड़ोंका चरवाहा होकर भी असुर-वध आदि करके उन्होंने अपने स्वभावसिद्ध जगत्-पालकता आदि गुणोंका प्रकाश किया है।

एक दिन बलराम-कृष्ण दोनों भाई गोपबालकोंके साथ बछड़े चराते हुए नन्दीश्वर पर्वतके पूर्वकी ओर 'वकस्थल' (वकथरा) नामके स्थानपर एक बहुत बड़े सरोवरके किनारे उपस्थित हुए। बहुत दूर चलनेके कारण बछड़ोंको प्यासा जानकर उन्होंने पानी पिलानेके लिए उन्हें उस सरोवरमें उतार दिया। सभी बछड़े पानी पीनेके पश्चात् ऊपर आकर हरी-हरी घास चरने लगे। राम-कृष्ण दोनों भाई सरोवरकी शोभा देखने लगे। वे उस सुविशाल सरोवरमें विविध प्रकारके कमल, कुमुद, कल्हार आदि पुष्पोंको देखकर तथा मधुमत्त भ्रमरोंके मधुर गुञ्जनको सुनकर अत्यन्त आनन्दपूर्वक गोपबालकोंके साथ तटपर आकर जलपान करने लगे।

कंस द्वारा प्रेरित एक दुर्दान्त असुर वक (बगुले) का रूप धारणकर उस सरोवरके किनारे कृष्णको मार डालनेकी अभिलाषासे पहलेसे ही बैठा हुआ था। उसे कृष्ण-बलराम या गोपबालकोंमेंसे किसीने अब तक देखा नहीं था। जब वे जलपान करके तटपर आ रहे थे, तभी गोपबालकोंने देखा कि सरोवरके किनारे एक विशालकाय सफेद रङ्गकी वस्तु निश्चल होकर पड़ी हुई है। अचानक इस दृश्यको देखकर वे एक दूसरेसे कहने लगे—क्या अभी-अभी इन्द्रके वज्राघातसे नन्दीश्वर पर्वतकी कोई चोटी टूटकर यहाँ आ गिरी है? परन्तु क्या वज्राघातसे पर्वतकी चोटी गिरनेपर आवाज नहीं हुई

होगी? यह सुनकर कोई गोप बालक कहने लगा—जब हमलोग हो-हो शब्द करते हुए खेल रहे थे, उस समय वज्रपातका शब्द और इस पर्वतकी चोटीके गिरनेका शब्द सुनायी नहीं दिया होगा। उस वककी ओर देखते हुए कुछ बालक कहने लगे—इसकी तो आँख, चोंच आदि दिखायी दे रहे हैं। तो यह विशालकाय वस्तु क्या कोई जानवर है? यह समझकर वे सभी डर गये तथा दौड़कर कृष्णके पास पहुँचकर कहने लगे—"कन्हैया! हमारी रक्षा करो, रक्षा करो।" बालकोंको डरा हुआ देखकर कृष्णने उन्हें वत्सासुरका स्मरण दिलाकर सान्त्वना देते हुए कहा—"तुम लोग डरो मत। मैं इसे अभी दण्ड दूँगा।" ऐसा कहकर बालकोंको एक ओर कर वे उस वकके सामने पहुँच गये। उन्हें सामने देखकर वह असुर वेगसे झपटा और अपनी तीखी लम्बी चोंच खोलकर कृष्णको निगल गया।

जिस प्रकार प्राणहीन शरीरके क्षतिहीन रहनेपर भी उसमें काम करनेकी शक्ति नहीं रहती है, उसी प्रकार ही बालकोंके प्राणस्वरूप कृष्णको जब बगुलेने निगल लिया, तो उन गोपबालकोंके शरीर क्षति हीन होनेपर भी वे मूर्च्छितसे होकर कठपुतलीकी भाँति ही रह गये। बालकोंके साथ-साथ भैया बलरामकी भी ऐसी ही दशा हो गयी। कृष्णकी लीलाशक्तिके अचिन्त्य प्रभावसे एवं शुद्ध सख्य-भावोचित आशङ्कायुक्त हृदयसे महाव्याकुल होकर वे अचेतनके समान हो गये। यदि उस समय बलराम और गोपबालकोंके शरीरोंमें चेतना रहती, तब तो वे कृष्णके विरहमें निश्चित ही जलाशयमें कूद जाते। इसलिए कृष्णकी लीलाशक्तिने उन्हें जड़-सा बनाकर उनकी ज्ञान और क्रिया शक्तिको भी विलुप्त कर दिया। केवल दृष्टि शक्तिके द्वारा वे कृष्णको देखते रहे। वे स्पन्दनविहीन एवं निर्निमेष दृष्टिसे कृष्णदर्शनकी लालसासे बकासुरके मुखको ताक रहे थे।

नन्दनन्दन बकासुरके मुखमें प्रवेशकर उसके कण्ठ तक पहुँच गये तथा वहाँ जाकर स्थिर होकर खड़े हो गये। बकासुर सैकड़ों प्रयास करके भी उन्हें गलेसे नीचे नहीं उतार सका। उसका तालु तपे हुए लोहेके स्पर्शकी भाँति जलने लगा। वह मन-ही-मन सोचने लगा—क्या मैंने भूलसे आगका गोला मुँहमें डाल लिया है? गला,

तालु आदिके जलनेसे वह छटपटाने लगा। उसे लगने लगा कि अब उसकी आँखें निकलनेवाली हैं और श्वास रुक जानेके कारण प्राण भी निकलनेवाले हैं। अतः उसने शीघ्र ही कृष्णको मुखसे उगल दिया और देखा कि श्रीकृष्ण ज्यों-के-त्यों क्षतिहीन रूपसे परम शान्त मूर्त्तिमें उसके सामने खड़े हैं। बकासुर तब भय और क्रोधसे अधीर हो उठा। वह मन-ही-मन सोचने लगा—लगता है, मुझे भी शकटासुर, तृणावर्त्त, वत्सासुरकी भाँति इस अद्भुत बालकके हाथों अपनी जान गँवानी होगी। फिर भी अन्तिम प्रयास तो कर ही लूँ। ऐसा विचारकर जब वह पुनः अपनी चोंच खोलकर कृष्णको मार डालनेके लिए उनके निकट आया, तब कृष्णने एकबार बलराम तथा बालकोंकी ओर देखा। तत्पश्चात् तीव्र गतिसे उन्होंने उसकी चोंचके दोनों ठोर पकड़ लिये एवं बालक जैसे खेलते-खेलते वीरण (मोथा नामक घास) को चीर देता है, वैसे ही कृष्णने उस महाबली दैत्यको चीर डाला।

जब व्रजजीवन नन्दनन्दन बकासुरके मुखसे बाहर निकल आये, तब बलराम और गोप बालकोंके शरीरोंमें चेतना तो आ गयी, किन्तु तब भी उनमें क्रियाशक्ति नहीं लौटी। इसलिए वे अपने जीवनके जीवन कृष्णको सामने देखकर भी उनके निकट नहीं जा सके, केवल अपलक नेत्रोंसे कृष्णको निहारते रह गये। कृष्णने अति सहज रूपसे ही बकासुरको मार डाला। उस समय देवतागण उनपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। इन सभी दृश्योंको बलराम और सखागण अपनी आँखोंसे देखकर आश्चर्यचकित हो गये। तदनन्तर कृष्ण आनन्दपूर्वक उनके निकट उपस्थित हुए तथा उनका आलिङ्गन किया। कन्हैयाके अङ्गस्पर्शसे उनकी विलुप्त क्रियाशक्ति लौट आयी, तब वे भी बाहु फैलाकर आनन्दसे कृष्णका आलिङ्गन करते हुए विविध प्रकारसे उनकी प्रशंसा करने लगे।

यद्यपि अभी गोष्ठक्रीड़ा समापनकर नन्दभवनमें लौटनेका समय नहीं हुआ था, फिर भी रोहिणीनन्दन बलरामने कहा—"कृष्ण! आज अधिक खेलनेकी आवश्यकता नहीं है। चलो, हम घर लौट चलें।" तब सभी मिलकर बछड़ोंको एकत्रित करने लगे। कृष्णने वंशी

बजायी, जिसे सुनकर सभी बछड़े कृष्णके निकट आ गये। इस प्रकार बछड़ोंको लेकर जब वे नन्दभवनके समीप उपस्थित हुए, तब यशोदा मैया दौड़कर आयी तथा कृष्णको गोदीमें लेकर उनका अङ्गमार्जन तथा मुखचुम्बन करने लगीं। तब बालकोंने परमानन्दमें विभोर होकर नृत्य करते हुए सबको कृष्णके द्वारा बकासुर-वधका विवरण तथा देवताओंका पुष्पवर्षण, वाद्य-वादन आदि सभी कथाओंको सुनाया।

नन्द, यशोदा आदि गोप-गोपीगण, गोपबालकोंके मुखसे यह समस्त विवरण सुनकर भयभीत हो उठे एवं कहने लगे—"नारायणकी अपार करुणासे हमारा कृष्ण असुरके मुखसे लौट आया है। उन नारायणके चरणोंमें हम सब करोड़ों बार प्रणाम करते हैं।" आज हमारा प्यारा कृष्ण साक्षात् मृत्युके मुखसे निकलकर हमारे पास लौट आया है, यह जानकर सभी व्रजवासी भय, विस्मय और आनन्दयुक्त एक अभिनव भावावेशमें मत्त होकर कृष्णको गोदीमें लेकर स्नेह करने लगे। बहुत देर तक ऐसा चलता रहा। कोई भी कृष्णको गोदीसे उतारना नहीं चाह रहा था। अन्तमें नन्दबाबा एवं अन्यान्य गोप कहने लगे—"अहो! कैसा आश्चर्य है। इस बालकके जन्मके पश्चात् ही इसपर निरन्तर विपत्तियाँ आ रही हैं, परन्तु सौभाग्यवश नारायणकी अपार करुणासे यह मृत्युसे बच जाता है। जितने भी असुर इसका अनिष्ट करनेके लिए आते हैं, वे सभी जलती हुई आगमें पतङ्गोंकी भाँति जलकर समाप्त हो जाते हैं। इसलिए हमें लगता है कि वेदज्ञ ब्रह्मणोंका वचन कभी झूठा नहीं होता है।" कृष्णके नामकरणके समय सर्वज्ञ-शिरोमणि गर्गाचार्यने कहा था—*"तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः*—हे नन्द महाराज! आपका यह बालक गुणोंमें नारायणके समान होगा।" आज हम गर्गाचार्यकी इस बातको प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं।

इस प्रकार बलराम-कृष्णकी कथाओंका वर्णन एवं उनकी मधुर बाल-लीलाओंका दर्शनकर नन्द महाराज तथा अन्य गोपोंका समय परमानन्दके सागरमें निमज्जित होकर व्यतीत होता था।

साधारण जीव मायिक संसारमें ममता करके संसारमें लिप्त होते हैं और संसार-दुःख भोगते हैं, परन्तु जिनकी ममता श्रीकृष्णमें लग

जाती है, उनका मायासे सम्बन्ध तथा उसका परिणाम संसार-दुःख सम्पूर्ण रूपसे समाप्त हो जाता है॥ ४५-५९॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके ग्यारहवें अध्यायकी भावप्रकाशिकावृत्ति समाप्त।

# बारहवें अध्यायकी कथाका सार

इस अध्यायमें कृष्णकी अघासुर-वध-लीलाका वर्णन हुआ है।

एक दिन कृष्ण वनमें ही भोजन करनेकी इच्छासे अपने सखाओं तथा बछड़ोंके साथ व्रजसे वनमें गये। सभी बालक कृष्णके साथ वन-विहार कर रहे थे। उसी समय कंस द्वारा भेजा हुआ पूतना तथा बकासुरका छोटा भाई अघासुर नामक दैत्य बालकों सहित कृष्णका विनाश करनेकी इच्छासे वहाँपर आया। इस उद्देश्यसे वह एक योजन विस्तृत पर्वतके समान अजगरका रूप धारणकर अपना मुख फाड़कर मार्गमें लेट गया। उसका खुला हुआ मुख पर्वतकी विशाल गुफाके समान था। जब कृष्णके सखा बालकोंकी दृष्टि उसपर पड़ी, तो वे उसे वृन्दावनकी शोभा मानकर उस अजगरके खुले हुए मुखकी तुलना गुफासे करने लगे। उन्हें विश्वास था कि कृष्ण उनकी रक्षा करनेवाले हैं, अतः वे निर्भीक होकर उसकी ओर बढ़ने लगे। सबके अन्तर्यामी भगवान् अपने सखाओंको अघासुरके मुखकी ओर जाते देखकर उन्हें रोकना चाहते थे, परन्तु उससे पहले ही वे सभी अपने-अपने बछड़ोंके साथ उसके मुखमें प्रविष्ट हो गये। असुर कृष्णकी प्रतीक्षा कर रहा था, इसलिए उसने बालकों तथा बछड़ोंको निगला नहीं। कृष्ण भी उस असुरका नाश करनेके लिए तथा सखाओं एवं बछड़ोंकी रक्षा करनेके लिए उसके मुखमें प्रविष्ट हो गये। कृष्णके मुखमें प्रविष्ट होते ही उसने अपना मुख बन्द करना आरम्भ कर दिया। तब कृष्ण उसके गलेमें जाकर इतने वेगसे बढ़ने लगे कि उसका गला अवरुद्ध हो गया तथा उसकी मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात् कृष्णने अपनी अमृत-दृष्टिके द्वारा अपने मृत सखाओं तथा बछड़ोंको पुनः जीवित किया तथा उन सबके साथ अघासुरके मुखसे बाहर निकल आये। यह देखकर ब्रह्मा आदि देवता अत्यन्त आनन्दित हुए। असाधु व्यक्तियोंके लिए सारूप्य मुक्ति दुर्लभ होनेपर भी भगवान्‌के श्रीअङ्गोंके स्पर्शसे समस्त पाप नष्ट हो जानेके कारण

अघासुरको सारूप्य मुक्ति प्राप्त हो गयी। भगवान्‌ने यह लीला बाल्यकालके पाँचवें वर्षमें की। किन्तु भगवान् द्वारा पौगण्डलीला आरम्भ करनेपर अर्थात् छठे वर्षमें प्रवेश करनेपर उनके सखा गोपबालकोंने उस लीलाको व्रजमें ऐसे सुनाया जैसे वह लीला आज ही हुई हो। यह सुनकर श्रीपरीक्षित् महाराजने श्रीशुकदेव गोस्वामीसे इसका कारण पूछा—इस प्रश्नके साथ ही यह अध्याय समाप्त हुआ है।

# द्वादशोऽध्यायः

## श्रीकृष्णकी अघासुर उद्धार-लीला

**श्रीशुक उवाच—**

**क्वचिद्वनाशाय मनो दधद् व्रजात्,**
**प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान्।**
**प्रबोधयन् शृङ्गरवेण चारुणा,**
**विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः॥ १॥**

**अन्वयः**—श्रीशुक उवाचः (श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा) क्वचित् (किसी एक दिन) हरिः (कृष्णने) वनाशाय (वनमें ही प्रातःकालीन भोजनलीला करनेका) मनः दधत् (मन बनाया) [इसलिए] प्रातः समुत्थाय चारुणा (प्रातःकाल उठकर मनोहर) शृङ्गरवेण (शृङ्गकी ध्वनिसे) वयस्य वत्सपान् (सहचर गोपबालकोंको) प्रबोधयन् (जगाते हुए) वत्सः पुरः सरः (अपने-अपने बछड़ोंको आगेकर) व्रजात् विनिर्गतः (व्रजसे बाहर निकल गये)॥ १॥

**अनुवाद**—श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! किसी एक दिन कृष्ण वनमें ही कलेवा करनेकी अभिलाषासे प्रातःकाल ही जग गये और सींगेकी मधुर-ध्वनिसे उन्होंने अपने साथी गोपबालकोंको जगाया। तब सभी गोपबालक अपने-अपने बछड़ोंको आगे करके व्रजसे बाहर निकल पड़े॥ १॥

### सारार्थदर्शिनी टीका

द्वादशे सखिभिः केलिस्तन्मध्येऽघस्य वर्णनम्।
वक्त्रेऽविशंस्ते कृष्णोऽनु प्रविश्याहंस्तमेधितः॥

क्वचिद्दिवसे वनाशाय वन एव प्रातर्भोजनं कर्तुं हरिरिति। बलदेवस्तु मात्रा जन्मर्क्षशान्तिकस्नानाद्यर्थं गृह एव बलाद्रक्षित इति ज्ञेयम्॥ १॥

**भावानुवाद**—इस बारहवें अध्यायमें सखाओंके साथ कृष्णका वन-विहार, उसीमें अघासुरका वर्णन, बछड़ोंके सहित सखाओंका अघासुरके मुखमें प्रवेश एवं अन्तमें कृष्णका उसके गलेमें अटककर उसका संहार करना—ये सब विषय वर्णित हुए हैं।

*'क्वचिद्वनाशाय'*—किसी एक दिन वनमें प्रातःकालीन भोजन करनेकी अभिलाषासे कृष्ण प्रातःकाल ही निद्रासे उठ गये और वेणुवादन करते हुए सखाओंको जगाकर बछड़ोंको आगेकर व्रजसे बाहर निकल पड़े। उस दिन बलदेव भैयाके जन्म-नक्षत्रका उपलक्ष्य था, अतः रोहिणी माँने माङ्गलिक स्नान आदिके लिए उन्हें घरमें ही रोक लिया था॥ १॥

**तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः,**
**स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः।**
**स्वान् स्वान् सहस्रोपरिसंख्ययान्वितान्,**
**वत्सान् पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा॥ २॥**

**अन्वयः**—सुशिग्वेत्र विषाणवेणवः (अत्यन्त सुन्दर शोभायुक्त छींके, बछड़ोंको हाँकनेकी लठिया, शृङ्ग और वंशी) सहस्रशः (हजारोंकी संख्यामें) स्निग्धाः (स्नेहयुक्त) पृथुकाः (बालकगण) सहस्रो परिसंख्यया अन्वितान् (हजारोंकी संख्यामें) स्वान् स्वान् वत्सान् (अपने-अपने बछड़ोंको) पुरस्कृत्य मुदा (आगेकर आनन्दके साथ) तेन एव साकं (कृष्णके साथ ही) विनिर्ययुः (व्रजके बाहर निकले)॥ २॥

**अनुवाद**—तब कृष्णके हजारों सखा अपने सुरम्य छींके, बेंत, सींगा और वंशीको लेकर तथा अपने-अपने हजारों बछड़ोंको आगे करके बड़े आनन्दपूर्वक श्रीकृष्णके साथ व्रजसे बाहर निकल पड़े॥ २॥

**सारार्थदर्शिनी**—पृथुका बालाः। शिक् शिक्यं, सहस्रस्योपरिसंङ्ख्या अयुतादि-स्तयाऽन्वितान्॥ २॥

**भावानुवाद**—ग्वालबाल अपने हजारों बछड़ोंको आगे लेकर व्रजसे बाहर निकले॥ २॥

**कृष्णवत्सैरसंख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान्।**
**चारयन्तोऽर्भलीलाभिर्विजह्रुस्तत्र तत्र ह॥ ३॥**

**अन्वयः**—[सभी बालक] स्ववत्सकान् (अपने-अपने बछड़ोंको) असंख्यातैः (अनगिनत) कृष्णवत्सैः यूथीकृत्य (कृष्णके बछड़ोंके साथ मिलाकर) चारयन्तः तत्र तत्र ह (चराते हुए उन-उन स्थानोंमें) अर्भलीलाभिः (बालकोचित क्रीड़ा करते हुए) विजह्रुः (विहार करने लगे)॥ ३॥

**अनुवाद**—तदन्तर बाल-सखाओंने अपने-अपने बछड़ोंको कृष्णके अनगिनत बछड़ोंके साथ एकत्र कर दिया और उन्हें चराते हुए वनमें यहाँ-वहाँ बालकोचित क्रीड़ाएँ करते हुए विहार करने लगे॥ ३॥

**सारार्थदर्शिनी**—कृष्णस्य तु वत्सैरसङ्ख्यातैः असङ्ख्यसंज्ञसंख्यैरित्यर्थः। असंख्यसंज्ञा च क्षीरस्वामिदृष्ट्या ज्ञेया। यथा—*"एकं दशशतसहस्राण्ययुतं प्रयुताख्यलक्षमथ नियुतम्। अर्बुदकोटिन्यर्बुदपद्मे खर्वं निखर्वमिति दशभिः॥ गणनान्महाब्जशङ्ख-समुद्रमध्यान्तमथ परपरार्द्धम्। स्वहतं परार्द्धममितं तत्स्वहतं भूर्यतोऽसङ्ख्यम्॥"* इति। प्रयुतसंज्ञं लक्षम्, अर्बुदसंज्ञा कोटिरित्यर्थः। परार्द्धपर्यन्ताष्टादशसङ्ख्या दशशतगुणिता ज्ञेयाः। तत्रच द्वन्द्वैक्यान्महाब्जादिकं सङ्ख्या पञ्चकं ज्ञेयं। स्वहतमिति स्वेन गुणितमित्यर्थ इति ज्ञेयम्। ततश्च कृष्णवत्सैर्महायूथैः सह स्वकान् स्वकान् परार्द्धादिसङ्ख्यान् वत्सान् पृथक् पृथक् यूथीकृत्येत्यर्थः। न च षोडशक्रोशीमात्रस्य वृन्दावनस्य प्रदेशे तावन्तो वत्सा नैव मान्तीति वाच्यं भगवद्विग्रहस्यैव धाम्नश्चास्य तथा परिमितत्वेऽप्यचिन्त्यशक्त्या विभुत्वात् तत्प्रदेशैकदेशेऽपि पञ्चाशत् कोटियोजन-प्रमाणब्रह्माण्डार्बुदानां भगवतैव ब्रह्मणे एतदुत्तराध्याये दर्शयिष्यमाणत्वात्। अतएवोक्तं भागवतामृते—*"एवं प्रभोः प्रियाणां च धाम्नश्च समयस्य च। अविचिन्त्यप्रभावत्वादत्र किञ्चिन्न दुर्घटम्॥"* इति॥ ३॥

**भावानुवाद**—*'कृष्णवत्सैः असंख्यातैः'*—श्रीकृष्णके बछड़ोंकी संख्या असंख्य थी। इस असंख्यकी संज्ञाको अमरकोषके टीकाकार क्षीरस्वामीके वर्णनके अनुसार समझना चाहिये। *'एकं दश'* आदिसे अर्थात् दसगुणा बढ़ाते हुए दस सौ—एक हजार, इस प्रकार अयुत, लक्ष, नियुत,

करोड़, अर्बुद, वृन्द, खर्व, निखर्व, शङ्ख, पद्म, सागर, अन्त्य, मध्य और परार्द्ध तक दस दस गुणा बढ़ाते हुए जानना चाहिये। अर्थात् कृष्णके अनगिनत बछड़ोंके साथ अपने-अपने परार्द्ध-संख्यक बछड़ोंको अलग-अलग झुण्डोंमें लेकर सभी ग्वालबाल वनमें गोचारण करते हुए स्थान-स्थानपर बाललीला करने लगे। यदि कोई ऐसा कहे कि सोलह क्रोस वृन्दावनमें इतने असंख्य बछड़ोंके विचरणके लिए स्थान कहाँ है? इसके उत्तरमें कह रहे हैं—श्रीकृष्णके विग्रहकी भाँति उनका धाम भी अचिन्त्यशक्तिके कारण परिमाणमें विभु है। उस वृन्दावनके एक वनके केवल एक ही भागमें पाँच सौ करोड़ योजन विस्तारवाले अरबों-अरबों ब्रह्माण्ड अवस्थित हैं, जिन्हें भगवान् श्रीकृष्ण अगले अध्यायमें ब्रह्माजीको दिखलायेंगे। श्रीलघुभागतामृतमें (२८१ कारिकामें) कहा गया है—*"अतः प्रभोः प्रियाणाञ्च"* अर्थात् वृन्दावनमें नित्यलीलामें अनुरक्त श्रीकृष्णके, उनके प्रियजनोंके, धामके और कालके अचिन्त्यशक्तिके प्रभाववशतः कुछ भी असम्भव नहीं होता है॥ ३॥

**फलप्रवालस्तवक-सुमनः पिच्छधातुभिः।**
**काचगुञ्जामणिस्वर्ण-भूषिता अप्यभूषयन्॥ ४॥**

**अन्वयः**—[वे सभी व्रजबालक] काचगुञ्जामणिस्वर्ण भूषिताः अपि (अपनी-अपनी माताओंके द्वारा काँच, गुञ्जा, मणि, स्वर्ण आभूषणोंसे विभूषित होकर भी) फल प्रवाल स्तवक सुमनः पिच्छ धातुभिः (फल, प्रवाल, नये-नये पल्लव, स्तवक, पत्र, पुष्प आदिके गुच्छे, मोर पङ्ख, धातुचित्र आदिसे) अभूषयन् (अपने-अपने शरीरको विभूषित करने लगे)॥ ४॥

**अनुवाद**—यद्यपि सभी बालकोंको उनकी माताओंने काँच (एक प्रकारकी मणि), गुञ्जा, मणि एवं स्वर्णके बने हुए अलङ्कारोंसे सुसज्जित किया था, तथापि वे फिरसे अपने शरीरोंको लाल-पीले-हरे फलों, नवपल्लवों, रङ्ग-बिरङ्गे पुष्पों, मोरपङ्खों एवं गैरिकादि धातुओंसे विभूषित करने लगे॥ ४॥

**सारार्थदर्शिनी**—काचादिभिः पूर्वं मातृभिर्भूषिता अपि फलादिभिरात्मानम-भूषयन्नित्यर्थः। तत्र काचगुञ्जे बालानामाग्रहात् मणिस्वर्णे मातृणामाग्रहाद्भूषणे ज्ञेये॥४॥

**भावानुवाद**—*'काँच-गुञ्जा'*—वे अपनी-अपनी माताओंके द्वारा काँच, गुञ्जा, मणि और स्वर्णके आभूषणोंसे विभूषित किये गये थे। परन्तु फिर भी वनमें आकर वनमें उत्पन्न फल-फूल आदिके द्वारा अपने-अपने अङ्गोंको विभूषित करते थे। उनमेंसे काँच और गुञ्जा बालकोंकी इच्छासे एवं मणि और स्वर्णके अलङ्कार माताओंने अपनी इच्छासे उनके अङ्गोंमें धारण कराये थे॥४॥

**मुष्णन्तोऽन्यन्योशिक्यादीन् ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः।**
**तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः॥५॥**

**अन्वयः**—[गोपबालक] अन्योन्यशिक्यादीन् (एक दूसरेके छीके, लठिया आदि) मुष्णन्तः (चुराकर) ज्ञातान् (जिसका है, उसके जान लेनेपर) आरात् (दूरसे) चिक्षिपुः च (फेंक देते) तत्रत्याः च (और जहाँ फेंक देते, वहाँ स्थित बालक) पुनः दूरात् (वहाँसे उसे और भी दूर फेंक देता) पुनः (फिर जिसकी वस्तु होती, उसे रोते हुए देखकर) हसन्तः (हँसते हुए) ददुः (उसकी वस्तु उसे लौटा देते)॥५॥

**अनुवाद**—ग्वालबाल परस्पर एक दूसरेके छीके, लकुटी, वंशी आदि चुरा लेते। यदि वस्तुके स्वामीको पता चल जाता, तो उसे चुरानेवाला उस वस्तुको दूर फेंक देता। जिस स्थानपर वह वस्तु गिरती, वहाँसे दूसरा उठा लेता और तीसरेकी ओर फेंक देता और तीसरा चौथेकी ओर। इस प्रकार अपनी वस्तु प्राप्त न होनेपर जब वह बालक उदास होकर रोने जैसा हो जाता, तो वे ग्वालबाल हँसते हुए उसकी वस्तुको लौटा देते॥५॥

**सारार्थदर्शिनी**—मुष्णन्तः चोरयन्तः। शिक्यादीनिति शिक्येभ्य उत्तार्य प्रथममेवान्नादिपात्राणि मुद्रितमुखत्वात् पिपीलिकादिदुष्प्रवेशानि क्वचित्तरुतले कण्टकादिभिरावृत्य स्थापितानीति ज्ञेयं, तानेव ज्ञातान् सतः आराद्दूरे चिक्षिपुः। तत्रैव विद्रुत्य नेतुं प्रस्थिते सति तत्रत्या बालास्ततोपि दूराच्चिक्षिपुः, एवमनवस्थया स्वस्वद्रव्यमप्राप्नुवतो बालान् रुदन्मुखानवलोक्य ते एव हसन्तो ददुः॥५॥

**भावानुवाद**—चींटियाँ भी जिनमें प्रवेश न कर सकें, ऐसे मुख बँधे हुए अन्न आदिके पात्रोंको छीकेसे उतारकर किसी वृक्षके नीचे काँटोंसे ढककर रख देते। तत्पश्चात् बालक एक-दूसरेका छीका, बेंत, वेणु, सींगा आदि चुरा लेते। जिसकी वस्तु चुरायी जाती, उसके जान लेनेपर कोई सखा उस चुरायी हुई वस्तुको उठाकर दूर फेंक देता, जहाँ वह वस्तु गिरती उसके निकट स्थित कोई सखा उसे उठाकर किसी और भी दूरवाले सखाके पास फेंक देता। इस प्रकार जिसकी वस्तु चुरायी जाती, वह सखा अपनी वस्तु न पाकर निराश होकर रोने लगता। तब वे हँसते-हँसते उसकी वस्तु उसे लौटा देते॥ ५॥

**यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम्।**
**अहं पूर्वमहं पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे॥ ६॥**

**अन्वयः**—यदि वन शोभेक्षणाय (वनका सौन्दर्य देखनेके लिए) कृष्णः दूरं (कृष्णके दूरमें) गतः (जानेपर) [तब] अहं पूर्वं अहं पूर्व (मैं पहले स्पर्श करूँगा मैं पहले स्पर्श करूँगा) इति (ऐसा कहकर स्पर्धाके साथ) तं (कृष्णको) संस्पृश्य रेमिरे (स्पर्शकर गोपबालक आनन्दका अनुभव करते)॥ ६॥

**अनुवाद**—यदि कभी कृष्ण वनकी शोभा देखनेके लिए कुछ दूर चले जाते, तो "मैं पहले छुऊँगा, मैं पहले छुऊँगा" इस प्रकार होड़ लगाकर सब-के-सब सखा दौड़ पड़ते और कृष्णका स्पर्श करके परम आनन्दित हो उठते॥ ६॥

**सारार्थदर्शिनी**—तं कृष्णं संस्पृश्येति अयमहमिति विद्रुत्य प्रथमं कृष्णमस्पृशं न त्वं न त्वमिति कोलाहलं कुर्वन्तः॥ ६॥

**भावानुवाद**—*'तं संस्पृश्य'*—कभी कृष्णके दूर चले जानेपर—"मैं पहले छुऊँगा, मैं पहले छुऊँगा"—इस प्रकार आपसमें होड़ लगाकर सब-के-सब सखा कृष्णकी ओर तीव्र गतिसे दौड़ पड़ते। फिर कृष्णको छूकर आनन्दमें मग्न होकर कोलाहल करने लगते, "मैंने कृष्णको पहले छुआ है, तुमने नहीं, तुमने नहीं॥"६॥

**केचिद्वेणून् वादयन्तो ध्मान्तः शृङ्गाणि केचन।**
**केचिद्भृङ्गैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे॥ ७॥**

**विच्छायाभिः प्रधावन्तो गच्छन्तः साधु हंसकैः।**
**बकैरुपविशन्तश्च नृत्यन्तश्च कलापिभिः॥ ८॥**

**विकर्षन्तः कीशबालान् आरोहन्तश्च तैर्द्रुमान्।**
**विकुर्वन्तश्च तैः साकं प्लवन्तश्च पलाशिषु॥ ९॥**

**साकं भेकैर्विलङ्घन्तः सरितः स्रवसंप्लुताः।**
**विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपन्तश्च प्रतिस्वनान्॥ १०॥**

**इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन।**
**मायाश्रितानां नरदारकेण साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः॥ ११॥**

**अन्वयः**—[उन व्रजबालकोंकी क्रीड़ाओंके विषयमें वर्णन कर रहे हैं] केचित् (कोई बालक) वेणून् वादयन्तः (वंशी बजाता) केचन् शृङ्गाणि ध्मान्तः (कोई शिङ्गा बजाता) केचित् भृङ्गैः (कोई भ्रमरके साथ) प्रगायन्तः (गान करता) परे (दूसरा कोई) कोकिलैः (कोयलोंके साथ) कूजन्तः विच्छायाभिः (कूजन करते हुए तथा उड़ते हुए पक्षियोंकी छायाके साथ) प्रधावन्तः (तेजीसे दौड़ता) [कोई] हंसकैः (हंसके साथ) साधु गच्छन्तः (मनोरम गमन-भङ्गीके साथ चलता) [कोई] बकैः (बगुलेके साथ) उपविशन्तः (उसका अनुकरण करते हुए वैसे ही बैठ जाता) कलापिभिः नृत्यन्तः च (और कोई मोरोंके साथ नृत्य करता) [कोई] कीशबालान् (वृक्षस्थित बन्दरके बच्चोंको) विकर्षन्तः (खींच लेता) तैः (बन्दरके बच्चोंके साथ) द्रुमान् (वृक्षोंपर) आरोहन्तः च विकुर्वन्तः (चढ़ते हुए तथा उनके प्रति मुखभङ्गि करके) तैः साकं (उनके साथ) पलाशिषु (पलाश आदि वृक्षोंमें) प्लवन्तः (एक शाखासे दूसरी शाखामें जाता) च भेकैः साकं (और कोई मेंढकोंके साथ) स्रव संप्लुताः सरितः (नदियोंकी छोटी-छोटी धाराओंको) विलङ्घन्तः (छलाँग मारकर पार करता) प्रतिच्छायाः (कभी जलमें स्थित अपने प्रतिबिम्बको देखकर) विहसन्तः (उसका उपहास करता) प्रतिस्वनान् (प्रतिध्वनिकी) शपन्तः (भर्त्सना करते) च इत्थं (पूर्वोक्त

प्रकारसे) सतां (ज्ञानियोंके लिए) ब्रह्मसुखानुभूत्या (ब्रह्मानन्द-स्वरूपमें) दास्यं गतानां (दास्यभावसम्पन्न भक्तोंके लिए) परदैवतेन (परम प्रभु स्वरूपमें) मायाश्रितानां नरदारकेण (मायामुग्ध जीवोंके समीपमें मनुष्य बालकके रूपमें) साकं (भगवान् श्रीकृष्णके साथ) विजह्रुः (विहार करनेवाले सभी बालक) कृतपुण्यपुञ्जाः (प्रचुर पुण्यवान हैं)॥ ७-११॥

**अनुवाद**—उन बालकोंमेंसे कोई वंशी बजाता, तो कोई सींगा बजाता, कोई भ्रमरोंके साथ गुनगुनाता, कोई कोयलके कुहू-कुहू स्वरके साथ स्वर मिलाकर कूजन करता, कोई आकाशमें उड़ते पक्षियोंकी छायाके साथ दौड़ लगाता, तो कोई हंसोंकी चालकी नकल करते हुए उनके साथ मनोरम भङ्गिमापूर्वक चलता। कोई बगुलेका अनुकरण करके आँखें मूँदकर पासमें बैठ जाता, तो कोई मोरोंके साथ उन्हींकी भाँति नृत्य करने लगता। कोई वृक्षपर बैठे बन्दरोंकी पूँछ पकड़कर खींच लेता, तो कोई उनके साथ इस वृक्षसे उस वृक्षपर चढ़ जाता और बन्दरोंकी भाँति मुखभङ्गिमा बनाता तथा कोई उनके साथ एक शाखासे दूसरी शाखापर छलाँग लगाता। कोई मेंढकोंके साथ झरनेकी छोटी जलधाराओंमें उछलता-कूदता, कोई पानीमें अपनी ही परछाईं देखकर उसकी हँसी उड़ाता, तो कोई अपनी प्रतिध्वनिको ही बुरा-भला कहता। ज्ञानी लोग जिन भगवान्‌को ब्रह्म-स्वरूपमें अनुभव करते हैं, जो दास्यभावसे युक्त भक्तोंके परम आराध्यदेव हैं एवं जो माया-मोहित विषयोंसे अन्धे व्यक्तियोंके लिए मनुष्य-बालक हैं, उन्हीं भगवान्‌के साथ वे महान पुण्यात्मा गोपबालक विविध प्रकारसे विहार किया करते थे। इन गोपबालकोंने बहुत पुण्य किया था, अन्यथा श्रीकृष्णके साथ इस प्रकार विहार सम्भव नहीं है। अहो! इनका कैसा सौभाग्य है!॥ ७-११॥

**सारार्थदर्शिनी**—ध्मान्तः वादयन्तःवीणां पक्षिणां छायाभिः॥ ७॥ कीदृशान् बालान्? वृक्षशाखासु लम्बमानानि बानरलाङ्गूलानि तैरमुच्यमानैश्च लाङ्गूलैर्दृढं धृतैर्द्रुमानारो-हन्तः विकुर्वन्तः भ्रुविजृम्भादि मुखविकारान् कुर्वन्तः तथा तैःसह पलाशिषु वृक्षेषु प्लवन्तः शाखायाः शाखान्तरं गच्छन्तः॥ ९॥

स्रवेण नद्यादितटेभ्यः परिस्रुतजलेन सम्प्लुताः पूरिताः सन्ति सरित् क्षुद्रधाराः प्रतिच्छायाः स्वप्रतिबिम्बान् भुजोत्क्षेपादिभिर्विहसन्तः प्रतिस्वनान् प्रतिध्वनीन्

शपन्तः रे रे कस्त्वं ब्रूषे इति स्वप्रतिध्वनिं श्रुत्वा कुपिताः किमरे मामेव रे रे कारेणाक्षिपसि तत्त्वमद्यैव शीघ्रं म्रियस्वेति पुनः पुनरनवस्थया आक्रोशन्तः॥ १०॥

एवं तेषां क्रीडां निर्वर्ण्य व्रजौकसामित्युत्तर श्लोकोक्त्या तदादिव्रजवासिमात्राणामेव सौभाग्यं सर्वेभ्यः एव सकाशादधिकत्वेन स्तौति—इत्थमिति। अत्र जगति प्रायस्त्रिविधा एव जना गण्यन्ते; ज्ञानिनो भक्ताः कर्मिणश्च, तत्र सतां भक्तिमत्त्वेन सच्छब्देनोच्यमानानां ज्ञानिनां ब्रह्म च तत् सुखं च अनुभूतिश्च तया सहेति कृष्णशरीरस्यैव बह्मसुखानुभूतित्वं तेनैव सह तेषां विहारात् तस्मात्तदाकारस्य प्राकृतत्वमाचक्षणाः ज्ञानिमानिनोऽन्ये सच्छब्देन नैवोच्यन्ते इति ज्ञेयं दास्यङ्गतानां केवलभक्तिमतां सतां परदैवतेनेष्टदेवेनेति तदानीन्तना व्रजस्थजनभिन्नाः प्रायो दासभक्ता एवेति त एव निर्दिष्टाः मायां वैषयिकं सुखमाश्रितानां कर्मिणां नरदारकेण प्राकृतमनुष्यबालतया प्रतीयमानेन कृष्णेन सहैते विजह्रुरिति। ज्ञानिनां तदनुभव एव नतु तेन सह विहारः सम्भवेत् भक्तानां गौरवेण तद्भजनमेव न तु विहारयोग्यता, कर्मिणां तु न तदनुभवः प्रीत्यभावान्न तद्भजनमपि कुतस्तेन सह विहार इत्येते तु विजह्रुः विहारैस्तं स्वानन्दपरिपूर्णमपि प्रेमविलासमयमानन्दविशेषं प्रापय्यैव स्वयमपि सर्वतो विलक्षण-माननन्दुरित्यर्थः अतः सर्वेभ्यः सकाशादेते एव कृतपुण्या इति किं वक्तव्यं कृतपुण्यपुञ्जा एवेति लोकप्रतीत्यैवोक्तिर्न तु नित्यसिद्धानां तेषां निखिलेभ्यो ज्ञानिभ्यो भक्तेभ्यश्चोत्कृष्टतमानां तत्र न प्राचीनपुण्यवत्त्वं वस्तुतो हेतुरिति ज्ञेयं। पुण्यशब्देन भगवत्प्रिया चरणं वा लक्षणीयं तद्वशीकारातिशयरूपप्रयोजनलाभाय॥ ११॥

**भावानुवाद—** *'ध्मान्तः'* कोई-कोई सखा सींगा बजाने लगता, *'विच्छायाभिः'*—कोई-कोई सखा आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंकी परछायीको देखकर दौड़ने लगता। *'कीशबालान्'*—कोई-कोई सखा वृक्षकी शाखापर स्थित बन्दरके बच्चोंकी लटकी हुए पूँछको पकड़ लेता और जब वह शाखासे वृक्षपर चढ़ जाता, तो वह सखा भी उसके साथ वृक्षपर चढ़ जाता। *'विकुर्वन्तः'*—यह देखकर जब सब बन्दर मुख खोलकर भ्रू-उठाकर घुड़की देते, तब वह बालक भी वैसे ही बन्दर-घुड़की देता। *'प्लवन्तश्च'*—वृक्षके ऊपर एक शाखासे दूसरी शाखापर जाते हुए बन्दरोंके साथ वैसे ही गमन करने लगता। *'सरितः स्रवसंप्लुताः'*—कोई-कोई मेंढकोंके साथ छोटे-छोटे जलप्रवाहोंको कूद-कूदकर पार होने लगता। *'प्रतिच्छायाः'*—कोई बालक अपनी परछायीका ही हाथ उठाकर उपहास करता। *'शपन्तश्च'*—कोई-कोई अपनी प्रतिध्वनिको ही, "कौन है रे? कौन है?" कहता। फिर अपनी ही प्रतिध्वनि सुनकर क्रोधपूर्वक "अरे मुझे भी रे रे कहकर गाली दे रहा है।

अतएव आज तू जल्दी ही मर जा", ऐसा कहकर पुनः अभिशाप देता। इस प्रकार उनकी क्रीड़ाओंका वर्णनकर अगले श्लोकमें कर्मी, ज्ञानी, योगियोंसे भी बढ़कर अधिक सौभाग्यशाली व्रजवासियोंकी स्तुति *'इत्थम्'* इत्यादि श्लोकके द्वारा कर रहे हैं।

इस संसारमें प्रायः तीन प्रकारके व्यक्ति दृष्टिगोचर होते हैं—कर्मी, ज्ञानी और भक्त। उनमें *'सताम्'* कहनेसे जो भक्तियुक्त ज्ञानी हैं, वे जिन्हें देखकर ब्रह्मसुखका अनुभव करते हैं, ऐसे श्रीकृष्णके साथ व्रजबालक विहार कर रहे हैं। जो ज्ञानाभिमानी व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूप या देहको प्राकृत या भौतिक समझते हैं, उन्हें यहाँपर *'सताम्'* अर्थात् साधु नहीं कहा गया है, क्योंकि वे अपराधी व्यक्ति हैं। *'दास्यं गतानाम्'*—जो केवल भक्तिनिष्ठ साधक हैं, ऐसे सज्जनोंके निकट वे इष्टदेवताके रूपमें प्रतीत होते हैं। इसके द्वारा तत्कालीन व्रजवासियोंके अतिरिक्त दूसरोंको प्रायः दास भक्त ही समझना चाहिये।

*'मायाश्रितानाम्'*—माया अर्थात् विषय सुखको भोगनेवाले कर्मियोंके निकट जो *'नरदारकेन'* साधारण मनुष्य बालकरूपमें प्रतीत होते हैं, ऐसे श्रीकृष्णके साथ व्रजके ग्वालबाल विहार कर रहे हैं। ज्ञानी केवल ब्रह्मरूपमें ही श्रीकृष्णका अनुभव करते हैं, किन्तु उनके लिए परब्रह्म श्रीकृष्णके साथ विहार सम्भव नहीं है। जो भक्त गौरव बुद्धिसे कृष्णका भजन करते हैं, उनमें भी कृष्णके साथ विहार करनेकी योग्यता नहीं होती। कर्मियोंको ब्रह्म-अनुभव नहीं है, तथा प्रीतिके अभाववशत उनका भजन-साधन भी नहीं है, अतः वे श्रीकृष्णके साथ कैसे विहार कर सकते हैं? परन्तु अत्यधिक सौभाग्यशाली गोपकुमार विहारके द्वारा अपने आनन्दमें परिपूर्ण रहनेवाले कृष्णको भी प्रेमविलासमय आनन्दविशेष प्रदानकर स्वयं भी सर्वाधिक आनन्दका अनुभव करते हैं। अतएव ये व्रजबालकगण ही सबसे अधिक पुण्यवान हैं—इस विषयमें अधिक क्या कहा जाये। यहाँपर सखाओंके लिए जो कहा गया है कि उन्होंने बहुत-बहुत पुण्य अर्जन किये, यह केवल लौकिक रीतिके अनुसार ही कहा गया है। वास्तवमें समस्त ज्ञानी और भक्तोंसे भी अत्यन्त श्रेष्ठ नित्यसिद्ध व्रजबालकोंके

सौभाग्यका कारण कोई प्राचीन पुण्य नहीं हो सकते। अथवा—पुण्य शब्दसे भगवान्‌को प्रिय लगनेवाले उनके आचरणको समझना होगा, जिससे वे भगवान्‌को वशीभूत कर लेते हैं॥ ७-११॥

**यत्पादपांशुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो,**
**धृतात्मभिर्योगिभिरप्यलभ्यः ।**
**स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः,**
**किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम्॥ १२॥**

**अन्वयः**—बहुजन्म कृच्छ्रतः (बहुत-से जन्मोंमें बड़े कष्टसे यम-नियमादि क्लेशोंको सहनकर) धृतात्मभिः (अपने मनको संयत करनेवाले) योगिभिः अपि यत्पाद पांशुः (योगीगण भी जिन चरणकमलोंकी धूलिको) अलभ्यः (प्राप्त नहीं कर सकते) सः एव (वे भगवान्) स्वयं (साक्षात्) यद्दृग्विषयः (जिनके नेत्र-गोचर) स्थितः (होकर अवस्थान कर रहे हैं) व्रजौकसां (उन व्रजवासियोंके) अतः (इससे अधिक) किं दिष्टं वर्ण्यते (सौभाग्यके विषयमें क्या कहें)॥ १२॥

**अनुवाद**—जिन्होंने बहुत जन्मों तक यम-नियमादि कष्टमय साधनोंके फलसे अपनी इन्द्रियों और अन्तःकरणको वशीभूत कर लिया है, वे समस्त योगीलोग भी जिन भगवान्‌की चरणरेणुको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सके, ऐसे भगवान् स्वयं ही व्रजवासियोंके नेत्रगोचर होकर क्रीड़ाएँ कर रहे हैं, अतः इन व्रजवासियोंके सौभाग्यका कहाँ तक वर्णन किया जाय॥ १२॥

**सारार्थदर्शिनी**—तेन सार्द्धं विहारवार्त्ता दूरे तावदास्तां तत्सम्बन्धिवस्तुमात्रमपि दुर्लभमित्याह यदिति। पांसुरेकोऽपि धूलिकणः यद्वा यस्य पादपानां विहारास्पद वृन्दावनीयवृक्षाणाम् अंशुरेकः किरणोऽपि धृतात्मभिरेकाग्रीकृतचित्तर्लब्धुमनर्हः *"नायं सुखापो भगवान्"* इति पूर्वोक्तेः स्वयं स्थित इति स्वदर्शनसाधनमनपेक्ष्यैवेत्यर्थः दिष्टं भाग्यं यद्वा दिष्टमहः दिष्टस्य तेज उत्सवो वा॥ १२॥

**भावानुवाद**—श्रीकृष्णके साथ विहार करनेकी बात तो बहुत दूर रहे, उनसे सम्बन्धित वस्तु भी दुर्लभ है—इसे ही *'यत्पादपांशुः'* आदि पदोके द्वारा कह रहे हैं। श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी एक धूलिकण या

श्रीकृष्णके विहारस्थल वृन्दावनके कदम्ब आदि वृक्षोंकी एक किरणकी छटाको भी *'धृतात्मभिः योगिभिः अपि'*—अनेकों जन्मों तक अत्यन्त क्लेश सहन करते हुए यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार आदिके द्वारा एकाग्रचित्त समाधियुक्त होकर भी योगीगण अपने हृदयमें धारण नहीं कर सकते, ऐसे श्रीकृष्णके साथ व्रजके ग्वालबाल विहार कर रहे हैं। जैसा कि पहले कहा है—*"नायं सुखापो भगवान्"* (१०/९/२१)—अर्थात् ये यशोदानन्दन भगवान् श्रीकृष्ण भक्तोंके लिए जैसे सुलभ हैं, देहाभिमानी तपस्वियों या मुक्ताभिमानी आत्मज्ञानियोंके लिए वैसे सुलभ नहीं हैं। *'स्वयं स्थितः'*—अर्थात् अपने दर्शनके लिए किसी साधनकी अपेक्षा न करके ही वे भगवान् श्रीकृष्ण जिनके नयनगोचर होकर सदा-सर्वदा अवस्थान कर रहे हैं, ऐसे व्रजवासियोंके सौभाग्यका वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ? अर्थात् मैं उनका सौभाग्य तनिक भी वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ॥ १२॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—विविध प्रकारकी बाललीलाओंके द्वारा व्रजवासियोंके मन, प्राण और हृदयको परमानन्द सागरमें निमज्जित करते हुए स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने क्रमसे पाँचवे वर्षमें पदार्पण किया। चौथे वर्षमें वे सुबल, श्रीदामादि सखाओंके साथ वृन्दावनके समीपवर्त्ती स्थानोंमें बछड़े चराया करते थे। वहाँ नित्य नयी-नयी बाललीलाओंके द्वारा वे बालकोंका आनन्दवर्द्धन करते एवं उनके सख्य प्रेमरसका आस्वादन करते। एक दिन वनसे बछड़ोंको चराकर लौटते समय उन्होंने ग्वाल-सखाओंके साथ परामर्श किया कि कल हमलोग घरमें कलेवा न करके भोजन-सामग्री वनमें ही ले आयेंगे और वहींपर सभी मिलकर वन-भोजन करेंगे। कृष्णका यह प्रस्ताव बालकोंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन प्रातःकाल व्रजराजनन्दन शीघ्र ही शय्यासे उठ गये और माँ यशोदाके द्वारा प्रदत्त वस्त्र-अलङ्कारों द्वारा सुशोभित होकर बछड़ोंको एकत्रितकर घरके बाहर आङ्गनमें आये तथा उच्चस्वरसे सींगा बजाया। उस सींगेकी परम मनोहर ध्वनिको सुनकर सभी गोपबालक जग गये।

देखते-देखते सुबल, श्रीदाम आदि असंख्य ग्वालबाल कृष्णके निकट एकत्रित होने लगे। वे सभी सुन्दर-सुन्दर वस्त्र-अलङ्कारों,

सींगा, वेणु, लकुटी आदिसे सुसज्जित थे एवं साथमें कलेवा लेकर आये थे। वे अपने-अपने बछड़ोंको कृष्णके बछड़ोंके साथ मिलाकर कृष्णको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। तत्पश्चात् सभी ग्वालबालक परमानन्दसे सींगा, वेणु आदि बजाते हुए वनकी ओर चल पड़े।

भिन्न-भिन्न स्थानोंमें बछड़ोंको चराते हुए तथा क्रीड़ाविलास करते हुए व्रजराजनन्दन गोपबालकोंके साथ वनमें बहुत दूर पहुँच गये। वहाँ विविध प्रकारके फल-फूलोंसे सुशोभित वृक्ष-लताओं, हरी-हरी घासके सुविशाल मैदान और क्रीड़ाभूमि देखकर व्रजराजनन्दनने सखाओंसे कहा—"सखाओ! हमलोग यहाँ कुछ समय विश्राम करें एवं बछड़े यहाँ निकटमें घास चरते रहें।" यह कहकर वे निकटके एक वृक्षके नीचे शिलाके ऊपर बैठ गये। बछड़े भी निकटवर्त्ती घासके मैदानमें चरने लगे। सभी ग्वालबालोंने अपने-अपने छीकोंको वृक्षकी शाखाओंमें बाँध दिया एवं कन्हैयाके निकट आकर विविध प्रकारकी कथाओं और विविध भङ्गियोंसे उनका आनन्दवर्द्धन करने लगे। यद्यपि सभी गोपबालक मणि-मुक्तासे जड़े हुए स्वर्ण-आभूषणोंके द्वारा विभूषित थे, फिर भी वे वनमें विविध प्रकारके पुष्प-पल्लव, गेरु आदि देखकर उनके द्वारा अपनेको विभूषित करते हुए परमानन्दित होकर अनेकों प्रकारकी बालक्रीड़ाएँ करने लगे।

गोपबालक कृष्णके वेणुवादनका अनुकरण करते हुए एक साथ मिलकर जब वेणु बजाते थे, तब एक अपूर्व स्वर-लहरी उत्पन्न होकर सभी दिशाओंको मुखरित कर देती थी।

किसी सरोवर आदिमें राजहंसोंकी मनोरम मृदुगतिको देखकर कृष्ण और ग्वालबाल शीघ्र ही दौड़कर उनके निकट आ जाते। कृष्णको अपने निकट देखकर वे राजहंस भी आनन्दसे अपलक नेत्रोंसे कृष्णके मुखको निहारते हुए मधुर कूजन करते हुए मानो अपने हृदयकी भावना व्यक्त करने लगते। कृष्ण भी उन्हें प्रफुल्ल कमलवनसे परिशोभित सरोवरकी ओर परिचालित करते एवं ग्वालबाल आनन्दसे उनकी मृदु-मन्थर गतिका अनुकरण करते हुए सरोवरके तट तक जाते थे।

सरोवरके तटपर कृष्णको देखकर मोरोंके झुण्ड आनन्दमें मत्त होकर 'के-का' ध्वनिसे कृष्णके आगमनका अभिनन्दन करते हुए उनके सामने पँख फैलाकर परमानन्दमें नृत्य करने लगते। यह देखकर सखाओंके साथ कृष्ण भी उनका अनुकरण करते हुए मयूरके नृत्यके तालमें ताल मिलाकर नृत्य करने लगते। कृष्णके इस परमाद्भुत नृत्यको देखकर वृक्षोंकी एक शाखासे दूसरी शाखापर कूदनेवाले बन्दर आनन्दमें विभोर होकर स्थित हो जाते तथा कृष्ण-माधुरीका पान करते हुए उनके नृत्यके माधुर्यका आस्वादन करते।

इस प्रकार आनन्दघनविग्रह व्रजराजनन्दनके साथ ग्वालबाल निरन्तर ऐसा सुखपूर्वक विहार करते, जिसकी कोई सीमा नहीं है। उनके केवल एक दिनके विहारका वर्णन करनेके लिए ही ब्रह्माजीकी परमायु भी पर्याप्त नहीं है। गोपबालक अपने नित्यसिद्ध शुद्ध सख्यप्रेमसे व्रजराजनन्दनके साथ प्रतिक्षण नयी-नयी बालक्रीड़ाओंको करते रहते एवं उनके असमोर्द्ध्व माधुर्यका आस्वादनकर आत्मविभोर हो जाते। कृष्णके साथ इस प्रकार क्रीड़ा-रसका आस्वादन ब्रह्मादि देवताओंके लिए भी असम्भव है। एकमात्र गोपबालक ही इसके अधिकारी हैं। सखाओंके साथ नित्य विहार-परायण व्रजराजनन्दनके स्वरूपका विचार करनेपर देखा जाता है कि निर्विशेष ब्रह्मानुसन्धान-परायण ज्ञानी अपनी ज्ञान-साधनाकी सिद्ध दशामें उपस्थित होकर व्रजराजनन्दनको ब्रह्मसुखके रूपमें अनुभव करते हैं। दासभावके भक्तगण उन्हें भक्तिसाधनाकी चरम सीमामें सर्वेश्वर सर्वनियन्ता भगवान्‌के रूपमें अनुभव करते हैं एवं उनका चरणाश्रय ग्रहणकर जीवन सार्थक करते हैं और माया-मोहित बहिर्मुख जीव उन्हें साधारण नरबालक समझकर उनकी कृपासे वञ्चित हो जाते हैं अर्थात् जन्म-जन्मान्तरमें मायाका किङ्कर बनकर कामना-वासनासे जर्जरित होकर विविध प्रकारके दुःखोंका भोग करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं।

गोपबालक नित्यसिद्ध सख्यप्रेमवान हैं। वे श्रीकृष्णमें ब्रह्मबुद्धि या ईश्वरबुद्धि नहीं करते तथा कृष्णकी अवज्ञा भी नहीं करते हैं।

वे अपने स्वाभाविक प्रेमके कारण कृष्णको अपने प्राणोंसे अधिक प्रिय मानते हैं एवं विविध प्रकारके क्रीड़ा-विहार आदिके द्वारा उनके आनन्दवर्द्धनके लिए प्रयत्नशील रहते हैं। उनकी इस प्रेमपूर्ण दृष्टिमें श्रीकृष्णका सच्चिदानन्द-स्वरूप या अपरिसीम ऐश्वर्य प्रकाश नहीं होता है। यदि किसी समय किसी लीलामें कृष्णका कोई ऐश्वर्य प्रकट हो भी जाय, तब भी उन बालकोंका प्रेम न तो संकुचित होता है और न ही उनके भावमें परिवर्त्तन आता है। वे अपनी विशुद्ध प्रेम-दृष्टिसे श्रीकृष्णका माधुर्य ग्रहणकर आत्मविभोर रहते हैं। उनके जैसा सौभाग्य प्राप्त करना दूसरे किसीके लिए सम्भव नहीं है, क्योंकि उनका नित्यसिद्ध निर्मल प्रेम जगत्में अतुलनीय है। कृष्ण भी इस प्रेमके अधीन होकर विविध प्रकारकी भक्त-वात्सल्यमयी लीलाओंको प्रकट करते हैं। योगी, ज्ञानी, कर्मी, तपस्वी आदि साधकगण जितनी भी तीव्र साधना या पुण्य सञ्चय कर लें, परन्तु गोपबालक जिस सम्पदके अधिकारी हैं, उसके बिन्दुमात्रका भी स्पर्श करनेका अधिकार उन्हें प्राप्त नहीं हो सकता या इसकी कल्पना करनेका भी उनमें सामर्थ्य नहीं है॥ १-१२॥

**अथाघनामाभ्यपतन्महासुर-**
**स्तेषां सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः।**
**नित्यं यदन्तर्निजजीवितेप्सुभिः,**
**पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते॥ १३॥**

**अन्वयः**—अथ (अनन्तर) पीतामृतैः अमरैः (मृत्युहीन देवता) अपि निज जीवितेप्सुभिः (अपने जीवनकी रक्षाके अभिलाषी होकर) नित्यं (प्रतिदिन) यदन्तः (जिस दैत्यकी मृत्युकी) प्रतीक्ष्यते (प्रतीक्षा करते थे) [वह] अघनामा महासुर (अघ नामका महासुर) तेषां (बालकोंका) सुखक्रीडन् वीक्षणाक्षमः (आनन्दविहार आदि दर्शन करनेमें असहिष्णु होकर) अभ्यपतत् (वहाँ उपस्थित हुआ)॥ १३॥

**अनुवाद**—हे राजन्! तदन्तर अघासुर नामका एक दैत्य वहाँ उपस्थित हुआ। वह इतना भयङ्कर था कि अमृत पान करके अमर

हुए देवता भी उससे भयभीत होकर अपने जीवनकी रक्षाके लिए चिन्तित रहते थे तथा उसकी मृत्युकी कामना करते थे। उस अघासुरसे कृष्ण और उनके सखाओंकी सुखमयी क्रीड़ा देखी नहीं गयी॥ १३॥

**सारार्थदर्शिनी**—एवं तद्विहारस्य प्रतिक्षण परमानन्दवर्द्धकत्वात् स्वतः समाप्त्यसम्भवमाकलय्य समाप्तिञ्च विना भोजनपानादिकं न सिध्येदिति प्रात्यहिक भोजन समयात्ययञ्चावधायं लीलाशक्त्यैव तद्विच्छेदार्थं दुष्टसंहारस्याप्यवश्यकर्त्तव्यतया तदानीमेवान्तर्यामि प्रेरणवशात् कश्चिदघासुरो नाम तेषामभिमुखमानिन्ये इत्याह अथेति। सुखक्रीड़नस्य वीक्ष्यणमपि न क्षमत इति सर्वसुखदमपि तेषां क्रीडनं तस्य दुःखदमभूदिति भावः। यदन्तः यस्याघासुरस्यान्तरं मरणसाधकच्छिद्रं पीतामृतैरपि ततो मृत्युभीतैरमरैः कथं मरिष्यतीति प्रतीक्ष्यते। यद्वा, यत्सुखक्रीडनम् अन्तर्हृदये प्रतीक्ष्यते प्रतिक्षणमीक्ष्यते चिन्त्यते इत्यर्थः। पीतामृतैरपि कृष्णलीलामृतपानं बिना जीवितं वस्तुतो जीवितं न भवति यतस्तस्मान्निजजीवितेप्सुभिरित्यर्थः॥ १३॥

**भावानुवाद**—इस प्रकारके लीलाविहारके द्वारा गोपबालकोंका परमानन्द प्रतिक्षण बढ़नेके कारण इस लीलाविहारकी स्वाभाविक रूपमें समाप्ति असम्भव थी और समाप्तिके बिना भोजन-पान आदि भी सम्भव नहीं था। इधर भोजनका समय भी बीता जा रहा है—ऐसा विचारकर लीलाशक्तिने ही उनके लीलाविहारके क्रमको तोड़नेके लिए तथा दुष्टके संहारकी आवश्यकताको समझकर उस समय अन्तर्यामीकी प्रेरणासे अघ नामक किसी असुरको उनके सामने उपस्थित कराया। प्रस्तुत श्लोकके द्वारा इसीको कह रहे हैं। *'सुखक्रीडन वीक्षणाक्षमः'*—वैसी सुखमय क्रीड़ाका दर्शन करनेमें भी जो असमर्थ है। तात्पर्य यह है कि वह क्रीड़ाविलास सबके लिए सुखदायी होनेपर भी अघासुरको दुःखदायी प्रतीत हो रहा था।

देवतागण अमृत पानकर अमर होनेपर भी मृत्युके भयसे अपनी प्राणरक्षा करनेकी अभिलाषासे अघासुरकी मृत्युकी प्रतीक्षा करते रहते थे, अथवा अमृत पान करनेपर भी श्रीकृष्णलीलामृत पानके बिना जीवन यथार्थ जीवन नहीं है, इसलिए अपने प्राणोंकी रक्षाकी कामना करते थे। अर्थात् जीवनकी सार्थकता अमृत पानमें नहीं, बल्कि भगवान्‌की लीलाओंके स्मरणमें ही है॥ १३॥

**दृष्ट्वार्भकान् कृष्णमुखानघासुरः,**
**कंसानुशिष्टः स बकीबकानुजः।**
**अयन्तु मे सोदरनाशकृत् तयो-**
**र्द्वयोर्ममैनं सबलं हनिष्ये॥ १४॥**

**अन्वयः**—कंसानुशिष्टः (कंसके द्वारा प्रेरित होकर कृष्णको मारनेके लिए) बकी-बकानुजः (पूतना और बकासुरका कनिष्ठ भ्राता) सः अघासुरः कृष्णमुखान् अर्भकान् (वह अघासुर बालकोंमें प्रधान कृष्णको) दृष्ट्वा (देखकर) अयं (यही बालक कृष्ण) मे (मेरे) सोदरनाशकृत् (भाई और बहनका विनाशकारी है) [अतएव] मम तयोः द्वयोः (अपने भाई और बहनकी तृप्तिके लिए) सबलं (अनुचर एवं वत्ससहित) एनं (इसका) हनिष्ये (विनाश करूँगा)॥ १४॥

**अनुवाद**—कंसकी आज्ञासे आया हुआ वह अघासुर पूतना एवं बकासुरका छोटा भाई था। वह कृष्ण, श्रीदामा आदि बालकोंको देखकर मन-ही-मन सोचने लगा कि इस कृष्णने ही मेरे सगे भाई एवं बहनकी हत्या की है। अतः आज मैं अपने भाई एवं बहनकी सन्तुष्टिके लिए इसे इसके सखाओंके साथ ही मार डालूँगा॥ १४॥

**सारार्थदर्शिनी**—कृष्णमुखान् कृष्णादीन् दृष्ट्वा सः अघासुरः इति व्यवस्य निश्चित्य तेषां ग्रसनाशया पथि व्यशेतेतितृतीयेनान्वयः। बकीपूतना व्यवसायमाह-अयन्त्विति सार्द्धेन। अयं कृष्णः मम सोदरयोर्नाशकृत् अथ अतएव तयोर्द्वयोः पिण्डदानार्थमिति शेषः। उत्तरश्लोकार्थदृष्ट्या कल्प्यः सबलं ससैन्यं हनिष्यामि॥ २४॥

**भावानुवाद**—*'कृष्णमुखान्'*—कृष्ण आदि ग्वालबालोंको देखकर अघासुर उन्हें निगल जानेकी अभिलाषासे मार्गमें लेट गया। इसी कृष्णने ही मेरी सहोदरा बहन और भाईका विनाश किया है। अतएव उन दोनोंका पिण्डदान करनेके लिए मैं बछड़ों और बालकोंके साथ इस कृष्णको निगलकर मार डालूँगा॥ १४॥

**एते यदा मत्सुहृदोस्तिलापः,**
**कृतास्तदा नष्टसमा व्रजौकसः।**

**प्राणे गते वर्ष्मसु का नु चिन्ता,**
**प्रजासवः प्राणभृतो हि ये ते॥ १५॥**

**अन्वयः**—[यदि कहो कि इन सबके मरनेपर भी व्रजमें और भी लोग रह जायेंगे, इसके लिए कहते हैं] यदा (यदि) एते (कृष्ण आदिको) मत्सुहृदोः (अपने दोनों आत्मीयोंकी) तिलापः कृत्वाः (तिलाञ्जलिके रूपमें व्यवहार करूँ) [तब] व्रजौकसः (व्रजवासीगण भी) नष्टसमाः (मृतप्राय हो जायेंगे) प्राणे गते (प्राण निकलनेपर) वर्ष्मसु (शरीरके नाशकी) का चिन्ता नु (कोई चिन्ता नहीं है) [क्योंकि प्राणके निकलनेपर शरीर अपने-आप विनष्ट होता है] ये प्राणभृतः (प्राणीके लिए) ते हि (निश्चित रूपमें) प्रजासवः (जीवलोकमें सन्तान ही प्राणतुल्य होता है) [अतएव ऐसे प्राणतुल्य बालकोंका विनाश होनेसे शरीरतुल्य व्रजवासी भी उनके विरहमें मारे जायेंगे]॥ १५॥

**अनुवाद**—यदि इन्हें मारकर मैं परलोकगत अपने भाई-बहनकी तृप्तिके लिए इनकी तिलाञ्जलि दूँगा, तब तो समस्त व्रजवासी भी स्वतः ही मृतवत् हो जायेंगे। प्राणोंके नष्ट होनेपर शरीरके नाशके लिए सोचना नहीं पड़ता। जीवलोकमें सन्तान ही प्राणोंके समान होती है, अतः इन प्राण-स्वरूप सन्तानोंका विनाश होनेपर उनके विरहमें देहरूपी व्रजवासी अपने-आप मर जायेंगे॥ १५॥

**सारार्थदर्शिनी**—एते कृष्णादयो बाला मत्सुहृदोर्वकीबकयोर्यदि तिलापः प्रेततर्पणार्थक तिलोदकरूपाःकृताः तदा व्रजौकसो नन्दादयः वर्ष्मसु देहेषु अनष्टेष्वपि का चिन्ता न कापीत्यर्थः। ये प्राणिनस्ते प्रजा अपत्यान्येव असवः प्राणा येषां ते अतः स्वत एव मरिष्यन्तीत्यर्थः॥ १५॥

**भावानुवाद**—'एते'—यदि मैं इन बछड़ोंके साथ कृष्ण आदि ग्वालबालोंकी पूतना और बकासुरके प्रेत-तर्पणके लिए तिलाञ्ललि प्रदान करूँ, तो नन्द महाराज आदि सभी व्रजवासी स्वतः ही मर जायेंगे। 'वर्ष्मसु'—शरीरके नष्ट होनेपर भी कोई चिन्ता नहीं, क्योंकि प्राणोंके विनष्ट होनेसे शरीर अपने-आप ही नष्ट हो जाता है। नन्दादि व्रजवासियोंके पुत्र ही उनके प्राण हैं, उन पुत्ररूप प्राणोंके विनष्ट होनेपर शरीररूप नन्द आदि व्रजवासी अपने-आप ही मर जायेंगे॥ १५॥

**इति व्यवस्याजगरं बृहद्वपुः,**
**स योजनायाममहाद्रिपीवरम्।**
**धृत्वाद्भुतं व्यात्तगुहाननं तदा,**
**पथि व्यशेत ग्रसनाशया खलः॥ १६॥**

**अन्वयः**—इति (इस प्रकार) व्यवस्य (निर्धारितकर) सः खलः (वह क्रूर अघासुर) योजनायाममहाद्रिपीवरं (विस्तारमें योजन परिमाण तथा विशाल पर्वतके समान स्थूल) व्यात्तगुहाननं (विस्तृत गुफा जैसा मुखयुक्त) अद्भुतं अजगरं बृहत् वपुः (अजगर साँप जैसा विशाल शरीर) धृत्वा तदा ग्रहनाशया (धारणकर कृष्ण आदिको ग्रास करनेके लिए) पथि व्यशेत (मार्गपर लेट गया)॥ १६॥

**अनुवाद**—ऐसा निश्चित करके वह दुष्ट असुर एक योजन लम्बे पर्वतके समान विस्तृत एवं स्थूल अजगरका रूप धारण करके मार्गमें ही लेट गया। वह बड़ा ही अद्भुत लग रहा था। उसने विशाल गुफाके समान मुख फाड़ रखा था, जिससे वह कृष्ण आदि बालकोंको निगल ले॥ १६॥

**सारार्थदर्शिनी**—योजनायामं योजनपरिमाणेन दैर्घ्येण युक्तं महाद्रिवत् पीवरं व्यात्तं प्रसारितं गुहातुल्यमाननं यस्मिन् तत्॥ १६॥

**भावानुवाद**—ऐसा सोचकर अघासुर *'योजनायाम्'*—एक योजन लम्बा एवं विशाल पर्वतकी भाँति मोटा होकर विस्तृत कन्दराकी भाँति मुख फाड़कर अति अद्भुत अजगरका आकार धारणकर बछड़ों और ग्वालबालोंके सहित श्रीकृष्णको निगलनेके लिए मार्गपर लेट गया॥ १६॥

**धराधरोष्ठो जलदोत्तरोष्ठो,**
**दर्याननान्तो गिरिशृङ्गदंष्ट्राः।**
**धान्तान्तरास्यो विततध्वजिह्वः,**
**परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ॥ १७॥**

**अन्वयः**—[उसके अद्भुत स्वरूपका वर्णन कर रहे हैं] धराधरोष्ठः (नीचेका अधर पृथ्वीसे लगा हुआ था) [और] जलदोत्तरोष्ठः (और

ऊपरका होंठ आकाशसे लगा हुआ था) दर्याननान्तः (उसका मुख पर्वतकी कन्दराकी भाँति विशाल था) ध्वान्तान्तरास्यः (उसके मुखका मध्यभाग अन्धकारमय था) विततध्वजिह्वः (उसकी जिह्वा विस्तृत पथकी भाँति थी) परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः (उसकी श्वास गरम वायुतुल्य थी) दववत् (उसके नेत्र दावानलकी भाँति दहक रहे थे)॥ १७॥

**अनुवाद**—अघासुरका निचला होठ पृथ्वीसे एवं ऊपरी होठ आकाशसे लगा हुआ था। मुखके दोनों जबड़े पर्वतकी कन्दराओंके समान विशाल थे और मुखके मध्य भागमें अन्धकार व्याप्त था। उसकी जिह्वा एक चौड़ी लाल सड़कके समान थी, श्वास गरम वायुके समान थे और दोनों नेत्र दावानलके समान दहक रहे थे॥ १७॥

**सारार्थदर्शिनी**—धरायामधरोष्ठो यस्य सः। जलदे उत्तरोष्ठो यस्य सः दर्यौ कन्दराविवाननस्यान्तौ सृक्कणी यस्य सः, ध्वान्तमन्तरास्ये मुखमध्ये यस्य सः, विस्तृतः पन्था इव जिह्वा यस्य सः, परुषानिलवत् श्वासो यस्य सः दावाग्निवदीक्षण-योरुष्णो यस्य स च स च सः॥ १७॥

**भावानुवाद**—*'धराधरोष्ठोः'*—अघासुर इस प्रकार लेटा हुआ था कि उसका नीचेका होठ पृथ्वीसे और ऊपरका होठ बादलोंसे लगा हुआ था। जबड़े पर्वतकी कन्दराओंकी भाँति, दान्त पर्वतोंके शिखरोंके समान, मुखके अन्दरका भाग घोर अन्धकारमय, जिह्वा एक चौड़ी सड़कके समान लग रही थी। उसकी श्वासवायु गरम वायुके समान एवं दोनों आँखें दावानल जैसी दहक रही थीं॥ १७॥

**दृष्ट्वा तं तादृशं सर्वे मत्वा वृन्दावनश्रियम्।**
**व्यात्ताजगरतुण्डेन ह्युत्प्रेक्षन्ते स्म लीलया॥ १८॥**

**अन्वयः**—सर्वे (सभी बालक) तादृशं तं (उस प्रकारके दैत्यको) दृष्ट्वा वृन्दावनश्रियं (देखकर उसे वृन्दावनकी शोभा) मत्वा लीलया हि व्यात्ताजगरतुण्डेन (मानकर लीलासे उस गुफाकी महासर्पके खुले हुए मुखके समान) उत्प्रेक्षन्ते स्म (कल्पना करने लगे)॥ १८॥

**अनुवाद**—बालकोंने उस अजगररूपी दैत्यको देखकर ऐसा मान लिया कि यह वृन्दावनका कोई ऐश्वर्य (शोभा) है। वे लीलापूर्वक अर्थात् निर्भय होकर खेलते-खेलते उसके प्रति अनेक कल्पनाएँ करने लगे कि यह गुफा तो अजगरके फैले हुए मुखके समान दिखायी देती है॥ १८॥

**सारार्थदर्शिनी**—तमघासुरं दृष्ट्वा महासर्पबुद्ध्या कांश्चित् पलायमानानाश्वास-यन्तः सर्वेऽन्ये मत्वेति। ननु, रे मूढाः! एतावत्प्रमाणः सर्पो न सम्भवतीत्यतो वृन्दावनशोभाविशेषाधायको जन्तुविशेषो विधात्रैव रचितः किन्तु महासर्पप्रसारिततुण्डाकार इति निश्चित्य व्यात्तं प्रसृतं यदाजगरतुण्डं तेन सह उत्प्रेक्षन्ते उपमियते लीलयेति भयाभावः सुचितः॥ १८॥

**भावानुवाद**—ऐसे भयङ्कर अघासुरको देखकर उसे महासर्प समझकर कुछ गोपबालक भागने लगे। यह देखकर दूसरे ग्वालबाल आश्वासन देते हुए उन्हें कहने लगे—अरे मूढ़! कभी सर्प भी इतना बड़ा होता है? विधाताने ही वृन्दावनकी शोभा बढ़ानेके लिए किसी प्राणीकी भाँति इसे बनाया है। देखनेमें तो यह अजगरके विशाल मुखके समान ही दीखता है, इस प्रकार निश्चय करके वे महासर्पके खुले हुए होठोंके समान उसकी उपमा देने लगे॥ १८॥

**अहो मित्राणि गदत सत्त्वकूटं पुरःस्थितम्।**
**अस्मत् संग्रसनव्यात्त-व्यालतुण्डायते न वा॥ १९॥**

**अन्वयः**—अहो मित्राणि (हे बान्धवो!) पुरःस्थितं (सामने स्थित यह वस्तु) सत्त्वकूटं न वा (कोई निश्चल प्राणिविशेष तो नहीं है) अस्मत् संग्रसनव्यात्तव्याल तुण्डायते न वा (हम लोगोंको निगलनेके लिए मुँह खोलकर कहीं अजगर तो नहीं पड़ा हुआ है) गदत (बोलो तो)॥ १९॥

**अनुवाद**—[कुछ बालकोंने कहा—]हे बन्धुओ! जरा देखो तो सही, यह सामने पड़ी वस्तु कोई निश्चल-प्राणी तो नहीं है? कही इसने हमें निगल जानेके लिए ही तो किसी विशाल अजगरके समान मुख नहीं फाड़ रखा है?॥ १९॥

**सारार्थदर्शिनी**—कांश्चिन्मुख्यान् सखीन् सम्बोध्य स्वनिश्चयस्य प्रामाण्यार्थं पृच्छन्ति—अहो इति। सत्त्वकूटं निश्चलः प्राणिविशेषः *"कूटोऽस्त्रीनिश्चले राशौ"* इति। मेदिनी। पूर्व निपाताभाव आर्षः। यद्वा गिरिशृङ्गवाचककूटशब्देनोपमितं व्याघ्रादिभिरित्यनेन समासः। अस्माकं संग्रसनार्थमिव व्यात्तसर्पतुण्डवदाचरति न वा॥ १९॥

**भावानुवाद**—कम आयुके गोपबालक अपने-अपने निश्चयको प्रमाणित करनेके लिए किन्हीं-किन्हीं बड़े गोपबालकोंसे पूछने लगे—"अहो मित्रो! हे बन्धुओ हमारे सामने निश्चल रूपसे अवस्थित यह वस्तु कोई प्राणी तो नहीं है जो पर्वतके शिखरकी भाँति पड़ी हुई है। कहीं हमें निगलनेके लिए तो इसने अजगरके समान मुँह नहीं फाड़ रखा है?"॥ १९॥

**सत्यमर्ककरारक्तमुत्तराहनुवदघनम् ।**
**अधराहनुवद्रोधस्तंप्रतिच्छाययारुणम् ॥ २० ॥**

**अन्वयः**—[अनन्तर निश्चयकर कहने लगे] सत्यं (सत्य ही हमें ग्रास करनेके लिए यह यहाँ पड़ा हुआ है) अर्ककरैः आरक्तं घनं (सूर्य किरणोंसे रञ्जित बादलके समान) उत्तराहनुवत् (ऊपरका होंठ) [और] तत्प्रतिच्छाययया (उसकी छायासे) अरुणं रोधः (अरुणवर्ण स्थल) अधरा हनुवत् (उसके नीचेके अधरके समान दीख रहा है)॥ २०॥

**अनुवाद**—[तत्पश्चात् वे सब निश्चयपूर्वक कहने लगे—]हाँ, ठीक कह रहे हो। यह हमें निगल जानेके लिए ही यहाँपर स्थिर होकर लेट गया है। सूर्यकी किरणोंसे अनुरञ्जित रक्तिम मेघमण्डल मानो इसका ऊपरका होंठ है और इन मेघोंकी परछायीसे लाल रङ्गकी भूमि मानो इसका निचला होंठ है॥ २०॥

**सारार्थदर्शिनी**—सत्यमिति यथा यूयं मन्यध्वे तयैवेति ते प्रत्याहुः-अर्करैरारक्तं घनमेतस्योत्तरोष्ठवत्पश्यत तस्य घनस्य प्रतिच्छाययया अरुणं रोधःस्थलमधरोष्ठवत् पश्यत हन्वोरुत्तराधरत्वासम्भवत्वादत्र हनुशब्देनोष्ठद्वयं लक्ष्यते॥ २०॥

**भावानुवाद**—बड़े-बड़े गोपबालकोंने कहा—यह सच है, तुमने जो कुछ समझा है, वह ठीक ही है। देखो! सूर्यकिरणोंसे रञ्जित लाल-लाल मेघ मानो इसके ऊपरके होंठके समान है और मेघोंकी छायासे नीचेकी लाल-लाल हुई भूमि मानो इसके नीचेके होंठके समान हुई है॥ २०॥

**प्रतिस्पर्धेते सृक्काभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे।**
**तुङ्गशृङ्गालयोऽप्येतास्तद्दंष्ट्राभिश्च पश्यत॥ २१॥**

**अन्वयः**—सव्यासव्ये (बायें और दाहिने) नगोदरे (पर्वत कन्दरामें) सृक्काभ्यां (अधर-ओष्ठके प्रान्तमें) प्रतिस्पर्द्धेते (तुल्य रूपसे अवस्थित) एताः तुङ्ग शृङ्गालयः (ऊँचे पर्वतके शिखरसमूह) अपि तद्दंष्ट्राभिः (उसके तीखे दाँतोंके समान दिख रहे हैं) पश्यतः (देखो)॥ २१॥

**अनुवाद**—[किसी अन्य गोपबालकने भी सहमत होकर कहा—]हाँ, हाँ, इसके बायीं एवं दायीं ओरकी दोनों गिरि-कन्दराएँ इसके दो जबड़ोंके समान लग रही हैं और ये पर्वतकी ऊँची चोटियाँ इसकी तीक्ष्ण दाढ़ोंके समान प्रतीत हो रही हैं॥ २१॥

**सारार्थदर्शिनी**—सृक्काभ्यामस्य ओष्ठप्रान्ताभ्यां प्रतिस्पर्द्धेते तुल्यतया वर्तेते नगोदरे गिरिदर्यौ। एता इति तर्जन्या दर्शयन्ति तस्य सर्पतुण्डस्य दंष्ट्राभिः स्पर्द्धन्ते॥ २१॥

**भावानुवाद**—*'सृक्काभ्याम्'*—वह देखो! बायीं और दाहिनी ओर दो गिरि-कन्दराएँ मानो इसके अधर और ओष्ठकी जड़के समान हैं। तर्जनी अङ्गुलिसे दिखाने लगे—देखो! देखो! ये पर्वतके अति ऊँचे शिखर तो इसकी दाढ़ोंके समान दीख रहे हैं॥ २१॥

**आस्तृतायाममार्गोऽयं रसनां प्रतिगर्ज्जति।**
**एषामन्तर्गतं ध्वान्तमेतदप्यन्तराननम्॥ २२॥**

**अन्वयः**—अयं आस्तृतायाममार्गः (विशाल चौड़ा रास्ता) रसनां (इसकी जिह्वाकी) प्रतिगर्ज्जति (प्रतिस्पर्द्धा करता है) एषां (इन

शिखरोंके) अन्तर्गतं ध्वान्तं (मध्यमें स्थित अन्धकार) एतत् अन्तराननं (इसके मुखके अन्दरका भाग) अपि (दिखायी देता है)॥ २२॥

**अनुवाद**—[किसी अन्य बालकने कहा—]यह लम्बी-चौड़ी लाल सड़क इसकी जिह्वा जैसी दीख रही है और ऊँची-ऊँची पर्वतकी चोटियोंके बीचमें व्याप्त अन्धकार इसके मुखके गह्वरके समान प्रतीत हो रहा है॥ २२॥

**सारार्थदर्शिनी**—आस्तृतायामः विस्तृतदैर्घ्यः मार्गः पन्थाः रसनां जिह्वां प्रतिरसनया सह गर्जति स्पर्द्धते। एषां शृङ्गाणां मध्यगतमन्धकारं कर्तृ एतदपि अन्तराननं एतस्य आननमध्यं प्रतिगर्जति स्पर्द्धते॥ २२॥

**भावानुवाद**—यह सुविशाल और दीर्घपथ इसकी लाल जीभके समान जान पड़ता है। इन पर्वतकी चोटियोंके मध्यस्थित अन्धकार इसके मुखके मध्यमें स्थित अन्धकारके समान प्रतीत हो रहा है॥ २२॥

**दावोष्णखरवातोऽयं श्वासवद्भाति पश्यत।**
**तद्दग्धसत्त्वदुर्गन्धोऽप्यन्तरामिषगन्धवत् ॥ २३॥**

**अन्वयः**—अयं दावोष्णखरवातः (दावानल जैसी गरम वायु) श्वासवत् भाति (इसके श्वाँसकी भाँति प्रतीत हो रही है) पश्यत (देखो) तद्दग्धन्ध सत्वदुर्गन्धः (उस दावानलके द्वारा जले हुए प्राणियोंकी दुर्गन्ध) अपि अन्तरामिष गन्धवत् (इसके उदरस्थित प्राणीसमूहके माँसकी गन्धकी भाँति प्रतीत होती है)॥ २३॥

**अनुवाद**—[एक और बालकने कहा—]देखो, यह दावानलके समान गरम वायु इसकी श्वासके समान तथा इस दावानलसे दग्ध प्राणियोंकी दुर्गन्ध इसके पेटमें मरे हुए प्राणियोंके माँसकी दुर्गन्धके समान प्रतीत हो रही है॥ २३॥

**सारार्थदर्शिनी**—तेन दावाग्निना दग्धानां सत्त्वानां यो दुर्गन्धः स एव सर्पान्तर्गत दुर्गन्धवद्भाति॥ २३॥

**भावानुवाद**—इस दावानलमें दग्ध हुए वन्य प्राणियोंकी दुर्गन्ध भी मानों इसके उदरमें स्थित मरे हुए प्राणियोंके समान प्रतीत हो रही है॥ २३॥

**अस्मान् किमत्र ग्रसिता निविष्टान्,**
**अयं तथा चेद्बकवद्विनङ्क्ष्यति।**
**क्षणादनेनेति बकार्युशन्मुखं,**
**वीक्ष्योद्धसन्तः करताडनैर्ययुः॥ २४॥**

**अन्वयः**—अयं अत्र निविष्टान् अस्मान् ग्रसिता किं (क्या यह प्राणी हमलोगोंको खा जायेगा?) तथा चेत् (यदि ग्रास कर लेगा, तो) बकवत् (बकासुरकी भाँति) अनेन (कृष्णके द्वारा) क्षणात् (इसी क्षण) विनङ्क्ष्यति (विनष्ट हो जायेगा) इति वकार्युशन्मुखं (इस प्रकार बकारि श्रीकृष्णके कमनीय मुखका) वीक्ष्य (दर्शनकर) उद्धसन्तः (उच्चःस्वरसे हँसते हुए) करताडनैः (हाथ ताली बजाते हुए) [वे गोपबालक] ययुः (उसके मुखमें प्रवेश कर गये)॥ २४॥

**अनुवाद**—[उनमेंसे कुछ बालक कहने लगे—]यह प्राणी क्या हमें निगल लेगा? यदि निगलेगा, तो कृष्णने जिस प्रकार बकासुरको मार डाला था, उसी प्रकार वह इसे भी क्षण भरमें ही मार डालेगा। इस प्रकार वे ग्वालबाल बकारि कृष्णके कमनीय मुखका दर्शन करते हुए और ताली पीटते-पीटते हँसते हुए उस अजगरके मुखमें प्रवेश कर गये॥ २४॥

**सारार्थदर्शिनी**—मिलिताः सर्वे किञ्चित्सभयमाहुः-अस्मानिति। अयं यदि सत्य एव सर्पः स्यादिति भावः। तन्मध्य एव केचिदाश्वासयन्त आहुः—तथा चेत् क्षणमात्रादेव अनेन कृष्णेन हन्त्रा बक इव नाशं प्राप्स्यति इत्युक्त्वा बकारे दूरस्थितस्य कृष्णस्य मुखं वीक्ष्येति अस्मद्दृष्टिगोचर एव कृष्ण आस्ते का चिन्तेति लब्धविश्वासाः उद्धसन्त इति एतद्बिलमध्ये किमप्यस्ति भोः सखायः! तदवश्यं पश्याम इति बाल्यचापल्यतः कौतुकोल्लासात्। करताडनैरिति निजनिर्भयत्ववीरत्वद्योतनाय। सर्पापसारणार्थं वा ययुरधावन् वत्सा अपि पुच्छानुद्यम्य तानन्वधावन्निति ज्ञेयम्॥ २४॥

**भावानुवाद**—*'अस्मान्'*—सभी बालक एकत्रित होकर कुछ भयभीत होकर कहने लगे—यदि यह सचमुच कोई अजगर सर्प हुआ, तो इसके मुखमें जानेसे क्या यह हम लोगोंको खा जायेगा? उनमेंसे कोई-कोई गोपबालक उन्हें सान्त्वना देते हुए कहने लगे—यदि ऐसा हुआ, तो हमारा कृष्ण बकासुरकी भाँति इसे भी क्षणभरमें मार डालेगा। यह कहकर *'वकार्युशन्मुखं वीक्ष्य'*—कुछ दूरमें स्थित बकासुरका वध करनेवाले कृष्णके कमनीय मुखमण्डलको देखते-देखते—"वह देखो, कृष्ण हमारे सामने ही खड़ा है, तब हमें क्या चिन्ता है?" ऐसे विश्वासपूर्ण हृदयसे गोपबालक *'उद्धसन्तः'* उच्चस्वरसे हँसते हुए कहने लगे—"हे सखाओ! सम्भवतः इस गुफामें कोई आश्चर्यजनक वस्तु है, अतएव अवश्य ही उसे देखना चाहिये।" ऐसी बालचपलताके कारण कौतुहलवशतः वे सब ग्वालबाल *'करताडनैः'*—अपनी-अपनी वीरता और निर्भयता दिखानेके लिए अथवा लौकिक रीतिसे सर्पको हटानेके लिए ही तालियाँ बजाते हुए उस सर्पके मुखमें प्रवेश कर गये। *'वत्सा अपि'*—एवं बछड़े भी पूँछ उठाकर बालकोंके साथ उसके मुखमें प्रवेश कर गये॥ २४॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—अचिन्त्य, अनन्त, ऐश्वर्य-माधुर्यके आश्रय सच्चिदानन्द-विग्रह स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण नित्य नवीन क्रीड़ाविहारके द्वारा विविध प्रकारसे व्रजवासियोंका आनन्दवर्द्धन किया करते तथा उनकी इन लीलाओंकी लहरियोंमें ग्वालबाल आनन्दसे नृत्य करते थे। व्रजके पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, वृक्ष-लता आदि स्थावर-जङ्गम सभी आनन्दमयकी लीलाओंके आनन्दमें आत्मविभोर रहते थे। इस प्रकार सम्पूर्ण व्रजमण्डल ही एक अभिनव परमानन्दकी साक्षात् मूर्त्ति बनकर परमानन्दघन-विग्रह व्रजराजनन्दनके साथ बाधारहित निरन्तर परमानन्द रसास्वादनमें विभोर था। किन्तु बहिर्मुख जीव ऐसे असीम परमानन्दसे वञ्चित ही थे। शोक, मोह, मत्सरता और विषाद आदि मलिनता उनके हृदयमें एकत्रित होनेके कारण उन्हें उस परमानन्दका लेशमात्र भी स्पर्श करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं होता था।

यही कारण है कि आनन्दलीलाविग्रह व्रजराजनन्दनके नित्य लीलाक्षेत्र श्रीवृन्दावनके समीप ही मथुराके राजसिंहासनपर बैठकर

मथुरामण्डलका राजा बहिर्मुख-शिरोमणि कंस निरन्तर असहनीय विषाद और उद्वेगके साथ जीवन व्यतीत कर रहा था। वह व्रजराजनन्दनकी विविध प्रकारकी लीलाओंकी बात लोगोंके मुखसे सुनता रहता था, जिससे उसके हृदयस्थित विषादरूपी अग्निमें मानो घीकी आहुति पड़ जाती थी। इसलिए उस असहनीय अन्तर्ज्वालामें जलता हुआ वह बार-बार अपने उस पूर्वशत्रुका चिन्तन करता रहता था कि क्या मेरा पूर्वशत्रु विष्णु व्रजराजनन्दनके रूपमें छिपकर व्रजमें क्रीड़ा तो नहीं कर रहा है? क्या समय आनेपर वह मुझे मार तो नहीं डालेगा? उसके जन्मके पश्चात् मैंने उसे मार डालनेके लिए पूतना, शकटासुर, तृणावर्त्त, वत्सासुर, वकासुर आदि अनेक असुरोंको व्रजमें भेजा, परन्तु हाय! कोई भी वहाँसे लौटकर नहीं आया। वे सभी मारे गये। तो क्या मेरे जीवनका भी अन्तिम क्षण आनेवाला है? मेरे उन महापराक्रमी असुरोंके प्रतापसे स्वर्गके देवता भी काँपते थे, किन्तु उस साधारण बालकके सामने उन सबका पराक्रम धरा रह गया? अतः यह निश्चित ही मेरा पूर्वशत्रु विष्णु ही है।

इस प्रकार एक दिन चिन्ताग्रस्त होकर वह चुपचाप राजसभामें बैठा हुआ था। यह देखकर चाणूर, मुष्टिक, केशी, धेनुक आदि कंसके असुर मन्त्रियोंने कंससे कहा—"हे महाराज! आज आप इतने दुःखी क्यों हैं?" महाराज कंसने कहा—"एक साधारण बालकको मारकर निर्भय होनेके लिए मैंने पूतना, शकटासुर, तृणावर्त्त आदि अनेकानेक महा-बलवान दैत्योंको व्रजमें भेजा, परन्तु सभी उस बालकके निकट अपने प्राणोंकी भेंट चढ़ाकर यमराजके भवनमें चले गये। मेरे पास ऐसा कोई भी नहीं है जो उस बालकको मार सके। बोध होता है कि विधाताने इस बालकके हाथों ही मेरी मृत्यु लिखी है।" कंसके इस प्रकार हताशपूर्ण वचनोंको सुनकर पूतना और बकासुरके कनिष्ठ भ्राता अघासुरने कंसकी राजसभामें खड़े होकर कहा—"महाराज! इस तुच्छसे कार्यके लिए आपने अभी तक मुझे आदेश क्यों नहीं दिया? आप तो जानते हैं कि आपका आदेश होनेपर मैं क्षणभरमें ही सम्पूर्ण व्रजमण्डलको प्राणीहीन बना सकता हूँ। वह नन्दका पुत्र तो बहुत साधारण-सी बात है। पूतना

महाबलशालिनी होनेपर भी स्त्री जाति होनेके कारण स्त्रीजनोचित बुद्धिहीनताके कारण मारी गयी। शकटासुर, तृणावर्त्त, वत्सासुर, वकासुर आदि भी महाबलशाली थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। फिर भी वे कृष्णको मारनेका उपयुक्त उपाय ढूँढ़ नहीं सके। किसीने अदृश्य रूपमें, किसीने वायु रूपमें, किसीने पशु रूपमें और किसीने पक्षीके रूपमें व्रजमें जाकर अपना कार्य सिद्ध करनेके लिए प्रयास किया, परन्तु वे सभी अपने प्राण गँवा बैठे। यदि आप मुझे व्रजमें भेजेंगे, तो मैं इस प्रकार जाऊँगा कि किसी भी व्रजवासीके प्राण नहीं बचेंगे। इसे आप स्वयं ही अतिशीघ्र देखेंगे।"

अघासुरकी बात सुनकर कंसकी मृत देहमें मानो प्राणोंका पुनः सञ्चार हो आया। वह परम उत्साहसे सिंहासनसे उठ खड़ा हुआ तथा आनन्दसे अघासुरको गलेसे लगा लिया और कहने लगा—"भैया अघासुर! तुम्हारी इतनी शक्ति रहते हुए भी इतने दिनों तक तुम छिपकर क्यों रहे? जाओ! जाओ! क्षणमात्र भी विलम्ब करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। तुरन्त वृन्दावनमें जाकर नन्दपुत्रको मारकर मेरी इच्छा पूर्ण करो।" कंसकी बात सुनकर अघासुरने परमानन्दित होकर अपने परिकरोंके सहित आकाशमार्गसे वृन्दावनमें प्रवेश किया।

महापराक्रमी अघासुरको अकाशमार्गसे वृन्दावनकी ओर आते हुए देखकर स्वर्गके देवता भी भयभीत और किङ्कर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। वे स्वर्गसे उतरकर बादलोंकी आड़में छिपकर अघासुरका खेल देखने लगे। यद्यपि देवता अमृत पानकर अमर बन गये थे, फिर भी वे अघासुरके बलविक्रमको जानकर अपना अमरत्व भूल गये और उसकी मृत्युकी कामना करने लगे।

इधर अघासुर आकाशमार्गसे व्रजराजनन्दनको गोपबालकोंके साथ निर्भीक भावसे बालक्रीड़ा करते हुए देखकर क्रोधमें भर गया और दाँत पीसता हुआ मन-ही-मन सोचने लगा—यह साँवला-सलोना बालक सभी बालकोंके बीचमें वंशी बजा रहा है, बीच-बीचमें सुमधुर नृत्य भी कर रहा है, तथा वनके पशु-पक्षी भी आनन्दपूर्वक अपलक नेत्रोंसे इसे निहार रहे हैं। निःसन्देह यही मेरे भाई-बहनका हत्यारा है। अतः अब यह मेरे हाथोंसे नहीं बच पायेगा। आज मैं सभी

गोपबालकोंके साथ इसे मार डालूँगा। कृष्णके साथ ही सभी गोपबालकों और बछड़ोंको मारकर अपने भाई और बहनको तिलाञ्जलि दूँगा। इसकी मृत्युके साथ ही सभी व्रजवासियोंका भी संहार हो जायेगा, क्योंकि मैंने सुना है कि यह नन्दनन्दन ही व्रजवासियोंका प्राण-स्वरूप है। किसीके प्राणोंका नाश होनेसे उसके देहका नाश भी हो जाता है। मनुष्यमात्र ही अपनी सन्तानके प्रति अतीव स्नेहशील होता है। अतएव इतने बालकोंके साथ कृष्णको मार डालनेपर इनके पिता-माता भी पुत्रशोकसे अपने-आप ही मर जायेंगे तथा उनके प्राणोंका नाश होनेसे सम्पूर्ण व्रजभूमिका भी नाश हो जायेगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अघासुरने मन-ही-मन ऐसा सोचकर अपने सहचरोंको यह कहकर आकाशमें ही रहनेको कहा कि जब मैं इन बालकों और बछड़ोंके साथ नन्दपुत्रको मार डालूँगा, तब तुम लोग शीघ्रातिशीघ्र कंस महाराजके पास यह शुभ समाचार पहुँचाना। उसके पश्चात् मैं समयपर मथुरामें उपस्थित होऊँगा। यह कहकर मायाविद्या-पारदर्शी एवं विविध मूर्त्तियोंको धारण करनेमें समर्थ अघासुर जहाँ श्रीकृष्ण और गोपबालक परमानन्दसे बालक्रीड़ा कर रहे थे, उसके निकटवर्ती स्थानमें जाकर उतर गया।

अघासुरने मन-ही-मन विचार किया कि यद्यपि इन बालकोंके साथ नन्दपुत्रका वध करना मेरे लिए अति तुच्छ कार्य है, फिर भी इस सुकुमार नन्दकुमारने जब पूतना, शकटासुर, तृणावर्त्त, वत्सासुर, वकासुर आदि महापराक्रमी असुरोंको मार डाला है, तब मुझे सावधानीसे अपना कार्य करना होगा। अतः यदि मैं विशाल अजगरका रूप धारणकर इनके मार्गमें मुख फाड़कर चुपचाप अचल भावसे लेट जाऊँ, तो ये सभी मार्गमें चलते-चलते स्वयं ही मेरे मुखमें प्रवेश करेंगे एवं मेरी जठराग्निके तापसे जलकर नष्ट हो जायेंगे। यह विचारकर वह मायावी खल-स्वभाववाला अघासुर एक योजन लम्बे विशाल पर्वतकी भाँति अजगरका रूप धारणकर कृष्ण और गोपबालकोंके मार्गमें मुँह खोलकर निश्चल भावसे लेट गया। उसका नीचेका होंठ भूमिमें, ऊपरका होंठ बादलोंमें लगा हुआ था।

उसकी दाढ़ें पंक्तिबद्ध पर्वतकी चोटियोंकी भाँति एवं मुख किसी पर्वतकी विशाल गुफाके समान प्रतीत हो रहा था। उसकी लम्बी जिह्वा भूमिपर इस प्रकारसे फैली हुई थी, जैसे मार्गमें कोई लाल गलीचा बिछाया गया हो। उसकी साँस ऐसी चल रही थी, मानो जोरोंसे गरम आँधी चल रही हो एवं उसके दहकते हुए नेत्र दावानलके समान लग रहे थे।

वहाँसे कुछ ही दूरीपर कृष्ण अपने ग्वालसखाओंके साथ क्रीड़ारसमें मत्त थे। कुछ समय बीतनेपर कृष्णकी लीलाशक्तिकी प्रेरणासे ग्वालबालोंके मनमें वनभूमिकी शोभा देखनेकी इच्छा प्रकट हुई। कृष्णको एक क्षणके लिए भी न छोड़नेवाले गोपबालक और बछड़े कृष्णकी लीलाशक्तिकी प्रेरणासे कृष्णको पीछे छोड़कर आगेके वनकी ओर चल दिये। कुछ दूर चलनेपर वे सभी अघासुरके समीप पहुँच गये। उसे देखकर सभी सोचने लगे कि वनकी इस शोभा-स्वरूप सुन्दर एवं अद्भुत गुफाको देखकर लगता है मानो कोई अजगर मुख फाड़कर यहाँ पड़ा है। कृष्णकी लीलाशक्तिके प्रभावसे बालकोंको अजगरका ज्ञान होनेपर भी वे उसे वनकी शोभा समझ रहे थे।

तभी एक ग्वालबालने कहा—"भैया! यदि हम सभी मिलकर इस अजगरके मुखमें प्रवेश कर जायें, तो क्या यह अजगर हमें निगल जायेगा?" उसकी इस बातको सुनकर दूसरे बालकने कहा—"इससे हमें क्या भय है? हम यदि इसके मुखमें प्रवेश करेंगे और इसने हमें निगलनेकी चेष्टा की, तो हमारा सखा कृष्ण आकर बकासुरकी भाँति इसका भी वध कर देगा। कृष्णके रहते हुए हमें किस बातका भय है? हम कृष्णके सखा हैं, हमारा कोई क्या कर सकता है?" यह कहकर बालकोंने एकबार कृष्णकी ओर देखा और जोर-जोर-से हँसते हुए और ताली बजाते हुए बछड़ोंके साथ अघासुरके विशाल मुखमें प्रवेश कर गये और देखते-ही-देखते उसके गलेमेंसे होकर पेटमें पहुँच गये॥ १३-२४॥

**इत्थं मिथोऽतथ्यमतज्ज्ञभाषितं,**
**श्रुत्वा विचिन्त्येत्यमृषा मृषायते।**

**रक्षो विदित्वाखिलभूतहृत्स्थितः,**
**स्वानां निरोद्धुं भगवान् मनो दधे॥ २५॥**

**अन्वयः**—अखिल भूत हृत्स्थितः भगवान् (सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्ण) इत्थं (इस प्रकार) मिथः (परस्पर) अतथ्यं (अवास्तविक) अतज्ज्ञभाषितं (उस सर्पके स्वरूपसे अनभिज्ञ बालकोंकी बातोंको) श्रुत्वा (सुनकर) तत् विचिन्त्य (तथा उसकी चिन्ताकर) अमुषा रक्षः (यह वास्तवमें राक्षस है) मृषायते (इसने केवल साँपका आकार धारण कर रखा है) विदित्वा स्वानां (जानकर उन्होंने अपने अनुचर सखाओंको) निरोद्धुं (रोकनेका) मनः दधे (निश्चय किया)॥ २५॥

**अनुवाद**—सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णने सर्प-स्वरूपको न जाननेवाले बालकोंकी परस्पर ऐसी भ्रमपूर्ण बातोंको सुनकर एवं चिन्ताकर, तथा यह जानकर कि यह वास्तवमें महामायावी राक्षस है, इसने केवल अजगरका आकार धारण किया हुआ है, अपने सखाओंको उसके मुखमें जानेसे रोकनेकी इच्छा की॥ २५॥

**सारार्थदर्शिनी**—मिथः परस्परम् अतज्ज्ञानां भषितं तथ्यमयथार्थं श्रुत्वा अमृषा सत्यमेव सर्पतुण्डं हन्त हन्तैषां मृषायते नेदं सर्पतुण्डं किन्तु वृन्दावनश्रीरिति प्रतीतिर्भवतीति विचिन्त्य किञ्च न केवलं सर्पोऽपि किन्त्वघनामकं रक्ष इति विदित्वा कुतः अखिलभूतहृदिस्थितःपरमात्मत्वेन सर्वज्ञत्वात् स्वानां स्वांस्तान् निरोद्धुं वारयितुं मनोदधे॥ २५॥

**भावानुवाद**—*'इत्थं मिथः अतज्ज्ञ भाषितम्'*—अघासुरके विषयमें अनजान ग्वालबालोंकी परस्पर असत्य बातोंको सुनकर कृष्णने विचार किया कि यह वास्तवमें ही अजगरका मुख है, पर हाय! हाय! मेरे सखा तो इसे वृन्दावनकी शोभारूपी एक विशेष गुफा ही समझ रहे हैं। और फिर यह तो सर्प भी नहीं है, यह तो अघासुर नामका एक राक्षस है। यदि कहो कि श्रीकृष्णने यह कैसे समझ लिया? इसके लिए कहते हैं—*'अखिलभूतहृतस्थितः'*—जो समस्त प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामीरूपमें स्थित होनेके कारण सर्वज्ञ हैं, ऐसे श्रीकृष्णने सर्पके मुखमें प्रवेश करनेके लिए तैयार अपने सखाओंको रोकनेकी इच्छा की॥ २५॥

**तावत् प्रविष्टास्त्वसुरोदरान्तरं,**
**परं न गीर्णाः शिशवः सवत्साः।**
**प्रतीक्षमाणेन बकारिवेशनं,**
**हतस्वकान्तस्मरणेन रक्षसा॥ २६॥**

**अन्वयः**—तावत् (तब तक) सवत्साः (बछड़ोंके साथ) शिशवः (गोपबालकगण) असुरोदरान्तरं प्रविष्टाः (असुरके उदरमें प्रविष्ट हो गये) परं (किन्तु) हतस्वकान्तस्मरणेन (कृष्णके द्वारा वध किये गये अपने भाई-बहनका स्मरणकर) बकारिवेशनं प्रतीक्षमाणेन रक्षसा (वह राक्षस अपने मुखमें कृष्णके प्रवेशकी प्रतीक्षा करने लगा) न गीर्णाः (उसने बालकोंको निगला नहीं)॥ २६॥

**अनुवाद**—श्रीकृष्ण मन-ही-मन इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि उसी समय बछड़े और बालक सभी अघासुरके मुखमें प्रवेश कर गये, परन्तु अघासुरने अपने भाई और बहनके प्राणनाशकारी कृष्णके अपने मुखमें आनेकी प्रतीक्षामें अपने मुखको बन्द नहीं किया॥ २६॥

**सारार्थदर्शिनी**—यावन्मनो दधे तावत् असुरस्योदरमध्यं प्रविष्टाः किन्तु न गीर्णा रक्षसा न गिलिता जीर्णा इति पाठेऽपि स एवार्थ इति स्वामिचरणाः। कीदृशेन हतौ स्वकौ बकीबकौ अन्तरन्तःकरणेन स्मरतीति तथा तेन अतएव बकारेः कृष्णस्य प्रवेशं प्रतीक्षमाणेन न चात्र भगवतः सत्यसङ्कल्पता व्यभिचरति स्मेत्या शङ्कनीयम्। अस्मान् किमत्र ग्रसिता निविष्टानयं तथा चेद्बकवद्विनङ्क्ष्यति इति तद्भक्तसङ्कल्पस्याप्यत्र वर्तमानत्वात् मत्सङ्कल्पमद्भक्तसङ्कल्पयोर्मध्ये मद्भक्तसङ्कल्पस्यैव गरीयस्त्वमिति भक्तवश्येन भगवतैव प्राक् कृताया मर्यादायास्तथा लीलाशक्तेश्च सर्वोपमर्द्दिन्याः सर्वदा जागरूकत्वात्॥ २६॥

**भावानुवाद**—जब तक कृष्ण उन्हें निषेध करते, उसके पहले ही सभी सखा बछड़ोंके साथ अघासुरके मुखमें प्रवेश कर गये। परन्तु *'परं न गीर्णाः'*—अघासुरने उन सबको निगला नहीं। *'न जीर्णाः'*—श्रीधर स्वामिपादके अनुसार इस पाठान्तरका भी ऐसा ही अर्थ है। अघासुरने उन्हें निगला क्यों नहीं? इसके लिए कह रहे हैं—*'हतस्वकान्त-स्मरणेन'* वह अघासुर अर्थात् अघ नामका राक्षस अपने आत्मीय भ्राता

बकासुर और बहन पूतनाके निधनका स्मरणकर, उनके शत्रु कृष्णके अपने मुखमें प्रवेश करनेकी प्रतीक्षा कर रहा था। यहाँपर श्रीभगवान्‌की सत्य सङ्कल्पता शक्ति स्तब्ध हुई है—ऐसी आशङ्का नहीं की जा सकती, क्योंकि इधर सखाओंका सङ्कल्प था (श्लोक २४) कि इस अजगरके मुखमें प्रवेश करनेपर यदि यह हमें निगलेगा, तो कृष्ण इसे बकासुरकी भाँति मार डालेगा—इस प्रकारसे उनके भक्तोंका सकल्प यहाँ विद्यमान है। मेरे सङ्कल्प और मेरे भक्तोंके सङ्कल्पमें मेरे भक्तोंका सङ्कल्प ही श्रेष्ठ है, अतः भक्तके सङ्कल्पको भगवान् अवश्य ही पूर्ण करते हैं, यह मर्यादा या नियम भक्तवश्य भगवान्‌ने पहलेसे ही बना रखा है एवं सबको दमन करनेवाली लीलाशक्ति भी उस विषयमें सर्वदा सजग रहती है। अतएव भगवान्‌की सत्यसङ्कल्पताका कभी व्यतिक्रम नहीं होता है॥ २६॥

**तान् वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो,**
**ह्यनन्यनाथान् स्वकरादप्यच्युतान्।**
**दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान्,**
**घृणार्द्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः॥ २७॥**

**अन्वयः**—अनन्यनाथान् (कृष्णके एकान्त अनुगत एवं) स्वकरात् (अपने हाथोंसे) अपच्युतान् (निकलकर दूरमें गये हुए) मृत्योः (मृत्युतुल्य अघासुरके) जठराग्निघासान् (बाह्य आगमें जैसे घास जल जाती है, वैसे ही उसकी जठराग्निमें जलते हुए) दीनान् तान् (उन दीन बालकोंको) वीक्ष्य (देखकर) घृणार्द्दितः (दयासे द्रवित होकर) सकलाभयप्रदः कृष्णः (सबके अभय प्रदाता श्रीकृष्ण) दिष्टकृतेन विस्मितः (अपनी लीलाशक्तिके अनुकूल कालके प्रभावसे या अघासुरके मुखमें प्रवेश रूप कार्यसे आश्चर्ययुक्त हो गये)॥ २७॥

**अनुवाद**—सम्पूर्ण रूपसे अपने शरणागत गोपबालकोंको जब कृष्णने अपने हाथोंसे निकल जाते और साक्षात् मृत्युस्वरूप अघासुरकी जठराग्निमें बाह्य अग्निमें सूखी घासकी भाँति जलते हुए देखा, तो उनकी ऐसी दयनीय अवस्था देखकर समस्त जीवोंको अभय प्रदानकारी व्रजराजनन्दन कृष्णका हृदय दयासे द्रवित हो गया। अपनी

लीलाशक्तिके अनुकूल कालके प्रभावसे वे बड़े आश्चर्यचकित हुए॥ २७॥

**सारार्थदर्शिनी**—स्वकरादिव महामणीनिव अपच्युतान्। मृत्योरघासुरस्य जठराग्नौ घासान् तृणवत्पतनोन्मुखान् वीक्ष्य घृणया कृपया अर्दितः पीडितः दिष्टकृतेन लीलाशक्त्यनुकूलकालकृतेन तत्प्रवेशकर्मणा विस्मितः *"कालादिष्टोप्यनेहापि"* इत्यमरः। अहो न तावदेषां प्रारब्धकर्म न सम्भवति न च तद्विनाप्यत्र कर्मण्यन्तर्य्यामी प्रवर्तयेत् तस्य मत्स्वरूपत्वेन मत्प्रातिकूल्यानर्हत्वाच्च तस्मात् मत्सहचरानप्येतादृशीं दुरवस्थां दर्शयन्त्या मत्प्रातिकूल्येप्यशङ्कमानायाः प्रेमपूर्णं मां करुणरस निमग्नी कर्तुकामाया मदीय लीलाशक्तेरेवेदं कर्ममयी लीला पुरुषोत्तमे रसमयमूर्तौ तस्या एवैतावत्प्रभविष्णुत्वमिति बन्धुविच्छेदशोकार्तत्वेऽपि विस्मयेनेषत् स्तिमितोऽभूदित्यर्थः॥ २७॥

**भावानुवाद**—*'स्वकरात्'*—अपने हाथोंसे विच्युत महामणिकी भाँति अनन्य शरणागत ग्वालबालोंको अपने हाथोंसे च्युत होकर मृत्युरूपी अघासुरके जठरानलमें सूखी घासकी भाँति गिरते हुए देखकर सबके अभय-प्रदाता श्रीकृष्ण दयापरवश हो गये तथा लीलाशक्तिके अनुकूल कालके द्वारा संघटित कार्यको देखकर अतिशय विस्मित भी हुए।

अमरकोषमें 'काल' शब्दसे सामान्य काल, दिष्ट और अनेहा अर्थात् चेष्टा नहीं करनेको कहा गया है। विस्मयका कारण बता रहे हैं—अहो! इन गोपबालकोंका कोई प्रारब्ध कर्म सम्भव नहीं है तथा उसके अतिरिक्त अन्य किसी कर्ममें अन्तर्यामी प्रवर्त्तित नहीं होते। पुनः वे अन्तर्यामी मेरा ही स्वरूप होनेके कारण मेरे विरूद्ध आचरण नहीं कर सकते। अतएव मेरे सहचर ग्वालबालोंकी ऐसी दुर्दशा दिखाकर मेरे प्रातिकूल्यकी भी चिन्ता न कर प्रेमपूर्ण मुझे करुणरसमें निमज्जित करनेके लिए मेरी लीलाशक्तिका ही यह कार्य है। इसका कारण है कि लीलापुरुषोत्तम रसमय-मूर्त्ति मुझपर लीलाशक्तिका ही ऐसा प्रभुत्व है। इसलिए बन्धु-विच्छेदसे उदित शोक द्वारा दुखित होनेपर भी कृष्ण थोड़े-से विस्मित भी हो गये—यह भावार्थ है॥ २७॥

**कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनं,**
**न वा अमीषाञ्च सतां विहिंसनम्।**

**द्वयं कथं स्यादिति संविचिन्त्य,**
**ज्ञात्वाविशत् तुण्डमशेषदृग्धरिः ॥ २८ ॥**

**अन्वयः**—अत्र किं कृत्यं (अब क्या करना चाहिये) अस्य खलस्य जीवनं (इस दुष्टके जीवनका नाश हो) अमीषां सतां (साधु-बालकोंका) विहिंसनम् (विनाश) न वा (नहीं हो) द्वयं (ये दोनों कार्य) कथं स्यात् (किस उपायसे हों) इति संविचिन्त्य ज्ञात्वा (ऐसा विचारकर उसका उपाय निश्चयकर) अशेषदृक् हरिः (अनन्त दृष्टिसम्पन्न हरि) तुण्डं अविशत् (उसके मुखमें प्रवेश कर गये) ॥ २८ ॥

**अनुवाद**—"अब मैं क्या करूँ!" इस खल स्वभाववाले अघासुरका वध और सरलमति बछड़ों और बालकोंकी प्राणरक्षा—ये दोनों कार्य किस प्रकार सम्भव होंगे? इस प्रकार चिन्ता करते हुए सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा श्रीहरि तत्क्षणात् उसका उपाय निर्द्धारणकर स्वयं असुरके मुखमें प्रवेश कर गये ॥ २८ ॥

**सारार्थदर्शिनी**—अत्र सङ्कटे किं कृत्यम्? अस्य खलस्य जीवनं न स्यात्। वै निश्चितम्। अमीषां विहिंसनं च न स्यात् इति। द्वयं कथं स्यादिति विचिन्त्य तत्र सहसैवोपायं ज्ञात्वा तुण्डमविशत्। यतोऽशेषदृक् एवं कृते सत्येवं भविष्यतीति भावि सर्वं पश्यतीति सः स्वभक्तविपदः खलजीवनसंसारयोश्च हरणाद्धरिः ॥ २८ ॥

**भावानुवाद**—इस सङ्कटमें मुझे क्या करना चाहिये? इस दुष्टकी मृत्यु भी हो जाय और साधु-सखाओंकी रक्षा भी हो जाय—ये दोनों कार्य किस प्रकार हो सकते हैं? ऐसा सोचकर कृष्णने सहसा उसका उपाय भी निकाल लिया। तब वे अघासुरके मुखमें प्रविष्ट हो गये। *'अशेषदृक्'*—सर्वदर्शी, अर्थात् ऐसा कार्य करनेसे उसका परिणाम क्या होगा जो यह सब जानते हैं। *'हरिः'*—भक्तोंके सङ्कटों और दुष्टोंके जीवन और संसार (आवागमन) का जो हरण करते हैं, वे ही हरि हैं ॥ २८ ॥

**तदा घनच्छदा देवा भयाद्धाहेति चुक्रुशुः।**
**जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबान्धवाः ॥ २९ ॥**

**अन्वयः**—तदा (कृष्णका उसके मुखमें प्रवेश देखकर) घनच्छदाः (बादलोंकी आड़में) देवाः भयात् (छिपे देवता कृष्णके नाशकी आशङ्कासे) हा हा इति चुक्रुशुः (हा-हाकार कर उठे) [तथा] ये च अघ बान्धवाः कंस्याद्याः कौणपाः (जो अघासुरके बान्धव कंस आदि राक्षस) ते जहृषुः (वे सभी आनन्दित होने लगे)॥ २९॥

**अनुवाद**—श्रीकृष्णको अघासुरके मुखके भीतर प्रवेश करते हुए देखकर बादलोंकी आड़में स्थित देवतागण भयसे हा-हाकार करने लगे तथा अघासुरके परम बान्धव कंस आदि असुरगण इस संवादको पाकर बड़े आनन्दित हुए॥ २९॥

**सारार्थदर्शिनी**—घनच्छदा मेघान्तरिताः कंसस्याघस्य च भयात् हा हेति भगवत्यनिष्टाशङ्कया देवानामैश्वर्यज्ञानेऽपि भक्तत्वात् भक्तेश्च प्रीत्यात्मकत्वात् प्रीतेश्च विवेकहरस्वभावत्वात् कंसाद्या जहृषुरिति चरद्वारा सद्य एव वार्ताज्ञानात्। कौणपाः राक्षसाः अघासुरभ्रातुः पुत्रादयः॥ २९॥

**भावानुवाद**—*'घनच्छदाः'*—तब बादलोंकी आड़में स्थित देवतागण कंस और अघासुरके भयसे तथा श्रीकृष्णके अनिष्टकी आशङ्कासे हा-हाकार करने लगे। यद्यपि देवताओंमें कृष्णके ऐश्वर्यका ज्ञान रहता है, तथापि वे भक्त है। भक्ति प्रीत्यात्मक है एवं प्रीतिका स्वभाव ही है कि वह विवेकको हर लेती है, अतः भगवान्‌के सम्बन्धमें उनकी ऐसी आशङ्का स्वाभाविक ही है। *'कंसाद्याः'*—उसी समय अनुचरोंसे संवाद प्राप्तकर कंस आदि दैत्यगण एवं *'कौणपाः'*—अघासुरके भाईके पुत्र आदि राक्षसगण आनन्दित हुए॥ २९॥

**तत् श्रुत्वा भगवान् कृष्णस्त्वव्ययः सार्भवत्सकम्।**
**चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा ववृधे गले॥ ३०॥**

**अन्वयः**—तत् श्रुत्वा (उन देवताओंके विषाद और असुरोंके आनन्दकी ध्वनि सुनकर) भगवान् कृष्णः अव्ययः (अविनश्वर भगवान् कृष्ण) तु सार्भ वत्सकं आत्मानं (बछड़ों और बालकोंके साथ अपनेको) चूर्णी चिकीर्षोः (चूर्ण करनेके अभिलाषी उस दैत्यके) गले (गलदेशमें) तरसा (अति वेगके साथ) ववृधे (बढ़ने लगे)॥ ३०॥

**अनुवाद**—देवताओंका हा-हाकार शब्द और असुरोंकी आनन्दध्वनि सुनकर अविनाशी भगवान् श्रीकृष्ण, बछड़ों और बालकोंको चूर्ण-विचूर्ण करनेके अभिलाषी उस अघासुरके गलेमें जाकर तेजीसे बढ़ने लगे॥ ३०॥

**सारार्थदर्शिनी**—तत् साधूनां शोकजल्पनमसाधूनां हर्षजल्पनं च श्रुत्वा अभैर्वत्सश्च सहितमात्मानं श्यामसुन्दर स्वरूपम् ऊदरस्थीकृत्य चूर्णीचिकीर्षोरस्य गले ववृधे तावेव शोकहर्षौ वैपरीत्येन श्रोतुमिति भावः। ननु, शकटतृणावर्तवध दामबन्दनादिलीलायां स्तोकेनैव बालवपुषा किञ्चिदप्यवर्द्धमानेन तत्तद्व्याप्तिचञ्चो स्वयं भगवतो विभोरस्य किमघासुर कण्ठरन्ध्रव्याप्तिरशक्त्या यतो ववृधे इत्युच्यते सत्यम्। तत्र तत्र नरबाललीलत्वलक्षणमाधुर्यस्य विस्मय रसाधायकस्य भक्तजनलोचना-स्वाद्यत्वादलौकिकं तादृशत्वमेव समुचितम्। अत्र तु तादृशमाधुर्यग्राहकद्रष्टृजनाभावात् स्वयं भगवतापि तेन लौकिक्येव रीतिरालम्बे इति जानीमः॥ ३०॥

**भावानुवाद**—इस प्रकार साधु-देवताओंका हा-हाकार और असाधु-दैत्योंकी हर्ष-ध्वनि सुनकर अव्यय-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, ग्वालबालों और बछड़ोंके सहित श्यामसुन्दर-स्वरूप अपनेको उदरमें लेकर चूर-चूर करनेके अभिलाषी उस अघासुरके गलेमें अचानक बढ़ने लगे।

यदि कहो कि शकटासुर और तृणावर्तका वध तथा दाम-बन्धन आदि लीलामें श्रीकृष्णने क्षुद्रतर बाल-स्वरूपको तनिक भी न बढ़ाते हुए लीलाका सम्पादन किया, अतः सर्वसमर्थ भगवान् होकर उन्होंने अघासुर वधके समय अपनेको क्यों बढ़ाया? इसके उत्तरमें कहते हैं—यह सत्य है। उन-उन लीलाओंमें नर-बालकोचित लीला-माधुर्यमें विस्मयरस प्रकाशकर भक्तोंके नेत्रोंका आस्वादन हेतु वैसी आलौकिक लीला समुचित ही है। परन्तु यहाँपर वैसे माधुर्यरस आस्वादनके उपयुक्त भक्तोंका अभाव होनेसे स्वयं-भगवान्ने भी लौकिक रीति (शठके प्रति शठता) का अवलम्बन किया—ऐसा जानना होगा॥ ३०॥

**ततोऽतिकायस्य निरुद्धमार्गिणो,**
**ह्युद्गीर्णदृष्टेर्भ्रमतस्त्वितस्ततः ।**
**पूर्णोऽन्तरङ्गे पवनो निरुद्धो,**
**मूर्द्धान् विनिर्भिद्य विनिर्गतो बहिः॥ ३१॥**

**अन्वयः**—ततः (कृष्ण द्वारा अपनेको वर्द्धित करनेपर) अतिकायस्य (उस विशाल शरीर असुरका) निरुद्धमार्गिणः (मुख आदि सबकुछ अवरुद्ध हो गया) उद्गीर्णदृष्टेः (नेत्र भी बाहर निकल आये) इतस्ततः भ्रमतः (इधर-उधर तड़पते हुए उस दैत्यके) अन्तरङ्गेः (शरीरमें) पवनः निरुद्धः (प्राणवायु निरुद्ध होकर) पूर्णः मूर्द्धान् (मस्तकस्थित ब्रह्मरन्ध्रको) विनिर्भिद्य (भेदकर) बहिः विनिर्गतः (बाहर निकल गयी)॥ ३१॥

**अनुवाद**—श्रीकृष्ण द्वारा अपने वपुको बढ़ाने और उसके गलेमें अटक जानेसे विशाल अजगर देहधारी अघासुरका कण्ठ रुद्ध हो गया और उसकी दोनों आँखें बाहर निकल आयीं। तब वह अपनी पूँछको इधर-उधर पछाड़ने लगा और उसके शरीरमें स्थित प्राणवायु ब्रह्मरन्ध्रको भेदकर तत्क्षणात् बाहर निकल गयी॥ ३१॥

**सारार्थदर्शिनी**—निरुद्धो मुखादीनां मार्गभूतः कण्ठो यस्यास्ति तस्य उद्गीर्णदृष्टेर्बहिर्निर्गत लोचनस्य अन्तरङ्गे देहमध्ये निरुद्धः पवनः प्राणवायुः निर्गमनाभावात् पूर्णः। मुर्द्धन् मुर्द्धनि स्थितं ब्रह्मरन्ध्रं निर्भिद्य बहिर्गतः॥ ३१॥

**भावानुवाद**—*'ततः'*—श्रीकृष्णका वपु बढ़नेके कारण अत्यन्त विशाल शरीरवाले अघासुरका गला रुद्ध हो गया, फलस्वरूप उसकी दोनों आँखें भी बाहर निकल आयीं। *'अन्तरङ्गे'*—शरीरमें रुकी प्राणवायुके लिए निकलनेका रास्ता नहीं रहनेपर वह *'मूर्द्धन्'*—ब्रह्मरन्ध्रको भेदकर बाहर निकल गयी॥ ३१॥

**तेनैव सर्वेषु बहिर्गतेषु,**
**प्राणेषु वत्सान् सुहृदः परेतान्।**
**दृष्ट्या स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुन-**
**र्वक्त्रान्मुकुन्दो भगवान् विनिर्ययौ॥ ३२॥**

**अन्वयः**—तेन एव (मस्तकके छिद्रपथसे) सर्वेषु प्राणेषु बहिर्गतेषु (समस्त प्राणोंके निकलनेपर) परेतान् (मृत) वत्सान् (बछड़ोंको) सुहृदः (तथा ग्वालबालकोंको) स्वया (अपनी) दृष्ट्या (दृष्टिके द्वारा) उत्थाप्य (पुनर्जीवितकर) पुनः तदन्वितः (फिर उन्हें साथ लेकर)

भगवान् मुकुन्दः वक्त्रात् (भगवान् मुकुन्द असुरके मुँहसे) विनिर्ययौ (निकलकर आये)॥ ३२॥

**अनुवाद**—मस्तकके छिद्रपथसे अघासुरकी प्राणवायु निकलनेके साथ-साथ उसकी सम्पूर्ण इन्द्रियशक्ति विलुप्त हो गयी। मुक्तिदाता भगवान् श्रीमुकुन्द भी मृतप्राय (निर्जीव) बछड़ों और बालकोंको अमृतदृष्टिके द्वारा सञ्जीवितकर उनके साथ अघासुरके मुखसे बाहर निकल आये॥ ३२॥

**सारार्थदर्शिनी**—परेतान् स्वविरहतज्जाठरानलयोर्ज्वालया मूर्च्छितान् दृष्ट्या अमृतवर्षिण्या॥ ३२॥

**भावानुवाद**—*'परेतान्'*—अपने विरहमें और अघासुरके जठरानलकी तीव्र ज्वालासे मूर्च्छित गोपबालकों और बछड़ोंको अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टि द्वारा सचेतनकर भगवान् मुकुन्द उनके साथ-साथ अघासुरके मुखसे बाहर निकल आये॥ ३२॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—अघासुरको विशाल देहधारी अजगरकी आकृतिमें देखकर जब गोपबालक उसे वृदावनकी शोभा समझकर सूर्यकी किरणोंसे रक्तवर्ण मेघमाला, पर्वतकी चोटी, गुफा, वनपथ आदिके साथ उसके शरीरके अङ्गोंकी तुलना कर रहे थे, उस समय कृष्ण उनसे कुछ ही दूरीपर रहकर उनकी बातोंको सुन रहे थे। उसके पश्चात् बालकोंने जब अघासुरके मुखमें प्रवेश करनेका विचारकर एकबार कृष्णके मुखकी ओर देखा, तब कृष्ण उन्हें अपने निकट आनेके लिए हाथ उठाकर बुलाना चाहते थे, परन्तु ठीक उसी समय वे ताली बजाते हुए अघासुरके खुले हुए मुखमें प्रवेश कर गये। अतः कृष्ण उन्हें रोक नहीं सके।

भगवान् जब भी जो कुछ इच्छा करते हैं, उनकी सत्यसङ्कल्पता शक्तिके प्रभावसे तब वही संघटित होता है। इसलिए शास्त्रोंमें इच्छामय, सत्यसङ्कल्प आदि नामोंसे उनका गुणगान किया गया है। किन्तु सखाओंको अघासुरके मुखमें जानेसे रोकनेकी कृष्णकी प्रबल इच्छा होनेपर भी उनकी सत्यसङ्कल्पता शक्ति प्रकाशित क्यों नहीं

हुई? इसके उत्तरमें कह रहे हैं कि यदि उनकी सत्यसङ्कल्पता शक्तिके प्रभावसे गोपबालक अघासुरके मुखमें प्रवेश न कर कृष्णके पास लौट आते, तो कृष्णकी अघासुरवध लीला संघटित नहीं होती। अतः इस असुरवध-लीलामें बाधा पहुँचेगी—यह जानकर ही भगवान्‌की सत्यसङ्कल्पता शक्ति प्रकाशित नहीं हुई। भगवान्‌की सर्वज्ञता, सत्यसङ्कल्पता, विभुता, सर्वान्तर्यामिता आदि समस्त शक्तियाँ उनकी लीलाशक्ति और कृपाशक्तिके अधीन हैं। लीला या कृपाको प्रकाशित करनेके लिए प्रयोजनके अनुरूप उनकी सर्वज्ञता आदि शक्तियोंका प्रकाश होता है। उनकी असुरवधरूप लीलामें बाधा न पड़े, इसलिए सत्यसङ्कल्पशक्ति वहाँपर शान्त रही। गोपबालकोंने इसी असुरवधरूपी लीलाशक्तिके प्रभावसे अघासुरके मुखमें प्रवेश किया।

गोपबालक बछड़ोंके साथ अघासुरके मुखमें प्रवेशकर उसके गलेसे होकर छातीके मध्यभाग तक पहुँच गये तथा शरीरके अन्दरकी गर्मीसे वे दग्धप्राय होकर मन-ही-मन सोचने लगे—"हाय! हाय! अब हमारी मृत्यु हो जायेगी। अब हमें कभी भी कृष्णका दर्शन नहीं होगा।" यह समझकर वे कृष्णके विरह-दुःखमें अधीर होकर मृतप्राय (मूर्च्छित) हो गये। इधर अघासुरने देखा कि सभी बछड़े और गोपबालक तो उसके मुखके अन्दर प्रविष्ट हो गये हैं, किन्तु जिस कारण वह मथुरासे वृन्दावन आया है और बहुत देरसे अजगरका रूप धारणकर मुख खोलकर चुपचाप पड़ा हुआ है, उसकी बहन पूतना और भाई बकासुरका वध करनेवाला कृष्ण अभी तक उसके मुखमें प्रविष्ट नहीं हुआ है। अतः केवल बछड़ों और सखाओंको निगलनेसे क्या लाभ होगा? इसलिए उसने कृष्णकी प्रतीक्षामें मुख बन्द नहीं किया।

नन्दनन्दन कृष्ण कुछ दूरीपर खड़े होकर बछड़ों और ग्वालबालोंको अघासुरके मुखमें प्रविष्ट हुआ देखकर अत्यन्त विस्मित हुए। वे मन-ही-मन सोचने लगे—"हाय! मैं कैसे इनकी रक्षा करूँ? ये तो साक्षात् मृत्युस्वरूप अघासुरकी जठराग्निमें स्वयं ही सूखी घासकी भाँति गिर गये हैं। अब मैं क्या करूँ, ये बछड़े और ग्वालबाल मेरे अतिरिक्त दूसरे किसीको नहीं जानते, इनका दृढ़

विश्वास है कि कैसी भी विपत्ति क्यों न आ जाय, कृष्ण हमारी रक्षा करेगा।" इस प्रकार अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डोंके समस्त जीवों और वस्तुओंके बाहर-भीतर जिनकी अबाध दृष्टि है, ऐसे सर्वद्रष्टा, सर्वसाक्षी, सर्वान्तर्यामी स्वयं भगवान् नन्दनन्दन, गोपबालकोंकी रक्षा करनेके लिए अत्यन्त व्याकुल हो गये। वे सोचने लगे कि सखाओंके प्राणोंकी रक्षा तथा अघासुरका विनाश दोनों कार्य किस प्रकार सिद्ध हो सकते हैं। इस विषयमें बहुत सोचनेपर भी उन्हें कोई उपाय नहीं सूझा। अन्तमें वे अपने प्रिय सखाओं तथा बछड़ोंकी रक्षाके लिए स्वयं भी उसके मुखमें प्रविष्ट हो गये। यद्यपि वे चाहते तो उनकी इच्छामात्रसे उनकी सत्यसङ्कल्पता शक्ति ही सखाओं तथा बछड़ोंकी रक्षा तथा अघासुरका विनाश करनेमें समर्थ थी। परन्तु भक्तवात्सल्यके कारण वे इतने अधीर हो गये कि स्वयं ही अघासुरके मुखमें प्रवेशकर गये।

उधर अघासुरको वृन्दावनमें आया हुआ देखकर देवतागण अत्यन्त भयभीत होकर स्वर्ग छोड़कर बादलोंकी आड़में छिपे हुए थे एवं गुप्त रूपसे उसकी सभी क्रियाओंको देख रहे थे। उसके भयङ्कर अजगर रूपको देखकर वे डरके मारे काँप रहे थे। गोपबालकों और बछड़ोंके उसके मुखके अन्दर प्रवेश करनेपर वे पूर्णतः किङ्कर्त्तव्यविमूढ़ हो गये थे। उनकी धारणा थी कि भगवान् श्रीकृष्ण निश्चय ही इस विपत्तिको दूर कर देंगे। परन्तु जब उन्होंने देखा कि श्रीकृष्णने कुछ भी नहीं किया, अपितु बालकोंकी भाँति स्वयं भी वे उसके मुखमें प्रविष्ट हो गये, तब तो देवगण धैर्य खो बैठे। यद्यपि श्रीकृष्णकी अचिन्त्यशक्तिके विषयमें देवताओंको पर्याप्त ज्ञान था, फिर भी उनकी इस भक्त-वात्सल्य रीतिको देखकर देवताओंकी ऐश्वर्य-बुद्धि लुप्त हो गयी, इसलिए वे हा-हाकार करने लगे।

अघासुरके साथ जितने भी असुर-राक्षस आदि वृन्दावनमें आये थे और अघासुरके आदेशानुसार आकाशमें स्थित थे, जब उन्होंने देखा कि गोपबालक और बछड़े तो बहुत देर पहले ही अघासुरके मुखके ग्रास बन चुके हैं, अब नन्दनन्दन भी अघासुरके मुख-गह्वरमें प्रवेश कर गया, तो वे अत्यन्त आनन्दित हो गये। वे विचार करने

लगे कि अब हमारे महाराज कंस निर्भय और निष्कण्टक हो जायेंगे। पूतना, शकटासुर, तृणावर्त, वत्सासुर, बकासुर आदि व्रजमें आकर विशेष प्रयास करके भी नन्दनन्दनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सके, अपितु वे अपने ही प्राण खो बैठे। परन्तु उस असुरकुल-विनाशक नन्दनन्दनको असुरश्रेष्ठ अघासुरने बिना प्रयासके ही अपने उदरमें भर लिया। इसलिए असुर, राक्षस आदि परमानन्दमें विभोर होकर विविध प्रकारसे आनन्दध्वनि करते हुए कंसको यह शुभ समाचार देनेके लिए तीव्रगतिसे मथुराकी ओर दौड़ पड़े।

इधर कृष्ण अघासुरके गलेमें जाकर अटक गये और अपने शरीरको बढ़ाने लगे जिसके कारण उसका गला ही रुद्ध हो गया। देखते-देखते उसकी दोनों आँखें भी बाहर निकल आयीं। उस समय वह विशाल अजगररूपी असुर व्याकुल होकर बुरी तरहसे छटपटाने लगा। उसकी साँस रुक जानेके कारण सारे शरीरमें भर गयी तथा अन्तमें उसकी प्राणवायु ब्रह्मरन्ध्रको फोड़कर बाहर निकल गयी।

प्राणवायु निकलनेके साथ-ही-साथ अघासुरकी सारी इन्द्रियशक्ति भी लुप्त हो गयी। इस प्रकार वह स्वयं ही मृत्युके मुखमें जा गिरा। तब हतारिगतिदायक और भक्तजन-परिपालक श्रीकृष्णने अपनी अमृतमयी दृष्टिसे ग्वालबालों और बछड़ोंको जीवित कर दिया और सबके साथ अघासुरके मुखसे बाहर निकल आये। इस प्रकार अखिलब्रह्माण्डपति, भक्तवत्सल नन्दनन्दन श्रीकृष्ण दुष्टोंके दमन और साधुओंके पालनकी लीला प्रकाशितकर देवताओं और गोपबालकोंका आनन्दवर्द्धन करने लगे॥ २५-३२॥

**पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं मह-**
**ज्ज्योतिः स्वधाम्ना ज्वलयद्दिशो दश।**
**प्रतीक्ष्य खेऽवस्थितमीशनिर्गमं,**
**विवेश तस्मिन् मिषतां दिवौकसाम्॥ ३३॥**

**अन्वयः**—पीनाहिभोगोत्थितं (विशाल सर्प शरीरसे निकलकर) अद्भुतं महत् ज्योतिः (एक अद्भुत ज्योति) स्वधाम्ना (अपने प्रभावसे) दशदिशः ज्वलयत् (दस दिशाओंको उद्भासित करती हुई) ईशनिर्गमं

(कृष्णके निकलनेकी) प्रतीक्ष्य (प्रतीक्षा करती हुई) खे (आकाशमें) अवस्थितं (अवस्थित थी) ईशनिर्गमं (कृष्णके निकलनेके पश्चात्) मिषतां दिवोकसां (देखते-देखते देवताओंके सामने) तस्मिन् (उन श्रीकृष्णमें) विवेश (प्रविष्ट हो गयी)॥ ३३॥

**अनुवाद**—उस विशाल सर्पकी देहसे एक अद्भुत महा-ज्योति निकली, जिसके प्रभावसे दसों दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं। वह कृष्णके बाहर आनेकी प्रतीक्षा करती हुई आकाशमें ही स्थित रही। थोड़ी ही देरमें जब कृष्ण सर्पके मुखसे बाहर निकल आये, तब देवताओंके सम्मुख ही वह ज्योति उनके शरीरमें समा गयी॥ ३३॥

**सारार्थदर्शिनी**—ज्योतिरहिदेहे स्थितं शुद्धसत्त्वमयमिति श्रीस्वामिचरणाः तादृशदुष्टस्यापि तस्य मुक्तेःसर्वलोकप्रत्यायनार्थं जीवस्य निराकारत्वेऽपि तत्काल-प्राप्तभगवच्छक्त्यालिङ्गितत्वात्तथा दृश्यत्वमिति वैष्णवतोषण्यादयः। परब्रह्मणो व्यापकमहाज्योतिः स्वरूपमिव जीवस्यापि ज्योतिःस्वरूपं मायिकलोचनागम्यमपि तदानीं भगवता स्वेच्छयैव स्वस्वरूपमिव स्वस्यासुरमुक्तिप्रदायकत्व लक्षणगुणस्य सर्वलोक प्रत्यक्षीकरणार्थं दर्शितमित्येके प्रापात्मसाम्यमिति भागवतीं गतिमित्यु-परिष्टादुक्तेरघासुरः सारूप्यमुक्तिं प्राप। न तु सायुज्यमित्यतस्तत्क्षणप्राप्त तदीय चिन्मय देहज्योतिरेव तत्। देहस्तु ज्यातिर्भूयस्त्वात् द्रष्टुं शक्यो नाभूत्। भगवति प्रवेशस्तु सायुज्यप्रथावतोः शिशुपालदन्तवक्रयोरिव ज्ञेय इत्यपरे। मिषतां मिषत्सु सत्स्वपि अनादरे वा षष्ठी॥ ३३॥

**भावानुवाद**—*'महत् ज्योतिः'*—उस विशाल सर्पके स्थूलशरीरसे एक अत्यन्त अद्भुत शुद्धसत्त्वमय अनिर्वचनीय दिव्यज्योति बाहर निकलकर अपनी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई आकाशमें स्थित होकर श्रीकृष्णके बाहर आनेकी प्रतीक्षा करने लगी। श्रील श्रीधर स्वामिपाद कहते हैं कि यह ज्योति सर्पदेहमें स्थित शुद्ध सत्त्वमय है। श्रीवैष्णवतोषणी आदिमें कहा गया है कि ऐसे दुष्ट असुरकी मुक्तिके विषयमें समस्त लोगोंको विश्वास दिलानेके लिए ज्योतिस्वरूप जीवात्मा लोकदृष्टिमें अदृश्य होनेपर भी उस समय भगवान्‌की इच्छाशक्तिके प्रभावसे प्राकृत दृष्टिके गोचरीभूत हुई थी।

कुछ लोग कहते हैं—परब्रह्म जैसे व्यापक और महाज्योतिर्मय हैं, जीव भी वैसे ही हैं। अतएव उनका रूप मायिक दृष्टिके

गोचरीभूत नहीं होता। फिर भी भगवान् स्वेच्छासे जैसे अपना स्वरूप दिखाते हैं, वैसे ही असुर-मुक्तिप्रदायकत्व लक्षण (हतारिगतिदायकत्वरूप) अपना गुण दिखानेके लिए उन्होंने उस ज्योतिको मायिक नेत्रोंके भी गोचरीभूत कराया था।

*'प्रापात्मसाम्यम्'* (३८वें श्लोकमें)—अघासुर आत्मसाम्य अर्थात् भगवान्‌के समान रूपको (सारूप्यमुक्तिको) प्राप्त हुआ था। एवं अगले श्लोकमें भी *'भागवतीं गतिम्'*-भागवती गति प्राप्त की थी—ऐसा वर्णन होनेसे स्पष्ट है कि अघासुरने सारूप्यमुक्ति पायी थी, सायुज्यमुक्ति नहीं। अतएव वह ज्योति अघासुरको उसी समय प्राप्त हुई उसके चिन्मय देहकी दिव्य ज्योति थी। परन्तु वह देह ज्योतिर्मय होनेके कारण दिखायी नहीं पड़ी।

कुछ लोग कहते हैं कि श्रीकृष्णके शरीरमें वह ज्योति प्रविष्ट हुई थी। ऐसा वर्णन शिशुपाल और दन्तवक्रकी भाँति तात्कालिक अर्थात् उस समयके लोगोंकी प्रतीतिमात्र थी। *'मिषताम्'*—दर्शनकारी देवताओंके सामने ही, अथवा अनादरके अर्थमें षष्ठी विभक्ति हुई है, अर्थात् देवताओंकी उपेक्षा करके ही वह ज्योति श्रीकृष्णके अङ्गोंमें प्रवेश कर गयी॥ ३३॥

**तथ्य**—ज्योति अर्थात् सर्पशरीरमें स्थित शुद्धसत्त्वमय स्वरूप। ऐसे दुष्ट असुरकी मुक्तिके विषयमें किसी-किसीको सन्देह हो सकता है। भगवान् श्रीकृष्णने उस सन्देहको दूर करनेके लिए तथा समस्त लोगोंका विश्वास उत्पन्न करनेके लिए अपनी शक्तिके प्रभावसे प्राकृत आकाररहित शुद्धजीवके स्वरूपको उस समयके अनुरूप प्राकृत दृष्टिके दर्शनयोग्य बना दिया था। परब्रह्म जैसे व्यापक और महाज्योतिर्मय हैं, जीव भी वैसे ही हैं। अतएव उनका अप्राकृत रूप मायिक नेत्रोंसे देखा नहीं जा सकता। फिर भी भगवान् जिस प्रकार स्वेच्छापूर्वक अपना स्वरूप दिखलाते हैं, वैसे ही असुरोंको मुक्ति प्रदानकारी हतारिगतिदायक—अपना गुण जगत्‌को दिखानेके लिए उन्होंने उस दिव्य ज्योतिको भी मायिक नेत्रोंके गोचरीभूत कराया था।

वह दिव्य ज्योति श्रीकृष्णके शरीरमें प्रविष्ट हो गयी। श्रीकृष्णमें प्रवेश—यह द्रष्टाओंकी तात्कालिक प्रतीतिमात्र है। यथार्थतः श्रीकृष्णके

असम्यक् प्रकाश ब्रह्ममें उसका प्रवेश हुआ था। (वैष्णवतोषणी) 'प्रवेश किया था'—यह कहनेसे सायुज्यमुक्तिको ही समझा जाता है, किन्तु अघासुरकी सायुज्यमुक्ति नहीं हुई है। इसका कारण है कि आगेके ३८वें श्लोकमें अघासुरकी आत्मसाम्य अर्थात् भगवान्के समान रूप प्राप्तिके विषयमें एवं उसके अगले श्लोकमें अघासुरकी भागवती गति प्राप्तिका वर्णन है। आत्मसाम्य और भागवती गति—इन दोनोंका अर्थ कभी भी सायुज्यमुक्ति नहीं हो सकता, अतएव अघासुरकी सारूप्यमुक्ति ही हुई थी, सायुज्य नहीं। अतएव महाज्योति कहनेसे अघासुरको तत्क्षण प्राप्त चिन्मय देहकी ज्योतिको ही समझना होगा। यदि ऐसा कहें कि वह ज्योति भगवान्में कैसे प्रविष्ट हुई? यह केवल सायुज्यका अनुकरणमात्र है। उदाहरणस्वरूप वैकुण्ठके द्वारपाल जय-विजयने तीन जन्मोंके पश्चात् भगवान्का सारूप्य प्राप्त किया था। जय-विजयका अन्तिम जन्म दन्तवक्र और शिशुपालके रूपमें हुआ था। इनके देह-पतनके समय इनके देहमें स्थित चिन्मय ज्योति भगवान्में प्रविष्ट हुई थी, फिर भी वे सारूप्य प्राप्त नित्य भगवत्-पार्षद हैं। यहाँपर अघासुरके विषयमें भी वैसा ही जानना होगा॥ ३३॥

**ततोऽतिहृष्टाः स्वकृतोऽकृतार्हणं,**
**पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्त्तनैः।**
**गीतैः सुगा वाद्यधराश्च वाद्यकैः,**
**स्तवैश्च विप्रा जयनिःस्वनैर्गणाः॥ ३४॥**

**अन्वयः**—ततः (दैत्यके विनाश होनेके पश्चात्) अतिहृष्टाः सुराः (अतिशय आनन्दित देवतागण) पुष्पैः (नन्दनकाननके पुष्पोंकी वर्षासे) अप्सरसः (स्वर्गकी अप्सराएँ) नर्त्तनैः (नृत्यके द्वारा) सुगाः गीतैः (गन्धर्वगण गानके द्वारा) वाद्यधराः च वाद्यकैः विप्राः च स्तवैः (वादकगण वाद्य आदिके द्वारा, ब्राह्मणगण स्तवके द्वारा) गणाः जय निःस्वनैः (गणदेवता लोग जय-जय शब्दके द्वारा) स्वकृतः (अपने कार्यके साधक श्रीकृष्णकी) अर्हणं (पूजा) अकृत (करने लगे)॥ ३४॥

**अनुवाद**—उस समय अत्यधिक आनन्दित होकर देवता पुष्प वर्षण करने लगे, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, सुगायक गन्धर्व आदि गान करने लगे, विद्याधरादि वाद्य बजाने लगे, ब्राह्मण स्तुति और भगवान्‌के भक्तगण जय-जयकार करते हुए अपने कार्यको पूर्ण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णका अभिनन्दन करने लगे॥ ३४॥

**सारार्थदर्शिनी**—स्वकृतः स्वस्रष्टुः श्रीकृष्णस्य अर्हणं पूजाम् अकृत अकुर्वत। सुष्ठु गायन्तीति सुगाः गन्धर्वादयः, वाद्यधरा विद्याधरादयः, विप्रा वसिष्ठादयः। गणाः गरुडायः॥ ३४॥

**भावानुवाद**—*'स्वकृतः अर्हणम् अकृत'*—देवताओंने अपने स्रष्टा श्रीकृष्णकी पूजा की। *'सुगाः'*—जो सुन्दर गान करते हैं—ऐसे गन्धर्वगण। *'विद्याधराः'*—विद्याधर आदि। *'विप्राः'*—वशिष्ठ आदि ब्राह्मण, *'गणः'*—श्रीगरुड़ आदि भक्तगण॥ ३४॥

**तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिका-**
**जयादिनैकोत्सवमङ्गलस्वनान् ।**
**श्रुत्वा स्वधाम्नोऽन्त्यज आगतोऽचिराद्-**
**दृष्ट्वा महीशस्य जगाम विस्मयम्॥ ३५॥**

**अन्वयः**—अजः (ब्रह्मा) स्वधाम्नः अन्ति (अपने धामके समीप) तदद्भुतस्तोत्र सुवाद्यगीतिका जयादिनैकोत्स्तव मङ्गलस्वनान् (उस अद्भुत स्तोत्र, गीत, वाद्य, जय आदिकी मङ्गलध्वनि) श्रुत्वा अचिरात् आगतः (सुनकर अतिशीघ्र वहाँपर उपस्थित हुए तथा) ईशस्य (कृष्णकी) महि (महिमा) दृष्ट्वा (देखकर) विस्मयं जगाम (विस्मित हो गये)॥ ३५॥

**अनुवाद**—जब अद्भुत स्तोत्रों, सुरम्य वाद्यों, मङ्गलगीतों, जय-जयकार और आनन्दोत्सवोंकी मङ्गलध्वनि ब्रह्माजीके निजधाम ब्रह्मलोक तक पहुँची, तो उस ध्वनिको सुनकर वे शीघ्र ही वहाँपर आये और श्रीकृष्णकी महिमाका दर्शन करके विस्मित हो गये॥ ३५॥

**सारार्थदर्शिनी**—अद्भुतस्तोत्राणि च सुवाद्यानि च गीतिकाः सुकुमारा गीतयश्च जयशब्दादयश्च नैकोत्सवा अनेकोत्सवा मङ्गलस्वनाश्च तान् स्वधाम्नः सत्यलोकस्य अन्ति निकट एव श्रुत्वेति महर्जनस्तपोलोकस्था अपि परम्परयैव

श्रुत्वा गीतादिकं चक्रुरिति ज्ञेयं। श्रुत्वा अजो बह्मैव अचिरात् सद्य एव अघासुरस्य ज्यातिवैकुण्ठं प्रति गच्छदेव ईशस्य महि महिमानं दृष्ट्वा आगतोऽन्यैरलक्ष्यमाणो वृन्दावनमेव। तत्र च ईशस्य महिमानं दृष्ट्वा विस्मयं प्राप॥ ३५॥

**भावानुवाद**—ब्रह्माजीने अपने धाम सत्यलोकके निकट अद्भुत स्तोत्र, उत्कृष्ट वाद्य, सुललित सङ्गीत और जयध्वनि आदि बहुत प्रकारके मङ्गलमय शब्दोंको सुना। महः, जन और तपलोकवासियोंने भी लोक-परम्परासे सुनकर स्वयं भी गान आदि किया था, ऐसा समझना चाहिये। अघासुरके शरीरसे ज्योति निकलकर बड़े वेगसे वैकुण्ठकी ओर जा रही है, श्रीकृष्णकी यह महिमा देखकर ब्रह्माजी परम विस्मित हुए और अलक्षित रूपसे वृन्दावनमें उपस्थित हुए तथा वहाँ भी भगवान्‌की महिमाको देखकर विस्मित हो गये॥ ३५॥

**राजन्नाजगरं चर्म्म शुष्कं वृन्दावनेऽद्भुतम्।**
**व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाक्रीडगह्वरम्॥ ३६॥**

**अन्वयः**—राजन् (हे महाराज!) अद्भुतं आजगरं शुष्कं चर्म वृन्दावने बहुतिथं (उस अजगरका अद्भुत शुष्क चर्मका बहुकाल तक वृन्दावनमें) व्रजौकसां (व्रजवासियोंके) आक्रीड गह्वरं (क्रीड़ा-विहारके लिए कन्दराके रूपमें) बभूव (व्यवहार हुआ था)॥ ३६॥

**अनुवाद**—हे राजन्! उस अजगरकी शुष्क, अद्भुत चमड़ी बहुत समयतक वृन्दावनमें व्रजवासियोंके लिए खेलनेकी एक अद्भुत गुफाके रूपमें व्यवहार होती रही॥ ३६॥

**सारार्थदर्शिनी**—बहुतिथं बहुकालं आ सम्यक् क्रीडार्थकगह्वरं बभूव॥ ३६॥

**भावानुवाद**—बहुत समय तक व्रजवासी बालकोंके खेलनेके लिए उस अजगरकी सूखी चमड़ी कन्दराके रूपमें व्यवहार हुई थी॥ ३६॥

**एतत् कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणम्।**
**मृत्योः पौगण्डके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे॥ ३७॥**

**अन्वयः**—हरेः (श्रीकृष्णके) कौमारजं (पाँच वर्षकी कौमारकालमें) मृत्योः आत्माहिमोक्षणं (मृत्युरूप अघासुरसे अपनेको एवं संसार दशासे

सर्पको मुक्त करनेपर भी) एतत् कर्म दृष्ट्वा (इस कर्मको देखकर) विस्मिताः बालाः (विस्मित व्रजबालकोंने) पौगण्डके (छठे वर्षमें) व्रजे ऊचुः (व्रजमें कहा)॥ ३७॥

**अनुवाद**—श्रीहरिने यद्यपि कौमारावस्थामें (पाँचवें वर्षमें) उस मृत्युरूप अघासुरसे अपनेको तथा संसारदशासे अघासुरको मुक्त किया था, परन्तु उसे देखकर विस्मित ग्वालबालोंने छठवें वर्षकी अवस्थामें व्रजमें उसका इस प्रकारसे वर्णन किया, जैसे वह घटना आज ही हुई हो॥ ३७॥

**सारार्थदर्शिनी**—अन्यदप्याश्चर्यमेकं शृण्वित्याह-एतत् हरेः कोमारजं पञ्चमाब्दकृतं कर्म दृष्ट्वा अस्य हरेः पोगण्डके वयसि षष्ठेऽब्दे बाला अद्यैतद्वृत्तमित्यूचुः। किं तत्, आत्मनाम् अहेः सकाशान्मोक्षणं कुतः मृत्योः अहिमरणाद्धेतोरित्यर्थः॥ ३७॥

**भावानुवाद**—एक और भी अत्यन्त आश्चर्यकी बात हुई। कृष्ण द्वारा अघासुरका संहार ग्वालबालोंने उनकी कुमारावस्था अर्थात् पाँचवें वर्षमें देखा था, परन्तु उसका वर्णन व्रजमें आकर एक वर्ष पश्चात् कृष्णके छठे वर्ष अर्थात् पौगण्ड आयु प्राप्त करनेपर इस प्रकार किया कि कृष्णने आज किस प्रकार मृत्युरूप अघासुरसे सभी ग्वालबालों और बछड़ोंका उद्धार किया॥ ३७॥

**नैतद्विचित्रं मनुजार्भमायिनः,**
**परावराणां परमस्य वेधसः।**
**अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातकः,**
**प्रापात्मसाम्यन्त्वसतां सुदुर्ल्लभम्॥ ३८॥**

**अन्वयः**—मनुजार्भमायिनः (मनुष्य बालकरूप ही उनका स्वरूप है या नन्दकुमार ही परम दयावान है) परावराणां (जगत्के ऊँच-नीच सभीसे) परमस्य (श्रेष्ठ) वेधसः (विधाता पुरुषका) एतत् (ऐसा कर्म) न विचित्रम् (विचित्र नहीं है) अघः अपि (वह अघ नामका असुर भी) यत् संस्पर्शन धौत पातकः (कृष्णके संस्पर्शसे जिसके पाप धुल

गये, ऐसे) असतां सुदुर्ल्लभं आत्मसाम्यं प्राप (असाधुओंके लिए सुदुर्ल्लभ भगवान्‌की सारूप्यमुक्तिको प्राप्त किया)॥ ३८॥

**अनुवाद—**कार्य-कारण अथवा ऊँच-नीच समस्त वस्तुओंके परमविधाता-स्वरूप भगवान्‌के अथवा मनुष्य-बालक-सी लीला रचनेवाले नन्दनन्दन-स्वरूप परम दयालुके अथवा नर-लीलामें अपना परम-ऐश्वर्य प्रदर्शनकारी भगवान्‌के लिए यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अघासुर मूर्त्तिमान अघ (पाप) ही था। उसने भगवान्‌के संस्पर्शसे निष्पाप होकर दुष्टोंके लिए दुर्लभ सारूप्यमुक्तिको प्राप्त किया था॥ ३८॥

**सारार्थदर्शिनी—**मनुजार्भ एव माया तदीयस्वरूपं तत्त्वतः श्रुति प्रसिद्धान्माया-शब्दस्य स्वरूपवाचकत्वात् परावराणां सर्वेषामंशानामंशिनामपि परमस्य वेधसः स्वेच्छाभिमतमेव कर्तुः एतत् विचित्रं न, किं तदित्यत आह-अघोऽपीति। धूतपातक इति। पातकमित्युपलक्षणं शरीरदौर्गन्ध्यादेरप्यपगम इति किं वक्तव्यं पूतना दृष्ट्या शरीरसौगन्ध्यमपि व्याख्येयं। सप्रियसखस्य कृष्णस्य क्रीडास्पदीभावित्वात्। आत्मसाम्यं स्वसमानरूपत्वम्। असतामसुराणां सायुज्यं दुर्लभं सारूप्यं तु भक्तसम्प्रदानीयत्वात्-सुदुर्लभम्॥ ३८॥

**भावानुवाद—***'मनुजार्भ-मायिनः'*—मनुष्य बालकरूप ही, *'माया'*—उनका स्वरूप, क्योंकि श्रुति-प्रसिद्धि होनेसे माया शब्दका स्वरूप वाचक अर्थ है। जो समस्त अंशों और अंशीके भी प्रधान हैं और अपनी इच्छासे अंश-अंशीको भी प्रादुर्भूत करानेवाले हैं। उन श्रीकृष्णके लिए ऐसा करना विचित्र नहीं है। वह कौन-सा कार्य है? इसके लिए कह रहे हैं—अघासुर भी जिनके स्पर्शसे निष्पाप हो गया, पातक—यह उपलक्षण है, शरीरकी दुर्गन्धादि भी दूर हो गयी थी। यहाँ तक कि उसका पाँचभौतिक शरीर पूतनाकी भाँति सुगन्धयुक्त हो गया था। उसकी मृत देहका ढाँचा नन्दनन्दन और उनके सखागणोंकी क्रीड़ास्थली बन गया। *'आत्मासाम्यम्'*—अघासुरको भगवान्‌का सारूप्य प्राप्त हुआ था। यदि देखा जाय तो असुरोंके लिए सायुज्य भी दुर्लभ है, उसमें भी भक्तोंको प्राप्त होनेवाली सारूप्यमुक्ति तो अतिशय दुर्लभ है, परन्तु अघासुरको कृष्णकी कृपासे यह प्राप्त हुई॥ ३८॥

**सकृद्यदङ्गप्रतिमान्तराहिता,**
**मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम्।**
**स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभि-**
**व्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हि किं पुनः॥ ३९॥**

**अन्वयः**—सकृत् (एकबार मात्र) मनोमयी (मनके द्वारा चिन्तित) यदङ्ग प्रतिमा (जिनकी अङ्ग प्रतिमाको) अन्तः (हृदयमें) आहिता (बलपूर्वक स्थापन करनेपर) भागवतीं गतिं ददौ (खट्वाङ्ग आदिको परम गति प्रदान की) अङ्ग (सम्बोधनमें) नित्यात्मसुखानुभूत्यभिव्युदस्तमायः (नित्य ही समस्त जीवोंके सुखानुभूति-स्वरूप एवं जिनसे माया सम्पूर्ण रूपसे दूर होती है) [ऐसे] सः एव (स्वयं अवतारी) अन्तर्गतः (जिसके अन्दरमें प्रविष्ट हुए) किं पुनः (कैसे उसकी मुक्ति नहीं होगी? अवश्य होगी)॥ ३९॥

**अनुवाद**—जिनके विग्रहका मन-ही-मन स्मरणकर मात्र एकबार भी हृदयमें बैठा लिया जाय, तो उससे ही जीवोंको परम गति प्राप्त हो जाती है। हे अङ्ग! जिनसे समस्त जीवोंको सुखकी अनुभूति होती है एवं माया जिनसे सर्वदा दूर रहती है, ऐसे स्वयं-भगवान् जिनके हृदयमें प्रविष्ट हो गये, उसकी मुक्तिके विषयमें क्या कहा जाय?॥ ३९॥

**सारार्थदर्शिनी**—तत्प्राप्तौ कारणमाह-यस्य अङ्गं मूर्त्तिस्तस्य च प्रतिमा प्रतिकृतिर्जगन्नाथ मदनगोपाल गोविन्दादिरूपा। सापि मनोमयी मनसैव ध्याता तत्रापि सकृदेव अन्तराहिता सती भागवतीं गतिं ददौ। खट्वाङ्गादिभ्यः स एव साक्षात् नित्यात्मा नित्यशरीरश्चासौ सुखानुभूतिरूपश्च अभिव्युदस्तमायश्चेति सः। परमः स्वयमवतारी स्वयमेवान्तर्गतः किं पुनः दद्यादेवेत्यर्थः। ननु, खट्वाङ्गादीनां तत्प्राप्तौ भक्तिरेव कारणम् अघादीनां तु प्रातिकूल्यात् भक्त्यभाव एव तत्प्राप्तिप्रतिबन्धी। *"भक्त्याहमेकया ग्राह्यः"* इति भगवत्कृतनियमात्। सत्यं स च नियमोऽन्यस्मिन्नेव समये। कृष्णस्यावतारसमये तु पूर्णाया एव कृपाशक्तेरुदयोद्रेकात् तत्सम्बन्धमात्रेणैव तत्प्राप्तिर्यद्वक्ष्यते—*"कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव वा। नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते॥ न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे। योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद्विमुच्यते"* इति॥

इति कृष्णस्य पूर्णत्वे लक्षणमिदमसाधारणं यद्वैरिभ्योपि मोक्षं ददातीति तेषामपि मध्ये *"व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाक्रीडगह्वरम्"* इत्युक्तेरघासुरदेहस्य

स्वक्रीडासुखप्रदीभावित्वात् तात्कालिक तत्प्रातिकूल्यस्यानुकूल्यमय भक्तित्वमननात् तस्मै सारूप्यमोक्षं वैकुण्ठे एव ददौ न तु स्वधाम्नि वृन्दावने तद्भक्तेस्तादृशवैशिष्ट्याभावात् इति ज्ञेयम्॥ ३९॥

**भावानुवाद**—यहाँ अघासुरकी सारूप्यमुक्ति प्राप्तिका कारण बता रहे हैं—*'यदङ्ग प्रतिमा'*—जिनका अङ्ग कहनेसे श्रीमूर्त्ति एवं उनका श्रीविग्रह अर्थात् श्रीजगन्नाथ, श्रीमदनमोहन, श्रीगोविन्ददेव आदि श्रीमूर्त्तिका ध्यानकर बलपूर्वक अपने हृदयमें धारण करनेसे ही खट्वाङ्ग, प्रह्लाद आदिको भगवान्ने भागवती गति प्रदान की है, अतएव उन नित्य विग्रह, सुखानुभूति-स्वरूप और मायाको दूर करनेवाले परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं ही जिसके भीतर प्रवेश किया, उस अघासुरको भगवान्ने सारूप्यमुक्ति प्रदान की—इसमें आश्चर्यकी क्या बात है?

यदि कहो कि खट्वाङ्ग महाराज आदिकी भगवत्-प्राप्तिके विषयमें भक्ति ही कारण है, परन्तु अघासुर आदिका भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रतिकूल भाव होनेके कारण उसमें भक्तिका अभाव है, जो भगवत्-प्राप्तिके विषयमें प्रतिबन्धक है। कारण *"भक्त्याहमेकया ग्राह्यः"* (११/१४/११) अर्थात् एकमात्र श्रद्धायुक्त भक्तिके द्वारा ही भगवान्को पाया जाता है—इस प्रकार भगवान्ने स्वयं ही यह नियम बनाया है। इसके उत्तरमें कहते हैं—यह बात सत्य है, परन्तु यह नियम दूसरे समयके लिए है। स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णके अवतारके समय परिपूर्ण कृपाशक्तिका उदय होनेके कारण किसी भी प्रकारसे उनसे सम्बन्ध होनेसे ही भगवत्-प्राप्ति हो जाती है। जैसे आगे भी कहेंगे—*"कामं क्रोधम्"* आदि (१०/२९/१५-१६), अर्थात् जो भगवान्के प्रति सब समय काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य या सौहृद्यका अवलम्बन करते हैं, वे निश्चित रूपसे उनमें तन्मयता प्राप्त करते हैं। योगेश्वरेश्वर जन्मरहित भगवान् श्रीकृष्णके विषयमें ऐसा विस्मय प्रकट नहीं करना चाहिये, क्योंकि वे स्थावर आदि पदार्थोंको भी मुक्ति प्रदान कर सकते हैं। श्रीकृष्णके पूर्ण अवतारी होनेका यही एक असाधारण लक्षण है कि वे अपने शत्रुओंको भी मुक्ति प्रदान करते हैं।

अघासुरके शरीरके सूख जानेपर सभी गोपबालक कृष्णके साथ बहुत दिनों तक उसमें खेल-कूद करते रहे। अघासुरकी देह "बहुत समय तक गोपबालकोंके खेलनेके लिए गुफाके समान बन गयी थी" (३६वाँ श्लोक)—इस उक्तिके अनुसार कृष्णने विचार किया कि इस अघासुरकी देह मेरी क्रीड़ाओंमें सुखदायी होगी, इसलिए उन्होंने उसके प्रतिकूल भावको भी अनुकूल भक्तिके रूपमें ग्रहण करके उसे वैकुण्ठमें सारूप्यमुक्ति प्रदान की। किन्तु उसे अपना धाम वृन्दावन प्रदान नहीं किया, क्योंकि भक्तिका अभाव होनेके कारण वह श्रीधाम वृन्दावनमें वास करने योग्य नहीं था—ऐसा समझना चाहिये॥ ३९॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—नन्दनन्दन कृष्ण, गोपबालकों और बछड़ोंके साथ जब अघासुरके मुखसे निकलकर बाहर आये, तो उस समय उसकी सर्प देहसे निकलकर आकाशमें स्थित वह अद्भुत ज्योति श्रीकृष्णके श्रीचरणोंमें विलीन हो गयी। यह अद्भुत दृश्य देखकर उस ज्योतिके विषयमें देवताओंके मनमें जो समस्त तर्क-वितर्क उठ रहे थे, वे सब समाप्त हो गये। श्रीकृष्णकी अपार करुणासे वे समझ गये कि वह ज्योतिर्मय वस्तु अघासुरका जीव-चैतन्य (आत्मा) था एवं वह श्रीकृष्णके चरणोंमें विलीन होकर चिरकालके लिए संसार-बन्धनसे मुक्त हो गया है। यद्यपि आत्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म और इन्द्रियातीत वस्तु है, फिर भी श्रीकृष्णकी इच्छासे ही वह ज्योतिर्मय-स्वरूप होकर भी देवताओंके प्रत्यक्षगोचर हुआ था, यह तत्त्व भी देवताओंने अनुभव किया।

देवता इस प्रकारसे श्रीकृष्णकी कृपाका वैभव जानकर मन-ही-मन श्रीकृष्णके चरणोंमें शरणागत हुए। वे श्रीकृष्णके ऊपर नन्दनकाननमें उत्पन्न पारिजात पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। उर्वशी, मेनका, रम्भा आदि अप्सराएँ परमानन्दसे नृत्य करने लगीं। गन्धर्वगण कृष्णके माहात्म्यका गान करने लगे, विद्याधरगण मृदङ्ग, पनव, दुन्दुभि आदि बाजे बजाने लगे। देवर्षि नारद आदि ऋषिगण कृष्ण-माहात्म्यसूचक स्तव पाठ करने लगे एवं गरुड़, विष्वक्सेन आदि वैकुण्ठके पार्षदगण श्रीकृष्णकी जय घोषणा करने लगे।

देवताओंके ऐसे आनन्द-कोलाहल एवं विविध प्रकारके गीत-वाद्य और जयध्वनि देवलोकको मुखरित करती हुई जनलोक, महर्लोक, तपलोक और सत्यलोक तकमें गूँजने लगी। सत्यलोकमें सुखपूर्वक अपने आसनपर बैठे हुए ब्रह्माजी अचानक इस आनन्दध्वनिको सुनकर विस्मित हो गये और इसका कारण जाननेके लिए सत्यलोकसे देवलोकमें आये तथा वहाँसे वृन्दावनके आकाशमार्गमें आकर नन्दनन्दनके लीला-माधुर्यको देखकर न केवल आनन्दमें विभोर हो गये, अपितु परम विस्मित भी हुए।

परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामीने जब महाराज परीक्षित्‌के समक्ष अघासुरका श्रीवृन्दावनमें आगमन, विशाल सर्पशरीर धारण, बछड़े और गोपबालकोंका उसके मुखमें प्रवेश, उनकी रक्षा करनेके लिए भक्तवत्सल श्रीकृष्णका भी अघासुरके मुखमें प्रवेश, अघासुर-वध, अघासुरके मुखसे श्रीकृष्णका बछड़ों और गोपबालकोंके सहित बाहर आना, अघासुरको मुक्तिदान, यह देखकर देवताओंका विस्मय, देवलोकमें आनन्द कोलाहल और ब्रह्माजीका आगमन आदिका वर्णन किया, तो परीक्षित् महाराज कृष्णलीलाका असमोर्द्ध्व ऐश्वर्य और श्रीकृष्णके अचिन्त्य वैभवको सुनकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए। यह देखकर श्रीशुकदेवगोस्वामीने कहा—हे महाराज! श्रीकृष्णकी कृपाकी कोई तुलना नहीं है। वे केवल अघासुरको मुक्त करके शान्त नहीं हुए, अपितु उन्होंने उसकी मृतदेहको भी कृपा वर्षणके द्वारा धन्य कर दिया। अघासुरके उस विशाल सर्पशरीरसे उसकी आत्मा बाहर निकलकर श्रीकृष्णके चरणोंमें विलीन हो गयी। उसकी वह विशाल देह बहुत दिनों तक वृन्दावनकी वनभूमिमें पड़ी रही एवं सूखकर उसने एक विशाल पर्वत कन्दराका रूप ले लिया था। कृष्ण गोपबालकोंके साथ उसमें प्रवेशकर बहुत-सी बाललीलाएँ करते थे। उनके चरणस्पर्शसे मृत अघासुरका सूखा हुआ शरीर और चर्म भी कृतकृत्य हो गया। श्रीकृष्णके श्रीचरणोंका स्पर्श पानेके लिए ब्रह्मादि देवता भी तरसते हैं, किन्तु उनके भाग्यमें वह सम्भव नहीं हो पाता है। अघासुरने जीवित अवस्थामें कभी भी ब्रह्मादिके लिए भी सुदुर्लभ श्रीकृष्णके श्रीचरणोंके स्पर्शकी अभिलाषा नहीं की, परन्तु श्रीकृष्णने

उसकी किसी प्रार्थनाके बिना ही उसके मृत शरीरको पुनः-पुनः अपने चरणस्पर्शका सौभाग्य प्रदान किया। अतएव भगवान् श्रीकृष्णने अपनी इस लीलामें जैसी कृपा दान की, वैसी दूसरी किसी लीलामें नहीं की।

श्रीकृष्णकी अघासुर-वध लीलामें एक और विशेष चमत्कारिता यह है कि उन्होंने पाँचवें वर्षमें यह लीला की। किन्तु गोपबालकोंने एक वर्षके पश्चात् अर्थात् छठे वर्षमें अपने पिता-माता और बन्धु-बान्धवोंको उस लीलाके विषयमें इस प्रकार बताया—"आज हम एक महाविपत्तिमें फँस गये थे। एक विशाल अजगर रास्तेमें ही मुख खोलकर निश्चल रूपसे पड़ा हुआ था। हम लोग बछड़ोंके साथ उसके मुखमें चले गये, उसके पश्चात् कन्हैयाने हमारी रक्षा की और उस अजगरको मार डाला। केवल इतना ही नहीं, उसके पश्चात् आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई, मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे, गीत गाये जाने लगे। इस प्रकार आनन्द-कोलाहलसे सारा आकाश गूँज उठा।" ग्वालबालोंकी बातोंको सुनकर नन्दबाबा, यशोदा मैया, गोप-गोपी एवं अन्यान्य सभी व्रजवासी अत्यन्त विस्मित हो गये॥ ३९॥

**श्रीसूत उवाच—**

**इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः,**
**श्रुत्वा स्वरातुश्चरितं विचित्रम्।**
**पप्रच्छ भूयोऽपि तदेव पुण्यं,**
**वैयासकिं यन्निगृहीतचेताः॥ ४०॥**

**अन्वयः—**सूतः उवाच (श्रीसूतगोस्वामीने ऋषियोंसे कहा) हे द्विजाः (हे मुनियो!) यादव देवदत्तः (यादवोंके देवता श्रीकृष्णने उत्तरा या युधिष्ठिरको जिस परीक्षित्को प्रदान किया, ऐसे परीक्षित्) स्वरातुः (अपने रक्षाकारीकी) श्रुत्वा यन्निगृहीतचेताः (बाललीलाओंको सुनकर संयत चित्त हो गये, ऐसे वे) भूयः (फिरसे) वैयासकिं (श्रीशुकदेव गोस्वामीसे) तत् एव पुण्यं (उनके पुण्य चरित्रके विषयमें) पप्रच्छ (पूछने लगे)॥ ४०॥

**अनुवाद—**श्रीसूत गोस्वामीने कहा—हे शौनकादि ऋषियो! यदुवंश-शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने परीक्षित्को प्राण-दान दिया था। इसलिए

महाराज परीक्षित् अपने रक्षक श्रीकृष्णकी इस विचित्र बाल्यलीलाको सुनकर अत्यन्त विस्मित हो गये और पुनः उनके पुण्य-चरितके विषयमें प्रश्न करने लगे। भगवान्‌की अमृतमयी पावन लीलाओंने उनके चित्तको वशीभूत कर लिया था॥ ४०॥

**सारार्थदर्शिनी**—हे द्विजाः! यादवदेवेन उत्तरायै युधिष्ठिराय वा दत्तः परीक्षित् स्वस्य राता गृहीता यः श्रीकृष्णस्तस्य येन श्रवणेन नितरां गृहीतं वशीकृतं चेतो यस्य सः॥ ४०॥

**भावानुवाद**—श्रीसूत गोस्वामीने कहा—हे शौनकादि ब्राह्मणो! श्रीकृष्णने जिनकी मातृगर्भमें रक्षाकर उन्हें जननी उत्तरा या पितामह युधिष्ठिरको प्रदान किया था, ऐसे महाराज परीक्षित् अपने रक्षाकर्त्ता श्रीकृष्णका चरित्र उक्त रूपसे श्रवणकर फिर उसी विषयमें और भी स्पष्ट रूपसे जाननेके लिए पूछने लगे। 'यन्निगृहीत चेता'—इसका कारण था कि श्रीकृष्णका चरित्र श्रवणकर महाराज परीक्षित्‌का चित्त उन कथाओंके वशीभूत हो गया था॥ ४०॥

**श्रीराजोवाच—**

**ब्रह्मन् कालान्तरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत्।**
**यत्कौमारे हरिकृतं जगुः पौगण्डकेऽर्भकाः॥ ४१॥**

**अन्वयः**—श्रीराजा उवाच (महाराज परीक्षित्‌ने कहा) हे ब्रह्मन् (हे शुकदेवजी!) कालान्तरकृतं (कालान्तरमें किया हुआ कर्म) कथं तत्कालीनं भवेत् (कैसे दूसरे समयमें सम्भव हो सकता है) कौमारे (पाँचवें वर्षमें) यत् हरिकृतं (श्रीहरिने जो कर्म किया, उसका) अर्भकाः (बालकोंने) पौगण्डके (छठे वर्षमें कैसे) जगुः (गान किया)॥ ४१॥

**अनुवाद**—महाराज परीक्षित्‌ने पूछा—हे मुनिवर! आप कृपा करके यह बतलाइये कि किसी एक पूर्व समयकी लीला किस प्रकारसे तत्कालीन हो सकती है? श्रीहरिने कौमारावस्थामें—पाँचवें वर्षमें जिस लीलाको प्रकट किया था, बालकोंने पौगण्डावस्थामें—छठे वर्षमें जाकर उसका ऐसे वर्णन किया, जैसे वह लीला आज ही हुई हो। यह कैसे सम्भव है?॥ ४१॥

**सारार्थदर्शिनी**—कालान्तरकृतं पूर्वकालनिष्पादितं कर्म तत्कालीनं सद्यः कालदृष्टं कथं भवेत्? तदेवाह—यदिति। पौगण्डके अद्यैव हरिकृतमिदं कर्मेति कथमूचुरित्यर्थः॥ ४१॥

**भावानुवाद**—एक वर्ष पहले किया हुआ कर्म, "आज ही हुआ है और मैंने आज ही देखा है"—ऐसा कहना किस प्रकारसे सम्भव हो सकता है?॥ ४१॥

**तद्ब्रूहि मे महायोगिन् परं कौतूहलं गुरो।**
**नूनमेतद्धरेरेव माया भवति नान्यथा॥ ४२॥**

**अन्वयः**—हे महायोगिन् गुरो (हे महायोगीवर, गुरुदेव) तत् ब्रूहि मे परं कौतूहलं (इस विषयमें मेरा अतिशय कौतूहल हो रहा है, अतः उसका वर्णन करें) नूनं (निश्चित रूपसे) एतत् हरेः एव माया न अन्यथा भवति (यह भगवान् श्रीहरिकी माया थी, दूसरा कुछ नहीं)॥ ४२॥

**अनुवाद**—हे महायोगीवर गुरुदेव! आप इस विषयको मुझे बतलाइये, क्योंकि इसे जाननेके लिए मेरे मनमें अत्यन्त कौतूहल हो रहा है। निश्चित रूपसे यह हरिकी मायाके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था॥ ४२॥

**सारार्थदर्शिनी**—माया दुर्घटघटनपटीयसी शक्तिः हरेरित्यन्यमायानिरस्ता योगमायेत्यर्थः। तयैव भगवन्नित्यपरिजनानां मोहनसम्भवात्॥ ४२॥

**भावानुवाद**—*'माया'*—असम्भवको सम्भव करनेवाली शक्तिका नाम 'माया' है। श्रीहरिकी माया कहनेसे योगमायाको समझना चाहिये, महामायाको नहीं, क्योंकि उसी योगमायाके द्वारा भगवान्के नित्य परिकरोंका मोहन-कार्य सम्भव है॥ ४२॥

**वयं धन्यतमा लोके गुरोऽपि क्षत्रबन्धवः।**
**वयं पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथामृतम्॥ ४३॥**

**अन्वयः**—हे गुरो वयं क्षत्रबन्धवः अपि (हे गुरुवर! हम क्षत्रियाधम होनेपर भी) लोके धन्यतमाः (संसारमें हम धन्य हैं,

क्योंकि) त्वत्तः (आपसे) मुहुः (सर्वदा) पुण्यं कृष्णकथामृतम् (परम पवित्र हरिकथामृतका) वयं पिबामो (पान कर रहे हैं)॥ ४३॥

**अनुवाद**—हे गुरुवर! ब्राह्मण-सेवासे विमुख होनेके कारण मैं तो नाममात्रका अधम क्षत्रिय हूँ। तथापि मैं अति धन्य हूँ, क्योंकि निरन्तर आपके मुखारविन्दसे झरनेवाली परम पवित्र मधुमय हरिकथामृतका पान कर रहा हूँ॥ ४३॥

**सारार्थदर्शिनी**—हे गुरो इति मम त्वच्छिष्यत्वात् *"ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत"* इति विधेरवश्यवक्तव्यत्वं व्यञ्जितं पिबाम इति स्वासक्तिव्यञ्जनया स्वस्य स्निग्धत्वं च॥ ४३॥

**भावानुवाद**—हे गुरुवर! मैं आपका शिष्य हूँ—*"ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत"* (१/१/८) अर्थात् गुरुवर्ग अपने स्नेहपरायण शिष्यको अत्यन्त गोपनीय रहस्य भी बतला दिया करते हैं—इस विधिके अनुसार वह रहस्य मुझे अवश्य बतलाने योग्य है—ऐसा व्यञ्जित हुआ है। *'पिबामः'*—मैं आपके मुखसे परम पवित्र हरिकथामृतका पान कर रहा हूँ। इससे परीक्षित्की शक्ति तथा उनके गुरुदेव श्रीशुकदेव गोस्वामीका उनके प्रति स्नेह प्रकाशित हुआ है॥ ४३॥

**श्रीसूत उवाच—**

**इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणि-**
**स्तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः ।**
**कृच्छ्रात् पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः,**
**प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तम॥ ४४॥**

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ब्रह्मसूत्रभाष्ये पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे अघासुरवधो नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥**

**अन्वयः**—श्रीसूतः उवाच (श्रीसूतगोस्वामीने कहा) भागवतोत्तमोत्तम (हे भगवत्-भक्तप्रवर शौनकजी!) इत्थं (इस प्रकार पूर्व कथनके अनुरूप) पृष्टं सः वादरायणिः (जिज्ञासित होनेपर श्रीशुकदेवगोस्वामीके) तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः (हृदयमें श्रीकृष्ण-विषयक स्मरण होनेसे उनकी समस्त इन्द्रियवृत्ति लुप्त हो गयी) पुनः कृच्छ्रात् (पुनः बड़े

कष्टसे) शनैः (धीरे-धीरे) लब्धबहिर्दृशिः (बाह्यज्ञान प्राप्तकर) तं प्रति आह (परीक्षित्से कहने लगे)॥ ४४॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके बारहवें अध्यायका
अन्वयः समाप्त।

**अनुवाद**—श्रीसूत गोस्वामीने कहा—हे भगवत्-भक्तवर शौनकजी! जब राजा परीक्षित्ने इस प्रकार प्रश्न किया, तब मुनिवर श्रीशुकदेव गोस्वामीको श्रीकृष्णकी लीलाओंका स्मरण हो आया और उनकी समस्त इन्द्रियाँ तथा अन्तःकरण विवश होकर भगवान्की नित्य लीलाओंकी ओर आकृष्ट हो गये। फिर कुछ समयके बाद धीरे-धीरे बड़े कष्टसे बाह्य ज्ञान प्राप्त होनेपर वे परीक्षित्के समक्ष भगवान्की लीलाओंका वर्णन करने लगे॥ ४४॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके बारहवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

**सारार्थदर्शिनी**—कृच्छ्रात् उच्चैर्भगवन्नामकीर्तनोदघोषैः तत्रत्यनारदव्यासादि-मुनिकृतैरतियत्नभरादित्यर्थः हे भागवतोत्तमोत्तम शौनक॥ ४४॥

इति सारार्थदर्शिन्यां हर्षिण्यां भक्तचेतसाम्।
दशमे द्वादशोऽध्यायः सङ्गतः सङ्गतः सताम्॥

इति श्रीमद्भागवत-दशमस्कन्धे श्रीविश्वनाथचक्रवर्ति-ठक्कुर-कृता
द्वादशोऽध्यायस्य सारार्थदर्शिनी-टीका समाप्ता॥ १२॥

**भावानुवाद**—*'कृच्छ्रात्'*—महाराज परीक्षित्के प्रश्नको सुनकर श्रीकृष्णका स्मरण होनेसे श्रीशुकदेव गोस्वामीकी समस्त इन्द्रिय-वृत्तियाँ स्तब्ध हो गयीं। तब वहाँपर अवस्थित श्रीनारद और श्रीव्यास आदि मुनियोंके द्वारा उच्चस्वरसे भगवन्नाम कीर्त्तन और अनेकानेक चेष्टाएँ किये जानेपर उन्हें बाह्यज्ञान हुआ। तब वे धीरे-धीरे परीक्षित् महाराजके प्रश्नोंका उत्तर देने लगे॥ ४४॥

इस प्रकार भक्तोंको आनन्द देनेवाली दशम-स्कन्धके बारहवें
अध्यायकी सज्जन-सम्मत 'सारार्थदर्शिनी' टीका समाप्त हुई।

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके बारहवें अध्यायकी श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर विरचित सारार्थदर्शिनी टीकाका भावानुवाद समाप्त।

**भावप्रकाशिकावृत्ति—**परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामीने परीक्षित् महाराजके समक्ष श्रीकृष्णके जिस कृपा-वैभवका वर्णन किया, उसे श्रीसूतगोस्वामीसे सुनकर नैमिषारण्यवासी शौनकादि ऋषिगण परमानन्दमें डूब गये। अघासुर-विमोचनकारी श्रीहरिकी अयाचित कृपाकी कथा सुनकर उनका हृदय कृष्ण-कृपासमुद्रमें डूब गया। उन्हें अपनी देहकी भी सुध-बुध न रही। यह देखकर श्रीसूतगोस्वामी उन्हें उच्चस्वरसे सम्बोधनकर लीलाकथा श्रवण करनेके लिए उत्साहित करते हुए बोले—"हे सर्व-वेदविद ऋषियो! सुनिये! सुनिये! परमहंसशिरोमणि श्रीशुकदेवगोस्वामीसे श्रीकृष्णकी असीम करुणाकी बात सुनकर महाराज परीक्षित्ने क्या किया।"

इस प्रकारके सम्बोधनसे ऋषियोंके धैर्य धारण करनेपर सूत गोस्वामी बोले—"हे ब्राह्मणो! महाराज परीक्षित्का सम्बन्ध श्रीकृष्णके साथ केवल कथा श्रवणसे ही नहीं था, बल्कि श्रीकृष्णने उन्हें मातृगर्भमें दर्शन भी दिया था—अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे उनकी रक्षा की थी।" महाराज परीक्षित् श्रीकृष्णको अपना रक्षाकर्त्ता समझते हैं एवं उनकी भावना है कि श्रीकृष्ण उनकी पितामही सुभद्राके भाई भी हैं। अमृतमयी कृष्णकथा सुनकर महाराज परीक्षित्का हृदय आनन्दसे नृत्य करने लगा, क्योंकि कृष्ण उनके जीवनदाता, पितामहीके भाई, पितामह अर्जुनके सखा एवं उनके कुलदेवता हैं। उनकी कथा श्रवण करते हुए वे विचार करने लगे कि यदि मेरे हजारों कान होते, तो मैं इस परम मधुर लीला-कथारसका और भी अधिक-से-अधिक रूपमें आस्वादन कर पाता। कृष्ण-कथारसका आस्वादन करनेके लिए परीक्षित् महाराजका चित्त सर्वदा लुब्ध रहता था। उन्होंने श्रीशुकदेव गोस्वामीसे श्रीकृष्ण द्वारा प्रदत्त अघासुरके मोक्षकी बात श्रवण की। परन्तु जब उन्होंने यह सुना कि उस अघासुर-वधकी लीलाका गोपबालकोंने एक वर्षके पश्चात् व्रजमें वर्णन किया, तो वे उसका

गूढ़ तत्त्व सुननेके लिए अत्यन्त उत्साहित हो गये। उसे सुननेके लिए उन्होंने श्रीकृष्ण-लीलाकथा कीर्त्तनरसमें मत्त श्रीशुकदेवगोस्वामीसे पूछा—"हे श्रीकृष्ण-लीलारस-तत्त्वज्ञ-शिरोमणे! गोपबालकोंने श्रीकृष्णकी अघासुर-मोक्षकी लीलाका वर्णन व्रजमें एक वर्षके पश्चात् क्यों किया, पहले क्यों नही किया?"

यदि गोपबालक यह कहते कि कृष्णने एक वर्ष पहले एक विशाल अजगरको मारा था, तब यह माना जा सकता था कि गोपबालक बालस्वभावके कारण बतलाना भूल गये होंगे। परन्तु ग्वालबालोंने एक वर्ष पश्चात् "आज ही कन्हैयाने एक भयानक विशाल सर्पको मारा"—यह कहा। अतः इसमें अवश्य ही कोई रहस्य छिपा होगा। "हे महायोगिन्! श्रीभगवान्की सभी लीलाकथाएँ आप जानते हैं, इसलिए कृपापूर्वक हमें इसका रहस्य बतलाइये। निश्चित रूपमें श्रीकृष्णने गोपबालकोंको अपनी माया द्वारा मुग्धकर कोई मधुर लीला की होगी।"

परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेवगोस्वामी, श्रीकृष्णके अघासुर-मोक्षकी लीलाका वर्णनकर उनकी अपार करुणाको स्मरणकर प्रेमानन्दमें मुग्ध होनेके कारण कुछ समय तक चुप रहे। भावाविष्ट होनेके कारण वे महाराज परीक्षित्के द्वारा पुनः-पुनः प्रश्न किये जानेपर भी उन्हें उत्तर न दे सके। उन्हें इस प्रकार निस्तब्ध देखकर महाराज परीक्षित्ने हाथ जोड़कर कहा—"हे गुरुदेव! हम क्षत्रियाधम होनेपर भी आपकी कृपासे धन्य हुए हैं, क्योंकि आपने निरन्तर कृष्णलीला-सुधाधारा वर्षणकर हमारे समस्त प्रकारके पापोंको नष्ट कर दिया है। कृष्णभक्तोंके मुख-निःसृत कृष्णकथा जिनके कानोंमें प्रवेश करती है, उनका किसी भी प्रकारका कोई पाप-ताप नहीं रह सकता है। अतएव हे गुरुदेव! आपसे कृष्णकथा श्रवणकर मेरी श्रवणकी पिपासा और भी बढ़ गयी है।"

महाराज परीक्षित्के द्वारा इस प्रकार बार-बार प्रश्न किये जानेपर भी जब उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला, तब वे श्रीशुकदेव गोस्वामीकी अवस्था देखकर समझ गये कि वे इस जगत्में नहीं हैं। ये लीलामयकी लीलासुधाकी प्रवाहिनीके प्रबल प्रवाहमें प्रवाहित होकर

प्रपञ्चके उस पार परमानन्द धाममें प्रवेश कर गये हैं। इस समय केवल पृथ्वीमें प्रेमानन्दके रसास्वादनको समझानेके लिए ही ये पाषाणकी प्रतिमाकी भाँति जड़वत् अवस्थान कर रहे हैं।

श्रीभगवान्‌की व्रजलीला-कथाका कीर्त्तन करते समय श्रीशुकदेव गोस्वामीके शरीरमें समय-समयपर अष्टसात्विकभाव प्रकाशित हो पड़ते थे। इसलिए भाव-विभोर होनेके कारण वे कभी-कभी "हे तात! हे वत्स! हे राजन्!" आदि कहकर गद्‌गद कण्ठसे महाराज परीक्षित्‌को सम्बोधन करते थे। कभी-कभी उनसे लीलाओंके वर्णनका क्रम भी भङ्ग हो जाता था, कभी-कभी किसी लीलाका कुछ अंश कहकर कथा समाप्त कर देते थे। परन्तु इस समय उनका ऐसा भावविकार देखकर देवर्षि नारद, श्रीवेदव्यास, स्वयं महाराज परीक्षित् और दूसरे सभी श्रोता शङ्ख, घण्टा, करताल आदि बजाकर हरि-कीर्त्तन करने लगे। इससे श्रीशुकदेव गोस्वामीको बाह्यज्ञान होने लगा एवं धीरे-धीरे उन्होंने पुनः महाराज परीक्षित्‌के प्रश्नोंका उत्तर देना आरम्भ किया॥ ४०-४४॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके बारहवें अध्यायकी
भावप्रकाशिकावृत्ति समाप्त।

# तेरहवें अध्यायकी कथाका सार

इस अध्यायमें ब्रह्माके द्वारा बछडों एवं ग्वालबालकोंका हरण, कृष्णके द्वारा ब्रह्माको मोहित करना तथा अन्तमें उनके मोहका नाश आदिका वर्णन हुआ है।

भगवान्‌ने जो लीला बाल्यावस्था अर्थात् पाँचवें वर्षमें की, उसे सखाओंने उनकी पौगण्डलीला अर्थात् उनके छठे वर्षमें प्रवेश करनेपर व्रजमें सुनाया कि आज कृष्णने अघासुरका वधकर हमारी रक्षा की। इसका कारण था कि अघासुरका वधकर कृष्ण जब अपने सखाओंके साथ यमुना-पुलिनमें बैठकर भोजनलीला कर रहे थे, उसी समय उनके बछड़े हरी-हरी घासके लोभसे दूर वनमें चले गये। यह देखकर सखा भयभीत हो गये, किन्तु कृष्णने उन्हें निर्भय होकर भोजन करनेके लिए कहा तथा स्वयं बछड़ोंकी खोजमें निकल पड़े। इधर ब्रह्माने भगवान्‌का ऐश्वर्य दर्शन करनेकी इच्छासे पहले बछड़ोंका और तत्पश्चात् ग्वालबालकोंका अपहरणकर उन्हें अन्य स्थानमें छिपा दिया तथा अन्तर्धान हो गये। बछड़ों एवं ग्वालबालकोंको न देखकर कृष्ण समझ गये कि यह कार्य ब्रह्माका है। तब ब्रह्मा, गायों तथा माताओंका आनन्दवर्द्धन करनेके लिए सर्वकारण-कारण भगवान् स्वयं ही बछड़े एवं बालक बनकर पहलेकी ही भाँति लीला करने लगे। परन्तु अब विशेषता यह थी कि गायों तथा गोपियोंका अपने बछड़ों तथा बालकोंके प्रति स्नेह बढ़ गया था। इसी प्रकार लगभग एक वर्ष व्यतीत हो गया। इसी अवसरपर एकदिन बलदेवजीने बछड़ों तथा बालकोंको कृष्णके रूपमें देखकर जब कृष्णसे इसका कारण पूछा, तो कृष्णने उन्हें सारा रहस्य बता दिया। उधर ब्रह्मा अपने लोकके कालके अनुसार केवल एक त्रुटिका समय बीतनेके पश्चात् जब पुनः व्रजमें आये, तब तक मनुष्यलोकका एक वर्ष व्यतीत हो गया था। उन्होंने अपनी मायाके द्वारा सुलाये गये बछड़ों तथा ग्वाल बालकोंको उसी रूपमें देखा तथा साथ ही कृष्णको पहलेकी ही भाँति अपने

सखाओं तथा बछड़ोंके साथ क्रीड़ा करते हुए देखा। उसी समय उन समस्त बछड़ों तथा ग्वालबालकोंको अपने आराध्य पीताम्बरधारी चतुर्भुज नारायणके रूपमें देखकर ब्रह्माजी मोहित हो गये। जब कृपापूर्वक कृष्णने ब्रह्माको मायामुक्त किया, तो वे शान्त होकर भगवान्‌की लीलाओंका स्मरण करते हुए भगवान्‌की स्तुति करने लगे।

# त्रयोदशोऽध्यायः

## ब्रह्माजीका मोह और उसका नाश

**श्रीशुक उवाच—**

**साधुपृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम।**
**यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः॥ १॥**

**अन्वयः—**श्रीशुकः उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा) भागवतोत्तम (हे भगवद्भक्तप्रवर!) महाभाग (हे महात्मा परीक्षित्!) त्वया साधु पृष्टं (तुमने उत्तम प्रश्न किया है) यत् (जिससे) मुहुः (निरन्तर) ईशस्य (भगवान्‌की) कथां शृण्वन् अपि नूतनयसि (कथाको सुनकर भी उसे नये-नये रूपमें अनुभव कर रहे हो)॥ १॥

**अनुवाद—**श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे महाभाग परीक्षित्! तुम प्रेमी-भक्तोंमें श्रेष्ठ हो। तुमने अति उत्तम प्रश्न किया है, क्योंकि तुम निरन्तर हरिकथा सुनकर भी सर्वदा उसे नवनवायमान रूपमें अनुभव कर रहे हो॥ १॥

### सारार्थदर्शिनी टीका

जेमनं वत्सतत्पालहरणं ब्रह्ममोहनम्।
स्वभूतवत्सविष्णवादिप्रादुर्भावस्त्रयोदशे॥

विश्वस्य सृष्टिचादिविमोहनाद्यैश्वर्यं यदंशांशभवं स कृष्णः।
विश्वादिसृष्टिं बलदेवमोहं स्वैश्वर्यमत्रैक्षयतात्मयोनिम्॥

हे भागवतेषूत्तम, कथं मे भगवतोत्तमत्वम्? तत्राह—यदिति। नूतनयसि नूतनी-करोषि। श्रुतां मुहुरास्वादितामपि कथामश्रुतचरीमिव करोषीति कथायामनुरागो व्यञ्जितः॥ १॥

**भावानुवाद**—इस तेरहवें अध्यायमें कृष्णका पुलिन-भोजन, ब्रह्मा द्वारा बछड़ों और सखाओंका हरण, कृष्णके स्वरूपभूत ग्वालबालकों और बछड़ों आदिका विष्णुरूपमें आविर्भाव, बलदेव प्रभुका मोह, जिनके अंशके अंशसे सृष्टि आदि कार्य होते हैं एवं विमोहन आदि ऐश्वर्य प्रकट होते हैं, ऐसे श्रीकृष्ण द्वारा ब्रह्माके निकट अपना ऐश्वर्य प्रकटन—इन सभी विषयोंका वर्णन हुआ है।

श्रीशुकदेव गोस्वामीने परीक्षित् महाराजको भागवतोत्तम कहकर सम्बोधन किया। यदि वे कहें कि मैं कैसे भागवतोत्तम हूँ, तब कहते हैं कि तुम मेरे प्रभुकी कथाओंका पुनः-पुनः श्रवण और आस्वादन करनेपर भी उन्हें अश्रुतचारीकी भाँति नवनवायमान रूपमें अनुभव कर रहे हो। इससे तुम्हारा कथाके प्रति अनुराग प्रकाशित हो रहा है॥ १॥

**सतामयं सारभृतां निसर्गो, यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि।**
**प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत्, स्त्रियां विटानामिव साधु वार्ता॥ २॥**

**अन्वयः**—यदर्थवाणीश्रुतिचेतसां (श्रीकृष्णकी कथा ही जिनका एकमात्र अर्थ है, अर्थात् जिनके वाक्य, कर्ण और चित्तके विषय एकमात्र कृष्ण हैं, ऐसे) सारभूतां (सारग्राही) सतां (साधुओंका) अयं निसर्गः (यह स्वभाव है) यत् (जिससे) (उनके निकट) अच्युतस्य वार्ता (श्रीकृष्णकथा) विटानां (स्त्रैण व्यक्तियोंके निकट) स्त्रियाः इव (कामिनियोंकी बातें जिस प्रकार) प्रतिक्षणं (सर्वदा) साधु (रुचिकर होती हैं, वैसे ही साधुओंको भी) नव्यवत् (नये-नये रूपमें प्रतीयमान होती हैं)॥ २॥

**अनुवाद**—जिनकी वाणी, कर्ण और हृदय भगवान्‌की लीला-कथाओंके श्रवण और चिन्तनमें सर्वदा रमे रहते हैं, उन सब सारग्राही साधुओंको स्वभावसे ही कृष्ण-कथाएँ उसी प्रकार नवनवायमान रूपमें प्रतीत होती है जिस प्रकार लम्पट व्यक्तिको स्त्रियोंकी चर्चामें नित्य-नूतन रसकी अनुभूति होती है॥ २॥

**सारार्थदर्शिनी**—सारभृतां सारग्राहिणामयं निसर्गः अच्युतस्य वार्ता प्रतिक्षणं क्षणे क्षणे साधु यथास्यात्तथा नव्यवद्भवति तृणाधिक्यादपूर्ववत्जायते यदर्थानि

अच्युतवार्ता प्रयोजनानि वाणीश्रुतिचेतांसि येषां तथा भूतानामपि तदेकलाम्पट्यांशे दृष्टान्तः। विटानां कामुकानां स्त्रिया वार्त्तेव कामिनीकथेव॥ २॥

**भावानुवाद**—सारग्राही साधुओंका स्वभाव ही है कि उन्हें श्रीकृष्णकी कथा अत्यधिक तृष्णाके कारण प्रतिक्षण नवनवायमान तथा अपूर्व रूपमें अनुभव होती है। ऐसे साधुओंका लक्षण क्या है? इसके उत्तरमें कहते हैं—श्रीकृष्ण ही उनकी वाणी, कर्ण और मनके विषय होते हैं। जिस प्रकार एक कामी पुरुषको कामिनीकी कथा अच्छी लगती है, उसी प्रकार भक्तोंको भगवान्‌की कथा बड़ी प्यारी लगती है॥ २॥

**शृणुष्वावहितो राजन्नपि गुह्यं वदामि ते।**
**ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत॥ ३॥**

**अन्वयः**—राजन् अवहितः (हे राजन्! सावधान होकर) शृणुष्व (कृष्णकथा श्रवण करें) गुह्यम् अपि (वह भगवत्-तत्त्व गोपन होनेपर भी) ते (तुम्हारे समक्ष) वदामि (उसका वर्णन कर रहा हूँ) [यतः क्योंकि] गुरवः गुह्यम् अपि उत (गुरुवर्ग गोपनीय तत्त्वका भी) स्निग्धस्य शियस्य (अनुगत प्रिय शिष्यके समक्ष) ब्रूयुः (वर्णन करते हैं)॥ ३॥

**अनुवाद**—हे परीक्षित्! तुम एकाग्रचित्तसे सुनो। यह भगवत्-तत्त्व अति गोपनीय होनेपर भी मैं तुम्हारे समक्ष इसका वर्णन कर रहा हूँ, क्योंकि गुरुजन अपने अनुगत प्रिय शिष्यको अति गूढ़तत्त्व भी बता दिया करते हैं॥ ३॥

**तथाघवदनान्मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान्।**
**सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत्॥ ४॥**

**अन्वयः**—अथ भगवान् (हे राजन्! अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण) मृत्योः (मृत्युरूप) अघवदनात् (अघासुरके मुखसे) वत्सपालकान् रक्षित्वा सरित्पुलिनं (वत्सपालकोंकी रक्षाकर उन्हें यमुनाके तटपर) आनीय (लाकर) इदम् अब्रवीत् (ऐसा कहने लगे)॥ ४॥

**अनुवाद**—हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण मृत्युरूपी अघासुरके मुखसे बछड़ों एवं ग्वालबालोंकी रक्षाकर उन्हें यमुनाके पुलिनपर ले आये और उनसे कहने लगे॥४॥

**अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः, स्वकेलिसम्पन्मृदुलाच्छबालुकम्।**
**स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिक-ध्वनि प्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम्॥५॥**

**अन्वयः**—वयस्याः (हे सखाओ!) स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिक ध्वनिप्रतिध्वानलसद्रुमाकुलं (विकसित पद्मगन्धसे आकृष्ट भ्रमरों एवं पक्षियोंकी ध्वनिकी प्रतिध्वनिसे सरोवरके किनारे स्थित वृक्षसमूह व्याप्त हो रहे हैं) स्वकेलिसम्पद् (यह स्थान हमारे क्रीड़ाविहारके लिए उपकरण रूपमें विभूषित) मृदुलाच्छबालुकं (अतिशय कोमल और निर्मल बालूसे परिपूर्ण) पुलिनं (यह यमुनाका तट) अहो अतिरम्य (अहो अत्यन्त रमणीय है)॥५॥

**अनुवाद**—हे प्रिय सखाओ! देखो, यह यमुना-पुलिन अत्यन्त रमणीय है। इसमें विकसित कमलोंकी गन्धसे आकृष्ट भ्रमरोंके गुञ्जन और पक्षियोंके कलरवकी प्रतिध्वनिसे तीरपर स्थित समस्त वृक्ष गूँज रहे हैं। यह स्थान कोमल एवं निर्मल बालूसे परिपूर्ण होनेके कारण हमारी क्रीड़ाके लिए समस्त प्रकारकी सामग्रियोंसे परिपूर्ण है॥५॥

**सारार्थदर्शिनी**—भोजनार्थं तदुचितं स्थलं स्तौति—अहो इति। स्वकेलीनां बहुपंक्तिमद्भोजनक्रीडानां सम्पदो यत्र तदिति स्थानविस्तीर्णत्वं। मृदुला आच्छ बालुका यत्र तदित्युपवेसुखं प्रफुल्लबहुलसरोजवत्वात् स्फुटतः सरसः एव गन्धेन हृता आकृष्टा अलयः पत्रिणश्च ये तेषां के उदके ध्वनयः तेषां प्रतिध्वानास्तैर्लसन्तो द्रुमास्तैराकुलं व्याप्तमिति भेजनापेक्षणीयधूपादिसौरभ्यवीणादिवाद्य सुवासित-शीतलजलस्निग्धच्छायादिसामग्री दर्शिता॥५॥

**भावानुवाद**—भोजनके लिए योग्य सुरम्य स्थानकी प्रशंसा करते हुए कह रहे हैं—अहो! यह पुलिन अति रमणीय है। यहाँपर हमारे श्रेणीबद्ध होकर भोजन करनेके लिए तथा खेलनेके लिए बहुत-से उपकरण हैं। इस यमुना-पुलिनपर अत्यन्त कोमल और स्वच्छ बालू फैली है, जिसपर हम सुखपूर्वक बैठ सकते हैं। साथ ही यह स्थान

यमुनामें खिले हुए कमलोंके सौरभसे सुवासित है एवं उस सौरभसे आकृष्ट होकर वहाँपर आये भ्रमरों एवं पक्षियोंकी मधुर ध्वनिसे तटपर स्थित श्रेणीबद्ध वृक्षसमूह गूँज रहे हैं।

यहाँपर भोजनकालके उपयुक्त धूप आदिकी गन्ध, वीणा आदि मधुर वाद्य, सुवासित शीतल जल, अत्यन्त मनोरम छाया आदि सभी सामग्रियाँ विद्यमान हैं॥ ५॥

**अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवारूढं क्षुधार्दिताः।**
**वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरन्तु शनकैस्तृणम्॥ ६॥**

**अन्वयः**—अत्र अस्माभिः भोक्तव्यं (अतएव हमें यहाँपर भोजन करना चाहिये) दिवा आरूढं (समय बीत रहा है और) क्षुधार्दिता (हम भूखसे पीड़ित हो रहे हैं) वत्साः (बछड़े) अपः (जल) पीत्वा (पानकर) समीपे (निकटमें ही) शनकैः (धीरे-धीरे) तृणं चरन्तु (घास चरते रहें)॥ ६॥

**अनुवाद**—यह स्थान हमारे भोजन करनेके लिए उपयुक्त है। दिन भी बहुत चढ़ आया है और हम भूखसे व्याकुल हो रहे हैं। बछड़े पानी पीकर निकट ही धीरे-धीरे घास चरते रहें॥ ६॥

**सारार्थदर्शिनी**—दिवारूढं दिवाकर उद्ध्र्वाकाशमारूढ इत्यर्थः॥ ६॥

**भावानुवाद**—सूर्यदेव मध्य आकाशमें पहुँच गये हैं, अर्थात् भोजनका समय प्रायः बीत गया है॥ ६॥

**तथेति पाययित्वार्भा वत्सानारुध्यशाद्वले।**
**मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भागवता मुदा॥ ७॥**

**अन्वयः**—अर्भाः (बालकोंने) तथा इति (कृष्णकी बात स्वीकारकर) वत्सान् पाययित्वा (बछड़ोंको जल पिलाकर) शाद्वले (हरी-हरी घासमें) आरुध्य (छोड़कर) शिक्यानि (वृक्षोंमें रखे छीकोंको) मुक्त्वा (खोलकर) भगवता समं (भगवान्के साथ) मुदा (आनन्दसे) बुभुजुः (भोजन करने लगे)॥ ७॥

**अनुवाद**—ग्वालबालोंने कृष्णकी बातको स्वीकार कर लिया। उन्होंने बछड़ोंको जल पिलाकर हरे-भरे घासके मैदानमें छोड़ दिया तथा वृक्षोंमें बँधे हुए अपने छीकोंको खोलकर भगवान्‌के साथ आनन्दपूर्वक भोजन करने लगे॥ ७॥

**सारार्थदर्शिनी**—शाद्वले हरिततृण बहुलदेशे आरुध्येति तेषां तत्तृणलोभादेवान्यत्र गमनासमर्थमननात्॥ ७॥

**भावानुवाद**—हरे-भरे घासके मैदानमें बछड़ोंको छोड़ दिया, जिससे कि वे घास चरनेके लोभसे अन्यत्र न जायें॥ ७॥

**कृष्णस्य विष्वक् पुरुराजिमण्डलै-रभ्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः।**
**सहोपविटा विपिने विरेजु-श्छदा यथाम्भोरुहकर्णिकायाः॥ ८॥**

**अन्वयः**—कृष्णस्य विष्वक् (कृष्णके चारों ओर) पुरुराजि मण्डलैः (अनेक पंक्तियोंमें) सहोपविटाः (उपविष्ट) अभ्याननाः (कृष्णकी ओर मुख करके) फुल्लदृशः (विकसित नयनयुक्त) व्रजार्भकाः (व्रजबालकगण) विपिने (वनमें) अम्भोरुह कर्णिकायाः छदाः यथा (कमलके मध्यस्थित कर्णिकाके चारों ओर पँखुड़ियोंकी भाँति) विरेजुः (सुशोभित हुए)॥ ८॥

**अनुवाद**—कमलकी कर्णिकाके चारों ओर जिस प्रकार छोटी-बड़ी पँखुड़ियाँ सुशोभित होती हैं, ठीक उसी प्रकार वनभोजनके समय वनमें व्रजबालक कृष्णके चारों ओर बहुत-सी मण्डलाकार पंक्तियाँ बनाकर एक-दूसरेसे सटकर तथा आनन्दसे प्रफुल्ल नेत्रों सहित कृष्णके सम्मुख बैठ गये॥ ८॥

**सारार्थदर्शिनी**—तेषां भोजनोपवेशपरिपाटीमाह—कृष्णस्य विवक् परितः पुरुराजमण्डलैः *"सुपांसुप"* इति तृतीया। बहुशु पंक्तिमण्डलेष्वित्यर्थः। अभ्याननाः प्रेम्णा सर्वसाम्मुख्यस्पृहावतो भगवतः सत्यसङ्कताशक्त्यैवोद्गारितेन अचिन्त्यवैभवेन निष्पादितात् मुखाद्यङ्गानां सर्वदिक्षु प्रकाशात्। कृष्णस्याभिमुखे सन्निहितपङ्क्तौ वयमेव वर्तामहे अन्ये तु व्यवहितपङ्क्तिषु पार्श्वतः पृष्ठतश्चोपविष्टा इति सर्व एवाभिमानवन्त इत्यर्थः। तेन च *"सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्"* इत्यर्थो दर्शितः। सह नैरन्तर्येणोपविष्टाः। छदाः पत्राणि यथा कमलकर्णिकायाः परितो मिलतीभूय बहुपंङ्क्तिषु तिठन्ति तथेत्यर्थः॥ ८॥

**भावानुवाद**—भोजनके समय सखाओंके बैठनेकी परिपाटीका वर्णन कर रहे हैं। वे बहुत-सी गोलाकार पंक्तियाँ बनाकर कृष्णकी ओर मुख करके बैठ गये। "मैं कृष्णके सामने बैठूँ", सबकी इस प्रीतियुक्त इच्छाको देखते हुए कृष्णकी सत्यसङ्कल्पता-शक्तिके अचिन्त्य वैभवके कारण उस समय कृष्णके मुख आदि अङ्गसमूह सभी दिशाओंमें प्रकट हो गये। इससे सभी गोपबालक यही समझने लगे कि कृष्ण केवल मेरे ही सामने बैठे हुए हैं तथा अन्य बालक कृष्णके पीछेकी ओर या उनके बगलमें बैठे हैं। इससे उस समय "सर्वत्र कृष्णके नेत्र, मस्तक और मुख आदि हैं" यह श्रुतिका अर्थ प्रतिपादित होने लगा। कैसे? इसके उत्तरमें कह रहे हैं—*'छदाः'* अर्थात् सखागण कमलकी कर्णिकाके चारों ओर स्थित पंखुड़ियोंकी बहुत-सी पंक्तियोंके समान सुशोभित होने लगे॥ ८॥

**केचित् पुष्पैर्दलैः केचित् पल्लवैरङ्कुरैः फलैः।**
**शिग्भिस्त्वग्भिर्दृशद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः॥ ९॥**

**अन्वयः**—[उन बालकोंमेंसे] केचित् पुष्पैः केचित् दलैः (कोई फूलोंके द्वारा और कोई पत्तोंके द्वारा) [एवं] पल्लवैः अङ्कुरैः फलैः शिग्भिः (पल्लव, अङ्कुर, फल और छीका आदिके द्वारा) त्वग्भिः (वृक्षोंकी छालसे) दृशद्भिः च (और प्रस्तरोंके द्वारा) कृत भाजनाः (भोजनपात्र बनाकर) बुभुजुः (भोजन करने लगे)॥ ९॥

**अनुवाद**—बालकोंमेंसे किसीने पुष्प, किसीने पत्ते, किसीने पल्लव, किसीने अङ्कुर, किसीने फल, किसीने छीके, किसीने वृक्षोंकी छाल और किसीने पत्थरसे ही भोजनका पात्र बनाकर भोजन करना आरम्भ किया॥ ९॥

**सारार्थदर्शिनी**—केचिदिति। पुष्पादिभिः स्वस्वभाजननिर्माणं बालकानां प्रत्येकापूर्वरचनाकौतुकेच्छयैवेति ज्ञेयम्॥ ९॥

**भावानुवाद**—*'केचित'*—पुष्प आदिके द्वारा अपने-अपने भोजनपात्रका निर्माण प्रत्येक बालककी अपूर्व रचनाकौतुककी इच्छासे ही सम्पन्न हुआ था—ऐसा जानना होगा॥ ९॥

**सर्वे मिथो दर्शयन्तः स्वस्वभोज्यरुचिं पृथक्।**
**हसन्तो हासयन्तचाभ्यवजह्रुः सहेश्वराः॥ १०॥**

**अन्वयः**—सहेश्वराः (कृष्णके साथ) सर्वे मिथः (सभी बालकगण परस्पर एक-दूसरेको) स्व-स्व भोज्य रुचिं (अपने-अपने घरोंसे लाये हुए अन्न, व्यञ्जन आदिका स्वाद) पृथक् दर्शयन्तः (पृथक्-पृथक् दिखाकर) हसन्तः (हँसते हुए तथा) हासयन्तः च अभ्यवजह्रुः (हँसाते हुए भोजन करने लगे)॥ १०॥

**अनुवाद**—कृष्णके साथ सभी ग्वालबाल परस्पर एक-दूसरेको अपने-अपने घरोंसे लाये हुए अन्न-व्यञ्जनादिका स्वाद दिखाकर अर्थात् हे कृष्ण! हे सुबल! देखो, इसका स्वाद कैसा मधुर है—इस प्रकार एक-दूसरेको चखाकर स्वयं हँसते और दूसरेको हँसाते हुए भोजन करने लगे॥ १०॥

**सारार्थदर्शिनी**—सहेश्वराः सकृष्णा एव सर्वे स्वस्वभोज्यस्य स्वस्वगृहानीतस्य भक्ष्यस्यान्नव्यञ्जनादेः रुचिं रोचकतां दर्शंयन्तः स्वीयवटकशाकरसालादिकं स्वयं किञ्चिद्भुक्त्वा आस्वादविशेषमनुभूय भो सखे, भो कृष्ण, भो श्रीदामन्, भो सुबल पश्यत पश्यत मदीयवटकादिकं कीदृशं स्वाद्विति स्वभक्ष्यपात्रात्तद्गृहीत्वा कृष्णादीनां हस्तेषु ददानास्तांस्तदास्वादमनुभावयन्त इत्यर्थः। हसन्तो हासयन्त इति जातीमालत्यादि पुष्पाणि वटकान्तरे वा अलक्षितमर्पयित्वा भोः सखायः! एतानतिस्वादुतमान् वटकानास्वादयतेत्युक्तिविश्वासात् सस्पृहं गृहीत्वा तान् भुञ्जानान् कटुकृतमुखान् दृष्ट्वा हसन्तो हासयन्तश्चकारात्तैः सहर्षकौतुकं ताड्यमानाः पलायमानाश्च॥ १०॥

**भावानुवाद**—कृष्णके साथ सभी गोपबालक अर्थात् कृष्ण आदि सभी बालक अपने-अपने घरोंसे लाये हुए अन्न-व्यञ्जन आदिका आस्वादन दिखलाने लगे, अर्थात् अपने लड्डू, मिठाई, पकौड़ा, शाक आदिमेंसे कुछ स्वयं खाकर उसके स्वादको अनुभवकर कहने लगे—हे कृष्ण! हे सुबल! हे श्रीदाम! मेरे लड्डू, पकौड़े कितने स्वादिष्ट हैं, इन्हें खाओ। ऐसा कहकर अपने भोजन-पात्रमेंसे उन वस्तुओंको कृष्ण तथा अन्य सखाओंके हाथोंमें देकर उनका स्वाद चखाने लगे—यह भावार्थ है। कभी-कभी एक बालक जाती, मालती आदिके फूलोंको तथा नीमके पत्तोंको पकौड़े, मिठाई आदिमें भरकर एक सखासे

कहता—देखो सखा! यह कितना स्वादिष्ट पकौड़ा है? लो, इसे खाओ। उसकी बातोंमें विश्वासकर वह बालक उसे खा लेता तथा मुखमें डालते ही—हा, कितना कड़वा है—इस प्रकार उसका विकृत मुख देखकर सभी लोग हँसने लगते तथा दूसरोंको हँसाते। 'च'कारके प्रयोगसे अर्थ यह है कि हास्य कौतुक-सहित आनन्दपूर्वक भोजन करते हुए कोई सखा दूसरेको मारकर भी भाग जाता था॥ १०॥

**विभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे**
**वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु।**
**तिष्ठन् मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैः**
**स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः॥ ११॥**

**अन्वयः**—यज्ञभुक् (सर्वयज्ञ-भोक्ता) बालकेलिः (बालकोंके समान क्रीड़ापरायण होकर) जठरपटयोः (उदरके वस्त्रमें) वेणुं (वंशीको) विभ्रत् (धारणकर) वामे कक्षे च शृङ्गवेत्रे (बायीं कोखमें शृङ्ग, वेत्र और) पाणौ (हाथोंमें) मसृणकवलं (दही, चावल आदि) अङ्गुलिषु (अङ्गुलियोंके बीचमें) तत्फलानि (उसके अनुरूप बिल्व आदि फल) विभ्रत् (धारणकर) मध्ये तिष्ठन् (कर्णिकाकी भाँति मध्यमें अवस्थित होकर) स्वैः (अपने द्वारा आचरित) नर्मभिः (परिहास वाक्योंके द्वारा) स्वपरिसुहृदः (अपने चारों और बैठे हुए सुहृदोंको) हासयन् (हँसाते हुए) स्वर्गे लोके मिषति (स्वर्गवासियोंके देखते-देखते) बुभुजे (भोजन करने लगे)॥ ११॥

**अनुवाद**—जो समस्त यज्ञोंके भोक्ता हैं, उन कृष्णने बालकोचित क्रीड़ा करते हुए फेंटेके मध्यमें वंशी खोंस रखी थी, शृङ्ग एवं बेंत बगलमें दबाये थे, बायें हाथमें दधि-मिश्रित भातका कौर ले रखा था, अङ्गुलियोंके बीचमें बेल आदि फल धारण किये हुए थे तथा कमलकी कर्णिकाके समान वे सब ग्वालबालोंसे घिरकर बीचमें बैठे हुए थे। वे अपने विनोदपूर्ण परिहास वचनोंसे अपने चारों ओर बैठे हुए मित्रोंको हँसाते हुए भोजन कर रहे थे। उस समय स्वर्गके देवता उनकी लीलाको आश्चर्यचकित होकर देख रहे थे॥ ११॥

**सारार्थदर्शिनी**—तेष्वपि मध्ये कृष्णस्य भोजनलीलां सर्वविलक्षणमाह—विभ्रदिति। जठरपटयोरुदरवस्त्रयोर्मध्ये वेणुं बिभ्रत् दधत् दक्षिणकुक्षिकावेवेति शोभौचित्यादिति ज्ञेयम्। वामकक्षे शृङ्गवेत्रे विभ्रत् वामे पाणौ मसृणं स्निग्धं वृहत् दध्योदनकवलं विभ्रत्तत्फलानि तदुचितानि सन्धितकरीरलवल्यादीनि अङ्गुलीषु वामपाणि अङ्गुलिसन्धिषु पाणेर्विस्तारार्थमिति भावः। यद्वा, तत्फलानि तत्प्रयोजनीभूतान् क्षुद्रग्रासान् दक्षिणपाण्यङ्गुलीषु विभ्रत् मुखप्रवेशयोग्यान् बहुतरग्रासान् ततः पृथक्कृत्य ग्रहीतुमेव वामे पाणौ वृहत्कवलग्रहणं ज्ञेयम्। कर्णिकेव सर्वाभिमुखो मध्ये तिष्ठन् स्वैर्नर्मभिरिति। भो भृङ्गा! किं मन्मुखाभिमुखं धावत? सुकुमारं मधुमङ्गलम् पुरःस्थितं पिबत। भो वयस्य! ब्राह्मणकुमारं मां किं भृङ्गैः खादयसि मन्ये ब्रह्महत्यायामपि ते न भयमिति। भो एतद्वनस्था वानरा! युष्मासु बुभुक्षुषु जाग्रत्स्वपि मत्प्रियसखाः निर्विघ्नं भुञ्जते तदलक्षितमागच्छतेति तस्य नर्म सत्यसङ्कल्पताशक्ति-लीलाशक्तिभ्यामपि स्वामिन्, प्रभो! कौतुकार्थं यदि भोजने विघ्नमीहसे तर्ह्यावाभ्यां तदर्थं ब्रह्मा सम्प्रत्येवानीयत इत्यलक्षितमनुमोदितमिति ज्ञेयं। स्वर्गे लोके तद्वासिजनवृन्दे मिषति आश्चर्येण पश्यति सति यज्ञभुक् यज्ञेषु उद्देशमात्रेण समर्पितमनुपहतं मन्त्रपूतमेव हविःस्वीकारमात्रेणैव भुञ्जानोऽपि बालैः सह केलिर्मिथो भुक्तान्नादान-प्रदान-भोजनश्लाघननिन्दनादिमयी यस्य सः॥ ११॥

**भावानुवाद**—अनन्तर गोपबालकोंके साथ कृष्णकी भोजन-लीलाका विशेष रूपसे वर्णन कर रहे हैं। कृष्णने कमरके फेंटेमें वेणु धारण कर रखी थी। उनकी बाँयी कोखमें शृङ्ग और लकुटी दबे थे। उन्होंने अपने बाँये हाथमें दही-मिश्रित भातका बड़ा ग्रास और अङ्गुलियोंके बीचमें भोजनके उपयोगी रुचि बढ़ानेवाले फल, अचार, चटनी आदि फँसा रखे थे और दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंसे छोटे-छोटे ग्रास मुखमें डाल रहे थे। वे कमलकी कर्णिकाकी भाँति सभी सखाओंके बीचमें सबकी ओर मुख करके बैठे हुए थे तथा अपने नर्म परिहासपूर्ण वचनोंसे उन्हें हँसा रहे थे। जैसे—"अरे भ्रमरो! मेरे मुँहकी ओर क्यों आ रहे हो? सामने बैठे हुए अति सुकुमार मधुमङ्गलके मुखका मधु पान करो।" यह सुनकर मधुमङ्गल कहने लगा—"प्यारे मित्र! मैं ब्राह्मणका पुत्र हूँ, तुम मुझे भ्रमरोंसे क्यों कटवा रहे हो? लगता है तुम्हें ब्रह्महत्याका भी कोई डर नहीं है।" अथवा "अरे वनके बन्दरो! तुम भूखे लग रहे हो, फिर भी मेरे प्रिय सखागण निर्विघ्न रूपसे भोजन कर रहे हैं। अतएव आना है तो अलक्षित रूपमें आ जाओ,

जिससे कोई देखे नहीं।" इस प्रकार कृष्णके परिहासपूर्ण वचनोंसे उनकी सत्यसङ्कल्पता-शक्ति एवं लीलाशक्ति भी मानो कहने लगीं—"प्रभो! कौतुकके लिए यदि आप भोजनमें बाधा डलवानेकी इच्छा रखते हैं, तो हम उस कार्यके लिए ब्रह्माको ला रही हैं।" अलक्षित रूपसे उन्हें कृष्णका अनुमोदन भी प्राप्त हुआ। *'स्वर्गे लोके मिषति'*—उस समय स्वर्गलोकवासी देवता भी परम विस्मित होकर उस लीलाका दर्शन कर रहे थे। भगवान् श्रीहरि यज्ञभुक् हैं, अर्थात् वे यज्ञमें मन्त्रपूत हविके भोक्ता हैं। *'बालकेलिः'*—इस प्रकार कृष्ण गोपबालकोंके साथ साधारण बालकोंके समान ही क्रीड़ा-कौतुक करते हुए भोजन कर रहे थे, अर्थात् एक-दूसरेको जूठा खिला रहे थे एवं खा रहे थे तथा कभी-कभी भोजनकी प्रशंसा एवं निन्दा आदि भी कर रहे थे॥ ११॥

**भारतैवं वत्सपेषु भुञ्जानेष्वच्युतात्मसु।**
**वत्सास्त्वन्तर्वने दूरं विविशुस्तृणलोभिताः॥ १२॥**

**अन्वयः**—भारत (हे परीक्षित्!) एवं अच्युतात्मसु (कृष्णपरायण चित्तवाले) वत्सपेषु (बछड़ोंको चरानेवाले बालकोंके) भुञ्जानेषु (भोजन करते समय) वत्साः तु (सभी बछड़े) तृणलोभिताः (घास खानेके लोभसे) दूरं अन्तर्वने (दूर घने वनमें) विविशुः (प्रवेश कर गये)॥ १२॥

**अनुवाद**—हे भरतवंश-शिरोमणि परीक्षित्! इस प्रकार भोजन करते-करते ग्वालबाल भगवान्‌की इस कौतूकमयी लीलामें पूर्ण रूपसे विभोर हो गये और उधर बछड़े हरी-हरी घासके लोभसे बहुत दूर घने वनमें प्रवेश कर गये॥ १२॥

**तान् दृष्ट्वा भयसन्त्रस्तान् ऊचे कृष्णोऽस्य भीभयम्।**
**मित्राण्याशान्माविरमतेहानेष्ये वत्सकानहम्॥ १३॥**

**अन्वयः**—कृष्णः तान् (कृष्णने उन गोपबालकोंको) भयसन्त्रस्तान् (बछड़ोंके दूर जानेसे, हिंसक प्राणियोंके द्वारा उनके अनिष्टकी आशङ्कासे भयभीत) दृष्ट्वा भीभयं अस्य (देखकर विश्वके भय-स्वरूप

मृत्युके लिए भी भयप्रद कृष्णने) ऊचे (कहा) मित्राणि (हे मित्रो!) आशात् मा विरमत (तुमलोग भोजन करना बन्द मत करो) अहं वत्सकान् इह आनेष्य (मैं बछड़ोंको यहाँ लेकर आता हूँ)॥ १३॥

**अनुवाद**—जब ग्वालबाल बछड़ोंको न देखकर बहुत डर गये, तब विश्वके भय-स्वरूप मृत्युको भी भय प्रदान करनेवाले कृष्ण ग्वालबालकोंको अभय प्रदान करते हुए कहने लगे—मित्रो! तुमलोग भोजन करना बन्द मत करो। मैं अभी बछड़ोंको यहाँ ले आता हूँ॥ १३॥

**सारार्थदर्शिनी**—अस्य विश्वस्य या भीस्तस्या अपि भयं भयप्रद इत्यर्थः। हे मित्राणीति स्नेहं सूचयति—'आशात्' भोजनात् श्लोकोऽयं नवाक्षरैकपादोऽनुटुब्भेद इति प्राञ्चः॥ १३॥

**भावानुवाद**—*'अस्य भीभयम्'*—विश्वका जो भय है, उसके लिए भी भयप्रद हैं अर्थात् कृष्ण सबके लिए भयदाता हैं—यह अर्थ है। *'हे मित्रो'*—इससे सखाओंके प्रति उनका स्नेह प्रकाशित होता है। *'आशात्'*—भोजनसे तुम लोग विरत मत होओ॥ १३॥

**इत्युक्त्वाद्रिदरीकुञ्जगह्वरेष्वात्मवत्सकान् ।**
**विचिन्वन् भगवान् कृष्णः सपाणिकवलो ययौ॥ १४॥**

**अन्वयः**—इति उक्त्वा भगवान् कृष्णः स पाणिकवलः (यह कहकर श्रीकृष्ण दही और चावल मिश्रित भोजनका ग्रास हाथमें लेकर) आत्मवत्सकान् (अपने तथा सहचरोंके बछड़ोंको) विचिन्वन् (खोजते हुए) अद्रिदरीकुञ्जगह्वरेषु (पर्वतकी कन्दराओं, कुञ्जों, लताओंसे आच्छादित तथा बीहड़ आदि स्थानोंमें सर्वत्र) ययौ (गये)॥ १४॥

**अनुवाद**—ग्वालबालोंसे इस प्रकार कहकर भगवान् कृष्ण दधि एवं भात मिश्रित कौरको हाथमें लिये हुए ही अपने तथा सहचरोंके बछड़ोंको खोजते हुए पर्वतों, कन्दराओं, कुञ्जों एवं बीहड़ आदि सभी स्थानोंमें विचरण करने लगे॥ १४॥

**सारार्थदर्शिनी**—सपाणिकवल इति वत्सान्वेषणसमयेऽपि किञ्चिद्भोक्तुमिति भाव॥ १४॥

**भावानुवाद**—कृष्ण दही-मिश्रित अन्न हाथमें लेकर ही बछड़ोंको ढूँढ़नेके लिए चल दिये। बछड़ोंको ढूँढ़ते समय भी भोजन करनेके लिए ही हाथमें कुछ दधि-मिश्रित अन्न ले लिया—यह भावार्थ है॥ १४॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित्के प्रश्नको सुनकर बड़े सन्तुष्ट हुए और उन्हें विविध प्रकारसे साधुवाद देते हुए उनकी श्रीकृष्णलीलाकथा श्रवण करनेकी पिपासाकी प्रशंसा करके कहने लगे—"हे राजन्! उन भक्तवत्सल, परम अचिन्त्य मधुर-लीलापरायण नन्दनन्दनने साक्षात् मृत्युरूप अघासुरके मुखमेंसे बछड़ों और बालकोंकी रक्षा की तथा अघासुरका वधकर उसे मुक्ति प्रदान की। तत्पश्चात् बछड़ों और बालकोंके साथ यमुना-पुलिनमें आकर उपस्थित हुए।"

स्वभावतः ही सर्वजन-मनोहर सौन्दर्यराशिसे नित्य शोभामय यमुना-पुलिन, कृष्णके आगमनसे मानो और भी सुन्दर हो उठा। वह पुलिनभूमि यमुनाके सुशीतल जलकणोंसे भीगी हुई थी और उसकी बालू कर्पूर-चूर्णकी भाँति स्वच्छ एवं सुकोमल थी। जलमें प्रस्फुटित कमल मृदुमन्द पवनके झोकोंसे झूमते हुए चारों ओर अपनी सुगन्ध विस्तार कर रहे थे। उस सुगन्धसे आकर्षित होकर भ्रमर उनपर गुञ्जार कर रहे थे। तटवर्त्ती वृक्षोंकी शाखाओंपर शुक-सारी-कोयल आदि पक्षी सुमधुर कलरव कर रहे थे।

यमुना-पुलिनमें आकर कृष्ण श्रीदाम, सुबलादि सखाओंसे कहने लगे—"प्यारे सखाओ! देखो, यमुना-पुलिनकी कैसी अपूर्व शोभा हो रही है। देखो! देखो! एक ओर नील वर्णकी यमुना अपनी लहरियोंके रूपमें कलनाद करती हुई प्रवाहित हो रही है, तो दूसरी ओर नवीन पल्लवोंके द्वारा सुशोभित वृक्षसमूह श्रेणीबद्ध होकर फल-फूलोंके भारसे नतमस्तक होकर पुलिनमें समागत अतिथियोंका स्वागत-अभिनन्दन कर रहे हैं। स्थान-स्थानमें सञ्चित वर्षाके जलसे परिपूर्ण जलाशय प्रफुल्लित कमल पुष्पोंसे अपने वक्षःस्थलको आच्छादित किये हुए हैं। भ्रमर-गुञ्जनके बहाने परमानन्दसे गान कर रहे हैं। कुछ ही दूरीपर सुकोमल हरी-हरी घाससे आच्छादित

सुविशाल मैदान है, जिसमें हमलोगोंके बछड़े आनन्दसे चर सकते हैं। इसके अतिरिक्त सफेद बालुकाराशिसे आच्छादित यह विशाल यमुना-पुलिन कितना सुन्दर है। हम सबके क्रीड़ा-विहार आदिके लिए यह उपयुक्त स्थान है, अतः हम सभी यहाँपर वृक्षकी छायामें बैठकर भोजन करें।" कृष्णकी यह बात सुनकर श्रीदाम, सुबल आदि सखाओंने बछड़ोंको पानी पिलाकर हरे-भरे मैदानमें छोड़ दिया एवं सभी अपने-अपने भोजनके पात्र लेकर कृष्णके चारों ओर मण्डलाकारमें बैठ गये तथा पत्तों एवं वृक्षोंकी छाल आदिसे बनाये गये भोजन पात्रोंमें अपने-अपने छीकेमें रखी हुई भोजन सामग्रीको डालकर भोजन करने लगे।

सभी अपनी-अपनी भोजन सामग्रीमेंसे सुन्दर, स्वादिष्ट मिठाई, लड्डू, पकौड़े आदि खाने लगे तथा कृष्णको खिलाने लगे। कृष्ण भी स्वयं खाने और सखाओंको खिलाने लगे। सखा भी कृष्णका उच्छिष्ट पाकर अत्यन्त आनन्दित हो रहे थे।

कोई बालक पकौड़ोंमें नीमका पत्ता डालकर चतुरता सहित किसी दूसरे बालकको खिला देता, जब वह बालक मुख-विकृत करता, तब सभी ताली बजाने लगते। कभी कोई-कोई गोपबालक एक-दूसरेके ऊपर लड्डू आदि फेंकने लगते, कभी एक-दूसरेके सिरपर दही, खीर आदि डाल देते, कभी कोई दूसरेका भोजन लेकर दूर फेंक देता। इस प्रकार कृष्ण और गोपबालक आनन्दसमुद्रमें डूबकर भोजन कर रहे थे।

कृष्णको इस प्रकार भोजन करते हुए देखकर बादलोंकी आड़में उपस्थित ब्रह्मा और इन्द्रादि देवगण अत्यन्त विस्मित होकर मन-ही-मन विचार करने लगे—अचिन्त्यलीला-सुधानिधि भक्तवत्सल भगवान्‌की यह कैसी अपूर्व प्रेमाधीनता है, जो सर्व-यज्ञभोक्ता यज्ञपुरुष होते हुए भी परम आनन्दपूर्वक बालकोंके उच्छिष्ट लड्डू आदि खा रहे हैं।

इधर कृष्ण एवं सखा आनन्दपूर्वक भोजन कर रहे थे, परन्तु उधर बछड़े हरी-हरी घासके लोभसे आगे बढ़ते हुए वहाँसे बहुत दूर घने वनमें पहुँच गये। कुछ समय पश्चात् जब गोपबालकोंकी दृष्टि मैदानकी ओर पड़ी, तो वहाँपर एक भी बछड़ेको न देखकर वे

अधीर और भयभीत होकर कृष्णसे कहने लगे—"सखे! हम लोगोंका एक भी बछड़ा दिखायी नहीं दे रहा है। तो क्या कहीं वही अजगर फिरसे हमारे बछड़ोंको तो नहीं खा गया? क्योंकि उसे मारनेके पश्चात् हमने जलाया नहीं था। इसीलिए क्या वह फिरसे जीवित हो गया? अब हमलोग घरमें लौटकर क्या उत्तर देंगे।" इस प्रकार वे भयभीत हो उठे। उन्हें भयभीत देखकर कृष्णने कहा—"सखाओ! तुमलोग भोजन करना बन्द मत करो, मैं अभी बछड़ोंको लाता हूँ।" ऐसा कहकर स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण बछड़ोंको ढूँढ़नेके लिए चल पड़े॥ १—१४॥

**अम्भोजन्मजनिस्तदन्तरगतो मायार्भकस्येशितु-**
**र्द्रष्टुं मञ्जु महित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान्।**
**नीत्वान्यत्र कुरुद्वहान्तरदधात् खेऽवस्थितो यः पुरा**
**दृष्ट्वाघासुरमोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम्॥ १५॥**

**अन्वयः**—कुरुद्वह (हे परीक्षित्!) पुरा (पहले) यः खे अवस्थितः (जो आकाशमें स्थित होकर) प्रभवतः (श्रीकृष्णका) अघासुर-मोक्षणं (अघासुर-मोचन कार्य) दृष्ट्वा (देखकर) परं विस्मयं (अति आश्चर्यको) प्राप्तः (प्राप्त हुए) अम्भोजन्मजनिः (वे पद्मयोनि ब्रह्मा) तदन्तरगत (उनके बीचमें आकर) मायार्भकस्य (मोह उत्पन्न करनेवाली बाल्यलीला-परायण) ईशितुः (अपना ऐश्वर्य प्रकटनकारी कृष्णकी) अन्यत् अपि मञ्जु (दूसरी किसी मनोज्ञ) महित्वं (महिमाको) द्रष्टुं तद्वत्सान् (देखनेके लिए बछड़ोंको) वत्सपान् (और गोपालोंको) इतः (इस स्थानसे) अन्यत्र नीत्वा (दूसरी जगह ले जाकर) अन्तदरधात् (अन्तर्हित हो गये)॥ १५॥

**अनुवाद**—हे कुरुश्रेष्ठ! तत्पश्चात् पहलेसे ही आकाशमें उपस्थित होकर श्रीकृष्णकी अघासुर-मोक्षलीलाका दर्शन करके परम विस्मित हो रहे कमलयोनि ब्रह्मा उस स्थानपर आये। सबको मोहित करनेवाले एवं बाल्यलीला-परायण अपने ऐश्वर्यको प्रकट करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी अन्य कोई मनोहर महिमामयी लीला देखनेकी इच्छासे

ब्रह्माने पहले तो बछड़ोंको छिपा दिया और फिर भगवान् श्रीकृष्ण जब बछड़ोंको ढूँढ़नेके लिए चले गये, तब ब्रह्माने ग्वालबालोंको भी अन्यत्र ले जाकर छिपा दिया तथा स्वयं अन्तर्हित हो गये॥ १५॥

**सारार्थदर्शिनी**—अम्भोजजन्मनः कमलाज्जनिर्यस्येति जडवत्वात् स चेतनोऽपि ब्रह्मा जडएव यदयं भगवन्तं परीक्षितुं महामायाविन्यपि तस्मिन्मायां वितताने त्याक्षेपो ध्वनितः। अत्र वत्सान् पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकमित्युत्तरग्रन्थविरोधात् नित्यविज्ञानानन्दस्वरूपस्य भगवतस्तत्प्रियसखानां बालकानां च चतुर्मुखमायया मोहनमनौचित्यान्न व्याख्येयं। यत्तु पूतनादीनामपि मायया भगवन्मात्रादीनामपि मोहनं तत्खलु विस्मयरसाधायकतत्तल्लीलासिद्ध्यर्थं लीलाशक्त्याऽनुमोदनादेव न तु स्वतः। अत्र तु ब्रह्ममायया कृष्णसखानां केवलस्वापनेन का लीलासिद्धिरत ऐषां योगमायैव मोहनं *"कृष्णमायाहतात्मना"* मित्यग्रिमवाक्याच्च ज्ञेयं। न च कृष्णमायामोहितानामेव तेषां ब्रह्मकर्तृकमन्यत्र नयनं व्याख्येयम्। उपरिष्टादित एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे इति ब्रह्मवाक्यानन्तरं सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथञ्चनेति शुकोक्तेः। नहि कृष्णसखानामसत्यत्वं तेन वक्तुमुचितमतो मायिकानामेव बालवत्सानां हरणं ब्रह्मणा कृतमित्येवमत्र व्याख्येयं। ब्रह्मा तदन्तरे तस्मिन्नवसरे गत आगतः सन् अन्यदपि महित्वं महिमानं द्रष्टुम् अर्भकस्य ईशितुः श्रीकृष्णस्य वत्सान् इतः पुलिनात् वत्सपांश्च अन्यत्र नीत्वा अन्तरदधात् तिरोबभूव, यत् तन्माया-भगवन्मायाकारणकमेव तत्सर्वं मायया मोहित एव ब्रह्मा महित्वं द्रष्टुं मायाकल्पितानेव वत्सान् वत्सपानन्यत्रानयदित्यर्थः। अद्य मया मायया मोहयित्वा चोरितेषु वत्सवत्सपेषु किमयमैश्वर्यं किमप्यद्भुतं करोति ज्ञात्वा किं स्वयं तानेवानेयति मह्यं प्रार्थयिष्यते वा न किमपि ज्ञास्यतीति वेति विचारो मायया मोहनं विना तस्य न सम्भवेत् अतस्तस्मिन् चोरयितुमुद्यते सति योगमायैव सत्यान् वत्सपालकान् आच्छाद्य बहिरङ्गमायाद्वारा सद्यः कल्पितानेव तांस्तमदर्शयदिति ज्ञेयं। प्रभवतः प्रभोः कृष्णात् अघासुरस्य मोक्षणं द्रष्ट्वा यो विस्मयं प्राप्तः॥ १५॥

**भावानुवाद**—*'अम्भोजन्म-जनिः'*—जलसे जिसका जन्म हुआ है, वह कमल है। उस कमलसे जिनकी उत्पत्ति हुई, वे पद्मयोनि ब्रह्मा हैं। कमल जड़-वस्तु है। अतः जड़-वंशमें जन्म होनेके कारण सचेतन होकर भी ब्रह्मा जड़ अर्थात् अज्ञानी ही हैं, क्योंकि भगवान्‌की परीक्षा लेनेके लिए उन्होंने महामायावी भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अपनी मायाका प्रयोग किया। इस प्रकार यहाँपर आक्षेप प्रकाश हुआ है। यहाँपर *"वत्सान् पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकम्"* (१०/१४/४२)

अर्थात् पूर्वमें सखा जहाँपर बैठे थे, श्रीकृष्ण ब्रह्माके द्वारा चुराये गये बछड़ोंको उसी यमुना-पुलिनमें ले आये—इस परवर्ती वचनके साथ विरोध होनेके कारण तथा नित्य विज्ञानानन्द-स्वरूप भगवान्‌के नित्य सहचर सखाओंका चतुर्मुख ब्रह्माके द्वारा मोहन-कार्य सर्वथा असम्भव होनेके कारण वैसी व्याख्या सङ्गत नहीं है। पूतना आदिकी मायाके द्वारा भगवान्‌की जननी आदिका जो मोहन हुआ था, वह केवल विस्मय रसका परिपोषक है। उस लीलाकी सिद्धिके लिए वह भी लीलाशक्तिके अनुमोदनसे हुआ था, स्वाभाविक रूपसे नहीं। किन्तु यहाँ ब्रह्माजीकी मायाके द्वारा कृष्णके सखाओंके निद्रित हो जानेसे कौन-सी लीलाकी सिद्धि होगी? अतएव योगमायाके द्वारा ही श्रीकृष्णके बछड़े और सखा मोहित हुए थे। परवर्ती श्लोकमें *"कृष्णमायाहतात्मनाम्"* (१०/१४/४३) अर्थात् कृष्णकी मायाके द्वारा मोहित बालकोंने उस समयको मात्र आधा क्षण समझा था—इस वचनसे भी ऐसा ही प्रकाशित होता है। अतः श्रीकृष्णकी मायाके द्वारा मोहित बालकोंको ही ब्रह्माजीने अन्यत्र स्थापित किया था—ऐसी व्याख्या भी नहीं की जा सकती है, क्योंकि ब्रह्माजी आगे कहेंगे—*"इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे"* (१०/१३/४२) अर्थात् मेरी मायाके द्वारा मोहित बालकों और बछड़ोंके अतिरिक्त ये दूसरे ग्वालबाल और बछड़े यहाँपर कहाँसे और कैसे आ गये?

इसके पश्चात् श्रीशुकदेव गोस्वामी भी कहेंगे—*"सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेटे कथञ्चन"* (१०/१३/४३) अर्थात् "इन बछड़ों और सखाओंमें कौन सत्य और कौन असत्य हैं, ब्रह्माजी बहुत देर तक विचार करनेपर भी समझ नहीं सके।" यहाँ श्रीकृष्णके सखाओंको असत्य कहना भी उचित नहीं होगा। अतएव ब्रह्माजीने महामाया-कल्पित बछड़ों और सखाओंका ही हरण किया था, यही व्याख्या उचित होगी। *'तदन्तर-गतः'*—इसी अवसरपर ब्रह्माजीने आकर श्रीकृष्णकी दूसरी किसी मनोहारिणी लीलाका दर्शन करनेके लिए बाल्यलीला-परायण श्रीकृष्णके उन बछड़ोंको तथा यमुना-पुलिनसे ग्वालबालोंको अन्यत्र छिपा दिया तथा स्वयं अन्तर्हित हो गये—इस श्लोकमें उल्लिखित 'माया' शब्दका यही तात्पर्य है। अर्थात् भगवान्‌की मायाके द्वारा

मोहित होकर ब्रह्माजीने उनकी महिमाको देखनेके लिए माया-कल्पित बछड़ों और बालकोंको अन्यत्र रख दिया।

आज मैंने अपनी मायाके द्वारा मोहितकर बछड़ों और गोपबालकोंका अपहरण किया है, अब देखता हूँ कि ये बालकृष्ण कैसा अद्भुत ऐश्वर्य प्रकट करते हैं। बछड़ों और ग्वालबालोंके विषयमें जानकर ये स्वयं ही उन्हें ले आयेंगे, या मुझसे प्रार्थना करेंगे या उनके विषयमें कुछ भी समझ नहीं पायेंगे—ब्रह्माजीका ऐसा विचार माया-मोहित हुए बिना सम्भव नहीं है। अतएव ब्रह्माके द्वारा उन ग्वालबालों और बछड़ोंको चुरानेके लिए तत्पर होनेपर योगमायाने वास्तविक बछड़ों और सखाओंको ढककर बहिरङ्गा मायाके द्वारा मायिक गोपबालकों और बछड़ोंका उन्हें दर्शन करा दिया। ब्रह्माजीने उन्हींका अपहरण किया—यही समझना होगा। *'प्रभवतः'*—भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा अघासुर-मोक्ष-लीला दर्शनकर वे अत्यधिक विस्मित हुए थे॥ १५॥

**ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेऽपि च वत्सपान्।**
**उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समन्ततः॥ १६॥**

**अन्वयः**—ततः (इसके पश्चात्) वत्सान् (बछड़ोंके प्राप्त न होनेपर) एत्य (वहाँसे लौटकर) पुलिने (यमुनाके तटपर) वत्सपान् अपि च अदृष्ट्वा (गोपबालकोंको भी न देख पानेके कारण) कृष्णः वने समन्ततः (कृष्ण वन-वनमें भ्रमण करते हुए सर्वत्र) उभौ अपि (बछड़ों एवं गोपबालकोंको) विचिकाय (खोजने लगे)॥ १६॥

**अनुवाद**—इसके बाद जब कृष्णको कहीं भी बछड़े दिखायी नहीं दिये, तो वे उस यमुना-पुलिनपर लौट आये और देखा कि गोपबालक भी वहाँपर नहीं हैं। तब वे वनमें इधर-उधर सर्वत्र घूम-घूमकर बछड़ों और ग्वालबालोंको ढूँढ़ने लगे॥ १६॥

**सारार्थदर्शिनी**—अदृष्ट्वा न तु अप्राप्येत्युक्तम्। अतस्तत्र स्थितान् ज्ञातानपि अदृष्ट्वा अदर्शनमर्भिनीयेत्यर्थः। मन्माया मोहित एवायमिति ब्रह्माणं मिथ्याभिमानं ग्राहयितुमिति भावः। ततश्चोभावपि वत्सान् बालाश्च विचिकाय

विस्मयविषादाद्यभिनयपूर्वकं नटवत्तदन्वेषणमभिनिनायेत्यर्थः। *"तत्रोद्वहत्पशुपवंशशिशुत्व-नाट्य"* मित्यग्रेतनोक्तेः॥ १६॥

**भावानुवाद—** *'अदृष्ट्वा'*—कृष्ण बछड़ोंको ढूँढ़ने लगे। उन्होंने इधर-उधर सर्वत्र खोजा, परन्तु वे कहीं भी उन्हें दिखायी नहीं दिये—यह कहा गया है। बछड़े उन्हें कहीं प्राप्त ही नहीं हुए—ऐसी बात नहीं कही गयी है, क्योंकि बछड़ोंको वहाँपर अवस्थित जानकर भी कृष्ण न देखनेका अभिनय करते हुए वनमें घूमने लगे—यह अर्थ है। ब्रह्माको यह विश्वास दिलानेके लिए कि कृष्ण मेरी मायासे मोहित हो गये हैं, वे अपनेको अनजानकी भाँति दिखलाते हुए बछड़ों और बालकोंको ढूँढ़ने लगे अर्थात् विस्मय और विषाद आदिका अभिनय करते हुए नटकी भाँति घूमने-फिरने लगे। क्योंकि आगे भी कहेंगे— *"तत्रोद्वहत्-पशुपवंश-शिशुत्व-नाट्यम्"* (१०/१३/६१) अर्थात् ब्रह्माने पहलेकी भाँति गोपवंशीय बालककी भाँति लीला-अभिनयकारी और दधि-मिश्रित भातका कौर हाथमें लेकर अकेले बछड़ों और बालकोंको चारों ओर ढूँढ़नेवाले उन अद्वितीय, अनन्त और सर्वज्ञ परब्रह्म श्रीकृष्णको देखा॥ १६॥

**क्वाप्यदृष्ट्वान्तर्विपिने वत्सान् पालांश्च विश्ववित्।**
**सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसावजगाम ह॥ १७॥**

**अन्वयः—**अन्तर्विपिने (वनके भीतर) क्व अपि (कहीं भी) वत्सान् पालान् च (बछड़ोंको और ग्वालबालकोंको) अदृष्ट्वा (न देखकर) विश्ववित् (सर्वज्ञ) कृष्णः (कृष्ण) सहसा सर्वं (अचानक यह सारा कार्य) विधिकृतं (ब्रह्माजीके द्वारा किया गया है) अवजगाम ह (यह स्पष्ट रूपसे समझ गये)॥ १७॥

**अनुवाद—**जब वनमें कहीं भी गोपबालक और बछड़े दिखायी नहीं दिये, तो सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण तुरन्त ही जान गये कि यह समस्त कार्य ब्रह्मा द्वारा ही किया गया है॥ १७॥

**सारार्थदर्शिनी—**पुनः किं कृत्वा विचिकायेत्यत आह क्वेति। विश्वविदपि क्वापि शाद्वलादन्यत्रापि वत्सान् पुलिनादन्यत्रापि पालान् अदृष्ट्वा विचिकायेति

पूर्वेणैवान्वयः। ननु, कृष्णः किं वत्सादिचौर्यक्षण एव विवेद तत्क्षणानन्तरं वा किञ्चिदन्विष्य वा विवेदेत्यत आह, सर्वमिति। सहसा चौर्यक्षण एव ब्रह्मणा अतर्कितमेवेत्यर्थः *"अतर्किते तु सहसा"* इत्यमरः॥ १७॥

**भावानुवाद**—श्रीकृष्ण बछड़ों और ग्वालबालोंको कैसे ढूँढ़ रहे हैं—उसीका वर्णन कर रहे हैं। भगवान् श्रीकृष्ण सर्वज्ञ होकर भी हरे-भरे घासके मैदानके अतिरिक्त अन्य स्थानोंमें भी बछड़ों तथा ग्वालबालोंको न देखकर समझ गये कि यह कार्य ब्रह्माका है। यदि कहो कि श्रीकृष्णने ब्रह्माके द्वारा अपहरणके समय ही ऐसा जान लिया था या उसके कुछ समय पश्चात् अथवा कुछ समय ढूँढ़नेके बाद जाना? तो इसके उत्तरमें कहते हैं—*'सहसा'* अर्थात् ब्रह्माके द्वारा उन ग्वालबालों और बछड़ोंको चुराये जानेके समय ही श्रीकृष्ण समझ गये थे। अमरकोषमें वर्णन है—अतर्कित अर्थमें सहसा शब्दका प्रयोग होता है॥ १७॥

**ततः कृष्णो मुदं कर्त्तुं तन्मातॄणाञ्च कस्य च।**
**उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः॥ १८॥**

**अन्वयः**—विश्वकृत् (संसारके रचयिता) ईश्वरः कृष्णः कस्य च (भगवान् कृष्ण अब ब्रह्मा एवं) तन्मातॄणां च (गोवत्स, गोपाल और उनकी जननियोंका) मुदं (आनन्द) कर्त्तुं (बढ़ानेके लिए) आत्मानं (स्वयं ही) उभयायितं चक्रे (बछड़े और गोपबालक बन गये) [यदि मैं उदासीन बन जाऊँ, तो व्रजवासी माताओंको विषाद होगा तथा यदि मैं बालकोंको यहाँ ले लाऊँ, तो ब्रह्माको मोह भी नहीं होगा, इस प्रकार विचारकर दोनोंको आनन्द प्रदान करनेके लिए उन्होंने पूर्व कथित गोपबालक और गोवत्स रूपको अङ्गीकार कर लिया]॥ १८॥

**अनुवाद**—तब सम्पूर्ण विश्वके कर्त्ता, सर्वशक्तिमान परमेश्वर श्रीकृष्ण ब्रह्मा, बछड़ों और ग्वालबालोंकी माताओंको आनन्दित करनेके लिए स्वयं ही बछड़े और ग्वालबाल बन गये॥ १८॥

**सारार्थदर्शिनी**—ततश्च भगवन्मायया मोहिते ब्रह्मणि मोहकमन्ये स्वभवनं गते सति स्वस्य ब्रह्ममायामोहनाभावमात्रव्यञ्जकः, पूर्ववत्स्वीयैर्वत्सबालकैः सह

भोजनादि लीलाभिर्विहारो नातिचित्रमित्यतो मायातीतान् बलदेवपर्यन्तानपि स्वपरीवारान् मोहयित्वा लोके स्वमायाबलं दर्शयितुं परमवत्सलानां गोगोपीनां स्वस्मिन्पुत्रभावमभिलषन्तीनां मनोरथं पूरयितुं ब्रह्माणं मोहयित्वापि पुनर्महाविस्मयसमुद्रे प्रक्षेप्तुम् एकस्मिन्नेव स्वाभीष्टदेवे श्रीभागवतोपदेष्टरि वासुदेवे भक्तिमन्तं खलु तं च परःसहस्रान् वासुदेवान् दर्शयितुं स्वयमेव वत्सबालकाद्याकारो वभूवेत्याह, तत इति। कस्य ब्रह्मणः, आत्मानं स्वयमेव उभयायितं उभयं वत्सत्वं बालकत्वं च अयितं प्राप्तं वत्सबालरूपिणमित्यर्थः। विश्वकृतां महत् स्रष्ट्रादीनामपीश्वर इति तत्र सामर्थ्यं द्योतितम्॥ १८॥

**भावानुवाद**—अनन्तर श्रीभगवान्‌की मायासे मोहित होकर ही ब्रह्माजी अपने ब्रह्मलोकको चले गये। ब्रह्माजी यह समझने लगे कि मैंने श्रीकृष्णको मोहित कर दिया है, परन्तु श्रीकृष्ण ब्रह्माकी मायासे बिन्दुमात्र भी मोहित नहीं हुए। वे पहलेकी ही भाँति स्वयं बछड़े और गोपबालक बनकर भोजनादि लीला-विहार करने लगे। श्रीकृष्णकी यह विहार-लीला ठीक पहलेकी भाँति हो रही थी, उसमें तनिक भी परिवर्त्तन नहीं था। परन्तु मायासे परे बलदेव आदि अपने परिजनोंको भी मोहितकर इस लोकमें अपनी योगमायाका प्रभाव दिखलानेके लिए तथा अपने प्रति पुत्रभावकी अभिलाषिणी परम वत्सला गो और गोपियोंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिए, ब्रह्माको मोहित करके भी फिरसे उन्हें महाविस्मय समुद्रमें निमज्जित करनेके लिए एवं एकमात्र अपने अभीष्टदेव श्रीमद्भागवतके उपदेष्टा वासुदेवके प्रति भक्तिमान ब्रह्माको हजारों वासुदेव-रूपोंको दिखानेके लिए श्रीकृष्ण स्वयं ही बछड़े और गोपबालक आदिके रूपमें प्रकट हो गये। *'विश्व-कृदीश्वरः'*—महत्स्रष्टा आदिके भी ईश्वर श्रीकृष्ण हैं, इससे यह प्रकाशित होता है कि वे सर्वसमर्थ हैं॥ १८॥

**यावद्वत्सप-वत्सकाल्पकवपुर्यावत्कराङ्घ्र्यादिकं**
**यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग् यावद्विभूषाम्बरम्।**
**यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं**
**सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ॥ १९॥**

**अन्वयः**—अजः (श्रीकृष्ण) यावद् वत्सपवत्सकाल्पकवपुः (जितनी संख्यामें सखा तथा बछड़े थे) यावत् कराङ्घ्र्यादिकं (जैसे उनके

हाथ-पैर आदि थे) यावद्यष्टि-विषाण-वेणु-दलशिक् (जितनी लठिया, विषाण, वेणु, छीके थे) यावद् विभूषाम्बरं (जितने वस्त्र, आभूषण, अलङ्कार आदि थे) यावत् शीलगुणाभिधाकृतिवयः (जैसा शील, स्वभाव, सरलता आदि गुण एवं नाम, आकृति थे) यावद् विहारादिकं (जितनी प्रकारकी क्रीड़ा-चेष्टा आदि थी) सर्व स्वरूपः (पूर्व कथित सभी प्रकारके स्वरूप धारणकर) वभौ (विराजमान हो गये) [तथा] सर्वं विष्णुमयं गिरः अङ्गवत् (समग्र जगत् विष्णुमय है—इस वाक्यके मूर्त्तिमान स्वरूपमें शोभा पाने लगे)॥ १९॥

**अनुवाद**—हे परीक्षित्! जितनी संख्यामें ग्वालबाल और बछड़े थे, जैसे छोटे-छोटे उनके शरीर थे, जैसे उनके सुकोमल अङ्ग और हाथ-पैर आदि थे, जैसी उनकी छड़ियाँ, सींगा, वेणु और छीके थे, जैसे उनके वस्त्र एवं अलङ्कार थे, जैसा उनका शील, स्वभाव, गुण, नाम, आकृति एवं अवस्थाएँ थीं, जैसी उनकी क्रीड़ा, भङ्गी, खाना-पीना और चलना था, श्रीकृष्णने ठीक वैसे ही रूपों एवं भावोंको धारण कर लिया, जिससे "यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुमय है"—यह वेद-वाणी मानो साक्षात् मूर्त्तिमान विग्रह-स्वरूपमें प्रकट हो गयी॥ १९॥

**सारार्थदर्शिनी**—तदेव प्रपञ्चयति। यावत् यत्परिमाणकं वत्सपानां वत्सकानां च अल्पकं वपुः। जात्यपेक्षया एकवचनम् अत्यल्पानि कोमलानि वपूंषीत्यर्थः। एवमुत्तरत्रापि विहारादिकमित्यत्रादि शब्दात् पितृमात्रादिषु व्यवहरणं पूर्वाचरितस्मरणादिकं च। अजः अजन्यतयैव भीत एव कृष्णः सर्वस्वरूपः तावद्वपुरादिरूपः सन् बभौ। सर्वं विष्णुमयं जगदिति प्रसिद्धा या गीस्तस्या अङ्गवत् सा गीरेव मूर्त्ता प्रत्यक्षा यथा बभूवेत्यर्थः॥ १९॥

**भावानुवाद**—श्रीकृष्णकी सर्वसमर्थताका वर्णन कर रहे हैं—जितने भी बछड़े और गोपबालक थे, जैसे उनके सुकोमल अङ्ग आदि थे, कृष्ण वैसे ही बन गये। यहाँ जातिगत रूपमें एक वचन कहा गया है। इस प्रकार जिसकी जैसी लठिया, सींगा, वेणु आदि एवं जैसा जिसका व्यवहार आदि था, वे ठीक वैसे ही बन गये। यहाँ आदि कहनेसे माता-पिता आदिके प्रति जिनका जैसा व्यवहार था, वैसा ही

सर्वस्वरूप श्रीकृष्णने धारण कर लिया अर्थात् जिसका जैसा रूप, भाव, वेश-भूषा आदि थे, वे वैसा-वैसा ही रूप आदि धारणकर सुशोभित होने लगे। 'यह चराचर विश्व विष्णुमय है'—इस वेद-वाणीका स्वरूप प्रत्यक्ष करानेके लिए ही मानो श्रीकृष्ण इस रूपमें प्रकट हुए॥ १९॥

**स्वयमात्मात्मगोवत्सान् प्रतिवार्यात्मवत्सपैः।**
**क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद्व्रजम्॥ २०॥**

**अन्वयः**—सर्वात्मा (वे सर्वस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण) स्वयं आत्मा एव (स्वयं कर्त्ता होकर) आत्मवत्सपैः (आत्मरूपी वत्सपालकोंके द्वारा) आत्मगोवत्सान् (आत्मरूपी बछड़ोंको) प्रतिवार्य (परिचालना करते हुए) आत्मविहारैः (आत्मभूत बालकोंके साथ विहार, वेणुवादन आदि समस्त) क्रीडन् (क्रीड़ाएँ करते हुए) व्रजं प्राविशत् (व्रजपुरीमें प्रविष्ट हुए)॥ २०॥

**अनुवाद**—सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही बछड़े बन गये और स्वयं ही ग्वालबालक। इस प्रकार अपने आत्मस्वरूप बछड़ोंको अपने आत्मस्वरूप ग्वालबालोंके द्वारा घेरकर आत्मस्वरूप बालकोंके साथ वेणुवादन आदि नाना प्रकारकी क्रीड़ाएँ करते हुए व्रजमें प्रविष्ट हुए॥ २०॥

**सारार्थदर्शिनी**—ततश्च मध्याह्नापराह्नयोः पूर्ववदेव क्रीडितवतस्तस्य सायं गोष्ठप्रवेशमाह—स्वयमिति पञ्चभिः। एवं सर्वात्मा सन् व्रजं प्राविशत् कथं स्वयमात्मैव प्रयोजक आत्मरूपान् गोवत्सानिति कर्मापि स्वयमेव आत्मरूपैर्वत्सपैः प्रतिवार्येति प्रयोज्यकर्त्तापि स्वयमेव आत्मविहारैः आत्मभिरात्मभूतैर्बालकैः सह ये विहारा वेणुवादनादयस्तैः क्रीडन्निति क्रियाकारकाण्यपि स्वयमेव इत्यर्थः। अत्र पुलिने वत्सपाला उपविश्य भुञ्जत एव शाद्वलेषु वत्सास्तृणं चरन्त्येव तानन्वेष्टुं कृष्णो विपिने पर्यटत्येव क्षणमात्रायमाणं वयं व्याप्येत्येतत्त्रिकं सर्वैरदृष्टं तत्तत्स्थलेषु प्रतिदिनं भ्रमद्भिरन्येर्लीलापरिकरैः कृष्णस्वरूपवत्सबालैर्बलदेवेनापि वर्षवातातपाद्यैरप्य-स्पृष्टमेवाचिन्त्यशक्त्या योगमायया व्यराजीदेव यस्यैक एव कृष्णो ब्रह्मणा कवलवेत्रादिलक्ष्मलक्षितो मोहान्ते ददृशे तुष्टुवे चेति ज्ञेयम्॥ २०॥

**भावानुवाद**—इसके पश्चात् मध्याह्न और अपराह्न कालमें पहलेकी ही भाँति लीला करनेवाले श्रीकृष्णने सायं कालमें किस प्रकार गोष्ठमें प्रवेश किया? इसके लिए कह रहे हैं—स्वयं ही प्रयोजक होकर आत्मस्वरूप बछड़ोको चराने लगे—यहाँपर कर्म भी वे स्वयं ही हैं। आत्मस्वरूप गोपबालकोंके द्वारा बछड़ोंको चराने लगे—इससे प्रयोज्य कर्त्ता भी स्वयं हैं। *'आत्मविहारैः'*—आत्म-स्वरूप बालकोंके साथ वेणुवादन आदि क्रीड़ाएँ करते हुए उन्होंने व्रजमें प्रवेश किया। इस प्रकार क्रियाके समस्त कारक वे स्वयं ही हैं—यह अर्थ है। यहाँपर पुलिनमें गोपबालक बैठकर भोजन कर रहे हैं, बछड़े वनमें घास चर रहे हैं, उन्हें खोजनेके लिए कृष्ण वनमें भ्रमण कर रहे हैं—ऐसा क्षणभरका समय एक वर्ष तक का हो गया, परन्तु इन तीनों कार्योंको कोई भी न देख सका। उन स्थानोंमें प्रतिदिन भ्रमणकारी अन्यान्य लीलापरिकर, कृष्ण-स्वरूप बछड़े, बालक एवं बलदेव प्रभु भी उन्हें न देख सके। इस प्रकार बछड़े और बालक भगवान्की अचिन्त्यशक्ति योगमायाके प्रभावसे वहींपर विराजमान थे। परन्तु अचिन्त्यशक्ति योगमायाके द्वारा गर्मी-सर्दी-वर्षा-आँधी आदि उन्हें स्पर्श भी नहीं कर पाये। उनमेंसे एकमात्र कवल, वेत्र, सींगा आदिसे युक्त श्रीकृष्णका ही ब्रह्माने मोहके दूर हो जानेपर दर्शन प्राप्त किया था तथा उनकी स्तव-स्तुति की थी—ऐसा समझना होगा॥ २०॥

**तत्तद्वत्सान् पृथङ्नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः।**
**तत्तदात्माभवद्राजंस्तत्तत् सद्म प्रविष्ट्वान्॥ २१॥**

**अन्वयः**—राजन् (हे महाराज!) सः (उन सर्वमय श्रीकृष्णने) तत्तद्वत्सान् (सभी बालकोंके बछड़ोंको) पृथक् नीत्वा (विभागकर) तत्तद्गोष्ठे (यथा निर्दिष्ट गोशालाओंमें) निवेश्य तत्तदात्मा (प्रवेश कराकर स्वयं उन गोपबालकोंके रूपमें) तत्तत् सद्म प्रविष्ट्वान् (यथा निर्दिष्ट घरोंमें प्रवेश किया)॥ २१॥

**अनुवाद**—हे राजन्! उस समय जिन-जिन गोपबालकोंके जो-जो बछड़े थे, उन सबको अलग-अलग कर उन्हीं बालकोंके

रूपमें उनकी निर्दिष्ट गोशालाओंमें प्रवेश कराकर कृष्ण उन बालकोंके रूपमें ही उन-उनके घरोंमें प्रवेश कर गये॥ २१॥

**सारार्थदर्शिनी—**तत्तदात्मा श्रीदामसुदामसुबलादिबालकस्वरूपः कृष्णस्तत्तत्सद्म-प्रविष्टवानित्यन्वयः॥ २१॥

**भावानुवाद—**श्रीदाम, सुदाम, सुबल आदि बालकोंका रूप धारण करनेवाले श्रीकृष्णने उन-उन भवनोंमें अर्थात् जिस बालकका जो घर था, उसी घरमें स्वयं प्रवेश किया॥ २१॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति—**श्रीकृष्णकी बाललीला-माधुरीमें आत्मविभोर होकर ब्रह्माजी मन-ही-मन विचार करने लगे—श्रीकृष्णके इस लीलारस-सिन्धुमें न जाने और कितना माधुर्य है? श्रीकृष्ण इस समय बालकोंसे घिरकर भोजन और विविध प्रकारके हास्य कौतुकादि रसमें आविष्ट हैं। इस अवसरपर यदि मैं चुपचाप यमुना-पुलिनमें जाकर मैदानमें चरते हुए बछड़ोंको अपनी मायासे मुग्धकर दूसरे स्थानमें ले जाकर छिपा दूँ, तब बाल्यलीला-रसमें मुग्ध भगवान् कैसे उन्हें ढूँढ़ते हैं एवं कैसे उनके वात्सल्य गुणका प्रकाश होता है, इसकी परीक्षा हो जायेगी। क्या वे अपनी सर्वज्ञताशक्तिसे बछड़ोंका पता लगाकर अपनी इच्छाशक्तिके बलसे ही उन्हें अपने पास ले आयेंगे अथवा मुझे उन्हें लानेका आदेश देनेपर मैं उनका आदेश पालन करते हुए बछड़ोंको सामने ले आऊँगा। किन्तु इससे उनका केवल ऐश्वर्य ही प्रकाशित होगा, माधुर्य लेशमात्र भी प्रकाशित नहीं होगा। जो कृष्ण अपनी इस बाललीलारूप माधुर्यरस-सिन्धुमें सबको निमज्जित कर रहे हैं, वे क्या केवल मुझे ही वञ्चित करनेके लिए अपना ऐश्वर्य प्रकाशित करेंगे? कृष्णका ऐश्वर्य तो सर्वत्र ही प्रसिद्ध है, उसे देखनेके लिए किसीको कोई प्रयास नहीं करना पड़ता, परन्तु उनका माधुर्य परम गोपनीय है। श्रीकृष्णकी कृपाके बिना उसका आस्वादन नहीं हो सकता। श्रीकृष्णका माधुर्य तो केवल उनकी मुग्धतामें ही प्रकाशित होता है। इसलिए यदि मैं बछड़ोंको कहीं छिपा दूँ, तो वे उन्हें न देखकर मुग्ध होकर लीलामाधुरी प्रकाशित करेंगे अर्थात् भयभीत होकर उन्हें खोजेंगे, जिससे मेरी मनोवासना पूर्ण हो जायेगी।

श्रीकृष्ण जिन्हें इतना प्रेम करते हैं एवं जो श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते, माया या ब्रह्माजीकी मायासे उन परिकरोंका मोहन कैसे सम्भव हो सकता है? उनके सौभाग्यके साथ ब्रह्माके सौभाग्यकी तुलना करनेपर दिन-रात जैसा पार्थक्य दिखेगा, क्योंकि ब्रह्मा मायिक ब्रह्माण्डके सृष्टि-कार्यमें लिप्त होकर मायिक ब्रह्माण्डमें वास करते हैं और बछड़े साक्षात् कृष्णके द्वारा परिचालित होकर नित्यकाल कृष्णके धाममें ही विचरण करते हैं तथा कृष्णके निकट ही वास करते हैं। इसीलिए मायिक ब्रह्माण्ड या मायाके गुणोंसे उनका लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। वे कृष्णके नित्य पार्षद हैं। अतः स्वभावतः ही मायासम्बन्धसे रहित होनेके कारण ब्रह्माकी मायासे उनका मोहन सम्भव नहीं है। ब्रह्मा चारों वेदोंके वक्ता और तत्त्वज्ञ होकर भी श्रीकृष्णके पार्षदोंको क्यों मायामुग्ध करने जा रहे हैं, इसे एकमात्र वे ही जानते हैं।

ब्रह्मा *'अम्भोजन्मजनि'* अर्थात् ब्रह्माने कमलसे जन्म-ग्रहण किया, कमलने जलसे जन्म लिया है। अतएव ब्रह्माका जनक कमल एवं कमलका जनक जल दोनों ही जड़-पदार्थ हैं। जिनके पिता और पितामह जड़-पदार्थ हैं, उनके स्वयं तत्त्वज्ञ होनेपर भी उनकी वंशानुक्रमिक जड़ता कहाँ जायेगी? अर्थात् वह तो अवष्य ही रहेगी। निर्धनका पुत्र यदि धनवान् भी हो जाय, तो भी उसके धनभोगमें एवं धन-व्ययमें पर्याप्त रूपमें वंशानुक्रमिक नीचता देखी जाती है। दूसरी ओर धनवान्का पुत्र निर्धन हो जानेपर भी उसकी उदारता, एवं पण्डितका पुत्र मूर्ख होनेपर भी उसकी सुबुद्धिके अनेक उदाहरण जगत्में मिलते हैं। अतएव वंशानुक्रमिक दोष-गुणसे मुक्त होना अत्यन्त कठिन है। इसी प्रकार प्रतीत होता है कि ब्रह्माजी चारों वेदोंके वक्ता, जगत्के सृष्टिकर्त्ता, तत्त्वज्ञ एवं जगत्पूज्य होनेपर भी कृष्णकी बाललीलाका आस्वादन करनेके लिए अपने वंशानुक्रमिक जड़ताके वशीभूत होकर कृष्णके पार्षदोंको अपनी मायासे मुग्ध करनेकी चेष्टा कर रहे हैं।

इस प्रकार ब्रह्माजी श्रीकृष्णके सखाओं और बछड़ोंको मायामुग्धकर स्थानान्तरित करनेका सङ्कल्प लेकर तत्क्षणात् वहाँपर उपस्थित हो

गये। उन्होंने अपनी मायाका विस्तारकर बछड़ोंको मोहित कर दिया एवं व्रजमण्डलमें स्थित किसी कन्दरामें छिपा दिया। इधर यमुना-पुलिनमें श्रीकृष्णके साथ भोजन विलासरसमें मत्त गोपबालकोंने सहसा उस ओर देखा, जहाँपर बछड़े चर रहे थे, किन्तु वहाँपर बछड़ोंको न देखकर वे व्याकुल हो उठे। तब कृष्णके उन्हें आश्वासन देकर बछड़ोंको ढूँढ़नेके लिए चले जानेपर, ब्रह्माजी यमुना-पुलिनमें आये और ग्वालबालोंको भी मायामुग्धकर जहाँ बछड़ोंको रखा था, उसी कन्दरामें उन्हें भी छिपा दिया। यद्यपि वास्तविक बछड़ों एवं बालकोंको योगमायाने आच्छादित कर दिया था तथा बहिरङ्गा मायाके द्वारा उन्हींके समान मायिक बछड़े एवं बालक प्रकट कर दिये थे। परन्तु ब्रह्मा स्वयं ही भगवान्‌की मायासे मोहित होनेके कारण समझ रहे थे कि मैंने वास्तविक बछड़ों एवं बालकोंको छिपा दिया है।

जब कृष्णको बछड़े नहीं मिले, तो वे दुःखी मनसे वापस यमुना-पुलिनपर लौट आये। परन्तु वहाँपर उन्हें अपने सखा भी नहीं दिखायी दिये। इससे वे और भी अधिक चिन्तामें डूब गये। अब वे इधर-उधर भ्रमण करते हुए बछड़ों एवं ग्वालबालकोंको खोजने लगे। बहुत खोजनेपर भी जब वे नहीं मिले, तो वे पुनः यमुना-पुलिनपर आ गये तथा विचार करने लगे—"अब सूर्यदेव अस्त होनेवाले हैं, परन्तु आज मेरे बछड़े और सखा कहाँ चले गये? क्या वे मुझे न पाकर घर चले गये या फिर अघासुरकी भाँति किसी अन्य असुरने आकर उन्हें ग्रास कर लिया? हाय! अब मैं क्या करूँ, अब मैं अकेले कैसे घर जाऊँ? घर जानेपर सभी लोग जब पूछने लगेंगे कि तुम्हारे सखा और बछड़े कहाँ हैं, तो मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा?" इस प्रकार चिन्ताग्रस्त होकर वे उस निर्जन यमुना-पुलिनमें नीलमणिकी प्रतिमाकी भाँति निःस्तब्ध होकर खड़े-के-खड़े रह गये। देखते-ही-देखते उनके कमलके समान बड़े-बड़े नेत्रोंमें आँसू भर आये, उनकी तिल-कुसुमको भी पराभूत करनेवाली नासिकासे गहरी-गहरी श्वासवायु प्रवाहित होने लगी। इस प्रकार जब वे मुग्ध लीलावशतः चिन्तामें डूबे हुए थे, उसी समय उनके मनमें ब्रह्माजीका सङ्कल्प तथा उनका यह कार्य प्रकट हो गया।

भगवान् सर्वज्ञता आदि अनन्त महाशक्तियोंके आश्रय हैं। जब तक वे बछड़ों एवं सखाओंके प्रेममें मोहित होकर भक्तवात्सल्य स्वभावके कारण वनमें उन्हें यहाँ-वहाँ खोज रहे थे, तब तक उनकी सर्वज्ञताशक्ति उनकी लीलाशक्ति एवं इच्छाशक्तिके अधीन होकर निश्चेष्ट पड़ी हुई थी। किन्तु जब वे एक स्थानपर खड़े होकर विचार करने लगे कि मेरे सखा एवं बछड़े कहाँ हैं, तो तुरन्त उनकी सर्वज्ञताशक्तिने प्रकाशित होकर उन्हें ब्रह्माजीका सङ्कल्प जना दिया। तब परम करुणामय भक्तवत्सल श्रीनन्दनन्दनने ब्रह्माकी इच्छाको पूर्ण करनेका विचार किया। तभी उन्हें व्रजकी माताओं तथा गायोंकी इच्छाका भी स्मरण हो आया कि वे मुझे अपने पुत्रके रूपमें प्राप्त करना चाहती हैं। अतः उन्होंने उनकी भी इच्छाको पूर्ण करनेका विचार किया।

इस प्रकार ब्रह्मा, व्रजकी वात्सल्यवती गायों और गोपियों तथा अपना भी मनोरथ पूर्ण करनेके लिए उन विश्व सृष्टिकारी पुरुषावतारोंके भी अंशी स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं ही दोनों रूप धारण किये अर्थात् स्वयं कृष्ण ही बछड़े और ग्वालबाल—इन दोनों स्वरूपोंमें प्रकट हो गये। कृष्णके इन दो स्वरूपोंमें प्रकट होनेपर सबकी मनोकामनाके पूर्ण होनेका सुयोग उदित हुआ। इससे ब्रह्माको कृष्णके माधुर्यका आस्वादन हुआ, व्रजकी वात्सल्यवती गायों और गोपियोंने उन्हें अपना बछड़ा और पुत्र मानकर उन्हें स्तनपान कराया और लालन-पालन किया तथा उनका वात्सल्य-प्रेमोचित आदर पाकर प्रेमलुब्ध कृष्णको भी प्रेमरसका आस्वादन हुआ।

जितने बालक और बछड़े थे, जैसे उनके शरीर थे, जैसे हाथ-पैर आदि थे, जैसे उनके सींङ्गा, वेणु, लकुटी, छीके एवं जैसे उनके अलङ्कार एवं वस्त्र आदि थे—अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके सृष्टिकर्त्ता श्रीकृष्णने उन सब रूपोंमें अपनेको प्रकाशित किया। केवल इतना ही नहीं, जिसका जैसा धीर, चञ्चल आदि स्वभाव और व्यवहार आदि था, जिसका जैसा गुण, जिसका जो नाम, जैसा शरीरका गठन, जिसकी जितनी आयु, चाल-चलन, गमन, भाव-भङ्गि, कण्ठस्वर एवं पिता-माताओंके साथ जिसका जैसा व्यवहार था, श्रीकृष्ण ठीक वैसे

ही स्वरूपोंमें और वैसे ही भावोंमें अपनेको प्रकाशितकर असंख्य ग्वालबालों और असंख्य बछड़ोंके रूपमें यमुना-पुलिनमें पूर्ववत् बाललीला करने लगे।

इस प्रकार असंख्य बछड़ों और गोपबालकोंका रूप धारणकर कृष्ण स्वयं ही गोपाल-रूपधारी अपनेको ही आदेश प्रदानकर बछड़ोंके रूपमें अपनेको ही एकत्रितकर, अपने द्वारा अपनेको ही परिचालितकर विविध हास्य, परिहास्य आदि कौतुक करते हुए प्रातःकाल गोचारणके लिए जाते और सायंकाल गोष्ठमें लौट आते॥ १५—२१॥

**तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता, उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरम्।**
**स्नेहस्नुतस्तन्यपयःसुधासवं, मत्वा परं ब्रह्म सुतानपाययन्॥ २२॥**

**अन्वयः**—[अब वात्सल्यवती गोपियोंके मोहका वर्णन कर रहे हैं] तन्मातरः (उन गोपबालकोंकी जननियाँ) वेणुरवत्वरोत्थिताः (वंशीध्वनि श्रवणकर अतिशीघ्र उठकर) परं ब्रह्म एव (कृष्णको ही) सुतान् मत्वा (अपना पुत्र मानकर) दोर्भिः उत्थाप्य (अपनी भुजाओंमें उठाकर गोदमें लेकर) निर्भरं परिरभ्य (गाढ़ आलिङ्गनकर उन्हें) स्नेहस्नुतस्तन्यपयः सुधासवं (स्नेह ममताके कारण झरनेवाला स्तन-दुग्धरूप अमृत) अपाययन् (पान कराने लगीं)॥ २२॥

**अनुवाद**—उन गोपबालकोंकी माताएँ वंशीका स्वर सुनते ही शीघ्र ही दौड़ी चली आयीं और ग्वालबाल बने हुए परब्रह्मरूपी श्रीकृष्णको ही अपना पुत्र जानकर भुजाओंमें उठाकर गोदमें लेकर गाढ़ आलिङ्गन करने लगीं। उस समय पुत्रके प्रति अत्यन्त स्नेहके कारण अपने स्तनोंसे वात्सल्यस्नेहकी अधिकताके कारण स्वतः ही झरनेवाला अमृतसे भी मधुर दूध उन्हें पिलाने लगीं॥ २२॥

**सारार्थदर्शिनी**—हन्त हन्त यशोदाया इवास्माकमपि कृष्णः किं पुत्रो भवेत् इति गोपीनां मनोरथस्य सिद्धिं बहिरलक्षितां वदन्नेव तासां मोहनमाह—तन्मातरस्तत्तन्मातरः सुतान्मत्वा परं ब्रह्मैव दोर्भिरुत्थाप्य अङ्के कृत्वा स्तन्यं पयोऽपाययन्। उदुह्येति क्वाचित्कः पाठश्च। निर्भरं परिरभ्येति निर्भरं स्नुतेति पूर्वतः स्नेहाधिक्यसूचकं परं

ब्रह्मापि सुधासवं मत्वा तासां स्तन्यं पयोऽपिबदित्याह-सुधासवमिति। स्नेहस्नुतत्वेन स्नेहमयं तत् प्रेमास्वादमहारसिकः कृष्णः सुधामिव स्वादु आसवमिव मादकं पिबन्ननुबभूवेति तल्लोभादेव तस्यापि तत्तत्पुत्रीभाववासनाप्रागासीत्सापि ब्रह्ममोहनप्रसङ्ग एव सिद्धेति। अतएव स्वस्य सखीनपि वर्षपर्यन्तं योगमायया मोहयामासेति ज्ञेयम्। *"स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा"* इति ब्रह्मणापि वक्ष्यमाणत्वात्॥ २२॥

**भावानुवाद**—हाय! हाय! कृष्ण यशोदाकी भाँति क्या कभी हमारा भी पुत्र होगा—गोपियोंके इस मनोरथकी सिद्धिके लिए अलक्षित रूपसे कृष्णने उनका पुत्र बनना स्वीकार किया। *'तन्मातरः'*—श्रीदाम, सुदाम आदिकी माताएँ कृष्णको अपना-अपना पुत्र मानकर हाथोंमें उठाकर अपनी गोदमें लेकर स्तनपान कराने लगीं। यहाँ *'उदुह्य'*-पाठ भी कहीं-कहीं देखा जाता है। *'निर्भरं परिरभ्य'*—वे प्रगाढ़ रूपसे कृष्णका आलिङ्गन कर रही थीं एवं *'निर्भरं स्नुत'*—अति क्षरित—ऐसा कहनेका तात्पर्य यह है कि उनका स्नेह पहलेसे भी अधिक वर्धित हो गया। परब्रह्म श्रीकृष्ण भी सुधासव मानकर उनके स्तन-दुग्धका पान करने लगे। उस दूधके लोभवशतः कृष्णकी भी उन वात्सल्यवती गोपियोंके पुत्र होनेकी जो वासना थी, वह भी इस ब्रह्ममोहन-लीलामें सिद्ध हुई। उन्होंने अपने परिकर सखाओंको भी एक वर्ष तक योगमायाके द्वारा मोहित रखा। बादमें ब्रह्मा भी कहेंगे—*"स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा"* (१०/१४/३१) अर्थात् आपने गोवत्स और गोपबालक बनकर उनके स्तनोंका अमृत समान दूध बड़े चावसे पिया है॥ २२॥

**ततो नृपोन्मर्द्दनमज्जलेपना-**
**लङ्काररक्षातिलकाशनादिभिः ।**
**संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन्,**
**सायं गतो यामयमेन माधवः॥ २३॥**

**अन्वयः**—नृप (हे राजन्!) ततः याम यमेन (अतः जिस समय जो-जो लीलाएँ होती हैं, उन सबका समाधानकर) सायं (सन्ध्याकालमें) माधवः गतः (प्रत्येक गोपबालकके गृहमें उपस्थित होकर) स्वाचरितैः (अपने क्रीड़ाविहार आदिके द्वारा) प्रहर्षयन् (व्रजकी सभी माताओंका

आनन्दवर्द्धन करते) उन्मर्द्दनमज्जलेपनालङ्काररक्षा तिलकाशनादिभिः (वे शरीरका मार्जन, चन्दनादि द्वारा लेपन, अलङ्कार-आभूषण आदि धारण, ललाटमें तिलकादि द्वारा चित्रण, भोजन आदि मुख्य-मुख्य कर्मके द्वारा कृष्णका) संलालितः (लालन-पालन करती थीं)॥ २३॥

**अनुवाद—**हे राजन्! इसके बाद जब जिस-जिस समय जो-जो लीलाएँ होती थीं, उन्हें पूर्णकर सन्ध्याकालके समय श्रीकृष्ण उन ग्वालबालोंके घरोंमें जाकर उन ग्वालबालोंके समान ही आचरणकर उनकी माताओंको आनन्दित करते। वे माताएँ भी उन्हें (श्रीकृष्णको) उबटन लगातीं, स्नान करातीं, चन्दनका लेप करतीं, अच्छे-अच्छे वस्त्र एवं अलङ्कार पहनातीं, रक्षा-कवच बाँधतीं, तिलक लगातीं, उन्हें भोजन करातीं तथा बड़े लाड़-प्यारसे उनका लालन-पालन करतीं॥ २३॥

**सारार्थदर्शिनी—**यामानां यमेन उपरमेण *"यमु उपरमे"* तिस्मन् सतीत्यर्थः माधवः कृष्णस्तत्स्वरूपभूत बालकगणश्च गतः स्वस्वगृहमिति शेषः। ततश्च उन्मर्दनं सुगन्धतैलाभ्यञ्जनं तदनन्तरं मज्जः स्नपनं मातृभिः सायं संलालितः॥ २३॥

**भावानुवाद—**जिस-जिस समय जो-जो क्रीड़ा होती उन सबको पूर्णकरके सन्ध्याके समय *'माधवः'*—कृष्ण और उनके स्वरूपभूत श्रीदाम आदि गोपबालकगण अपने-अपने घरोंमें लौट आते। तत्पश्चात् सायंकालमें वे माताओंके द्वारा सुगन्धित तैल मर्दन, स्नान आदिके द्वारा भलीभाँति लालित-पालित होने लगते॥ २३॥

**गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं,**
**हुङ्कारघोषैः परिहूतसङ्गतान्।**
**स्वकान् स्वकान् वत्सतरानपाययन्**
**मुहुर्लिहन्त्यः स्रवदौधसं पयः॥ २४॥**

**अन्वयः—**ततः गावः (अनन्तर गायें) सत्त्वरं गोष्ठं उपेत्य हुङ्कार घोषैः (अतिशीघ्र गोष्ठमें पहुँचकर हुँकार शब्दके द्वारा) परिहूत सङ्गतान् (बुलानेपर आये हुए) स्वकान् स्वकान् वत्सतरान् (अपने-अपने बछड़ोंको) मुहुः (बार-बार) लिहन्त्यः (चाटती हुई) स्रवत् (झरनेवाले) औधसं (स्तन) पयः (दुग्ध) अपाययन् (पान कराने लगतीं)॥ २४॥

**अनुवाद**—ग्वालबालोंकी माताओंकी भाँति गौएँ भी वनसे चरकर शीघ्र ही गोष्ठमें आ जातीं और अपनी हुङ्कारसे बछड़ोंका आह्वान करतीं। उनकी हुङ्कार सुनकर बछड़े भी अपनी माताओंकी ओर दौड़े चले आते। तब गौएँ अपने बछड़ोंको बार-बार जीभसे चाटतीं और स्नेहकी अधिकताके कारण थनोंसे स्वतः ही झरनेवाले दूधकी धाराका पान कराने लगतीं॥ २४॥

**सारार्थदर्शिनी**—गोपीनामिव ततो गवामपि मोहमाह—गावः इति। परिहूता आदावाहुतास्ततः सङ्गताश्च तान्। अत्रापि सत्वरमिति मुहुर्लिहन्त्य इति मुहुः स्रवदिति स्नेहाधिक्यसूचकम्॥ २४॥

**भावानुवाद**—उसके पश्चात् गोपियोंकी भाँति गायोंका भी मोहन कैसे हुआ—उसका वर्णन कर रहे हैं। *'गावः'*—जो गौएँ घास चरनेके लिए वनमें जाती थीं, वे शीघ्र ही गोष्ठमें लौट आतीं तथा हुङ्कार करती हुई बछड़ोंको पुकारने लगतीं। बछड़ोंके समीप आनेपर वे उन्हें बार-बार चाटने लगतीं, जिससे अत्यधिक स्नेहके कारण उनके स्तनोंसे स्वयं ही दूध झरने लगता और अमृतके समान अपने उस दूधको वे कृष्णरूप बछड़ोंको पान करातीं। यहाँ *'सत्त्वरम्'*, *'मुहुर्लिहत्यम्'* एवं *'मुहुः स्रवत्'*—आदि शब्दोंके द्वारा उन गायोंका पहलेसे भी अधिक स्नेह सूचित होता है॥ २४॥

**गोगोपीनां मातृतास्मिन्नासीत् स्नेहर्धिकां विना।**
**पुरोवदास्वपि हरेस्तोकता मायया विना॥ २५॥**

**अन्वयः**—गो-गोपीनां (गायों और गोपियोंका) अस्मिन् (कृष्णमें) स्नेहर्धिकां विना (पहले अपने बछड़ों और पुत्रोंकी तुलनामें जो अधिक स्नेह था, अब अपने बछड़ों और पुत्रोंके प्रति भी वैसा ही हो गया) मातृता आसीत् (उनके प्रति कृष्णका मातृभाव पूर्वकी भाँति ही था) हरेः (वत्सबालकरूपी कृष्णका) अपि आसु (भी गायों और गोपियोंके प्रति) तोकता (पुत्रवत्) मायया विना (यह मेरी माता है और मैं इनका पुत्र हूँ, ऐसा यथार्थ भाव प्रकट हो गया)॥ २५॥

**अनुवाद**—श्रीकृष्णके प्रति इन गोपियों और गायोंका मातृभाव पहले जैसा ही था। किन्तु पहले वे गोपियाँ जैसे अपने पुत्रोंकी अपेक्षा कृष्णको अधिक स्नेह करती थीं, अब वैसा नहीं रहा अर्थात् अपने पुत्रों एवं कृष्णमें उनके स्नेहकी समानता हो गयी। गोपियोंके प्रति वत्सबालकरूपधारी कृष्णका मातृभाव पूर्ववत् ही रहा। किन्तु पूर्वमें "यह मेरी माता है, मैं इनका पुत्र हूँ"—कृष्णका ऐसा भाव नहीं था, किन्तु अब उनका भाव यथायथ हो गया था, यही विशेषता थी॥ २५॥

**सारार्थदर्शिनी**—किञ्च गवां गोपीनां अस्मिन् श्रीयशोदानन्दने कृष्णे मातृता सर्वा उपलालनादिमयः सर्व एव मातृभाव इत्यर्थः। पुरोवत् पूर्ववदेवासीत् किन्तु स्नेहर्द्धिकां स्नेहाधिक्यं बिना पूर्वं श्रीदामसुदामादिभ्यः स्वपुत्रेभ्योऽपि सकाशात् यशोदापुत्रे श्रीकृष्णे स्नेहर्द्धिरासीत् तस्यैव स्वपुत्रीभूतत्वे जाते सति तदा स्वपुत्रेष्वपि तथैव स्नेहर्द्धिरिति यशोदापुत्रे स्वपुत्रे च तुल्य एव स्नेहोऽभूदित्यर्थः। आसु गोगोपीषु हरेरपि तोकता बालभावः पूर्ववदेवासीत् किन्तु मायया उपचारेणैव पुत्रतुल्यत्वात् पुत्रत्वमासीत् ब्रह्ममोहनदिनमारभ्य तु कृष्णे एव श्रीदामसुदामादिरूपस्तासां पुत्रोऽभूदिति कृष्णस्य पुत्रभावो यथार्थ एवेत्यर्थः। ननु श्रीदामादिषु तन्मातृणां यावान् स्नेहस्तावानेव पुत्रीभूते कृष्णेऽपि भवितुमर्हति *"यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकम्"* इति पुर्वोक्तेः। उच्यते कृष्णो हि महामहेश्वरत्वात् स्वाधीनीकृतब्रह्मादिस्वांशपर्यन्तोऽपि प्रेम्णः खल्वधीन एव, प्रेमा तु न तस्याधीनः इति प्रेम्णि तस्य प्रभुत्वाभावात् तेन प्रेमा संकुचितीकर्तुमशक्यः। अतएव स्वामिचरणैरप्युक्तं एतावत्तु वैषम्यं कृष्णेनापि दुर्निवारमिति स च प्रेमा वात्सल्यादिरूपस्तन्मात्रादिषु विराजते इति कृष्णः स्वमात्रादिसमीपे स्वैश्वर्यमननुसन्धानोऽधीनीभूत एव सदा तिठति यथा महाराजचक्रवर्त्तिनः समीपे मण्डलेश्वर इति। न च महामहेश्वरस्य वस्येवं पारतन्त्र्यं दूषणमिति वाच्यम्, प्रत्युत भूषणमेव। यथा जीवस्य मायापारतन्त्र्यं दुःखार्थकं तथैवेश्वरस्यानन्दरसमयस्यापि प्रेमपारतन्त्र्यं प्रतिक्षणवर्द्धमाननिरतिशयानन्दार्थकमेवेति महानुभाववैरनुभूतम्॥ २५॥

**भावानुवाद**—*'गो-गोपीनां मातृता'*—यशोदानन्दन श्रीकृष्णके प्रति गो-गोपियोंका लालन-पालनादिसे युक्त मातृभाव पहले जैसे ही था, पहले माताओंका श्रीदाम, सुदाम आदि अपने-अपने पुत्रोंसे बढ़कर यशोदानन्दन कृष्णके प्रति अधिक स्नेह था। अब वही यशोदानन्दन उनके पुत्र बन गये, इसलिए उन यशोदानन्दनमें और अपने-अपने पुत्रोंमें उनकी समान स्नेह-प्रीति दीखने लगी। पहले गो-गोपियाँ

कृष्णको अपने पुत्र जैसा मानकर स्नेह करती थीं, परन्तु ब्रह्ममोहनके समयसे स्वयं कृष्ण ही श्रीदाम, सुदाम आदिका रूप धारणकर उनके पुत्र बन गये थे। अतएव अब कृष्णके प्रति उनका पुत्रभाव यथार्थ रूपमें दीखने लगा। यहाँ ऐसा प्रश्न होता है कि पहले श्रीदाम आदिके प्रति उनकी माताओंका जैसा स्नेह था, अब श्रीकृष्णके स्वयं उनके पुत्रके रूपमें अवस्थित होनेपर भी वैसा ही होना उचित था, क्योंकि पहले यह कहा गया है—*"यावच्छील-गुणाभिधाकृति-वयो-यावद्विहारादिकम्"* (१९वाँ श्लोक) अर्थात् जिसका जैसा चरित्र, गुण, नाम, रूप, आकृति, आयु, गमनभङ्गी, कण्ठ-स्वर और व्यवहार था, ठीक वैसा ही भाव धारणकर कृष्ण सुशोभित होने लगे। इसके उत्तरमें कह रहे हैं—यद्यपि महामहेश्वर होनेके कारण कृष्ण ब्रह्मादि अपने अंशावतारोंको अपने अधीन करते हैं, तथापि वे स्वयं सर्वदा प्रेमके अधीन ही रहते हैं, प्रेम उनके अधीन नहीं होता। प्रेमके ऊपर उनका प्रभुत्व न रहनेके कारण वे प्रेमको सङ्कुचित करनेमें असमर्थ होते हैं। श्रील श्रीधर स्वामिपादने कहा है—*"एतावत्तु वैषम्यं कृष्णेनापि दुर्निवारम्"* अर्थात् ऐसी विषमता रखना कृष्णके लिए भी असम्भव है। वही वात्सल्य आदिरूप प्रेम व्रजकी माताओंमें विराजमान है। जिस प्रकार अनेक मण्डलेश्वर अपने एक चक्रवर्ती सम्राटके अधीन रहते हैं, उसी प्रकार कृष्ण अपने माता-पिताके निकट अपने ऐश्वर्यको भूलकर सदा-सर्वदा उनके अधीन रहते हैं। महामहेश्वर कृष्णकी इस प्रकारकी अधीनता दोषजनक नहीं, बल्कि भूषण-स्वरूप ही है। जीवकी माया-परतन्त्रता जिस प्रकार दुःखदायी होती है, किन्तु आनन्द-रसमय होनेके कारण ईश्वरकी प्रेम-पराधीनता क्षण-क्षणमें आनन्द बढ़ानेके लिए ही होती है। यही महानुभाव भक्तजनोंका अनुभव है॥ २५॥

**व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्ल्याब्दमन्वहम्।**
**शनैर्निःसीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत्॥ २६॥**

**अन्वयः**—व्रजौकसां (व्रजवासी गोप-गोपियोंका) कृष्णे यथा (यशोदानन्दन कृष्णमें अपने पुत्रसे भी अधिक स्नेह था) स्वतोकेषु (परन्तु अब कृष्ण-स्वरूप अपने पुत्रोंमें) स्नेहवल्ली (स्नेहलता) शनैः

(क्रमशः) अपूर्ववत् (पहलेसे भी अधिक रूपसे) आब्दं (एक वर्ष तक) अन्वहं (प्रतिदिन) निःसीम (अपरिमित रूपसे) ववृधे (वर्द्धित होने लगी)॥ २६॥

**अनुवाद**—व्रजवासी गोप-गोपियोंका यशोदानन्दन कृष्णके प्रति पहले अपने पुत्रोंकी अपेक्षा अधिक स्नेह था, किन्तु अब कृष्ण-स्वरूप अपने पुत्रोंके प्रति वही स्नेहलता क्रमशः एक वर्ष तक प्रतिदिन असीम रूपसे बढ़ने लगी॥ २६॥

**सारार्थदर्शिनी**—तदेवं यशोदानन्दन कृष्णयोः स्वरूपत ऐकरूप्यात् स्नेहाधिक्यं तुल्यमुक्तमपि पुनः स्पष्टीकुर्वन् यशोदानन्दनकृष्णे तु गुणोत्कर्षहेतुकं स्नेहाधिक्यमाह-व्रजौकसामिति। आब्दं वर्षं व्याप्य अन्वहं स्नेहवल्लीति। वल्ली यथा प्रतिदिनमेव वर्द्धते तथैवेत्यर्थः। यथा कृष्णे यशोदानन्दने पूर्वं स्वपुत्रेभ्योऽपि वर्द्धमाना सा आसीत् इदानीं स्वतोकेष्वपि तथैव ववृधे इति स्वतोकानामपि कृष्णत्वात् स्नेहर्द्धिरुभयत्र तुल्यैवेत्यर्थः। किञ्च तु शब्दबलात् कृष्णे इत्यस्यावृत्त्या स्नेहर्द्धेस्तुल्यत्वेऽपि कृष्णे यशोदानन्दने तु तथापि अपूर्ववत् नित्यनवायमानैव तस्य सर्वशक्ति-सौन्दर्यवैदग्ध्यादिगुणवत्त्वादंशिवाच्च तासां पुत्रीभूतकृष्ण स्वरूपाणां तु श्रीदामाद्युचित-सौन्दर्यादिमत्त्वादंशत्वाच्चेति भावः। यद्वा, यथेति यथावदेव स्नेहवल्ली ववृधे कृष्णे तु अपूर्ववदेव ववृधे। इत्यावृत्त्या विनैव व्याख्येयम्॥ २६॥

**भावानुवाद**—इस प्रकार यशोदानन्दन कृष्ण एवं अपने-अपने पुत्ररूपी कृष्णकी स्वरूपतगत एकताके कारण माताओंका स्नेह भी अब कृष्ण और अपने पुत्रोंके प्रति एक समान हो गया। यशोदानन्दन कृष्णके गुणोंकी उत्कर्षताके कारण ही यह स्नेहाधिक्य है, इसीको स्पष्ट करते हुए कह रहे हैं—*'व्रजौकसाम्'*—व्रजवासी गो-गोपियोंकी यह स्नेहलता दिन-प्रतिदिन वर्धित होने लगी। यशोदानन्दन कृष्णमें उनका स्नेह पहले अपने पुत्रकी अपेक्षा अधिक था, परन्तु अब उनकी अपने पुत्रमें भी समान प्रीति हो गयी, क्योंकि स्वयं कृष्ण ही उनके पुत्र बने हुए थे। *'कृष्णे तु अपूर्ववत्'*—यहाँ 'तु' शब्दका प्रयोग होनेके कारण एवं 'कृष्णे'-इस पदकी आवृत्तिके कारण स्नेहवृद्धिमें समानता होनेपर भी यशोदानन्दन कृष्णके प्रति वह स्नेह सर्वशक्ति, सौन्दर्य, वैदग्धी आदि गुणयुक्त तथा सर्वांशी होनेके कारण नित्य नूतन रूपमें प्रतीयमान हो रहा था। किन्तु उनके पुत्ररूपी कृष्ण-स्वरूपका

श्रीदामादि सखाओंके समान ही सौन्दर्यादि होनेके कारण उनके अंशके उचित ही स्नेह था—यह भावार्थ है। अथवा—श्रीकृष्णके प्रति उनका स्नेह पहलेकी भाँति नहीं रहा (अर्थात् कृष्ण-स्वरूपमें विराजमान अपने-अपने पुत्रोंके प्रति उनका स्नेह अधिक मात्रामें बढ़ने लगा), आवृत्तिके बिना ऐसी व्याख्या करनी चाहिये॥ २६॥

**इत्थमात्माऽऽत्मनात्मानं वत्सपालमिषेण सः।**
**पालयन् वत्सपो वर्षं चिक्रीडे वनगोष्ठयोः॥ २७॥**

**अन्वयः**—इत्थं (इस प्रकार) आत्मा (सर्वात्म-स्वरूप) सः (उन कृष्णने) वत्सपः (गोपबालक होकर) वत्सपालमिषेण (बछड़ों और वत्सपालक बालकोंके रूपमें) आत्मना आत्मानं पालयन् (स्वयं ही अपना पालन करते हुए) वर्षं (एक वर्ष तक) वनगोष्ठयोः (वनमें और व्रजमें) चिक्रीडे (क्रीड़ा-विहार किया)॥ २७॥

**अनुवाद**—इस प्रकार श्रीकृष्ण वत्सपालक बनकर वत्स-पालकोंके दलमें बछड़ोंके रूपमें स्वयं अपना ही पालन करते हुए एक वर्ष तक वनमें एवं व्रजमें क्रीड़ा करते रहे॥ २७॥

**सारार्थदर्शिनी**—एवमात्मा श्रीकृष्णो वत्सपो भूत्वा वत्सानां पालानां च मिषेण आत्मानमात्मना पालयन् क्रीडितवानित्यर्थः॥ २७॥

**भावानुवाद**—इस प्रकार सर्वस्वरूप श्रीकृष्ण वत्सपालक होकर गोपबालक-स्वरूप अपने द्वारा वत्सस्वरूप अपना ही पालन करते हुए एक वर्ष तक वन और गोष्ठमें क्रीड़ा करते रहे॥ २७॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—जब ब्रह्माजीने गोपबालकों और बछड़ोंका हरण कर लिया, तब कृष्णने स्वयंको असंख्य बछड़ों और गोपबालकोंके रूपमें प्रकट कर दिया। वे प्रतिदिन प्रातःकाल गोचारणके लिए वनको जाते और पूर्ववत् सींगा, वेणुकी मधुर ध्वनिसे सबको आनन्दित करते हुए स्वयं बने हुए सखाओं और बछड़ोंके साथ सायंकाल व्रजमें प्रवेश करते।

ब्रह्मविमोहन-लीलाके दिन प्रतिदिनकी भाँति दूरसे वेणुध्वनि सुनकर वात्सल्यवती गोपियाँ समस्त गृहकार्योंका परित्यागकर दौड़ती

हुई आयीं और अपने-अपने पुत्रोंको गोदमें उठाकर तथा हृदयसे लगाकर उनका प्रगाढ़ आलिङ्गनकर सैकड़ों बार उनके मुखका चुम्बन करने लगीं। तत्पश्चात् उन्हें वात्सल्यप्रेमसे झरते हुए स्तनदुग्धका पान कराने लगीं। कृष्णरूपी गोपबालक भी परमानन्दमें उस अमृतसे भी सुमधुर स्तनदुग्धका पान करने लगे। इससे पूर्व वे वात्सल्यमयी गोपियाँ केवल यशोदानन्दनका ही प्रगाढ़ आलिङ्गन करती थीं, अपने पुत्रोंका नहीं। वास्तवमें आज भी उन्होंने पुत्ररूपी कृष्णको ही लाड़-प्यार किया। यशोदानन्दनके प्रति प्रकाशित अपने वात्सल्यभाव और व्यवहारको उन्होंने आज अपने पुत्ररूपी परब्रह्मपर ही उड़ेल दिया। कृष्ण भी उन वात्सल्यवती गोपियोंके साथ जैसे बाल्यभावको अभिव्यक्त करते थे, आज श्रीदाम, सुबल आदिके रूपमें भी उनके बाल्यभावकी अभिव्यक्ति समान ही थी।

सर्वसम्पदके अधीश्वर भगवान्‌ने अपने प्रेममुग्धता स्वभावके कारण व्रजमें वात्सल्यप्रेमवती गोपियों और गौओंके विशुद्ध वात्सल्यप्रेम-रसका आस्वादन करनेमें कोई त्रुटि नहीं छोड़ी। महानारायणके रूपमें अनन्त वैकुण्ठोंमें अनन्त लक्ष्मियोंकी सेवा ग्रहण करके भी मानो उनकी तृप्ति नहीं हुई, इसीलिए आज वे वृन्दावनमें गोपबालकों और बछड़ोंके रूपमें अपनेको प्रकाशितकर गोपियों और गौओंकी वात्सल्य-भावमयी प्रेम-सेवा ग्रहण करनेके लिए लालायित हो उठे।

असंख्य गोपबालक रूपधारी कृष्ण प्रतिदिन सन्ध्याके समय वनसे अपने-अपने घर लौट आते थे। इससे पहले कभी क्रीड़ामें आवेशके कारण लौटनेमें देर भी हो जाती थी, परन्तु अब वात्सल्यप्रेमवती गोपियोंकी प्रेमसेवा ग्रहण करनेके लोभसे कृष्ण बिना विलम्ब किये शीघ्रतासे वापिस लौट आते थे। घर लौटते ही वे बछड़ोंको जल्दी-से-जल्दी गोष्ठमें पहुँचाकर शीघ्रतासे घरके भीतर आ जाते तथा श्रीदाम, सुदाम आदि असंख्य रूपोंमें असंख्य गोपियोंकी गोदीमें जाकर स्तनपान करने लगते एवं गोपियाँ आनन्दसे उनका मुख चुम्बन करतीं।

इस प्रकार असंख्य बछड़ोंके रूपमें भी कृष्ण असंख्य गायोंके वात्सल्यप्रेम-रसका आस्वादनकर तृप्ति लाभ करने लगे। जब शाम होते ही गोपबालक बछड़ोंको वापस गोष्ठमें ले आते, तो उस समय

वनसे चरकर लौटी हुई गायें उन्हें देखकर आनन्दमें मत्तप्राय होकर उनके शरीरको चाटने लगती हैं तथा उन्हें स्तनपान कराने लगती हैं। साधारण रूपमें उनका वात्सल्यप्रेम नवजात बछड़ोंपर होना चाहिये था, परन्तु यहाँ इसके विपरीत हो रहा था अर्थात् वे अपने नवजात बछड़ोंकी ओर न देखकर कृष्णरूपी बड़े बछड़ोंकी ओर दौड़ पड़तीं तथा उन्हें स्तनपान करानेमें आत्मविभोर हो जाती थीं।

कृष्णने असंख्य गोपबालकों और बछड़ोंके रूपमें प्रकाशित होकर न केवल व्रजकी गोपियों और गौओं द्वारा स्वयं (कृष्ण) को अपनी सन्तानके रूपमें पानेकी उनकी अभिलाषाको पूर्ण किया, अपितु साथ ही उनके वात्सल्यप्रेमका भी आस्वादन किया। परन्तु यहाँपर एक विशेषता है—यशोदानन्दन कृष्ण अपने अत्यधिक आकर्षक मनोहर रूप एवं असाधारण बाललीलाओंकी चमत्कारिताके द्वारा गो-गोपियोंका जैसा आनन्दवर्धन करते, वह अद्भुत एवं विलक्षण था। दूसरा रूप धारण करनेपर उनके गुणों एवं लीलाओंका पूर्ण प्रकाश नहीं होता तथा उन रूपोंमें यशोदानन्दनकी भाँति प्रेमवर्द्धनकी उत्कर्षता भी प्रकाशित नहीं होती। इस प्रकार कृष्ण असंख्य गोपबालकों और असंख्य बछड़ोंके रूपमें एक वर्ष तक विविध प्रकारका क्रीड़ा-विहार करते रहे॥ २२—२७॥

**एकदा चारयन् वत्सान् सरामो वनमाविशत्।**
**पञ्चषासु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः॥ २८॥**

**अन्वयः**—(इतने दिनों तक बलराम भी मोहग्रस्त थे। वे एक वर्ष पूर्ण होनेसे चार-पाँच दिन पहले ही इस विषयमें कुछ अनुभव कर सके) पञ्चषासु (पाँच या छह) त्रियामासु (रात्रियाँ) हायना पूरणीषु (वर्ष पूर्ण होनेमें अवशेष रह गयीं) एकदा स रामः (एकदिन रामके साथ) अजः (कृष्णने) वत्सान् चारयन् (बछड़ोंको चराते हुए) वनम् आविशत् (वनमें प्रवेश किया)॥ २८॥

**अनुवाद**—जब एक वर्ष पूर्ण होनेमें पाँच-छह रात्रियाँ ही बाकी रह गयी थीं, तब एकदिन कृष्ण बलदेवके साथ बछड़ोंको चराते हुए वनमें प्रविष्ट हुए॥ २८॥

**सारार्थदर्शिनी**—ब्रह्ममोहनप्रसङ्ग एव बलदेवमोहनमपि व्यक्तीकर्तुं कथामाह—एकदेति। पञ्चसु षट्सु वा रात्रिषु हायनस्य वर्षस्य अपूरणीषु पूरकतया अवशिष्टास्वित्यर्थः॥ २८॥

**भावानुवाद**—ब्रह्मविमोहन-लीलाके प्रसङ्गमें ही बलदेव प्रभुका मोह भी प्रकाशित करनेके लिए एक दिनका रहस्य वर्णन कर रहे हैं—एकदा अर्थात् जब वर्ष पूर्ण होनेमें केवल पाँच या छह दिन ही रह गये थे, तब एकदिन कृष्णने बड़े भाई बलदेवजीके साथ बछड़ोंको चराते-चराते वनमें प्रवेश किया॥ २८॥

**ततो विदूराच्चरतो गावो वत्सानुपव्रजम्।**
**गोवर्धनाद्रिशिरसि चरन्त्यो ददृशुस्तृणम्॥ २९॥**

**अन्वयः**—ततो गोवर्धनाद्रि शिरसि (गोवर्द्धन पर्वतके शिखर भागमें) तृणं चरन्त्यः (घास चरती हुई) गावः (गायोंने) अविदूरात् (अति निकटमें) उपव्रजं (व्रजके निकट) चरतः (विचरण करनेवाले) वत्सान् ददृशुः (बछड़ोंको देखा)॥ २९॥

**अनुवाद**—उस समय गिरि गोवर्धनकी चोटीपर घास चरती हुई गायोंने निकटमें व्रजके समीप ही चरते हुए बछड़ोंको देखा॥ २९॥

**सारार्थदर्शिनी**—गोवर्द्धनशृङ्गे तृणं चरन्त्यो गावः तस्मादविदूरात् व्रजस्य निकटे चरतो वत्सान् ददृशुः॥ २९॥

**भावानुवाद**—गोवर्द्धन पर्वतके शिखरपर घास चरती हुई गायोंने कुछ ही दूरीपर घास चरते हुए अपने बड़े-बड़े बछड़ोंको (जिन्होंने दूध पीना छोड़ दिया था) देखा॥ २९॥

**दृष्ट्वाथ तत्स्नेहवशोऽस्मृतात्मा,**
**स गोव्रजोऽत्यात्मपदुर्गमार्गः।**
**द्विपात् ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छो-**
**ऽगाद्धुङ्कृतैरास्रुपया जवेन॥ ३०॥**

**अन्वयः**—अथ दृष्ट्वा (अनन्तर बछड़ोंको देखकर) सः गोव्रजः (गायें) तत्स्नेहवशः (बछड़ोंके प्रति स्नेहपरायण होकर) अस्मृतात्मा

(अपनेको विस्मृत होकर) अत्यात्मपदुर्गमार्गः (अपने पालकों तथा दुर्गम मार्गका अतिक्रमकर) द्विपात् (मानो दो ही पैरोंसे) ककुद्-ग्रीवः (गर्दन उठाकर) [तथा] उदास्य पुच्छः (मुख और पूँछ उठाकर) [एवं] आस्रुपयाः (स्तनोंसे दूध झरती स्थितिमें) हुंकृतैः (हुँकार करती हुई) जवेन (अतिशय वेगके साथ) अपात् व्रजसमीपे आगतः (व्रजके समीप आ गयीं)॥ ३०॥

**अनुवाद**—उन बछड़ोंको देखते ही गायोंका वात्सल्यस्नेह उमड़ आया। वे अपनी सुध-बुध खोकर अपने पालक ग्वालोंके द्वारा रोके जानेपर भी दुर्गम पथ आदिको भी पार करती हुईं उन बछड़ोंकी ओर दौड़ने लगी। उस समय उनकी गर्दनें सिकुड़कर कूबड़से मिल गयी थीं, वे मुख एवं पूँछको ऊपर उठाये हुए हुँकार करती हुई इतनी तेजीसे दौड़ीं कि शीघ्र ही व्रजके समीप आ गयीं। उन्हें दौड़ते देखकर ऐसा लग रहा था, मानो उनके दो ही पैर हों। उस समय उनके स्तनोंसे प्रचुर मात्रामें दूध झर रहा था॥ ३०॥

**सारार्थदर्शिनी**—अस्मृतात्मा आत्मानमपि विस्मृत्य स गोसमूहः अगात् अतिक्रान्ता आत्मपा गोपा दुर्गा मार्गाश्च येन सः, परस्परं युक्ताभ्यां पद्भ्यां धावन् द्विपादिव प्रतीयमानः उन्मुखत्वात् ककुदि ग्रीवा यस्य स उद्गतान्यास्यानि पुच्छानि च यस्य सः। आ सम्यगेव क्षरन्ति अस्रूणि पयांसि च यस्य सः॥ ३०॥

**भावानुवाद**—*'अस्मृतात्मा'*—वे गायें अपनी सुध-बुध खोकर, अपने पालक गोपोंको और काँटोंसे घिरे हुए मार्गको पारकर हुँकार भरती हुईं अपने बड़े बछड़ोंकी ओर मुँह और पूँछ उठाकर दौड़ती हुई आ रही थीं। दौड़ते हुए उनकी गर्दन सिकुड़कर उनके कूबड़से मिल रही थी। *'द्विपात्'*—वे अपने पिछले और अगले पैरोंको एक साथ उठाकर इस प्रकार दौड़ रही थीं कि दूरसे ऐसा लग रहा था, मानो वे कोई दो पैरवाले पशु हों। उस समय उनके स्तनोंसे प्रचुर मात्रामें दूध झर रहा था॥ ३०॥

**समेत्य गावोऽधो वत्सान् वत्सवत्योऽप्यपाययन्।**
**गिलन्त्य इव चाङ्गानि लिहन्त्यः स्वौधसं पयः॥ ३१॥**

**अन्वयः**—[यहाँ विशेषकर गायोंकी चेष्टाका वर्णन कर रहे हैं] गावः (गायें) अधः (गोवर्द्धनके नीचे) समेत्य (मिलकर) वत्सवत्यः (फिरसे प्रसूता) अपि अङ्गानि (होनेपर भी बछड़ोंके शरीरोंको) गिलन्त्य इव (निगलनेकी भाँति) लिहन्त्यः (चाटती हुई) वत्सान् स्वौधसं (अपने स्तनोंसे झरते हुए) पयं (दूधको) अपाययन् (पिलाने लगीं)॥ ३१ ॥

**अनुवाद**—यद्यपि उन गायोंने नये बछड़ोंको भी जन्म दिया था, तथापि वे गोवर्धन पर्वतके नीचे अपने पहलेवाले बछड़ोंके पास दौड़ी आयीं और उनके शरीरोंको चाटते हुए वात्सल्यस्नेहवश उन्हें अपने थनोंसे स्वयं ही झरनेवाले दूधको पिलाने लगीं। उनकी उत्कण्ठा देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो वे बछड़ोंको पुनः अपने पेटमें रख लेना चाहती हैं॥ ३१ ॥

**सारार्थदर्शिनी**—गोवर्द्धनस्याधः समेत्य द्व्याहिकत्र्याहिकादिवत्सवत्योऽपि औधसं ऊधोभ्यः स्वयमेव स्रवत् पयः अपाययन्, गिलन्त्य इवेति गवां लेहनाधिक्यं स्नेहाधिक्यं-सूचकम्॥ ३१ ॥

**भावानुवाद**—गायोंने दो तीन दिन पहले ही जिन नये बछड़ोंको जन्म दिया था, उन्हें छोड़कर वे गोवर्द्धनकी तलहटीमें व्रजके समीप घास चरनेवाले बड़े बछड़ोंको इस प्रकारसे चाटने लगीं, मानो उन्हें निगल जायेंगी। स्नेहकी अधिकताके कारण वे उन बछड़ोंको अपने स्तनोंसे झरता हुआ दूध पिलाने लगीं। लेहनाधिक्यसे उनका स्नेहाधिक्य सूचित होता है॥ ३१ ॥

**गोपास्तद्रोधनायास-मौघ्यलज्जोरुमन्युना ।**
**दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान्॥ ३२ ॥**

**अन्वयः**—[बछड़ोंके प्रति गायोंके स्नेहका वर्णन करनेके पश्चात् गोपोंका स्नेह दिखानेके लिए वर्णन करते हैं] गोपाः तद्रोधनायास-मौघ्यलज्जोरुमन्युना (गायोंको रोकनेके प्रयासमें समर्थ न होनेपर उन गोपोंने लज्जित तथा बहुत ही रुष्ट होकर) दुर्गाध्वकृच्छ्रतः (दुर्गम

मार्गको पारकर अति कष्टपूर्वक) अभ्येत्यः (आकर) गोवत्सैः (बछड़ोंके साथ) सुतान् ददृशुः (अपने पुत्रोंको देखा)॥ ३२॥

**अनुवाद**—गायोंको रोकनेमें असमर्थ होनेपर गोपलोग अत्यन्त लज्जित तथा रुष्ट होकर अति कष्टपूर्वक दुर्गम मार्गको पारकर वहाँपर उपस्थित हुए और बछड़ोंके साथ अपने पुत्रोंको देखा॥ ३२॥

**सारार्थदर्शिनी**—तासां गवां रोधने य आयासो लकुटोत्क्षेपादिभिस्तस्य मौघ्येन वैयर्थ्येन हेतुना लज्जा च मन्युश्च तल्लज्जामन्यु तेन दुर्गमार्गजनितक्लेशेन चाभ्येत्य गोवत्सैः सह॥ ३२॥

**भावानुवाद**—गायोंको अपनी लाठियोंसे रोकनेका प्रयास करनेपर भी गोपलोग विफल हो गये, जिससे वे लज्जा और क्रोध सहित बड़े कष्टसे दुर्गम पथको पारकर गायोंके समीप आये तथा वहाँ उन्होंने बछड़ोंके सहित अपने पुत्रोंको भी देखा॥ ३२॥

**तदीक्षणोत्प्रेमरसाप्लुताशया,**
**जातानुरागा गतमन्यवोऽर्भकान्।**
**उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्द्धनि,**
**घ्राणैरवापुः परमां मुदं ते॥ ३३॥**

**अन्वयः**—ते (उन गोपोंका) तदीक्षणोत्प्रेमरसाप्लुताशया (अपने-अपने पुत्रोंका दर्शनकर स्नेहरसमें निमग्न होनेके कारण) जातानुरागाः (पुत्रोंके प्रति उनका अनुराग उत्पन्न हो गया) गत मन्यवः (इससे उनका रोषभाव दूर हो गया) अर्भकान् (पुत्रोंको) उदुह्य (उठाकर) दोर्भिः (दोनों भुजाओंके द्वारा) परिरभ्य (आलिङ्गनकर) मूर्द्धनि (मस्तकको) घ्राणैः (सूँघते हुए) परमां मुदम् (अतीव प्रसन्नताको) अवापुः (प्राप्त हुए)॥ ३३॥

**अनुवाद**—अपने-अपने पुत्रोंको देखते ही उन गोपोंका हृदय स्नेहरससे सराबोर हो गया तथा उनके हृदयमें अपने पुत्रोंके प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया। इस प्रकार पहले उनमें जो अपने पुत्रोंके प्रति रोष था, वह दूर हो गया। उन्होंने अपने-अपने पुत्रोंको गोदमें उठाकर

हृदयसे लगा लिया तथा उनका मस्तक सूँघते हुए परमानन्दको प्राप्त किया॥ ३३॥

**सारार्थदर्शिनी**—गतमन्यव इति अरे अनभिज्ञाः! अत्र परमवत्सलगवां गणदृष्टिपथे कथं वत्सा आनीताः? इति तांस्ताडयितुमनसोऽपि तेषां बालानामीक्षणोद्भूतेन प्रेमरसेन आप्लुताशयास्ततश्च जातानुरागाः प्रेम्णामेव पञ्चमीं कक्षामनुरागाख्यां तुष्णातिशयमयीं प्राप्ताः। गतमन्यवः विस्मृतक्रोधाः॥ ३३॥

**भावानुवाद**—उन गोपोंके क्रोधित होनेका कारण था—अरे मूर्ख बालको! तुम इन स्नेहवात्सल्यमयी गायोंकी दृष्टिमें बछड़ोंको क्यों लाये? इस प्रकार क्रोधित अपने पुत्रोंको डाटने-फटकारनेके लिए वहाँ आये गोप भी अपने पुत्रोंको देखकर प्रेमरसमें डूब गये। वे *'जातानुरागाः'*—प्रेमकी पञ्चम कक्षा (स्थिति) अनुरागयुक्त अत्यधिक तृष्णामयी दशाको प्राप्त हो गये। इससे उनका क्रोध दूर हो गया॥ ३३॥

**ततः प्रवयसो गोपास्तोकाश्लेषसुनिर्वृताः।**
**कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ॥ ३४॥**

**अन्वयः**—ततः (अनन्तर) प्रवयसः गोपाः (वृद्ध गोपगण) तोकाश्लेष सुनिर्वृताः (पुत्रोंको आलिङ्गनकर आनन्दित होकर) शनैः (धीरे-धीरे) कृच्छ्रात् (कष्टके साथ) अपगताः (आलिङ्गन, आघ्राण आदिसे निवृत्त हुए) तदनुस्मृत्युदश्रवः (तब पुत्रोंका स्मरण होनेसे उनके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगे)॥ ३४॥

**अनुवाद**—तब वृद्ध गोप अपने-अपने पुत्रोंका आलिङ्गनकर बड़े ही आनन्दित हुए। फिर अति कष्टपूर्वक उन्हें छोड़कर धीरे-धीरे वहाँसे चले गये। वहाँसे जानेके बाद भी पुत्र-स्मृतिके कारण उनकी आँखोंसे प्रेमाश्रु बह रहे थे॥ ३४॥

**सारार्थदर्शिनी**—प्रवयसो वृद्धाः कृच्छ्रादेव शनैरेव गोचारणनुरोधादेव अपगता तस्मादाश्लेष्याद्वियुज्य गतास्ततश्च विच्छेदोत्थया तेषामनुस्मृत्या उद्गताश्रवः॥ ३४॥

**भावानुवाद**—वृद्ध गोपोंने अति कष्टसे आलिङ्गन आदिसे निवृत्त होकर गोचारणके लिए वनमें प्रवेश किया, परन्तु पुत्रोंके वियोगके

कारण निरन्तर उनका स्मरण होनेसे उनकी आँखोंसे आँसू बहने लगे॥ ३४॥

**व्रजस्य रामः प्रेमर्द्धेर्वीक्ष्यौत्कण्ठ्यमनुक्षणम्।**
**मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविदचिन्तयत् ॥ ३५॥**

**अन्वयः**—रामः (बलदेव) मुक्तस्तनेषु (आयु अधिक हो जानेके कारण स्तनपानसे विरत) अपि अपत्येषु (बछड़ोंके प्रति भी) व्रजस्य (व्रजकी गायोंका) अनुक्षणं (निरन्तर) प्रेमर्द्धेः (स्नेह समृद्धिके कारण) औत्कण्ठ्यं (अतिशय उत्कण्ठाको) वीक्ष्य अहेतुवित् (देखकर उसका कारण न जाननेके कारण) अचिन्तयत् (चिन्ता करने लगे)॥ ३५॥

**अनुवाद**—बलदेव प्रभुने देखा कि आयु अधिक हो जानेके कारण जिन्होंने अपनी माताओंका स्तनपान करना छोड़ दिया है, उन बछड़ोंके प्रति गायोंका स्नेह और उत्कण्ठा क्षण-प्रतिक्षण बढ़ती जा रही है। परन्तु वे इसका कारण समझ नहीं पाये और इस विषयमें विचार करने लगे॥ ३५॥

**सारार्थदर्शिनी**—प्रेमर्द्धेर्हेतोरौत्कण्ठ्यं मुक्तस्तनेष्वपि वत्सेषु नवप्रसूतवत्सतरीणामपि गवाम् अहेतुवित् हेतुमजानन् अचिन्तयदिति। एतावत् कालेषु प्रतिदिनमेव गोदोहनादि-समयेषु नवप्रसूतानपि वत्सान् विहाय प्राचीनानेव वत्सान् स्तनं पाययन्तीः सर्वा एव गाः पश्यतोऽपि तस्य तस्मिन्नेव दिने यच्चिन्ता प्रादुरभूत् तस्मिन्नपि दिने यदन्येषां प्रवयसां विवेकिनामपि गोपानां तथा चिन्तनं नाभूत् तत्र कारणं योगमायैव। ब्रह्ममोहनदिनमारभ्यैव गोगोपीगोपानां बलदेव सहितानां सर्वेषामेव भगवता स्वयोगमायया मोहितत्वात् प्रतिदिनविरोधदर्शनेऽपि विरोधानुसन्धानं न कस्याप्यभूत् किं तु सर्वजगत्कारणस्य कारणार्णवशायिनोऽपि परमांशित्वेन स्वाग्रजत्वेन स्वप्रियसखत्वेन च वञ्चनानौचित्यादेतल्लीलाजिज्ञापयिषा श्रीबलदेवे समुचितापि पूर्वं नाभूत्। वर्षपर्यन्तं तत्तच्छ्रीदामादिप्रियसखविच्छेददुःखस्य तस्मै दातुमनौचित्यात् स्वस्य तु तद्दुःखं नास्त्येव वत्सकुलान्वेषकेणैकप्रकाशेन तन्निकट एव स्थितत्वात्। अतो वर्षावसान एव भगवतः सा तत्र यदाभूत् तदा मायापि शनैः शनैरंशेनांशेनैव तस्मादुपरराम न तु युगपत्सामस्त्येन। भगवदैश्वर्यसिन्धौ तमपि भक्ताभिमानास्पदीकृत्य निमज्जयितुमित्यवसीयते॥ ३५॥

**भावानुवाद**—*'प्रेमर्द्धेः औत्कण्ठ्य'*—प्रेमकी अधिकताके कारण उत्कण्ठा अर्थात् जिन बछड़ोंने दूध पीना छोड़ दिया था, उनके प्रति

नयी-प्रसूता गायोंका एवं बालकोंके प्रति गोप-गोपियोंका दिन-प्रतिदिन बढ़ता हुआ प्रेम देखकर उसका कारण न समझ पानेपर बलदेवजी विचार करने लगे। इतने दिनों तक प्रतिदिन ही गो-दोहन आदिके समय गायें नये-नये बछड़ोंको दूध न पिलाकर पुराने बछड़ोंको दूध पिला रही हैं, यह देखकर उसी दिन ही केवल बलदेव प्रभुके मनमें विचार आया, परन्तु वयोवृद्ध विवेकी गोपोंके मनमें उस दिन तक भी कोई विचार नहीं आया। इस विषयमें एकमात्र कारण श्रीयोगमाया हैं। ब्रह्ममोहन-लीलाके दिनसे प्रारम्भकर बलदेवके सहित गो, गोपी एवं गोपगण सभीको भगवान श्रीकृष्णकी योगमायाने मोहित कर रखा था। इसीलिए प्रतिदिन विपरीत व्यवहार दर्शन करके भी किसीको इसका आभास नहीं हुआ। किन्तु समस्त जगत्के कारण, कारणार्णवशायी महाविष्णुके परम अंशी, बड़े भाई और प्रियसखा होनेके कारण बलदेवजी वञ्चनाके योग्य नहीं थे, उन्हें तो बतलाना चाहिये था। परन्तु कृष्णने उन्हें भी अपनी इस लीलाका रहस्य नहीं बतलाया या उन्हें कुछ समझने भी नहीं दिया। श्रीकृष्णको इस लीलाका रहस्य प्रकट करनेकी इच्छा नहीं हुई, इसका कारण यह था कि कृष्ण सुबल, श्रीदाम आदि प्रिय सखाओंके एक वर्षके विच्छेदका दुःख बलदेवजीको नहीं देना चाहते थे। कृष्णको स्वयं इसका दुःख नहीं था, क्योंकि वे ग्वालबालों और बछड़ोंके साथ एक प्रकोष्ठमें उनके निकट ही क्रीड़ा कर रहे थे। अतः जब एक वर्ष बीतनेका समय उपस्थित हुआ, तब कृष्णकी यह इच्छा हुई कि बलदेवजीको भी अब यह रहस्य बतलाना चाहिये। कृष्णकी ऐसी इच्छा जानकर माया भी धीरे-धीरे हटने लगी, किन्तु सम्पूर्ण रूपसे एक साथ नहीं। इसका कारण था कि बलदेव प्रभुको भी भक्ताभिमानका पात्र बनाकर भगवान्के ऐश्वर्य-समुद्रमें डुबानेके लिए ही ऐसा किया था—यह भावार्थ है॥ ३५॥

**किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेऽखिलात्मनि।**
**व्रजस्य सात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्द्धते॥ ३६॥**

**अन्वयः**—सात्मनः (मेरे साथ वर्त्तमान) व्रजस्य (व्रजजनोंका) अखिलात्मनि वासुदेवे इव (सर्वात्मास्वरूप कृष्णके प्रति जैसा प्रेम है, वैसा ही) अपूर्वं प्रेम (अपूर्व प्रेम) तोकेषु (बालकोंके प्रति) वर्द्धते (वर्द्धित हो रहा है) एतत् किं अद्भुतम् (यह कैसा अत्यन्त आश्चर्यका विषय है?)॥ ३६॥

**अनुवाद**—यह बड़े आश्चर्यका विषय है कि सर्वात्मास्वरूप श्रीकृष्णके प्रति मेरा और व्रजवासियोंका जैसा अपूर्व प्रेम है, आज इन गोपबालकों एवं बछड़ोंके प्रति भी हम व्रजवासियोंका वैसा ही अपूर्व अनुराग बढ़ता जा रहा है॥ ३६॥

**सारार्थदर्शिनी**—प्रथमं मायांशोपरमे सति विरोधदर्शनोत्थं तस्य चिन्तनमाह—किमेतदिति। वासुदेवे इवेति वासुदेवे यथा पुरा प्रेम तथा स्वतोकेष्वपि व्रजस्य प्रेम वर्द्धते किमेतदद्भुतं किं च सात्मनः मत्सहितस्यापि तेषु कृष्णवत् प्रेम किमित्यर्थः॥ ३६॥

**भावानुवाद**—सर्वप्रथम मायाका कुछ अंश दूर होनेपर विरोधी भाव दर्शनकर उसके विषयमें विचार कर रहे हैं—*'किम् एतत्'*—कैसे आश्चर्यकी बात है? *'वासुदेवे इव'*—व्रजकी वात्सल्यवती गोपियों और गायोंका समस्त ब्रह्माण्डोंके परमात्मा, सर्वाश्रय वासुदेवके प्रति पहले जैसा प्रेम था, आज उनका वैसा ही प्रेम अपने-अपने पुत्रोंमें वर्धित होता देखा जा रहा है। यह कैसा आश्चर्य है? और मेरा भी उन बालकोंके प्रति कृष्णके समान प्रेम बढ़ रहा है, इसका कारण क्या है?॥ ३६॥

**केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युतासुरी।**
**प्रायो मायास्तु मे भर्त्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी॥ ३७॥**

**अन्वयः**—इयं माया का दैवी वा नारी (यह माया क्या दैवी है या मनुष्य सम्बन्धीय है) उत (अथवा) आसुरी (आसुरी माया है) कुतः (कहाँसे) आयाता वा प्रायः (यह माया आयी है) [सम्भवतः] मे भर्त्तुः (मेरे प्रभु श्रीकृष्णकी माया होगी) [क्योंकि] माया अस्तु अन्या (दूसरी जितनी भी माया हैं) मे अपि विमोहिनी न (वे मुझे विमोहित नहीं कर सकतीं)॥ ३७॥

**अनुवाद**—यह कैसी माया है? यह देवताओंकी माया है, मनुष्य सम्बन्धीय है अथवा किसी असुरकी है? यह माया कहाँसे आयी है? सम्भवतः यह मेरे अधीश्वर श्रीकृष्णकी माया होगी, क्योंकि अन्य किसीकी माया तो मुझे मोहित करनेमें समर्थ नहीं है॥ ३७॥

**सारार्थदर्शिनी**—भवतु सर्वज्ञतयैव कारणमस्य ज्ञास्यामीति क्षणं परामृश्य द्वितीयमायांशोपरमे सति मायेयमिति निश्चित्य सा कीदृशी कुतस्त्या कि सम्बन्धिनीति पुनर्वितर्कयति केयं माया कुतो हेतोः कुतो देशाद्वा? दैवीति देवा ब्रह्माद्या एव किमैश्वर्यपरीक्षणार्थं वत्सबालका भूत्वा अस्माकं चित्तं स्वेषु स्नेहयन्ति नैते श्रीदामाद्याः। नारीति नरा ऋष्यादय एव किं ज्ञानपरीक्षार्थमेते वत्साद्या अभूवन् आसुरीति असुरा कंसादय एव किं बलेनापारयन्तश्छलेनास्माकं हिंसार्थमेतेऽभूवन्निति बहुधा विकल्प्य तृतीयमायांशोपरमे सति पुनः सम्भावयति प्राय इति। मे भर्त्तुः श्रीकृष्णस्यैव माया इयं महायोगमायाख्या शक्तिरसाधारणी यस्याः खलु मायानियन्तृष्वस्मासु विशुद्धघनचित्स्वप्यधिकारः। अस्त्विति सम्भावनायां लोट्। नान्येति का नाम सा माया ममापि मोहिनी यतो मदंशस्य महत्स्रष्टुः पुरुषस्यापि मायया ब्रह्मादिकं सर्वजगन्मोहितमिति भावः॥ ३७॥

**भावानुवाद**—"जैसा भी हो, अपनी सर्वज्ञता शक्तिके द्वारा ही मैं इसका कारण निरूपण करता हूँ"—बलदेवजी क्षण कालके लिए इस प्रकार विचार कर ही रहे थे, उसी क्षण मायाका द्वितीय अंश दूर हो गया और फलस्वरूप उन्होंने स्थिर किया—यह माया है, परन्तु यह माया कैसी है, कहाँसे आयी, किसकी है तथा किसलिए आयी है? *'दैवी'*—क्या ब्रह्मादि देवताओंने मेरे ऐश्वर्यकी परीक्षाके लिए वत्स और गोपबालक बनकर मेरे हृदयमें उनके प्रति प्रीति उत्पन्न करानेके लिए इस मायाका विस्तार किया है? क्या ये यथार्थ श्रीदाम आदि नहीं हैं? *'नारी'*—अथवा क्या ऋषीगण ही हमारे ज्ञानकी परीक्षाके लिए ये बछड़े और ग्वालबाल बने हैं? *'आसुरी'*—तो क्या अपने बल पौरुषसे हमें पराजित करनेमें असमर्थ होकर कंस आदि असुरोंने ही अब छल-चातुरी या अपनी मायासे हमें मारनेके लिए बछड़ों और बालकोंका रूप धारण किया है? इस प्रकार नाना प्रकारसे सोच-विचार करनेपर मायाका तृतीय अंश दूर होनेपर बलदेवजी फिरसे सम्भावना करने लगे—*'प्रायः'* तब तो निश्चित ही मेरे प्रभु श्रीकृष्णकी योगमाया नामकी असाधारण शक्तिका ही यह प्रभाव है,

क्योंकि माया-नियन्ता और विशुद्धघन चित्-स्वरूप मुझपर केवल उसी योगमायाका प्रभाव ही पड़ सकता है। अन्यथा दूसरी कोई भी ऐसी माया नहीं है, जो मुझे भी मोहित कर सके, क्योंकि मेरे अंशस्वरूप महत्स्रष्टा पुरुषकी मायासे ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण जगत् मोहित होता है॥ ३७॥

**इति सञ्चिन्त्य दाशार्हो वत्सान् सवयसानपि।**
**सर्वानाचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः॥ ३८॥**

**अन्वयः**—सः दाशार्हः (उन बलरामजीने) इति (पूर्वकथित) सञ्चिन्त्य वयुनेन चक्षुषा (ज्ञान चक्षुओंके द्वारा) सर्वान् सवयसान् (सभी सहचरों) वत्सान् (और बछड़ोंको) अपि वैकुण्ठं (श्रीकृष्णके रूपमें) आचेष्ट (देखा)॥ ३८॥

**अनुवाद**—ऐसा विचारकर बलदेव प्रभुने ज्ञानदृष्टिके द्वारा देखा कि इन सभी सखाओं एवं बछड़ोंके रूपमें कृष्ण ही प्रकाशित हैं॥ ३८॥

**सारार्थदर्शिनी**—भवतु समाधाय ज्ञानदृट्या पुनरप्येतान् निभालयामीति विचारे सति चतुर्थ मायांशस्यापि श्रीकृष्णस्येच्छयैवोपरमे सति तान् यथार्थान् कृष्णस्वरूपानेतान् अपश्यदित्याह—सवयसानिति। समासान्त आर्षः। वयुनेन समाहित-ज्ञानमयेन चक्षुषा वैकुण्ठं श्रीकृष्णमेवापश्यत्॥ ३८॥

**भावानुवाद**—"जैसा भी हो, स्थिरभावसे ज्ञानदृष्टिसे पुनः इन्हें देखूँ"—जैसे ही बलदेवजीने ऐसा विचार किया, श्रीकृष्णकी इच्छासे मायाका चौथा भाग भी हट गया और बलरामजी अनुसन्धानात्मक ज्ञानमय नेत्रों द्वारा उन ग्वालबाल और बछड़ोंका कृष्ण-स्वरूपमें ही दर्शन करने लगे॥ ३८॥

**नैते सुरेशा ऋषयो न चैते,**
**त्वमेव भासीष भिदाश्रयेऽपि।**
**सर्वं पृथक् त्वं निगमात् कथं वदे-**
**त्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत्॥ ३९॥**

**अन्वयः**—ईश (हे प्रभो!) एते सुरेशाः (जिन्हें पहले मैं गोपालक रूपधारी देवश्रेष्ठ गरुड़ आदि समझ रहा था) न (इस समय इन्हें उस रूपमें नहीं देख रहा हूँ) एते वा ऋषयः न (इन्हें पहले मैं जो नारदादि ऋषि समझ रहा था, अब वैसा भी नहीं देख रहा हूँ) भिदाश्रये अपि पृथक् (पृथक् रूपमें प्रतीत होनेपर भी इन सभी गोपबालकों एवं बछड़ोंमें) त्वं एव भासि (तुम ही प्रकाशित हो रहे हो, यही मैं देख रहा हूँ) [इसलिए] त्वं (तुम ही) सर्व वृत्तं निगमात् (सभी विषयको विश्लेषणपूर्वक संक्षेपमें प्रकाशित कीजिये) इति (इस प्रकार) वद (बलदेवके द्वारा) उक्तेन (जिज्ञासा करनेपर) प्रभुणा (कृष्णने सारा विवरण बताया) [इससे] बलः (बलरामजी) अवैत् (समझ गये)॥ ३९॥

**अनुवाद**—श्रीबलदेवने श्रीकृष्णसे कहा—हे प्रभो! हे श्रीकृष्ण! पहले मैं इन ग्वालबालोंको देवश्रेष्ठ गरुड़ आदि और बछड़ोंको नारद आदि ऋषि समझ रहा था। किन्तु अब मैं वैसा नहीं देख रहा हूँ। ये न तो देवता हैं और न ही कोई ऋषि। बल्कि पृथक् रूपमें प्रतीयमान इन सबके मध्यमें केवल आप ही प्रकाशित हो रहे हैं। अतः आप कृपा करके संक्षेपमें इस विषयका वर्णन कीजिये? बलदेवजीके इस प्रकारसे प्रश्न करनेपर जब कृष्णने उन्हें सारा वृतान्त सुनाया, तब बलदेवजी भी सारी बातें समझ गये॥ ३९॥

**सारार्थदर्शिनी**—ततश्च कृष्णस्यैवं वत्सबालकीभावे किं कारणं? किं वा प्रयोजनं? ते वत्सबालका वा क्व स्थापिता इति। बहुतरसमाधिनापि यत् स्वयं ज्ञातुं नेष्टे तत्र माया न कारणं किं तु स्वयं भगवतः कृष्णस्य खल्वैश्वर्यमसाधारणमित्थं स्वरूपमेव। सर्वत्र सर्वज्ञा अपि नारायणादयः। परमेश्वराः स्वांशा अपि यद्विषयकमल्पज्ञत्वमेव बिभ्रति न तु सर्वज्ञत्वं स्वत इत्यत्र प्रमाणं द्वारकावासिविप्रबाल-कहर्त्ता भूमा महापुरुषोऽप्यग्रत आख्यास्यते, तस्मात् श्रीबलदेवः कृष्णं दृष्ट्वैव सर्वं तत्त्वमवगतवानित्याह—नैते इति। सुरेषा ब्रह्माद्या एव मायया वत्सबालकाकारा एते न स भवन्ति, नापि ऋषयः चकारान्नाप्यसुराः किंतु भिदाश्रयेऽपि विविधभेदास्पदेऽपि वत्सबालादिसमूहे त्वमेवैको भासि एकस्यापि तव पृथक्त्वं वत्सपालादिरूपत्वं सर्वं कथं तत् निगमात् संक्षेपात् वदेत्युक्तेन पृष्टेन प्रभुणा श्रीकृष्णेन हेतुना बलः अवैत् ब्रह्ममोहनादिवृत्तं ज्ञातवान्॥ ३९॥

**भावानुवाद**—श्रीकृष्णका इस प्रकार बछड़े और ग्वालबाल होनेका क्या कारण है? अथवा इससे क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? और असली बछड़ों और ग्वालबालोंको कहाँ रख दिया है?—इस प्रकार गम्भीर रूपसे सोच-विचार करनेपर भी श्रीबलदेवजी स्वयं यह जाननेमें समर्थ नहीं हुए कि इस विषयमें माया कारण नहीं है, बल्कि भगवान् श्रीकृष्णका असाधारण ऐश्वर्य ही ऐसा है। अंश या वैभवस्वरूप श्रीनारायण आदि परमेश्वरगण अन्यत्र सर्वज्ञ होनेपर भी श्रीकृष्णके विषयमें अल्पमात्र ही जान सकते हैं, सम्पूर्ण रूपमें नहीं। श्रीकृष्णके द्वारा द्वारकावासी मृत ब्राह्मणपुत्रको लानेके समय भूमा-पुरुषके वचन ही इसके प्रमाण हैं।

अतएव बलदेवजी बछड़ों एवं बालकोंको कृष्णस्वरूपमें देखकर ही सबकुछ जान गये थे। इसे ही *'नैते'* आदि द्वारा कह रहे हैं। वे कृष्णसे कहने लगे—ब्रह्मादि देवता मायाके द्वारा बछड़े और गोपबालक बने हुए हैं—ऐसा सम्भव नहीं है, ऋषि या असुर भी ये बछड़े और ग्वालबाल नहीं हैं। किन्तु *'भिदाश्रयोऽपि'*—इस प्रकार विभिन्न बछड़ों और गोपबालकोंके रूपमें एकमात्र तुम ही प्रकाशित हो रहे हो। तुमने बछड़ों और ग्वालबालोंका रूप क्यों धारण किया? इस तत्त्वको संक्षेपमें मुझे बतलाओ अर्थात् तुम एक होकर भी विविध प्रकारसे वर्त्तमान हो, अतः किस कारण तुम इतने बछड़े और बालक बने हो? इस प्रकार श्रीबलरामके द्वारा पूछे जानेपर श्रीकृष्णने वन भोजन, ब्रह्माका ग्वालबालों और बछड़ोंको चुराना आदि वृतान्त विस्तारपूर्वक उन्हें सुनाया॥ ३९॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने असंख्य गोपबालकों और बछड़ोंके रूपमें प्रकट होकर एक वर्ष तक व्रजकी गौओं तथा माताओंके वात्सल्यप्रेमरसका आस्वादन किया। वे सभी कृष्णको पुत्ररूपमें प्राप्त करना चाहती थीं। कृष्णने भी उनके गर्भसे जन्म न लेनेपर भी असंख्य गोवत्स और गोपबालकोंका रूप धारणकर परोक्ष रूपसे उनकी अभिलाषाको पूर्ण किया। इस प्रकार गोप-गोपियोंका वात्सल्यप्रेम बढ़ाते हुए एवं बालक्रीड़ारसमें मत्त होकर उस प्रेमका आस्वादन करते हुए उन्हें एक वर्ष बीत गया।

जब एक वर्ष पूर्ण होनेमें केवल पाँच-छह दिन ही रह गये, तब एक दिन कृष्ण, बलदेव एवं सखाओंके साथ बछड़ोंको चरानेके लिए गोवर्द्धनकी तलहटीमें गये। उस समय वहाँ वृद्ध गोपगण गोवर्द्धन पर्वतके ऊपर गायोंको चरा रहे थे। जैसे ही गोवर्द्धन पर्वतके ऊपर घास चरनेवाली गायोंकी दृष्टि तलहटीमें चरते हुए बछड़ोंपर पड़ी, वैसे ही उनके हृदयमें बछड़े-रूपधारी कृष्णके प्रति अपार स्नेह उमड़ पड़ा और वे अतिवेगसे छलाँगें मारती हुई पूँछ उठाकर उनकी ओर दौड़ पड़ीं। वृद्ध गोपगण चेष्टा करके भी उन गायोंको रोक नहीं सके, जिससे क्रोधित होकर वे भी गायोंके पीछे-पीछे गोवर्द्धनसे नीचे उतर आये। वे अपने बालकोंको डाँटना चाहते थे, परन्तु जैसे ही उनकी दृष्टि अपने-अपने बालकोंपर पड़ी, वैसे ही उनका सारा क्रोध न जाने कहाँ चला गया। वे उन्हें गोदमें लेकर प्रगाढ़ आलिङ्गनकर उनका मुख चुम्बन करने लगे।

वहींपर घने पल्लवोंके द्वारा मण्डित और प्रस्फुटित कुसुमावलीसे परिशोभित कदम्ब वृक्षोंकी सुशीतल छायामें कृष्ण-बलदेव बैठे हुए थे। गायों एवं वृद्ध गोपोंका बछड़ों एवं बालकोंके प्रति ऐसा भाव देखकर श्रीबलदेव विस्मित हो गये। वे मन-ही-मन विचार करने लगे—"यह मैं क्या देख रहा हूँ?"—क्रोधित वृद्ध गोपोंके लाठीसे भय दिखाकर रोकनेकी भी उपेक्षाकर गायें दुर्गम एवं बीहड़ मार्गमें छलाङ्गें मारती हुईं बड़े वेगसे दौड़ती हुई आयीं तथा अपने बड़े बछड़े जिन्होंने दूध पीना बन्द कर दिया है, उन्हें स्तनपान कराने लगीं। जब कि कुछ दिन पूर्व ही उनसे जन्मे नये-नये बछड़े, जो पास ही खड़े हुए हैं, उनकी ओर देख भी नहीं रही हैं। दूसरे ही क्षणमें वयोवृद्ध गोप भी क्रोधित होकर दौड़ते हुए वहाँ आये, परन्तु कैसा आश्चर्यका विषय है? बालकोंके समीप आते ही उनका क्रोध शान्त हो गया तथा वे अपने उन पाँच-छह वर्षके पुत्रोंको गोदमें लेकर इस प्रकारसे लाड़-प्यार कर रहे हैं, जैसे माताएँ स्तनपान करनेवाले शिशुओंको गोदमें लेकर लाड़-प्यार करती हैं। यह सब देखकर श्रीबलदेव विचार करने लगे कि व्रजकी गायों और गोपोंका ऐसा पुत्रवात्सल्य पहले कभी नहीं देखा गया। परन्तु आज इनका ऐसा अद्भुत व्यवहार क्यों

दिखायी दे रहा है? विविध प्रकारसे सोच-विचार करके भी वे इसका कारण नहीं जान सके कि वास्तवमें ये ग्वालबाल और बछड़े हैं कौन? वे विचार करने लगे कि किसी भी देवता, राक्षस या और अन्य किसीकी माया मुझे मोहित नहीं कर सकती। जब उन्होंने गम्भीर रूपमें आविष्ट होकर देखा तो पाया कि कृष्ण ही असंख्य गोपबालकोंके रूपमें गोपोंकी गोदमें बैठकर वात्सल्यप्रेमका आस्वादन कर रहे हैं एवं कृष्ण ही असंख्य बछड़ोंके रूपमें गायोंका वात्सल्यप्रेमसिक्त-स्तन पान कर रहे हैं। यह देखकर श्रीबलदेव अत्यन्त चमत्कृत हो उठे। वे कभी कृष्णकी ओर, तो कभी असंख्य गोपबालकों और बछड़ोंकी ओर देखने लगे।

श्रीबलदेव कृष्णकी इस परम अद्भुत लीलाका रहस्य जाननेके लिए व्याकुल हो गये। तब श्रीकृष्णने उन्हें अघासुर मोक्ष, ब्रह्मादि देवताओंका आकाशमार्गमें आगमन, पुलिन-भोजन, ब्रह्माका विस्मय, गोपबालकों और बछड़ोंका हरण आदि सभी रहस्य बतलाये। श्रीबलदेव यह रहस्य जानकर अत्यन्त विस्मय-सागरमें डूब गये एवं मन-ही-मन सोचने लगे कि अचिन्त्य अनन्त लीलासिन्धु श्रीकृष्णकी इस अलौकिक अनिर्वचनीय लीलाका रहस्य समझ पानेका सामर्थ्य किसीमें नहीं है। एकमात्र कृष्णकी कृपासे ही इस रहस्यको कोई जान सकता है।

अघासुर-उद्धार-लीलाके दिन बलराम गोचारणके लिए नहीं गये थे। इसलिए वे ग्वालबालों और बछड़ोंको ब्रह्माजीके द्वारा चुराये जाने आदि कार्योंके विषयमें तनिक भी नहीं जानते थे। उसके दूसरे दिनसे प्रायः एक वर्ष तक बलदेवजी प्रतिदिन श्रीकृष्णके साथ गोचारणमें जाते रहे एवं समस्त गोपबालकों और बछड़ोंके साथ विभिन्न क्रीड़ाएँ करते हुए वन-वनमें विचरण करते रहे, किन्तु वे कभी भी यह समझ नहीं सके कि कृष्ण ही इतने ग्वालबालों और बछड़ोंके रूपमें प्रकाशित होकर स्वयं अपने ही अनेक रूपोंके साथ विचरण और लीलारसका आस्वादन कर रहे हैं। कृष्णने बलदेवजीको यह सब जानने नहीं दिया, क्योंकि वे उन्हें श्रीदाम आदि सखाओंका एक वर्ष तकका विरह दुःख नहीं देना चाहते थे। परन्तु स्वयं

कृष्णको वह दुःख नहीं था, क्योंकि बछड़ोंके अन्वेषकके रूपमें एक प्रकाशसे वे उनके निकट ही विराजमान थे। अब जब एक वर्ष पूर्ण होनेवाला था, तो कृष्णकी इच्छा हुई कि बलदेवजीको भी यह रहस्य बताना चाहिये। इसलिए अनन्त लीलामय कृष्णने अपने परम प्रिय बलरामजीको यह रहस्य बतलाया॥ २८-३९॥

**तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन त्रुट्यनेहसा।**
**पुरोवदाब्दं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिम्॥ ४०॥**

**अनुवाद**—आत्मभूः (ब्रह्माजीने) आत्ममानेन (अपने परिमाणसे) त्रूट्यनेहसा (एक त्रुटिमात्र समयके बाद) तावत् एत्य (श्रीवृन्दावनमें आकर) आब्दं (एक वर्ष तक) क्रीडन्तं (खेलते हुए) सकलं (समस्त सखाओं एवं बछड़ोंके साथ) हरिं (श्रीकृष्णको) ददृशे (देखा)॥ ४०॥

**अनुवाद**—परीक्षित्! ब्रह्माजी अपने कालके परिमाणसे त्रुटिमात्र समय (जितनी देरमें तीक्ष्ण सुईसे कमलपत्रमें छिद्र हो जाय) के पश्चात् पुनः व्रजमें आये तथा देखा कि मानव-कालके परिमाणसे एक वर्ष व्यतीत हो गया है एवं अभी तक श्रीकृष्ण ग्वालबालकों और बछड़ोंके साथ एक वर्ष पहलेकी भाँति ही क्रीड़ा कर रहे हैं॥ ४०॥

**सारार्थदर्शिनी**—ब्रह्ममोहन-प्रसङ्ग एव गोप्यादीनां मोहनादिकं विवृत्त्य पुनर्ब्रह्मणोऽपि विशेषतो मोहनादिकं विवरीतुमारभते-तावदिति। वर्षे यातेऽपि आत्मानो मानेन त्रुट्यनेहसा त्रुटिमात्रकालेन अति शीघ्रागमनं महाभयेनैव। यत आत्मनो हरेः सकाशादेव भवतीति सः। आब्दमेकाब्दपर्यन्तं सकलं वत्सबालादिकं हरिं कृष्णं च वस्तुतस्तु कलास्तत्स्वरूपभूता वत्सबालाद्यास्तत्सहितं ददृशे ददर्श। बलदेवस्तु पूर्ववर्षवत्तस्मिन्नेव जन्मर्क्षदिने शान्तिकस्नानाद्यर्थं मात्रा रक्षित इति पूर्ववज्ज्ञेयम्॥ ४०॥

**भावानुवाद**—ब्रह्ममोहन प्रसङ्गमें ही गोपियोंके मोहित होनेका वर्णन करनेके पश्चात् *'तावत्'* आदिके द्वारा ब्रह्माजीके मोहका वर्णन कर रहे हैं। इस प्रकार मनुष्यलोकके अनुसार एक वर्ष व्यतीत हो गया था। ब्रह्मा अपने लोकके अनुसार त्रुटिमात्र समयके पश्चात् ही महाभयसे शीघ्र ही व्रजमें वापस आये, क्योंकि *'आत्मभूः'*—अर्थात् वे

आत्मा (श्रीहरि) से उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्माजीने यमुना-पुलिनमें आकर श्रीकृष्णको अपने स्वरूपभूत ग्वालबालकों और बछड़ोंके साथ पहलेकी भाँति ही क्रीड़ा करते हुए देखा। प्रति वर्षकी भाँति उस दिन भी बलदेवजीका जन्म-नक्षत्र होनेके कारण माता रोहिणीने उन्हें शान्ति-स्नान आदि करानेके लिए घरमें ही रोक लिया था—ऐसा जानना होगा॥ ४०॥

**यावन्तो गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि।**
**मायाशये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः॥ ४१॥**

**अन्वयः**—गोकुले यावन्तः बालाः (गोकुलमें जितने भी बालक हैं, उन सबको) सवत्साः सर्वेः हि (बछड़ोंके साथ) मे (मैंने) मायाशये (मायाशय्यामें) शयानाः (शयन करा दिया था) अद्य अपि पुनः न उत्थिताः (अभी तक वे जगे नहीं हैं)॥ ४१॥

**अनुवाद**—ब्रह्माजी विचार करने लगे कि गोकुलमें जितने भी बालक थे, उन्हें तो मैंने बछड़ोंके साथ मायाशय्यामें सुलाकर रखा है और अभी तक वे उठे भी नहीं हैं॥ ४१॥

**सारार्थदर्शिनी**—तद्दृष्ट्वा चैवं व्यतर्कयदित्याह-द्वाभ्याम्। मायाशये मन्मायातल्पे मन्मायामोहिततास्त एव कृष्णेनात्रनीता वेति विभाव्य मायिकानां नातिनिकटे गत्वा तर्जन्या साभिनयमाह॥ ४१॥

**भावानुवाद**—यह देखकर ब्रह्माजी जो कुछ सोचने लगे, उसे दो श्लोकोंमें कह रहे हैं—*'मायाशये'*—जो मेरी मायासे मोहित हुए थे, क्या कृष्ण उन्हें वापस ले आये हैं? ऐसा विचारकर वे जहाँपर उन्होंने अपनी मायासे मोहितकर सखाओं एवं बछड़ोंको छिपा रखा था, वहाँ गये। वहाँ जाकर तर्जनी अँगुलीके द्वारा दिखाते हुए कह रहे हैं—अहो! गोकुलमें जितने गोपबालक और बछड़े थे, वे सभी मेरी मायासे यहाँ सोये पड़े हैं, अभी तक भी उठे नहीं हैं॥ ४१॥

**इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे।**
**तावन्त एव तत्राब्दं क्रीडन्तो विष्णुना समम्॥ ४२॥**

**अन्वयः**—इतः (यहाँपर) मन्मायामोहितेतरे (मेरी मायाके द्वारा मोहित बालकोंके अतिरिक्त) तावन्त एव (उतनी ही संख्यामें) विष्णुना समं (कृष्णके साथ) तत्र आब्दं (एक वर्ष तक) क्रीडन्तः (विहार करनेवाले) अत्र एते (ये बालक) कुत्रत्याः (कहाँसे आये)॥४२॥

**अनुवाद**—अतएव मेरी मायासे मोहित बछड़ों एवं ग्वालबालोंके अतिरिक्त उनके ही समान संख्यामें ये सब ग्वालबाल और बछड़े यहाँ कहाँसे आ गये, जो एक वर्षसे श्रीकृष्णके साथ विहार कर रहे हैं॥४२॥

**सारार्थदर्शिनी**—इतः प्रदेशात्र किञ्चिद्दूरे एते वत्सबाला वर्तन्त एव तत्र विष्णुना समं क्रीडन्तः कुत्रत्यास्ते कीदृशा मन्मायामोहितेभ्य एभ्य इतरे॥४२॥

**भावानुवाद**—*'इतः'*—और इस स्थानसे कुछ ही दूरीपर ये जो बछड़े एवं बालक क्रीड़ा कर रहे हैं, ये कौन हैं? अर्थात् मेरी मायासे मोहित बालकों एवं बछड़ोंके अतिरिक्त ये कहाँसे आ गये?॥४२॥

**एवमेतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मभू।**
**सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथञ्चन॥४३॥**

**अन्वयः**—एवं (इस प्रकार) एतेषु भेदेषु (प्रकृत तथा कृष्णकी मायाके द्वारा कल्पित बछड़ोंमेंसे) के सत्याः कतरे न (कौन सत्य हैं तथा कौन नहीं) इति चिरं ध्यात्वा (इस विषयमें जाननेके लिए बहुत समय तक विचार करनेपर भी) स आत्मभूः (वे ब्रह्मा) कथञ्चन ज्ञातुं न इष्टे (कुछ भी जाननेमें समर्थ नहीं हुए)॥४३॥

**अनुवाद**—इस प्रकार बहुत समय तक विचार करनेपर भी ब्रह्मा वास्तविक तथा कृष्णकी माया द्वारा कल्पित बालकोंमेंसे कौन सत्य हैं तथा कौन असत्य, इसे जाननेमें समर्थ नहीं हुए॥४३॥

**सारार्थदर्शिनी**—एतेषु भेदेष्विति किमेते इह प्रकृतास्तत्राहु—कृष्णसृष्टाः। किंवा अतएव कृष्णसृष्टास्तत्र ते प्रकृताः किम्वा उभये एव कृष्णसृष्टाः प्रकृतास्तु कृष्णेनैव क्वापि ब्रह्माण्डन्तरे चालिताः। किम्वा कृष्णेन वत्सबालानां प्रकाशद्वयीकरणात् उभये एव प्रकृताः किम्वा मयि तत्र गत्वा पश्यति सति अतएव कृष्णेन तत्र नीयन्ते पुनरत्रागच्छति मयि ते एवात्र नीयन्ते। भवतु तर्हि युगपतदेवोभयत्र

दृष्टीर्निक्षिपामीति तथा कृत्वापि तानुभयत्र दृष्ट्वा चिरं ध्यात्वेति भवतु स्वीय सर्वज्ञतयैवाहमवश्यं ज्ञास्यामीति बहु समाधिनापि ज्ञातुं नेवाशकदित्याह—सत्या इति। एतेषु भेदेषु मध्ये सत्या भगवत्स्वरूपभूता न सत्या बहिरङ्गमायासृष्टा इतीमं भेदस्तु कथञ्चन ज्ञातुं संशयज्ञानविषयीकर्तुममपि नेष्टे न शशाक॥४३॥

**भावानुवाद**—इन दो प्रकारके बछड़ों और ग्वालबालोंमेंसे कौन असली हैं और कौन नकली, बहुत देर तक विचार करके भी ब्रह्माजी समझ नहीं पाये। ये ग्वालबाल और बछड़े यथार्थ हैं या श्रीकृष्णने ही इनकी सृष्टि की है? अथवा असली वत्सबालकोंको श्रीकृष्णने दूसरे किसी ब्रह्माण्डमें स्थानान्तरित कर दिया है अथवा श्रीकृष्णने ही बछड़ों और गोपबालकोंको दो भागोंमें विभाजित किया है, अतः क्या दोनों ही सत्य हैं? या जब मैं अपनी मायाके द्वारा मोहित बछड़ों और बालकोंको देखनेके लिए उधर दृष्टि करता हूँ, तब श्रीकृष्ण इन्हें वहाँ ले जाते हैं और फिर जब मैं श्रीकृष्णके साथ खेलनेवाले बालकोंको देखनेके लिए इधर दृष्टि करता हूँ, तब वे उन बछड़ों और ग्वालबालोंको यहाँ ले आते हैं। अतः मैं दोनों स्थानोंमें एक ही साथ बछड़ों और गोपबालकोंको देखकर अपनी सर्वज्ञता शक्तिसे यथार्थ तत्त्वको अवश्य ही जान लूँगा। परन्तु ब्रह्माजी समाधि द्वारा भी यह जान लेनेमें समर्थ नहीं हुए कि दोनों स्थानोंमें स्थित बछड़ों और ग्वालबालोंमें कौन-से सत्य हैं और कौन-से असत्य अर्थात् बहिरङ्गा मायाके द्वारा सृष्ट हैं॥४३॥

**एवं सम्मोहयन् विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम्।**
**स्वयैव माययाजोऽपि स्वयमेव विमोहितः॥४४॥**

**अन्वयः**—अजः अपि (ब्रह्मा भी) विमोहं (मोहशून्य) विश्वमोहनं (विश्वके मोह उत्पादनकारी) विष्णुं सन्मोहयन् (विष्णुको मोहित करनेकी चेष्टा करनेकी चेष्टामें) स्वया एव मायया (विष्णुमायाके द्वारा) स्वयं एव एवं (स्वयं ही) विमोहितः (मोहग्रस्त हो गये)॥४४॥

**अनुवाद**—ब्रह्मा स्वयं मोहशून्य होकर भी विश्वको मोहित करनेवाले भगवान्‌को मोहित करनेकी चेष्टा करने जाकर स्वयं ही विष्णुमायासे मोहित हो गये॥४४॥

**सारार्थदर्शिनी**—ततश्च ब्रह्मा मोहसमुद्रावर्त्ते निपपातेत्याह—एवमिति सम्मोहयन् वत्सबालस्ते येन मोहयितुमुपक्रममाणः अजो ब्रह्मापि स्वयैव मायया स्वयमेव विष्णौ प्रयुक्तया हेतुना विमोहितः भगवन्मायया विशेषेणैव मोहितः। मोहितस्यापि ब्रह्मण एवं विह्वलीकरणरूपे विमोहने भगवति मायाप्रयोगरूपोऽपराध एव कारणमित्यर्थः। न तु स्वमाययैव ब्रह्मा विमोहित इति व्याख्येयं मायायाः स्वाश्रयव्यामोहकत्वासम्भवात् उत्तरश्लोके दृष्टान्तविरोधाच्च॥ ४४॥

**भावानुवाद**—ब्रह्माजी अब स्वयं ही मोहसमुद्रके भँवरमें पड़ गये। बछड़ों और ग्वालबालोंको चुराकर श्रीकृष्णको मोहित करनेके लिए ब्रह्माजीने उनके ऊपर मायाका विस्तार करनेकी चेष्टा की, परन्तु वे स्वयं ही भगवान्‌की मायाके द्वारा मोहित हो गये। मोहरहित भुवनमोहन भगवान् श्रीकृष्णके प्रति मायाका प्रयोग करनेका अपराध ही स्वयं ब्रह्माजीके मोहित होनेका कारण है—जानना होगा। ब्रह्माजी अपनी मायाके द्वारा विमोहित हुए—ऐसी व्याख्या नहीं की जा सकती, क्योंकि माया अपने आश्रयको मोहित नहीं कर सकती तथा अगले श्लोकमें दिये गये दृष्टान्तसे इसका विरोध प्रकट होता है॥ ४४॥

**तम्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्च्चिरिवाहनि।**
**महतीतरमायैस्यं निहन्त्यात्मनि युञ्जतः॥ ४५॥**

**अन्वयः**—तम्यां (अन्धकार रात्रिमें) नैहारं (हिमकण जैसे) तमोवत् (अन्धकारकी भाँति) अहनि (दिनके सूर्यालोकमें) खद्योतार्च्चिः इव (जुगनूके प्रकाशकी भाँति) महति (महापुरुषके प्रति) युञ्जतः (प्रयोग करनेपर) इतरा (निकृष्टा) माया (माया वहाँ कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं हो सकती है, अपितु) आत्मनि (अपना ही) ऐशं (सामर्थ्यका) निहन्ति (नाश हो जाता है)॥ ४५॥

**अनुवाद**—जिस प्रकार कुहरेका अन्धकार रात्रिके घोर अन्धकारका विनाश नहीं कर पाता, अपितु उसे घना करता हुआ उसीमें विलीन हो जाता है, अथवा जुगनूकी प्रभा भी दिनमें सूर्यके प्रकाशके सम्मुख प्रभाहीन हो जाती है, उसी प्रकार महापुरुषोंपर किया गया निकृष्ट मायाका प्रयोग उनकी हानि करनेकी अपेक्षा उनके ऐश्वर्यकी ही वृद्धि

करता हुआ प्रयोग करनेवालेके सामर्थ्यको ही विनष्ट कर डालता है॥ ४५॥

**सारार्थदर्शिनी**—महामायाविनि भगवत्यन्यमाया आवरणविक्षेपौ कर्तुमशक्नुवती स्वाश्रयमेव तिरस्करोतीति दृष्टान्ताभ्यामाह—तम्यान्तामस्यां रात्रौ नैहारं तमोवत् नीहारसम्बन्धि तम इव। इवार्थेऽत्र वच्छब्दः। *"इव वद्वा च सादृश्ये"* इत्यभिधानात्। नैहारं तमो यथा तमीमावरीतुमसमर्थं तमीतमः सान्द्रीकृत्य तेन स्वमेवावृणोति नीहारं च तिरस्करोति तथैव ब्रह्ममाया भगवन्तं मोहयितुमसमर्था भगवदैश्वर्यमेव विपुलीकृत्य स्वमावृतवती ब्रह्माणमेव तिरश्चकारेति। दृष्टान्तेऽस्मिन्नंशेन ब्रह्ममायया अपि हेतुत्वमस्तीत्यपरितुष्यन् दृष्टान्तान्तरमाह—खद्योतेति। रात्रौ यथा प्रद्योतते तथा दिवसेऽपि मत्प्रभा प्रद्योततामिति खद्योतेन प्रयुक्तापि प्रभा दिवसे उद्भवितुमेव न शक्नोति, प्रत्युत तमेव भ्रष्टतेजसं सर्वान् ज्ञापयति, तथैवान्यत्रैश्वर्यवानपि ब्रह्मा भगवत्यपि मायया निजैश्वर्यं प्रकटयितुकामो भ्रष्टतेजा एवाभूदित्यतः महति पुरुषे इतरमाया कर्त्री आत्मनि आत्मानं युञ्जतः स्वं प्रयुञ्जानस्य पुंसः ऐश्यमैश्वर्यं निहन्ति॥ ४५॥

**भावानुवाद**—महामायावी श्रीभगवान्‌को कोई माया न तो ढक सकती है और न ही उन्हें विक्षिप्त कर सकती है, बल्कि ऐसा करनेमें असमर्थ होकर वह अपने आश्रयका ही तिरस्कार करती है। इसे दो दृष्टान्तोंसे स्पष्ट कर रहे हैं—अन्धकारमय रात्रिमें हिमकणोंसे उत्पन्न अन्धकार रात्रिके अन्धकारको ढक नहीं सकता, बल्कि उसके अन्धकारमें वह स्वयं ही विलीन होकर रात्रिके अन्धकारको और भी गाढ़ा करता हुआ अपने हिमकणोंको ही ढक लेता है, उसी प्रकार ही ब्रह्माजीकी माया भगवान्‌को मोहित करनेमें असमर्थ होकर भगवत्-ऐश्वर्यको बढ़ाती हुई स्वयंको ही ढककर अपने आश्रय ब्रह्माका ही तिरस्कार कर रही है। इस उदाहरणमें आंशिक रूपसे ब्रह्ममायाका भी हेतुत्व है, इसलिए इससे सन्तुष्ट न होकर दूसरा उदाहरण दे रहे हैं—रातमें चमकनेके कारण यदि जुगनू दिवाकालमें भी अपनी प्रभा दिखानेका प्रयत्न करे, तो उसकी वह क्षुद्र प्रभा सूर्यकी किरणोंमें विलीन हो जाती है और उसके प्रभाहीन होनेकी बात सभी जान जाते हैं। वैसे ही अन्यत्र ऐश्वर्यवान होनेपर भी ब्रह्माजीने जब भगवान्‌के प्रति अपनी मायाका विस्तारकर अपना ऐश्वर्य प्रकट करनेकी इच्छा की, तो वे स्वयं ही अपने तेजसे भ्रष्ट

हो पड़े, क्योंकि महान् पुरुषोंके प्रति प्रयोग की गयी अति हीन माया उसका प्रयोग करनेवालेके ही तेजको नष्ट कर देती है॥ ४५॥

**तावत् सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात्।**
**व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः॥ ४६॥**

**अन्वयः**—[दूसरे आश्चर्यका वर्णन कर रहे हैं] तत्क्षणात् पश्यतः अजस्य (उस समय ब्रह्माके देखते-देखते) सर्वे वत्सपालाः (बछड़े और वत्सपालक) घनश्यामाः (बादल जैसे वर्णके) पीत कौशेयवाससः (पीतवर्ण कौशेय वस्त्रधारी) व्यदृश्यन्त (दिखायी पड़े)॥ ४६॥

**अनुवाद**—उसी क्षण ब्रह्माजीको अपने सम्मुख देखते-ही-देखते समस्त बछड़ों एवं गोपबालकोंका शरीर मेघके वर्णके समान तथा पीत वर्णके रेशमी वस्त्र धारण किये दृष्ट हुआ॥ ४६॥

**सारार्थदर्शिनी**—तावदिति यावदेवं ब्रह्मा मीमांसमानो व्यामुह्यति स्मेत्यर्थः। वत्साः पालाश्च पश्यतोऽजस्य पश्यन्तमप्यजमनादृत्येति। भोः सत्यलोकवासिन् अज! सत्यं त्वमज एवासि ईदृश्यैव बुद्ध्या विश्वं सृजसि अस्मान् मायया मोहयितुमिच्छसि कथञ्चिज्ज्ञातुमपि तावन्न शक्नोसि। पश्येति व्यदृश्यन्त वयम् वृन्दावनीयास्तृणं चरन्तो वत्सा अपि वत्सांश्चारयन्तो गोपबाला अपि एवं भवामेति ज्ञापयन्त इव तद्दृष्टिगोचराः स्वयमेवाऽभूवन् स्वप्रकाशत्वादिति भावः॥ ४६॥

**भावानुवाद**—जब ब्रह्माजी इस प्रकार मन-ही-मन सोच-विचाकर व्याकुल हो रहे थे, उसी समय कृष्णस्वरूपभूत बछड़े और गोपबालक अपनेको देखनवाले ब्रह्माका अनादर करते हुए मानो कहने लगे—"अरे सत्यलोक निवासी अज! तुम सचमुच ही अज अर्थात् (बकरा) हो। हमें बोध होता है कि तुम ऐसी बुद्धिके द्वारा ही विश्वका सृजन करते हो, क्योंकि तुमने हमें भी मायाके द्वारा मोहित करनेकी इच्छा की। हम कौन हैं? यह तुम्हें ज्ञात नहीं है, अतएव देख लो, हम कौन हैं।" इस वृन्दावनकी घास चरनेवाले गोवत्स और वत्स चरानेवाले गोपबालक भी ऐसे होते हैं। यही समझानेके लिए मानो वे सभी तत्क्षण श्यामसुन्दर मूर्त्ति और पीताम्बरधारीके रूपमें स्वयं ही ब्रह्माजीको दिखायी दिये, क्योंकि वे स्वयं ही प्रकाशित होते हैं॥ ४६॥

**चतुर्भुजाः शङ्खचक्र गदाराजीवपाणयः।**
**किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः॥ ४७॥**

**श्रीवत्साङ्गददोरत्न-कम्बुकङ्कणपाणयः ।**
**नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्राङ्गुलीयकैः॥ ४८॥**

**अन्वयः**—चतुर्भुजाः शङ्ख चक्रगदाराजीवपाणयः किरीटिनः कुण्डलिनः हारिणः वनमालिनः (वे सभी चतुर्भुज थे, उनके चार हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, मस्तकमें किरीट, कानोंमें कुण्डल, वक्षःस्थलमें हार एवं गलदेशमें वनमाला विराजमान थी) श्रीवत्साङ्गददोरत्न-कम्बुकङ्कणपाणयः (लक्ष्मीरेखायुक्त श्रीवत्स चिह्न अर्थात् दक्षिणावर्त्त रोमावली, भुजाओंमें रत्नमय अङ्गद, त्रिरेखायुक्त कण्ठमें कौस्तुभ, हाथोंमें कङ्कण) नूपुरैः कटकैः (चरणोंमें नुपूर और पादवलय) कटिसूत्राङ्गुलीयकैः भाताः (कमरमें सूत्र एवं अङ्गुलियोंमें अँगूठियाँ सुशोभित थीं)॥ ४७-४८॥

**अनुवाद**—वे सभी चतुर्भुज थे। उनकी चारों भुजाएँ शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्मसे सुशोभित थीं। उनके मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल, वक्षःस्थलपर हार एवं गलेमें मनोहर वनमाला विराजमान थी। सभीके वक्षःस्थलपर दक्षिण भागके ऊपर दक्षिणावर्त्त रोमावली थी। भुजाओंमें रत्नमय अङ्गद तथा शङ्खके समान त्रिरेखायुक्त कण्ठमें कौस्तुभमणि झिलमिला रही थी। उनके हाथोंमें कङ्कण तथा चरणोंमें नूपुर एवं पादवलय, कमरमें करधनी तथा अङ्गुलियोंमें अँगूठियाँ सुशोभित थीं॥ ४७-४८॥

**सारार्थदर्शिनी**—श्रीर्लक्ष्मीरेखा तद्युक्तानि वत्सानि वक्षांसि येषां ते च। अङ्गदयुक्ता दोषो बाहवो येषां ते च रत्नं कौस्तुभस्तद्युक्ताः कम्बवः अतिशयोक्त्या त्रिरेखाङ्किताः कण्ठा येषां ते च। कङ्कणयुक्ताः पाणयो येषां ते च ते। कटकैः पादवलयैः॥ ४७-४८॥

**भावानुवाद**—सभीके वक्षःस्थल लक्ष्मीरेखासे युक्त थे, अर्थात् सभीके दाँये स्तनके ऊपरी भागमें श्रीवत्स अर्थात् दक्षिणावर्त्त सूक्ष्म रोमावली, भुजाओंमें अङ्गद, त्रिवलीयुक्त गलेमें कौस्तुभमणि, हाथोंमें कङ्कण, चरणोंमें नूपुर एवं पादवलय तथा अङ्गुलियोंमें अँगूठियाँ जगमगा रही थीं॥ ४७-४८॥

**आङ्घ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसी नवदामभिः।**
**कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः॥ ४९॥**

**अन्वयः**—भूरिपूण्यवदर्पितैः (बहुत जन्मोंमें अर्जित पुण्यवान व्यक्तियोंके द्वारा प्रदत्त) आङ्घ्रिमस्तकं (चरणोंसे मस्तक तक) सर्वगात्रेषु कोमलैः तुलसी-नव-दामभिः (समस्त शरीर नयी-नयी कोमल तुलसी पत्रकी मालाओंके द्वारा) आपूर्णाः (व्याप्त दिखायी दे रहा था)॥ ४९॥

**अनुवाद**—उन्होंने चरणोंसे मस्तक तक लम्बी, सुकोमल एवं नवीन, तुलसी मालाओंको धारण कर रखा था जो कि प्रचुर पुण्यवान व्यक्तियों द्वारा प्रदान की गयी थी॥ ४९॥

**सारार्थदर्शिनी**—भूरिपुण्यानि श्रवणकीर्तिनादिभजनानि तद्वता भक्त-सहस्रेणाऽर्पितैः॥ ४९॥

**भावानुवाद**—श्रवण-कीर्त्तनादि भजनपरायण भक्तोंके द्वारा अर्पित कोमल तुलसीपत्रकी मालासे उनका नखसे सिर तक सम्पूर्ण शरीर व्याप्त हो रहा था॥ ४९॥

**चन्द्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापाङ्गवीक्षितैः।**
**स्वकार्थानामिव रजःसत्त्वाभ्यां स्रष्ट्रपालकाः॥ ५०॥**

**अन्वयः**—चन्द्रिका विशदस्मेरैः (वे चन्द्रज्योत्स्ना-तुल्य निर्मल हास्य) [तथा] सारुणापाङ्गवीक्षितैः (अरुणवर्ण नेत्र प्रान्तके द्वारा अवलोकनरूप) रजःसत्त्वाभ्यां (सत्त्वगुण और रजोगुणके द्वारा) स्वकार्थानां (अपने भक्तोंको) स्रष्ट्रपालकाः इव (स्रष्टा एवं पालककी भाँति दिखायी दे रहे थे)॥ ५०॥

**अनुवाद**—ज्योत्स्नाके समान निर्मल हास्यरूपी सत्त्वगुणके द्वारा और अरुणनेत्रोंके कटाक्षरूपी रजोगुणके द्वारा मानो वे अपने भक्तजनोंके हृदयमें मनोवाञ्छाओंको जगाकर उन्हें पूर्ण कर रहे थे॥ ५०॥

**सारार्थदर्शिनी**—चन्द्रिकावत् विशदं यथा स्यात्तथा स्मेरयन्त इति चन्द्रिका-विशदस्मेराणि मृदुपाचक इति वत् समासः। अरुणापाङ्गेन सह वर्त्तमानानि यानि सम्मुखवीक्षितानि तैः स्वकार्थानाम् अनुकम्पनीयस्वभक्तमनोरथानां रजःसत्त्वाभ्यां स्रटृपालका इव व्यदृश्यन्त रजसेवारुणगुणेन स्रटार इव सत्त्वेनेव विशदस्मितेन पालका इव॥५०॥

**भावानुवाद**—उनके ज्योत्स्नाकी भाँति निर्मल हास्यके द्वारा तथा अरुणवर्णके नयनोंकी तिरछी चितवनसे ऐसा लगने लगा, मानो वे रजः एवं सत्व गुणके द्वारा अपने भक्तोंके हृदयमें मनोरथोंका क्रमशः सृजन और पालन कर रहे हैं, अर्थात् रजोगुणके समान अरुणवर्णयुक्त कटाक्षके द्वारा अपने भक्तोंके हृदयमें मनोरथोंकी सृष्टि कर रहे हैं तथा सत्वगुणके समान चन्द्रकान्तिरूप विशद हास्यके द्वारा अपने भक्तोंके मनोरथोंको पूर्ण कर रहे हैं॥५०॥

**आत्मादिस्तम्बपर्यन्तैर्मूर्त्तिमद्भिश्चराचरैः ।**
**नृत्यगीतादिनैकार्हैः पृथक् पृथगुपासिताः॥५१॥**

**अन्वयः**—आत्मादिस्तम्बपर्यन्तैः (ब्रह्मासे तृण तक) मूर्त्तिमद्भिः चराचरैः (सभी मूर्त्तिमान होकर) नृत्यगीतादिनैकार्हैः (नृत्य गीत आदि बहुविध उपचारोंके द्वारा) पृथक् पृथक् उपासिताः (भिन्न-भिन्न रूपसे आराधना कर रहे हैं)॥५१॥

**अनुवाद**—ब्रह्माजीने यह भी देखा कि उनके जैसे ही दूसरे ब्रह्मादिसे लेकर तृण तक चल-अचल सभी जीव मूर्त्तिमान होकर नृत्य-गीत-वाद्य आदि बहुत प्रकारके पूजाके उपकरणोंके द्वारा पृथक्-पृथक् भावसे उन सभी रूपोंकी उपासना कर रहे हैं॥५१॥

**सारार्थदर्शिनी**—आत्मात्र ब्रह्मा नैकार्हैः अनेकार्हणैः॥५१॥

**भावानुवाद**—यहाँ आत्मा कहनेसे ब्रह्माजीका बोध होता है। ब्रह्मासे लेकर तृण तक चराचर विश्व मूर्त्तिमान होकर नृत्य, गीत आदि विविध पूजा-उपकरणोंके द्वारा पृथक्-पृथक् रूपसे उनकी उपासना कर रहे हैं॥५१॥

**अणिमाद्यैर्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभिः ।**
**चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीता महदादिभिः ॥ ५२ ॥**

**अन्वयः**—अणिमाद्यैः (अणिमा आदि) महिमभिः (ऐश्वर्यके द्वारा) अजाद्याभिः विभूतिभिः (मायाविद्या आदि शक्तियोंके द्वारा) महदादिभिः चतुर्विंशतिभिः तत्त्वैः परीताः (एवं महत्-तत्त्व आदि चौबीस तत्त्वोंके द्वारा परिवेष्टित थे)॥ ५२ ॥

**अनुवाद**—वे समस्त रूप अणिमा-मणिमा आदि ऐश्वर्यपरक सिद्धियों, माया-विद्या आदि विभूतियों एवं महत्-तत्त्व आदि चौबीस तत्त्वों द्वारा चारों ओरसे घिरे हुए थे॥ ५२ ॥

**सारार्थदर्शिनी**—महिमभिरैश्वर्यैः अजा माया तदाद्याभिः शक्तिभिः। चतुर्विंशतिभिरिति महत्तत्त्वसूत्रतत्वयोः पार्थक्यविवक्षया। तत्त्वैर्जगत्कारणैः ॥ ५२ ॥

**भावानुवाद**—*'महिमभि'*—ऐश्वर्यसमूहके द्वारा। *'अजादिभिः'*—माया, अविद्या आदि शक्तियाँ, महत्-तत्त्व, और जगत्के कारणसमूह, अणिमादि आठ प्रकारकी सिद्धियाँ, श्रीदेवी आदि नौ शक्तियाँ या बारह शक्तियाँ और महदादि चौबीस तत्त्व उन्हें घेरे हुए थे॥ ५२ ॥

**कालस्वभावसंस्कार-कामकर्मगुणादिभिः ।**
**स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्त्तिमद्भिरुपासिताः ॥ ५३ ॥**

**अन्वयः**—स्वमहिध्वस्तमहिभिः (श्रीभगवान्की महिमाके द्वारा जिनका स्वतन्त्र भाव दूर हो गया है) मूर्त्तिमद्भिः (ऐसे विग्रहधारी मूर्त्तिमानरूपमें) काल स्वभाव संस्कार-काम-कर्म गुणादिभिः (काल, कर्म, स्वभाव, संस्कार और गुण आदि पदार्थसमूह) उपासिताः (उन स्वरूपोंकी उपासना कर रहे थे)॥ ५३ ॥

**अनुवाद**—भगवान्की महिमाके सम्मुख जिनकी स्वतन्त्र सत्ता एवं महिमा तिरोहित हो चुकी थी, वे काल, स्वभाव, संस्कार, काम, कर्म, एवं गुण आदि सभी पदार्थ मूर्त्तिमान होकर उनकी उपासना कर रहे थे॥ ५३ ॥

**सारार्थदर्शिनी**—कालादिभिश्च तत्सहकारिभिः। तत्र स्वभावः परिणामहेतुः। संस्कार उद्बोधकः। स्वमहिध्वस्तमहिभिर्भगवन्महिम्ना तिरस्कृतस्वातन्त्र्यैः॥५३॥

**भावानुवाद**—भगवान्‌की महिमाके द्वारा जिनकी स्वतन्त्रता आच्छादित है, ऐसे काल, स्वभाव, संस्कार, काम, कर्म और गुणादि पदार्थसमूह मूर्त्तिमान होकर उन स्वरूपोंकी उपासना कर रहे थे॥५३॥

**सत्यज्ञानानन्तानन्द-मात्रैकरसमूर्त्तयः ।**
**अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिशद्दृशाम्॥५४॥**

**अन्वयः**—सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैकरसमूर्त्तयः अपि उपनिशद् दृशां (वे सत्य, ज्ञान, अनन्त, आनन्दमय, अद्वितीय विग्रह होनेपर भी ज्ञानियोंके लिए भी) अस्पृष्ट भूरि माहात्म्याः (उनकी भूरि-भूरि महिमाको स्पर्श करना सम्भव नहीं था)॥५४॥

**अनुवाद**—वे सभी सत्य, ज्ञान, अनन्त, आनन्दमय और अद्वितीय विग्रह थे, तथापि ज्ञानियोंके लिए उनकी महिमाको समझना सम्भव नहीं था॥५४॥

**सारार्थदर्शिनी**—न चैतत् सर्वं भगवता मायया दर्शितमिति मन्तव्यमित्याह—सत्येति। सत्याश्च ज्ञानरूपाश्च अनन्ताश्च आनन्दरूपाश्च तत्रापि तदेकमात्रा-विजातीयसम्भेद रहिताः तत्राप्येकरसाः कालपरिच्छेदाभावात् सदैकरूपा मूर्त्तयो वपुंसि येषां ते। यद्वा *"सत्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्मेति, सत्यं विज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति, आनन्दं ब्रह्मणो रूप"* इत्यादि श्रुत्युक्तं सत्यादिरूपं यद्ब्रह्म तदेव मूर्त्तयो येषां ते। ननु, दृश्यत्व बहुत्व विविधत्वादिकं ब्रह्मणो नैव श्रूयते वेदान्तदर्शिनस्तत्राह-अस्पृष्टेति। उपनिशदः पश्यन्ति भक्त्यभावान्नतु तदर्थं जानन्तीत्युपनिशद्दृशो दार्शनिकास्तेषां तैर्न स्पृष्टमपि भूरिमाहात्म्यं येषां ते *"भक्त्याहमेकया ग्राह्यः"* इति *"भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः"* इति। *"न चक्षुसा पश्यति रूपमस्य, यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्"* इति। *"आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्"* इति *"आनन्दमात्रमजरं पुराणमेक सन्तं बहुधा दृश्यमानम्"* इति। *"बहुमूर्त्येकमूर्त्तिकम्"* इति। *"सर्वेनित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः। हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित्। परमानन्दसन्दोहा ज्ञानमात्राश्च सर्वतः"* इत्यादि श्रुतिस्मृतिप्रसिद्धं ब्रह्मणोऽप्यप्राकृतरूपगुणादिमत्त्वं तदिच्छया भक्तिमच्चक्षुर्गम्यमस्तीति ज्ञेयम्॥५४॥

**भावानुवाद**—यह सभी कुछ भगवान् केवल अपनी मायाके द्वारा दिखा रहे हैं, ऐसा समझना उचित नहीं है, क्योंकि उन सत्य, ज्ञान, अनन्त, आनन्दमात्र या विजातीय भेद-रहित और सदा एक मूर्त्तिधारी अर्थात् उन बछड़ों और गोपबालकोंकी मूर्त्तियाँ कालका भी कारण और आश्रय होनेके कारण कल्पित नहीं हैं, बल्कि सत्य हैं। स्वप्रकाश-स्वरूप होनेके कारण उनमें जड़ता नहीं है, अतः वे ज्ञानरूप हैं। सीमाबद्ध होकर भी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे व्यापक होनेके कारण वे अनन्त हैं, समस्त अंशोंसे निरुपाधिक परम प्रेमास्पदहेतु वे आनन्दमात्र हैं एवं एक रस अर्थात् कालका भी कारण और आश्रय होनेसे वे सदा एकरूप विशिष्ट हैं। अथवा *"सत्य विज्ञान अनन्त ब्रह्म"* एवं "आनन्द ही ब्रह्मका रूप है" इत्यादि श्रुतिवाक्योंमें जिन्हें ब्रह्म कहा गया है—वे ही ये बछड़े और ग्वालबाल हैं। यदि कहो कि वैदान्तिकगण ब्रह्मकी दृश्यता, बहुता और विविधता आदि कभी भी स्वीकार नहीं करते। इसके उत्तरमें कहते हैं—जो उपनिषद् (वेदान्त) का दर्शन ही करते हैं, किन्तु भक्तिके अभावके कारण उसका अर्थ नहीं जानते, ऐसे उपनिषद्-द्रष्टा दार्शनिकोंके लिए कृष्णरूपी बछड़ों और ग्वालबालोंके अनन्त माहात्म्यकी मनमें धारणा करना तो बहुत दूर, बल्कि वे लोग मनके द्वारा उसे स्पर्श करनेमें भी समर्थ नहीं हो सकते। ऐसे समस्त रूप ब्रह्माजीके दृष्टिगोचर होने लगे।

जैसा कि कहा गया है—केवल श्रद्धायुक्त भक्तिके द्वारा ही मैं ग्रहणयोग्य होता हूँ, (श्रीमद्भा० ११/१४/२१)। *"भक्त्या मामभिजानाति"* (श्रीगीता १८/५५), अर्थात् मैं जैसा विभूतिसम्पन्न और स्वरूपतः जिस रूपमें हूँ, ज्ञानीगण उस रूपमें मुझे भक्तिके द्वारा ही यथार्थतः जान सकते हैं। *"न चक्षुषा पश्यति"* (मुण्डक० ३/२/३), अर्थात् परमेश्वरके रूपका प्राकृत चर्म नेत्रोंसे दर्शन नहीं होता है। परमेश्वर जिन्हें योग्य समझते हैं या ग्रहण करते हैं, उन्हें ही वे प्राप्त होते हैं और उनके निकट ही वे अपना स्वरूप और महिमा प्रकाशित करते हैं। "तमोगुणके उस पार जो आदित्यवर्ण है", "जो आनन्दमात्र, अजर, पुराणपुरुष, अनेक रूपोंमें दृश्यमान हैं", "बहुमूर्त्ति होकर भी जो एक-मूर्त्ति हैं" इत्यादि। एवं "उन परमात्माके विग्रहसमूह नित्य,

शाश्वत, हानि-उपादानसे रहित हैं, वे कभी भी प्रकृतिसे उत्पन्न प्राकृत वस्तु नहीं हैं। वे परमानन्दमय एवं ज्ञानमात्र हैं"—इत्यादि श्रुति, स्मृतिके वचनोंसे प्रसिद्ध ब्रह्मके भी अप्राकृत रूप और गुण उनकी इच्छासे ही भक्तिमानजनोंके दृष्टिगोचर होते हैं—ऐसा समझना चाहिये॥ ५४॥

**एवं सकृद्ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान्।**
**यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम्॥ ५५॥**

**अन्वयः**—यस्य भासा इदं सचराचरं सर्वं विभाति (जिनके प्रकाशसे स्थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित होता है) अजः (ब्रह्माने) एवं (पूर्वोक्त प्रकारसे) अखिलान् आत्मनः (बछड़ों और बालकोंके रूपमें अवस्थित) परं ब्रह्म सकृत् (एकबार परमब्रह्मका) ददर्श (दर्शन किया)॥ ५५॥

**अनुवाद**—जिनके प्रकाशसे यह समस्त चराचर विश्व प्रकाशित हो रहा है, ब्रह्माजीने उन्हीं परब्रह्म श्रीकृष्णका तथा उनके स्वरूपभूत समस्त बछड़ों एवं ग्वालबालोंका एकबार दर्शन किया॥ ५५॥

**सारार्थदर्शिनी**—यस्य परब्रह्मणः॥ ५५॥

**भावानुवाद**—जिस परब्रह्मके प्रकाशसे यह स्थावर-जङ्गमात्मक (चराचर) विश्व प्रकाशित हो रहा है, उन परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णके परब्रह्मात्मक बछड़ों और ग्वालबालोंका ब्रह्माने एक ही समयमें एकसाथ दर्शन किया॥ ५५॥

**ततोऽतिकुतुकोद्वृत्यस्तिमितैकादशेन्द्रियः ।**
**तद्धाम्नाभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यन्तीव पुत्रिका॥ ५६॥**

**अन्वयः**—ततः (उसके पश्चात्) अतिकुतुकोद्वृत्यस्तिमितैकादशेन्द्रियः (अत्यन्त आश्चर्ययुक्त होकर ब्रह्माका चित्त विशेष रूपसे क्षुब्ध हो गया तथा ग्यारह इन्द्रियाँ स्तम्भित हो गयीं) अजः (ब्रह्मा) धाम्ना (उनके तेजसे) पूर्देव्यन्ति (प्रभावित होकर बहुत लोगोंके द्वारा पूजनीय ग्राम्य देवताके सामने) पुत्रिका इव (बच्चोंके खेलनेवाले अपूजित खिलौनेकी

भाँति) तूष्णीं अभूत् (बनकर बोलनेमें भी असमर्थकी भाँति हो गये)॥ ५६॥

**अनुवाद—**तत्पश्चात् अत्यन्त आश्चर्यके कारण ब्रह्माजीका चित्त विशेष रूपसे क्षुब्ध हो गया और उनकी ग्यारहों इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ स्तम्भित हो गयीं। वे उन सब बछड़ों एवं बालकोंके तेजके प्रभावसे बहुत-से लोगोंके द्वारा पूजनीय ग्राम्यदेवताके समक्ष अपूजनीय मिट्टीकी पुतलीकी भाँति हो गये॥ ५६॥

**सारार्थदर्शिनी—**अतिकौतुकेन उद्धृत्यानि विलोड्यानि स्तिमितान्यानन्दस्तब्धानि एकादशेन्द्रियाणि यस्य सः। उद्धृत्त इति पाठे अतिकुतुकेन क्षुभितः तेषां धाम्ना तेजसा तूष्णीं किमपि वक्तुं चेष्टितुं चाशक्तोऽभूत्। अत्र दृष्टान्तः पूर्देवी बहुलोकैः पूज्यमाना ग्राम देवता तस्या अन्ति निकटे पुत्रिका बालकेन खेल्यमाना अपूजिता क्षुद्रा मृण्मयी पञ्चालिकेव॥ ५६॥

**भावानुवाद—**इस अत्यन्त आश्चर्यमय दृश्यको देखकर ब्रह्माजीका चित्त विशेष रूपसे क्षुब्ध होने लगा तथा आनन्दवशतः उनकी ग्यारहों इन्द्रियाँ स्तब्ध रह गयीं। वे उन बछड़ों और गोपबालकोंके तेजसे निस्तेज होकर मौन हो गये तथा हाथ-पैर आदि सञ्चालनमें असमर्थ हो गये। उस समय बहुत-से लोगोंके द्वारा पूजित देवताके सामने बालकोंके खेलनेवाले अपूजित तुच्छ मिट्टीके खिलौनेकी भाँति उनकी स्थिति हो गयी॥ ५६॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति—**अचिन्त्य-अनन्त लीला-रसनिधि स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने असंख्य गोपबालकों और बछड़ोंके रूपमें आत्मप्रकाशकर व्रजकी गायों एवं गोपियोंकी मनोकामना पूर्ण करते हुए उनके वात्सल्यरसका आस्वादन किया। परन्तु इस गुप्त लीलाका रहस्य कोई भी समझ नहीं सका। लीलामय प्रभुकी कृपा और इच्छाके बिना कोई उनके अनन्त लीलासिन्धुके एक बिन्दुको भी स्पर्श नहीं कर सकता। दूसरोंकी बात तो दूर रहे, उनके अभिन्न विग्रह श्रीबलरामको भी इस लीलारहस्यका तनिक भी बोध नहीं हुआ। केवल श्रीकृष्णकी कृपासे एक वर्ष पूर्ण होनेसे पाँच-छह दिन पहले ही उन्हें इसका ज्ञान हुआ था।

इधर गोपबालकों और बछड़ोंको छिपाकर ब्रह्मा अपने ब्रह्मलोकमें जाकर क्षणभरमें ही वहाँसे लौटकर आ गये, क्योंकि वे अखिल ब्रह्माण्डपालक श्रीकृष्णके सखाओं और बछड़ोंका हरण करनेके कारण अत्यन्त भयभीत हो गये थे। अतः वे ब्रह्मलोकमें जाकर क्षणमात्र भी विलम्ब न करके उसी समय वृन्दावनमें उपस्थित हुए। इसमें ब्रह्माको 'त्रुटि' मात्र समय लगा था। श्रीमद्भागवतमें तृतीय स्कन्धके ११वें अध्यायमें कालका निरूपण करते हुए कहा गया है—कालके अति सूक्ष्म अंशका नाम परमाणु है, दो परमाणु परिमित कालका नाम अणु है, तीन अणु परिमित कालका नाम त्रसरेणु है और तीन त्रसरेणु परिमाण कालका नाम 'त्रुटि' है। गणना करनेपर देखा जाता है कि एक दिनके अट्ठारह करोड़ बाइस लाख पचास हजार अंशके एक अंश परिमित कालको ही श्रीमद्भागवतमें 'त्रुटि' कहा गया है। वर्त्तमान समयके सर्वजन विदित कालके विभागके अनुसार एक दिनके छियासी हजार चार सौ भागके एक भाग कालको 'सेकेण्ड' कहा जाता है। एक सेकेण्डके इक्कीस हजार नौ सौ भागके एक भाग परिमित कालको शास्त्रकारोंने 'त्रुटि' कहा है।

श्रीपाद रामानुजाचार्य-प्रवर्त्तित विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तके धुरन्धर विद्वान श्रीपाद वीरराघवाचार्यने अपनी भागवत्-चन्द्रिका टीकामें एक अभिनव श्लोककी व्याख्या की है—इससे ब्रह्माजीके अतिशीघ्र लौटकर आनेका कारण स्पष्ट हो जाता है। यद्यपि इस श्लोकका एकमात्र श्रीपाद वीरराघवाचार्यके अतिरिक्त श्रीधर स्वामिपाद आदि किसी टीकाकारने अनुमोदन नहीं किया है, फिर भी इसमें श्रीकृष्णके ऐश्वर्य-प्रकाशकी विशेषताका उल्लेख किया गया है—

*ब्रह्मापि स्वासनस्थेन चतुरास्येन शौरिणा।*
*मोहितो द्वारपालैश्च परिभूतो न्यवर्त्तत॥*

(श्रीवीरराघवाचार्यकृत श्लोक)

श्रीकृष्णके सखा गोपबालकों और बछड़ोंको मायामुग्ध और स्थानान्तरितकर ब्रह्मा चोरकी भाँति छिपते हुए सीधे ब्रह्मलोकमें उपस्थित हुए। ब्रह्मलोकमें उनकी पुरीके सिंहद्वारपर अवस्थित द्वारपाल उन्हें पुरीमें प्रवेश करते हुए देखकर द्वारको रोककर खड़े हो गये एवं

बड़े विस्मय और खुले हुए नेत्रोंसे उनके मुँहकी ओर देखते हुए पूछने लगे—"आप कौन हैं?" यह सुनकर ब्रह्मा अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने उनसे पूछा—"अरे द्वारपालो! तुमलोग क्या कह रहे हो? तुमलोग मेरे सेवक होकर भी द्वारपर मुझे रोक रहे हो एवं अपरिचितकी भाँति मेरी ओर देखते हुए मेरा परिचय पूछ रहे हो, इसका कारण क्या है?" द्वारपालोंने बड़े गर्वसे कहा—"हम आपके सेवक क्यों बनेंगे? हम तो ब्रह्माजीके सेवक हैं? हमारे प्रभु ब्रह्माजी अपने आसनपर बैठकर सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, सनातन, नारद और वेदके अधिष्ठातृ देवताओंके साथ कृष्णकथाओंकी चर्चा कर रहे हैं। अतः आप कौन हैं, जो उनका रूप धारणकर यहाँपर हमें ठगनेकी चेष्टा कर रहे हैं?" द्वारपालोंकी बात सुनकर ब्रह्मा और भी विस्मित हो गये। कुछ देर तक किङ्कर्त्तव्यविमूढ़ भावसे द्वारपर खड़े रहकर कुछ सोचकर उन्होंने द्वारपालोंसे कहा—"तब तुमलोग मुझे अपने ब्रह्माके निकट ले चलो।" द्वारपाल ब्रह्माकी बातसे सहमत होकर उन्हें अपने साथ लेकर पुरीमें प्रविष्ट हुए एवं उन्हें सभा प्राङ्गणके एक किनारेपर ले जाकर सिंहासनपर आसीन ब्रह्माजीको दिखाया। ब्रह्माने देखा कि उनके आसनको प्रकाशमय करते हुए कमण्डलुधारी रक्तवर्ण चतुर्मुख ब्रह्मा विराजमान हैं। करोड़ों नवोदित सूर्योंकी कान्तिको भी पराभूत करनेवाली उनकी अरुणवर्णकी अङ्ग-छटासे दशों दिशाएँ जगमगा रही हैं। उनके चारों मुखोंसे उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरक्रमसे उच्चरित वेदध्वनिके द्वारा सभामण्डप गूँज रहा है। उनके पास ही नारदादि भगवान्‌के पार्षदवृन्द आनन्दित होकर बैठे हैं। ब्रह्माजी अपने आसनपर बैठे इस नवीन ब्रह्माको देखकर चमत्कृत हो गये।

कुछ समय पश्चात् आसनमें स्थित ब्रह्माजी मृदुमन्द सुमधुर ध्वनिसे द्वारपालोंको बुलाकर कहने लगे—"ओहे द्वाररक्षको! तुमलोग द्वार छोड़कर यहाँ क्यों आये हो? तुम्हारे साथ यह चतुर्मुख कौन है?" द्वारपाल गलवस्त्र कृताञ्जलि होकर विनीत भावसे कहने लगे—"हे पितामह! ये अपनेको ब्रह्मा बताकर आपकी पुरीमें प्रवेश कर रहे थे, इसलिए हमने इन्हें प्रवेश नहीं करने दिया। किन्तु अन्तमें

आपके दर्शनोंके लिए प्रार्थना करनेपर हम इन्हें यहाँ सभाप्रान्तमें ले आये हैं।" यह सुनकर ब्रह्मासनमें स्थित ब्रह्माने मेघके समान गम्भीर स्वरसे कहा—"मेरे अतिरिक्त किसीको भी ब्रह्मासनमें बैठनेका अधिकार नहीं है। इसे ब्रह्मलोकसे बाहर निकाल दो।" ऐसा आदेश पाकर द्वारपालोंने ब्रह्माको ब्रह्मलोकसे बाहर निकाल दिया।

इससे ब्रह्मा अत्यन्त विस्मित एवं व्याकुल हो गये। वे मन-ही-मन विचार करने लगे—मेरे रूपमें मेरे ही आसनमें अधिष्ठित होकर द्वारपालोंके द्वारा कौन मेरा तिरस्कार करवा रहा है! दूसरे ही क्षणमें ब्रह्माको बोध हुआ कि ये दूसरे कोई नहीं हैं, अखिल ब्रह्माण्डपति श्रीकृष्ण ही हैं, जिन्होंने मेरे ब्रह्म-पदको छीन लिया है एवं मुझे भक्त-अपराधका समुचित दण्ड प्रदान किया है। उनके नित्य पार्षद गोपबालकों एवं बछड़ोंको मायामुग्ध और स्थानान्तरितकर मैंने भयङ्कर अपराध किया है। इसी कारणसे आज मैं अपने अधिकारसे वञ्चित हो रहा हूँ। यदि कोई श्रीकृष्णके चरणोंमें अपराधी होता है, तब कृष्णभक्तकी कृपासे उसका उद्धार हो जाता है, किन्तु कृष्णभक्तोंके चरणोंमें जिसका अपराध होता है, उसका कभी भी निस्तार नहीं है। भक्त-अपराधीका अपनी सम्पदामें भी अधिकार नहीं रहता है, इसीलिए मैं भी आज अपने अधिकारसे वञ्चित हो गया हूँ। जिनकी कृपासे मुझे ब्रह्माधिकार मिला था, उनके भक्तों (विशेषकर उनके परिकरों) के चरणोंमें अपराध करके मैं महा-विपत्तिमें फँस गया। अब मुझे ब्रह्मासनका अधिकार तो नहीं चाहिये, किन्तु कहीं मैं उन अखिल ब्रह्माण्डनाथकी चरणस्मृतिसे वञ्चित न हो जाऊँ, इस प्रकार मन-ही-मन अनुताप करते हुए ब्रह्मा क्षणभरमें ही ब्रह्मलोकसे श्रीवृन्दावनके यमुना-पुलिनमें आकर उपस्थित हुए।

हंसवाहन ब्रह्माने श्रीवृन्दावनमें आकर आकाशमार्गसे यमुना-पुलिनमें देखा कि व्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण पूर्ववत् गोपबालकों और बछड़ोंके सहित परमानन्दमें क्रीड़ा-विलास करते हुए लीलारसका आस्वादन कर रहे हैं। यह देखकर ब्रह्माजी भलीभाँति समझ गये कि ग्वालबालों और बछड़ोंके हरणके पश्चात् एक वर्षमें एक दिन भी बछड़ों और बालकोंके साथ कृष्णकी गोचारणलीला स्थगित नहीं हुई है। अतः वे

जान गये कि सर्वशक्तिमान सर्वेश्वर स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। बछड़ों एवं बालकोंका हरणकर ब्रह्मलोककी ओर मेरी यात्रा करनेके साथ-साथ वे अपने परमप्रिय सखाओं तथा बछड़ोंको अपने पास ले आये और तभीसे उनके साथ क्रीड़ा कर रहे हैं। जो ब्रह्मरूपमें सर्वत्र अपनी चित्-सत्ताका विस्तार करते हैं, जो परमात्मा रूपमें समस्त जीवोंके हृदयमें विराजमान हैं, जो अनन्त लीलाविग्रह रूपमें अनन्त धामोंमें लीला कर रहे हैं, उनके अगोचर क्या हो सकता है? मेरे जैसे अनन्त करोड़ ब्रह्मा जिनकी दी हुई सृष्टिशक्तिसे सृष्टिकर्त्ता बने हुए हैं, उनसे कुछ भी छिपाया नहीं जा सकता। मैंने उन सर्वज्ञशिरोमणिको बाल्यलीलारसमें मुग्ध देखकर उनके सखाओंको तथा बछड़ोंको स्थानान्तरित किया था और सोचा था कि अवश्य ही इस बाललीलाके आवेशमें लीलामय कोई एक अभिनव लीलामाधुर्य प्रकाश करेंगे और मैं भी उस माधुर्य-स्रोतमें निमज्जित होकर चिरकृतार्थ हो जाऊँगा। किन्तु अब देख रहा हूँ कि अपने प्रभुके साथ ऐसा कपट व्यवहार कर मैंने अपनी धृष्टता और मूर्खताका ही परिचय दिया है। हाय! हाय! मेरी ऐसी दुर्बुद्धि क्यों हुई? मैंने अपने प्रभुके ऊपर प्रभुत्व दिखानेकी चेष्टा की, जिसके फलस्वरूप मैं महा-अपराधरूपी दलदलमें फँस गया।

ऐसा विचारकर ब्रह्माने वहाँ दृष्टि डाली जहाँ उन्होंने गोपबालकों और गोवत्सोंको मायामुग्धकर छिपा रखा था और देखा कि समस्त गोपबालक और गोवत्स उनकी मायामें मुग्ध होकर पहलेकी भाँति ही अचेतन पड़े हुए हैं। तब तो ब्रह्मा और भी विस्मित एवं चमत्कृत होकर आठों नेत्रोंको फाड़कर निर्निमेष दृष्टिसे उनकी ओर देखते ही रह गये एवं सोचने लगे—"यह क्या! मैंने जिन गोपबालकों और वत्सोंको मायानिद्रामें शयन कराया था, वे अभी तक जैसे-के-तैसे सो रहे हैं, तब मैंने श्रीकृष्णके साथ कौन-से ग्वालबालों और बछड़ोंको देखा। तो क्या मेरे ब्रह्मलोकको चले जानेके पश्चात् श्रीकृष्ण गोकुलमें जाकर अन्य गोपबालकों और गोवत्सोंको लाकर क्रीड़ा कर रहे हैं?" इस प्रकार ब्रह्मा नाना प्रकारसे सोच-विचार करने लगे। ऐसे सोच-विचारमें डूबे हुए ब्रह्मा फिरसे यमुना-पुलिनमें आये

और देखा—श्रीकृष्ण निश्चिन्त रूपसे अपने सखाओंके साथ क्रीड़ारसमें मत्त हो रहे हैं एवं जिन समस्त गोपबालकों और गोवत्सोंको वे अभी-अभी माया निद्रामें सोते हुए देखकर आय थे, वे सभी बालक और बछड़े श्रीकृष्णके साथ क्रीड़ा कर रहे हैं।

ब्रह्मा विस्मित होकर कुछ समय तक इस अद्भुत दृश्यको देखकर विचार करने लगे कि अचिन्त्यशक्ति-निकेतन स्वयं-भगवान् व्रजराजनन्दनके लिए असाध्य कुछ भी नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण दोनों ही स्थानोंपर बछड़ों और बालकोंको ले जा रहे हैं और लेकर आ रहे हैं। अतः अब दोनों ओर एक साथ देखना चाहिये, तब इसका रहस्य समझमें आ सकता है। ऐसा सोचकर ब्रह्माने एक ही समय चार नेत्रोंसे ग्वालबालों और बछड़ोंके साथ क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्णकी ओर एवं चार नेत्रोंसे कन्दरामें सोये हुए बालकों और बछड़ोंकी ओर देखा, तो पाया कि एक ही समय एक ओर गोपबालक और गोवत्स माया निद्रामें सो रहे हैं और दूसरी ओर श्रीकृष्णके साथ खेल भी रहे हैं। यह देखकर ब्रह्माजीके आश्चर्यकी कोई सीमा न रही। तब उन्होंने ध्यान लगाया, परन्तु उस समाधिमें भी दोनोंमेंसे कौन सत्य हैं और कौन असत्य, इसका कुछ भी अनुसन्धान न पा सके।

जिस महामायाके प्रभावसे अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय साधित होते हैं एवं अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डोंके ब्रह्माओंसे लेकर कीट तक समस्त जीव जिनकी मायासे मुग्ध होकर देह-दैहिक विषयोंके साथ—'मैं-मेरा' का सम्बन्ध जोड़कर अपने प्राचीन कर्मफलोंको भोग रहे हैं, उस महामायाके महानियन्ता महामहेश्वर स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णको अपनी मायाका वैभव दिखाने जाकर ब्रह्मा उन्हींके महामाया-समुद्रमें डूबकर मुग्ध, स्तब्ध और तेजहीन हो गये।

उसी समय दृश्य परिवर्त्तन हो गया तथा ब्रह्माजीको सभी गोपबालक चतुर्भुज शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारीके रूपमें दिखायी देने लगे। फिर देखते-देखते बछड़े भी चतुर्भुजरूपमें दिखायी देने लगे।

ब्रह्माने देखा कि उन अनगिनत चतुर्भुज मूर्त्तियोंके चारों ओर अनगिनत ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं तथा प्रत्येक ब्रह्माण्डके ब्रह्मासे लेकर कीटाणुतक समस्त जीव और सुमेरु पर्वतसे लेकर धूलकण तक समस्त प्रकारके जड़-पदार्थोंके अधिष्ठातृ देवतागण अपने-अपने स्वरूपोंमें उन चतुर्भुज श्यामसुन्दर मूर्त्तियोंके चरणोंमें उपस्थित होकर कोई नृत्य, वाद्य, गीत, स्तव-स्तुति कर रहे हैं, तो कोई पुष्पाञ्जलि प्रदान करते हुए अपने-अपने अधिकारके अनुसार उनकी सेवा कर रहे हैं। अणिमादि आठों सिद्धियाँ, श्री, भू, लीला आदि अनन्त शक्तियाँ एवं प्रकृति, महत्-तत्त्व आदि चौबीस तत्त्वोंके अधिष्ठातृ देवतागण हाथ जोड़कर अपनी-अपनी सेवाका अवसर ढूँढ़ रहे हैं। काल, स्वभाव, काम, कर्म और गुणादिके अधिष्ठातृ देवता भी उन श्यामसुन्दर स्वरूपोंके महाप्रभावके समक्ष अपना-अपना प्रभुत्व परित्यागकर उनकी सेवामें नियुक्त हैं।

जिस शक्तिके प्रभावसे जगत् निरन्तर परिवर्तनशील है, उस शक्तिका नाम 'काल' है। जिसके प्रभावसे जगत् और जागतिक वस्तुएँ सर्वदा अवस्थान्तरको प्राप्त होती हैं, उस शक्तिका नाम 'स्वभाव' है। जीवके अनादि जन्म-सञ्चित असंख्य कर्मोंमेंसे किसी भी एकके प्रकाशित होनेपर जिस शक्तिके प्रभावसे जीवगण सर्वदा किसी-न-किसी कर्ममें लिप्त होते हैं, उसका नाम 'काम' है। जिससे जीव विविध देहोंमें विविध प्रकारके विषयोंका भोग करते हैं, उसका नाम 'कर्म' है। समस्त जड़-वस्तुओंका मूल कारण सत्त्व, रजः और तमः—इन तीनोंका नाम 'गुण' है। कालसे गुण तक सभीका जगत्में अखण्ड प्रभाव देखा जाता है। प्रत्येक जीव एवं प्रत्येक वस्तु इस काल और स्वभावके अधीन है। किन्तु ब्रह्माजीने देखा कि श्रीवृन्दावनमें प्रकाशित उन अनगिनत श्यामसुन्दर-स्वरूपोंके सामने काल-स्वभाव आदिका भी कोई प्रभुत्व नहीं है। वे काल-स्वभाव आदि सभी अपने-अपने प्रभुत्वको परित्यागकर उन श्यामसुन्दर-स्वरूपोंकी सेवामें समर्पित हैं।

ऐसी ही एक श्यामसुन्दर मूर्त्तिके नाभिकमलसे ब्रह्माने जन्म-ग्रहण किया है। समाधिस्थ होकर तीव्र ध्यानके द्वारा भी वह मूर्त्ति उनके हृदयमें स्फुरित नहीं होती है, परन्तु आज ब्रह्माने वृन्दावनमें आकर

अपने ध्यानसे भी अगम्य उस श्यामल चतुर्भुज मूर्त्तिका अपने नेत्रोंसे ही साक्षात् दर्शन किया, वह भी अनगिनत स्वरूपोंमें। इसलिए ब्रह्मा अत्यन्त भयभीत हो गये। उनके नेत्र, कर्ण आदि एकादश इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण हो गयी। वे अचेतनप्राय होकर अपने वाहन हंसके ऊपर गिर गये। उस समय उन समस्त चतुर्भुज मूर्त्तियोंकी अङ्गछटासे उनका तेज लुप्त हो गया। उनकी ऐसी स्थिति हो रही थी, जैसी बहुत-से लोगोंके द्वारा पूजित किसी देवताके सामने बालकोंके खिलौनेकी स्थिति होती है॥ ४१-५६॥

**इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके**
**परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ ।**
**अनीशेऽपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति**
**चच्छादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोऽजाजवनिकाम्॥ ५७॥**

**अन्वयः**—इति (इस प्रकार) अतर्क्ये (तर्कके अगोचर) निज महिमनि (चतुर्भुज आदि रूपका दर्शन कराते हुए अपने ऐश्वर्यमें प्रतिष्ठित) स्वप्रमितिके (स्वप्रकाश और सुखस्वरूप) अतन्निरसन मुखब्रह्मकमितौ (अस्थूल, अनन्त, अह्रस्व आदि श्रुतिवाक्योंके द्वारा जड़-ज्ञान तिरोहित होनेपर जिनके विषयमें ज्ञानलाभ होता है) अजातः (प्रकृतिसे अतीत) परत्र (परमतत्त्व) ईरेशे (परम ब्रह्मके विषयमें) इदं किम् इति द्रष्टुम् अपि अनीशे (यह क्या है—यह दर्शन करनेमें असमर्थ होकर) मुह्यति (मोहग्रस्त हो गये) परमः अजः (तब परमपुरुष श्रीकृष्णने) ज्ञात्वा अजा जवनिकां (यह जानकर तत्क्षणात् अपनी माया या ऐश्वर्यको) चच्छाद सपदि (सम्वरण कर लिया)॥ ५७॥

**अनुवाद**—हे परीक्षित्! भगवान् तर्कके अगोचर, अपनी महिमामें प्रतिष्ठित, स्वप्रकाश और आनन्दस्वरूप हैं। अस्थूल, अनणु, अह्रस्व आदि श्रुतिवाक्यों द्वारा 'अतत्' अर्थात् जड़-ज्ञान नष्ट होनेपर ही जिनके सम्बन्धमें ज्ञान प्राप्त होता है, ब्रह्मा उन प्रकृतिके परतत्त्व परब्रह्म श्रीकृष्णके दिव्यस्वरूपके विषयमें 'यह क्या है'—इस प्रकार दर्शन करनेमें भी असमर्थ होकर मोहग्रस्त हो गये। तब परमपुरुष श्रीकृष्णने तत्क्षणात् अपनी माया या ऐश्वर्यको हटा लिया॥ ५७॥

**सारार्थदर्शिनी**—तावन्मात्र एव मञ्जुमहिमनि निमज्जन्तमनुभवासमर्थं ब्रह्माणमालोक्य ततः परःसहस्रेषु दर्शयितव्येष्वसाधारणेषु निजमहामञ्जुमहिमसु तमनधिकारिणमभिमृश्य मञ्जुमहिमदर्शनात् समापयामासेत्याह—इतीति। ईरेरे ब्रह्मणि इरा सरस्वती तस्या ईशे महाबुद्धिमत्यपीत्यर्थः। किमिदमिति मुह्यति सति पश्चात् द्रष्टुमप्यनीशे सति परमोऽजः श्रीकृष्णः ज्ञात्वा स्वैश्वर्यरसानुभवे तदयोग्यतां वीक्ष्य सपदि अजाजवनिकां योगमायारूपां तिरस्करिणीं चच्छाद। यया पुलिने भुञ्जानान् श्रीदामादिबालकान् तृणं चरतो वत्सान् वत्सान्वेषकं स्वं चाच्छाद्य स्वरूपभूतान् वत्सबालकादीन् पुनस्तानेव चतुर्भुजादित्वेन दर्शयामास तामन्तरधापयदित्यर्थः। या वास्तवं वस्त्वावृणोति अवास्तववस्त्वेव दर्शयति सा माया, या तु वास्तववस्तूनामपि मध्ये किमप्यावृणोति किमपि दर्शयति सा योगमायेति माया-योगमाययोर्भेदादजाशब्देनात्र बहिरङ्गा माया न व्याख्येया। क्व मुह्यति? निजमहिमनि दर्शितचतुर्भुजादिरूप स्वमहैश्वर्ये। कीदृशे अतर्क्ये यतः स्वप्रमिति स्वप्रकाशञ्च तत् कं सुखरूपं च तस्मिन्। अतएव अजातः प्रकृतेः परत्र परस्मिन्। अतन्निरसनमुखेन ब्रह्मकैः *"अस्थूलमनणु अह्रस्वम्"* इत्यादिकैः श्रुतिशिरोभिर्ब्रह्माभिव्यञ्जकैर्मितिज्ञानं यत्र तस्मिन् स्वरूपे॥ ५७॥

**भावानुवाद**—भगवान्‌की इतनी-सी मनोहर महिमाको देखकर ही ब्रह्माजी उसे अनुभव करनेमें असमर्थ हो गये, तब उनकी उससे भी श्रेष्ठ दूसरी हजारों प्रकारकी असाधारण महामनोहर महिमाओंका कैसे दर्शन कर पायेंगे? इसलिए भगवान्‌ने उन्हें अनधिकारी समझकर अपनी मनोहर महिमाका दर्शन कराना बन्द कर दिया। *'ईरेशे'*—सरस्वतीके ईश्वर अर्थात् महाबुद्धिमान होकर भी ब्रह्माजी कुछ निश्चय नहीं कर सके कि यह क्या है? यहाँ तक कि वे उन श्रीमूर्त्तियोंका दर्शन करनेमें भी असमर्थ हो गये। परमपुरुष श्रीकृष्णने ब्रह्माको अपने ऐश्वर्यरसका अनुभव करनेमें अयोग्य देखकर तत्क्षणात् योगमायाका आवरण उठा लिया। अर्थात् जिस मायाके द्वारा उन्होंने पहले पुलिनमें भोजन करनेवाले अपने नित्य परिकरों श्रीदामादि गोपबालकोंको, तृण-भक्षणकारी बछड़ोंको और उन्हें ढूँढ़नेवाले अपनेको आच्छादितकर स्वरूपभूत बछड़ों और बालकोंको दिखाया तथा फिर उन्हींको चतुर्भुज आदिके रूपमें दर्शन कराया, उस योगमायाको हटा लिया। जो वास्तव वस्तुको आच्छादितकर अवास्तव वस्तुका दर्शन कराती है, वही माया है। परन्तु जो वास्तव वस्तुओंमेंसे कुछको आच्छादितकर कुछको

दिखा दे, वह योगमाया हैं। इस प्रकार इन दोनोंका भेद होनेके कारण यहाँ 'अजा' शब्दसे बहिरङ्गा मायाको नहीं कहा जा सकता है। यदि कहो कि ब्रह्माजी किस विषयमें मुग्ध हुए हैं? *'निज-महिमनि'* अर्थात् भगवान्‌के चतुर्भुजरूप आदि महान ऐश्वर्यके विषयमें ब्रह्माको मोह हुआ था। वह महिमा कैसी है? इसके उत्तरमें कह रहे हैं—*'अतर्क्ये'*, जिनकी महिमा तर्कसे परे है, अथवा जो तर्कसे परे हैं, क्योंकि वे स्वप्रकाश-स्वरूप, सुख-स्वरूप होनेके कारण प्रकृतिसे परे हैं। जड़-ज्ञान नष्ट होनेपर ही जिनके विषयमें यथार्थ ज्ञान होता है—इस प्रकारसे वेद-वेदान्त, उपनिषद जिनकी असाधारण महिमाको प्रमाणित करते हैं, ऐसे भगवान्‌के विषयमें ब्रह्माजी मुग्ध हुए थे॥ ५७॥

**ततोऽर्वाक् प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः।**
**कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टिराचष्टेदं सहात्मना॥ ५८॥**

**अन्वयः**—ततः (भगवान्‌के द्वारा अपनी मायाको हटानेपर) कः (ब्रह्माने) अर्वाक् (बाहर) प्रति लब्धाक्षः (की दृष्टि प्राप्तकर) परेत वत् उत्थित (मरे हुए व्यक्तिके पुनः जीवित होकर खड़े होनेकी भाँति) कृच्छ्रात् (बड़े कष्टसे) दृष्टिः (नेत्रोंको) उन्मील्य वै आत्मना (खोलकर अपने सहित) सह इदं (इस जगत्‌को) आचष्ट (देखा)॥ ५८॥

**अनुवाद**—तत्पश्चात् बाह्यज्ञान प्राप्तकर ब्रह्माजी मृत-व्यक्तिके समान मानो मरकर फिरसे जीवित हो उठे। सचेत होकर बड़े कष्टसे उन्होंने अपनी आँखोंको खोला, तब कहीं वे स्वयंको और इस विश्वको देख सके॥ ५८॥

**सारार्थदर्शिनी**—अर्वाक् बहिः प्रतिलब्धानि अक्षाणि येन सः परेतवत् मृतो यदि कथञ्चित् पुनरुत्तिष्ठति तथेत्यर्थः। इदं जगत् ममतास्पदं आतम्नाऽहन्तास्पदेन सह अपश्यत्। तयोरपि विस्मृतपुर्वत्वात्॥ ५८॥

**भावानुवाद**—योगमायाके हट जानेपर ब्रह्माको बाह्यज्ञान हुआ। मृत प्राय व्यक्ति यदि किसी सौभाग्यवशतः पुन जीवित हो उठे, उसी प्रकार (हंसकी पीठसे उठकर) उन्होंने बड़े कष्टसे नेत्र खोले। इसके

पश्चात् अपने ममतास्पद विश्वको अहङ्कारास्पद देहके साथ दर्शन करने लगे, क्योंकि वे पहले इन दोनोंको भी भूल गये थे॥५८॥

**सपद्येवाभितः पश्यन् दिशोऽपश्यत् पुरःस्थितम्।**
**वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम्॥५९॥**

**अन्वयः**—सपदि (उस समय) अभितः (चारों ओर) पश्यन् (देखते हुए) पुरःस्थितं (सामने अवस्थित) जनाजीव्य द्रूमाकीर्णं (लोगोंकी जीविका-स्वरूप वृक्षोंसे परिपूर्ण) समाप्रियं (समस्त ऋतुओंसे परिपूर्ण तथा परम सुखदायी) वृन्दावनं अपश्यत् (वृन्दावनधामको देखा)॥५९॥

**अनुवाद**—जब वे चारों ओर देखने लगे, तब उन्होंने देखा कि सम्मुख ही जीवोंको जीवन देनेवाले फल-फूलोंसे लदे हुए वृक्षोंसे परिपूर्ण वृन्दावनधाम है, जो समस्त ऋतुओंमें सुखदायक है॥५९॥

**सारार्थदर्शिनी**—ततश्च परमकृपया कृष्णस्तस्मै स्वमाधुर्यवैभवं प्रकाशित-वानित्याह—सपद्येवेति। सम्यगासमन्तात् परस्परं प्रियाण्येव यत्र तत्॥५९॥

**भावानुवाद**—तदन्तर परम कृपामय श्रीकृष्णने ब्रह्माके समक्ष अपना माधुर्य-वैभव प्रकाशित किया। तब ब्रह्माजी उस श्रीवृन्दावनधामको देख पाये, जहाँ सदा-सर्वदा सर्वत्र परम प्रिय वस्तुएँ विद्यमान हैं॥५९॥

**यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन् नृमृगादयः।**
**मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम्॥६०॥**

**अन्वयः**—यत्र (जहाँ) नैसर्ग दुर्वैराः (स्वभावसे ही घोर विद्वेषपरायण) नृ-मृगादयः (मनुष्य, सिंह आदि प्राणीगण) मित्राणि इव आसन् (मित्रोंकी भाँति एकसाथ अवस्थान कर रहे हैं) [जिस स्थानमें] अजितावास द्रुतरुट्तर्षकादिकम् (अजित श्रीकृष्णका निवास स्थान होनेके कारण क्रोध, लोभ आदि भाव वहाँसे भाग गये हैं, ऐसे वृदावनके दर्शन किये)॥६०॥

**अनुवाद**—उस श्रीवृन्दावनधाममें परस्पर स्वाभाविक शत्रुतासे युक्त मनुष्य एवं सिंह आदि प्राणी भी स्नेहशील मित्रोंके समान मिल-जुलकर एक साथ रह रहे हैं। वह भूमि श्रीकृष्णकी लीलाविहार-स्थली है, अतः क्रोध, लोभ आदि विकार वहाँसे दूर चले गये हैं॥ ६०॥

**सारार्थदर्शिनी**—तदेवाह-नैसर्ग निसर्गोत्थं मिथो दुर्वैरं येषां तेऽपि मनुज-व्याघ्रादयः मित्राणीव सहैवासन् अजितस्यावासेन द्रुताः पलायिताः रुटतर्षादयः क्रोधलोभादयो यस्मात्तस्मिन्॥ ६०॥

**भावानुवाद**—जो स्वभावसे ही परस्पर वैरभाव रखते हैं, ऐसे मनुष्य और बाध आदि प्राणीगण भी मित्रोंकी भाँति निवास करते हैं। श्रीकृष्णकी लीलाभूमि होनेके कारण उस श्रीवृन्दावनधामसे क्रोध, लोभ आदि बहुत दूर चले गये हैं॥ ६०॥

**तत्रोद्वहत् पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं,**
**ब्रह्माद्वयं परमनन्तमगाधबोधम्।**
**वत्सान् सखीनिव पुरा परितो विचिन्व-**
**देकं सपाणिकवलं परमेष्ठ्यचेष्ट॥ ६१॥**

**अन्वयः**—तत्र परमेष्ठी (वहाँ परमेष्ठी ब्रह्माजीने) पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं (गोपबालकका वेश) उद्वहत् (धारणरूप अभिनयकारी) अद्वयं (एक) परं (श्रेष्ठ) अनन्तं (नित्य) अगाधबोधं (पूर्ण ज्ञानमय) ब्रह्म (श्रीकृष्णको) एकं (अकेले) स पाणि कवलं (हाथमें दहीमिश्रित अन्नका ग्रास धारण करके) परितः (सर्वत्र) पुरा इव (पूर्ववत्) वत्सान् सखीन् (गोवत्स एवं गोपबालकोंका) विचिन्वत् (अनुसन्धान करते हुए) अचष्ट (देखा)॥ ६१॥

**अनुवाद**—[उस हरे-भरे श्रीवृन्दावनधामका दर्शन करनेके बाद] परमेष्ठी ब्रह्माने देखा कि गोपबालक वेशधारणरूप अभिनयकारी, अद्वितीय, नित्य, पूर्ण ज्ञानमय परतत्त्व श्रीकृष्ण अकेले ही हाथमें दधिमिश्रित भातका कौर लिये हुए पूर्ववत् सर्वत्र सखाओं एवं बछड़ोंको खोज रहे हैं॥ ६१॥

**सारार्थदर्शिनी**—ततश्च स्वस्वरूपभूतानि चतुर्भुजत्वादीनि योगमाययैवाच्छाद्य *"एकमेवाद्वयं ब्रह्म"* इति श्रुत्युक्तं स्वदुर्शित-सर्वस्वरूपमूलभूतं स्वरूपं तं दर्शयामासेत्याह—तत्र वृन्दावने परमेष्ठी ब्रह्मा ब्रह्म अचष्ट अपश्यत्। कीदृशं? पशुपवंशशिशुत्वेऽपि प्रौढपरमचतुरोचितम् नाट्यं मत्प्रभुर्मया मोहित एवेति ब्रह्माणं मिथ्याभिमानं ग्राहयितुं शाद्बले वत्सान् दृष्ट्वापि पुलिनेऽपि सखीन् अदृष्ट्वापि अदर्शनाभिनयं नटानां कर्म उद्वहत्। दर्शितानां ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तानां योगमाययाच्छादनादद्वयं सर्वमूल-भूतस्वरूपत्वात् परं दर्शितेभ्यश्चिद्वैभवेभ्योऽप्यपरेषां चिदानन्दमय-परस्सहस्रमहावैभवानां विद्यमानत्वादनन्तं परमेष्ठिनो वराकस्य का गणना श्रीबलदेवाद्यैरवतारैरपि दुष्प्रवेशत्वादगाधबोधं। उक्तलक्षणात् नाट्यात वत्सान् सखींश्च पुरेव परित इतस्ततो विचिन्वदिति वत्सबालान्वेषणं पूर्ववर्षे ब्रह्मणा मायामोहितत्वात् यथार्थमेवावगतम्। अधुना तु मायानिर्मुक्तत्वात् शाद्बले तृणं चरतो वत्सान् पुलिने च भुञ्जानान् बालान् पश्यता स्वापहृतान्मायिकवत्सबालकांश्च अपश्यता तेन मन्मोहनार्थ-मभिनयमात्रमिदम् इत्यवगतम् अतएव *"नौमीड्य ते"* इत्यग्रिमस्तुतिवाक्येन वत्सबालान्विचिन्वते इति विशेषणं नोपन्यस्तम्। स्वरूपभूतानां वासूदेवमूर्तीनां स्वभेदानां योगमाययैवाच्छादनादेकं भक्तमनोहरमहामधुरलीलामयत्वात्सपाणिकवलम्। अत्र कस्मिश्चिदधिकारिणि निकृष्टे धर्मधर्मिभावरहितं निराकारं ज्ञानमात्रं यत् ब्रह्मेति प्रसिद्धं तदपि योगमाययैव तद्दृष्टी प्रति चिदानन्दमयानामपि रूपगुणनामलीला-परिकरधामादीनामाच्छादनाज्ज्ञानमात्रस्यैव प्रकाशनात् सङ्गतमित्येवमेव मिथोविरुद्धार्था अपि श्रुतयो निर्विरोधमेव सङ्गमयितव्या इति दिक्। तत्र पशुपवंशशिशुत्वं नाट्यमेवोद्वहन्न तु स्वरूपमिति व्याख्यानं श्रीभागवतस्य मोहिनीत्वप्रतिपादकमेव। *"नौमीड्यतेऽभ्रवपुषे"* इत्युत्तरत्र नौमीत्युक्त्वा प्रस्तुतस्य भगवतः कर्मत्वे ज्ञाते प्रयोजनापेक्षायामेवंभूतो भगवानेव प्रयोजनमिति व्याचक्षाणानां स्वामिचरणानामपि नाभिमतमित्यवसीयते। न ह्यवास्तवीभूतं वस्तु स्तुतिप्रयोजनीक्रियते इत्यवधेयम्॥ ६१॥

**भावानुवाद**—तत्पश्चात् अपने स्वरूपभूत चतुर्भुज रूपोंको योगमायाके द्वारा ही आच्छादितकर भगवान्ने *"एक अद्वितीय ब्रह्म"*—इस श्रुति-उक्त सर्वस्वरूप-मूलभूत अपना स्वरूप ब्रह्माको दिखाया। इसे ही तत्र आदिके द्वारा कह रहे हैं। उस श्रीवृन्दावनमें परमेष्ठी ब्रह्माने नराकृति परब्रह्म श्रीकृष्णका दर्शन किया। वे कैसे थे? इसके लिए कह रहे हैं—*'पशुपवंशशिशुत्वनाट्यम्'* अर्थात् गोपवंशीय शिशुके रूपमें भी प्रौढ़ परम चतुर जो नाटक किया, अर्थात् "मेरे प्रभु मेरे द्वारा मोहित हो गये हैं"—ब्रह्माजीके हृदयमें ऐसा मिथ्या अभिमान उत्पन्न करानेके लिए हरे-भरे घासके मैदानमें बछड़ोंको और यमुना-पुलिनमें सखाओंको न

देखकर केवल अदर्शनका अभिनय कर रहे हैं, जो नटोंका कर्म है, उसे जिन्होंने *'उद्बृहत्'*—उत्कृष्ट रूपसे धारण किया है। पहले दिखाये गये ब्रह्मासे लेकर तृण तक समस्त रूपोंको योगमायाके द्वारा आच्छादित करनेके कारण जो *'अद्वय'*, सर्वमूलभूत-स्वरूप होनेके कारण *'पर'* (सर्वश्रेष्ठ), दिखाये गये चित्-वैभवसे भी हजार गुणा अधिक महावैभव विद्यमान होनेके कारण जो 'अनन्त' हैं। सामान्य ब्रह्माकी तो बात ही क्या, जो श्रीबलदेव आदि अवतारोंके लिए भी सहज रूपसे बोधगम्य न होनेके कारण 'अगाध बोध' हैं। उक्त प्रकारके नाटक वशतः ऐसे भगवान्‌की मायासे मोहित होनेके कारण ब्रह्माजीने एक वर्षपूर्व श्रीकृष्ण द्वारा बछड़ों और गोपबालकोंको इधर-उधर ढूँढ़ना सत्य माना था, किन्तु अब मायामुक्त होनेपर जब उन्होंने घासके मैदानमें विचरण करते हुए बछड़ोंको एवं पुलिनमें भोजन करनेवाले गोपबालकोंका दर्शन किया और उन्हें अपने द्वारा चुराये गये मायिक बछड़े और बालक दिखायी नहीं दिये, तो वे समझ गये कि "यह मुझे मोहित करनेके लिए प्रभुका केवल अभिनयमात्र था।" अतएव *"नौमीड्य ते"* (१४/१), आदि आगे कहे जानेवाले स्तुतिवाक्योंमें उन्होंने कृष्णके लिए "बछड़ों और बालकोंको ढूँढ़नेमें रत"—ऐसा नहीं कहा है। श्रीकृष्णने स्वरूपभूत विविध वासुदेव मूर्त्तियोंको योगमाया द्वारा अच्छादितकर ब्रह्माको भक्तोंके मनोहारी महामधुर उस छविका दर्शन कराया जिसमें वे अपने हाथमें दधिमिश्रित अन्नका ग्रास लिये हुए थे।

अतः नराकृति परब्रह्म नन्दनन्दन श्रीकृष्णविग्रह ही भगवान्‌का नित्यरूप है, यह कोई अभिनय नहीं है—यही सिद्धान्त है, क्योंकि अवास्तव वस्तु कभी भी स्तुतिका विषय नहीं हो सकती है॥ ६१॥

**दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोऽवतीर्य,**
**पृथ्व्यां वपुः कनकदण्डमिवाभिपात्य।**
**स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुटकोटिभिरङ्घ्रियुग्मं,**
**नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम्॥ ६२॥**

**अन्वयः**—[ब्रह्माजीने] दृष्ट्वा (पूर्वोक्त रूपसे श्रीकृष्णको देखकर) त्वरेण (वेगसे) निजधोरणतः (अपने वाहनसे) पृथ्व्यां (भूमिमें) अवतीर्य वपुः (अवतीर्ण होकर अपने शरीरको) कनकदण्डवत् (सुवर्ण-दण्डकी भाँति) अभिपात्य (गिराते हुए) चतुर्मुकुट कोटिभिः (मस्तकस्थित चारों मुकुटोंके अग्रभाग द्वारा) अङ्घ्रियुग्मं (श्रीकृष्णके चरणयुगलमें) स्पृष्ट्वा नत्वा (प्रणामकर) मुदश्रुसुजलैः (आनन्दाश्रुओंके द्वारा) अभिषेकं (उनके चरणयुगलका अभिषेक) अकृत (किया)॥ ६२॥

**अनुवाद**—भगवान्‌को देखते ही ब्रह्माजी शीघ्र ही अपने वाहन हंससे भूमिपर उतर पड़े और अपने सोनेके समान चमकते हुए शरीरको पृथ्वीपर स्वर्ण-दण्डकी भाँति गिराकर अपने चारों मुकुटोंके अग्रभागके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णके चरणयुगलका स्पर्श करके उन्हें प्रणाम किया और आनन्दाश्रुओंके द्वारा भगवान्‌के दोनों चरणोंका अभिषेक किया॥ ६२॥

**सारार्थदर्शिनी**—दृष्ट्वेति इदमेव नराकृति परं ब्रह्म सर्वमूलभूतमित्यवगम्य त्वरेण त्वरया निजधोरणतः स्ववाहनात् पृथ्व्यां वपुरभिपात्येति *"न हि देवा भुवं स्पृशन्ती"*ति नियमोल्लङ्घनाद्ब्रह्मणोऽस्य देवत्वाभिमानापगमो ज्ञेयः। चतुर्णां मुकुटानामग्रैरङ्घ्रियुग्मं स्पृष्ट्वेति चतुर्दिक्स्थितानां चतुर्णामपि मुखानां बलेन कृष्णाभिमुखीकरणात् अभिषेकमर्थादङ्घ्रियुग्मस्याकरोदित्युत्थायोत्थाय भूमौ द्रुतपतने अश्रूणां बाहुल्येन पुरोवेगाच्चरणयोर्निपातो ज्ञेयः। अश्रूणां भक्त्यनुभावरूपत्वेन पावित्र्यात् सुपप्रदयोगः॥ ६२॥

**भावानुवाद**—ये नराकृति परब्रह्म श्रीकृष्ण ही सबके मूल हैं, यह जानकर ब्रह्माजी तुरन्त ही अपने वाहन हंससे उतरे और अपने शरीरको स्वर्ण-दण्डकी भाँति पृथ्वीपर लिटाकर श्रीकृष्णको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। "देवतागण कभी भी भूमिको स्पर्श नहीं करते", अतः देवताओंके इस नियमको तोड़नेसे ब्रह्माका देवत्व-अभिमान दूर हो गया था, ऐसा समझना चाहिये। उन्होंने मुकुटके अग्रभागके द्वारा श्रीकृष्णके चरणयुगलका स्पर्श किया अर्थात् चारों ओर स्थित चार मुखोंको बलपूर्वक श्रीकृष्णके सम्मुख लाकर श्रीकृष्णके चरणयुगलका आनन्दसे बहते हुए आँसुओंके सुजलसे अभिषेक किया। तत्पश्चात्

बार-बार उठकर उन्हें प्रणाम करने लगे, अर्थात् तीव्रगतीसे भूमिपर गिरते समय प्रचुर परिमाणमें निकलनेवाले अश्रु वेगपूर्वक भगवान्के दोनों चरणोंपर गिर रहे थे—जानना होगा। आनन्दाश्रु भक्तिके अनुभाव होनेके कारण पवित्र होते हैं, इसलिए यहाँ (सुजलैः में) 'सु' शब्दका प्रयोग हुआ है॥ ६२॥

**उत्थायोत्थायो कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन्।**
**आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनःपुनः॥ ६३॥**

**अन्वयः**—(ब्रह्मा) कृष्णस्य प्राग्दृष्टं (कृष्णकी पूर्व दृष्ट) महित्वं (महिमाको) पुनः पुनः स्मृत्वा स्मृत्वा (पुनः-पुनः स्मरणकर या अत्यधिक रूपमें स्मरणकर) उत्थाय उत्थाय चिरस्य (बहुत समय तक उठ उठकर) पादयोः (श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें) पतन् आस्ते (गिरे रहे)॥ ६३॥

**अनुवाद**—वे भगवान् श्रीकृष्णकी पहले देखी हुई महिमाका पुनः-पुनः स्मरण करते-करते बहुत देर तक उनके चरणकमलोंमें गिरकर और उठ-उठकर बार-बार प्रणाम करते रहे॥ ६३॥

**सारार्थदर्शिनी**—पतन्नास्ते इति बहुतरप्रणामन्ते आनन्दजाड्योदयात् वर्तमानप्रयोगो मुनेस्तदानीं तत्साक्षात्कारानुभवात्॥ ६३॥

**भावानुवाद**—ब्रह्मा श्रीकृष्णकी पूर्वदृष्ट महिमाका पुनः-पुनः स्मरण करते हुए बार-बार उठते और गिरते हुए बहुत समय तक उनके चरणयुगलमें प्रणाम करने लगे। बहुत बार प्रणाम करनेके पश्चात् आनन्दजनित जड़ताके कारण ब्रह्माजी श्रीकृष्णके चरणोंमें बहुत देर तक पड़े रह गये। इसका उस समय श्रीशुकदेव गोस्वामीने प्रत्यक्ष अनुभव किया था, इसलिए यहाँ *'आस्ते'*—वर्त्तमान कालका प्रयोग हुआ है॥ ६३॥

**शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने,**
**मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विनम्रकन्धरः।**

**कृताञ्जलिः प्रश्रयवान् समाहितः,**
**सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥ ६४ ॥**

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ब्रह्मसूत्रभाष्ये पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥**

**अन्वयः**—अथ (अनन्तर) शनैः (धीरे-धीरे) उत्थाय लोचने विमृज्य (उठकर नेत्रोंको मलते हुए) विनम्रकन्धरः (सिर झुकाकर) मुकुन्दम् उद्वीक्ष्य कृताञ्जलिः प्रश्रयवान् (श्रीकृष्णका दर्शनकर हाथ जोड़कर सविनय भावसे तथा) समाहितः (सावधानीसे) सवेपथुः (काँपते हुए) गद्गदया इलया (गद्गद वाणीके द्वारा) ऐलत (स्तुति करने लगे) ॥ ६४ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके त्रयोदश अध्यायका अन्वयः समाप्त।

**अनुवाद**—इसके बाद ब्रह्माजी धीरे-धीरे उठे एवं उन्होंने अपने नेत्रोंसे आँसू पोंछे। तत्पश्चात् भगवान् मुकुन्दको देखते ही वे नतमस्तक हो गये। उनका शरीर काँपने लगा। वे हाथ जोड़कर अत्यधिक विनीत-भाव तथा एकाग्रताके साथ गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ६४ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके तेरहवें अध्यायका श्लोकानुवाद समाप्त।

**सारार्थदर्शिनी**—लोचने इति द्वित्वं पाणिद्वयेन लोचनद्वयस्यैव युगपन्मार्जनोपपत्तेः। गद्गदया गद्गदभाववत्या इलया वाचा ऐलत ऐट्र अस्तौत् ॥ ६४ ॥

इति सारार्थदर्शिन्यां हर्षिण्यां भक्तचेतसाम्।
त्रयोदशोऽत्र दशमे सङ्गतः सङ्गतः सताम् ॥

इति श्रीमद्भागवत-दशमस्कन्धे श्रीविश्वनाथचक्रवर्ति-ठक्कुर-कृता त्रयोदशाध्यायस्य सारार्थदर्शिनी-टीका समाप्ता ॥ १३ ॥

**भावानुवाद**—दोनों हाथोंसे दोनों नेत्रोंके आँसू पोंछनेके कारण 'लोचने' द्विवचनका प्रयोग हुआ है। तदनन्तर ब्रह्मा गद्गद-भावयुक्त वचनोंसे श्रीकृष्णका स्तव करने लगे॥ ६४॥

इस प्रकार भक्तोंको आनन्द देनेवाली दशम-स्कन्धके तेरहवें अध्यायकी सज्जन-सम्मत 'सारार्थदर्शिनी' टीका समाप्त हुई।

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके तेरहवें अध्यायकी श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर विरचित सारार्थदर्शिनी टीकाका भावानुवाद समाप्त।

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—व्रजराजनन्दन श्रीकृष्णने जब अघासुरका वध करके उसे मुक्ति प्रदान की, उस समय ब्रह्माजी आकाशमार्गसे उस परम अद्भुत लीलाको देखकर अत्यधिक चमत्कृत हुए। इसके पश्चात् नन्दनन्दन जब श्रीदाम, सुबलादि गोपबालकोंके सहित यमुना-पुलिनमें उपस्थित होकर वनभोजन-लीलामें मत्त हो गये, तब ब्रह्माजी उस परम मधुर लीलाका दर्शनकर मुग्ध हो गये एवं उनके मनमें नन्दनन्दनकी और भी कुछ लीलामाधुरीका आस्वादन करनेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी। इसके लिए पहले ब्रह्माने श्रीकृष्णके बछड़ोंको मायामुग्धकर स्थानान्तरित कर दिया तथा जब श्रीकृष्ण बछड़ोंको ढूँढ़ने गये, तब उन्होंने सुबल, श्रीदाम आदि गोपबालकोंको भी मायामुग्धकर स्थानान्तरित कर दिया। सर्वज्ञ-शिरोमणि श्रीकृष्ण अज्ञकी भाँति वन-वनमें बछड़ों और गोपबालकोंको ढूँढ़ते रहे, अन्ततः उन्होंने स्वयं ही असंख्य गोपबालकों और बछड़ोंका रूप धारणकर व्रजमें प्रवेश किया। ब्रह्माजी गोपबालकों और बछड़ोंको स्थानान्तरितकर ब्रह्मलोकमें चले गये और वहाँ जाकर देखा कि उन्हींके आसनपर उनके जैसे ही एक ब्रह्मा अधिष्ठित हैं और ब्रह्माका कार्य कर रहे हैं। यह देखकर ब्रह्मा चमत्कृत हो गये एवं द्वारपालोंके द्वारा बलपूर्वक निकाल दिये जानेपर वे पुनः वृन्दावनमें लौटकर आये। ब्रह्माजीके ब्रह्मलोक जाकर वहाँसे लौटने तक पृथ्वीलोकमें एक वर्ष बीत गया। ब्रह्माजीने वृन्दावनमें आकर देखा कि नन्दनन्दन श्रीकृष्ण गोपबालकों

और बछड़ोंके सहित पूर्ववत् बाललीला कर रहे हैं। एक वर्षपूर्व गोपबालकों और बछड़ोंका हरणकर ब्रह्माने जहाँ रखा था, वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि वे सब गोपबालक और बछड़े मायामुग्ध अवस्थामें ही सोये हुए हैं। इससे ब्रह्माके आश्चर्यकी सीमा ही न रही। अगले ही क्षण श्रीकृष्णके साथ बालक्रीड़ापरायण गोपबालक और बछड़े ब्रह्माजीको शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी श्यामल चतुर्भुजरूपमें दिखायी दिये। यह देखकर वे स्तब्ध रह गये। ब्रह्माजी जिनके नाभिकमलसे उत्पन्न होकर जिनकी कृपासे सृष्टिशक्ति लाभकर इस ब्रह्माण्डका सृजन करनेमें समर्थ हुए थे, चिरकाल तक ध्यान करनेपर भी ब्रह्माको जिनका दर्शन नहीं हो पाया, आज उन्हीं ब्रह्माण्डपतिको अनगिनत स्वरूपोंमें अनायास ही दर्शनकर धैर्य धारण न कर सके तथा अपना बाह्य ज्ञान भी खो बैठे। इस विषयमें श्रीधर स्वामिपादकी व्याख्या इस प्रकार है—तब भगवान्ने ब्रह्माको अपने ऐश्वर्य दर्शनके अयोग्य जानकर उनके दृष्टिपथमें मायाका आवरण डाल दिया। इससे स्पष्ट जाना जाता है कि इससे पहले भगवान्ने ब्रह्माके नेत्रोंसे मायाका आवरण हटा लिया था, जिसके प्रभावसे वे अगणित श्यामलचतुर्भुज स्वरूपोंको देखनेमें समर्थ हुए थे। परन्तु जब भगवान्ने पुनः उनके नेत्रोंके आगे मायाका आवरण फैला दिया, तो उन्हें पहलेकी भाँति अनगणित चतुर्भुज-स्वरूप नहीं दिखायी दिये। श्रीजीव गोस्वामीने भी वैष्णवतोषणीकी टीकामें यही सिद्धान्त दिखाया है—*"अतस्तादृशवैभवं प्रति ब्रह्मदृष्टिते मायाप्रसारणेन तद्दर्शितं, तत्र प्रसारणेन त्वाच्छादितम् इति अपसारितवानिति।"*

अब ब्रह्माने एक वर्षपूर्वकी ही भाँति कृष्णको गोपशिशुके रूपमें हाथमें दही-मिश्रित अन्नका ग्रास लेकर गोपबालकोंको एवं बछड़ोंको खोजते हुए देखा। नराकृति परब्रह्मकी ऐसी महामहिमाका दर्शनकर ब्रह्मा अपने वाहनपर विराजमान न रह सके। वे हंसकी पीठसे उतरकर नन्दनन्दनके चरणोंमें गिर गये एवं चारों मुकुटोंके द्वारा पुनः-पुनः नन्दनन्दनके चरणोंका स्पर्शकर समझने लगे कि इतने दिनोंके पश्चात् मेरे चारों मस्तकोंसे अनादिकालसे सञ्चित अभिमानका बोझ उतर गया एवं मैं चिर कृतार्थ हो गया। भगवान्के चरणोंके

स्पर्शसे उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, जो नन्दनन्दनके चरणकमलोंका अभिषेक करने लगी। ब्रह्माने कृष्णकी जो महिमा देखी थी, उसकी उन्हें स्फूर्ति होने लगी, जिससे महा-अपराधके भयसे उनका हृदय काँपने लगा। वे काँपते हुए धीरे-धीरे उठे तथा नन्दनन्दनके चरणोंमें नतमस्तक होकर गद्गद वचनोंसे उनकी स्तुति करने लगे॥ ६१-६४॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके तेरहवें अध्यायकी
भावप्रकाशिकावृत्ति समाप्त।

# चौदहवें अध्यायकी कथाका सार

इस अध्यायमें ब्रह्माके द्वारा की गयी कृष्णकी स्तुतिका वर्णन हुआ है। ब्रह्माने नन्दनन्दन श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिए पहले उनके श्रीअङ्गोंकी शोभाका वर्णन करते हुए उनके ऐश्वर्यकी अपेक्षा उनके माधुर्य-स्वरूपके दुर्ज्ञेयत्वका वर्णन किया। श्रौतपन्थामें श्रवण-कीर्त्तनरूपी भक्तिके द्वारा ही भगवान् प्राप्त होते हैं। परन्तु अश्रौतपन्थाको अवलम्बन करनेवाले भगवान्‌को प्राप्त करनेके लिए कृत्रिम चेष्टा करते हैं, जिसके फलस्वरूप उन्हें केवल क्लेश ही प्राप्त होते हैं। अनन्त गुणोंके आश्रय-स्वरूप भगवान्‌का रहस्य ब्रह्मतत्त्वसे भी कहीं अधिक दुर्ज्ञेय है। केवल भगवान्‌की कृपासे ही उनकी महिमाको जाना जा सकता है। इस प्रकार भगवान्‌की कृपा ही भगवत्प्राप्तिका एकमात्र उपाय है—इसका अनुभवकर ब्रह्माने भगवान्‌की महिमाका कीर्त्तन किया तथा अपने द्वारा किये गये कर्मकी निन्दा की। वे जान गये थे कि असंख्य ब्रह्माण्डोंके आश्रयस्वरूप श्रीकृष्ण ही उनके पिता मूल नारायण हैं, अतः वे उनसे क्षमा प्रार्थना करने लगे। इसके बाद उन्होंने माधुर्यमय भगवान्‌के अचिन्त्य ऐश्वर्य तथा उसके अतिरिक्त जगत्‌का अचिन्त्यत्व, ब्रह्मा-शिवसे विष्णुका पार्थक्य, देव-तिर्यक आदि योनियोंमें भगवान्‌के आविर्भावका कारण तथा भगवान्‌की लीलाओंकी नित्यता और जड़-जगत्‌की अनित्यताका वर्णन किया। भगवत्तत्वके ज्ञानके द्वारा ही जीवकी मुक्ति होती है। जीवकी बद्ध धारणासे ही बद्ध-अवस्था तथा मुक्तिकी सृष्टि हुई है, वस्तुतः आत्मतत्त्वके सम्बन्धमें ये दोनों ही मिथ्या हैं। अज्ञ व्यक्ति कृष्णस्वरूपको मायिक मानकर उनके चरणकमलोंका त्यागकर अन्यत्र आत्मतत्त्वका अनुसन्धान करते हैं। वास्तवमें यही उनकी अज्ञताकी चरमसीमाका परिचय है। भगवत्तत्त्व भगवान्‌की कृपाके बिना किसी भी उपायसे नहीं जाना जा सकता। ब्रह्माजीने यह निर्णयकर व्रजवासियोंके सौभाग्यकी महिमाका विचारकर व्रजमें तृण, गुल्म, लता आदि कोई भी जन्म

प्राप्त करनेकी प्रार्थना की। इसका कारण है कि व्रजवासियोंका गृह भव-कारागार नहीं है, बल्कि वह तो ज्ञानी और योगियोंके लिए भी दुर्लभ है। कृष्णसम्बन्ध-शून्य गृह ही संसार-कारागार-स्वरूप है। तत्पश्चात् ब्रह्माने भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें आत्मसमर्पणपूर्वक उनकी स्तुति की तथा उनकी परिक्रमा करके अपने लोकको चले गये। उनके चले जानेके बाद श्रीकृष्ण ब्रह्मा द्वारा अपहरण किये गये बछड़ोंको पूर्ववत् अपने भोजन-स्थान यमुना-पुलिनमें ले आये। वहाँपर पूर्व सखालोग पहलेकी ही भाँति अवस्थान कर रहे थे। कृष्णकी मायाके प्रभावसे वे कुछ भी न जान सके। अतः कृष्ण जब बछड़ोंको लेकर वहाँपर आये तो वे सखालोग कहने लगे—"कृष्ण, अच्छा हुआ, तुम अतिशीघ्र बछड़ोंको ले आये। तुम्हारी अनुपस्थितिमें हमने एक भी ग्रास भोजन नहीं किया, आओ अब भोजन करें।" तब सखाओंके साथ हास-परिहास करते हुए कृष्ण उनके साथ भोजन करने लगे। भोजनके पश्चात् कृष्णने उन्हें अघासुरके शरीरका ढाँचा दिखाया। उसे देखकर सखाओंने सोचा कि आज ही तो कृष्णने इस भयानक सर्पका वध किया। अतः व्रजमें लौटकर उन्होंने व्रजवासियोंको यही कहा कि आज कृष्णने एक भयानक सर्पका नाशकर हमारी रक्षा की। इस प्रकार बालकोंने कृष्णके द्वारा बाल्यावस्था अर्थात् पाँचवें वर्षमें की गयी अघासुर-वधलीलाका वर्णन उनकी पौगण्डावस्था अर्थात् छठे वर्षमें किया। तत्पश्चात् श्रीशुकदेव गोस्वामीने गोपियों द्वारा अपने पुत्रोंकी अपेक्षा कृष्णके प्रति अधिक स्नेहके कारणका वर्णन करते हुए इस अध्यायको समाप्त किया।

# चतुर्दशोऽध्यायः

## ब्रह्माजीके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति

**श्रीब्रह्मोवाच—**

**नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय,**
**गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।**
**वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु-**
**लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय॥ १ ॥**

**अन्वयः—**श्रीब्रह्मोवाच (श्रीब्रह्माने कहा—) ईड्य (हे पुण्य, स्तवनीय) अभ्रवपुषे (नव घनश्याम विग्रह) तडिदम्बराय (विद्युतकी भाँति पीतवसनधारी) गुञ्जावतंस-परिपिच्छलसम्मुखाय (आपके मुखमण्डलपर गुञ्जा-विरचित कर्णभूषण और मस्तकपर मोर पङ्ख शोभायमान हो रहा है) वन्यस्रजे (गलेमें वनमाला) कवल-वेत्र-विषाण-वेणु-लक्ष्मश्रिये (हाथमें दही-चावलका ग्रास, वेत्र, विषाण, वेणु परम शोभा दे रहे हैं) मृदुपदे (आपके चरणयुगल अति कोमल हैं) पशुपाङ्गजाय (श्रीनन्द महाराजके पुत्र) ते (तुम्हारा) [मैं स्वाभाविक रूपसे नित्य ही] नौमि (स्तव कर रहा हूँ)॥ १ ॥

**अनुवाद—**श्रीब्रह्माने स्तुति करते हुए कहा—हे जगत्-पूज्य! आपका श्रीविग्रह वर्षाकालीन नवीन मेघके समान घनश्याम है। इसपर आपने निश्चल विद्युतके समान झिलमिलाता पीताम्बर धारण कर रखा है। आपका श्रीमुखमण्डल गुञ्जा-विरचित कर्णभूषणों तथा मोर पङ्खके मुकुटसे देदीप्यमान हो रहा है। आपके गलेमें वृन्दावनके रङ्ग-बिरङ्गे पत्र-पुष्पादिसे रचित वनमाला झूल रही है, हाथोंमें दधिमिश्रित भातका ग्रास है, बगलमें बेंत, सिंगा (विषाण) और

कमरकी फेंटमें वेणु सुशोभित हो रहा है। आपके श्रीचरणयुगल कमलके समान अत्यन्त कोमल हैं। आप गोपराज नन्दके नित्य पुत्र हैं। मैं आपका स्तव कर रहा हूँ॥ १॥

## सारार्थदर्शिनी टीका

भक्तिज्ञानमहैश्वयर्यमाधुर्याब्धौ पतान्विधिः।
अस्तौत् प्रीतिविधौ प्रश्नोत्तरं चोक्तं चतुर्दशे॥

मम रत्नवणिग्भावं रत्नान्यपरिचिन्वतः।
हसन्तु सन्तो जिह्रेमि न स्वस्वान्तविनोदकृत॥

श्रीमद्गुरुपदाम्भोजध्यानमात्रैकसाहसम ।
विधिस्तवाम्बुधेः पारं यियासति मनो मम॥

निखिलसच्चिदानन्दस्वरूपमूलभूतं श्रीगोपेन्द्रनन्दनं साक्षादनुभूय तत्रैवोद्भूत-भक्तिनिष्ठस्तमेव विधिर्वर्णयति—नौमीति। हे ईड्य! अधुनैव दृष्टब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त सर्वस्तुतः वासुदेव-सहस्रांशित्वेन परमस्तव्य, ते तुभ्यं नौमि स्तुत्या त्वामभिप्रैमि। पत्ये शेते इति वदेतां स्तुतिं तुभ्यं ददामीत्यर्थः। यद्वा, त्वामेव प्राप्तुं प्रसादयितुं वा त्वां नौमि अभ्रतुल्यवपुषे तडिद्वदम्बरायेति भूतलसन्तापहारित्वं भक्तचातकजीवत्वं च, गुञ्जा चूडावर्त्तिनी अवतंसः पौष्पः चूडावर्त्ती श्रोत्रवर्ती च। परिपिच्छमुत्कृष्टबर्हं चूडाग्रवर्तितैर्लसन्मुखं यस्येत्यसाधारणलक्षणवत्त्वम्। वैकुण्ठीयाऽनर्घ्यरत्नालङ्कारेभ्योऽपि वृन्दावनीयगुञ्जादीनामुत्कर्षश्च। वन्या वृन्दावनीया एव पत्रपुष्पमययः स्रजो यस्येति निश्रेयसवनस्थपारिजातादीनां निकर्षः। कवलादिभिर्लक्ष्मभिरेव श्रीः शोभा यस्येति गोपबालोचिताचरणस्यैव तदीयसर्वाचरणेभ्यः श्रैष्ठ्यं। मृदु अतिसुकमारौ पादौ यस्येति ताभ्यां वनभ्रमणदर्शिनां कारुण्यप्रेममूर्च्छोत्पादकत्वं, पशुपाङ्गजायेति श्रीवसुदेवादिभ्योऽपि श्रीमन्नन्दस्य सौभाग्याधिक्यं व्यञ्जितम्॥ १॥

**भावानुवाद**—इस चौदहवें अध्यायमें भक्ति, ज्ञान, महान् ऐश्वर्य और माधुर्यरूपी सिन्धुमें डूबकर ब्रह्माजी श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिए स्तुति करने लगे, एवं इसमें प्रश्न और उत्तर वर्णित हुए हैं।

यद्यपि मुझे रत्नोंकी पहचान नहीं है, फिर भी मुझे रत्नोंका व्यापार करनेकी लालसा है। इसके लिए सज्जनगण मेरा परिहास भी करें, तो उससे मैं लज्जित नहीं हूँ, क्योंकि यह मेरी अपनी आत्मतुष्टिके लिए ही है।

श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंका ध्यानमात्र करनेसे मेरा मन ब्रह्मस्तवरूपी अथाह समुद्रको पार करनेकी इच्छा कर रहा है।

निखिल सच्चिदानन्द स्वरूपोंके मूल अंशी श्रीनन्दनन्दनकी महिमाका साक्षात् अनुभवकर उनके चरणोंमें उदित भक्तिनिष्ठासे ब्रह्मा उन्हींके स्वरूपका वर्णन कर रहे हैं—हे ईड्य! आप सबके पूज्य हैं। ब्रह्मासे लेकर तृण तक निखिल चराचर जीवोंसे आरम्भकर हजारों वासुदेव स्वरूपों तक सभीके मूल अंशी—आप ही एकमात्र स्तुतिके पात्र हैं। अतएव मैं आपको प्रणाम करता हूँ, अर्थात् स्तुतिके द्वारा आपकी कृपाकी अभिलाषा करता हूँ। अथवा आपको प्राप्त करने या सुप्रसन्न करनेके लिए आपको प्रणाम कर रहा हूँ। आपकी अङ्ग-कान्ति नवीन बादलोंके समान घनश्याम है। *'अभ्रवपुषे तडिदम्बराय'*—उसपर पीतवर्णके विद्युतके समान आपके वस्त्रोंको देखकर ऐसा लगता है कि प्रखर सूर्यकी किरणोंसे सन्तप्त व्यक्ति जिस प्रकार बादलोंके दर्शन तथा बादलोंके वर्षणसे अपना सन्ताप दूर करता है, अथवा प्याससे छटपटाता हुआ चातक पक्षी जैसे जलधरको देखकर या वर्षासे जीवन लाभ करता है, उसी प्रकारसे ही हे श्रीकृष्ण! आप संसार-दावानलसे सन्तप्त जीवोंका सन्ताप हरण तथा भक्त-चातकको जीवन दान करते हैं। आपके मस्तकपर मोरपङ्खके मुकुटमें गुञ्जाकी लड़ियाँ सुशोभित हैं। कानोंमें कर्णभूषण हैं तथा उनमें भी पुष्प और गुञ्जा पिरोये हुए हैं। *'परिपिच्छ'*—कहनेसे उत्कृष्ट चूड़ाके अग्रभागमें मयूरपङ्ख रहनेके कारण आपका मुखमण्डल उद्भासित हो रहा है। यही आपका असाधारण परिचय है। इससे वैकुण्ठके अमूल्य रत्नों और अलङ्कारोंसे भी वृन्दावनके गुञ्जा, फूल, पत्ते, मोरपङ्ख आदिके उत्कर्षका वर्णन किया गया है। अर्थात् गुञ्जाके बनाये हुए कर्णभूषण तथा मुकुटके अग्रभागपर संलग्न मोरपङ्खसे आपके मुखमण्डलकी शोभा बढ़ रही है। गलेमें वृन्दावनमें उत्पन्न अनेक रङ्गोंके पत्र-पुष्पादिकी माला है। इससे स्वर्गके नन्दन-काननके पारिजात आदि पुष्पोंका अपकर्ष दिखाया गया है। जिनके हाथमें दही-भात मिश्रित अन्नका ग्रास शोभा पा रहा है—इससे आपका गोपबालक जैसा आचरण अन्य सभी आचरणोंसे श्रेष्ठ कहा गया है। हे श्रीकृष्ण! आप अपने अति कोमल, स्निग्ध चरणकमलोंके द्वारा वनविहार करते हैं जिससे आपकी वनभ्रमण लीलाके दर्शनकारियोंमें

कारुण्य और प्रेमसे मूर्च्छा उत्पन्न होती है। *'पशुपाङ्गजाय'* अर्थात् आप गोपराज नन्दके पुत्र हैं, इससे श्रीवसुदेव आदिसे भी श्रीनन्द बाबाका अधिक सौभाग्य व्यक्त हुआ है॥ १॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति—**नन्दनन्दनके महाऐश्वर्य-माधुर्य-सिन्धुमें अवगाहन करनेवाले ब्रह्मा श्रीकृष्णका चरणाश्रय करना ही जीवनका एकमात्र उद्देश्य एवं परम-पुरुषार्थ निश्चयकर श्रीकृष्णका स्तव करनेमें प्रवृत्त हुए। "मुझसे महा-अपराध हुआ है", इस भयसे काँपते हुए भूमिपर घुटने टेककर गद्गद कण्ठसे कह रहे हैं—*'ईड्य!'* हे नन्दनन्दन! आप ही सर्व जगत्के एकमात्र पूज्य हैं। आप सर्वात्मक, सर्वाश्रय और सर्व अवतारोंके मूल अवतारी मूल-स्वरूप हैं। मैं आपके चरणकमलोंकी प्राप्तिकी आशासे आपकी प्रेरणासे ही आपकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हो रहा हूँ। योगी, ज्ञानी, कर्मी और सकाम भक्त विविध प्रकारके अभीष्ट प्राप्तिकी लालसासे आपकी स्तव-पूजा करते हैं। किन्तु मैं केवल आपके अभय चरणोंमें आश्रय पानेकी लालसासे ही आपका स्तव कर रहा हूँ।

आप मत्स्य, कूर्म आदि विविध मूर्त्तियोंमें भूभार हरण आदि लीलाएँ करते हैं, परन्तु ब्रजलीलामें जितना अपरिसीम माधुर्य, भक्तवात्सल्य और अयाचित करुणा प्रकाशित हुई है, ऐसा दूसरी किसी भी लीलामें नहीं हुआ है। आपकी नवनीत चोरी, गोष्ठक्रीड़ा, दामबन्धन, पूतना-मोक्ष आदि असाधारण लीलाएँ इसका उज्ज्वल उदाहरण हैं। विशेषकर इस लीलामें आपने मेरे प्रति जितनी कृपा की है और आपका जो महामाधुर्य मैंने अनुभव किया है, मैं उसे कभी भी भूल नहीं सकता।

इस प्रकार ब्रह्माजीके हृदयमें नवनीरद-कान्ति नन्दनन्दनकी अयाचित करुणावर्षणकी लीला स्फूर्त्ति होनेसे वे अति आग्रहके साथ लालसायुक्त हृदयसे एवं दीन-हीन वचनोंमें गद्गद कण्ठसे प्रार्थना करने लगे। *'अभ्रवपुषे ते नौमि'*—हे भगवन्! मेरी दूसरी कोई लालसा नहीं है, मेरी यही एकमात्र प्रार्थना है कि मैं आपके नवजलधर श्यामसुन्दर श्रीविग्रहका चरणाश्रय प्राप्तकर कृतार्थ हो जाऊँ।

जब ब्रह्माजीके हृदयमें लीलामृत और करुणामृत वर्षणशील नवजलधर कृपामय नन्दनन्दनके स्वरूपकी स्फूर्त्ति होने लगी, तब उनकी अयाचित और पक्षपातरहित करुणाकी बात स्मरणकर ब्रह्माजी प्रेमानन्दमें विभोर हो गये एवं तीव्र ध्यानमें उनके स्वरूपका चिन्तन करने लगे। उस समय ब्रह्माजीके हृदयमें यह स्फूर्त्ति होने लगी मानो श्रीकृष्णके नवजलधरके समान श्यामवर्ण वपुपर पीताम्बर विद्युतके समान विराजित है, परन्तु इसमें विशेषता यह है कि प्राकृत जलधरमें प्रकाशित विद्युत चञ्चल होती है, किन्तु श्रीकृष्ण नवजलधरमें स्थित विद्युत चञ्चल नहीं है, वह निश्चल है।

श्रीकृष्णके कटिदेशस्थित पीतवसनके नवीन मेघमें विद्युतके रूपमें स्फूर्त्ति होनेसे ब्रह्मा मन-ही-मन विचार करने लगे कि जीवका मन स्वाभाविक रूपसे विषयोंमें चञ्चल रहता है। इस चञ्चल मनको स्थिरकर गोविन्द-चरणोंमें स्थापित करना अति कठिन कार्य है। इसलिए उन्होंने विद्युतकी भाँति पीताम्बरको धारणकर जगत्‌को यह दिखाया कि मुझे प्राप्त होनेसे जीवकी कोई चञ्चलता नहीं रहती है।

*'गुञ्जावतंस परिपिच्छलसन्मुखाय वन्यस्रजे ते नौमि।'* हे भगवन्! आप अनन्त विग्रहोंमें अनन्त लीलाएँ करते हुए अनन्त ब्रह्माण्डके जीवोंको कृतार्थ करते हैं। परन्तु आपकी इस नन्दनन्दनकी लीलामें जो विशेषता है, वह आपके अनन्त विग्रहों और अनन्त लीलाओंमें अनुसन्धान करनेपर भी कहीं नहीं मिलेगी। इस लीलामें आप गोलोकका प्रेमसम्पद भी भूतलमें वितरण कर रहे हैं। अघ, वक, पूतना आदि हिंसा-कलुषित हृदयवाले असुर तक आपकी इस लीलामें कृतार्थ हुए हैं। पशु, पक्षी, वृक्ष, लता तक इस लीलामें आपके निकटस्थ होनेका सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं। स्वच्छन्द वनजात गुञ्जाफल और पत्र, पुष्प आदि इस लीलामें आभरण रूपमें आपके श्रीअङ्गमें शोभायमान हैं। अधिक क्या कहें—अति तुच्छ मोरपङ्खको आपने इस लीलामें मुकुटके आभरणके रूपमें उत्तमाङ्ग मस्तकपर स्थान दिया है। अतएव अनादि मायामोहवशतः देह-गृह आदिमें आसक्तियुक्त तुच्छ जीवोंके लिए उच्च-नीच भेदज्ञान-विहीन अयाचित करुणावर्षण करनेवाले नन्दनन्दनके चरणाश्रयके बिना दूसरी कोई गति

नहीं है। *'पशुपाङ्गजाय ते नौमि'*—हे नन्द-यशोदाके वात्सल्य-प्रेमाधीन बालगोपाल! यद्यपि आप अनन्त मूर्त्तियोंमें अनन्त लीलाएँ करते हुए जगत्को कृतार्थ करते हैं, फिर भी मैं आपकी इस लीलामें असाधारण कृपावर्षण देखकर, मैया यशोदा, दूसरी मातृ-स्थानीय गोपियों और नन्द महाराज आदि गोपोंके वात्सल्यरससे लालित आपके कोमल चरणोंमें शरणागति प्राप्त करनेके लिए अत्यन्त लालसायुक्त हो रहा हूँ। अतः आप इस लीलामें अपना चरणाश्रय दान करके मुझे चिरकृतार्थ करें॥ १॥

**अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य,**
**स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।**
**नेशे महि त्ववसितुं मनसान्तरेण,**
**साक्षात् तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः॥ २॥**

**अन्वयः**—देव (हे देव!) मदनुग्रहस्य (मेरे प्रति अनुग्रह करनेके लिए) स्वेच्छामयस्य (अपने भक्तोंकी जैसी इच्छा हो वैसे प्रकट होनेवाले) न तु भूतमयस्य (अचिन्त्य शुद्धसत्त्वमय) अस्य अपि (इस प्रकट स्वरूप) तव वपुषः (आपके अवतारकी) महि (महिमा) तु अवसितुं (निर्द्धारण करनेमें) कः अपि (मैं ब्रह्मा भी) न ईशे (समर्थ नहीं हूँ) [तब] आत्मसुखानुभूतेः साक्षात् (साक्षात् आत्मसुखानुभूति-स्वरूप) [आपका] एव (आत्मसुखानुभव-स्वरूप आपकी महिमाको) अन्तरेण (इन्द्रियोंका निरोध करके भी जानना सम्भव नहीं होता, तब) मनसा किम् उत (मनके द्वारा जाननेमें कोई कैसे समर्थ हो सकता है) [अथवा हे देव!] भूतमयस्य (विराट् स्वरूपकी) महिः (महिमा) तु अवसितुं (निर्द्धारण करनेमें) आन्तरेण मनसाः कः अपि न ईशे (चित्तवृत्तिका निरोध करके भी कोई समर्थ नहीं होता है) मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य अस्य आत्मसुखानुभूतेः (अतएव मेरे प्रति कृपा करके स्वेच्छासे प्रकटित आत्मसुखानुभव-स्वरूप आपकी महिमाको कोई समझ नहीं सकता—इसमें क्या सन्देह है)॥ २॥

**अनुवाद**—हे स्वयं-प्रकाश परमात्मन्! मेरे प्रति अनुग्रह करनेके लिए आपने अपने भक्तोंकी वाञ्छा पूर्ति करनेवाले इस श्रीविग्रहको

स्वेच्छासे प्रकट किया है। आपकी चिन्मयी इच्छाके मूर्त्तिमान-स्वरूप इस शुद्ध-सत्त्वात्मक विग्रहकी महिमाको साक्षात् जाननेमें मैं ही समर्थ नहीं हूँ, तो अन्य किस प्रकार समर्थ हो सकते हैं। अतः चित्तवृत्तिका निरोध करके एवं समाधि लगाकर भी स्वयं-रूप, आत्मसुखानुभव-स्वरूप, मूल-अवतारी आपकी महिमाको कोई भी नहीं जान सकता—इसमे सन्देह ही क्या है?॥ २॥

**सारार्थदर्शिनी**—ननु, भो ब्रह्मन् त्वं जगदैश्वर्याधिपतिरहं तु वन्यगोपालपुत्रस्त्वं पुरातनोऽहं तु बालस्त्वं वेदार्थतात्पर्यविज्ञत्वात् परमविद्वान् सदाचारपरायणः अहं तु वत्सचारकत्वादध्ययन शून्यः स्मार्त्ताचारगन्धमप्यजानंस्तिष्ठन् भ्राम्यन्नप्योदनकवलं भुजानस्त्वं मायी परमसुखी साक्षात्परमेश्वर एव अहं तु त्वन्माया मोहितो मनोदुःखेन वनं पर्यटंस्तव स्तवं कर्त्तुं नार्हामीति वक्रोक्तिमाशङ्क्य सत्यमज्ञानान्महापराधम-करवमिति व्यञ्जयन्नाह,—अस्येति। हे देव! अस्यापि बाल्यचेष्टामयस्य प्रकटितमौग्ध्यस्य तव वपुषो महि महिमानमवसितुं ज्ञातुं नेशे न शक्नोमि किमुत कैशोरलीलस्य प्रकटितमहाचातुर्यस्य वपुषः वपुषोऽपि महि ज्ञातुं नेशे किमुत तव आत्मानो मनसो या सुखानुभूतिस्तस्याः निरतिशयस्वानन्दमयोऽपि वत्सचारणादिना यादृशं सुखमनुभवसि तस्येत्यर्थः। तथा त्वत्सहचराणामपि मनः सुखानुभूतेर्महि ज्ञातुं नेशे किमुत साक्षात्तत्तवैव अन्तरेण प्रत्याहृत्यान्तर्वशीकृतेनापि मनसा किमुतास्थिरेण। तथा को ब्रह्माप्यहं नेशे किमुतान्ये इति कैमुत्यपञ्चकमज्ञानातिशयप्रतिपादकं ममापि ज्ञानसम्भावनायां न शास्त्राभ्यासतपोयोगादिकं हेतुः। किं तु कृपाकटाक्षकण एवेति ब्रुवन् वपुर्विशिनष्टि—मय्यपराधिन्यप्यनुग्रहो महैश्वर्यदर्शनोत्थमोहोत्तरकालदर्शनदानादनुमितो यस्य तस्य अनुग्रहे हेतुः स्वेच्छामयस्य स्वीयानां प्रेमभक्तिमतां यथा यथा या या इच्छा दिदृक्षा सिसेविषादिस्तन्मयस्य भक्तवत्सलत्वात् तत्तत्सम्पादकस्येत्यर्थः। अतो मय्यपि भक्त्याभासवत्त्वादपराधित्वेऽप्यनुग्रहलेशप्राप्त्यधिकार इति भावः। नन्विच्छानुग्रहो नरवपुर्धर्मावित्यत आह-न तु भुतमयस्य भूतमयं हि वपुर्जडं न तु चिन्मयम्। अतएव ब्रह्मसंहितायामुक्तम् *"अङ्गानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति"* इति एतच्च सर्वेन्द्रियवत्त्वं तदेतस्य गोविन्दस्याङ्गानां यथा कालमन्यान् अवतारान् प्रत्येव न तु साक्षात्तं प्रति। स तु स्वचक्षुर्भ्यामेव पश्यति स्वश्रोत्राभ्यामेव शृणोति स्वमनसैव विचारयति न तु स्वपाणिभ्यामपि पश्यतीत्यादिविवेचनीयम् अथवा अस्यापि देववपुषो देवाकारस्य अधुनैव त्वया दर्शितस्य वासुदेवमूर्त्तेर्मदनुग्रहस्य चतुःश्लोकी-भागवतोपदेष्टृत्वेन मय्यनुग्रहवतः स्वीयस्यांशिनस्तवेच्छा सम्पादकस्य त्वदिच्छा-सम्पादकत्वेऽपि न वयमिव भौतिका इत्याह—न तु भूतमयस्य महि महिमानं को ब्रह्माऽपि स्वव्यञ्जकान् वेदान् वेदफलं श्रीभागवतंञ्चाध्यापितोऽप्यहं ज्ञातुं नेशे किमुत साक्षात्तत्तवैव नरवपुषः सर्वाशिनः स्वयं भगवतः। कथम्भूतस्य आत्मनः?

स्वस्य सुखेषुदधिचौर्यगोपिकास्तन्यपानवत्सचारणबाल्यचापल्याद्युत्थेषु स्वावतारान्तरासाधारणेषु अनुभूतिर्यस्य तस्य॥ २॥

**भावानुवाद**—यह सुनकर यदि श्रीकृष्ण कहें—हे ब्रह्मन्! जगत्में जितने प्रकारका भी ऐश्वर्य है, तुम उस सबके अधिपति हो और मैं गँवार गोपका पुत्र हूँ। तुम वृद्ध हो और मैं बालक हूँ। तुम वेदोंके तात्पर्यको जाननेवाले परम विद्वान और सदाचारसम्पन्न ब्राह्मण हो तथा मैं बछड़ोंको चरानेवाला मूर्ख हूँ, स्मार्त आचरणका गन्धमात्र भी न जाननेके कारण खड़े-खड़े घूमते हुए दही-भात खाता रहता हूँ। तुम मायाके अधीश्वर, परम सुखी, साक्षात् परमेश्वर हो और मैं तुम्हारी मायासे मोहित होकर दुःखी होकर वन-वन भटक रहा हूँ। तुम्हारा स्तव करनेकी योग्यता भी मुझमें नहीं है।

इस प्रकारसे श्रीकृष्णकी वक्रोक्तिकी आशङ्का करते हुए ब्रह्मा *'अस्यादि'* इत्यादि द्वारा कर रहे हैं—हे देव! यह सत्य है, मैंने अज्ञानवशतः महापराध किया है। आपके इस बालचेष्टामय मुग्ध भावयुक्त श्रीविग्रहकी महिमाको ही जब मैं जाननेमें समर्थ नहीं हूँ, तब भावी प्रकटनशील कैशोर-लीलामें महाचातुरीमय श्रीविग्रहकी महिमाको जाननेमें समर्थ नहीं होऊँगा, इसमें कहनेकी बात ही क्या है? *'किमुत आत्मसुखानुभूतेः'*—आप प्रचुर परिमाणमें सदानन्दमय होकर भी वत्सचारणादिके द्वारा मनमें जो सुख अनुभव करते हैं, उसका एवं आपके सहचरोंकी मानसिक सुखानुभूतिकी महिमाको कौन जान सकता है? बाहरी विषयोंसे हटाकर वशीभूत किये हुए अन्तर्मुखी मनके द्वारा ही जब मैं आपको जान नहीं सका, तब अस्थिर चित्तसे आपको कैसे जाना जा सकता है? *'कोऽपि'*—'क' का अर्थ ब्रह्मा है, अर्थात् जब मैं ब्रह्मा भी आपकी महिमाको जाननेमें समर्थ नहीं हो सका, तब दूसरा कैसे जान लेगा? यहाँ कैमुत्य-पञ्चकके द्वारा अज्ञानकी अधिकता प्रतिपादित की गयी है। मुझे जो ज्ञान है, वह शास्त्रके अभ्यास, तपस्या, योग आदिके कारण नहीं हैं, अपितु केवलमात्र आपकी अहैतुकी कृपा-कटाक्षके लेशमात्रके कारण ही है। इसे कहनेके लिए भगवान्की वपुका विशलेषण कर रहे हैं—*'मदनुग्रहस्य वपुषः'*—अपराधी होनेपर भी मेरे प्रति आपका परम अनुग्रह है, इसका

अनुमान महा-ऐश्वर्यके दर्शनसे उदित मोहके उपरान्त ही जो आपने मुझे दर्शन दिया उससे होता है। एकमात्र आपकी स्वतन्त्र इच्छा ही इस अनुग्रहका कारण है, दूसरा कोई कारण नहीं है। हे भक्तवत्सल प्रभो! आपके प्रेमी भक्तजनोंकी जैसी-जैसी अभिलाषा होती है, आप उन सबकी अभिलाषाओंको पूर्ण करते हैं।

अतः मुझमें भी भक्तका अभास होनेके कारण अपराधी होनेपर भी मैं आपकी कृपालेश प्राप्तिका अधिकारी हूँ। यदि कहो कि इच्छा और अनुग्रह नरवपुका धर्म है। इसके उत्तरमें कहते हैं—पञ्चभौतिक शरीर जड़ होता है, परन्तु आपका श्रीविग्रह सच्चिदानन्दमय है। अतएव ब्रह्मसंहितामें भी कहा है—*"अङ्गानि यस्य सकलेन्द्रिय वृत्तिमन्ति"* (३२वाँ श्लोक) अर्थात् भगवान् श्रीगोविन्दके प्रत्येक अङ्गमें ही समस्त इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ विद्यमान हैं, अर्थात् उनका हाथ भी दर्शन करनेमें और नेत्र भी पालन करनेमें भी समर्थ है। परन्तु लीला-परिकरोंमें उन-उन अङ्गोंका यथायथ रूपमें ही व्यवहार होता है। जैसे वे नेत्रोंके द्वारा दर्शन करते हैं, कानके द्वारा सुनते हैं, अपने मनके द्वारा विचार करते हैं, किन्तु वे हाथके द्वारा देखते नहीं हैं—ऐसा समझना होगा।

अथवा *'अस्यापि देववपुषः'* यह देवाकार अर्थात् अभी आपके द्वारा प्रदर्शित वासुदेव मूर्त्ति—चतुःश्लोकी भागवतके उपदेष्टा रूपमें मेरे प्रति अनुग्रहकारी और अंशस्वरूप आपकी इच्छासे सम्पादित होनेपर भी वह हमलोगोंकी भाँति भौतिक नहीं है, यही कह रहे हैं—*'न तु भूतमयस्य'* अर्थात् उस चिन्मय स्वरूपकी महिमाको जिससे समस्त वेद प्रकाशित हुए और भागवत अध्यापित हुआ, मैं ब्रह्मा विशुद्ध मनसे भी जान नहीं पाया, *'किमुत साक्षात् तवैव'*—तो फिर मक्खन चोरी, गोपिकाओंका स्तनपान, गोचारण और बाल-चापल्य आदि असाधारण सुखानुभूतिसम्पन्न नरवपु एवं सबके अंशी स्वयं-भगवान् आपकी महिमाको मैं कैसे जान सकता हूँ?॥ २॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—ब्रह्माजीने नन्दनन्दनकी स्तुति करते हुए *"नौमीड्य ते"* आदि श्लोकोंमें श्रीकृष्णके असाधारण रूप, गुण, लीला आदिका वर्णनकर उनके चरणोंमें शरणागतिकी प्रार्थना की है। किन्तु किसी विशेष उत्कर्षका वर्णन न कर केवल स्वरूपका वर्णन करनेसे

ही स्तव करना नहीं होता है। अतएव प्रश्न हो सकता है कि जगत्-स्रष्टा चतुर्वेद-वक्ता ब्रह्माने केवल 'नौमि' हे भगवान्! मैं आपका स्तव करनेमें प्रवृत्त हो रहा हूँ—ऐसा कहकर केवल उनके स्वरूपका वर्णन क्यों किया? इसके लिए ब्रह्माजीने *"अस्यापि देववपुषः"* श्लोकमें श्रीभगवान्के विग्रहकी दुर्ज्ञेयता दिखाकर उस आशङ्काको दूर किया है।

ब्रह्माने कहा—हे भगवन्! आप अनन्त लीलाओंके समुद्र हैं। आप कितनी प्रकारकी लीलाएँ करते हैं, यह जानना किसीके लिए भी सम्भव नहीं है। आप कृपापूर्वक असुरवध, भूभार-हरण और धर्म-संस्थापन आदि कार्योंके द्वारा जगत्की रक्षा करते हैं तथा भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिए मत्स्य, कूर्म आदि अनन्त रूपोंमें प्रपञ्चमें अवतीर्ण होते हैं, जिससे जगत्के जीव आपकी उन लीलाओंके विषयमें कुछ ज्ञान लाभ कर सकते हैं। किन्तु यथार्थ रूपमें आपके साक्षात् दर्शनका तथा आपके लीला-रस आस्वादनका सौभाग्य प्राप्त करनेपर भी कोई भी आपके स्वरूप, ऐश्वर्य और महिमा आदिके महा-सिन्धुका एक बिन्दु भी ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं है। आपके मत्स्य, कूर्म आदि नित्यसिद्ध श्रीविग्रह जब जगत्में प्रकट होते हैं, तब असुरगण भी अपनी आसुरी दृष्टिसे आपका दर्शन करते हैं और आपके साथ युद्ध करते हैं। इससे प्रतीत होता है कि आपका श्रीविग्रह जीवकी देहकी भाँति पाञ्चभौतिक है, नहीं तो जीवोंके पाञ्चभौतिक देह-इन्द्रिय आदिके साथ आपका सम्बन्ध कैसे होता? किन्तु यथार्थ रूपमें आपका श्रीविग्रह पाञ्चभौतिक नहीं है, वह तो शुद्ध-सत्त्वात्मक है। (*"न भूतसङ्घसंस्थानम् देहोऽयं परमात्मनैः।"* पद्मपुराण) आप अपने भक्तोंको कृतार्थ करनेके लिए अपनी अप्राकृत लीला तथा लीलाविग्रहको जगत्में प्रकट करते हैं। अतएव आपका लीलाविग्रह जगत्में प्रकट होनेपर भी उसे देखकर कोई भी उसका यथार्थ तत्त्व निरूपण करनेमें समर्थ नहीं होता। दूसरोंकी बात तो दूर रहे, मेरे द्वारा सृष्ट जगत्में जब आप मत्स्य, कूर्म आदि रूपोंमें अवतीर्ण होते हैं, तब मैं भी आपके श्रीविग्रह और लीलाका ध्यान करनेमें समर्थ नहीं हो पाता हूँ।

हे भगवन्! इस बार आपने स्वयं-रूपमें जगत्में अवतीर्ण होकर जो परम अद्भुत लीलाएँ की हैं, उनका तत्त्व समझना अति कठिन है। आप ब्रह्माण्डके पालक होकर भी गोपबालकोंके साथ बालक बनकर हास्य, नृत्य, कन्दुकक्रीड़ा आदि बाललीला-रसका आस्वादन कर रहे हैं। आपके चरणकमलोंकी सेवा करनेवाले साधारण जीव भी सर्वज्ञताशक्ति प्राप्त कर लेते हैं। परन्तु आपकी कैसी अद्भुत लीला है कि जब मैंने दुर्बुद्धिके कारण आपके बछड़ों और बालकोंको दूसरे स्थानपर छिपा दिया, तब आप प्राकृत अज्ञ बालककी भाँति वन-वनमें उन्हें ढूँढ़ते हुए घूम रहे थे। समस्त यज्ञोंके भोक्ता होकर भी आपने परमानन्दपूर्वक गोपबालकोंका उच्छिष्ट भोजन किया। आपके इङ्गित मात्रसे ही अनन्त करोड़ ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्डस्थित चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि परिचालित होते हैं। फिर भी आप हाथमें लकुटी लेकर गायोंके पीछे-पीछे दौड़ रहे हैं। अतः आप कैसी परम अद्भुत लीला कर रहे हैं, उसका मर्म किसीकी समझमें नहीं आ सकता। आप कृपा करके जिसके निकट जैसा स्वरूप और लीला प्रकट करते हैं, वह केवल उसका ही कीर्त्तन आदि कर सकता है। इसके अतिरिक्त आपकी महिमाको समझकर उसके उत्कर्षके वर्णनकी शक्ति किसीमें भी नहीं है॥ २॥

**ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव**
**जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्त्ताम्।**
**स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-**
**र्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्॥ ३॥**

**अन्वयः**—ये (जो भक्तगण) ज्ञाने (ज्ञानमार्गका) प्रयासं (प्रयत्न) उदपास्य (छोड़कर) स्थाने स्थिताः (स्वस्थानमें ही स्थित होकर) सन्मुखरितां (साधुओं द्वारा कीर्त्तित) श्रुतिगतां (कथाओंका श्रवण करते हैं) [और] भवदीय वार्त्ताम् (आपके रूप-गुण-लीला आदिके विवरणको) तनुवाङ्मनोभिः (शरीर, मन, वाणीके द्वारा) नमन्तः एव (सत्कार करते हुए) जीवन्ति (आश्रयरूपमें ग्रहण करते हैं) तैः (उन लोगोंके द्वारा) त्रिलोक्यां (तीनों लोकोंमें) प्रायशः अजित जितः अपि असि

(दूसरोंके द्वारा अजित होनेपर भी आप भक्तोंके द्वारा जीत लिए जाते हैं, अर्थात् दूसरा कोई भी आपको जीत नहीं सकता, परन्तु भक्तोंके द्वारा आप जीत लिये जाते हैं [तब फिर व्यर्थ ज्ञानके परिश्रमसे क्या लाभ है?]॥ ३॥

**अनुवाद—**इन्द्रियोंसे उत्पन्न ज्ञानके द्वारा भगवत्-स्वरूप, भगवत्-ऐश्वर्य और भगवत्-महिमाको जाननेका प्रयास सम्पूर्ण रूपसे परित्यागकर अपने-अपने आश्रममें अथवा साधुओंके समीप रहकर उनके मुखसे स्वतः उच्चारित एवं उनके सान्निध्यमात्रसे स्वतः ही कानोंमें प्रविष्ट होनेवाली आपकी नाम, गुण, रूप एवं लीलापरक कथाओंका जो तन, मन और वचनके द्वारा सत्कार करते-करते जीवन धारण करते हैं, उनके द्वारा कोई दूसरा कर्म नहीं किये जानेपर भी त्रिलोकमें अन्यान्य व्यक्तियोंके द्वारा अजित आप उनके द्वारा जीत लिये जाते हैं अर्थात् उनके प्रेमके वशीभूत हो जाते हैं॥ ३॥

**सारार्थदर्शिनी—**ननु, तर्हि *"तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति"* इति श्रुतेरज्ञानाल्लोकाः कथं संसारं तरेयुस्तत्राह—ज्ञान इति। उदपास्य ईषदप्यकृत्वा सन्मुखरितां सन्तो मौनशालिनोऽपि स्वमाधुर्येण मुखरिता मुखरीकृता यया ताम्। भवदीयानां वा वार्तां स्थाने सतां निवास एव स्थिताः न तु तीर्थान्यप्यटन्तः सन्तः श्रुतिगतां तत्सन्निधिमात्रेण स्वत एव श्रुतिगतां श्रवणप्राप्तां तनुवाङ्मनोभिरारम्भपरिसमाप्त्योर्नमन्तः। तत्र तन्वा पाणिभ्यां सह शीर्ष्णा भूमिस्पर्शेन। वाचा कृष्णकथायै *"तदास्वादकेभ्यः वैष्णवेभ्यश्च नमन्त"* इति वचनेन, मनसा श्रुतायाः कथायाः अवधारिकया बुद्ध्या प्रणमन्तो ये जीवन्ति केवलं यद्यपि नान्यत् कुर्वन्ति तदपि तैः प्रायशस्त्रि-लोक्यामन्यैरजितोऽपि त्वं जितोऽपि वशीकृतोऽपि भवसि। ज्ञानाल्लब्धमुक्तिभिस्तु न वशीकृतो भवस्यतः संसारतरणं कथाश्रोतृणां किं चित्रमिति भावः। अतस्त्वत्कथैक-देशज्ञानमेव तज्ज्ञानं तेन संसारमपि तरन्तीति श्रुत्यर्थो ज्ञेय इति भावः॥ ३॥

**भावानुवाद—**अब प्रश्न उठता है कि *'तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति'* अर्थात् परमेश्वरको जानकर ही जीव संसारसे मुक्त होता है—इस श्रुतिवाक्यके अनुसार बिना ज्ञानके संसारसे उद्धार कैसे होगा? इसके उत्तरमें यहाँपर वर्णन कर रहे हैं—*'ज्ञाने प्रयासमुदपास्य'*—अर्थात् ज्ञानके लिए लेशमात्र भी प्रयास न कर (अथवा आपके स्वरूप-ऐश्वर्यका विचार या ज्ञान और योगकी उपासनाका परिश्रम परित्यागकर)

*'सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम्'*—साधु-भक्तोंके मौनशाली होनेपर भी जिसने उन्हें अपने माधुर्यके द्वारा वाचाल बना दिया है, आपकी ऐसी मधुरकथा अथवा आपके नित्य परिकरोंकी कथाओंको *'स्थाने स्थिताः'*—तीर्थपर्यटन आदि न कर केवल साधुओंके निवास स्थानपर ही रहकर *'श्रुतिगताम्'*—उनके सान्निध्य मात्र द्वारा स्वतः ही कानोंमें प्रविष्ट होनेवाली कथाओंका तन-मन-वचनके द्वारा आरम्भसे परिसमाप्ति तक जो आदर करते हैं। अर्थात् तन कहनेसे जैसे—दोनों हाथोंके साथ मस्तकके द्वारा भूमिको स्पर्शपूर्वक (पञ्चाङ्ग या साष्टाङ्ग) प्रणाम, श्रीकृष्णकथा श्रवणके उद्देश्यसे उपस्थित आस्वादक वैष्णवोंको प्रणाम। इसी प्रकार वाणीसे तथा सुनी हुई कथाओंको निश्चयता बुद्धिसे मनके द्वारा भी जो सत्कार करते हैं और कथाओंके अनुसार जीवन धारण करते हैं, वे लोग अन्य कोई भी कर्म न करें, तथापि हे अजित! यद्यपि त्रिलोकीमें कोई भी आपपर विजय प्राप्त नहीं कर सकता, परन्तु ऐसे भक्त प्राय ही आपको जीत लेते हैं अर्थात् वशीभूत कर लेते हैं। परन्तु जो ज्ञानके द्वारा मुक्ति प्राप्त करते हैं, वे आपको वशीभूत नहीं कर सकते। आपकी कथाओंको श्रवण करनेवाले भक्त अनायास ही संसारसे पार हो जाते हैं, इसमें आश्चर्य क्या है? अतः आपकी कथाओंका एकदेश (आशिंक)-ज्ञान ही वह ज्ञान है, जिसके द्वारा लोग संसारसे मुक्त हो जाते हैं। इससे पूर्वोक्त श्रुतिका अर्थ भी यहाँ प्रकाशित हुआ है—यह भावार्थ है॥ ३॥

**श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो,**
**क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।**
**तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते,**
**नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥ ४॥**

**अन्वयः**—विभो (हे विभो!) [ज्ञानमार्गका आश्रय करनेवाले] श्रेयः सृतिं (आत्ममङ्गलकी पद्धति) ते भक्तिम् उदस्य (आपकी भक्तिका परित्यागकर) केवल-बोधलब्धये (भक्तिशून्य होकर केवल अपने ज्ञानमात्रका आश्रय करनेवाले) क्लिश्यन्ति (कष्टको स्वीकार करते हैं) तेषां (उनलोगोंको) स्थूल तूषावघातिनां यथा (चावलरहित

थोथी भूसी कूटनेवालेकी भाँति) क्लेशल एव शिष्यते (केवल कष्ट ही प्राप्त होता है) अन्यत् स (उससे कोई फल प्राप्त नहीं होता है)॥ ४॥

**अनुवाद**—हे प्रभो! आपकी भक्ति सब प्रकारके कल्याणका मूलस्रोत या उद्गम स्थान है। जो ज्ञानमार्गका आश्रय लेनेवाले व्यक्ति अपने मङ्गलप्राप्तिके मार्गस्वरूप आपकी भक्तिका परित्याग करके केवल भक्तिशून्य ज्ञानकी प्राप्तिके लिए कष्ट स्वीकार करते हैं, उन्हें चावलरहित थोथी भूसीको कूटनेवाले व्यक्तिके समान केवल श्रमरूप क्लेश ही प्राप्त होता है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं॥ ४॥

**सारार्थदर्शिनी**—श्रवणकीर्त्तनादीनामेकतरयाऽपि भक्त्या कृतार्थीभवन्ति। यदुक्तं नृसिंहपुराणे—*"पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तोयेष्वक्रीतलभ्येषु सदैव सत्सु॥ भक्त्या सुलभ्ये पुरुषे पुराणे। मुक्त्यै किमर्थं क्रियत प्रयत्नः"* इति। तदपि ये तां परिहाय ज्ञाने प्रयासवन्तस्तेषां दुःखमेव फलतीत्याह—श्रेयसामभ्युदयापवर्गलक्षणानां सृतिः सरणं यस्याः सरस इव निर्झराणां तां तव भक्ति उदस्येति श्रीस्वामिचरणानां व्याख्या। श्रेयांसि ज्ञानकर्मादिनानासाधनसाध्यानि फलानि ययैव स्युस्तां भक्तिं त्यक्त्वेत्यर्थः। तेषां असौ बोधः क्लेशलः क्लेशं लाति ददातीति सः शिष्यते पर्यवसितो भवति। तत्र दृष्टान्तः—स्थूलतुषावघातिनाम् अल्पप्रमाणं तण्डुलं परित्यज्य यतस्ततः परिश्रम्यानीय पर्वतप्रमाणं स्थूलतुषपुञ्जं सञ्चित्य तस्यान्तःकणहीनधान्याभासस्यावघातं कुर्वतां जनानां यथा स स्थुलतुषः क्लेशलः केवलं हस्तादिवेदनामात्रफलप्रदः॥ ४॥

**भावानुवाद**—श्रवण-कीर्त्तन आदि भक्तिके अङ्गोंमेंसे एकाङ्ग भक्ति साधनके द्वारा ही जीव कृतार्थ हो जाता है। जैसे—नृसिंहपुराणमें कहा है—*'पत्रेषु पुष्पेषु'* इत्यादि अर्थात् बिना मूल्यके ही सर्वदा उपलब्ध पत्र, पुष्प, फल, जल आदि समर्पण करनेसे ही यदि पुराणपुरुष प्रसन्न हो जाते हैं एवं पुराणपुरुष यदि एकमात्र भक्तिके द्वारा ही सुलभ हैं, तो फिर किसलिए लोग मुक्तिका प्रयास करते हैं? तथापि जो व्यक्ति सुलभ भक्तिका परित्यागकर केवल ज्ञान प्राप्तिके लिए कष्ट स्वीकार करते हैं, उन्हें दुःख ही दुःख प्राप्त होता है। इसे ही कह रहे हैं—*'श्रेयः सृतिं भक्तिमुदस्य'*—अर्थात् "जो समस्त मङ्गलोंके भी परम मङ्गलपथ-स्वरूप श्रवणादि भक्तिका अनादर करते हैं।" इस विषयमें श्रील श्रीधर स्वामिपाद वर्णन करते हैं—झरनेके

प्रबल स्रोतसे जैसे तालाब भर जाता है, उसी प्रकार भक्तिसे ही सभी मङ्गल और अपवर्ग आदि अर्थात् ज्ञान-कर्मादि नाना साधन और साध्योंके फलसमूह प्राप्त होते हैं, ऐसी सरल, सहज, सुगम भक्तिको परित्यागकर जो केवल निर्विशेष शुष्क ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेके लिए प्रयास करते हैं—उससे उन्हें केवल क्लेश-ही-क्लेश प्राप्त होते है। उदाहरण स्वरूप—*'स्थूलतुषावघातिनाम्'* अर्थात् अल्प परिमाण तण्डुलको परित्यागकर, यहाँ-वहाँ बड़े कष्टसे लायी गयी पर्वतके समान प्रचुर परिमाणमें चावलरहित थोथी भूसी कूटनेसे कभी चावल नहीं निकल सकते, बल्कि उससे केवल हाथोंमें पीड़ा ही होती है, इसके अतिरिक्त कोई फल प्राप्त नहीं होता॥४॥

**पुरेह भूमन् बहवोऽपि योगिन-**
**स्त्वदर्पितेहा निजकर्म्मलब्धया।**
**विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया**
**प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम्॥५॥**

**अन्वयः**—भूमन (हे भूमन्! हे अच्युत!) इह (इस लोकमें) पुरा (पूर्वकालमें) बहवः अपि योगिनः (योगमार्गसे ज्ञान प्राप्त करनेमें असमर्थ होनेपर ऐसे बहुत-से योगियोंने भी) त्वदर्पितेहाः (तुम्हारे प्रति अपनी समस्त लौकिकी चेष्टाओंको अर्पित किया) निज कर्मलब्धया (अपनी समस्त चेष्टाओंको आपमें समर्पण कर) [तथा] कथोपनीतया (आपकी कथा श्रवण कीर्त्तन आदि) भक्त्या एव विबुध्य (भक्तिके द्वारा आपको जानकर) अजः (सुखपूर्वक) तव परां गतिं (आपकी उत्तम गतिको) प्रपेदिरे (प्राप्त किया)॥५॥

**अनुवाद**—हे अच्युत! पूर्वकालमें भी इस लोकमें बहुत-से योगी पुरुष हुए हैं, किन्तु जब वे योगमार्गके द्वारा आपको प्राप्त करनेमें असमर्थ रहे, तब उन्होंने अपने-अपने लौकिक एवं वैदिक समस्त कर्म आपके चरणोंमें समर्पित कर दिये। उन समर्पित कर्मोंसे तथा आपकी लीलाकथाके श्रवण-कीर्त्तनरूप भक्तिके प्रभावसे उन्होंने आत्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करके अनायास ही आपके सान्निधय रूप परमपदको प्राप्त किया॥५॥

**सारार्थदर्शिनी**—एवं श्लोकद्वयेनान्वयव्यतिरेकाभ्यां भगवत्प्राप्तौ भक्तिमेव स्थिरीकृत्य तत्र सदाचारं प्रमाणयति—पुरेति। हे भूमन्! प्रभो! इह जगति योगिनो भक्तियोगवन्तः एवं त्वय्येवार्पिता ईहा चेष्टा यैस्त्वद्भक्त्यर्थमेव सर्वेन्द्रियव्यापारं कुर्वाणा इत्यर्थः। भक्तियोग श्रद्धावतां वर्णाश्रमकर्मानधिकारान्निजकर्मश्रवणकीर्त्तनाद्येव, तेन लब्धया विशेषतस्तु कथाया श्रुतकीर्तितस्मृतया उप आधिक्येन नीतया प्रापितया भक्त्या प्रेमलक्षणयैव विबुध्य विज्ञाय तद्रूपगुणलीलादिकमनुभूयेत्यर्थः। परां प्रेमवत्पार्षदत्वलक्षणां गतिं प्राप्ताः। यद्वा, यथा केवलबोधो विफलस्तथा केवलयोगश्चेत्यत्र सदाचारं प्रमाणयति-पुरेति। बहुकालं योगिनो भूत्वाऽपि योगं निष्फलं ज्ञात्वा त्वयि अर्पिता ईहा चेष्टा च निजकर्म च ताभ्यां लब्धया भक्त्या ज्ञानमिश्रयैव विबुद्ध्य त्वां ज्ञात्वा॥ ५॥

**भावानुवाद**—इस प्रकार दो श्लोकोंमें अन्वय और व्यतिरेक रूपसे भक्तिको ही भगवत्-प्राप्तिका एकमात्र उपाय निर्द्धारित करते हुए सदाचारका प्रमाण दे रहे हैं—हे भगवन्! पुराकालमें इस जगत्में बहुत-से भक्तियोगके साधकभक्तोंने आपकी भक्ति प्राप्त करनेके लिए अपनी समस्त इन्द्रियोंकी चेष्टाओंको आपको अर्पित किया है तथा *'निजकर्मलब्धया'*—भक्तियोगमें श्रद्धायुक्त व्यक्तियोंका वर्णाश्रम कर्ममें अनधिकार होनेके कारण, यहाँ *'निजकर्म'* कहनेसे श्रवण-कीर्त्तनसे ही प्राप्त भक्ति द्वारा, विशेषतः निरन्तर आपकी कथाओंके श्रवण, कीर्त्तन, स्मरणादि वशतः प्रत्यक्ष रूपसे प्राप्त प्रेमलक्षणा भक्तिके द्वारा ही आपके रूप, गुण और लीलादिको अनुभवकर आपके अन्तरङ्ग पार्षदरूप गतिको प्राप्त किया है। अथवा जैसे केवल ज्ञान विफल है, उसी प्रकार केवल योग भी विफल है। इस विषयमें प्रमाण दे रहे हैं—*'पुरा'* इत्यादि। इस संसारमें पूर्वकालमें अनेक साधकोंने बहुत काल तक योगका अनुष्ठान किया, परन्तु जब उन्हें योगके द्वारा ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ तो उन्होंने केवल योगको निष्फल जानकर समस्त लौकिक और वैदिक कर्मोंको आपको समर्पण कर दिया, एवं आपकी कथा श्रवण या उस कथाके प्रति आदरवशतः प्राप्त ज्ञानमिश्रा भक्तिके द्वारा ही आपके स्वरूपको जानकर परम आनन्दसे संसार सागरको पारकर परम गतिको प्राप्त किया॥ ५॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—*'अस्यापि देव वपुषः'* आदि द्वितीय श्लोकमें ब्रह्माजीने यह प्रतिपादन किया कि श्रीभगवान्के द्वारा इस जगत्में

अपना नित्यसिद्ध श्रीविग्रह प्रकाशित करनेपर भी और उनकी अपार करुणासे उनकी लीला आदि सबके दृष्टिगोचर होनेपर भी उनके तत्त्वको समझना किसीके लिए भी सम्भव नहीं है। भगवान्‌का स्वरूप, रूप, ऐश्वर्य, माधुर्य, गुण, लीला, विग्रह आदि सभी कुछ सभीके लिए बोधगम्य नहीं है। विशेषकर भगवान् श्रीकृष्णकी लीला ऐसी दुर्ज्ञेय है कि चतुर्वेद-वक्ता स्वयं ब्रह्माजी तक उन्हें विविध प्रकारसे दर्शन करके भी किसी भी उपायसे उन्हें तनिक भी नहीं समझ सके।

*'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'* वचनोंसे जाना जाता है कि "उन अखण्ड सच्चिदानन्द वस्तुको जाननेसे जीव संसारसे मुक्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त संसारसे मुक्त होनेका दूसरा कोई उपाय नहीं है।" किन्तु *'अथापि ते देव'* आदि श्लोकमें ब्रह्माजीने प्रतिपादन किया है कि सच्चिदानन्दघन विग्रह श्रीभगवान्‌का साक्षात् दर्शन करनेपर भी उनके स्वरूप, ऐश्वर्य आदिको नहीं समझा जा सकता। इससे ऐसा प्रश्न हो सकता है कि यदि सच्चिदानन्दघन विग्रह श्रीभगवान् बोधगम्य ही नहीं हैं, तब श्रुतिवचन—"उन्हें जाननेसे जीव संसारसे मुक्तिलाभ करता है"—ऐसा उपदेश क्यों दिया गया है? इस सन्देहको दूर करनेके लिए ब्रह्माजीने भगवान्‌से कहा—हे भगवन्! आप 'अजित' हैं अर्थात् आपको कोई किसी भी उपायसे वशीभूत नहीं कर सकता या किसी भी उपायसे आपके स्वरूप, ऐश्वर्य आदिका निर्णय नहीं कर सकता। ज्ञानी ज्ञानसाधनाके द्वारा सर्वव्यापी ब्रह्ममें लीन हो सकता है, परन्तु आपके स्वरूपका अनुभव नहीं कर सकता। योगी निर्विकल्प समाधिमें परमात्माके रूपमें आपका साक्षात्कार कर सकता है, परन्तु आपके सर्वस्वरूपका साक्षात्कार नहीं कर सकता। कर्मी भगवान्‌की कृपासे इन्द्रपद, ब्रह्मपदादि प्राप्त कर सकता है, परन्तु उससे भी वह आपके स्वरूपका अनुभव नहीं कर सकता है। इसलिए जो आपके स्वरूप, ऐश्वर्य आदिका अनुभव करनेके लिए यम-नियम आदि साधनोंका अनुष्ठान, तीर्थ-भ्रमण, ज्ञान-शास्त्रका अनुशीलन आदि किसी भी प्रकारका प्रयास न करके केवलमात्र आपके भक्तोंके निकट रहते हैं एवं उनके मुखनिःसृत आपके नाम, रूप, गुण और लीला आदिका श्रवण करते हैं या अनुमोदन भी

करते हैं, आप अपने भक्तवात्सल्य और प्रेमाधीनता गुणके कारण ऐसे भक्तोंके वशीभूत हो जाते हैं।

अतएव जो व्यक्ति भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, लीला आदिका श्रवण और कीर्त्तन करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं, वे ही धन्य हैं। जो सभी प्रकारसे ज्ञानसे अतीत हैं एवं स्वयं ज्ञान-स्वरूप हैं, ऐसे भगवान्‌का स्वरूप जाननेके लिए जो तीर्थ-भ्रमण, शास्त्रोंका अभ्यास, शम, दम और यम, नियमादिका अभ्यास तो करते हैं, किन्तु भगवान्‌की लीला-कथाओंके श्रवण-कीर्त्तन आदिसे अति सहज रूपमें ही प्राप्त होनेवाली भक्तिका अनुष्ठान नहीं करते, उसका अनादर करते हैं, उनके सभी प्रयास निष्फल होते हैं।

श्रुतिमें वर्णन है—*"विज्ञातारमरे केन विजानीयात्?"* अरे मूर्ख! जो स्वयं ज्ञान-स्वरूप एवं समस्त जीवोंके मन, इन्द्रिय आदिके नियन्ता हैं, जो सबके साक्षी हैं, ऐसे ज्ञान-स्वरूप भगवान्‌को तुम कौन-सी साधनाके द्वारा जान सकोगे? *"सर्वासामेव सिद्धिनां मूलं तच्चरणार्चनम्"* आदि शास्त्रवाक्योंसे जाना जाता है कि श्रीगोविन्दके चरणकमलोंका भजन ही समस्त प्रकारकी साधनाओंकी सिद्धिका एकमात्र उपाय है। जिसकी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें भक्ति नहीं है, वह यदि करोड़ों जन्मों तक भगवद्भक्तिको छोड़कर कर्म, ज्ञान, योग आदि कठोर साधनाएँ भी करता है, तो भी उसे कभी भी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती है।

श्रीमद्भागवत (१०/२/३२) में भी ऐसा कहा गया है—

*येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्त मानिनस्तय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धय।*
*आरुह्यकृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृत युस्मदङ्घ्रयः॥*

हे कमलनयन! जप, योग, ध्यान, तपस्यादि साधनोंके अनुष्ठानसे भौतिक जगत्‌की कुछ विभूतियाँ प्राप्त कर बहुत-से व्यक्ति संसार-बन्धनसे मुक्त होनेका अभिमान करते हैं। किन्तु आपके चरणोंमें भक्ति न रहनेके कारण उनकी बुद्धि यथार्थतः शुद्ध नहीं होती है। ऐसे व्यक्ति तीव्र साधनाका क्लेश स्वीकार करके बहुत आगे तक पहुँचकर भी आपके चरणोंके प्रति अनादर करनेके कारण अधोपतित हो जाते हैं।

*यत् कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत्।*
*सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा॥*

(श्रीमद्भा० ११/२०/३२)

श्रीभगवान्‌ने उद्धवसे कहा है—कर्मयोग, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य आदि साधनोंका अनुष्ठान करके कर्मी, ज्ञानी, तपस्वी एवं विरक्त व्यक्ति जो फल प्राप्त करते हैं, मेरे भक्तगण एकमात्र भक्तिसाधनके द्वारा अनायास ही उन सभी फलोंको प्राप्त कर लेते हैं।

कर्म, ज्ञान, आदि समस्त प्रकारके साधनोंकी अपेक्षा भक्तिका साधन अत्यन्त सहज है। इसीलिए भगवान्‌की अपार करुणा और उनके भक्तचूड़ामणियोंके सङ्गके प्रभावसे जिनके हृदयमें भक्तिका माहात्म्य स्फुरित होता है, उन्हें कभी भी भक्तिपथ परित्यागकर दूसरे मार्गमें जानेकी इच्छा नहीं होती।

*पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तोयेष्वक्रीत लभ्येषु यदैव सत्सु।*
*भक्त्या सुलभ्ये पुरुषे पुराणे मुक्त्यै किमर्थं क्रियते प्रयत्नः॥*

(नृसिंहपुराण)

भक्तचूड़ामणि प्रह्लादजी कहते हैं—पत्र, पुष्प, फल, जल आदि संसारमें अति सहजतासे प्राप्त होनेवाली वस्तुएँ हैं और उन्हें संग्रह करनेके लिए अर्थ आदिकी भी आवश्यकता नहीं होती। ऐसे अति सहजलब्ध पत्र-पुष्प आदिको यदि कोई भक्तिपूर्वक श्रीगोविन्दके चरणोंमें अर्पण करता है, तब वह निश्चित ही श्रीगोविन्दका चरणाश्रय प्राप्तकर कृतार्थ हो जाता है। परन्तु न जाने जीव किस मोहमें फँसकर ऐसी सुलभ वस्तुओंका परित्यागकर मुक्ति प्राप्त करनेके लिए अत्यन्त कष्टसाध्य ज्ञान आदि साधनोंका अनुष्ठान करते हैं।

ज्ञान, योग आदि समस्त प्रकारके साधन साधककी अपनी शक्तिके द्वारा साधित होते हैं, परन्तु भक्तिसाधनामें भक्त प्रारम्भसे ही श्रीभगवान्‌के चरणोंमें शरणागत होकर उन्हींकी कृपासे आगे बढ़ता जाता है। इसलिए भक्तिको छोड़कर अन्य कोई मङ्गलमय मार्ग नहीं है। अतएव विज्ञ व्यक्ति सभी प्रकारके आग्रहोंको त्यागकर एकमात्र भक्तिमार्गका अनुशीलन करते हैं। श्रीमद्भागवत, महाभारत, रामायण, पुराण, इतिहास आदि ग्रन्थोंमें ध्रुव, प्रह्लाद, नारद, व्यास, शुक, शौनक,

रघु, अम्बरीष, दिलीप, सगर, गय, नहुष आदि जिन महानुभाव व्यक्तियोंका नाम पाया जाता है, वे सभी एकमात्र भक्तिपथका आश्रय करके ही कृतार्थ हुए हैं एवं आज तक उनके चरित्रका कीर्त्तनकर जगत् भी कृतार्थ हो रहा है।

अतएव श्रीभगवान्‌के स्वरूप, ऐश्वर्य, माहात्म्य आदिको साध्यातीत दुर्लभ मानकर व्यर्थका समय न गँवाकर जो लोग उनके नाम, रूप, गुण, लीलाकथाके श्रवण-कीर्त्तन आदिका आश्रयकर जीवन अतिवाहित करते हैं, वे ही इस जगत्‌में धन्य हैं, वे ही कृत-कृतार्थ हैं॥ ३-५॥

**तथापि भूमन् महिमागुणस्य ते,**
**विबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः ।**
**अविक्रियात् स्वानुभवादरूपतो,**
**ह्यनन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा॥ ६॥**

**अन्वयः**—भूमन (हे भूमन्! हे अपरिच्छिन्न!) तथापि अमलान्तरात्मभिः (जो इन्द्रियोंका संयमकर निर्मलात्मा हुए हैं) अविक्रियात् (विक्रिया विशेषरहित निर्विकार) अरूपतः (विषय सम्बन्धरहित) अनन्यबोध्यात्मतया (स्वप्रकाश-स्वरूप) स्वानुभवात् (आत्म साक्षात्कार-स्वरूप) अगुणस्य (गुणातीत) ते (तुम्हारी) महिमा विबोद्धुं (महिमाको जाननेमें) अर्हति (समर्थ होता है) अन्यथा न च (दूसरोंके लिए सम्भव नहीं है)॥ ६॥

**अनुवाद**—(पूर्व श्लोकमें यह कहा गया है कि ज्ञानके प्रयासोंका परित्याग करके भगवान्‌के गुणानुवादके श्रवण द्वारा ही भगवत्-प्राप्ति होती है, इसके अतिरिक्त भगवत्-प्राप्तिका अन्य कोई उपाय नहीं है। इस कथनके द्वारा भगवान्‌के निर्गुण एवं सगुण—दोनों स्वरूपोंका ही दुर्ज्ञेयत्व निरूपित हुआ है। भगवान्‌का स्वरूप दुर्ज्ञेय होनेपर भी उनके निर्गुण-स्वरूपकी उपलब्धि कभी किसी प्रकारसे हो भी सकती है, किन्तु अचिन्त्यगुणसम्पन्न उनके सगुण-स्वरूपकी अनुभूति नहीं हो सकती—इसी सिद्धान्तकी विवेचनाके लिए इस श्लोककी अवतारणा की गयी है) हे भूमन्! यद्यपि आपका स्वरूप सब प्रकारसे अज्ञेय

है, तथापि संयतेन्द्रिय सिद्ध लोगोंके सभी प्रकारके विकार एवं विषयसम्बन्धशून्य आत्मकार चित्तवृत्तिमें आपके स्वप्रकाश निगुर्ण-स्वरूपकी अभिव्यक्ति हो सकती है॥ ६॥

**सारार्थदर्शिनी**—एवं यद्यपि केवलया प्रेमभक्त्यैव तव साक्षादेतत्स्वरूपानुभवो भवति तथाऽपि केवलज्ञानस्य विगीतत्वाद्भक्तिमिश्रज्ञानमपि तव निर्विशेष ब्रह्मस्वरूपानुभवे कारणं भवति किन्तु ज्ञानञ्च मयि संन्यसेदिति तदुक्तेर्ज्ञानं संन्यासानन्तरमेवेत्याह, तथाऽपीति। यद्यपि केवला भक्तिर्न्नस्यात्तदपीत्यर्थः। हे भूमन्! भूःप्रादुर्भावस्तद्युक्त-मधुरैतद्रूपप्रादुर्भाववन् अगुणस्य प्राकृतगुणरहितस्य तव महिमा महत्त्वं बृहत्वरूप एको धर्मः—*"मदीयं महिमानं च परब्रह्मेति शब्दितम्। वेत्स्यस्यनुगृहीतं मे सम्प्रश्नैर्विवृतं हृदि॥"* इति त्वदुक्तेः *"सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ"* इति ध्रूवोक्तेश्च महिमशब्देन प्रसिद्ध परंब्रह्म विबोद्धुं स्वयमेव विबोध्यो भवितुमर्हति। पच्यते ओदनः स्वयमेवेतिवत् कर्मणः कर्तृत्वं यथा कुठारः स्वयमेव वृक्षं छिनत्तीत्यत्र करणस्य कर्तृत्वं विवक्षितम् कस्मान्निमित्तात्? अमलैः शुद्धैरन्तरात्मभिः स्वानुभवात् स्वकर्मकादनुभवात्। नन्वनुभवः खल्वन्तःकरणवृत्तिः सा च सूक्ष्मदेहविकारमयी निर्विकारं ब्रह्म कथं विषयीकुर्य्यादित्यतो विशिनष्टि-अविक्रियात् न विद्यते विक्रिया विकारो यत्र तथाभूतात् विकारो हि माया धर्मः स च मायोपरमे कुतः स्यादिति लिङ्गदेहाभाव एव व्यञ्जितः। ननु, तदपि ब्रह्मणोऽविषयत्वेनानुभवविषयत्वानौचित्यादि त्यतः पुनर्विशिनष्टि, अरूपतः रूपं विषयस्तदितरात् विषयाकारत्वरहितात् ब्रह्माकारादित्यर्थः। ब्रह्मणो ब्रह्मकारानुभवविषयत्वं न दोष इति। नन्वस्ति किं तद्बोधे प्रकारान्तरं? तत्राह—अनन्यबोध्य आत्मा स्वरूपं यस्य तत्तया नैवान्यथा स विबोध्यो भवितुमर्हतीत्यन्वयः। यथा विषयाकारानुभव एव शब्दस्पर्शादीन् विषयीकरोति न ब्रह्म। तथैव ब्रह्माकारानुभव एव ब्रह्मविषयीकरोति न शब्दादीनित्यर्थः॥ ६॥

**भावानुवाद**—इस प्रकार यद्यपि केवल प्रेमाभक्तिके द्वारा ही आपके साक्षात् इस नन्दनन्दन-स्वरूपका अनुभव होता है, तथापि केवल ज्ञान सद्भक्तोंके निकट निन्दित होनेके कारण भक्तिमिश्रज्ञानके द्वारा भी आपके निर्विशेष ब्रह्म-स्वरूपका अनुभव होता है। किन्तु भगवान्ने कहा है—"ज्ञान भी मुझे समर्पण करो।" भगवान्की इस उक्तिके अनुसार भगवान्को ज्ञान समर्पित करनेके बाद ही ब्रह्म-स्वरूपका अनुभव होता है। इसे ही कह रहे हैं—*'तथापि'* अर्थात् यदि केवलाभक्ति न भी हो, तो भी ब्रह्म-स्वरूपका अनुभव होता है—यह

अर्थ है। हे भूमन! अर्थात् हे मधुर रूप प्रकटकारी! आपकी महिमा प्राकृत गुणरहित है। जैसा कि मत्स्यदेवने कहा है—*"मदीयं महिमानञ्च"* (श्रीमद्भा० ८/२४/३८) अर्थात् उस समय मेरे द्वारा उपदिष्ट मेरे परब्रह्म स्वरूपकी महिमा तुम्हारे हृदयमें प्रकाशित होगी एवं *"सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ"* (श्रीमद्भा० ४/९/१०) अर्थात् आपके चरणकमलोंका ध्यान या आपके भक्तजनोंकी कथाओंका श्रवण करनेसे देहधारी व्यक्तियोंको जैसा आनन्द प्राप्त होता है, वैसा आत्मानन्दरूप ब्रह्मसाक्षात्कारके द्वारा भी प्राप्त नहीं होता है—ध्रुवके इस वचनके अनुसार 'महिमा' शब्दसे प्रसिद्ध परब्रह्म स्वयं ही ज्ञानके विषयीभूत होते हैं। यहाँपर *"पच्यते ओदनः स्वयमेव"*—अन्न स्वयं ही पक रहा है, इस प्रयोगमें जैसे कर्मका ही कर्त्तृत्व, एवं *"कुठारः स्वयमेव वृक्षं छिनत्ति"*—कुठार स्वयं ही वृक्षको काट रहा है, यहाँपर जैसे करणका ही कर्त्तृत्व दिखाया गया है, उसी प्रकार परब्रह्म स्वयं ही स्वयंको ज्ञानके विषयीभूत करते हैं, यह कहा गया है।

यदि कहो कि किसलिए ब्रह्म-स्वरूप ज्ञानगोचर हो सकते हैं? इसके उत्तरमें कहते हैं—*'अमलान्तरात्मभिः'* निर्गुण-ब्रह्म और सगुण-भगवान् आप ही हैं, एवं ब्रह्म-स्वरूप और भगवत्-स्वरूप—ये दोनों ही स्वरूप समान रूपसे दुर्ज्ञेय हैं। तथापि हे भूमन! कोई व्यक्ति अपने निर्मल अन्तःकरणमें आपके निर्गुण-स्वरूपकी या ब्रह्म-स्वरूपकी महिमाको कुछ-कुछ जान सकता है, परन्तु आपके सगुण-स्वरूपकी अचिन्त्य, अनन्त महिमाको बुद्धिके द्वारा समझना किसीके लिए भी सम्भव नहीं है।

यदि कहो कि वशीभूत अन्तकरण द्वारा निर्गुण-स्वरूप मेरी महिमा या ब्रह्मको किस प्रकार जाना जा सकता है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि उस महिमा या ब्रह्मके आत्माकार अन्तकरणके साथ साक्षात्कार होनेके कारण वह ज्ञान गोचर होता है। यदि पुनः कहो कि आत्मकार अन्तकरणमें जो मेरी महिमाका साक्षात्कार होता है, वह अन्तकरण भी सविकार वस्तुको ही अपना विषय बनाता है, क्योंकि अनुभव अन्तकरणकी वृत्ति है, अन्तकरण अर्थात् सूक्ष्मदेहके विकारमय होनेसे वह निर्विकार ब्रह्मको किस प्रकार जान सकता है? इसके

उत्तरमें कहते हैं *'अविक्रियात्'* विक्रिया या विकार जहाँ नहीं है, वैसा होनेके कारण, क्योंकि विकार मायाका धर्म है। मायाके दूर होनेपर लिङ्गदेहके अभाववशतः विकार नहीं हो सकते। अर्थात् अन्तकरणके विविध आकारोंसे शून्य होते ही उसके आत्मकरता प्राप्त करनेसे आपकी महिमाका उस आत्माकार अन्तकरणमें साक्षात्कार होता है। यदि कहो कि वैसा होनेपर भी ब्रह्मके अविषयत्व होनेके कारण वह अनुभवका विषय नहीं हो सकता। इसके उत्तरमें कहते हैं *'अरूपतः'* रूप, रस आदि रहित केवल निर्विशेष ब्रह्मका निर्मल हृदयमें ज्ञान-स्वरूपमें अनुभव होता है। परन्तु भक्तोंके हृदयमें अप्राकृत रूप, गुण, रस आदिसे युक्त सगुण ब्रह्म—भगवान् स्वयं प्रकट होते हैं, भक्त भगवान्के उस स्वरूपको देखकर तथा सेवाकर आनन्दित होते हैं।

जिस प्रकार कोई विषयाकार अनुभव ही शब्द, स्पर्श आदिको विषय बना लेता है, परन्तु ब्रह्मको अपना विषय नहीं बना सकता, उसी प्रकार ब्रह्माकार अनुभव भी ब्रह्मको ही विषय बना लेता है, परन्तु रूप, रस आदिका अनुभव नहीं कर सकता है॥ ६॥

**गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुं,**
**हितावतीर्णस्य क ईश्वरेऽस्य।**
**कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पै-**
**र्भूपांशवः खे मिहिका द्युभास॥ ७॥**

**अन्वयः**—[हे देव!] अस्य (इस विश्वके) हितावतीर्णस्य (हितके लिए, पालनके लिए प्रकटित हुए) गुणात्मनः (गुणोंके अधिष्ठाता) ते (तुम्हारे) गुणान् (गुणोंकी) विमातुं (गिनती करनेमें) क ईशिरे (कौन समर्थ हो सकता है, कोई भी नहीं) [यदि कहो कि बहुत कालके पश्चात् जो अति निपुण हुआ है, क्या उनके द्वारा भी असम्भव है, इसीको कह रहे हैं—] सुकल्पैः (अति निपुण) यैः वा कालेन (बहुत जन्मोंके कठोर परिश्रम द्वारा) भूपांशवः (धूलकणोंकी) मिहिकाः (हिमकणोंकी) द्युभासः (नक्षत्र आदि तथा किरण परमाणुकी) विमिताः (गिनती करनेमें समर्थ होनेपर भी तुम्हारे गुणोंकी गिनती करनेमें समर्थ नहीं हो सकता)॥ ७॥

**अनुवाद**—हे देव! आप इस विश्वके मङ्गलके लिए अवतीर्ण हुए हैं। आप महाश्चर्यजनक अप्राकृत गुणोंके अधिष्ठाता हैं। जो अति निपुण व्यक्ति हैं, वे बहुत जन्मों तक घोर परिश्रम करके पृथ्वीके धूलि-कणोंकी, आकाशमें हिम-कणों (ओसकी बूँदों), नक्षत्र, तारों आदिकी और सूर्यकी किरणोंमें स्थित परमाणुओंकी गणना तो कर सकते हैं, परन्तु वे भी आपके गुणोंकी गणना करनेमें समर्थ नहीं हो सकते॥ ७॥

**सारार्थदर्शिनी**—अप्राकृतकल्याणगुणमयं तवेदं भगवत्स्वरूपन्तु प्रेमभक्त्या बिना विज्ञातुं केऽपि मायासिन्धूत्तीर्णा अपि विद्यावन्तोऽपि न शक्नुवन्ति यदि मे जगज्जना अस्मदादयस्त्वां पश्न्यतोऽपि न जानन्तीति किं तव महामधुरान् गुणानपि संख्यातुमपि न शक्नुवन्ति तन्माधुर्यानुभववार्त्ता दूरे वर्त्ततामित्याह-गुणा आत्मनः स्वरूपभूता यस्येति गुणानां नित्यत्वमप्राकृतत्वं चोक्तं। तथा च ब्रह्मतर्के *"गुणैः स्वरूपभूतैस्तु गुण्यसौ हरिरीश्वरः"* इति। अपि त्वर्थे गुणात्मनस्तु तव गुणान् विमातुम् इति गणयितुं के ईशिरे शक्नुवन्ति अपि तु नैव। आमभाव आर्षः। अस्य विश्वस्य हिताय संसाररोगनिवृत्तये अवतीर्णस्य वेति वितर्के। यैः सुकल्पैरतिनिपुणैः सङ्कर्षणादिभिर्भूपरमाणवो वाऽपि विमिता गणितास्तथा ततोऽप्यधिकाः खे मिहिका हिमकणा अपि, तथा ततोऽप्यधिका द्युभासः दिवि सूर्यादीनां किरणपरमाणवस्तथाऽपि ते सङ्कर्षणाद्या यान् अद्यापि गायन्तो गायन्तः सीमानं नैवाप्नुवन्तीत्यर्थः। यद्वा, गुणे त्रिगुणमये जगति आत्मा पालनार्थं मनो यस्य तथाभुतस्यापि तव गुणान् विमातुं न ईशिरे किं पुनर्गुणातीतमहाचमत्कारिदधिचौर्य्यादिक्रीडात्मन इति॥ ७॥

**भावानुवाद**—अप्राकृत अनन्त कल्याण-गुणमय भगवान्‌के स्वरूपको प्रेमभक्तिके बिना जानना सम्भव नहीं है। यहाँ तक कि माया-सिन्धुसे उत्तीर्ण होनेवाले विद्वान पुरुष भी उसे जाननेमें समर्थ नहीं होते। अतः फिर यदि मेरी भाँति मेरे जगत्‌के लोग भी आपको देखकर जान नहीं पाते हैं, तो इसमें कहना ही क्या है? और जब वे आपके महामधुर गुणोंकी गणना करनेमें ही समर्थ नहीं होते, तब फिर आपके माधुर्यका अनुभव उन्हें कैसे हो सकता है? भगवान्‌के जितने भी गुण हैं, वे सभी नित्य और अप्राकृत हैं। जैसे ब्रह्मतर्कमें कहा है—स्वरूपभूत गुणसमूह रहनेके कारण ही भगवान् श्रीहरिको गुणी कहा जाता है। किन्तु स्वरूपभूत गुणयुक्त आपके गुणोंकी गणना कौन कर सकता है?

अर्थात् कोई नहीं कर सकता। अथवा सत्त्वादि तीन गुणोंके परिणामस्वरूप इस विश्वका या विश्वस्थित जीवोंके संसार-रोगकी निवृत्तिके लिए आपके दया आदि गुणोंकी गणना करनेमें कौन व्यक्ति समर्थ होगा?

अतिनिपुण सङ्कर्षण आदि यथेष्ट कालमें पृथ्वीके धूलि-कण, उससे अधिक आकाश हिमकणों तथा उससे भी अधिक सूर्यकी किरणोंमे स्थित परमाणुओंकी गणना करनेमें भले ही समर्थ हो सकते हैं, परन्तु वे भी आज तक आपके गुणोंकी गणना करना तो दूर रहे, उन गुणोंकी महिमाका बार-बार गान करनेपर भी उनकी सीमा नहीं पा सके—यह भावार्थ है। अथवा इस त्रिगुणमय जगत्का पालन करनेके अभिलाषी होकर बहुत बार बहुत-से गुणोंको प्रकाशितकर अवतरित आपके उन गुणोंकी ही गणना करनेमें जब कोई भी समर्थ नहीं हुआ, तब आपके गुणातीत (अप्राकृत) महा-आश्चर्यजनक मक्खन-चोरी आदि क्रीड़ा करनेवाले आपके गुणोंकी गणना कौन कर सकता है?॥ ७॥

**तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो,**
**भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।**
**हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते,**
**जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥ ८॥**

**अन्वयः**—[इसलिए भक्ति ही एकमात्र साधन है—इसे कह रहे हैं] तत् (अतएव) यः (जो व्यक्ति) आत्मकृतं (अपने किये हुए) विपाकं (कर्मफलको) भुञ्जानः एव (अनासक्त होकर सहन करते हुए) ते (आपकी) अनुकम्पां सुसमीक्षमाणः (कब भगवान्की दया होगी, इस प्रकार आपकी कृपाकी ओर देखते हुए) हृद्वाग्वपुर्भिः (शरीर-मन-वाणीसे) ते (आपको) नमः विदधन् (प्रणाम करते हुए) जीवेत (जीवन धारण करते हैं) सः (वह व्यक्ति) मुक्तिपदे (मुक्तिपद अथवा मुक्ति जिनके चरणोंमें अवस्थित है, ऐसे श्रीभगवान्की प्रेम-सम्पत्तिके) दायभाक् (अधिकारी बन जाते हैं)॥ ८॥

**अनुवाद**—अतएव जो अपने किये हुए कर्मोंके फलस्वरूप सुख-दुःखका अनासक्त भावसे (निर्विकार मनसे) भोग करते हुए, क्षण-क्षणमें बड़ी उत्सुकतासे आपकी करुणाकी प्रतीक्षा करता है तथा पुलकित शरीर, प्रेमपूर्ण हृदय और गद्गद वाणीसे आपके चरणोंमें प्रणत होकर जीवन धारण करता है, वह व्यक्ति मुक्तिपदका दायभागी अर्थात् आपके चरणोंकी प्रेमसेवाका अधिकारी बन जाता है॥ ८॥

**सारार्थदर्शिनी**—तदेवमन्यत् सर्वसाधनं परित्यज्य भक्तिमेव कुर्वंस्त्वां लभते इति प्रकरणार्थोऽवगतस्तत्र कीदृशः सन् कुर्यादित्यपेक्षायामाह—तत्ते इति। यस्मादेवं तत्तस्मादात्मकृतं विपाकं *"धर्मस्य ह्यपवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते"* इत्यत्र प्रतिपादितं भक्तेरप्यननुसंहितं फलं सुखं तदपराधफलं दुःखं च भुञ्जान् एव तं तवानुकम्पां सुष्ठुसम्यगीक्षमाणः समये प्राप्तं सुखं दुःखं च भगवदनुकम्पाफलमेवेदमिति जानन्। पिता यथा स्वपुत्रं समये समये दुग्धं निम्बरसं च कृपयैव पाययति, आश्लिष्य चुम्बति पाणितलेन प्रहरति चेत्येवं मम हिताऽहितं पुत्रस्य पितेव मत्प्रभुरेव जानाति न त्वहम् मयि तद्भक्ते नास्ति कालकर्मादीनां केषामप्यधिकार इति। स एव कृपया सुखदुःखे भोजयति च। स्वं सेवयति चेति विमृश्य। *"यथा चरेद्बालहितं पिता स्वयं तथा त्वमेवार्हसि नः समीहितम्"* इति पृथुरिव प्रत्यहं भगवन्तं विज्ञापयन् हृदादिभिर्नमस्कुर्वन् नातीव क्लिश्यन् यो जीवेत स मुक्तिश्च पदञ्च तयोर्द्वन्द्वैक्यं तस्मिन् संसारान्मुक्तौ त्वच्चरणसेवायां चेत्यानुषङ्गिकमुख्यफलयोर्दायभाग् भवति, यथा पुत्रस्य दायप्रातौ जीवनमेव कारणं तथा भक्तस्य जीवनं तच्चेह भक्तिमार्गे स्थितिरे *"दृतय इव श्वसन्त्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा"* इत्याद्युक्तेरिति भावः॥ ८॥

**भावानुवाद**—दूसरे सभी साधनोंका परित्यागकर केवल भक्तिके द्वारा ही भगवान्की प्राप्ति होती है, यह इस प्रकरणसे जाना गया। अब वह भक्ति कैसे की जाती है—*'तत्ते'* इत्यादिके इस विषयका वर्णन कर रहे हैं। भक्त अपने जीवनमें आयी हुई विपत्तियोंको अपने द्वारा किये हुए कर्मोंका फल समझते हैं। *"धर्मस्य ह्यपवर्गस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते"* (श्रीमद्भा॰ १/२/११) अर्थात् अपवर्ग तक जो धर्म है, उसका फल अर्थ नहीं हो सकता, इत्यादि स्थानोंमें प्रतिपादित भक्तिका अवान्तर फल सुख तथा भक्तिके विषयमें अपराधके फलस्वरूप दुःख भोग करनेपर भी जो व्यक्ति उसे आपकी कृपा मानते हैं, अर्थात् यथा समयमें प्राप्त सुख तथा दुखको भगवान्की अनुकम्पाका फल मानते

हैं। जिस प्रकार पिता अपने पुत्रको कृपाकर समय-समयपर दूध और कभी-कभी नीमरस पान कराता है और कभी आलिङ्गनपूर्वक उसका चुम्बन करता है तथा कभी उसके कल्याणके लिए उसे पीटता भी है, उसी प्रकार भक्तोंकी भावना होती है कि मेरा हिताहित मेरे प्रभु ही जानते हैं, मैं कुछ भी नहीं जानता। भक्तोंपर काल, कर्म आदि किसीका भी कोई अधिकार नहीं होता है, भगवान् ही कृपापूर्वक भक्तोंको सुख-दुःख भोग कराते हैं तथा अपनी सेवा भी कराते हैं—ऐसा विचारकर *"यथा चरेद् बालहितम्"* (श्रीमद्भा॰ ४/२०/३१) अर्थात् पिता जैसे स्वयं बालकके हितके लिए ही आचरण करता है, वैसे ही आप भी मेरा हित करनेवाले हैं। इस प्रकार पृथु महाराजकी भाँति प्रतिदिन भगवान्‌को प्रार्थना निवेदनकर शरीर, मन, वाणीके द्वारा शरणागत होकर अति सहज रूपसे जो जीवन धारण करते हैं, वे *'मुक्तिपदे'*—अर्थात् भक्तिके आनुसङ्गिक फल संसारसे मुक्ति तथा उसके मुख्य फल आपके चरणोंकी सेवाके अधिकारी होते हैं। जिस प्रकार पुत्रके लिए दाय-प्राप्ति अर्थात् पिताकी सम्पत्तिका अधिकारी बननेके लिए जीवन धारण करना आवश्यक होता है, उसी प्रकार भक्तिमार्गमें स्थिति ही भक्तका जीवन है। श्रुतियोंने भी कहा है—*"दृतय इव"* (श्रीमद्भा॰ १०/८७/१७) अर्थात् आपके चरणकमलोंकी भक्ति करनेपर ही प्राणीमात्रका जन्म यथार्थ रूपमें सार्थक होता है, नहीं तो उसका साँस लेना लोहारकी धौंकनीकी भाँति केवल वृथा ही होता है—यह भावार्थ है॥ ८॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—*"अस्यापि देव वपुषः"* (श्लोक-संख्या २) से आरम्भकर कई श्लोकोंमें ब्रह्माजीने यह प्रतिपादन किया है कि श्रीभगवान्‌का स्वरूप, ऐश्वर्य, माधुर्य, माहात्म्य आदि सभी कुछ दुर्ज्ञेय है। भगवान्‌के श्रीचरणकमलोंका भजन न करके जो केवलमात्र उनके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए प्रयास करते हैं, उनका परिश्रम केवल व्यर्थ जाता है। इसलिए पूर्वकालमें बहुत-से योगी-ऋषि योग-साधनासे कृतार्थ न होनेपर अन्तमें वे भगवान्‌के चरणकमलोंका आश्रय करके ही कृतार्थ हुए हैं। *"यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा*

*सह"*, *"अवाङ्मनसगोचर"*, *"विज्ञातारमरे केन विजानीयात्"* इत्यादि श्रुतिवाक्योंसे यह जाना जाता है कि श्रीभगवान् मन और वाणीसे भी परे हैं तथा उन्हें समझ न पानेके कारण ही उन्हें दुर्ज्ञेय कहा जाता है। किन्तु *"आत्मावारे द्रष्टव्यः"*, *"मनसैवानुद्रष्टव्यम्"* अर्थात् "सच्चिदानन्द-स्वरूप आत्माको जाननेकी चेष्टा करें", "मनके द्वारा पुनः-पुनः आत्माका अनुसन्धान करें"—इत्यादि श्रुतिवचनोंसे भी जाना जाता है कि भगवान्का स्वरूपज्ञान प्राप्त करनेके लिए चेष्टा होनी चाहिये। *"तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽवनाय"* आदि श्रुतिवाक्योंमें भी स्पष्ट रूपसे जाना जाता है कि उनके स्वरूपज्ञानके बिना संसारसे छुटकारा पानेका कोई दूसरा पथ नहीं है। इस प्रकार यहाँ दो प्रकारकी बातोंकी मीमांसा करनेके लिए तथा यथार्थ सिद्धान्त स्थापन करनेके लिए ब्रह्माजीने *'तथापि भूमन्'* आदि दो श्लोकोंकी अवतारणा की है। इस श्लोकमें ब्रह्माजीका कहना है कि श्रीभगवान् अचिन्त्य अनन्त शक्तिसम्पन्न एवं अनन्त कल्याण-गुण-समुद्र सच्चिदानन्दघन विग्रह हैं। इसलिए वे सर्वशक्तिमान, सगुण एवं सविशेष स्वरूप हैं, परन्तु उनकी शक्ति, गुण और विग्रह प्राकृत जीवकी भाँति नहीं हैं।

*गुणैः स्वरूपभूतैश्च गुण्यसौ हरिरुच्यते।*
*न विष्णोर्न च मुक्तानां सन्ति वै प्राकृता गुणाः॥*

(ब्रह्मतर्क)

श्रीभगवान् अपने स्वरूपभूत गुणोंके द्वारा सगुण हैं। श्रीभगवान् और मुक्त जीवोंका सत्त्व, रजः और तमः—इन प्राकृत गुणोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता है। अतएव भगवान्का प्राकृत गुणोंसे कोई सम्बन्ध न रहनेके कारण ही उन्हें निर्गुण कहा गया है।

*योऽसौ निर्गुण इत्युक्तः शास्त्रेषु पुरुषोत्तमः।*
*प्राकृतैर्हेय संयुक्तैर्गुणैर्हीनत्वमुच्यते॥*

(पद्मपुराण)

अतएव विभिन्न शास्त्रोंमें देखा जाता है कि श्रीभगवान् निर्गुण हैं, उसका कारण यह है कि वे सर्वथा प्राकृत गुणोंसे सम्बन्धरहित हैं।

अन्यान्य श्रुतिवचनोंसे भी जाना जाता है कि श्रीभगवान्‌की अनन्त शक्तियाँ हैं, जो उनमें स्वाभाविकी हैं, अर्थात् कहीं बाहरसे आयी हुई नहीं हैं या मणिमन्त्र आदिके प्रभावसे जैसे आगकी शक्ति आच्छादित हो जाती है, उनकी शक्तियाँ वैसी नहीं हैं।

परन्तु अनन्त शक्ति और अनन्त गुणयुक्त सच्चिदानन्दघन विग्रह श्रीभगवान् ज्ञानियोंकी ज्ञान-दृष्टिमें निःशक्तिक, निर्गुण और निर्विशेष रूपमें प्रतिभासित होते हैं, परन्तु वास्तवमें वे निःशक्तिक, निर्गुण या निर्विशेष नहीं हैं।

*या या श्रुतिर्जल्पति निर्विशेषं सा साभिधत्ते सविशेषमेव।*
*विचारयोगे सति हन्त तासां प्रायो बलीय सविशेषमेव॥*

(हयशीर्षपञ्चरात्र)

जो श्रुतियाँ भगवान्‌को निर्विशेष रूपमें स्थापन करती हैं, वे ही श्रुतियाँ फिरसे उन्हें सविशेष-स्वरूपमें भी स्थापन करती हैं। श्रुतियोंकी इन दोनों प्रकारकी बातोंको लेकर विचार करनेपर सविशेष ही बलवान होता है। *'तथापि भूमन्'*—श्लोकमें ब्रह्माजीने यह प्रतिपादन किया है कि भगवान्‌के सगुण एवं निर्गुण दोनों ही स्वरूप अज्ञेय हैं। तथापि उनका निर्गुण-स्वरूप उनकी ही प्रकाशित शक्तिसे संयतेन्द्रिय महापुरुषोंके समस्त प्रकारके विकारों एवं विषयोंके सम्बन्धसे रहित आत्माकार चित्तवृत्तिमें प्रकाशित हो सकता है। परन्तु उनके सगुण-स्वरूपका अनुभव नहीं किया जा सकता है। उनका निर्गुण-स्वरूप कुछ-कुछ अनुभव किया जा सकता है, सगुण-स्वरूप सर्वथा दुर्ज्ञेय है। संसारमें भी देखा जाता है कि हम बहुत-से व्यक्तियों और बहुत-सी वस्तुओंके विषयमें जानते तो हैं, परन्तु उन सबके सभी गुणोंका अनुभव नहीं कर सकते हैं। अनन्त कल्याणगुण-समुद्र श्रीभगवान् किस भावसे कौन-से भक्तको कृतार्थ करनेके लिए किस रूपमें जगत्‌में अवतीर्ण होंगे, यह कोई नहीं जानता एवं अपने अनन्त गुणोंमेंसे वे किस गुणको प्रकाशित करेंगे, यह भी कोई नहीं जानता। जगत्‌में जीव भी अनन्त हैं, उनके अनन्त प्रकारके स्वभाव हैं एवं कर्मफल भोगके लिए उनकी अवस्थाएँ भी अनन्त प्रकार की हैं।

अतएव उन्हें कृतार्थ करनेके लिए श्रीभगवान्‌की कितनी करुणा, भक्तवात्सल्य आदि गुणोंका प्रकाश होता है, यह कौन कह सकता है? श्रीभगवान् इस सीमाबद्ध जगत्‌में अवतीर्ण होकर जब लीला करते हैं, तब भी उनके गुण असीम होते हैं, किन्तु जब वे अपने असीम धाममें असीम अनन्त भावोंके भावुक-शिरोमणि पार्षदोंके साथ स्वरूपानन्द-रसका आस्वादन करते हैं, तब उनके कितने गुणोंका प्रकाश होता है, यह असीम-अनन्त शब्दोंके द्वारा व्यक्त करनेपर भी अव्यक्त ही रहता है।

साधारण जीवके लिए भगवान्‌के गुणोंकी धारणा करना तो बहुत दूर रहे, शेष, सनकादि योगेश्वर भी अपने योग-प्रभावसे पृथ्वीके धूलिकणों, आकाशके हिमकणों और सूर्य-चन्द्रकी किरणकणोंको गिननेमें भले ही समर्थ हो जायें, परन्तु वे अपार अनन्त गुणसिन्धु श्रीभगवान्‌के गुणोंके एक कणका भी स्पर्श नहीं कर सकते।

श्रीभगवान्‌की करुणा और भक्तवात्सल्य आदि गुणोंकी बात सुनकर कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि वह प्राकृत दया और प्राकृत प्रीति है जो सत्त्व गुणका विकार है, इसलिए भगवान्‌ने भक्तचूड़ामणि उद्धवजीसे कहा है—

*मां भजन्त्य गुणाः सर्वे निर्गुणं निर्विशेषकं।*
*सुहृदं सर्वभूतानां स्यम्यसादयो गुणाः॥*

(श्रीमद्भा० ११/१३/४०)

हे उद्धव! मैं प्राकृत गुणरहित और प्राकृत विशेषरहित हूँ। अतएव निर्गुण और निर्विशेष हूँ, परन्तु मैं समस्त जीवोंका सुहृत् हूँ। समस्त जीवोंके प्रति मेरी समता और आसक्तिहीनता आदि कोई भी गुण प्राकृत सत्त्व, रजः आदि गुणोंका विकार नहीं है।

श्रीधर स्वामिपादने इस श्लोककी व्याख्यामें कहा है—*"अगुणाः गुणपरिणामा न भवन्ति किन्तु नित्या इत्यर्थः।"* श्रीभगवान्‌में समस्त जीवोंके प्रति समता आदि गुण, सत्त्वादि गुणोंके परिणाम नहीं हैं, इसलिए वे अगुण अर्थात् नित्य, स्वाभाविक एवं स्वरूपभूत गुण हैं।

इसलिए *'भूमन्'* और *'गुणात्मनस्तेऽपि'* आदि दो श्लोकोंमें ब्रह्माजीने जो कुछ कहा है, उससे भगवान्‌के सगुण-निर्गुण दो

स्वरूपोंमेंसे निर्गुण-स्वरूपका ज्ञान आत्माकार-चित्तमें प्रकाशित होता है, परन्तु सगुण-स्वरूप किसी भी प्रकारसे धारणामें नहीं आ सकता है।

अनादि कर्मफल भोग करते हुए जीव पुनः-पुनः जगत्‌में आते-जाते रहते हैं एवं अपना-अपना कर्मफल, जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि, शोक-मोह, दुःख-दैन्य, अभाव-अभियोग आदि विविध दुःखोंको भोग करते हैं। जो इन सभी कष्टोंसे तथा त्याग-वैराग्य आदिसे शान्ति प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिए यह श्रुतिवचन है—*"तमेवविदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय"*, अर्थात् एकमात्र उन सच्चिदानन्द-स्वरूप भगवान्‌को जाननेसे ही जन्म-मृत्युरूप संसारसे छुटकारा होता है, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई पथ नहीं है। इसलिए जो जन्म-मृत्युरूप संसार-दुःखसे विचलित न होकर एवं उसके निवारणके लिए तीव्र साधनका कष्ट स्वीकार न करके अपने अनादि जन्मोंके सञ्चित कर्मफलस्वरूप सांसारिक सुख-दुःखको आपके अनुग्रहका दान समझकर प्रसन्नचित्तसे भोग करते हैं एवं शरीर, मन, वाणीसे आपके चरणोंमें शरणागत होते हैं, वे ही आपका चरणाश्रय प्राप्त करनेके अधिकारी होते हैं। जीवित पुत्र ही पिताकी सम्पत्तिको प्राप्त करनेके अधिकारी होते हैं, मृतपुत्र एवं पतित-पुत्र आदि पितृधनके अधिकारी नहीं हो सकते। हे भगवन्! आप विश्वपिता हैं, जगत्‌के सभी जीव आपके पुत्र हैं। उनमेंसे जो आपके चरणकमलोंके भजनमें अनुरक्त हैं, वे ही जीवित हैं एवं वे ही आपके चरणाश्रयरूप महासम्पत्तिको प्राप्त करनेके अधिकारी हैं। भक्ति-विमुख जीव मृत एवं पतित हैं। अतएव वे आपके चरणाश्रयरूप महासम्पदके अधिकारी नहीं हैं। आपके चरणोंमें भक्ति प्राप्त करना ही जीवका यथार्थ मुक्ति प्राप्त करना है। केवलमात्र संसार-दुःखसे छुटकारा प्राप्ति मुक्ति नहीं है।

*निश्चला त्वयि भक्तिर्या सैव मुक्तिर्जनार्दन।*
*मुक्ता एव हि भक्तास्ते तव विष्णो यतो हरे॥*

(पद्मपुराण)

हे भगवन्! आपके चरणोंमें निश्चला भक्ति ही यथार्थ मुक्ति है, क्योंकि जो आपके चरणकमलोंका भजन करते हैं, उन्हें मुक्ति बिना प्रयासके ही मिल जाती है॥ ६-८॥

**पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये,**
**परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि।**
**मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं,**
**ह्यहं कियानैच्छमिवार्च्चिरग्नौ॥ ९॥**

**अन्वयः**—ईश (हे प्रभो!) मे (मेरे) अनार्यं (गर्हित आचरणको) पश्य (देखें) हि (जिससे) अहं अनन्त आद्ये मायिमायिनि (मैंने अनन्त आदि पुरुष, मायावियोंको भी मोहित करनेवाले) परात्मनि (परमात्मा) त्वयि अपि मायां (आपपर भी अपनी मायाका) वितत्य (विस्तारकर) आत्मवैभवं (परमात्मा आपके वैभवको) ईक्षितुं (देखनेकी) ऐच्छम् (अभिलाषा की) अग्नौ अर्चिः इव कियान् (अग्निसे उत्पन्न ज्वाला जैसे अग्निके प्रति दाह आदि कार्य नहीं कर सकती, उसी प्रकार सर्वमायाधिपति आप भगवान्के प्रति मुझ ब्रह्माकी माया लेशमात्र भी कार्यकारी नहीं हो सकती)॥ ९॥

**अनुवाद**—हे प्रभो! कुटिलतासे परिपूर्ण मेरा अन्यायपूर्ण आचरण तो देखिये, बड़े-बड़े मायावियोंको भी मोहमें डालनेवाले अनन्त आदिपुरुष परमात्मा आपके प्रति मैं अपनी मायाका विस्तार करके आपके ऐश्वर्यको देखनेकी इच्छा कर रहा था। अहो! अग्निसे उत्पन्न चिङ्गारियाँ जिस प्रकार अग्निके प्रति अपने प्रभावका विस्तार नहीं कर सकतीं, उसी प्रकार आपसे उत्पन्न मैं भी आपके प्रति अपने प्रभावका विस्तार करनेमें तनिक भी समर्थ नहीं हो सकता॥ ९॥

**सारार्थदर्शिनी**—अहन्तु भक्तिलेशमपि न कुर्वे प्रत्युतापराधपुञ्जमेवेति सानुतापमाह—पश्येति। हे ईश! मे अनार्यम् आर्यः सुजनो विज्ञश्च तस्य भाव आर्यं तद्विपरीतमनार्यं दौर्जन्यं मौढ्यं च पश्येत्यवधाय समुचित दण्डं क्षमां वा कुरुष्वान्यथा मादृशानां दौर्जन्यमौढ्ये एव वर्द्धिष्येते इति भावः। किन्तद्दौर्जन्यं मौढ्यं चेत्यत आह—आद्ये स्वकारणत्वात्पितरि तत्रापि त्वयि सुखेन सहचरैः सह

भुञ्जान एवेति दौर्जन्यम्। अनन्ते अपरिच्छिन्नैश्वर्ये परात्मनि आत्मनोऽप्यात्मनीति मूढत्वं मायिमायिनीति परममूढत्वम्। एवम्भूतेऽपि त्वयि मायां प्रसार्य आत्मैश्वर्य-मीक्षितुमहमैच्छं हि अहो अहं त्वयि कियान् किम्परिमाणकः अर्चिर्ज्वाला यथा महाग्नेरुद्धय तमेव दग्धुमिच्छत्॥ ९॥

**भावानुवाद**—हे भगवन्! मैंने आपके प्रति लेशमात्र भी भक्ति नहीं की, बल्कि उसके विपरीत अपराधपुञ्ज ही संग्रह किया है। इस प्रकार ब्रह्मा अनुतापके साथ कहने लगे—हे ईश्वर! मैंने अनार्य व्यक्तिकी भाँति कार्य किया है। *'आर्य'* अर्थात् सुजन और विज्ञजनोंकी भावना, तथा उसके विपरीत भावना *'अनार्य'* है, अर्थात् मेरी दुर्जनता और मूढ़ताको तो देखिये और उसके अनुसार ही मुझे दण्ड प्रदान करें, नहीं तो मेरे जैसे मूर्खकी मूढ़ता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जायेगी। यदि कहें कि वह दुर्जनता और मूढ़ता क्या है? उसके लिए ब्रह्माजी कहते हैं—हे प्रभो! मेरे जन्मका कारण आप ही तो हैं। आप मेरे पिता हैं, उसमें भी आप अपने सहचरोंके साथ सुखपूर्वक भोजन कर रहे थे, ऐसे समयमें मैंने अपनी दुर्जनता दिखलायी है, *'अनन्त'*—आप असीम ऐश्वर्यवान और *'परात्मनि'* अर्थात् आत्माके भी आत्मा हैं। सभी मायावियोंको विमोहित करनेवाले ऐसे आपके प्रति मैने जो किया वह मेरी परम मूढ़ता है। ऐसे असीम, अनन्त ऐश्वर्यसम्पन्न आपके प्रति मैंने अपनी मायाका विस्तारकर अपनी संप्रभुता दिखानेकी चेष्टा की है। अहो! मैं आपके सामने कितना क्षुद्र हूँ—महान अग्निकी एक चिङ्गारीकी भाँति हूँ। जैसे अग्निकी चिङ्गारी अग्निसे निकलकर यदि उसी महाग्निको ही दग्ध करना चाहे, तो उसपर अपना तनिक भी प्रभाव डालनेमें समर्थ नहीं हो सकती, उसी प्रकार आपसे उत्पन्न मैं क्या आपपर अपना कोई भी प्रभाव विस्तार करनेमें समर्थ हो सकता हूँ?॥ ९॥

**अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो,**
**ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः ।**
**अजावलोपान्धतमोऽन्धचक्षुष,**
**एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति॥ १०॥**

**अन्वयः**—अच्युतः (हे अच्युत!) अतः (अतएव) रजोभुवः (रजोगुणसे उत्पन्न) अजानतः (स्वभावसे अज्ञानी) त्वत्पृथगीशमानिनः (आपसे अपनेको पृथक् ईश्वर अभिमान करते हुए) अजावलेपान्धत-मोऽन्धचक्षुषः (मैं जगत्का कर्त्ता हूँ, इस प्रकार मदसे) मयि नाथवान् (मेरा भृत्य) एषः (यह ब्रह्मा) अनुकम्प्यः (दयाका पात्र है) इति (ऐसा मानकर) मे क्षमस्व (मेरे अपराधको क्षमा करें)॥ १०॥

**अनुवाद**—हे अच्युत! रजोगुणसे उत्पन्न होनेके कारण मैं स्वाभाविक रूपसे अज्ञानी हूँ और आपके स्वरूपको न जाननेके कारण स्वयंको स्वतन्त्र ईश्वर समझ बैठा हूँ। मैं अजन्मा हूँ, जगत्का सृष्टिकर्त्ता हूँ—इस मायाकृत अहङ्कारके गाढ़ अन्धकारसे मैं अन्धा हो रहा था। अतः अब आप 'यह ब्रह्मा मेरी आज्ञाके अधीन है, मेरा सेवक होनेके कारण मेरी दयाका पात्र है'—यह मानकर मुझे क्षमा कर दीजिये॥ १०॥

**सारार्थदर्शिनी**—दौर्जन्योचितस्य दण्डस्य मौढ्योचितायाः क्षमायाश्च सम्भवेऽपि महाकृपालोस्तव क्षमैवोचितेत्याह-अत इति। हे अच्युत! यतस्त्वं महाकृपालुत्वादि-गुणेभ्यश्चुतिरहितः अहं च महानीचः। अतो ममापराधं क्षमस्व *"नीचे दयाधिके स्पर्द्धा"* इति नीतेरिति भावः। महानीचत्वमाह, रजोभुवः श्लेषेण रजसो धूलेः पुत्रस्य अत एव अज्ञस्यअतएव त्वत्तः पृथगेव ईदृशोऽहमित्यभिमानवतः ईशमा-नित्वं विवृणोति। अजावलेपः अजन्यत्वमद एवान्धतमः समासान्ताभाव आर्षः। तेनान्धानि चक्षूंषि यस्य तेन मयि त्वत्कारुण्यचन्द्रोदयेनैव मद्गर्वतमस्यपहृते सति त्वं दृश्यो भविष्यसि नान्यथेति भावः। केन विचारेण क्षमे इति चेत्तत्राह—एष ब्रह्मा अनुकम्प्यः मदनुकम्पार्हः यतोऽन्यत्र नाथत्वाभिमानवानपि मयि तु नाथवान् दास एव। यद्वा, मौढ्यान्मय्यपि स्वातन्त्र्यं कुर्वन्नपि वस्तुतो मन्मायाधीनत्वात् अधीन एवेति मत्वा। *"परतन्त्रः पराधीनः परवान्नाथवानपि"* इत्यमरः॥ १०॥

**भावानुवाद**—दुजर्नताके अनुसार दण्ड एवं मूढ़ता हेतु क्षमा, ये दोनों सम्भव होनेपर भी परम दयालु आप मुझे क्षमा ही करें। इसके लिए ब्रह्माजी कह रहे हैं—हे अच्युत! आप महाकृपालुता आदि गुणोंसे सदैव युक्त रहते हैं, कभी च्युत नहीं होते हैं। मैं महानीच हूँ, अतिहीनसे भी हीन हूँ। अतएव *"दीने दयाधिके स्पर्द्धा"* अर्थात् दीनोंपर दया और समर्थवानके प्रति स्पर्द्धा—इस नीतिके अनुसार आप

मेरा अपराध क्षमा करें। अपनी महानीचता दिखा रहे हैं—आपकी मायाशक्तिके धूलकणके बराबर बिन्दुमात्र रजोगुणसे मेरा जन्म होनेके कारण मैं आपका माहात्म्य जान नहीं सकता, इसीलिए मैं अपने प्रति पृथक् ईश्वर या सृष्टिकर्त्ताका अभिमान करता हूँ। आपकी मायाशक्तिके प्रभावसे प्रगाढ़ तमोगुणके द्वारा मेरे दोनों नेत्र अन्धे हो गये हैं अथवा जगत्-कर्त्ता होनेके गर्वसे मेरे दोनों नेत्र अन्धे हो गये हैं। अतएव यदि मेरे प्रति आपकी करुणारूपी चन्द्रका उदय हो जाय, तो मेरा गर्वरूप अन्धकार दूर हो जायेगा तथा मैं आपका दर्शन कर सकूँगा, इसके अतिरिक्त किसी दूसरे उपायसे यह सम्भव नहीं है।

यदि कहें कि क्या सोचकर तुम्हें क्षमा करूँ? इसके उत्तरमें ब्रह्माजी कह रहे हैं—यह ब्रह्मा मेरे अनुग्रहका पात्र है, क्योंकि अन्यत्र इसका प्रभुत्व अभिमान रहनेपर भी यह मेरा दास ही है। अथवा मूढ़ताके कारण यद्यपि यह अपनेको मुझसे स्वतन्त्र मान रहा है, परन्तु वास्तवमें यह मेरी मायाके अधीन होनेके कारण मेरे ही अधीन है—ऐसा मानकर क्षमा कीजिये। अमरकोषमें—परतन्त्र, पराधीन, नाथवान—ये सभी पर्यायवाची शब्द हैं॥ १०॥

**क्वाहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भू-**
**संवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः ।**
**क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्या-**
**वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम्॥ ११॥**

**अन्वयः**—[हे प्रभो! आपके समक्ष मैं अति तुच्छ हूँ, इसलिए मेरा अपराध क्षमा कर दीजिये] तमोमहदहं खचराग्निवार्भू संवेष्टिताण्डघट-सप्तवितस्तिकायः (तमः-प्रकृति, महत्-बुद्धितत्त्व, खं-आकाश, चरः-वायु, अग्नि-तेज, वा-जल, भूः-भूमि—इन सबके द्वारा परिवेष्टित जो ब्रह्माण्डरूपी घड़ा है, उसके मध्यवर्त्ती साड़े तीन हाथ शरीरवाला) अहं (मैं ब्रह्मा) क्व (कहा) [और] ईदृगविधानि विगणितताण्डपराणु-चर्यावाताध्व-रोमविवरस्य (इस प्रकार पूर्वकथित अनगिनत अनन्त ब्रह्माण्ड परमाणुतुल्य जिनके रोम कूपोंमें ऐसे विचरण कर रहे हैं) वाताध्वानः गवाक्ष इव (जैसे झरोखोंसे घरमें प्रवेश करनेवाली

किरणोंमें अनगिनतकण विचरण करते हैं) [ऐसे] ते (आपकी) महित्वं (महिमा) क्व (कहाँ)॥ ११॥

**अनुवाद**—हे भगवन्! प्रकृति, महत्-तत्त्व, अहङ्कार, आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं भूमिरूप आवरणोंके द्वारा घिरे हुए ब्रह्माण्डरूपी घटके मध्यवर्त्ती साढ़े तीन हाथ परिमाणवाला शरीरधारी यह ब्रह्मा कहाँ? और जिनके रोमकूपरूपी झरोखोंमें ऐसे अनगिनत ब्रह्माण्ड परमाणुओंके समान विचरण करते हैं, ऐसी महिमायुक्त आप कहाँ? (अतः इस नगण्य व्यक्तिका अपराध क्षमा करें)॥ ११॥

**सारार्थदर्शिनी**—ननु विश्वस्रष्टाऽतिप्रसिद्ध एव न त्वमीशमानी मम तु किमैश्वर्यं तद्ब्रूहीत्यत आह—क्वेति। तमः प्रकृतिश्च महांश्चअहङ्कारश्च खमाकाशं च चरो वायुश्च अग्निश्च वार्जलं च भूश्चत्येभिस्तत्त्वैः संवेष्टितो योऽण्डघटस्तस्मिन् पातालादिसत्यलोकान्तैः स्वमानेन सप्तवितस्तिर्निकृष्टलक्षणः कायो यस्य सोऽहं क्व, ईदृग्विधानि यान्यविगणितान्यण्डानि तान्येव परमाणवस्तेषां चर्य्या निष्क्रमप्रवेशरूपं परिभ्रमणं तदर्थं वाताध्वानो गवाक्षा इव रोमविवराणि यस्य तस्य तव महित्वमैश्वर्यं क्वेति महत्स्रष्टा प्रथमपुरुषेण कृष्णस्यैक्यविवक्षयोक्तम् तेन ममश्वर्यं विक्रमो वा त्वां प्रति शलभस्य गरुडं प्रतीव न गणनार्हमिति भावः॥ ११॥

**भावानुवाद**—यदि भगवान् ऐसा कहते हैं—हे ब्रह्मन्! तुम विश्वके रचयिता होनेके कारण अति प्रसिद्ध हो, तुम्हारे हृदयमें स्वतन्त्र ईश्वर होनेका अभिमान नहीं है, और मेरा ऐश्वर्य ही क्या है, बतलाओ? इसके उत्तरमें ब्रह्माजी कह रहे हैं—*'क्वाहम्'*—कहाँ मैं और कहाँ आप? अर्थात् प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—इन समस्त तत्त्वोंसे निर्मित पातालसे लेकर ब्रह्मलोक तक जो ब्रह्माण्डरूप देह है, उसमें अपने परिमाणमें स्थित साढ़े तीन हाथका मैं एक क्षुद्र पिण्ड कहाँ? और ऐसे-ऐसे अनगिनत ब्रह्माण्डरूप परमाणुओंके निकलने तथा प्रवेशरूपी परिभ्रमणके पथस्वरूप गवाक्षकी भाँति रोमकूप-विशिष्ट आपकी महिमा कहाँ? यहाँ महत्-स्रष्टा प्रथमपुरुष कारणाब्धिशायी महाविष्णुके साथ श्रीकृष्णके ऐक्यका वर्णन किया गया है। इसलिए आपके प्रति मेरा (ब्रह्माका) ऐश्वर्य या विक्रम, गरुड़के प्रति टिड्डीके विक्रमकी भाँति अतितुच्छ, गणनाके अयोग्य है—यह भाव है॥ ११॥

**उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः,**
**किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे।**
**किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं,**
**तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः॥ १२॥**

**अन्वयः**—अधोक्षज (हे प्राकृत ज्ञानसे अतीत परमतत्त्व!) गर्भगतस्य (माताके गर्भमें स्थित सन्तानके द्वारा) पादयोः उत्क्षेपणं (पैर चलानेपर) किं मातुः आगसे (क्या माता उसका कोई अपराध) कल्पते (ग्रहण करती है?) [उसी प्रकार मुझे भी अपने गर्भगत सन्तान मानकर आप मेरे अपराधको स्वीकार न करें] अस्ति नास्ति व्यपदेश भूषितं (इस ब्रह्माण्डमें भाव-अभाव या स्थूल-सूक्ष्म, कार्य-कारण आदि शब्दवाच्य) कियत् अपि (कोई भी वस्तु) तव कुक्षेः (आपके उदरसे) अनन्तः (बाहर) अस्ति किम् (है क्या? अर्थात् नहीं है)॥ १२॥

**अनुवाद**—हे अधोक्षज (प्राकृत ज्ञानके अतीत)! गर्भगत सन्तान जिस प्रकार माताके उदरमें रहकर अपने दोनों-पैर चलाती है, तो क्या माता उसे अपराध मानती है? उसी प्रकार अपनी कोखमें चराचर जगत्को धारण करनेवाले आप माता-स्वरूप हैं। मैं आपकी सन्तानके समान हूँ, अतः मेरे अपराधको ग्रहण मत कीजिये। इस ब्रह्माण्डमें भाव-अभाव, अस्ति-नास्ति, स्थूल-सूक्ष्म, कार्य-कारण आदि शब्दोंके द्वारा कहा गया कोई भी पदार्थ आपके उदरके बाहर है क्या?॥ १२॥

**सारार्थदर्शिनी**—किं च ममापराधोऽवश्यसोढव्यो यतस्त्वं मातेति द्वितीयपुरुषेण पद्मनाभेन सहैक्यं भावयन्नाह—उत्क्षेपणमिति। गर्भगतस्य शिशोः पादयोरुत्क्षेपणं मातुः किमपराधाय भवति नैव। अस्तीति नास्तीति वा व्यपदेशेन भूषितं परमतं विखण्ड्य स्वमतस्थापनं समुचितोपपत्तिभिः सत्यत्वेन मिथ्यात्वेन वा सुस्थिरीकृतं वस्तु जगद्रूपं कियदपि एकत्वभुवनात्मकमपि किं तव कुक्षेरनन्तर्बहिरस्ति अपि त्वन्तरेव अतो ममापि त्वत्कुक्षिगतत्वात् पुत्रस्य मात्रा त्वया अपराधः साढव्य एव *"पिताऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः"* इति त्वदुक्तेरित्यर्थः॥ १२॥

**भावानुवाद**—ब्रह्माजी और भी कुछ कह रहे हैं। मेरे द्वारा किया गया अपराध अवश्य ही सहन करने योग्य है, क्योंकि आप ही मेरी

माता हैं। यहाँ द्वितीय पुरुष पद्मनाभके साथ श्रीकृष्णके ऐक्यकी भावना करते हुए ऐसा कहा गया है—*'उत्क्षेपणम्'* आदि। गर्भस्थित बालकके जननीके गर्भमें पद-सञ्चालन या पदाघातको क्या माता अपराध मानती है? कभी भी नहीं। *"अस्ति-नास्ति-व्यपदेशभूषितम्"*—सत् या असत् अर्थात् कार्य और कारणके नामसे अभिहित, इत्यादि। दूसरोंके विचारोंका खण्डन और अपना पक्ष प्रस्तुत करते हुए कह रहे हैं—इस ब्रह्माण्डमें अच्छा-बुरा, सत्-असत्—जो कुछ भी है, क्या वह सब कुछ आपकी कोखसे बाहर है? नहीं, सभी कुछ आपकी कोखमें ही है, अतएव मैं भी आपकी कोखमें ही हूँ। अतएव माता जिस प्रकार गर्भगत बालकका अपराध ग्रहण नहीं करती, उसी प्रकार आप भी मेरा अपराध ग्रहण न करें। जैसे श्रीगीता (९/१७) में आपने कहा है *"पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः"*, अर्थात् मैं ही इस जगत्का पिता, माता, कर्मफल प्रदाता, पितामह आदि हूँ॥ १२॥

**जगत्रयान्तोदधिसंप्लवोदे,**
**नारायणस्योदरनाभिनालात् ।**
**विनिर्गतोऽजस्त्विति वाङ् न वै मृषा,**
**किन्त्वीश्वर त्वत्र विनिर्गतोऽस्मि॥ १३॥**

**अन्वयः**—[विशेषकर आप मेरे पिता हैं, इसलिए मेरे अपराधको क्षमा कर दें] ईश्वर (हे ईश्वर!) जगत्रयाम्भोदधिसंप्लवोदे (जिस समय प्रलयकालमें त्रिलोक समुद्रमें निमग्न हो गया था, उस समय प्रलय वारिमें अवस्थित) नारायणस्य (विष्णुके) उदरनाभिनालात् (उदरस्थित नाभिनालसे) अजः (ब्रह्मा) तु विनिर्गतः (प्रकाशित हुआ था) इति वाक् (यह पौराणिक बात है) न वै मृषा (यह मिथ्या नहीं है) [फिर भी हे ईश्वर!] त्वत् किं तु विनिर्गतः न अस्मि (क्या मैं आपसे नहीं निकला हूँ)॥ १३॥

**अनुवाद**—जिस समय प्रलयकालीन जलमें तीनों लोक निमग्न हो गये थे, उस समय उस जलमें अवस्थित नारायणके नाभिनालसे ब्रह्मा प्रकट हुए थे—ऐसा पुराण-कर्त्ता ऋषियोंने वर्णन किया है।

उनका यह कथन वास्तवमें मिथ्या नहीं हो सकता। अतः हे ईश्वर! क्या मैं आपसे निकला (उत्पन्न) हुआ आपका पुत्र नहीं हूँ?॥ १३॥

**सारार्थदर्शिनी—**ननु पुत्रो हि मातुः कुक्षेरुद्गच्छति न तु सदा कुक्षावेव तिष्ठतीति चेदत आह—जगत्त्रयस्यान्ते प्रलये य उदधीनां सम्प्लवः एकीभावस्तदुदके अजस्त्विति अन्यो निर्गतोऽस्तु न वाऽस्त्वित्यर्थः। नु भोस्तदपि त्वत्तोऽहं न विनिर्गतः अपि तु निर्गत एवेत्यर्थः॥ १३॥

**भावानुवाद—**यदि कहें कि पुत्र माताकी कोखमें रहता तो है, किन्तु सदा-सर्वदा कोखमें ही नहीं रहता, अवश्य ही वह बाहर निकलता है। इसके उत्तरमें कहते हैं—*'जगत्त्रयान्तोदधि-संप्लवोदे'*—इस आवरणयुक्त ब्रह्माण्डके प्राकृतिक प्रलयके अन्तमें सब महासागरोंके मिलनेसे एकाकार रूपमें गर्भोदक नामक एकार्णवकी परिणति होती है। उस एकार्णवके जलमें शयन करनेवाले श्रीनारायणके नाभिकमलसे ब्रह्मा निकले हैं, किन्तु दूसरा कुछ निकले चाहे न निकले—यह भाव है। अतः क्या मैं आपसे नहीं निकला हूँ? अवश्य ही मैं आपसे निकला हूँ॥ १३॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति—**श्रीनन्दनन्दनका स्तव करते हुए ब्रह्माजी पहले नन्दनन्दनके बाल-विग्रहके चरणोंमें शरणागत हुए। श्रीभगवान्‌के नाम, रूप, गुण, लीलादिसे सम्बन्धित कथाओंका तन-मन-वचन द्वारा आश्रय करनेसे भगवान् वशीभूत होते हैं। भक्ति-सम्बन्ध-रहित ज्ञान अतितुच्छ है। श्रीभगवान्‌के सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूपोंमेंसे निर्गुण स्वरूपका कुछ अनुभव भले ही कोई कर ले, परन्तु सगुण-स्वरूप सर्वथा अज्ञेय है। इसलिए ब्रह्माजीने बहुत-से तथ्योंपर विचारकर अन्तमें यह सिद्धान्त स्थिर किया कि अपने कर्मोंके द्वारा प्राप्त होनेवाले सुख-दुःखको श्रीभगवान्‌का अनुग्रह समझकर जो व्यक्ति तन, मन और वचनसे उनके चरणोंमें शरणागत होते हैं, वे ही भगवान्‌की सेवाके अधिकारी होते हैं।

यहाँ तक कहकर ब्रह्माजी मन-ही-मन विचार करने लगे कि भगवान्‌के चरणोंमें शरणागत होनेसे जीवन सार्थक हो जाता है, किन्तु अपराधी व्यक्तिकी कभी भी भगवान्‌के शरणागत होनेकी वृत्ति नहीं

होती है। अतः अब मेरी दुर्गति निश्चित है, क्योंकि मैंने नन्दनन्दनके पार्षद गोपबालकों और बछड़ोंको मायामुग्धकर और छिपाकर उन प्रभुके चरणोंमें महान अपराध किया है। अपार करुणावरुणालय नन्दनन्दन यदि मेरे इस अपराधको क्षमा कर दें, तो मैं उनके चरणोंमें शरणागत हो सकता हूँ, नहीं तो दूसरा कोई उपाय नहीं है। यह सोचकर ब्रह्मा नन्दनन्दनके चरणोंमें अपने किये हुए अपराधके लिए क्षमा प्रार्थना करने लगे, क्योंकि अपराधी व्यक्ति यदि अपना अपराध न छिपाकर उसे सबके सामने व्यक्त कर देता है, तो उससे उसका अपराध कुछ हल्का हो जाता है।

ब्रह्माजीने कहा—हे अपार करुणावरुणालय! मैं अपने अपराधकी बात क्या कहूँ? आप सर्वेश्वर हैं, विशेषकर आप मेरे प्रभु हैं। आपके द्वारा प्रदत्त मन्त्रके द्वारा उपासना करके आपकी ही प्रेरणासे मैं सृष्टिकर्त्ता बना हूँ। आप सर्वकारण कारण हैं, विशेषकर साक्षात् सम्बन्धसे आप मेरे पिता हैं, क्योंकि आपके नाभिकमलसे मेरा जन्म हुआ है। अतएव आपके चरणोंमें मैंने जो अपराध किया है, उससे बढ़कर दुर्जनता या मूर्खता और क्या हो सकती है? आप अनन्त हैं, आपके स्वरूप, ऐश्वर्य, माहात्म्य आदिका कोई भी अन्त नहीं पा सका। इसके अतिरिक्त आप परमात्मा हैं, आपकी प्रेरणाके बिना किसीकी भी कोई भी कार्य करनेकी शक्ति नहीं है, परन्तु मैंने मूर्खतावशतः आपको ही मायामुग्ध करनेका प्रयास किया। मेरे जैसे अनन्त करोड़ मायावी आपकी मायासे मुग्ध होकर पड़े हुए हैं, यह बात एकबार भी मेरी धारणामें नहीं आयी। मेरे द्वारा आपको मोहित करनेका प्रयास उसी प्रकार हास्यास्पद है, जैसे आगकी क्षुद्र चिङ्गारी स्वयं अपनी जननी अग्निको ही जलानेकी चेष्टा करे। हाय! हाय! एकबार भी मेरे मनमें यह बात नहीं आयी कि आपकी अपार महिमा-सिन्धुके सामने मैं एक अति तुच्छ धूलिकणसे भी अति क्षुद्र हूँ।

हे प्रभो! आप महानसे भी सुमहान हैं और मैं अतितुच्छसे भी तुच्छ हूँ, क्योंकि मैं रजोगुणका सङ्गी हूँ, इसलिए रजोगुणकी चञ्चलता मुझमें विशेष रूपसे विद्यमान है। प्राकृत रजोगुण तमोगुणसे पूर्ण रूपसे

मुक्त नहीं है। अतएव तमोगुणजनित मेरी मूर्खताकी भी सीमा नहीं है। इस अज्ञानताके कारण ही मैं आपके सर्वगत प्रभुत्वकी बात भूलकर स्वयं ही प्रभु बन बैठा था। रजोगुणकी चञ्चलता और तमोगुणके अज्ञानमें लिप्त होकर मेरे आठों नेत्र अन्धे हो गये थे। इसीलिए आपका साक्षात् रूपमें दर्शन करके भी मैं आपके माहात्म्य-सिन्धुकी एक बूँदको भी स्पर्श नहीं कर सका। इस कारण मैंने आपको मायामुग्धकर अपना प्रभुत्व दिखलाना चाहा था। अतएव मेरे अपराधका अन्त नहीं है। किन्तु हे प्रभो! क्या मैं आपका दास नहीं हूँ? देशकी विद्रोही प्रजा भी उस राजाकी प्रजा ही होती है। पिताका कुपुत्र भी पिताका पुत्र ही होता है। अतः प्रभो! मैं महा-अपराधी होनेपर भी आपका दास ही हूँ और आप जगन्नाथ हैं। इसलिए मुझे विश्वास है कि आप मुझे अवश्य ही क्षमा करेंगे।

हे भगवन्! आप कितने महान हैं और मैं कितना तुच्छ हूँ, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। आप सर्वकारण-कारण स्वयं-भगवान् हैं। आपकी विलासमूर्त्ति परव्योम-अधिपति नारायण हैं। उनके अंश कारणाब्धिशायी नारायण तथा उनके अंश गर्भोदकशायी नारायण हैं, जिनके नाभिकमलसे मेरा जन्म हुआ है। अतएव मैं मिट्टीके घड़ेकी भाँति नाशवान एक ब्रह्माण्डके भीतर स्थित तुच्छ जीवमात्र हूँ तथा ऐसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड जिनके लोमकूपोंसे धूलिकणोंके समान प्रकट होते हैं तथा उनमें ही प्रवेश कर जाते हैं, ऐसे कारणोदकशायी नारायणके भी आप परम अंशी स्वयं-भगवान् हैं। इसलिए मेरे जैसे तुच्छ जीवका अपराध क्षमा कर दें।

आपके द्वारा सृष्ट पदार्थोंसे ही मैं ब्रह्माण्डमें स्थित जीवोंकी देहोंका निर्माण करता हूँ, इसलिए साधारण व्यक्ति मुझे भले ही बड़ा कह सकते हैं और मैं भी आपके भजनसे विमुख होनेके कारण अपनेको बड़ा मान सकता हूँ, परन्तु अपने ही परिमाणमें साढ़े तीन हाथका देहधारी कोई व्यक्ति बड़ा नहीं होता। किन्तु जो व्यक्ति चार हाथ परिमाणका दीर्घ देहधारी होता है, वही यथार्थ बड़ा होता है। साढ़े तीन हाथकी देह लेकर जो अपनेको बड़ा होनेका अभिमान करता है, वही सबसे छोटा (क्षुद्र) होता है।

इस प्रकार नन्दनन्दनके समक्ष अपनी तुच्छता और मूर्खता ज्ञापन करनेके पश्चात् ब्रह्माजीने अन्तमें कहा—हे अनन्त ब्रह्माण्ड भाण्डोदर! कोई जननी क्या कभी अपने गर्भस्थित बालकके पैर चलानेपर रुष्ट होती है? नहीं, बल्कि प्रसन्न ही होती है, क्योंकि उसे पैर चलानेसे बालकके जीवित रहनेका अनुमान होता है। इसलिए अनन्त करोड़ जीव-समन्वित ब्रह्माण्ड जब आपके अन्दर समाहित हैं, तो आप जीवमात्रकी माता सदृश हैं। अतः जीव चाहे जितना भी अपराध क्यों न करे, जननीकी भाँति आपको उसे क्षमा करना चाहिये। अतएव हे पद्मनाभ! मैं अपनी बात अधिक क्या कहूँ। महाप्रलयके समय जब ब्रह्माण्ड जलमग्न हो जाता है, तब आप अनन्त शय्यापर शयन करते हैं एवं उस समय आपके नाभिकमलसे मेरी उत्पत्ति होती है। अतएव मैं आपका साक्षात् पुत्र हूँ, इसलिए मेरे अपराधको अवश्य क्षमा करें॥ ९-१३॥

**नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिना-**
**मात्मास्यधीशाखिललोकसाक्षी ।**
**नारायणोऽङ्गं नरभूजलायनात्,**
**तच्चापि सत्यं न तवैव माया॥ १४॥**

**अन्वयः**—[यदि कहें कि तुम नारायणके पुत्र हो, तो इसमें मेरा क्या है? इसलिए कह रहे हैं] अधीश (हे अधीश्वर!) त्वं सर्वदेहिनां आत्मा असि (आप समस्त देहधारी प्राणियोंकी आत्मा हैं) नारायणः न हि (क्या आप नारायण नहीं हैं, अर्थात् आप ही नारायण हैं) अखिल लोक-साक्षी असि (हे अधीश! आपके नारायण होनेका और भी कारण है—आप समस्त जीवोंको जानते हैं, इसलिए नारायण हैं) नरभूजलायनात् (नर अर्थात् परमात्मासे उत्पन्न चौबीस तत्त्वोंमेंसे जल जिनका आश्रय है, वे ही नारायण हैं) तत् च अपि सत्यं (वे नारायण भी आपकी ही विलासमूर्त्ति हैं) तव माया न (विराट्-स्वरूपकी भाँति आपका नारायण-स्वरूप मायिक नहीं है)॥ १४॥

**अनुवाद**—[वस्तुतः मैं आपसे ही उत्पन्न हुआ हूँ] क्या आप नारायण नहीं हैं? आप ही नारायण हैं, क्योंकि आप ही समस्त

जीवोंके आत्मा-स्वरूप हैं। नार शब्दका अर्थ है—जीवसमूह। जीवसमूहके जो अयन [आश्रय] हैं—वे नारायण आप ही हैं। हे अधीश! आप समस्त लोकोंके साक्षी हैं, अर्थात् जो समस्त लोकोंको जानता है, वही नारायण है। अतएव त्रिकालज्ञ होनेके कारण नारायण आप ही हैं। नरसे उत्पन्न चौबीस तत्त्वोंके अन्तर्गत जल ही जिनका आश्रय है, वे ही नारायण हैं। वे नारायण भी आपके अङ्ग अर्थात् विलासमूर्त्ति हैं। आप अपरिच्छिन्न (असीम) स्वरूप हैं, अतः जल आपका आश्रय किस प्रकारसे हो सकता है? अतएव आपका परिच्छिन्नत्व (सीमायुक्त होना) सत्य नहीं है, बल्कि यह आपकी माया अर्थात् अपरिच्छिन्न होते हुए भी परिच्छिन्नके समान अवस्थित होना आपकी अचिन्त्यशक्तिका ही परिचय है। अथवा वह परम सत्य है, विराट्-स्वरूपके समान आपका नारायणस्वरूप मायिक नहीं है॥ १४॥

**सारार्थदर्शिनी—**तर्हि त्वं नारायणस्य पुत्रः स्यास्तेन मम किं तत्राह—नारायणस्त्वं नहीति काक्वा नारायणो भवस्येवेत्यर्थः। हे अधीश! ईशानामप्यधिपते! *"विष्टभ्याऽहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्"* इति त्वदुक्तेः सर्वदेहिनामात्मासि आत्मत्वादेवाखिललोकसाक्षी च स च नारायणो जीवमात्रान्तर्यामित्वादात्मा साक्षी चेत्यतस्त्वदेकांश एव सोऽवगम्यते इति त्वमेव स इत्यर्थः। ननु, ब्रह्मन्नहं कृष्णवर्णत्वात् कृष्णनामा वृन्दावनस्थः। स तु नारशब्दोक्तजलस्थत्वान्नारायणनामेत्यतः। कथमहमेव स इति *"तत्राह—नरभूजलायनात्"—"आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः"* इति निरुक्तेर्नरोद्भूतजलवर्त्तित्वात् यो नारायणः स तवाङ्गं त्वदंशत्वादिति भावः। अतस्तत्कुक्षिगतोऽप्यहं त्वत्कुक्षिगत एव। किञ्च, स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्येत्युक्त्या तव बालवपुर्वासुदेववपुश्च सच्चिदानन्दमयत्वेनैव वर्णितं तथा तच्चाप्यङ्गं नारायणाख्यं सत्यं सर्वकालदेशवर्त्ति-शुद्धसत्त्वात्मकमेव न तु वैराजस्वरूपमिव मायया मायिकमित्यर्थः। चकारादन्यदपि मत्स्य कुर्माद्यङ्गं सत्यम्॥ १४॥

**भावानुवाद—**यदि कहें कि तब तो तुम नारायणके पुत्र हो, तुमसे मेरा क्या सम्बन्ध है? इसके उत्तरमें ब्रह्माजी कहते हैं—क्या आप नारायण नहीं हैं? विनीत उक्ति द्वारा कह रहे हैं, अवश्य ही आप नारायण हैं—यह अर्थ है। हे अधीश! आप समस्त ईश्वरोंके भी अधिपति हैं। *"विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्"* (श्रीगी॰

१०/४२) अर्थात् "मैं इस चित्-अचित् समस्त जगत्को प्रकृतिके अन्तर्यामी पुरुषके रूपमें एकांशमें धारणकर अवस्थित हूँ।" आपके इस वचनसे स्पष्ट है कि समस्त देहधारी जीवोंमें आप अन्तर्यामी स्वरूपमें अवस्थित हैं एवं अखिल लोकोंके साक्षी हैं, अर्थात् लोकसमूहके साक्षात् दर्शनकारी होनेके कारण समस्त जीवोंके ज्ञाता हैं। वे नारायण जीवमात्रके अन्तर्यामी होनेके कारण आत्मा और साक्षी हैं। अतः वे आपके ही एक अंश (विलास-विग्रह) होनेके कारण आप ही नारायण हैं। यदि कहें कि हे ब्रह्मन्! मैं कृष्णवर्णका होनेके कारण कृष्ण नामसे प्रसिद्ध हूँ तथा वृन्दावनमें रहता हूँ, किन्तु नार अर्थात् जल ही जिनका आश्रय है—इस प्रकारके अर्थसे वे नारायण मुझसे अवश्य ही भिन्न होंगे। इसके उत्तरमें कहते हैं *'नरभूजलायतात्'—'आपो नारा'* इत्यादि इन शास्त्रवाक्योंके अनुसार नर अर्थात् परमात्मासे (महदादि एवं उनसे) उत्पन्न होनेके कारण जलको 'नारा' कहा गया है। भगवान् उस जलमें अधिष्ठित रहते हैं, इसलिए उन्हें नारायण कहा गया है। ऐसे नारायण भी आपके ही अङ्ग अर्थात् श्रीमूर्त्ति हैं, क्योंकि वे आपके ही अंश हैं—यह भावार्थ है। अतएव उनके गर्भगत होनेपर भी मैं आपके ही गर्भगत हूँ। और भी कहते हैं *"स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य"* (श्लोक-२) अर्थात् आपके भक्तोंकी इच्छासे प्रकटित आपके रूपोंमेंसे कोई भी प्राकृत नहीं है—पहले कही गयी इस उक्तिके अनुसार आपका बाल-विग्रह और वासुदेव-विग्रह—सभी सच्चिदानन्दमय हैं। उसी प्रकार ही आपकी नारायण नामकी जो मूर्त्ति है—वह सत्य है। वह सर्वकाल और सर्व-देशवर्ती होकर भी शुद्ध-सत्त्वात्मक स्वरूप ही है, वैराज-स्वरूपकी भाँति माया-कल्पित नहीं है। 'तच्च' यहाँपर 'च'-कार का प्रयोग होनेके कारण अन्यान्य दूसरे मत्स्य, कूर्म आदि विग्रह भी सत्य हैं—यह अर्थ है॥ १४॥

**तच्चेज्जलस्थं तव सज्जगद्वपुः,**
**किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव।**
**किंवा सुदृष्टं हृदि मे तदैव,**
**किं नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि॥ १५॥**

**अन्वयः**—भगवन् (हे भगवन्!) तव तत् जगद्वपुः (जगत्का आश्रय-स्वरूप आपका शरीर) जलस्थं (कल्पके अन्तमें जलमें अवस्थित होता है—यह वाक्य) चेत् सत् (यदि सत्य है) तदा एव (तब कमल नालके मार्गसे अन्दर प्रवेशकर सौ वर्ष तक ढूँढ़नेपर भी) किं वा (क्यों) मे (मेरे द्वारा) न दृष्टम् (देखा नहीं गया) हृदि अपि (मेरे हृदयमें भी) किं नो व्यदर्शि (क्यों नहीं देखा गया) पुनः तदा एव (फिरसे तपस्या करनेके पश्चात्) सपदि एव (तत्क्षणात्) सुदृष्टम् (आपका दर्शन हुआ)॥ १५॥

**अनुवाद**—हे भगवन्! जगत्का आश्रय-स्वरूप आपका यह शरीर प्रलयकालमें जलमें अवस्थित रहता है—यदि यह सत्य है, तो उस समय कमलनालके अन्दर प्रवेशकर जब मैं आपको सौ वर्षों तक खोजता रहा, तब आपको क्यों नहीं देख सका? यदि कहें कि मुझे अन्तःकरणके द्वारा देखा जा सकता है, तो मैं अपने अन्तकरणमें भी आपको क्यों नहीं देख सका? फिर जब मैंने तपस्या की, तब उसी क्षण आपका भलीभाँति दर्शन किया। अतएव इसे आपकी माया ही कहना होगा॥ १५॥

**सारार्थदर्शिनी**—ननु, नारायणस्वरूपं तत् यदि शुद्धसत्त्वात्मकं तर्हि प्राकृते गर्भोद एव परिच्छिन्नं कुतः सदा दृश्यते न हि सर्वव्यापकस्य तस्य गर्भोदमात्रपरिच्छेदः सम्भवेत्तत्र तस्य तज्जलस्थत्वमेव न नियतमित्याह—तत् नारायणाख्यं वपुस्तव सज्जगत् सत् वर्तमानं जगत् यत्र तत् जलस्थमेव चेत् तर्हि तदैव कमलनालमार्गेणान्तः प्रविश्य सम्वत्सरशतं विचिन्वतापि मया हे भगवन्नविचिन्त्ययोग मायैश्वर्या किं न दृष्टम्। ननु, तत्तत्र जल एव स्थितं त्वया त्वज्ञानान्नदृष्टमिति चेत् तदा त्वां ध्यायता मया तदैव हृद्यपि सुष्ठु किं वा दृष्टं। तत्क्षण एव तत्रापि किं पुनर्न व्यदर्शीत्यतस्तद्वपुस्तव जलस्थत्वेन परिच्छिन्नमपि अचिन्त्यशक्त्या स्वकुक्षीगतीकृतजगत्कत्वेनापरिच्छिन्नं च। सर्वत्रैव देशे काले च वर्त्तामानमेवापि त्वदीययोगमायया आवरणप्रकाशभ्यामेव दृश्यते न दृश्यते चेत्यव गतम्॥ १५॥

**भावानुवाद**—यदि कहो कि वह नारायण-स्वरूप यदि शुद्ध सत्त्वात्मक हैं, तब प्राकृत गर्भोदकमें नित्य परिच्छिन्न अवस्थामें कैसे दिखायी देते हैं? और फिर सर्वव्यापक होनेके कारण उनका गर्भोदक मात्रमें परिच्छेद (सीमित होना) सम्भव नहीं है, इसलिए उनकी उस

जलमें स्थिति भी नियत नहीं है। इस प्रश्नके उत्तरमें ब्रह्माजी कह रहे हैं—जगत्के आश्रय-स्वरूप आपकी श्रीनारायण मूर्त्ति जलमें रहनेसे ही यदि सीमा-विशिष्ट या परिच्छिन्न होती, तो उस समय उन नारायणके नाभिकमलके नालरूप पथमें प्रवेशकर एक सौ वर्ष तक खोजते रहनेपर भी *'भगवन्! किं मे न दृष्टम्'*—हे भगवन्! हे अविचिन्त्य योगमायैश्वर्य! मैं कुछ भी क्यों देख नहीं सका? यदि कहें कि मैं उस जलमें ही था, परन्तु तुम अज्ञानके कारण मुझे देख नहीं सके, तो उसके उत्तरमें ब्रह्माजी कहते हैं—*'किंवा सुदृष्टं हृदि मे तदैव'*—यदि ऐसा ही है, तो फिर जब मैंने आपका ध्यान किया तो हृदयमें ही आपकी श्रीमूर्त्तिके उस सुन्दर स्वरूपका दर्शन कैसे किया था? फिर अगले ही क्षण उस स्थानपर ही उस मूर्त्तिका दर्शन क्यों नहीं कर सका?

अतएव सर्वव्यापी आपकी इच्छासे ही उस समय मुझे आपके दर्शन और अदर्शन दोनों ही सम्भव हुए थे। यथार्थतः आप सीमाके अन्तर्गत नहीं हैं। जलके भीतर रहते समय सीमायुक्त होनेपर भी अपनी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे अपने उदरमें जगत्को धारण करनेके कारण अपरिच्छिन्न (असीम) भी हैं। वस्तुतः सर्वत्र समस्त स्थानोंमें सर्वदा वर्त्तमान रहकर भी आप अपनी योगमायाके द्वारा आवृत और प्रकाशित होकर दृश्य और अदृश्य हुआ करते हैं—ऐसा जानना होगा॥ १५॥

**अत्रैव मायाधमनावतारे,**
**ह्यस्य प्रपञ्चस्य बहिःस्फुटस्य।**
**कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे जनन्या,**
**मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते॥ १६॥**

**अन्वयः**—मायाधमन (हे मायाशमन!) अत्र एव अवतारे (यहाँ इस अवतारमें) बहिःस्फुटस्य हि अस्य कृत्स्नस्य प्रपञ्चस्य (परिदृश्यमान इस सम्पूर्ण जगत्का) ते अन्तर्जठरे (अपने उदरमें) जनन्याः (जननी यशोदाको दर्शन कराते हुए) मायात्वं एव प्रकटीकृतं (मायामयत्वको ही प्रकाश किया है)॥ १६॥

**अनुवाद**—हे मायाका नाश करनेवाले प्रभो! अभी इस अवतारमें ही आपने माता यशोदाको अपने उदरमें इस सम्पूर्ण जगत्‌को दिखाकर इसका मायामयत्व अर्थात् अचिन्त्यशक्तिभूतत्व प्रकाशित किया है॥ १६॥

**सारार्थदर्शिनी**—ननु, यस्यैव जगतोऽन्तर्वर्त्तिनि जले तद्वपुः स्यितं तदेव जगत् तत्कुक्षौ तिष्ठतीत्यसङ्गतं न हि गृहस्यान्तवर्तिनि घटे तदेव गृहं तिष्ठेदित्यतः शुद्धसत्त्वात्मकवपुषि तस्मिन्नस्मान्मायिकादन्यदमायिकमन्यदेव वा जगद्भवेदितयवसीयते एवं च सति न तवं मत्कुक्षिगत इत्याशङ्क्य कुक्षिगतस्य जगतो बहिःष्ठजगदैक्यं वदन्नेव मायिकत्वं प्रतिपादयति—द्वाभ्यामत्रैवेति। हे मायाधमन, मायोपशमक! अस्य बहिः स्फुटस्यैव प्रपञ्चस्य कृत्स्नस्यापि अन्तर्जठरे प्रदर्शनयेति शेषः। जनन्याः जननीं। श्रीयशोदा प्रतीत्यर्थः। मायात्वं मायिकत्वम् अतो दुस्तकंयोगमायैव त्वद्वपुर्जगदन्तर्वर्त्त्यपि सर्वजगद्व्यापकं युगपदेवेति ध्वनिः। तेन साक्षात्तवापि कुक्षिगतोऽहमधुनापि वर्ते इति साक्षात् त्वमपि मन्मातेत्यनुध्वनिः॥ १६॥

**भावानुवाद**—यदि आपत्ति हो कि जगत्‌के मध्यवर्त्ती जलके भीतर वह मूर्त्ति अवस्थित है, तो फिर वही जगत् उस स्वरूपके उदरमें कैसे रह सकता है? इसका कारण है कि घरके अन्दर रखे घड़ेमें कभी भी घर नहीं रह सकता। अतएव उस शुद्धसत्त्वात्मक विग्रहमें इस मायिक जगत्‌के अतिरिक्त दूसरा अमायिक जगत् भी स्थित है, ऐसा निश्चय होता है। अतएव "तुम मेरे गर्भगत नहीं हो"—ऐसी आशङ्काकर उदरगत जगत् तथा बहिर्गत जगत्‌का ऐक्य बतानेके लिए ही *'अत्रैव'* आदिके द्वारा मायिकत्वका प्रतिपादन कर रहे हैं। *'मायाधमन्'*—हे मायाके निवारक! आपने इसी अवतारमें इस प्रत्यक्ष सिद्ध सम्पूर्ण जगत्‌को अपने उदरमें दिखानेके लिए यशोदा मैयाके प्रति योगमायाका विस्तार किया था। अतएव आपकी तर्कातीत शक्ति योगमायाने ही आपके श्रीविग्रहको जगत्‌के अन्तर्वर्ती होनेपर भी सर्वजगत्-व्यापक एवं सर्वजगत्-व्यापक होनेपर भी जगत्‌के अन्तर्वर्तीके रूपमें प्रकाशित किया था—ऐसा ध्वनित होता है। इसके द्वारा आज भी मैं आपके उदरमें स्थित हूँ, अतएव साक्षात् रूपसे आप ही मेरी माता हैं॥ १६॥

**यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा।**
**तत् त्वय्यपीह तत् सर्वं किमिदं मायया बिना॥ १७॥**

**अन्वयः**—[यदि कहें कि बाहरमें जो कुछ है, वह सत्य है, किन्तु उदरमें जो कुछ दीख रहा है, वह प्रतिबिम्ब होगा, तब इस विषयमें कह रहे हैं] यस्य कुक्षौ सात्मं (आपके उदरमें आपके साथ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड) यथा भाति (जैसे प्रकाशित होते हैं) तत् सर्वम् इह अपि (उसी प्रकार बाहरमें भी प्रकाश पाते हैं) त्वयि मायया बिना किम् (आपकी मायाके बिना ऐसा कुछ भी सम्भव नहीं है) [यदि प्रतिबिम्ब होता, तो वह विपरीत रूपमें दिखायी देता। दर्पणमें जैसे दर्पणका प्रतिबिम्ब नहीं होता, वैसे ही दर्पण स्थानीय आपमें भी आपका प्रतिबिम्ब नहीं दिखायी देता]॥ १७॥

**अनुवाद**—हे भगवन्! आपके उदरमें आपके साथ यह सारा परिदृश्यमान जगत् जैसे प्रकाशित हो रहा है, वैसे ही बाहर भी प्रकाशित हो रहा है—यह आपकी माया अर्थात् अचिन्त्य ऐश्वर्यके अतिरिक्त और क्या हो सकता है? [इसे बाह्य जगत्का प्रतिबिम्ब नहीं बोला जा सकता, क्योंकि यदि यह प्रतिबिम्ब होता, तो उलटा दीखता, एवं दर्पणमें जिस प्रकार दर्पणका प्रतिबिम्ब नहीं होता, उसी प्रकार आदर्श स्थानीय आपमें भी आपका प्रतिबिम्ब नही दीखता—यही तात्पर्य है]॥ १७॥

**सारार्थदर्शिनी**—कुक्षिस्थबहिःष्ठयोर्जगतोरनयोः सर्वथैवाभेदादेवैक्यमैक्यादेव कुक्षिस्थस्य मायिकत्वमवधारितमित्याह–यस्य तव कुक्षौ इदं विश्वं यथा भाति तथैव इह बहिरपि स्थितं विश्वं भाति। ननु, बहिःस्थितस्य कुक्षौ प्रतिबिम्ब एवायं तत्राह–सात्मं तत्सहितमेव। न हि दर्पणे दर्पणो दृश्यते इति भावः। तेन बहिःस्थितं मायिकमेव विश्वं त्वत्कुक्षौ दृष्टं। त्वयीति यथा कुक्षिस्थं विश्वं त्वदधिकरणकं तथा बहिष्ठमपि विश्वं त्वदधिकरणकमित्यर्थः। तत्तस्माद्वैलक्षण्यगन्धस्याप्यभावात् इदं जठरगतं विश्वं किं मायया बिना अपि तु मायिकमेव अत्र त्वज्जनन्यनुभवो मदनुभवश्च प्रमाणमतो मायिकजगन्मध्यवर्त्यहं त्वत्कुक्षिगत एव भवामीति मुहुर्विज्ञाप्यसे *"उत्क्षेपणं गर्भगतस्य"* इत्याद्यतः क्षमस्वेति भावः॥ १७॥

**भावानुवाद**—उदर एवं बाहरमें स्थित जगत्में सब प्रकारसे अभेद होनेके कारण दोनोंका ऐक्य एवं ऐक्यके कारण ही उदरमें स्थित जगत्का मायिकत्व निश्चित हुआ, इसे *'यस्य कुक्षौ'* द्वारा कह रहे हैं कि आपके उदरमें यह विश्व जैसे प्रकाशित होता है, वैसे ही बाहरमें

भी प्रकाशित होता है। यदि कहें कि बाहरमें स्थित विश्व-प्रपञ्च ही मेरे उदरमें प्रतिबिम्बित हो रहा है, तो इसके लिए कह रहे हैं—*'सात्मम्'* यह विश्व आपके साथ ही दिखायी दे रहा है। जब कि प्रतिबिम्बित होनेपर विपरीत भावसे दिखायी देता। दर्पणमें जैसे दर्पणका प्रतिबिम्ब नहीं होता है, वैसे ही दर्पण स्थानीय आपमें आपका ही प्रतिबिम्ब दिखायी नहीं देता—यह तात्पर्य है। अतएव बाहरमें स्थित मायिक विश्व ही आपके उदरमें दिखायी दिया था। *'त्वयि'*—जिस प्रकार उदरगत विश्व आपमें है, उसी प्रकार बाहरमें स्थित विश्व भी आपमें अवस्थित है—यह अर्थ है। अतएव दोनोंमें कोई पार्थक्य न होनेपर उदरमें स्थित विश्व क्या मायाके बिना ही हुआ था। अर्थात् जिस प्रकार आपके उदरमें यह विश्व एवं आपकी मैया प्रकाश पा रहे थे, उसी प्रकार ही दोनों बाहरमें भी प्रकाश पा रहे थे। क्या वह सब मायाके बिना ही सम्भव हुआ था? अर्थात् उसे आपका माया-वैभव ही कहना होगा। इस विषयमें आपकी जननीका अनुभव एवं मेरा अनुभव ही प्रमाण हैं। इसलिए इस मायिक जगत्के मध्यवर्त्ती मैं आपके उदरमें ही हूँ। अतः मैं पुनः-पुनः निवेदन कर रहा हूँ—"माँ जैसे गर्भगत बालकका अपराध ग्रहण नहीं करती, वैसे ही आप भी मेरा अपराध क्षमा करें॥"१७॥

**अद्यैव त्वदृतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शित-**
**मेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि।**
**तावन्तोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासिता-**
**स्तावन्त्येव जगन्त्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते॥१८॥**

**अन्वयः**—[केवल अपनी मैयाको ही नहीं, मुझे भी वैसा ही दिखलाया था] अद्य एव त्वदृते (आज ही तुम्हारे बिना) अस्य (इस ब्रह्माण्डका) मायात्वं (अचिन्त्यशक्तिभूतत्व) ते (आपके द्वारा) मम (मेरे सामने) किं न आदर्शितं (क्या प्रकाशित नहीं हुआ) प्रथमं एकः असि (पहले मैंने आपको एक अद्वितीय स्वरूपमें देखा) ततः (उसके पश्चात्) समस्ता अपि व्रजसुहृद्वत्साः (व्रजके सभी बछड़े और गोपबालक आप ही हो गये) ततः (उसके बाद) मया साकं (मेरे

साथ) अखिलैः (समस्त तत्त्वोंके द्वारा) उपासिताः तावन्तः अपि चतुर्भुजाः (उपास्य चतुर्भुज हो गये) तावन्ति एव जगन्ति (उतनी संख्यामें ब्रह्माण्ड भी) अभूः (आप बने गये) तत् (उसके पश्चात् इस समय) अमितम् (अपरिसीम) अद्वय (केवल) ब्रह्म शिष्यते (अद्वय ब्रह्म स्वरूपमें अवस्थित हैं)॥ १८॥

**अनुवाद**—हे भगवन्! क्या आपने केवल माताको ही ऐसा दिखलाया था, परन्तु आपके अतिरिक्त इस ब्रह्माण्डका भी अचिन्त्य-शक्तिभूतत्व क्या आपने आज मेरे सामने भी प्रदर्शित नहीं किया है? क्योंकि पहले मैंने केवल आपका ही दर्शन किया, बादमें आप जितने गोपबालक एवं बछड़े थे, उतने रूपोंमें दिखायी दिये। उसके बाद मैंने देखा कि वे समस्त गोपबालक एवं बछड़े आदि चतुर्भुज हो गये तथा उतनी ही संख्यामें आप ब्रह्माण्डोंके रूपमें भी प्रकाशित हो गये तथा मेरे सहित अखिल तत्त्व उन सभी रूपोंकी उपासना कर रहे थे। अब इस समय आप पुनः अपरिच्छिन्न अद्वय-ब्रह्मरूपमें अवस्थान कर रहे हैं॥ १८॥

**सारार्थदर्शिनी**—किञ्च त्वत्कुक्षिगतं जगत् बहिःष्ठं तवादिपुरुषस्य रोमकूपगतं च जगत् सहस्रं सर्व मायोपादानक त्वान्मायिकमेवेत्येतावत्कालपर्य्यन्तं मया अवधारितमेव किन्तु अतर्क्यमहामहैश्वर्यस्य तव त्वदीयस्वरूपशक्त्यात्मकं चिन्मयमपि जगत्सहस्रमस्तीत्यद्यैवानुभूतमित्याह-अद्यैव अस्य मञ्जुमहिमनि मद्दृष्टस्य जगत्सहस्रस्य किं त्वद्दृते जगत् सहस्रसम्बन्धि किं वस्तु त्वद्विनाभूतं अपि तु सर्वमेव त्वत्स्वरूपभूतमेवेत्यर्थः। अतएव मम मां प्रति ते त्वया अस्य न मायात्वम् आदर्शितं किन्तु चिन्मयत्वमेव दर्शितमिति भावः। कुतः इत्यत आह—एकोऽसीति। प्रथममेकस्त्वमसि ततः स्वरूपशक्त्यैव व्रजसुहृदो बालाः वत्साः समस्ता अपि त्वमेवाभूः ततो योगमाययैव तानाच्छाद्य प्रकाशिताः स्वरूपशक्तिमयाश्चतुर्भुजास्त्वामभूः। कीदृशाः अखिलैरात्मादिस्तम्बपर्य्यन्तैश्चिन्मयैरेव मया मादृशेन ब्रह्मणापि चिन्मयेनैवोपासितास्ततश्च तावन्त्येव जगन्ति चिन्मयब्रह्माण्डान्यभूस्तत्ततो योगमायैव त्वदिच्छया तान् सर्वानाच्छाद्य प्रकाशितमपरिमितसौन्दर्यमनुपमब्रह्मपूर्णमद्वयमेकं शिष्यते सम्प्रत्यपि मद्भाग्यात् योगमायया मद्दृष्टीः प्रत्यनावृतमेव भवान् वर्त्तत इत्यर्थः। अत्र त्वमभूस्त्वमभूरितिनिर्देशेन व्रजसुहृदादीनां जगदन्तानां भगवता मायाशक्तिं विनैवाविर्भावितत्वाच्चिन्मयत्वमवधारणीयम्। माययाभूरित्यनुक्तेस्त्वद्दृते किमित्युक्तेश्च जगतां तु सुतरामेव॥ १८॥

**भावानुवाद**—ब्रह्माजी कुछ और भी कह रहे हैं—आपके उदरमें और बाहरमें स्थित जगत् एवं आदिपुरुष आपके रोमकूपगत हजारों ब्रह्माण्ड, सभी मायाके द्वारा निर्मित होनेके कारण मायिक ही हैं—ऐसा मैंने अब तक समझा था, परन्तु तर्कातीत महा-महैश्वर्य-विशिष्ट आपकी स्वरूपशक्तिसे प्रकाशित हजारों-हजारों चिन्मय ब्रह्माण्ड भी हैं—इसे आज ही मैंने अनुभव किया। इसलिए कह रहे हैं—*'अधैव'* आज ही आपने मुझे जिन हजारों जगतोंका दर्शन कराया, वे क्या आपके अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु हैं? अर्थात् वे सभी आपके स्वरूपभूत हैं—यह अर्थ है। अतएव आज मुझे आपने इस विश्वका मायात्व नहीं दिखलाया, बल्कि चिन्मयत्व ही दिखलाया है। वह कैसे? इसके लिए कहते हैं—मेरे द्वारा बछड़े आदि चुराये जानेसे पहले कृष्णरूपमें केवल आप ही थे, उसके पश्चात् स्वरूपशक्तिके द्वारा वत्स, बालक और उनके वेणु, वेत्र आदि सबकुछ आप ही बन गये। तत्पश्चात् योगमायाके द्वारा उन्हें आच्छादितकर आप स्वरूप-शक्तिमय चतुर्भुज रूप हो गये। वह कैसे? *'अखिलैः'*—मेरे जैसे चिन्मय ब्रह्माके सहित चिन्मय आत्मासे तृण तक निखिल तत्त्वोंसे उपासित होकर उतने संख्यक चिन्मय ब्रह्माण्ड भी आप ही बने। उसके पश्चात् आपकी इच्छासे योगमायाने उन सबका आच्छादनकर अपरिमित सौन्दर्य-विशिष्ट अनुपम परिपूर्ण अद्वय-ब्रह्मरूपको प्रकाशित किया। *'शिष्यते'*—अभी भी मेरे सौभाग्यवश योगमायाके द्वारा मेरी दृष्टि अनावृत होनेके कारण आप ही अवशेष रूपमें दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यहाँ आप ही बने हैं, आप ही बने हैं, इस प्रकारका निर्देश होनेके कारण स्पष्ट हो जाता है कि व्रजसुहृत एवं जगत्-समुदाय भगवान्के द्वारा मायाशक्तिके बिना ही प्रकट हुए थे, इसलिए उन सबका चिन्मयत्व सिद्ध हुआ है। यहाँ मायाके द्वारा हुआ है, ऐसा नहीं कहा गया है। आपके अतिरिक्त और क्या है—ऐसा कहनेसे विश्वसमूह भी चिन्मय थे—यह समझना चाहिये॥ १८॥

**अजानतां त्वत्पदवीमनात्म-**
**न्यात्मात्मना भासि वितत्य मायाम्।**

**सृष्टाविवाहं जगतो विधान**
**इव त्वमेषोऽन्त इव त्रिनेत्रः॥ १९॥**

**अन्वयः**—[हे ब्रह्मन्! मैंने तुम्हारे सामने शुद्ध चैतन्य-स्वरूप प्रदर्शन किया, परन्तु तुम इसे प्रपञ्च जगत्की भाँति माया कैसे कहते हो] त्वत्पदवीं (तुम्हारा स्वरूप) अजानतां (नहीं जाननेवाले) आत्मा (स्वयं ही आप) आत्मना (अपने द्वारा) अनात्मनि (प्रकृतिमें स्थित होकर स्वतन्त्र रूपसे) मायां वितत्य (मायाका विस्तारकर) जगतः सृष्टौ (संसारके निर्माणमें) अहम् इव (ब्रह्माकी भाँति) जगतः विधाने (जगत्के पालनमें) एष त्वं इव (विष्णु रूपमें) (एवं) जगतः अन्ते (संसारके विनाशमें) त्रिनेत्रः इव (महादेवकी भाँति) भासि (प्रकाशित होते हैं)॥ १९॥

**अनुवाद**—[गुणावतार श्रीविष्णुका इस श्लोकमें वर्णन हो रहा है] जो अज्ञानवश आपके स्वरूपसे अवगत नहीं हैं, उनके मतमें आत्म-स्वरूप आप ही प्रकृतिमें स्थित होकर स्वतन्त्र रूपसे मायाका विस्तार करके सृष्टिकार्यमें ब्रह्माके समान, पालनकार्यमें विष्णुके रूपमें और संहारकार्यमें शिवके समान प्रकाशित होते हैं॥ १९॥

**सारार्थदर्शिनी**—दुर्गममहिम्नस्तव चिन्मयजगतां वार्ता दूरे तावदास्तां बहिर्मुखानां मते तु त्वमपि मायोपाधिर्मायामय एव भवसीत्याह—अजानतामिति। त्वत्पदवीं त्वत्प्रापकं वर्त्म भक्तियोगमजानतां ज्ञानमानिनां तु मत त्वमनात्मनि प्रकृतौ स्थित एव आत्मैव त्वम् आत्मनैव स्वातन्त्र्येणैवेति तव जीवाद्विशेषः। मायां वितत्यैव भासि आकारशून्योऽप्याकारवत्त्वेन भातो भवसि। सृष्टौ रजोगुणेन यथाहं विधाने पालने सत्त्वेन एष तवं विष्णुरिव अन्ते तमसा त्रिनेत्रो रुद्र इवेति निराकारस्याप्यात्मनो मायिकाकारा यथा ब्रह्मविष्णुरुद्रास्तथा मायिकमेव जलस्थं नारयणरूपम् अवताराश्च सर्वे मायिकरूपा माययैव वत्सबालचतुर्भुजादीन् क्षणिकान् दर्शयामासेति ते प्राहुरित्यर्थः॥ १९॥

**भावानुवाद**—दुर्गम महिमायुक्त आपके चिन्मय जगतोंकी बात तो बहुत दूर रहे, केवल ज्ञान-अभिमानी बहिर्मुख व्यक्तियोंके मतसे आप भी माया उपाधिसे युक्त होनेके कारण मायामय हैं। इसीको *'अजानतां त्वत्पदवीम्'* द्वारा बतला रहे हैं। जो आपको प्राप्त करानेवाले भक्तियोगसे अनभिज्ञ हैं, ऐसे ज्ञान-अभिमानियोंके मतसे आत्म-स्वरूप

आप ही प्रकृतिमें स्थित होकर स्वतन्त्र रूपसे, यह जीवसे आपकी विशेषता है, *'मायां वितव्य'*—मायाका विस्तारकर प्रकाशित हो रहे हैं, अर्थात् निराकार होकर भी साकार रूपमें प्रकट होते हैं। जैसे जगत्की सृष्टि करनेके लिए रजोगुणके द्वारा मैं ब्रह्मा, जगत्का पालन करनेके लिए सत्त्वगुणके द्वारा आप विष्णु एवं संहार करनेके लिए तमोगुणके द्वारा रुद्र प्रकट हुए थे। अर्थात् वे कहते हैं—निराकार आत्मासे जैसे मायिक-आकारवाले ब्रह्मा, विष्णु, शिव हुए हैं, उसी प्रकार जलमें स्थित नारायण एवं जितने भी अवतार हैं, उन सबका रूप मायिक है और आपने ही मायाके द्वारा क्षणभरके लिए वत्स, बालक आदिका चतुर्भुज रूपमें दर्शन कराया था॥ १९॥

**सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि,**
**तिर्य्यक्षु यादःस्वपि तेऽजनस्य।**
**जन्मासतां दुर्म्मदनिग्रहाय,**
**प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च॥ २०॥**

**अन्वयः**—ईश (हे प्रभो! हे विधातः!) अजनस्य (आप वस्तुतः जन्मरहित हैं) ते (आपका) सुरेषु ऋषिषु तथा एव (देवताओंमें, ऋषियोंमें तथा) नृषु अपि तिर्य्यक्षु (मनुष्य, कीट-पतङ्गादि नीच योनियोंमें) यादःसु अपि (मत्स्य आदि जल जन्तुओंमें भी) जन्म (अवतार) असतां (दुष्टोंके दमनके लिए तथा) दुर्मदनिग्रहाय (उनके गर्वको नाश करनेके लिए एवं) सदनुग्रहाय (साधुओंके प्रति अनुग्रह प्रकाश करनेके लिए होता है)॥ २०॥

**अनुवाद**—हे ईश! आप समस्त जगत्के विधाता और स्वामी हैं। आप वस्तुतः जन्मरहित हैं, तथापि देवता, ऋषि, मनुष्य, तिर्यक् एवं मत्स्यादि रूपोंमें आपका आविर्भाव केवलमात्र दुरात्माओंके गर्वका नाश करनेके लिए और साधुओंपर अनुग्रह करनेके लिए होता है॥ २०॥

**सारार्थदर्शिनी**—अतस्तैः स्वभक्तानां पराभवाभावार्थं यत् स्वपदवीज्ञापनं प्रायस्तदर्थमेव तव सर्वेऽतारा इत्याह—सुरेष्विति। असतामसाधूनां वयमेव ज्ञानवन्त

इति यो दुष्टो मदस्तस्य निग्रहाय सतां भक्तानां स्वीयसच्चिदानन्दमयरूप-गुणलीलानुभावनयानुग्रहाय यदुक्तम् *"सत्वं नचेद्धातरिदं निजं भवेत्"* इत्यादि॥ २०॥

**भावानुवाद**—अतएव उन ज्ञानियोंके मतका खण्डनकर अपने भक्तोंकी महिमा प्रदर्शित करनेके लिए ही आप अनेक अवतार धारण करते हैं, इसे *'सुरेषु'* इत्यादि द्वारा कह रहें हैं। *'असतां दुर्मद निग्रहाय'* जो अपनेको "मैं ही ज्ञानी हूँ" ऐसा अभिमान करते हैं, ऐसे असाधुओंके अहङ्कारको दूर करनेके लिए एवं भक्तोंपर अपने सच्चिदानन्दमय रूप, गुण, लीला आदिके अनुभव द्वारा अनुग्रह करनेके लिए देवता, ऋषि, मनुष्य, तिर्यक और जलचर प्राणियोंमें आपका आविर्भाव होता है। नहीं तो, आपको जाननेमें कौन समर्थ होता? तथा दूसरा कौन ऐसा हितकारी उपदेश देता? जैसे कहा गया है—*"सत्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेत्"* (श्रीमद्भा॰ १०/२/३५), अर्थात् हे विधाता! यदि आपका यह विशुद्ध सत्वमय स्वरूप प्रकट नहीं होता, तब तो अज्ञान और अज्ञानकृत भेदको दूर करनेवाला अपरोक्ष ज्ञान भी सम्भव नहीं होता॥ २०॥

**को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन्,**
**योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ।**
**क्व वा कथं वा कति वा कदेति,**
**विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम्॥ २१॥**

**अन्वयः**—भूमन् (हे भूमन्! हे भगवन्! हे परमेश्वर! हे योगेश्वर!) क्व (कहाँ) कथं (कैसे) वा कदा कति वा योगमायां विस्तारयन् क्रीडसि (आप योगमायाका विस्तारकर क्रीड़ा करते हैं) (अहो!) भवतः ऊतीः (आपकी लीला) त्रिलोक्यां (त्रिलोकीमें) कः (कौन व्यक्ति) वेत्ति (जान सकता है)॥ २१॥

**अनुवाद**—हे भूमन्! आप अनन्त, परमात्मा और योगेश्वर हैं। आप योगमायाका विस्तार करके कब, कहाँ, किस प्रकार, किसलिए और कितनी लीलाएँ करते हैं। अहो! त्रिभुवनमें ऐसा कौन है, जो आपकी समस्त लीलाओंको जान सके?॥ २१॥

**सारार्थदर्शिनी**—ननु, कृष्णस्य मम भूभारहरणार्थमेव जन्म रामस्य रावणवधार्थमेव शुक्लाद्यवतारगणस्य तत्तत्समयधर्मप्रवर्त्तनार्थमेवेति प्रसिद्धिर्न तु ज्ञानिमानिनां दुर्मदनाशार्थम्। सत्यम् तव प्रादुर्भावादिलीलानां कुत्र कुत्र विषये किं किं प्रयोजनं कदा कदा वा कियत्यो वा ता इति कात्स्न्र्येन ज्ञातुं कोऽपि न प्रभवति इत्याह–को वेत्तीति। भूमन्, हे विश्वव्यापकानन्तमूर्त्ते! हे भगवन् भूमत्वेपि षडैश्वर्यपरिपूर्ण, हे परात्मन्, भगवत्त्वेऽपि परमात्मस्वरूप, हे योगेश्वर, योगमाययैवानुभाव्यमानभूमत्वादिमहामहैश्वर्य! ऊतीर्जन्मादिलीलाः त्रिलोक्यां त्रिलोकीमध्यवर्तिनीः लीला को वेत्ति न कोऽपि, यतः क्वा हो इत्यादि। ननु, तवानन्ता एव मूर्त्तयो विश्वव्यापिकाः षडैश्वर्यवत्यः परमात्मस्वरूपा न तु भौतिक्यः त्रैलोक्यान्तर्वर्तिनीरेव भक्तविनोदनार्था लीलाः कुर्वत्यः सर्वा एव सदैव युगपदेव क्रीडन्तीति कथं सम्भवेदित्यत आह—विस्तारयन्निति। अचिन्त्यशक्त्या योगमाययैव तत्तदुपासकभक्तान् प्रति तासां यथा समयं प्रकाशनावरणाभ्यामेव क्रीडानिर्वाह इत्यर्थः॥ २१॥

**भावानुवाद**—यदि आप कहें कि देखो, पृथ्वीका भार हरण करनेके लिए कृष्ण रूपमें मेरा आविर्भाव हुआ है, रावणके वधके लिए रामचन्द्रका अवतार हुआ है, शुक्ल आदि अवतारोंका उन-उन सामयिक धर्मोंके प्रवर्त्तनके लिए आविर्भाव हुआ है, ऐसी प्रसिद्धि है—परन्तु अपनेको ज्ञानी अभिमान करनेवालोंके प्रबल अहङ्कारका मद दूर करनेके लिए नहीं। इसके उत्तरमें ब्रह्माजी कह रहे हैं—यह सच है, किन्तु आपकी जन्म आदि लीलाएँ किस देशमें, किस समयमें, किस कारणसे, कितनी बार होती हैं, इसे सम्पूर्ण रूपसे आज तक कोई नहीं जानता। हे भूमन्! आप देश और काल द्वारा अपरिच्छिन्न या विश्वव्यापक स्वरूप हैं, उसपर भी फिर अचिन्त्य षड़ैश्वर्यसम्पन्न भगवान् होकर भी परमात्म-स्वरूप हैं। हे योगेश्वर! आप अपनी योगमायासे संयुक्त होनेके कारण इन विश्वव्यापक आदि गुणोंके कारण अचिन्त्य महा-महा-ऐश्वर्यशाली हुए हैं। हे भगवन्! त्रिलोकके अन्तर्गत आपकी जन्म आदि लीलाओंको कौन जान सकता है? कोई भी नहीं, क्योंकि आप किस समय, कहाँपर, किस रूपमें कितनी प्रकारकी लीलाएँ करते हैं, इसे कोई नहीं जान सकता? यदि कहें कि आपकी अनन्त मूर्त्तियाँ विश्वव्यापी षड़ैश्वर्यशाली परमात्म-स्वरूप हैं, परन्तु भौतिक नहीं हैं। ऐसी स्थितिमें त्रिलोकीके अन्तर्गत भक्ति-विनोदन करनेके लिए लीलाओंका सम्पादनपूर्वक ये सभी

मूर्त्तियाँ सर्वदा युगपत् क्रीड़ा कर रही हैं, यह कैसे सम्भव हो सकता है? इसके उत्तरमें कहते हैं—अपनी अचिन्त्यशक्ति योगमायाके द्वारा उन-उन उपासक भक्तोंके लिए उन मूर्त्तियोंका यथा समयमें प्रकाश और उनके आवरणके द्वारा क्रीड़ा-विलास करते रहते हैं॥ २१॥

**तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं,**
**स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम्।**
**त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनन्ते,**
**मायात उद्यदपि यत् सदिवावभाति॥ २२॥**

**अन्वयः**—तस्मात् इदम् असत् स्वरूपं (अतएव सार्वकालिक सत्तारहित अनित्य-स्वरूप) स्वप्नाभं (स्वप्नवत् अचिरस्थायी) अस्तधिषणम् (ज्ञानशून्य अतएव) पुरुदुःखदुःखम् (अतिशय दुःखदायी) अशेषं जगत् (सम्पूर्ण जगत्) नित्यसुखबोधतनौ (सच्चिदानन्द-स्वरूप) अनन्ते त्वयि एव (अनन्त, अधिष्ठान-स्वरूप आपकी आश्रित) मायातः (शक्तिसे) उद्यत् (इसकी उत्पत्ति और) अपि यत् (विनाश होता है) सत् इव (फिर भी सत्यकी भाँति) अवभाति (प्रतीत हो रहा है)॥ २२॥

**अनुवाद**—यह सम्पूर्ण जगत् अनित्य है, इसलिए स्वप्नकी भाँति अचिरस्थायी, ज्ञानशून्य, जड़ एवं अतीव दुःखप्रद है। आप सच्चिदानन्द-स्वरूप, परम ज्ञान-स्वरूप एवं अनन्त हैं। आपके आश्रित अचिन्त्यशक्तिसे ही इसकी उत्पत्ति एवं विनाश होता है, तथापि यह सत्यके समान प्रतीत होता है॥ २२॥

**सारार्थदर्शिनी**—तस्मादिदङ्कारास्पदं जगदेव मायिकं मध्यमपरिमाण-वत्वेप्येतत्परिच्छेदकं त्वद्वपुस्तु शुद्धसत्त्वात्मकमेवेति प्रकरणमुपसंहरति—तस्मादिति। असत् सार्वकालिकसत्तारहितं स्वरूपं यस्य तत् अतएव स्वप्नाभं स्वप्नवदल्पकालवर्ति न तु स्वाप्निकवस्तुवदस्य जगतो मिथ्यात्वं व्याख्येयम् *"प्रधानपुंभ्यां नरदेव सत्यकृत्"* इति सप्तमोक्तेः *"सत्यं ह्येवेदं विश्वमसृजत"* इति माध्वभाष्यप्रमाणितश्रुतेश्च अस्ता लुप्ता धिषणा ज्ञानमविद्यया यस्य तत्। नित्यमिति सन्धिनी सुखमितिह्लादिनी बोध इति संविदतः एतत्स्वरूपशक्तित्रितयात्मकत्वात् सदानन्दचिन्मय्यस्तनवो यस्य तस्मिन् त्वयि अधिष्ठाने मायातः कारणादुद्यत् उदगच्छत् अपि यत् अस्तं गच्छदपि सदिव सर्वकालिकमिव। यद्वा, यस्मात् सदनुग्राहकानि त्वत्स्वरूपाण्येव

मङ्गलानि तस्मादिदं जगदेव असत्स्वरूपम् अमङ्गलात्मकम्। ननु मिथ्याभूतस्य जगतः किं भद्राभद्रविचारेण तत्राह—स्प्नाभं स्वप्नवन्न भातीति तत् मिथ्यात्वेन न प्रतीतमित्यर्थः। किन्तु अस्तधिषणत्वात् पुरुदुःखदुःखत्वादभद्रमपि सदिव विषयानन्ददृष्ट्या उत्तममिवाभाति॥ २२॥

**भावानुवाद**—*'इदम्'* यह विश्व मायिक और मध्यम परिमाणयुक्त होनेपर भी इसका परिच्छेदक आपका श्रीविग्रह शुद्धसत्त्वात्मक है—ऐसा कहकर ब्रह्माजी *'तस्मात्'* इत्यादिके द्वारा इस प्रकरणका उपसंहार कर रहे हैं। *'असत्'*—सार्वकालिक सत्तारहित जिसका स्वरूप है, अतएव *'स्वप्नाभः'*—वह स्वप्नतुल्य क्षणिक है। परन्तु स्वप्नदृष्ट वस्तुकी भाँति इस जगत्को मिथ्या भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सप्तम स्कन्धमें कहा गया है—*"प्रधान पुंभ्यां नरदेव सत्यकृत्"* (श्रीमद्भा॰ ७/१/११) अर्थात् हे राजन्! भगवान् सर्वेश्वर सर्वस्रष्टा हैं, 'प्रकृति और पुरुष'—दोनोंकी सहयोगितासे वे कालकी भी सृष्टि करते हैं, अतएव वे कालके अधीन नहीं हैं। माध्व-भाष्यमें उद्धृत प्रमाणित श्रुतिमें कहा गया है—परमेश्वरने इस सत्य-स्वरूप विश्वकी सृष्टि की है, इत्यादि। *'अस्तधिषणम्'*—अविद्याके द्वारा बुद्धिका लोप हो जानेसे यह निखिल विश्व अशेष दुःखप्रद होता है। *'नित्य सुख बोधतनौ'* अर्थात् नित्य कहनेसे सन्धिनी, बोध-सम्वित, सुख-ह्लादिनी, अतएव इन तीनों स्वरूपशक्तियोंसे युक्त रहनेके कारण आपका श्रीविग्रह सच्चिदानन्दमय है।

*'मायातः उद्यदपि'*—आपकी मायाशक्तिसे इस जगत्की उत्पत्ति और विनाश होनेपर भी यह सार्वकालिककी भाँति नित्यवत् प्रकाशित हो रहा है। अर्थात् यह मिथ्यादिरूप विश्व प्रपञ्च भी आपके अधिष्ठानके कारण सत्यके रूपमें प्रतीत हो रहा है। अथवा—क्योंकि आपकी मूर्त्तियाँ सदनुग्रहकारी परम-मङ्गलमयी हैं, अतएव यह जगत् असत्-स्वरूप अमङ्गलात्मक है। यदि कहें—मिथ्याभूत जगत्के मङ्गल-अमङ्गलके विचारकी क्या आवश्यकता है? इसके उत्तरमें कहते हैं—*'स्वप्नाभम्'* अर्थात् यह स्वप्नकी भाँति मिथ्यारूपमें प्रतीत नहीं होता है, यह अर्थ है। किन्तु अविद्याके द्वारा बुद्धिलोप होनेसे असीम दुख प्रदान करनेवाला होनेके कारण अमङ्गलरूप होनेपर भी

*'सदिव'*—सत्यकी भाँति, अर्थात् विषयानन्द प्राप्त होनेसे उत्तमकी भाँति जान पड़ता है॥ २२॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—नन्दनन्दनके श्रीचरणोंमें क्षमा प्रार्थना करते हुए ब्रह्माजीने कहा—हे भगवन्! माँ कभी भी अपने गर्भस्थित सन्तानके पैर चलानेसे रुष्ट नहीं होती है। अतएव आप भी मेरे अपराधको ग्रहण न कीजिये, क्योंकि आप अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डोंको अपने उदरमें धारण करनेवाले हैं। समस्त जगत् एवं वहाँके समस्त जीव आपके गर्भमें स्थित हैं। विशेषकर मैं साक्षात् रूपमें आपके ही नाभिकमलसे पैदा हुआ हूँ। अतएव मेरे पिता भी आप ही हैं और माता भी आप ही हैं। पिता-माता क्या कभी अपने पुत्रका अपराध ग्रहण करते हैं?

ब्रह्माजीकी इन बातोंको सुनकर यदि नन्दनन्दन ऐसा कहते हैं कि "हे ब्रह्मन्! तुम नारायणके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए हो, अतएव नारायण तुम्हारे पिता हैं, तो फिर तुम मुझे पिता क्यों कह रहे हो?" इसके लिए ब्रह्माजीने *"नारायणस्त्वं न हि"* आदि श्लोकोंमें यह प्रतिपादन किया कि स्वयं-भगवान् नन्दनन्दन ही मूल नारायण हैं। अर्थात् ब्रह्माजीका कहना है—*"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"* श्रीमद्भागवतके इस वचनसे एवं *"तस्मात् कृष्ण एव परो देवः"* इस गोपालतापनी श्रुतिके वचनसे जाना जाता है कि गोलोकके अधिष्ठाता स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण ही मूलतत्त्व हैं एवं वे ही अनन्त वैकुण्ठों एवं अनन्त ब्रह्माण्डोंमें अनन्त मूर्त्तियोंमें अनन्त लीलाएँ करते हैं।

*गोलोक नाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य*
*देवी महेश हरि धामसु तेषु तेषु।*
*ते ते प्रभाव निचया विहिताश्च येन*
*गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि॥*

(ब्रह्मसंहिता)

जो गोलोक नामक अपने धाममें एवं निम्न-स्थित हरिधाम (परव्योम), महेशधाम (शिवधाम) एवं देवीधाम (मायिक जगत्) में अपने अचिन्त्य महाप्रभावका विस्तारकर लीला कर रहे हैं, मैं उन

सर्वमूल-स्वरूप, स्वयं-भगवान् श्रीगोविन्दके चरणकमलोंका भजन करता हूँ।

स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णकी अनन्त मूर्त्तियाँ एवं अनन्त लीलाएँ हैं। वे गोलोकमें गो, गोप, गोपी आदि पार्षदोंके साथ द्विभुज मुरलीधर-स्वरूपमें असीम माधुर्यका विस्तारकर लीलाओंका आस्वादन करते हैं। परव्योम-स्थित अनन्त वैकुण्ठोंमें चतुर्भुज शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी आदि अनन्त मूर्त्तियोंमें अनन्त ऐश्वर्य प्रकाशितकर वे ही अनन्त लीलाएँ करते हैं। श्रीभगवान्‌की वैकुण्ठ-स्थित मूर्त्तियाँ ही नारायण, महानारायण, महाविष्णु, सदाशिव आदि नामोंसे अभिहित होती हैं। श्रीभगवान्‌की गोलोक और वैकुण्ठ-स्थित मूर्त्तियोंके साथ माया या मायिक किसी वस्तुका कोई सम्बन्ध नहीं होता है। वे गोलोक और वैकुण्ठ आदि सच्चिदानन्दमय धामोंमें सच्चिदानन्दमय स्वरूपोंमें सच्चिदानन्दमय पार्षदोंके साथ सच्चिदानन्दमय नित्यलीला-रसका आस्वादन करते हैं। अनन्त वैकुण्ठोंके चारों ओरसे जो एक चिन्मय जलधारा है, उसका नाम विरजा नदी या कारणसमुद्र है। उसके बाहर सत्त्व, रजः और तमोगुणमयी प्रकृति है।

*प्रधान परव्योम्नोरन्तरा विरजा नदी*
*वेदाङ्ग स्वेदजनितैस्तोयै प्रस्राविता शुभा।*
*तस्याः पारे परव्योम त्रिपाद भूतं सनातनं*
*अमृतं श्वाश्वतं नित्यमनन्तं परमं पदम्॥*

(पद्मपुराण)

प्रधान (सत्त्व, रजः और तमोगुणमयी प्रकृति) और परव्योमके मध्यमें स्थित वेद अर्थात् नित्यसिद्ध श्रीविग्रह श्रीभगवान्‌के पसीनेसे प्रवाहित परम कल्याणदायिनी विरजा नदी है। इस विरजा नदीके परपारमें श्रीभगवान्‌की त्रिपाद-विभूति नित्य, सनातन, परमानन्दमय परमपद परव्योम धाम है।

जब श्रीभगवान्‌की संसारकी सृष्टि करनेकी इच्छा होती है, तब उनके वैकुण्ठ-स्थित श्रीनारायण मूर्त्तिके एक अंश इस कारणवारिमें शयनकर सत्त्व, रजः और तमोगुणमयी प्रकृतिके प्रति दृष्टिपात करते हैं। इन्हीं कारणार्णवशायी प्रथम पुरुषावतारका विविध शास्त्रोंमें वर्णन

है। *"तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयम्"* आदि श्रुतिवाक्य इन्हींको निर्देश करते हैं।

कारणाब्धिशायीकी दृष्टिसे प्रकृति विक्षुब्ध होकर महतत्त्व आदिके क्रमसे अनन्त ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करती है एवं श्रीभगवान् अनन्त मूर्त्तियोंमें अनन्त ब्रह्माण्डोंमें प्रवेश करते हैं। श्रीभगवान्‌की अनन्त ब्रह्माण्डोंमें प्रविष्ट अनन्त मूर्त्तियोंको ही द्वितीय पुरुषावतार गर्भोदकशायीके नामसे विविध शास्त्रोंमें जाना जाता है और पुरुषसूक्त श्रुतिमें *"सहस्रशीर्षा पुरुषः"* आदि वाक्योंमें इन्हींका स्वरूप वर्णन हुआ है।

इन गर्भोदकशायीके नाभिकमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई है एवं इस नाभिकमलके नालमें ही चतुर्दश भुवन अवस्थित हैं। उन्हींकी कृपासे ब्रह्मा सृष्टिशक्ति प्राप्तकर अनन्त जीवदेहोंकी सृष्टि करते हैं। तब श्रीभगवान् ब्रह्माण्डके मध्यस्थित क्षीरोदकसागरमें शयन करते हैं तथा अनन्त रूपोंमें अनन्त जीवोंके हृदयमें भी प्रवेशकर अन्तर्यामी या साक्षी रूपमें अवस्थान करते हैं। जीवोंके हृदयमें प्रविष्ट भगवान्‌की ये अनन्त मूर्त्तियाँ ही तृतीय पुरुषावतार—क्षीरोदशायी आदि नामोंसे परिचित हैं। *"स एष आत्मा हृदि"* आदि श्रुतिवाक्योंमें इन्हींका उपदेश पाया जाता है और *"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति"* आदि गीताके वचनोंमें भी इन्हींके विषयमें वर्णन हुआ है एवं योगीगण निर्विकल्प समाधिके द्वारा अपने हृदयमें इन्हींको ढूँढ़ते रहते हैं।

श्रीभगवान्‌की वैकुण्ठ-स्थित कारणार्णवशायी, गर्भोदकशायी एवं क्षीरोदशायी—ये तीनों मूर्त्तियाँ नारायण नामसे प्रसिद्ध हैं। स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण इन सभी मूर्त्तियोंके मूल-स्वरूप हैं। इसलिए ब्रह्माजीने मूल नारायणके रूपमें उनका प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार ब्रह्माके द्वारा प्रदर्शित शास्त्रकी युक्तियोंसे परव्योम-अधिपति नारायण, कारणार्णवशायी नारायण, गर्भोदशायी नारायण और क्षीरोदशायी नारायण एवं समस्त नारायण स्वरूपोंके मूलतत्त्व नन्दनन्दन ही हैं—ऐसा समझा जाता है। परन्तु वे सभी अपरिसीम होकर भी इस सीमाबद्ध जलमें कैसे अवस्थान करते हैं?

इसके उत्तरमें ब्रह्माजीने कहा—*"तच्चापि सत्यं न तवैव माया"*—हे भगवन्! आपके कारणवारि आदिमें विराजमान रहनेपर भी आप

प्राकृत वस्तुकी भाँति सीमाबद्ध रूपमें अवस्थित नहीं हैं, क्योंकि आपके जिस श्रीविग्रहके रोमकूपोंमें अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड धूलिकणोंकी भाँति विचरण करते हैं, वही श्रीविग्रह अपनी अचिन्त्य महाशक्तिके प्रभावसे सीमाबद्धकी भाँति ब्रह्माण्डके अन्तर्गत गर्भोदकमें, क्षीरोदकमें और जीव हृदयमें अवस्थान करते हैं। सीमाबद्ध गर्भोदक आदि स्थानोंमें विराजमान रहनेसे आपकी असीमताकी हानि नहीं होती है। असीम स्वरूपमें ही आप सीमाबद्ध होते हैं—यही आपकी 'माया' अर्थात् अचिन्त्य महाशक्तिका प्रभाव है। *"अणोरणीयान् महतो महीयान्"* अर्थात् आप अणुसे भी अणु और महानसे भी महान हैं—आदि श्रुतिवचनोंसे भी आपकी इस अचिन्त्य महाशक्तिका परिचय मिलता है।

इस प्रकार ब्रह्माने विविध प्रकारसे नारायण-तत्त्वको प्रकाशितकर मूल नारायणके रूपमें नन्दनन्दनको ही स्थापित किया एवं उनके अनन्त ब्रह्माण्ड-भाण्डोदर सर्वव्यापी सच्चिदानन्द विग्रह, ब्रह्माण्डमें स्थित गर्भोदकमें शयन करनेवाले गर्भोदकशायी नारायण एवं समस्त जीवोंके हृदयमें अन्तर्यामी क्षीरोदकशायीके रूपमें अवस्थित रहनेपर भी सभी स्वरूप अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे असीम एवं अपरिच्छिन्न हैं—यह सिद्धान्त स्थापन किया। श्रीभगवान्‌की अपार करुणाके बिना कोई भी उनकी अचिन्त्यशक्तिमें विश्वास नहीं कर सकता। इसीलिए ब्रह्माजी भगवान्‌की अपार करुणासे ही उनकी अचिन्त्य महाशक्तिका परिचय प्राप्तकर उसे प्रकाशित कर रहे हैं।

ब्रह्माजीने कहा—हे भगवन्! आपका श्रीविग्रह सीमाबद्ध है या असीम है, यह किसीकी भी समझसे परे है, क्योंकि आपके गर्भोदकशायी श्रीविग्रहके नाभिकमलसे जन्म-ग्रहणकर अपने निवास स्थानका परिचय जाननेके लिए नाभिकमलमें हजारों वर्षों तक ऊपर-नीचे ढूँढ़नेपर भी मैंने नाभिनालका अन्त नहीं पाया। उसके पश्चात् जब मैं अपनी शक्तिको तुच्छ जानकर आपके चरणोंमें शरणागत होकर ध्यानमें बैठ गया, तब आपका गर्भोदकशायी श्रीविग्रह मेरे दृष्टिगोचर हुआ एवं कुछ समय पश्चात् वह अचानक ही मेरी दृष्टिसे अन्तर्हित हो गया। इसलिए आपका श्रीविग्रह यदि सीमाबद्ध

होता, तो हजारों वर्षों तक खोजनेपर भी मैं उसका अन्त क्यों नहीं पा सका? और यदि आपका श्रीविग्रह असीम होता, तब मुझे उसका दर्शन भी कैसे होता? अतएव आपके श्रीविग्रह और आपकी लीला आदिके विषयमें जो कुछ असामञ्जस्य होता है, वह आपकी मायाके कारण ही होता है। आपकी समस्त लीलाएँ और श्रीविग्रह पूर्ण रूपसे आपकी अचिन्त्य महाशक्तिका ही विलास हैं। जो आपकी अचिन्त्य महाशक्तिपर विश्वास नहीं कर सकता, वह किसी भी प्रकारसे आपके श्रीविग्रह और लीलाके यथार्थ तत्त्वको समझ नहीं सकता।

हे मायाधीश! आप मायामुग्ध जीवोंको मायाके बन्धनसे मुक्त करनेके लिए जगत्में अवतीर्ण होते हैं एवं विविध प्रकारसे मायाका (योगमायाका) विस्तारकर लीलाएँ करते हैं। आपकी प्रत्येक लीलामें विविध रूपसे आपका अचिन्त्य-माया-वैभव प्रकाशित होता है।

ब्रह्माजीने विविध प्रकारसे भगवान्के माया-वैभवके विषयमें वर्णनकर अन्तमें कहा—हे भगवन्! दूसरोंकी तो बात ही क्या कहूँ? आज आपने कृपापूर्वक मुझे जो अपनी मायाका वैभव दिखाया है, वह भी परम आश्चर्यमय है। मैंने जब आपके बछड़ों और गोपबालकोंको मायामुग्ध और स्थानान्तरित कर दिया, तो मैंने आकाश मार्गसे देखा कि आप मुग्ध बालककी भाँति वन-वनमें उन्हें ढूँढ़ रहे हैं। उसके पश्चात् ब्रह्मलोकसे लौटकर मैंने देखा कि आप अपने सभी बछड़ों एवं गोपबालकोंके साथ क्रीड़ा कर रहे हैं। उसके पश्चात् देखते-देखते वे सभी बछड़े और बालक शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज रूपमें वनभूमिको प्रकाशित करने लगे। उस समय प्रत्येक चतुर्भुज मूर्त्तिके चरणोंमें एक-एक ब्रह्माण्डके कीटसे लेकर ब्रह्मा तक सभी जीव एवं धूलकणसे सुमेरु तक समस्त जड़-वस्तुओंके अधिष्ठातृ देवतागण उपस्थित होकर अपने-अपने अधिकारके अनुरूप उनकी सेवा कर रहे थे। उसके पश्चात् देखते-देखते वे सभी मूर्त्तियाँ अन्तर्धान हो गयीं तथा उस समय केवलमात्र आप ही मुग्ध बालककी भाँति वन-वनमें बछड़े आदि ढूँढ़ते हुए दिखायी पड़े। इसलिए मैं समझ गया कि आप सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन स्वरूप हैं, आपसे ही अनन्त करोड़ ब्रह्माण्ड प्रकाशित होते हैं और आपकी

इच्छासे स्थित होकर अन्तमें आपमें ही पर्यवसित होते हैं। इस प्रकार श्रुति आपका परिचय प्रदान करती है, परन्तु कोई भी आज तक इसे प्रत्यक्ष रूपसे देख नहीं सका। आज मैंने आपकी कृपासे अपनी आँखोंसे देखकर यह अनुभव किया है कि आप ही समस्त जगत्के मूलतत्त्व हैं। आप एक होकर भी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे बहुत रूपोंमें अवस्थित हैं, आप सर्वव्यापी होकर भी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे अनन्त ब्रह्माण्डों और ब्रह्माण्ड-स्थित अनन्त जीवोंके हृदयमें अवस्थित हैं। आपकी त्रिगुणमयी बहिरङ्गा मायाशक्तिसे अनन्त ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि, स्थिति और संहार संघटित होता है। आपकी इस बहिरङ्गा-मायाके प्रभावसे बहिर्मुख जीव देह-गृह आदिमें मैं-मेरा अभिमानकर आबद्ध हो जाते हैं। परन्तु आपके धाम, पार्षद, लीला और श्रीविग्रहका मायाके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। अचिन्त्य शक्ति-स्वरूपिणी अन्तरङ्गा-मायाके प्रभावसे ही आपकी समस्त लीलाएँ संघटित होती हैं। अज्ञ जीवगण आपकी बहिरङ्गा और अन्तरङ्गा मायाका पार्थक्य न जानकर आपकी लीला आदिको मायिक समझते हैं। आपकी कृपाके बिना कोई भी आपकी अन्तरङ्गा-मायाका वैभव नहीं जान सकता।

आपके चरणोंमें शरणागत न होकर केवल शास्त्रज्ञानके द्वारा जो आपके स्वरूपको जानना चाहते हैं, उसके लिए बहुत प्रयास भी करते हैं तथा आपको निराकार, निर्विशेष मानते हैं, ऐसे व्यक्ति महा-अपराधी हैं। वे आपके धाम, पार्षद, लीला और श्रीविग्रह आदि कुछ भी नहीं मानते। वे सत्त्व, रजः और तमः इन तीन गुणोंसे सम्बन्धित आपके विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र—इन तीनों रूपोंपर विश्वास रखते हैं एवं उन्हींसे ही जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहारका होना मानते हैं। इस प्रकार वे आपके मत्स्य, कूर्मादि अनन्त मूर्त्तियोंको भी मायिक मानते हैं। किन्तु जो आपके श्रीचरणोंमें शरणागत होकर आपकी अचिन्त्य महाशक्तिका अनुभव करते हैं, वे जानते हैं कि *"सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः"* (वराहपुराण)। श्रीभगवान्के सभी श्रीविग्रह नित्य एवं सनातन हैं। आपने जिन्हें जितनी समझनेकी शक्ति दी है, वे उतना ही समझ सकते हैं। आप समस्त जगत्के

आदि हैं एवं सर्वकारण-कारण होकर भी जगत्-जीवोंको कृतार्थ करनेके लिए विविध रूपोंमें जन्म-ग्रहण करते हैं।

आप देवकुलमें वामनरूपमें, ऋषिकुलमें परशुरामरूपमें, नरकुलमें श्रीरामचन्द्ररूपमें, पातालमें वराहरूपमें एवं जलचर कुलमें मत्स्य, कूर्मादि रूपोंमें अवतीर्ण होते हैं। भजन-परायण साधुओंकी रक्षा, शास्त्र, धर्म और धार्मिकोंके अवज्ञाकारी असाधुओंका विनाश करनेके लिए आपका अवतार होता है। जीवगण विविध कर्मफल भोग करनेके लिए देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म-ग्रहण करते हैं; परन्तु आप सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता, सर्वव्यापी, अचिन्त्य महाशक्तिसम्पन्न होकर भी देव, मनुष्य, पशु आदि विभिन्न रूपोंमें आविर्भूत होते हैं, परन्तु ज्ञानाभिमानी अशरणागत व्यक्ति इस तथ्यको नहीं समझ पाते।

हे भगवन्! आपकी इस अचिन्त्यशक्तिकी महिमाका कितना वर्णन करूँ। आपकी त्रिगुणमयी मायाशक्तिके द्वारा प्रकाशित यह परिदृश्यमान जगत् क्षणभङ्गुर और परिवर्त्तनशील है। इस जगत्में आसक्त होनेपर जीवके आत्म-स्वरूपका ज्ञान आच्छादित हो जाता है, जिससे वे पग-पगपर विविध प्रकारके दुःख भोग करते रहते हैं। जो सम्पूर्ण जगत्के अधिष्ठान-स्वरूप आपको जानते हैं, तथा आपके शरणागत होते हैं, केवल वे ही समस्त दुःखोंसे मुक्त एवं कृत-कृतार्थ होते हैं॥ १४-२२॥

**एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः,**
**सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः**
**नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः,**
**पूर्णाद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः॥ २३॥**

**अन्वयः**—एकः त्वं सत्यः (आप ही एकमात्र सत्य हैं) [क्योंकि] आत्मा (आप परमात्मा हैं, इस परिदृश्यमान जगत्से पृथक् हैं) आद्यः (आप जगत्के जन्म आदिके मूल कारण हैं) पुराणः पुरुषः (आप सृष्ट जगत्से पहले भी वर्त्तमान रहनेवाले पुराणपुरुष हैं) नित्यः (सनातन हैं) पूर्णः अजस्र सुखः (आप पूर्ण नित्यानन्द-स्वरूप हैं)

अक्षरः (कूटस्थ और अमृत-स्वरूप) अनन्तः (देशकालकी सीमासे रहित हैं) अद्वयः उपाधितः मुक्तः निरञ्जनः (आप उपाधिमुक्त निरञ्जन अर्थात् भौतिक गुणोंसे रहित, विशुद्ध और अद्वय-स्वरूप हैं)॥ २३॥

**अनुवाद**—आप ही एकमात्र सत्य हैं, क्योंकि आप ही परमात्मा हैं। आप इस परिदृश्यमान जगत्से भिन्न हैं। आप जगत्के जन्मादिके मूलकारण, पुराणपुरुष एवं सनातन हैं। आप पूर्ण, नित्यानन्दमय, कूटस्थ, विनाशसे रहित होनेके कारण अमृत-स्वरूप, उपाधिमुक्त निरञ्जन अर्थात् मायिक गुणरहित, विशुद्ध, अनन्त और अद्वय हैं॥ २३॥

**सारार्थदर्शिनी**—किञ्च तवानन्तमूर्त्तित्वेऽपि त्वमचिन्त्यशक्त्या एकमूर्त्तिरेवेत्याह-एकः इति। त्वम् एक आत्मा परमात्मेत्यर्थः। जीवात्मनां बहुत्वेनैकत्वभावात्। ननु, परमात्मा निराकार एव न पुरुषः पुरुषशब्दस्याकृतिमत्येव पदार्थे रूढेः। किमन्यः पुरुष इवार्वाचीनः न पुरातनः। ननु, नन्दपुत्रत्वादर्वाचीनोऽप्यहं पुरातनो भवतः स्तुत्यैवाभूवं न तु यथार्थतयेति तत्राह, सत्यः त्वं नन्दपुत्रोऽपि सत्यः त्रैकालिकसत्तावान् पुराणपुरुष इत्यर्थः। नन्वस्य पुरुषस्य कालकर्मादिप्रकाश्यत्वादहमपि किंतथैव। न स्वयञ्ज्योतिः त्वन्तु स्वप्रकाशः किं सूर्यादिवत् परिच्छिन्नः न अनन्तः न विद्यतेऽन्तः कालतो देशतश्च यस्य सः। नन्वन्येऽप्यवतारा एवम्भूता एव तेषामहं कतमस्तत्राह, आद्यः त्वं तेषामपि मूलभूतोऽवतारीत्यर्थः। नन्वहं द्विपरार्द्धान्ते किमेतत्स्वरूपेणैवावस्थास्यामि न वेत्यत आह, नित्यः जगदिदं पुरातनमपि सत्यमपि द्विपरार्द्धान्ते स्वरूपेणास्थायित्वादनित्यमुच्यते। त्वं तु तदापि नन्दपुत्राकारेणापि स्थास्यसीति नित्य उच्यसे। त्वदाकारस्य पूर्णब्रह्मस्वरूपत्वात् *"योऽसौ सौर्ये तिष्ठति"* इत्यादौ *"यः साक्षात् परब्रह्मेति गोविन्दं सच्चिदानन्दविग्रहं वृन्दावनसुरभूरुहतलासीनम्"* इति वा तापनीश्रुतेः। *"ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहम्"* इति त्वदुक्तेश्च। नन्वाकारवतः षड्विकारवत्त्वेन प्रतिक्षणक्षरत्वादहमपि किं तथैव। न अक्षरः नन्वाकारवन्तो ह्यवश्यमेव सुखदुःखधर्माणो भवन्ति तत्राह—अजस्रसुखः। ननु, मम बाल्ये गोपीस्तन्यदुग्धदधिघृतादिषु लोभः, पौगण्डे कालियादिषु कोपः कैशोरे गोपिकासु काम इत्यहं कामादिमालिन्ययुक्त एव, न निरञ्जनः त्वत्कामादीनामपि चिन्मयत्वात्। ननु, तदपि गोपीकादिसापेक्षत्वादपूर्णस्तु भवाम्येवेति तत्राह—पूर्णः प्रेमिभक्तसापेक्षत्वं हि न पूर्णत्व व्याहन्तीत्यर्थः। नन्वेवम्भूतो मद्विधः कोऽप्यन्यो वर्तते न वेति तत्राह, अद्वयः। ननु, सत्यमद्वयत्वात् पूर्णब्रह्मैवाहंतदपि केचिन्मां विद्योपार्धिं मन्यन्ते

तत्राह–उपाधितो मुक्त इति। *"विद्याविद्याभ्यांभिन्नः"* इति गोपालतापनीश्रुतेः। यतस्त्वममृत इति *"अमृतं शाश्वतं ब्रह्म"* इति श्रुत्युक्तममृतशब्दवाच्यं निरुपाधिब्रह्मेव। श्लेषेण न विद्यते मृतं मृत्युर्यस्मात् स इति॥ २३॥

**भावानुवाद**—ब्रह्माजी *'एकः'* इत्यादि द्वारा कुछ और भी कह रहे हैं—आपकी अनन्त मूर्त्तियाँ रहनेपर भी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे आप एकमूर्त्ति हैं। आप एक आत्मा अर्थात् परमात्मा हैं, क्योंकि जीवात्मा अनेक होनेके कारण उनमें एकत्वका अभाव है। यदि कहें कि परमात्मा तो निराकार हैं, तो इसके लिए कहते हैं—नहीं, आप पुरुष हैं। पुरुष शब्दका अर्थ आकृतिविशिष्ट पदार्थमें ही रूढ़ि है। तो क्या वे अन्यान्य पुरुषोंकी भाँति अर्वाचीन हैं? नहीं, नहीं, आप पुरातन हैं। यदि कहें कि मैं नन्दराजका पुत्र होनेके कारण अर्वाचीन होकर भी तुम्हारी स्तुतिसे पुरातन बन गया, किन्तु यथार्थ रूपमें मैं अर्वाचीन ही हूँ। इसके उत्तरमें ब्रह्माजी कहते हैं—*'सत्यः'*, आप नन्द महाराजके पुत्र रूपमें ही सत्य हैं, अर्थात् त्रैकालिक सत्ताविशिष्ट पुराणपुरुष हैं। यदि कहें कि पुरुष काल, कर्म आदिके वशीभूत होकर जन्म-ग्रहण करता है। तो मैं भी क्या वैसा ही हूँ? इसके उत्तरमें कहते हैं—नहीं, *'स्वयं-ज्योतिः'*—आप स्वप्रकाश-स्वरूप हैं। तो क्या सूर्य आदिकी भाँति मैं सीमाबद्ध हूँ? इसके उत्तरमें कहते हैं—नहीं, *'अनन्तः'*—कालतः और देशतः जिसका अन्त नहीं है, आप वही हैं। अन्य सब अवतार भी ऐसे ही हैं, तो उनमेंसे मैं किस स्थानपर हूँ? इसके उत्तरमें कहते हैं—*'आद्यः'*—उन सभी अवतारोंके मूल-स्वरूप आप स्वयं-अवतारी हैं। यदि कहें कि द्विपरार्द्ध कालके बीतनेपर महाप्रलयके समय मैं इसी स्वरूपमें रहूँगा या नहीं? इसके उत्तरमें कहते हैं—*'नित्यः'*—यह जगत् पुरातन और सत्य होनेपर भी द्विपरार्द्धके अन्तमें विनष्ट हो जाता है, इसलिए यह अस्थायी, अनित्य है, किन्तु आप उस समय भी नन्दपुत्ररूपमें ही विराजमान रहते हैं। इसलिए आप नित्य हैं, क्योंकि आपका यह नन्दनन्दनरूप ही पूर्णब्रह्म-स्वरूप है।

जैसा कि तापनीश्रुतिमें भी कहा गया है—"जो आदित्य-मण्डलमें अवस्थान कर रहे हैं, जो साक्षात् परब्रह्म हैं, वे ही कल्पवृक्षके नीचे

विराजमान सच्चिदानन्द विग्रह गोविन्द हैं, मैं उन्हींका स्मरण करता हूँ।" श्रीगीतामें भी आपकी उक्ति है—"मैं ही ब्रह्मकी प्रतिष्ठा हूँ।" यदि कहें कि उत्पत्ति आदि छह विकारयुक्त आकार-विशिष्ट पुरुषका प्रतिक्षण परिवर्त्तन होता रहता है, क्या मैं भी वैसा ही हूँ? इसके लिए कह रहे हैं—नहीं, आप अक्षर अर्थात् क्षयसे रहित हैं। यदि कहें कि आकृति या रूपवाले व्यक्ति अवश्य ही सुख-दुःख भोग करते हैं। इसके लिए कह रहे हैं—*'अजस्रसुखः'* आप अनियमित सुख-स्वरूप हैं। यदि कहें कि देखो, मैं बचपनमें मातृ-स्थानीय गोपियोंका स्तन पान करता था तथा दही, मक्खनका मुझे बड़ा लोभ था। पौगण्ड अवस्थामें मैंने कालिय आदिपर क्रोध किया तथा कैशोर अवस्थामें गोपियोंके प्रति काम भावको व्यक्त किया, इससे मैं कामी और क्रोधी भी हूँ। इसके उत्तरमें कहते हैं—*'निरञ्जनः'* नहीं, आप सर्वदोष-विवर्जित निर्मल हैं, क्योंकि आपका काम आदि भी चिन्मय है। यदि कहें कि तब भी मैं गोपियोंमें आसक्त रहनेके कारण अपूर्ण ही हूँ। इसके उत्तरमें कहते हैं—आप पूर्ण हैं, क्योंकि प्रेमी भक्तोंकी अपेक्षा रखनेसे आपके पूर्णत्वकी हानि नहीं होती। यदि कहें कि मेरे समान दूसरा कोई है या नहीं? इसपर कह रहे हैं—*'अद्वयः'*, आप अद्वितीय, अनुपम हैं। न तो कोई आपके समान है, न आपसे बढ़कर है। यदि कहें कि यह सच है, अद्वय होनेके कारण मैं ही पूर्णब्रह्म हूँ, परन्तु फिर भी कोई-कोई मुझे विद्या-उपाधियुक्त मानते हैं। इसके उत्तरमें कह रहे हैं—*'उपाधितः मुक्तः'*—आप विद्या और अविद्या दोनों उपाधियोंसे मुक्त हैं। गोपालतापनी श्रुतिमें कहा है—विद्या और अविद्यासे आप भिन्न हैं, क्योंकि आप *'अमृतः'*—विनाश-रहित हैं, *'अमृत शाश्वत ब्रह्म'*—इस श्रुति वचनके अनुसार आप ही अमृत शब्दवाच्य निरुपाधि ब्रह्म हैं। श्लेष अर्थमें—जिनका आश्रय ग्रहण करनेसे जीव अमृतत्व प्राप्त करता है, वही आप हैं॥ २३॥

**एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि,**
**स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते।**
**गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषा,**
**ये ते तरन्तीव भवानृताम्बुधिम्॥ २४॥**

**अन्वयः**—[इस प्रकारके ज्ञानसे मुक्ति होती है, इसीका वर्णन कर रहे हैं—] ये (जो व्यक्ति) गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषा (गुरुरूपी सूर्यसे ज्ञानरूपी चक्षु प्राप्तकर) सकलात्मनां (समस्त जीवोंके आत्मा-स्वरूप) स्वात्मानं (साक्षात् परमात्मा-स्वरूप) एवम्बिध त्वं आत्मात्मतया (इस प्रकार आपको आत्माके आत्मा परमात्मा रूपमें) विचक्षते (दर्शन करते हैं) ते (वे सभी) भवानृताम्बुधिं (इस मैं और मेरा अभिमानरूप भवसमुद्रसे) तरन्ति इव (मानो पार हो जाते हैं)॥ २४॥

**अनुवाद**—जो व्यक्ति महाजन गुरुरूपी सूर्यसे तत्त्वज्ञानरूप चक्षु प्राप्त करके समस्त जीवोंके आत्मा-स्वरूप आपको परमात्माके रूपमें दर्शन कर लेते हैं, वे इस 'मैं' और 'मेरा' मिथ्याभिमानरूप भवसागरसे मानो पार हो जाते हैं॥ २४॥

**सारार्थदर्शिनी**—किञ्च त्वदीयनिर्विशेषब्रह्मस्वरूपोपासका अपि त्वयि पुरुषाकार-स्वरूपे परमात्मत्वेन भक्त्या भाग्यवशाद् यदि प्राप्तनिष्ठाः स्युस्तर्हि ते शान्तभक्ताः सङ्गीयन्त इत्याह-एवम्बिधमुक्तलक्षणं त्वां सकलात्मानां सर्वजीवात्मनां स्वात्मानं मुर्त्तत्वेन मनोनयनाह्लादकत्वात् शोभनमात्मानं पुरुषस्वरूपमेव आत्मात्मत्या परमात्मत्वेन भक्त्या ये पश्यन्ति *"परमात्मतया कृष्णे जाता शान्तीरतिर्मते"* इति श्रीभक्तिरसामृतोक्तेः। केन? गुरुरेवार्कस्तस्माल्लब्धाऽध्ययनेन प्राप्ता या उपनिषत् सैव सुचक्षुस्तेन तदर्थवगाहनोत्थेन ज्ञानेन भव एव अनृताम्बुधिस्तं तरन्तीव॥ २४॥

**भावानुवाद**—आपके निर्विशेष ब्रह्म-स्वरूपके उपासकगण पुरुषाकार-स्वरूप आपकी परमात्माके रूपमें भक्तिकर सौभाग्यवशः यदि उसमें निष्ठा प्राप्त करते हैं, तब वे शान्तभक्त कहलाते हैं। यहाँ इसीका वर्णन कर रहे हैं—*'एवम्बिधं त्वाम्'* पूर्वोक्त पुरुषरूप आपको *'सकलात्मनां स्वात्मानम्'* समस्त जीवोंकी आत्मा अर्थात् साकार होनेके कारण मन और नयनोंके आनन्द-वर्द्धनकारी परमपुरुष आपकी परमात्मा रूपमें भक्ति करके आपका दर्शन भी करते हैं।

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु (२/५/१८) में कहा गया है—*"परमात्मया कृष्णे जाता शान्ति रतिर्मताः"* अर्थात् प्रायः ही शम-प्रधान व्यक्तियोंकी परमात्मबुद्धिसे श्रीकृष्णमें ममता-गन्धरहित (श्रीकृष्ण मेरे प्रभु या सखा

हैं—ऐसी ममतासे रहित) सबके आश्रयरूपमें जो शुद्धरति उत्पन्न होती है, उसे शान्ति कहा जाता है। वे कैसे देखते हैं? इसके लिए कहते हैं—*'गुर्वर्कलब्ध'*—अर्थात् गुरुरूपी सूर्यसे प्राप्त उपनिषद्के तत्त्व-रहस्यरूप सुनिर्मल चक्षुओंसे जो आपको देखते हैं, वे ही इस जन्म-मरणादि दुःखमय संसाररूप मिथ्या सागरसे मानो पार हो जाते हैं॥ २४॥

**आत्मानमेवात्मतयाऽविजानतां,**
**तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम्।**
**ज्ञानेन भूयोऽपि च तत् प्रलीयते,**
**रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा॥ २५॥**

**अन्वयः**—आत्मानं (आपके श्रीविग्रहको) आत्मतया (ज्ञानानन्दमय स्वरूपमें न जानकर) अविजानतां तेन (अज्ञानके कारण) निखिलं प्रपञ्चितं जातं (पुनः-पुनः संसार-दशाको प्राप्त होता है) भूयः अपि (फिरसे) ज्ञानेन (ज्ञानके उदय होनेपर) तत् प्रपञ्चितम् (यह प्रपञ्च जगत् और देहके प्रति अभिमान) रज्ज्वाम् अहेः यथा (रस्सीमें सर्पकी बुद्धिकी भाँति) भोग भवाभवौ (शरीरके प्रति अभिमान) प्रलीयते (विलीन हो जाता है)॥ २५॥

**अनुवाद**—जिस प्रकार अज्ञानके कारण ही रज्जुमें सर्पकी प्रतीति होती है और ज्ञानोदय होनेपर वह प्रतीति विनष्ट हो जाती है, उसी प्रकार जो परमात्मा-स्वरूप आपको ज्ञानानन्द-स्वरूपके रूपमें नहीं जानते, उन्हें ही अज्ञानके कारण संसार-दशा प्राप्त होती है और ज्ञानका उदय होनेपर उसकी निवृत्ति हो जाती है॥ २५॥

**सारार्थदर्शिनी**—ननु, तरन्त्येव ते किमिति तरन्तीवेति ब्रूषे? तथा भवस्य चानृतत्वं वा कुतस्तत्र तेषां ज्ञानिनामाश्रयणीये विवर्त्तवादमते जगदिदमनृतमेव तत् तरणमप्यनृतमेवेत्यतस्तरन्तीवेत्युच्यते इत्याह द्वाभ्याम्। आत्मानञ्जीवम् आत्मतया ज्ञानानन्दमयात्मत्वेन अविजानतां किन्तु अविद्यया आवरणात् ज्ञातुमशक्नुवतां नैव जानतां तेनैवाज्ञानेन निखिलं प्रपञ्चितं सर्वः संसारोऽभूत्। भूयः पुनश्च साङ्ख्ययोगवैराग्य-तपोभक्तिभिरात्मनो देहव्यतिरिक्तत्वेन यज्ञानंज्तेन तत्सर्वं प्रपञ्चितं विलीयते। यथा रज्ज्वाम् अहेर्भोगस्य सर्पशरीरस्य अज्ञानज्ञानाभ्यां भवाभवौ अध्यासाऽपवादौ॥ २५॥

**भावानुवाद**—पूर्व श्लोकमें—"वे उत्तीर्ण हो जाते हैं", ऐसा न कहकर, "मानो वे पार हो जाते हैं"—ऐसा क्यों कहा गया? इसके उत्तरमें कह रहे हैं—इस जगत्का मिथ्यात्व कैसा है? ज्ञानियोंके आश्रय-स्वरूप विवर्त्तवादमें जगत् मिथ्या ही है, अतएव उससे पार होना भी मिथ्या है। इसलिए कहा है—मानो पार हो जाते हैं। इसीको ही यहाँ *'आत्मानम्'* आदि दो श्लोकोंमें वर्णन कर रहे हैं। यहाँ आत्मा कहनेसे जीवात्माको समझना चाहिये। उसे ज्ञानानन्दमय रूपमें *'अविजानताम्'*—अविद्याके आवरणके कारण जो जाननेमें समर्थ नहीं हैं, उन्हें ही अज्ञानवशतः संसार-बन्धन प्राप्त होता है। फिर सांख्य, योग, वैराग्य, तपस्या और भक्तिके द्वारा देहसे पृथक् आत्माका जो ज्ञान है, उसके द्वारा यह प्रपञ्च समाप्त हो जाता है। जैसे भयवशतः रस्सीमें रस्सीका ज्ञान न होकर यह साँप है—ऐसी प्रतीति होती है, परन्तु विशेष रूपसे अनुसन्धान करनेपर रस्सीका ज्ञान होनेपर पूर्वमें अज्ञान-जनित रस्सीमें साँपका ज्ञान अवश्य ही दूर हो जाता है। [अर्थात् भ्रान्तिके कारण ही संसार दशा होती है और ज्ञानके द्वारा संसार दशाका नाश होता है]॥ २५॥

**अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्षौ,**
**द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात्।**
**अजस्रचित्यात्मनि केवले परे,**
**विचार्यमाणे तरणाविवाहनी॥ २६॥**

**अन्वयः**—[यदि कहें कि ज्ञानी व्यक्ति तो अवश्य ही तरते हैं—तब क्यों कहा कि मानो तर जाते हैं] अजस्र चित्यात्मनि (अखण्ड अनुभव-स्वरूप) परे (परम शुद्ध) केवले (आत्म-स्वरूपमें) विचार्यमाणे (तुलनात्मक रूपमें विचार करनेपर) तरणौ (सूर्यमें जैसे) अहनी (दिन और रात्रि नहीं हैं, वैसे) इव अज्ञान-संज्ञो (अज्ञान-स्वरूप) भवबन्धमोक्षौ (संसारका बन्धन और मुक्ति) [आत्मतत्त्वमें नहीं है] द्वौ नाम ऋतज्ञभावात् (अज्ञानके कारण ही दोनों बातें देखी जाती हैं, वास्तवमें यह मिथ्या है) अन्यौ नाम न स्तः (पृथक् रूपसे दूसरी सत्ता विद्यमान नहीं है)॥ २६॥

**अनुवाद**—भवबन्धन एवं उससे मोक्ष—ये दोनों ही संज्ञाएँ अज्ञानसे कल्पित हैं, इसलिए सत्यका ज्ञान इनसे भिन्न है। विचार करनेपर ज्ञात होता है कि सूर्यमें जिस प्रकार दिन और रात्रिका अस्तित्व नहीं है, उसी प्रकार माया-सम्बन्धरहित, अखण्ड-अनुभव-स्वरूप आत्मतत्त्वमें ये दोनों ही (बन्धन एवं मोक्ष) नहीं रहते, अर्थात् अनात्म धारणावशतः ही इन दोनोंकी उत्पत्ति होती है, किन्तु आत्मतत्त्वके सम्बन्धमें दोनों मिथ्या है॥ २६॥

**सारार्थदर्शिनी**—अतएव भवस्यानृतत्वम् अनृतत्वादेव तत्तरणस्याप्यनृतत्वं स्पष्टयति-अज्ञानेति। अज्ञानेन संज्ञा ययोस्तौ भवबन्धमोक्षौ भवः संसारस्तद्रूपो बन्धश्च तौ द्वौ नाम ज्ञभावो ज्ञातृत्वं ज्ञानमिति यावत् ऋतश्चासौ ज्ञभावश्च तस्मादन्यौ यौ स्तः तौ ऋतज्ञम्भावे तस्मिन्नजस्रचित्यात्मनि तत्स्वरूपे जीवे केवले देहादि सङ्गरहिते विचार्यमाणे सति न स्तः न सम्भवत इत्यन्वयः। दृष्टान्तेन दर्शयति। ये अहनी लिङ्गसमवायन्यायेन रात्र्यहनी तरणेरन्यौ स्तः। ते तु तरणौ तथा विचार्यमाणे यथा न सम्भवत इत्यर्थः॥ २६॥

**भावानुवाद**—अतएव संसार मिथ्या होनेके कारण उससे मुक्त होना भी मिथ्या है—इसीको स्पष्ट रूपसे कह रहे हैं—*'अज्ञान संज्ञौ'*, अज्ञानके द्वारा प्राप्त संसार-बन्धन और संसार-मोचन (अर्थात् मैं-मेरा रूप संसार-बन्धन और उससे मुक्ति) ये दो नाम जीवके सम्बन्धमें प्रसिद्ध रहनेपर भी यह मायाकी वृत्ति है, क्योंकि अव्यभिचारीज्ञान-स्वरूप या सत्यज्ञान-स्वरूप देहादि सङ्गरहित शुद्ध जीवात्माका बन्धन या मुक्ति है या नहीं, इसका विचार करनेपर देखा जाता है कि नित्यशुद्ध नित्यसिद्ध जीवात्माका बन्धन और मोक्ष सम्भवपर नहीं है। इस विषयमें उदाहरण—*'तरणौ अहनी इव'*—जैसे सूर्यमें दिन या रात कुछ भी नहीं है, वैसे ही जीवात्मामें बन्धन और मोक्ष कुछ भी नहीं है। अर्थात् सूर्यके उदय होनेपर दिन और उसके अभावमें रात्रि होती है, परन्तु उस दिन-रातके साथ सूर्यका कोई सम्बन्ध नहीं है। वास्तवमें कालकी वृत्तिरूप होनेके कारण सूर्यमें पृथक् रूपसे दिन या रात नहीं है, वैसे ही नित्यमुक्त जीवात्माका भी पृथक् रूपसे अज्ञानकल्पित बन्धन और मोक्ष असम्भव है॥ २६॥

**त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च।**
**आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताज्ञता॥ २७॥**

**अन्वयः**—त्वां आत्मानं परं (मूर्ख व्यक्ति परमात्मा-स्वरूप आपको) मत्वा (आपके श्रीविग्रहको मायिक देह) परं (एवं आपसे पृथक्) आत्मानं मत्वा (अनात्म वस्तुको परमात्मा मानकर) आत्मा पुनः बहिः मृग्य (आपके चरणकमलोंको परित्यागकर फिरसे बाह्य विषयोंमें आत्मतत्त्वरूप आपका अनुसन्धान करता है) अहो अज्ञजनताज्ञता (अहो, अज्ञोंकी यह कैसी मूर्खता है)॥ २७॥

**अनुवाद**—कैसा आश्चर्य है कि अज्ञ व्यक्ति परमात्मा-स्वरूप आपके श्रीविग्रहको मायिक देह एवं आपसे भिन्न अनात्म वस्तुको परमात्मा मानकर आपके चरणकमलका परित्याग करके कहीं अन्यत्र बाहरी विषयोंमें आत्मतत्त्वरूप आपको ढूँढ़ने लगते हैं। अहो! उन अज्ञानियोंकी यह कैसी मूर्खता है॥ २७॥

**सारार्थदर्शिनी**—ये त्वात्मविन्मन्याः पुरुषाकारं त्वां नाद्रियन्ते त एव पूर्वोक्ताः स्थूलतुषावघातिन इत्याह-त्वामिति। च अप्यर्थे। परमात्मानमेवापि त्वां पुरुषाकारं परं शुद्धपरमात्मानोऽन्यं मायाशबलम् आत्मानं मत्वा आत्मा परमात्मा बहिरेव मृग्यः। अहो तस्या अज्ञजनताया अज्ञता अत्यद्भुतेत्यर्थः। अयमर्थः विवर्तपरिणामादयो वादाः खलु चिद्भिन्ने मायिके जगत्येव प्रवर्तन्ते। न तु पूर्णचिति ब्रह्मणि। तथा शाब्दब्रह्मवपुर्दधदिति तृतीयात् *"यत्तद्वपर्भाति विभूषणायुधैर-व्यक्तचिद्व्यक्तमधारयद्विभुः। बभूव तेनैव स वामनः"* इत्यष्टमात्। *"सत्यज्ञानानन्तानन्द-मात्रैकरसमूर्तयः"* इति दशमात् *"गोविन्दं सच्चिदानन्दविग्रहं वृन्दावनसुरभूरुहतलासीनम्"* इति *"तासां मध्ये साक्षाद्ब्रह्मगोपालपुरी हि"* इति गोपालतापनीश्रुतेश्च पूर्णब्रह्मात्मके भगवद्वपुधमिादावपि ये तु श्रुतिस्मृतीक्षणाभावादन्धास्तत्र तत्रापि विवर्त्तमन्धपरम्परयैव प्रवर्तयन्तो भ्रश्यन्ति ते त्वहो शब्देन ब्रह्मणा स्वसृष्टौ शोच्येषु मध्ये विस्मयरसविषयी इति। अहो अज्ञजनाज्ञतेत्यपि पाठः॥ २७॥

**भावानुवाद**—जो आत्मज्ञानी होनेका अभिमान रखता है, परन्तु पुरुषाकार आपका आदर नहीं करता है, वह पूर्वमें कथित *'स्थूलतुषावघाती'* अर्थात् थोथी भूसी कूटनेवाला व्यक्ति है। इसे ही *'त्वाम्'* आदि श्लोकमें कह रहे हैं—आपके परमात्मा होनेपर भी जो

व्यक्ति आपके पुरुषाकार श्रीविग्रहको मायिक देह मानता है एवं आपसे भिन्न अनात्म-वस्तुको परमात्मा मानकर आपके चरणकमलोंका परित्यागकर बहरी विषयोंमें परमात्माका अनुसन्धान करता है, अहो! ऐसे अज्ञानियोंकी कैसी आश्चर्यजनक मूर्खता है। यहाँ तात्पर्य यह है कि विवर्त्तवाद और परिणामवाद इस मायिक जगत्के सम्बन्धमें ही (शास्त्रोंमें) कहे गये हैं, परन्तु पूर्णचित्-स्वरूप ब्रह्मके समबन्धमें नहीं। जैसे तृतीय-स्कन्धमें कहा गया है—*"शाब्दं ब्रह्म वपुर्दधत्"* (श्रीमद्भा० ३/१२/४७), अर्थात् शब्दमय तनु होनेसे ब्रह्म (परमेश्वर) नित्य ही प्रकाशित होते हैं। अष्टम-स्कन्धमें कहा है—*"यत्तद्वपुर्भाति"* (श्रीमद्भा० ८/१८/१२) भगवान्का जो विग्रह आभूषणों और शङ्ख-चक्रादि आयुधसमूहके साथ नित्य प्रकाशमान है, उसी अव्यक्त चित्-स्वरूप विग्रहको उन्होंने व्यक्तकी भाँति प्रकाश किया था एवं उसी श्रीविग्रहमें ही माता-पिताके सामने अद्भुत चरित्रवाले नटकी भाँति वामनदेव ब्राह्मणकुमार बन गये अर्थात् श्रीहरि उसी चिन्मय मूर्त्तिमें ही वामन आकार बन गये। दशम-सकन्धमें भी वर्णन है—*"सत्य ज्ञानानन्तानन्दमात्रैक रसमूर्त्तयः"* (श्रीमद्भा० १०/१३/५४) अर्थात् सत्य, ज्ञान, अनन्त, आनन्दमात्र या विजातीय भेदरहित और सदा एक मूर्त्तिधारी बछड़ों और ग्वालबालोंकी जो प्रचुर महिमा थी, वह आत्मज्ञानरूप दृष्टिशाली ज्ञानियोंके लिए भी स्पर्शके अयोग्यरूपमें प्रतिभात होने लगी। श्रीगोपाल-तापनी उपनिषदमें वर्णन हुआ है—"श्रीवृन्दावनमें कल्पवृक्षके नीचे विराजमान सच्चिदानन्द-विग्रह श्रीगोविन्दका स्मरण करता हूँ", और भी कहा गया है—"निखिल ब्रह्माण्डोंमें साक्षात् ब्रह्मगोपाल पुरी विराजमान है।"

इससे स्पष्ट होता है कि श्रीभगवान्का श्रीविग्रह और उनके धाम, परिकर आदि सभी नित्य और पूर्णब्रह्मात्मक हैं। जो श्रुति एवं स्मृति-दर्शनके अभावमें अन्धे होकर अन्ध-परम्परामें विवर्त्तवादका आश्रय ग्रहणकर भ्रष्ट हो रहे हैं, उनके विषयमें यहाँ ब्रह्माजीने 'अहो' शब्दका प्रयोगकर अपने द्वारा सृजन किये हुए ऐसे शोचनीय व्यक्तियोंके लिए विस्मय-रसको प्रकाशित किया है॥ २७॥

**अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव,**
**ह्यतत् त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः।**
**असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेण,**
**सन्तं गुणं तं किमु यन्ति सन्तः॥ २८॥**

**अन्वयः**—[विवेकी व्यक्ति प्रत्येक स्वरूपमें परमात्माका ही अन्वेषण करते हैं] अनन्त (हे अनन्त!) सन्तः (साधुगण) अतत् त्यजन्तः (जड़ भावका परित्यागकर) अन्तर्भवे एव (चित् जड़ात्मक शरीरमें) भवन्तं मृगयन्ति (आपका अनुसन्धान करते हैं) [असत्य वस्तुका अभिमान त्याग नहीं करनेसे वास्तव सत्यका अनुभव नहीं होता है] अन्ति (निकटमें) असन्तं (अविद्यमान) अपि अहि (सर्पके) अन्तरेण (भ्रमका त्याग किये बिना) सन्तः (लोग) किमु (क्या) सन्तं (विद्यमान) तं गुणं (उस रज्जुको) यन्ति (जान सकते हैं?) [इसलिए सर्पका भ्रम त्याग किये बिना रस्सीकी बुद्धि कैसे होगी]॥ २८॥

**अनुवाद**—रस्सीमें प्रतीयमान मिथ्या सर्प-बुद्धिका परित्याग न करनेपर क्या रज्जु-बुद्धि अर्थात् यथार्थ-ज्ञान हो सकता है? इसीलिए हे अनन्त! साधुपुरुष आपसे भिन्न प्रतीयमान जड़-विषयोंका परित्याग करके अपने हृदयमें ही आपको ढूँढ़ते रहते हैं॥ २८॥

**सारार्थदर्शिनी**—विज्ञास्तु त्वां मायोपाधित्वेन न मन्यन्ते किन्तु जीवात्मान-मेवातस्वमेव मायामालिन्यतो विच्युतीकर्तुं तमेव केवलं शुद्धं मृगयन्तीत्याह-अन्तर्भवे स्वशरीरमध्य एव वर्तमानं अनन्तभवम् अनन्ता असङ्ख्या भवा नानायोनिषु जन्मानि यस्य तं प्रसिद्धमल्पज्ञं जीवात्मानं मृगयन्ति। किं कुर्वन्तः? अतत् आत्मभिन्नं मायिकं मायां च त्यजन्तः अपवदन्तः। ननु, चिन्मयस्य जीवात्मनो ज्ञानेनाऽलं किञ्चिद्भिन्नस्यापवादेनेत्याशङ्क्य अध्यस्तस्यापवादं बिना अधिष्ठानत्त्वं न सम्यक् ज्ञायत इति सतां व्यवहारेणाह—असन्तमिति। अन्ति समीपे असन्तमप्यहिमन्तरेण नायमहिरिति तदपवादं बिनेत्यर्थः। सन्तं गुणं रज्जुं सन्तः किमु यन्ति जानन्ति। नैव जानन्ति, तथैव *"असङ्गो ह्ययं पुरुषः"* इति श्रुतेर्जीवात्मनः स्थुलसूक्ष्मदेहसम्बन्धो नेवास्ति तत्सम्बन्धाभावादेव देहा दैहिकाः शोकमोहादयश्च तस्य नैव सन्ति। तदप्यविद्ययैव तस्मिन् जीवात्मनि देहोऽध्यस्तः। ततश्च कदाचिदुद्भूतेन ज्ञानेन नायमात्मा देह इति तस्य देहस्यासतोऽप्यपवादं विना सत्यं शुद्धं जीवात्मानं किं जानन्ति? नैव जानन्तीत्यर्थः॥ २८॥

**भावानुवाद**—ज्ञानी आपको मायिक उपाधियुक्त मानते हैं, किन्तु जीवात्माको मायाकी मलिनतासे पृथक् करनेके लिए वे केवल शुद्ध स्वरूपका अन्वेषण करते हैं। इसे ही कह रहे हैं—*'अन्तर्भवे'*—इस शरीरमें वर्त्तमान *'अनन्तभवम्'*—अनन्त अर्थात् असंख्य योनियोंमें जिनका जन्म होता है, ऐसे अल्पज्ञ जीवात्माको ढूँढ़ते हैं। कैसे ढूँढ़ते हैं? उसके विषयमें कह रहे हैं—*'अतत् त्यजन्तः'* आत्माके अतिरिक्त मायिक और मायाका निषेध करते हुए। यदि कहें कि चिन्मय जीवात्माका ज्ञान हो जाना ही यथेष्ट है, तब फिर चित्-वस्तुसे भिन्न वस्तुका निषेध करनेकी क्या आवश्यकता है? ऐसी आशङ्काका समाधान करते हुए कहते हैं कि अध्यस्त वस्तुके अपवादके बिना अधिष्ठान तत्त्वसे पूर्ण रूपसे अवगत नहीं हुआ जा सकता—सज्जनोंके इस व्यवहारके द्वारा कह रहे हैं—*'असन्तम्'* इत्यादि अर्थात् रस्सीमें साँप नहीं रहनेपर भी अविद्यमान साँपका अपवाद (निराकरण) न करनेपर विवेकी व्यक्तिके सामने रस्सीमें सर्पका भ्रम रहता है। अर्थात् यह रस्सी है, सर्प नहीं, ऐसा निश्चय नहीं हो पाता है। इसलिए रस्सीमें सर्पका भ्रम होनेपर जैसे विचारके द्वारा सर्पका भ्रम दूरकर वास्तविक रस्सीको जाना जाता है, वैसे ही साधुगण 'तन्न, तन्न' या 'नैति, नैति' आदि निरसन वाक्योंके द्वारा आपको ही ढूँढ़ते हुए प्राप्त कर लेते हैं। जैसे *'असङ्गो ह्ययं पुरुषः'*—यह पुरुष निसङ्ग है—इस श्रुतिवाक्यके अनुसार जीवात्माका स्थूल और सूक्ष्म देहके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं रह सकता। अतएव इस सम्बन्धके अभावके कारण ही जीवात्मामें देह-दैहिक शोक-मोहादि भी नहीं है। अविद्याके द्वारा ही उस जीवात्मामें देह अध्यस्त हो रहा है। उसके पश्चात् कभी ज्ञानका उदय होनेपर, *'नायम् आत्मा देहः'*—यह आत्मा देह नहीं है, ऐसा विचारकर उस अविद्यमान देहके अपवाद (निराकरण) के बिना सत्य और शुद्ध जीवात्माको क्या जाना जा सकता है? कभी नहीं॥ २८॥

**अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय-**
**प्रसादलेशानुगृहीत एव हि।**

**जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो,**
**न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्॥ २९॥**

**अन्वयः**—देव (हे देव! हे भगवन्!) अथ अपि (अनन्तर) ते पदाम्बुजद्वय-प्रसादलेशानुगृहीतः (जिन्होंने तुम्हारे चरणयुगलकी करुणाका कणमात्र भी प्राप्त किया है) एव हि महिम्नः तत्त्वं (एकमात्र वे ही आपका यथार्थ माहात्म्य) जानाति (जानते हैं) अन्यः (उनके अतिरिक्त) एकः अपि (कोई भी) चिरं (दीर्घकाल तक) विचिन्वन् (अनुसन्धान करके) न (नहीं जानते हैं)॥ २९॥

**अनुवाद**—हे देव! जिन्होंने आपके चरणकमलोंकी करुणाका कणमात्र भी प्राप्त किया है, एकमात्र वही आपके यथार्थ सच्चिदानन्दमय माहात्म्यको जान सकते हैं। इसके अतिरिक्त दीर्घकाल तक शास्त्राभ्यासके द्वारा अनुसन्धान करके अथवा योग-वैराग्यादि साधनरूप अपने प्रयत्नसे कोई भी आपकी महिमाको तत्त्वतः नहीं जान सकता॥ २९॥

**सारार्थदर्शिनी**—किञ्च, तस्य जीवात्मनो ब्रह्मसुखानुभवस्तु केवले न त्वद्भक्तिलेशेनापि भवति नान्यथेत्याह—अथापीति। यद्यपि माया मायिकसमस्तांशविच्युतः स्यात् तथा स जीवात्मा। तदपि तव पदाब्जप्रसादलेशेनानुगृहीत एव भगवतस्तव यो महिमा महिमशब्दवाच्यं ब्रह्म तस्य तत्त्वं जानाति। यदुक्तं त्वय्येव मत्स्यरूपेण—*"मदीयं महिमानं च परब्रह्मेतिशब्दितम्। वेत्स्यस्यनुगृहीतं मे संप्रश्नैर्विवृत्तं हृदि॥"* इति। व्याख्या च तत्रत्या श्रीस्वामिपादानां मे मया अनुगृहीतं तुभ्यं प्रसादीकृतं परब्रह्म वेत्स्यसीति। अत्र प्रसादलेशो गुणीभूतभक्तियोगो ज्ञानिनां पूर्वसिद्धो वर्तन एव। तेन अनुगृहीत इति अविद्यायामुपरतायां विद्यायाश्चोपरमारम्भे *"ज्ञानं च मयि संन्यसेत्"* इति भगवदुक्तेर्ज्ञानमपि त्यक्त्वा तत उर्वरितां भक्तिमेव केवलां बहुमानयंस्तामेवाभ्यसेत् यो ज्ञानी तमेव प्रसादलेशरूपो भक्तियोगोऽनुगृह्णातीत्यर्थः। यस्तु फलप्राप्तौ सत्यां न साधनोपयोग इति मत्वा ज्ञानं भक्तिञ्च त्यक्त्वा केवलब्रह्मानुभव एवोद्यतः स्यात् स एकोऽपि मुख्योऽपि ज्ञानिसहस्रगुरुर्भवन्नपीत्यर्थः। चिरं विचिन्वन् बहुशास्त्राभ्यासयोगाभ्यासाभ्यां विचारयन्नपि॥ २९॥

**भावानुवाद**—ब्रह्माजी *'अथापि'* श्लोक द्वारा कुछ और भी कह रहे हैं—उस जीवात्माको ब्रह्मसुखका जो अनुभव होता है, वह भी एकमात्र आपकी भक्तिलेशके कारण ही होता है, दूसरे प्रकारसे नहीं। यद्यपि माया और मायिक समस्त अंशसे जीवात्मा विच्युत (अलग)

भी हो जाता है, तथापि आपके चरणयुगलके यत्किञ्चित् अनुग्रहसे अनुगृहीत व्यक्ति ही आप भगवान्‌की महिमारूप ब्रह्म-स्वरूपके तत्त्वको जान सकता है। जैसे मत्स्यरूपमें आपने ही कहा है—*"मदीयं महिमानञ्च"* (श्रीमद्भा० ८/२४/३८) अर्थात् उस समय मेरे द्वारा उपदिष्ट एवं तुम्हारे प्रश्नके द्वारा हृदयमें प्रकाशित परब्रह्म शब्दसे सङ्केतित मेरी महान् महिमाको अर्थात् मेरे ही व्यापक निर्विशेष स्वरूपका तुम अनुभव करोगे। श्रील श्रीधर स्वामिपादने भी व्याख्या की है—"मेरे द्वारा अनुगृहीत अर्थात् मैं ही तुम्हें अनुग्रहपूर्वक उस परब्रह्म-स्वरूपका अनुभव कराऊँगा।" यहाँ प्रसादलेश कहनेसे गुणीभूता भक्तियोगको समझना चाहिये, वह ज्ञानियोंके लिए पूर्वसिद्ध (साधनकी पूर्व दशामें) होता है। उसके द्वारा अनुगृहीत कहनेसे अविद्या दूर होनेपर एवं विद्याका उपरम आरम्भ होनेपर "ज्ञान भी मुझमें समर्पण कर देना"—भगवान्‌की इस उक्तिके अनुसार ज्ञान साधनका भी परित्यागकर उससे भी उत्कृष्ट एकमात्र भक्तिका ही समादर करता हुआ जो ज्ञानी भक्तिका अनुशीलन करता है, उसीपर कृपालेशरूप भक्तियोग अनुग्रह करता है। किन्तु जो फल प्राप्ति होनेपर उस फल-प्राप्तिके साधनकी अब कोई उपयोगिता नहीं है, ऐसा मानकर ज्ञान और भक्तिका भी परित्यागकर केवल ब्रह्मानुभवके लिए प्रयास करता है, *'स एकोऽपि'*—वह मुख्य अर्थात् हजारों ज्ञानियोंका गुरु होनेपर भी *'चिरं विचिन्वन्'*—बहुत काल तक शास्त्राभ्यास तथा योगाभ्यासके द्वारा अन्वेषण करके भी आपको जान नहीं सकता॥ २९॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—*"नारायणस्त्वं न हि सर्व देहिनाम्"* आदि श्लोकोंमें ब्रह्माजीने बहुत प्रकारसे नारायण तत्त्वको प्रकाशितकर उसके मूल-स्वरूपमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णको स्थापित किया है एवं उसके पश्चात् कई श्लोकोंमें उनकी अचिन्त्य महाशक्तिकी महिमा प्रकाशित की है। अन्तमें उन्होंने कहा—हे भगवन्! आपकी कृपाके बिना आपके महिमा-सिन्धुकी एक बिन्दुको भी स्पर्श नहीं किया जा सकता है। आपकी कृपारहित व्यक्तिगण जैसे भी आपके स्वरूपका परिचय दें, परन्तु आप इस नराकृति परब्रह्म स्वरूपमें ही सर्वमूल-स्वरूप स्वयं-भगवान् हैं। जगत्‌में आपके द्वारा मत्स्य, कूर्म आदि अनन्त

रूपोंमें अवतीर्ण होनेपर भी आप एक हैं एवं आपकी श्रीमूर्त्तिके बहुत्वमें भी आपके स्वरूपके एकत्वकी हानि नहीं होती है। *"एकोऽपि सन् यो बहुधा विभाति"* आदि श्रुतिवाक्यसे स्पष्ट ही जाना जाता है कि आप एक होकर भी अपने लीला-रसका आस्वादन करनेके लिए अनेक रूपोंमें आविर्भूत होते हैं। आपकी कृपासे रहित व्यक्तिगण आपके बहुत्वको माया-कल्पित मानकर एकत्वको ही सत्य रूपमें स्थापन करनेकी चेष्टा करते हैं। किन्तु आपकी कृपाके बिना कोई भी आपके एक ही श्रीविग्रहके बहुत्वका माधुर्य ग्रहण नहीं कर सकता।

*अनन्त प्रकाशे कृष्णेर नाहि मूर्त्तिभेद।*
*आकार वर्ण अस्त्र भेद नाम विभेद॥*

(श्रीचै॰च॰म॰ २०/१७२)

जिन्हें सम्पूर्ण जगत् ढूँढ़ता है, ऐसे आप नन्दनन्दन व्रज-लीलामें मुग्ध बालककी भाँति दही-भातका ग्रास हाथमें लेकर वन-वनमें बछड़ों और सखाओंको ढूँढ़ रहे हैं। आप सबकी आत्मा एवं सबके मूल-स्वरूप हैं। *"आततत्वाच्च मातृत्वात् आत्माहि परमो हरिः"*—इस शास्त्रवाक्यसे स्पष्ट रूपसे जाना जाता है कि आप ही चित्-सत्तारूपमें सर्वत्र व्याप्त हैं एवं समस्त जगत् आपमें ही है। आप श्रीवृन्दावनमें सख्य-वात्सल्यादि प्रेममय गोप-गोपियोंके साथ परमानन्द रसका आस्वादन करते हैं, फिर आप ही प्रकृतिके नियन्ता, ब्रह्माण्डके नियन्ता एवं सर्व नियन्ता परमपुरुष भी हैं। प्रकृति, ब्रह्माण्ड एवं जीव-हृदयरूप त्रिविध पुरीमें आप वास करते हैं—इसलिए शास्त्रमें आपको पुरुष रूपमें वर्णन किया गया है। *"योऽसावुत्तमः पुरुषः गोपालः"*—इस श्रुतिवाक्यसे यह जाना जाता है कि गोपालरूपी स्वयं-भगवान् आप ही पुरुष रूपमें प्रकृति आदि सबके नियन्ता हैं। *"सदेव सौम्येदमग्र आसीत"* आदि श्रुतिवाक्योंसे जाना जाता है कि इस परिदृश्यमान जगत्की सृष्टिके पहलेसे ही आप सच्चिदानन्द रूपमें अवस्थित थे। फिर यह भी देखा जाता है कि आप मत्स्य, कूर्म आदि रूपोंमें जगत्में अवतीर्ण होते हैं, अतएव आप पुरा अर्थात् अनादिकालसे अवस्थित होते हुए भी नवीनकी भाँति पुनः-पुनः

आविर्भूत होते हैं, इसलिए आप 'पुराण' (पुरापि नव), *"गूढ़ पुराण पुरुषः"* आदि श्रुतिके वचनोंसे आपके इस पुराण स्वरूपका ही परिचय मिलता है। यह परिदृश्यमान जगत् एवं जागतिक सभी वस्तुएँ परिवर्त्तनशील और नश्वर हैं। कोई भी वस्तु त्रिकाल-स्थायी नहीं है। एकमात्र आप ही सत्य हैं। आप अपनी नित्य और सत्य मूर्त्तिमें जगत्में आविर्भूत और तिरोहित होते हैं एवं जगत्की सभी नश्वर वस्तुओंके अधिष्ठानके रूपमें आप अवस्थित हैं।

*सत्ये प्रतिष्ठित कृष्णे सत्यमत्र प्रतिष्ठितम्।*
*सत्यात् सत्यो हि गोविन्दस्तस्मात् सत्यो हि नामतः॥*

(श्रीमहाभारत)

महाभारतके इस वचनसे जाना जाता है कि श्रीकृष्णमें सत्य प्रतिष्ठित है एवं सत्यमें श्रीकृष्ण प्रतिष्ठित हैं। जगत्में जो कुछ वस्तुएँ है, उन्हें हम सत्य क्यों मानते हैं, क्योंकि उसके मूल कारण श्रीकृष्ण हैं। इसलिए श्रीकृष्णका ही नाम सत्य है।

जगत्की सभी वस्तुएँ किसी-न-किसीकी सहायतासे प्रकाशित होती हैं एवं जगत्के सभी व्यक्ति किसी-न-किसीकी सहायतासे ज्ञान प्राप्त करते हैं। किन्तु हे भगवन्! आप *'स्वयं ज्योतिः'* अर्थात् स्वप्रकाश एवं स्वतःसिद्ध ज्ञान-स्वरूप हैं। आपके प्रकाशसे ही जगत् प्रकाशित एवं आपके द्वारा प्रदत्त ज्ञानसे ही सभी ज्ञानवान होते हैं।

*यदादित्यगतं तेजो जगत् भासयतेऽखिलम्।*
*यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥*

(श्रीगीता)

गीताके इस वचनसे स्पष्ट है कि श्रीकृष्णकी अङ्ग-ज्योतिसे उद्भासित होकर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारका, विद्युत्, अग्नि आदि ज्योतिष्क मण्डली जगत्का अन्धकार दूर करनेमें समर्थ होते हैं।

*"यस्य भासा सर्वमिदं विभाति"*—आदि श्रुतिवाक्योंसे भी जाना जाता है कि श्रीभगवान्की स्वप्रकाशिका-शक्तिसे ही समस्त जगत् प्रकाशित होता है। *"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो विद्यास्तस्मै गोपयति स्म कृष्णः"*—आदि गोपालतापनी श्रुतिवाक्योंसे जाना जाता है कि

स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णसे ही ब्रह्माकी उत्पत्ति एवं उनकी कृपासे ही ब्रह्माको वेदज्ञान प्राप्त हुआ है।

पृथ्वी-व्यापी समुद्र, गगनस्पर्शी सुमेरु-पर्वत और सर्वगत आकाश आदि सभी वस्तुओंका अन्त है, किन्तु हे भगवन्! आपका अन्त नहीं है, आप अनन्त हैं। यद्यपि जगत्में आपके मत्स्य, कूर्मादि लीला-विग्रहोंका आविर्भाव और तिरोभाव प्रतीत होता है, तथापि आप अनादि-अनन्त हैं।

नन्दबाबा और यशोदा मैयाके पुत्रके रूपमें जगत्में अवतीर्ण होनेपर भी आप ही सम्पूर्ण जगत्के आदि हैं। आपका विशुद्ध सत्त्व ही आपके माता-पिताके रूपमें विराजमान है एवं आप जगत्पिता और जगन्माता होकर भी उनके पुत्ररूपमें आविर्भूत होते हैं।

जगत्की सभी वस्तुओं और सभी व्यक्तियोंका ह्रास, वृद्धि, क्षय, परिणाम आदि विविध अवस्थान्तर होता है। किन्तु हे भगवन्! आप ही एकमात्र नित्य हैं और आप ही सर्वदा एकरूप हैं। आपका ह्रास, वृद्धि, क्षय, परिणाम आदि कोई भी अवस्थान्तर नहीं है। *"नित्यो नित्यानाम् चेतनश्चेतनानाम्"* आदि श्रुतिवाक्य आपकी इस नित्यताकी घोषणा करते हैं। आपके नित्य होनेके कारण आपमें अधिष्ठित यह अनित्य जगत् भी नित्य (सत्य) जैसा प्रतीत होता है।

धूलिकणसे लेकर ब्रह्माण्ड तक सभी जड़-वस्तुएँ एवं कीटाणुसे लेकर ब्रह्मा तक सभी जीव, कोई भी सुस्थिर नहीं है। सभीका कालके अनुसार उत्पत्ति और विनाश होता है। किन्तु हे भगवन्! आप ही एकमात्र अक्षय हैं। अनादि बहिर्मुख जीव अनादि कालसे ही आपके स्वरूपज्ञानसे वञ्चित होकर देह-गृहमें 'मैं-मेरा' अभिमानकर प्रमत्त हैं एवं पुनः-पुनः जन्म-मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक, मोह, भूख-प्यास, दुःख, दैन्य आदि तरङ्गपूर्ण संसार-सिन्धुमें निमग्न हैं। आप उनके उद्धारके लिए वेद-पुराणादि शास्त्रोंको प्रकाश करते हैं एवं गुरुके रूपमें उन शास्त्रोंके यथार्थ मर्मको समझाते भी हैं एवं अन्तर्यामी रूपमें उस शास्त्रोक्त साधन-अनुष्ठानकी प्रवृत्ति दान करते हैं। आपकी कृपासे अनादिकालसे जगत्के जीव कृतार्थ होते आ रहे हैं।

सूर्य जैसे अपनी अङ्गज्योतिसे उद्भासित होकर जगत्के अन्धकारको दूर करते हैं, वैसे ही जगत्में भक्तचूड़ामणिगण भी आपके चरणाश्रयके बलसे गुरुशक्ति प्राप्तकर शास्त्र और साधनके उपदेशसे भ्रान्त जीवोंके अज्ञान-अन्धकारको दूर करते हैं। जिस प्रकार सूर्य आपकी प्रकाश-शक्तिसे ही जगत्को प्रकाशित करता है, आपके प्रकाशके बिना सूर्यकी स्वतन्त्र प्रकाशिका शक्ति नहीं है, उसी प्रकार ही जगत्में भी जो गुरुरूपमें शास्त्र और साधनके उपदेशोंके द्वारा भ्रान्त जीवोंके अज्ञान-अन्धकारको दूर करते हैं, वे भी आपकी शक्तिसे ही शक्तिमान हैं। आपकी कृपाशक्तिसे शक्तिमान होकर ही वे आपके स्वरूपकी उपलब्धि करा देते हैं, इसलिए वे गुरु-पदवाच्य हैं।

*गुकारस्त्वन्धकारः स्यात् रुकारस्तन्निरोधकः।*
*अन्धकार निरोधित्वात् गुरुरित्यभिधीयते॥*

(तन्त्र-वचन)

'गु' शब्दका अर्थ अन्धकार एवं 'रु' शब्दका अर्थ उसका निवारण करना है। जो शास्त्र और साधनके उपदेशके द्वारा भगवत्-स्वरूपका आच्छादन करनेवाले अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर कर देते हैं, वे ही गुरु हैं। हे भगवन्! आपकी करुणाका अन्त नहीं है, आप शास्त्र, गुरु और अन्तर्यामी रूपमें निरन्तर अपने स्वरूप, ऐश्वर्य, महिमाको प्रकाशित करते हैं। किन्तु हाय! जीवका कैसा दुर्भाग्य है कि वह किसी प्रकारसे भी आपके स्वरूपको जान नहीं पाता है और मोहजालमें पड़कर कुमार्गमें भटक जाता है।

जीव अज्ञानवशतः अपनेको आपके सेवक रूपमें न जानकर स्वतन्त्र रूपसे अपनेको कर्त्ता, भोक्ता मानने लगता है। जो नित्य, स्वप्रकाश, परमानन्दघन विग्रहके रूपमें आपके स्वरूपको नहीं जानते, वे ही क्षुद्र आनन्दके लोभसे इस देह-दैहिक आदिमें आसक्त होकर विविध प्रकारसे दुःख भोग करते हैं एवं फिर उससे मुक्त होनेका प्रयास करते हैं। अतएव जीवका संसार-बन्धन और संसारसे मुक्ति-प्राप्ति दोनों ही अज्ञानका नामान्तर या रूपान्तर है, क्योंकि जो व्यक्ति अज्ञानसे मुग्ध है, उसीका संसार-बन्धन होता है एवं वही

व्यक्ति संसारसे मुक्त होनेके लिए प्रयास करता है। किन्तु आपकी अपार करुणासे जब कोई अपनेको आपके अधीन एवं आपके सेवकके रूपमें जानता है, तब उसे किसी प्रकारका अज्ञान नहीं रहता और अज्ञानकृत संसार-बन्धन और उससे मुक्तिकी आवश्यकता भी उसे नहीं होती है। जगत्‌में देखा जाता है कि सूर्यके प्रकाश या अप्रकाशमें दिन और रात्रिका व्यवहार होता है, किन्तु यथार्थ रूपमें सूर्यमें दिन भी नहीं है और रात भी नहीं है। सूर्यके स्वरूपका विचार करनेपर उसमें दिवा-रात्रिका अस्तित्व नहीं पाया जाता। वैसे ही आत्माके स्वरूपका विचार करनेपर उसमें अज्ञानकृत संसार-बन्धन और संसार-मुक्ति दोनोंका कोई अस्तित्व नहीं पाया जाता। श्रीमद्भागवतके ग्यारहवें स्कन्धमें श्रीभगवान्‌ने उद्धवसे कहा है—

*बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः।*
*गुणस्य मायामूलत्वान्न ये मोक्षो न बन्धनम्॥*

(श्रीमद्भा॰ ११/११/१)

यथार्थ रूपमें जीवका संसार-बन्धन या मोक्ष कुछ भी नहीं है। मेरी ही बहिरङ्गा-शक्ति त्रिगुणमयी मायासे ऐसे बन्धन और मोक्षकी प्रतीति होती है। मेरे ही विभिन्नांश जीवका अनादि अविद्याके कारण संसार-बन्धन और अविद्या-निवृत्तिसे मोक्ष होता है। अतएव जीवके स्वरूपमें बन्धन भी नहीं है और मुक्ति भी नहीं है। केवलमात्र मायाकी वृत्ति अविद्या और विद्याके द्वारा बन्धन और मोक्ष प्रतीत होता है।

अनादि बहिर्मुख जीवकी मूर्खताके कारण अनेकों प्रकारकी भ्रान्तियोंकी सृष्टि होती है। उन भ्रान्त लोगोंमेंसे कोई-कोई आपके सच्चिदानन्द श्रीविग्रहको मायिक समझते हैं। आप जो आत्माओंके आत्मास्वरूप हैं, वे इसकी धारणा भी नहीं कर पाते हैं। *"अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्"* आदि गीतावाक्योंसे इन सभी प्रकारके मूढ़ोंका परिचय मिलता है। आपके नराकृति परब्रह्म-स्वरूपको वे प्राकृत मनुष्यदेह समझते हैं तथा इस अवज्ञाके परिणाम-स्वरूप वे अधःपतित होते हैं।

*प्राकृत करिया माने विष्णु-कलेवर।*
*विष्णु-निन्दा आर नाहि इहार उपर॥*
(श्रीच॰च॰आ॰ ७/११५)

अज्ञ जीवगण आपके नित्यसिद्ध सच्चिदानन्द विग्रहको प्राकृत देह मानते हैं। इससे बड़कर ईश्वरकी निन्दा और कुछ नहीं है। आप समस्त आत्माओंकी आत्मा एवं घनीभूत सच्चिदानन्द-विग्रह हैं, यह उनकी जड़-बुद्धिकी धारणामें नहीं आता है। अपनी मूर्खताके कारण कोई आपको समस्त आत्माओंकी आत्मा-स्वरूपमें न जानकर साधारण जीवात्मासे आपको अभिन्न मानते हैं। कोई आपका समस्त जीवोंके हृदयमें रहनेवाले परमात्माके रूपमें चिन्तन करते तो हैं, परन्तु आपका यह नराकृति परब्रह्म-स्वरूप सबका मूल है, यह उनकी धारणामें ही नहीं आ पाता है। हे भगवन्! जो आपकी कृपासे यथार्थ विवेक प्राप्त कर लेते हैं, वे ही इस नराकृति स्वरूपको समझ पाते हैं तथा आपके चरणोंमें शरीर, मन, वाणीके द्वारा समर्पित होते हैं। आपकी इस लीलामें जिस प्रकार भक्त-वात्सल्य, करुणा, प्रेमाधीनता आदि देखी जाती है, वह दूसरी किसी लीलामें या किसी स्वरूपमें नहीं देखी जाती। इसलिए आपके इस लीला-विग्रहके अतिरिक्त आपकी दूसरी किसी लीलामें या किसी स्वरूपमें रसिक भक्तोंको उतनी तृप्ति नहीं मिलती।

हे भगवन्! विवेकी पुरुष जगत्को दुःखमय जानकर एवं आपको आनन्द-निकेतन समझकर अपने-अपने विवेकके अनुसार कोई ब्रह्मरूपमें, कोई परमात्मारूपमें, कोई मत्स्य, कूर्म, आदि रूपोंमें एवं कोई नराकृति परब्रह्मरूपमें आपकी खोज तो करते हैं, परन्तु आपकी कृपाके बिना अपनी शक्तिसे आपके किसी भी स्वरूपको जाननेमें समर्थ नहीं होते। आपकी सभी मूर्त्तियाँ एवं ब्रह्म, परमात्मा आदि सभी स्वरूप मायातीत हैं। अतएव जब तक मायाका प्रभाव दूर नहीं हो जाता, तब तक किसीको भी आपके स्वरूपका साक्षात्कार नहीं हो सकता। मायाकी निवृत्ति भी आपकी कृपासे ही सम्भव है॥ २३-२९॥

**तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो,**
**भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम्।**
**येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां,**
**भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्॥ ३०॥**

**अन्वयः**—नाथ (हे नाथ!) तत् (अतएव) भवे अत्र (इस ब्रह्मा-जन्ममें) अन्यत्र तिरश्चां वा (पशु-पक्षी आदि किसी भी जन्ममें) येन (किसी भाग्यसे) अहं भवज्जनानां (मैं आपके भक्तोंमें) एकः अपि भूत्वा (कोई भी एक होकर) तव पादपल्लवं निषेवे (तुम्हारे चरणकमलकी सेवा कर सकूँ) सः भूरिभागः अस्तु (ऐसा मेरा महाभाग्य उदय हो)॥ ३०॥

**अनुवाद**—अतएव हे नाथ! इसी ब्रह्मा-जन्ममें हो अथवा पशु-पक्षी आदिके जन्ममें हो, मैं आपके अन्यतम भक्तके रूपमें जन्म-ग्रहणकर आपके चरणकमलोंकी सेवा कर सकूँ—मुझे ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो॥ ३०॥

**सारार्थदर्शिनी**—भो ब्रह्मन्! साध्यसाधनतत्त्वज्ञशिरोमणे! स्तुत्यैव व्यञ्जित-लक्षणयोर्भक्तिज्ञानयोर्मध्ये तव कुत्र स्पृहेत्यत आह—तदस्त्विति हे नाथेति सम्बोधनेनैव व्यञ्जितायां सत्यामपि दास्यस्पृहायां भो ब्रह्मन्! उत्कर्षनिकर्षौ सम्यक्तया विचार्यैव सर्वोत्कृष्टं वस्तु स्पष्टं प्रार्थयस्वेति चेत् स एव भूरिभागो महदेव भाग्यं मनसा निर्द्धारितमेव वर्त्तत इति भावः। येन भूरिभागेन अत्र भवे ब्रह्मजन्मनि वा तिरश्चामपि मध्ये यज्जन्म तस्मिन् वेति ब्रह्मजन्मारभ्य तिर्यग्योनिपयर्यन्तं यावन्ति जन्मानि सम्भवन्ति तेष्वपि क्वापि जन्मानीति भावः। *"गजो गृद्धो वणिक्पथ"* इति वचनात्तिर्यग्योनावपि भक्तिश्रवणात् तिरश्चामपीति बहुवचनेनापि शब्देन च मोक्षाय जलाञ्जलिं दत्त्वा स्वस्य तु अत्रार्थे सहस्रजन्मप्रार्थनापि व्यञ्जिता भवदीयानां जनानां मध्ये एको यः कश्चिदपि नितरां साधकत्व सिद्धत्वयोर्दशयोः सेवे तदेव नौमीड्य! ते इत्येकेन माधुर्यम् अस्यापि देवेत्यादिभिस्तदस्तु मे नाथेत्यन्तैः पद्यैरैश्वयर्यं विवृतवता ब्रह्मणा तन्मध्य एव ज्ञाने प्रयासमिति तत्तेऽनुकम्पामित्याभ्यां केवलायाः भक्तेरुत्कर्षः *"त्वामात्मानं परं मत्वेति, अजानतां त्वत्पदवीम्"* इत्याभ्यां केवलज्ञानस्याक्षेपः श्रेयःसृतिमिति पुरेह भूमन्नित्याभ्यां केवलयोर्ज्ञानभक्त्योः क्रमेण वैफल्यसाफल्ये अन्तर्भवेऽनन्तेति अथापि ते देवेत्याभ्यां भक्तिमिश्रं ज्ञानम्। एवम्बिधं त्वां सकलात्मनामित्यनेन शान्तभक्तिः तदस्तु मेइत्यनेन दास्यभक्तिश्चाभ्यधायि।

अतः परन्तु माधुर्यसिन्धावेव निपतिष्यता ब्रह्मणा अहोऽतिधन्या इत्यादिभिरागात्मक-वात्सल्यादिरतिमन्त एव स्तोष्यन्ते इति स्तुत्यर्थतात्पर्य निष्कर्षः॥ ३०॥

**भावानुवाद**—यदि कहें कि हे ब्रह्मन्! तुम तो साध्य-साधन तत्त्वको जाननेवालोंमें शिरोमणि हो। तुम्हारी स्तुतिसे ही प्रकाशित भक्ति और ज्ञानमेंसे तुम्हें किसकी अभिलाषा है? इसके उत्तरमें कहते हैं—"हे नाथ!" यहाँ 'नाथ' सम्बोधनके द्वारा दास्यमें ही स्पृहा देखी जानेपर भी यदि कहें—हे ब्रह्मन्! उत्कृष्ट और निकृष्ट दोनोंका भलीभाँति विचारकर तुम सर्वोत्कृष्ट वस्तुकी प्रार्थना करो। इसके लिए कह रहे हैं—*'स भूरिभागः'*—वही मेरा महाभाग्य होगा, यही मैंने मन-ही-मन निर्धारित किया है। *'येन'*—जिस महाभाग्यके द्वारा इस ब्रह्मा-जन्ममें या दूसरे किसी भी पशु-पक्षी आदि तिर्यक योनिमें भी यदि मेरा जन्म होता है, तो उनमें, अर्थात् ब्रह्मा-जन्मसे लेकर तिर्यक योनि तक जितने भी जन्म सम्भव हैं, उनमेंसे किसी भी जन्ममें आपकी सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त हो—यह अर्थ है। इसका कारण है कि *"गजो गृध्रो वणिकपथः"* (श्रीमद्भा॰ ११/१२/६), अर्थात् गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार आदि भी तुम्हें प्राप्त हुए हैं, इस वचनके अनुसार तिर्यक-योनिमें भी भक्ति सुनी जाती है। यहाँ 'तिरश्चाम् अपि' बहुवचन और अपि शब्दके प्रयोगसे मोक्ष प्राप्तिको जलाञ्जलि देकर ब्रह्माजीने भगवत्-सेवाको ही परम प्रयोजन मानकर हजारों जन्मोंकी प्रार्थना व्यक्त की है। *'भवज्जनानाम्'*—आपके भक्तजनोंमें साधक और सिद्ध दशामें कोई भी एक बनकर आपके चरणकमलोंकी सेवा कर सकूँ। (ऐसा महाभाग्य मुझे प्राप्त हो)।

यहाँ *'नौमीड्य ते'* (प्रथम) श्लोकमें भगवान्के माधुर्य तथा *'अस्यापि'* (द्वितीय श्लोक) से *'तदस्तु मे नाथ'* (तीसवें श्लोक) तक ब्रह्माजीने भगवान्के ऐश्वर्यका वर्णन किया है। उनमेंसे *'ज्ञाने प्रयासम्'* (तृतीय श्लोक) एवं *'तत्तेऽनुकम्पाम्'* (आठवें) श्लोकके द्वारा केवलाभक्तिका उत्कर्ष दिखलाया है। *'त्वामात्मानं परं मत्वा'* (सत्ताइसवें श्लोक) और *'अजानतां त्वत्पदवीम्'* (उन्नीसवें) इन दो श्लोकोंके द्वारा केवल-ज्ञान या निर्विशेष-ज्ञानका खण्डन किया है। *'श्रेयः सृतिम्'* (चौथे श्लोक) एवं *'पुरेह भूमन्'* (पाँचवें श्लोक)—इन दो श्लोकोंमें यथाक्रमसे

साधनकी विफलता और सफलताका वर्णन किया है। *'अन्तर्भवे अनन्त'* (अट्ठाइसवें श्लोक) और *'अथापि ते देव'* (उन्नतीसवें) इन दो श्लोकोंमें भक्तिमिश्र-ज्ञान, *'एवंविधं त्वाम् सकलात्मनाम्'* (चौबीसवें) श्लोकमें शान्तभक्ति तथा *'तदस्तु मे नाथ'* (तीसवें) श्लोकमें दास्यभक्तिका वर्णन हुआ है। इसके पश्चात् माधुर्य-सिन्धुमें अवगाहन करनेके लिए ब्रह्माजीने *'अहोऽतिधन्याः'* (इक्कतीसवें) आदि श्लोकोंके द्वारा रागात्मिका वात्सल्यादि रतियुक्त व्रजजनोंकी स्तुति की है—यही ब्रह्मस्तुतिका तात्पर्य है॥ ३०॥

**अहोऽतिधन्या व्रजगोरमण्यः,**
**स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा।**
**यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना,**
**यत्तृप्तयेऽद्याप्यथ नचालमध्वराः॥ ३१॥**

**अन्वयः**—विभो (हे विभो!) अथ अद्य अपि यत् तृप्तये (आज तक जिनकी तृप्तिके लिए) अध्वराः (समस्त यज्ञ) न अलं (समर्थ नहीं हुए) ते (ऐसे आपने) वत्सतरात्मजात्मना (गोवत्स एवं गोपबालकोंके रूपमें) मुदा (अति आनन्दके साथ) यासां स्तन्यामृतं अतीव पीतं अहो (जिनका स्तनामृत प्रचुर मात्रामें पान किया) [ऐसे] व्रज गो रमण्यः (व्रजमें स्थित गायें और गोपियाँ) अतिधन्याः (अतिशय पुण्यवती हैं)॥ ३१॥

**अनुवाद**—हे विभो! सृष्टिके प्रारम्भसे लेकर आज तक अनुष्ठित बड़े-बड़े यज्ञ जिन्हें पूर्णतः तृप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सके, अहो! ऐसे आपने बछड़े एवं गोपबालक बनकर जिनके स्तनोंका दूध बड़े चावसे पिया है, वे व्रजकी गायें एवं गोपियाँ अति धन्य हैं॥ ३१॥

**सारार्थदर्शिनी**—किञ्च तत्र त्वद्भक्तेष्वतिनिकृष्टस्य—ममैतावत्येव प्रार्थना समुचिता त्वत्प्रसादात् फलवती भूयात् ये तु त्वद्भक्तेष्वति प्रकृष्टास्तेषां त्वयि शुद्धवात्सल्यादिरतिभाजां पदवीं प्रार्थयितुमयोग्या अस्मदादिभिरतिदुर्लभा केवलं स्तुयते एवेत्याह-अहो इति द्वाभ्याम्। व्रजस्था गावो रमण्यो गोप्यश्च अतिधन्यास्तत्राप्यहो इत्याश्चयर्याभिधायकपदेन वाङ्मनसाऽगोचरश्चमत्कारातिशयो व्यञ्जितः तमेवाह-ते त्वया सच्चिदानन्दस्वरूपेणापि यासां स्तन्यं देहैकावयवस्तनोद्भवम् अमृतं पीतं

तत्रापि मुदा तत्राप्यतीवेति पुनः पुनः पानेऽपि मुदः प्रतिक्षणवर्द्धिष्णुत्वमेव तत्रापि गवां वत्सतरात्मनेति दोहनादिव्यवधानस्यासह्यत्वं गोपीनामात्मजात्मनेत्यन्यथा तत्प्राप्त्यभावः तत्रापि विभो! इत्यतिलोभात् स्वस्य बहुस्वरूपीकरणेनेति तासां मध्ये एकस्या अप्येकस्तनोत्थो रसोऽपि त्वया त्यक्तुमशक्य इत्यानन्दमात्रस्वरूपस्य तवाप्यानन्दकत्वात्तासां वपुषः सच्चिदानन्दत्वे के नाम संशेरते इति भावः। यस्य तव तृप्तये *"तृप प्रीणने"* यं त्वां प्रीणयितुमित्यर्थः अद्यापि। अनादिकालतः प्रवृत्ता अद्यपर्यन्ता अपि सर्वेऽपि यज्ञा अस्मदादिकृता मन्त्रा अनुष्ठानपावित्र्याद्यविकला अपि नालं न समर्थाः॥ ३१॥

**भावानुवाद**—और भी, आपके भक्तोंमें अति निकृष्ट मेरे द्वारा की गयी इस प्रकारकी उचित प्रार्थना आपकी अनुकम्पासे फलवती हो सकती है, किन्तु जो आपके भक्तोंमें अत्यधिक श्रेष्ठ हैं, आपके प्रति शुद्ध वात्सल्यादि रतियुक्त हैं, उनकी अति दुर्लभ चरणधूलिकी प्रार्थना करनेकी भी योग्यता मुझमें नहीं है, इसलिए मैं केवल स्तुति ही कर रहा हूँ—इसे ही *'अहो'* आदि दो श्लोकोंमें कह रहे हैं। *'व्रज-गो-रमण्यः'*—व्रजमें स्थित वात्सल्ययुक्त गौएँ और व्रज-रमणियाँ ही अत्यधिक धन्य हैं। अहो! इस आश्चर्याभिधायक पदके द्वारा वाणी और मनके अगोचर अतिशय चमत्कार अभिव्यक्त हो रहा है। इसे कह रहे हैं—आप सच्चिदानन्द-स्वरूप होकर भी स्तन्य अर्थात् देहके एक अङ्ग स्तनसे निकले दूधरूपी अमृतका परम आनन्दके साथ पान कर रहे हैं, तथा अत्यधिक रूपमें पान करनेपर भी प्रतिक्षण आपका आनन्द बढ़ता जा रहा है। आप गायोंके बछड़े बनकर उनका भी दूध पी रहे हैं—इससे गो-दोहनके समयका व्यवधान भी सहन करनेमें असमर्थता सूचित होती है, एवं गोपियोंके पुत्र बनकर उनके स्तनरूप अमृतका पान कर रहे हैं, अन्यथा उनका स्तनपान किसी दूसरे प्रकारसे सम्भव नहीं है। उसमें भी *'विभो'*—अत्यधिक लोभके कारण अनेकों स्वरूप प्रकटकर स्तन-पान कर रहे हैं, जिससे यह प्रतीत होता है कि आप व्रजकी एक भी गाय और एक भी गोपीके स्तनामृतको छोड़ना नहीं चाहते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आनन्दमात्र-स्वरूप आपको भी आनन्द देनेके कारण व्रजस्थित गायों और गोपियोंका श्रीविग्रह भी सच्चिदानन्दमय है, इस विषयमें क्या किसीको संशय हो सकता है? आपकी तृप्तिके लिए अनादि कालसे

आज तक हम सबके द्वारा अनुष्ठित मन्त्रानुष्ठानके द्वारा दोषरहित यज्ञसमूह भी आपको तृप्त नहीं कर सके॥ ३१॥

**अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।**
**यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥ ३२॥**

**अन्वयः**—परमानन्दं पूर्णं सनातनं ब्रह्म यन्मित्रं (परमानन्द-स्वरूप पूर्णब्रह्म सनातन पुरुष जिनके मित्र हैं) नन्दगोप-व्रजौकसां (नन्द महाराज आदि व्रजवासियोंका) अहो भाग्यं अहो भाग्यं (कैसा महाभाग्य है, कैसा महाभाग्य है)॥ ३२॥

**अनुवाद**—परमानन्द-स्वरूप, पूर्णब्रह्म, सनातन आप जिनके सुहृद और सगे-सम्बन्धी हैं, उन नन्द-गोपादि प्रमुख व्रजवासियोंका कैसा महाभाग्य है! कैसा महाभाग्य है!॥ ३२॥

**सारार्थदर्शिनी**—रागात्मकवात्सल्यंप्रेमवतीः स्तुत्वारागात्मकसख्यप्रेमवतः स्तुवन्नेव तन्त्रेण वात्सल्यादिसर्वरतिमतोऽप्युपश्लोकयति—अहो भग्यमहोभग्यमिति। वीप्सा अत्यानन्दचमत्कारेण परमानन्दमिति क्लीवत्वमार्षं। तेन च *"सत्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म"* इति श्रुतिवाच्यं ब्रह्म सूचयति। परमपदेन श्रीकृष्णस्य तत्प्रतिष्ठाभूतत्वं पूर्णपदेन ब्रह्मस्वरूपाणामंशावताराणां व्यावृत्तिः एतादृशं ब्रह्म येषां श्रीदामादिबालकानां मित्रं सखा। मित्रत्वस्य तत्कालभवत्वं वारयन् विशिनष्टि, सनातनं सर्वकालिकमिति। मित्रत्वस्य सार्वकालित्वे न श्रीदामादीनामपि सार्वकालिकत्वं ज्ञापितम्। *"अयं तूत्तमो ब्राह्मण"* इत्युक्ते बाह्मण्यस्यैवोत्तमत्वात्तद्विशिष्टोऽप्युत्तम इतिवदत्रापि मित्रत्वस्यैव सनातनत्वं विवक्षितं तथा मित्रशब्दस्य बन्धुमात्रवाचकत्वादेवं च व्याख्येयं श्रीमन्नन्दराजव्रजवासिमात्राणां पशुपक्षिपर्यन्तानां सर्वेषामेवाहो भाग्यमहो भाग्यं किं पुनर्नन्दस्य तस्य तदीयगोपानां च। किं तत् येषां वात्सल्यादिसर्वविधिप्रेमवतां परमानन्दं ब्रह्म सनातनं मित्रं बन्धुः। बन्धुत्वोचितप्रीतिकर्तृ। यद्वक्ष्यते गोपैः—*"दुस्त्यजश्चानुरागोऽस्मिन् सर्वेषां नो व्रजौकसाम्। नन्द! ते तनयेऽस्मासु तस्याप्यौत्पत्तिकः कथम्"* इत्यत एषु व्रजवासिष्वौत्पत्तिकानुराग्येव पूर्णं ब्रह्मेत्यर्थ आयातः। तेन परमानन्दमप्यानन्दयन्ति व्रजवासिन इति। सच्चिदानन्दमया एवाऽथ च परमविस्मयरसविषयीभूता इति ध्वनितम्॥ ३२॥

**भावानुवाद**—रागात्मिका वात्सल्यप्रेमवती गायों और गोपियोंकी स्तुति करके रागात्मिक सख्य-प्रेमियोंकी स्तुति करनेके लिए संक्षेपमें

वात्सल्यादि युक्तजनोंकी प्रशंसा—*"अहो भाग्यम्"* आदिसे कर रहे हैं। यहाँ अत्यधिक आनन्द-चमत्कारके कारण ही वीप्सा (*'अहो भाग्यम्'* का दो बार) प्रयोग हुआ है। *'परमानन्द'*—इससे श्रुति प्रमाणित *"सत्य विज्ञानमय आनन्दस्वरूप ब्रह्म"* सूचित हुआ है। *'परम'* पदके द्वारा सूचित होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मकी भी प्रतिष्ठा अर्थात् आश्रय हैं। *'पूर्ण'* पदके द्वारा श्रीकृष्ण ही स्वयं अवतारी परमानन्द-स्वरूप परिपूर्ण ब्रह्म हैं, यह स्पष्ट होता है। ऐसे परमब्रह्म श्रीदामादि व्रजबालकोंके *'मित्र'*—सखा हैं। केवल उसी समयके मित्र नहीं, *'सनातनम्'*—सार्वकालिक मित्र हैं। इसके द्वारा श्रीदामादि सखागणोंका भी सार्वकालिकत्व ज्ञापित हुआ है।

जैसे यदि कहा जाये—"यह व्यक्ति उत्तम ब्राह्मण है।" यहाँ ब्राह्मणता ही उत्तम होनेका कारण है। उसी प्रकार यहाँ मित्रताकी ही सनातनता दिखायी गयी है। मित्र शब्द बन्धुमात्रका वाचक होता है। इसलिए यहाँ ऐसी व्याख्या करनी चाहिये—श्रीनन्द महाराज, गोपगण और व्रजस्थित दूसरे-दूसरे पशु-पक्षी आदि सभीका अति आश्चर्यजनक भाग्य है। अहो! नन्द महाराजके भाग्यकी बात अधिक क्या कहूँ? वहाँके गोपोंका, यहाँ तक कि वहाँके पशु-पक्षियोंका भी परम सौभाग्य है। वह कौन-सा सौभाग्य है? इसके लिए कह रहे हैं कि वात्सल्य आदि समस्त प्रकारके प्रेमी व्रजवासियोंके समक्ष परमानन्दघन परमब्रह्म (श्रीकृष्ण) मित्रके रूपमें नित्य वर्त्तमान हैं, अर्थात् वे बन्धोचित प्रीति करनेवाले हैं। जैसे कि आगेके अध्यायोंमें कहेंगे—*"दुस्त्यजश्चानुरागोऽस्मिन्"* (श्रीमद्भा॰ १०/२६/१३) अर्थात् हे नन्द महाराज! आपके इस पुत्रके प्रति हम सब व्रजवासियोंका प्रबल अनुराग है एवं इस बालकका भी हम सबके प्रति स्वाभाविक अनुराग देखा जाता है—यह कैसे सम्भव हुआ? इसके द्वारा प्रमाणित होता है कि परब्रह्म श्रीकृष्ण व्रजवासियोंके प्रति स्वाभाविक अनुरागयुक्त हैं। इस प्रकार व्रजवासीजन परमानन्द-स्वरूप श्रीकृष्णको आनन्द प्रदान करते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि व्रजमें स्थित सभी सच्चिदानन्दमय हैं, फिर भी परम विस्मयरसके विषयीभूत हैं—यह ध्वनित हो रहा है॥ ३२॥

**एषान्तु भाग्यमहिमाच्युत तावदास्ता-**
**मेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः।**
**एतद्धृषीकचषकैरसकृत् पिबामः**
**शर्वादयोऽङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं ते॥ ३३॥**

**अन्वयः**—अच्युत (हे अच्युत!) एषां (इन व्रजवासी गोप-गोपियोंके) भाग्यमहिमा (सौभाग्यकी महिमाका) तु तावत् आस्तां (विचार करना तो दूर, कोई भी उनकी महिमा वर्णन करनेमें भी समर्थ नहीं हो सकता) ये तावत् शर्वादयः (रुद्र आदि अहङ्कारके अधिष्ठातृ देवतागण) एकादश (चन्द्र आदि देवता) वयं (हम ब्रह्मा आदि) एव हि एतद् हृषीकचषकैः (इन्द्रियरूप पानपात्रके द्वारा) असकृत् (निरन्तर) ते (आपके) अङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं (चरणकमल-मधुस्वरूप अमृतासव) पिबामः (पान करते हैं) वत (निश्चित रूपमें) वयं अपि (हमलोग भी) भूरिभागाः (महा-सौभाग्यशाली हैं)॥ ३३॥

**अनुवाद**—हे अच्युत! इस व्रजके गोप, गोपी एवं गायोंके सौभाग्यकी महिमाकी तो दूरकी बात है, ग्यारह इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देवता चन्द्र आदि और मैं ही महाभाग्यवान हैं, क्योंकि हम मन आदि ग्यारह इन्द्रियरूप पात्रोंके द्वारा निरन्तर आपके चरणकमलोंके मधु-स्वरूप अमृत-मद्यका पान कर रहे हैं॥ ३३॥

**सारार्थदर्शिनी**—किञ्चैभिर्व्रजवासिभिर्वयमपि भूरिभागा क्रियामहे इत्याह-एषां तु भाग्यस्य महिमा तावदास्तां कस्तां वक्तुं शक्नोति वयमेकादश एतेषामि-न्द्रियाधिष्ठातारोऽपि भूरिभागाः। यत एतेषां हृषीकाणीन्द्रियाण्येव चषकाणि पानपात्राणि तैस्तव अङ्घ्र्युदज योश्चरणक मलशेर्मञ्जीररञ्तियोर्ममधु तत्रत्य अभिमान अध्यवसायसङ्कल्पशब्दस्पर्शरूपरसगन्धकीर्त्तनसम्वाहनान्तिकगत्यात्मकं तदेव अमृतं स्वादु आसवं मादकं शर्वायो रुद्रादयश्च इत्यश्लीलस्येन्द्रियद्वयस्याधिष्ठातृदेवताद्वयस्य त्यागात् चित्ताधिष्ठातुर्वासुदेवस्यापि तदभेददृष्ट्या त्यागादेकादशैव पिबामः अत्र यद्यप्यभिमन्तुरात्मन एव विषयभोगा न तु तत्तत्कर्तृ णामिन्द्रियाधिष्ठातृणामित्यध्यात्म सिद्धान्तस्तथापि बुद्धौ ब्रह्मा तिष्ठति चक्षुषि सूर्यस्तिष्ठति तं तमधिष्ठातारं विना तत्तदिन्द्रिय श्रीकृष्णनिष्ठानमपि रूपरसादीनां ग्राहकं न स्यादिति सामान्यदृष्ट्या अध्यात्मविदां प्रवादोऽपि श्रीकृष्णे रत्यौत्कण्ठ्यवतां ब्रह्मादीनामानन्दहेतुः कर्तृत्वमात्रेणेव भोक्तृत्वाभिमानस्वीकारात् तथैव स्वेषां प्राकृतत्वेऽपि अप्राकृततत्तदिन्द्रियाधिष्ठातृ-

त्वाभिमानाच्च। प्रेम्णामेव विलक्षणेयं प्रक्रिया दृश्यते चान्यत्र पद्यावल्यादौ *"मिथ्यापवादवचसाप्यभिमानसिद्धिः"* इत्यादीति। अन्यथा चिदानन्दमयवपुषां श्रीभगवत्परिवाराणामिन्द्रियादीनामपि भगवत इव तन्मयत्वमेव न तु प्राकृतत्वं सम्भवेत् कुतस्तत्र प्रपञ्चगतानां ब्रह्मादीनां प्रवेश इति ज्ञेयम्। यद्वा, कादाचित्केनापि तन्माधुरीलाभेन स्वेषामपि भाग्यमभिनन्दति, एषामिति। भाग्यमहिता एका अद्वितीया अनुपमेत्यर्थः। दशैव दशापि वयं दिक्पालदेवताः भूरिभागा भवामः। कुत इत्यत आह, एतदिति। स्वतर्ज्जन्या स्वनेत्रश्रोत्राणि स्पृशति वत्सचारणाय व्रजान्निष्क्रान्तस्य तव चरणसौन्दर्यसौस्वर्यामृतनेत्रश्रोत्रैः पिबाम इति॥ ३३॥

**भावानुवाद**—इन व्रजवासियोंके कारण हमलोग भी महाभाग्यशाली बने हैं, इसे *'एषान्तु भाग्य महिमा'* द्वारा कह रहे हैं—अर्थात् इन व्रजवासियोंके भाग्यकी महिमाका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है? हम (शङ्करादि) ग्यारह देवता इन व्रजवासियोंकी इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ होनेके कारण ही महाभाग्यशाली बने हैं, क्योंकि हमलोग इन व्रजवासियोंके नेत्र आदि इन्द्रियरूप पात्रोंके द्वारा आपके चरणकमलोंकी अमृततुल्य सुस्वादु सुधाका निरन्तर पान कर रहे हैं। उन चरणकमलोंका जो अभिमान, अध्यवसाय, सङ्कल्प, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, कीर्त्तन, सम्वाहन आदि है, वही अमृत और सुमिष्ट होनेके कारण सब कुछ विस्मरण करानेवाला मादक-तुल्य है। *'शर्वादयः'*—रुद्र आदि ग्यारहजन। यहाँ दो अश्लील इन्द्रियोंके दो अधिष्ठातृ देवताओं तथा वासुदेवसे अभेद होनेके कारण चित्तके अधिष्ठाता देवताको छोड़कर एकादश देवताओंका उल्लेख हुआ है। यहाँ यद्यपि इनके अन्तरात्मा द्वारा ही विषय भोग होता है, उनके कर्त्ता उन-उन इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देवताओंको नहीं होता है, यही अध्यात्म सिद्धान्त है, तथापि बुद्धिमें ब्रह्मा, चक्षुमें सूर्य अवस्थान कर रहे हैं। अतः उन-उन अधिष्ठाताओंके बिना श्रीकृष्णनिष्ठजनोंकी भी इन्द्रियाँ रूप-रस आदिको ग्रहण नहीं कर सकतीं। साधारण दृष्टिसे अध्यात्मविदोंका ऐसा प्रवाद रहनेपर भी श्रीकृष्णके प्रति रति-उत्कण्ठायुक्त ब्रह्मादिके आनन्दका कारण कर्त्तृत्वमात्रमें ही भोक्ता अभिमानको स्वीकार कराता है, एवं स्वयं प्राकृत होकर भी व्रजवासियोंकी अप्राकृत उन-उन इन्द्रियोंके अधिष्ठातृका अभिमान रहता है। प्रेमकी इस प्रकारकी

विलक्षण प्रक्रिया पद्यावली आदि ग्रन्थोंमें भी देखनेको मिलती है। जैसे "मिथ्या अपवाद वाक्यके द्वारा भी अभिमान होता है" इत्यादि। अन्यथा चिदानन्दमय-विग्रह श्रीभगवत्-परिकरोंकी समस्त इन्द्रियाँ भी भगवान्‌की भाँति आनन्दमय ही हैं, किन्तु उनका प्राकृतत्व सम्भव नहीं है, ऐसी स्थितिमें प्रपञ्चगत ब्रह्मादिका उनमें प्रवेश कैसे हो सकता है? अथवा *'एषान्तु'* इत्यादि द्वारा कभी किसी प्रकारसे श्रीभगवान्‌की माधुरी प्राप्त होनेके कारण अपने भाग्यकी प्रशंसा कर रहे हैं। इन व्रजवासियोंके भाग्यकी महिमा अद्वितीय अनुपम है—यह भावार्थ है। इनके द्वारा दसों दिशाओंके दिक्‌पाल देवतागण और हम भी महाभाग्यशाली हुए हैं। किस प्रकार भाग्यशाली हुए हैं? इसके लिए ब्रह्मा अपनी तर्जनीके द्वारा अपने नेत्र और कर्ण इन्द्रियोंको स्पर्शकर कह रहे हैं—हे श्रीकृष्ण! आप जब बछड़ोंको चरानेके लिए व्रजभूमिसे बाहर निकलते हैं, तब हमलोग आपके चरणकमलोंका सौन्दर्य और आपके सुन्दर स्वररूपी अमृतका अपने नयनों और कर्णेन्द्रियोंके द्वारा पान करते हैं।

इसका तात्पर्य यह है कि यदि नेत्र आदि प्रत्येक इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ हम देवता व्रजवासियोंके चक्षु आदि इन्द्रियोंके द्वारा आपके रूप, रस आदि एक-एक विषयकी सेवा करके ही कृतार्थ होते हैं, तब जो समस्त इन्द्रियोंके द्वारा आपके रूप आदि समस्त विषयोंकी सेवा कर रहे हैं, उन व्रजवासियोंके भाग्यकी महिमाका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है?॥ ३३॥

**तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां**
**यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्।**
**यज्जीवितन्तु निखिलं भगवान् मुकुन्द-**
**स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव॥ ३४॥**

**अन्वयः**—अद्यापि (अनादि कालसे लेकर आज तक भी) यत्पदरजः (जिन भगवान्‌की चरणरजको) श्रुति मृग्यम् एव (श्रुतियाँ भी ढूँढ़ रही हैं) भगवान् मुकुन्दः तु यज्जीवितं (भगवान् मुकुन्द जिनके जीवन-स्वरूप हैं) निखिलं (उनका सबकुछ हैं) कतमाङ्घ्रि

रजोऽभिषेकं (गोकुलवासियोंमेंसे किसीकी भी चरणरेणु द्वारा अभिषेक योग्य) इह (इस मनुष्य लोकमें) अटव्यां गोकुलेऽपि यत् किमपि जन्म तत् भूरिभाग्यं (अवस्थित भौम व्रजविपिनमें या गोकुलमें कोई भी जन्मलाभ महाभाग्यके फलसे होता है)॥ ३४॥

**अनुवाद**—अनादिकालसे आज तक श्रुतियाँ जिनकी पदरजको ढूँढ़ रही हैं, वे ही भगवान् मुकुन्द जिनके जीवन-प्राण एवं सर्वस्व हैं, उन गोकुलवासियोंमेंसे किसी एककी भी पदधूलि द्वारा अभिषेक योग्य इस भौमव्रज वनमें अथवा गोकुलमें किसी भी योनिमें जन्म महाभाग्यसे ही होता है॥ ३४॥

**सारार्थदर्शिनी**—तस्माज्जगदैश्वयर्याय प्राप्ताय प्राप्तव्याय मोक्षाय च मया जलाञ्जलिर्दत्तः केन प्रकारेणैषां व्रजवासिनां चरणधुलयो लभ्यन्त इति विभाव्य सुनिश्चयमाह—तदेव मे भूरिभाग्यं भवत्विति शेषः। यदि श्रीमत्कृपाकटाक्षा उदारा भवन्तीति भावः किन्तत्। इह अटव्यां वृन्दावने यत् किमपि कोमलतृणदुवादिजन्म यदुपरि त्वत्प्रियसखादिव्रजवासिजनचरणविन्याससौभाग्यं सम्भवेत्। नन्वस्मिन्नतिदुर्ल्लभे लोभं विहाय स्वयोग्यमन्यत्प्रार्थयस्वेति चेत् तर्हि गोकुलेऽपि तन्नगरप्रान्तादावपि कतमस्य त्वदीयसौचिककारुहडिपाद्येकतरस्याप्यङ्घ्रिरजसोऽभिषेको यत्र तथाभूतं शिला पीठपट्टिकादिजन्म भवतु। नन्वेषां व्रजवासिनामेतावन्माहात्म्यवत्त्वे को हेतुः कथं वा जगत्पूज्यस्य जगत्स्रष्टुः परमेष्ठिनस्तवैषां नीचजातीनां पादधुलिलिप्सायां नास्ति लज्जेति तत्राह, येषां जीवितं भगवान् भगः श्रीकाममाहात्म्येत्यमरणानार्थवर्गात् सौन्दर्य सौस्वर्यादिगुणविशिष्टो भगवान् मुकुन्दः मुखे कुन्दवद्धास्यं यस्य सः इति त्वत्सौन्दर्यादिमन्दहसिताद्येक जीवनोपायः। तेन विना सद्य एवामी म्रियन्ते इत्येतेषामसाधारणंत्वयि महाप्रेमैव सर्वोत्कर्षे हेतुरिति भावः। निखिलमिति किञ्चिदपि जीवितन्न भोजनपानादिहेतुकमित्यर्थः। अतोऽद्यापि येषां पदरजः श्रुतिभिर्मृग्यते एव न तु प्रायः प्राप्यत इत्यतोऽहं ब्रह्मापि किं वेदेभ्योऽप्यधिको यत एतत् प्रार्थने मम लज्जा स्यादिति भावः। अतो मया तदस्तु मे नाथेति यत् पूर्वं प्रार्थितन्तत्स्वस्य वैधभक्तिमत्त्वे एव यदि व्रजजनानुगतिमत्त्वेन मां रागानुगामृताम्भोधौ निमज्जयति तदेवं प्रार्थितम्॥ ३४॥

**भावानुवाद**—अतएव इस जगत्का जो ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है, उसे तथा प्राप्त होनेवाले मोक्षको जलाञ्जलि देकर व्रजवासियोंकी चरणधूलि कैसे प्राप्त करूँ, यह विचारकर ब्रह्माजी निश्चयपूर्वक कहने लगे—*'तद् भूरिभाग्यम्'*—यदि आपका उदार कृपा-कटाक्ष मुझपर पड़

जाय, तो मैं समझूँगा कि मेरा वैसा महासौभाग्य उदित हो गया है। कैसा भाग्य?—*'इह अटव्याम्'* इस श्रीवृन्दावनमें किसी भी कोमल तृण-गुल्म (दुर्वादि) आदि योनिमें भी मेरा जन्म हो जाय, जिससे मेरे ऊपर आपके प्रिय सखाओं आदि व्रजवासियोंके चरणकमल पड़ जायँ—यही मेरा सौभाग्य होगा। यदि कहें कि ऐसी अति दुर्लभ वस्तुका लोभ छोड़कर अपने योग्य किसी दूसरे जन्मके लिए प्रार्थना करो। उसके लिए कह रहे हैं—*'गोकुलेऽपि'*—आपके नगरकी सीमामें आपके कपड़े सिलनेवाले दर्जी, लकड़ीका काम करनेवाले बढ़ई या मेहतर आदि निम्न जातिके किसी भी व्यक्तिकी पदधूलिके द्वारा अभिषेक योग्य शिला या पीढ़ा आदिके रूपमें ही मेरा जन्म हो जाय। यदि कहें कि इन व्रजवासियोंकी ऐसी महिमाका क्या कारण हो सकता हैं तथा जगत्-पूज्य, जगत्-स्रष्टा परमेष्ठी होकर भी आपको इन साधारण गँवार और नीच जातिवाले व्रजवासियोंकी पदधूलिकी प्रार्थना करनेमें लज्जा नहीं आ रही है? इसके उत्तरमें (ब्रह्माजी) कह रहे हैं—*'यज्जीवितम्'* भगवान् मुकुन्द आप ही जिनके जीवन-सर्वस्व हैं, वे ऐसे व्रजवासी हैं। अमरकोषके नानार्थवर्गमें कहा है—'भग' शब्दका अर्थ—ऐश्वर्य, काम और महिमा है। इस अर्थमें सौन्दर्य, सौस्वर्य आदि गुणविशिष्ट भगवान् एवं जिनके मुखमें कुन्द कुसुमकी भाँति हास्य है, ऐसे आप मुकुन्द हैं। आपका सौन्दर्य और मृदुमन्द हास्य ही उनके जीवन-धारणका एकमात्र उपाय है, उसके बिना तत्काल ही वे प्राण परित्याग करेंगे। आपके प्रति ऐसा असाधारण महाप्रेम ही उन व्रजवासियोंकी सर्वोत्कर्षताका कारण है—यह भावार्थ है। *'निखिलम्'*—आप ही उनके जीवन-सर्वस्व हैं, परन्तु अपने भोजन-पान आदिके लिए उनका जीवन नहीं है। यही कारण है कि अनादि कालसे आज तक श्रुतियाँ उनकी चरणरजको ढूँढ़ रही हैं, फिर भी आज तक उनका दर्शन नहीं कर पायीं, तो क्या मैं (ब्रह्मा) श्रुतियोंसे श्रेष्ठ हूँ, जो ऐसी प्रार्थना करनेमें मुझे लज्जा आयेगी? अतएव *'तदस्तु मे नाथ'* (तीसवाँ श्लोक) अर्थात् हे नाथ! मेरा ऐसा महासौभाग्य हो, जिससे कि मैं आपके भक्तोंमेंसे कोई एक होकर आपके चरणकमलकी सेवा कर सकूँ—इस प्रकारकी पहले मैंने जो

प्रार्थना की थी, वह वैधीभक्ति ही मेरे अधिकारोचित होनेपर भी यदि व्रजवासियोंके आनुगत्यमें मुझे रागानुगाभक्तिके अमृत-समुद्रमें निमज्जित करा दें, तो यह बड़ी कृपा होगी, इसी अभिप्रायसे ब्रह्माजीने प्रार्थना की थी॥ ३४॥

**एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देवरातेति न-**
**श्चेतो विश्वफलात् फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन्मुह्यति।**
**सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता**
**यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनय-प्राणाशयास्त्व त्कृते॥ ३५॥**

**अन्वयः**—सकुला (अघासुर सहित) पूतना अपि (दुष्टा पूतनाने भी) सद्वेषाद इव (भक्तोंके वेषका अनुकरणमात्रसे ही) त्वां एव अपिता (तुम्हें प्राप्त किया है) यद्धामार्थ-सुहृत्-प्रियात्मतनय प्राणाशयाः (जिनका धाम, गृह, अर्थ, सुहृत्, प्रिय, आत्मा, तनय (पुत्र) प्राण और हृदय सब कुछ) त्वत् कृते (तुम्हारे लिए समर्पित हैं) देव (हे देव!) एषां घोषनिवासिनां (इन व्रजवासियोंको) भवान् किं राता (आप क्या देंगे) विश्वफलात् (विश्वके फल-स्वरूप) त्वत् (आपसे) अपरं (श्रेष्ठ) फलं कुत्रापि उत इति अयत् (फल संसारमें कहाँ सम्भव है?) नः चेतः (इससे हमारा चित्त) मुह्यति (मोहको प्राप्त हो रहा है)॥ ३५॥

**अनुवाद**—हे देव! क्रूर हृदयवाली पूतनाने साध्वी वेश धारणके अनुकरणमात्रसे ही अघासुर, बकासुर आदि सगे-सम्बन्धियोंके साथ आपको प्राप्त किया है। किन्तु जिनके गृह, धन, सुहृद्, प्रिय, द्रव्य, देह, प्राण, मन, पुत्र आदि सर्वस्व आपकी प्रीतिके लिए ही आपके चरणोंमें समर्पित हैं, ऐसे इन व्रजवासियोंको आप इनकी सेवाके बदलेमें क्या प्रदान करेंगे, उनसे कैसे उऋण होंगे? आप समस्त फलोंके फल हैं, आपसे उत्कृष्ट फल कौन-सा है? यह विचार करके मेरा चित्त मोहग्रस्त हो रहा है॥ ३५॥

**सारार्थदर्शिनी**—किं च येषां पादरजो मया लोभात् प्रार्थ्यते तल्लभ्यतां न लभ्यतां वा मयेति स्पष्टं न ब्रूषे चेन्मा ब्रूहि किन्त्वन्यदेकं यत्पृच्छ्यते

तदुत्तरमवश्यमेव देहीत्याह–एषाम् एभ्यो भवान् किं रातेति किं फलं दास्यतीति। उत प्रश्ने। इत्यहं पृच्छामीत्यर्थः। ननु, सर्ववेदार्थतत्त्वज्ञेन त्वयैव चेतसा विचार्य स्वयमेव ज्ञायतां तत्राह—नोऽस्माकं चेत इति। बहुवचनेन न केवलं ममैव अपि तु रुद्रस्य सनकादीनां नारदादीनां च सर्वेषामेव सर्वज्ञानां चेतो मुह्यति। चेतः कीदृशं? विश्वफलात् सर्वफलात्मकात्त्वत्तोऽपि अपरमन्यत् फलं कुत्राऽपि देशे काले वा अन्यत् बुद्ध्या बहुधा अन्विष्याप्यप्राप्नुवत् *"इण गतौ"* शत्रन्तः। अयमर्थः—सर्वफलरूपस्त्वमेभिरनादित एव पुत्रादिरूपत्वेन प्राप्त एव वर्तसे। अतएव मया एषां भवानिनि षष्ठी प्रयुक्ता। यदि तु त्त्वतोऽप्यधिकमन्यत् किञ्च वस्तु प्रशस्तम स्थास्यत् तदैवैतेभ्यो देयत्वेन योग्यमभविष्यत् तत्तु नास्तीत्यस्माकं चेतो मोहे हेतुरिति। ननु, ब्रह्मन्! सत्यं त्वं तत्त्वानभिज्ञ एवासि मयैतेषां भविष्यन्तीमनुरागमयीमद्भुतां भक्ति जानतैव तत्साध्यफलभूतः स्वात्मा पुत्रादिरूपः प्रथममेव दत्त इत्यन्ये खलु कृतज्ञा भवन्ति, अहं तु करिष्यमाणविज्ञ इति मयैव जितमिति चेत् सत्यं प्रभो! तदपि त्वं न्यायेन जीयस एवेत्याह—सद्वेषादिव सद्वेषादेवेत्यर्थः। पूतना पापिष्ठाऽपि स्वकुलसहिताऽपि त्वामेवापिता त्वयैव तवां स्वात्मानं प्रापिता। तथा येषां धामादयो ममतास्पदाहन्तास्पदानि त्वत्कृते त्वदर्थमेव ते चैते व्रजवासिनोऽपि त्वया तवामेवापिता इति वाक्यशेषो नासानेत्रभ्रूग्रीवाभङ्ग्यैव ज्ञापितः। य एव स्वात्मा अतिनिकृष्टायै पापिष्ठायै पूतनायै दत्तः स एव स्वात्मा अतिप्रकृष्टेभ्यः पुण्यवच्छिरोमणिभ्यो व्रजवासिभ्यो दत्त इति प्रथमतो दानेऽप्य-नुचितानुष्ठितिर्दुर्वारित्येषां ऋणित्वस्वीकार एव तव निष्कृतिरिति भावः॥ ३५॥

**भावानुवाद**—मैंने जिनकी चरणधूलिके लोभसे प्रार्थना की है, वह मिलेगी या नहीं, इस बातको आप स्पष्ट रूपसे बतला नहीं रहे हैं, तो ठीक है मत बतलाइये, परन्तु आपसे दूसरी एक बात पूछता हूँ, कृपया उसका उत्तर तो अवश्य दीजिये। इसे *'एषां भवान् किं राता'* द्वारा कह रहे हैं—इन व्रजवासियोंको आप क्या प्रदान करेंगे? (सम्भवतः इनकी भक्तिके अनुरूप देने योग्य आपके पास कुछ भी नहीं है) 'उत'—शब्द प्रश्नके अर्थमें है; यही मैं पूछ रहा हूँ—यही अर्थ है। यदि कहें—हे ब्रह्मन्! तुम सर्व वेदार्थ-तत्त्वज्ञ हो, मन-ही-मन विचार करके उसे स्वयं ही समझ लो। इसके उत्तरमें ब्रह्माजी कह रहे हैं—*'नः चेतः'*—हमारा चित्त, यहाँ बहुवचनके द्वारा ब्रह्माजी बतलाना चाह रहे हैं कि केवल मेरा चित्त ही नहीं, अपितु श्रीरुद्र, सनकादि चतुःसन एवं नारदादि सभी सर्वज्ञजनोंका चित्त भी मोहग्रस्त हो रहा है। कैसा चित्त? उसके लिए कह रहे हैं—*'विश्व फलात्*

*फलम्'*—सर्वफल-स्वरूप आपसे बढ़कर दूसरा परम उत्कृष्ट फल किसी भी देशमें या किसी भी कालमें बहुत प्रकारसे ढूँढ़नेपर भी नहीं मिल सकता है। यहाँ तात्पर्य यह है कि सर्वफल-स्वरूप आप अनादि कालसे ही इनके पुत्र आदिके रूपमें वर्त्तमान हैं। अतएव मैंने *'एषां भवान्'*—इस प्रकार सम्बन्धमें षष्ठी प्रयोग किया है, (*'एभ्य'*—सम्प्रदानमें चतुर्थी नहीं।) यदि आपसे भी दूसरी कोई उत्कृष्ट वस्तु रहती, तब वह इन्हें देने योग्य होती, किन्तु वैसी सर्वोत्कृष्ट वस्तु है ही नहीं। इसलिए हमारा चित्त मोहग्रस्त हो रहा है। यदि कहें—हे ब्रह्मा! तुम सचमुच ही तत्त्व-विषयसे अनजान हो। मैंने इनकी भविष्यत् कालीन अनुरागमयी भक्तिको जानकर ही उसके साध्य-फलरूपमें अपनेको पहले ही पुत्र आदिके रूपमें इन्हें प्रदान किया है। इससे दूसरे लोग कृतार्थ होंगे, परन्तु मुझे क्या करना चाहिये, इसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ। यही कारण है कि मैंने पहले ही इन्हें फल दे दिया है। इस प्रकार मेरी ही जीत हुई। इसके उत्तरमें कहते हैं—सत्य है, प्रभो! तर्कमें आपकी ही जीत हुई, किन्तु *'सद्वेशादिव'*—केवल सद्वेश अर्थात् जननीका वेशमात्र धारण करके ही दुष्ट-पापी, बालघातिनी पूतनाने भी अघासुरके साथ सवंश आपको पाया है, अर्थात् आपने ही अपनेको उन्हें प्रदान किया है। किन्तु जिन्होंने अपना घर-बार, पुत्र-परिवार, धन-सम्पत्ति अपना सब कुछ आपकी प्रीतिके लिए प्रदान कर दिया है, उन व्रजवासियोंको भी आप अपनेको प्रदान कर रहे हैं। जिस अपनेको आपने अतिनिकृष्टा पापिष्ठा पूतनाको प्रदान किया, उसी अपनेको अति उत्कृष्ट पुण्यशील-शिरोमणि व्रजवासियोंको भी प्रदान कर रहे हैं, इससे प्रथम दृष्टिसे यह दान अनुचित और अयोग्य है, अतएव इनके निकट ऋणीत्व स्वीकार करनेमें ही आपकी निष्कृति है—यह भावार्थ है॥ ३५॥

**तावद्रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम्।**
**तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगड़ो यावत् कृष्ण न ते जनाः॥ ३६॥**

**अन्वयः**—कृष्ण (हे कृष्ण!) यावत् (जब तक) जनाः ते न (लोग तुम्हारे प्रति अनुरागी नहीं होते) तावत् (तब तक) रागादयः

स्तेनाः (संसारके प्रति अनुराग चोरी माना जाता है) तावत् गृहं कारागृहं (तब तक उनका घर कारागार कहा जाता है) तावत् मोहः अङ्घ्रिनिगड़ः (तब तक पुत्र-परिजन, विषय-सम्पत्तिके प्रति मोह पैरकी बेड़ी है)॥ ३६॥

**अनुवाद**—हे कृष्ण! जब तक मनुष्य आपके प्रति अनुरागी नहीं होते, तभी तक संसारके प्रति अनुराग चोरीके समान, घर कारागारके समान और मोह पैरोंकी बेड़ियोंके समान होते हैं॥ ३६॥

**सारार्थदर्शिनी**—नन्वेते गृहस्थाः पुत्रकलत्रादिसंसारजाले निपतिता इति संन्यासिभिरुच्यते, सत्यं त्वल्लक्षणपुत्रत्वद्भक्तलक्षणकलत्रादिमन्त एते गृहस्था वर्तन्तां देशान्तरस्था ये त्वद्भक्ता गृहस्थस्तेऽपि संन्यासिभ्योऽप्यधिका इत्याह—तावदिति। रागादयो रागद्वेषाऽभिनिवेशास्ते च महाचौरा जीवनिष्ठज्ञानानन्दादि महाधनान्यपहृत्य परमेश्वरे राजनि एते मा फुत्कुर्वन्त्विति बुद्ध्या कर्माधिकारमये गार्हस्थ्यकारागारे मोहनिगडेन निबदध्य जीवाः स्थप्यन्ते। हे कृष्ण! जना जीवा यावत्ते त्वद्भक्तानुग्रह-भोजनत्वेन त्वदीया न भवन्ति तावदेव रागादयः स्तेनाश्चोराः। त्वदीयत्वे सति तेषां त्वद्भक्तेष्वेव रागः भक्तिप्रतिकूले वस्तुन्येवद्वेषः त्वय्येवाभिनिवेश इति प्रत्युत त्वन्निष्ठज्ञानानन्दादिकमप्यानीय दधानास्त एव परमसाधवो भूत्वा नित्यमुपकुर्वते। एवमेव गृहं भद्राभद्रकर्मसाधनं यत्कारागृहमासीत्तदेव तेषां त्वत्परिचर्याकीर्तनादिसाधनं त्वदीयनित्यधामप्रापकं भवेत् एवं मोहविषयस्य त्वद्भक्तत्वात् सोऽपि त्वत् प्रेमानुभावरूपमोहप्रापक इति कथमेतत् समकक्षतां संन्यासिनो लभन्तां। ये *"कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमप्लवेषां षड्वर्गनक्रमसुखेनतितीर्षन्ति"* इत्युक्त्या मत्पुत्रेण सनत्कुमारेणाप-कर्षितास्तेभ्यः संन्यासिभ्योऽपि भक्त्या परमाधिका ये देशान्तरस्थगृहस्थभक्तास्तेभ्यः परः सहस्रगुणतोऽपि प्रेम्णा अधिकतमा ये व्रजवासिनस्तैरेभिस्त्वं साक्षात् पूर्णब्रह्मस्वरूपोऽपि पुत्रादिरूपत्वेन स्वाधीनीकृत एव वर्तसे इति भावः॥ ३६॥

**भावानुवाद**—यदि कहें कि संन्यासीगण कहते हैं कि ये सभी गृहस्थ व्रजवासी पुत्र-स्त्री आदि रूप संसार-जालमें फँसे हुए हैं। इसके उत्तरमें कहते हैं—हाँ! यह सत्य है। आपके जैसा पुत्र एवं आपकी भक्तरूप स्त्री आदिसे युक्त इन गृहस्थों (व्रजवासियों) की बात तो दूर रहे, जो देशान्तरमें (दूसरे-दूसरे देशोंमें) रहनेवाले आपके गृहस्थ भक्त हैं, वे भी संन्यासियोंसे श्रेष्ठ हैं। इसे *'तावत् रागादयः'* द्वारा कह रहे हैं। राग, द्वेष आदि अभिनिवेशसमूह महाचोरके समान हैं, वे जीवनिष्ठ ज्ञान, आनन्द आदि महाधनका अपहरण कर लेते हैं, जिससे कि

जीव परमेश्वररूप राजाके निकट निवेदन भी न कर सकें। इसलिए वे जीवोंको कर्माधिकारमय गार्हस्थ्यरूप कारागारमें मोहरूप शृंखलाके द्वारा निबद्ध कर देते हैं। *'यावत्'*—हे कृष्ण! जब तक जीव-समुदाय आपके भक्तोंका कृपापात्र बनकर आपका भक्त नहीं बनता, तभी तक काम, क्रोध आदि छह शत्रु उनके विवेकको हरण करनेवाले चोर बने रहते हैं। अर्थात् चोर जैसे कोषागारमें गुप्त रूपसे रखे हुए धन आदिका अपहरण करते हैं, वैसे ही क्रोध आदि चोर भी विवेकरूपी धनका अपहरण करते हैं। तब उनके गृह कारागार-तुल्य होते हैं एवं उनका मोह पैरोंको बाँधनेवाली बेढ़ी सदृश होता है। किन्तु जब वे आपके भक्त हो जाते हैं, तो आपके भक्तोंके प्रति उनका राग (अनुराग), भक्तिके प्रतिकूल वस्तुओंसे द्वेष एवं आपमें प्रीति ही उनकी आसक्ति हो जाती है। उस समय उलटे वे राग-द्वेष आदि चोर ही भगवत्तत्त्वज्ञान, आनन्द आदिको ले आकर भक्तोंको प्रदानकर परमसाधुके रूपमें उनका उपकार ही करते हैं। इसी प्रकार मङ्गल और अमङ्गलमय कर्मोंका साधन-स्वरूप जो गृह कारागारके समान था, उस गृहमें आपकी सेवा-परिचर्या और कीर्त्तनादिका अनुष्ठान होनेसे उनका वह घर आपके नित्य धामको प्राप्त करानेवाला हो जाता है और आपके भक्तोंके प्रति आसक्तिके कारण उनका मोह आपके प्रेमके अनुभावरूप मोहको प्राप्त करानेवाला बन जाता है। अतः इन गृहस्थ भक्तोंकी समता संन्यासी कैसे कर सकते हैं? *"कृच्छ्रोमहानिह"* (श्रीमद्भा० ४/२२/४०), अर्थात् "हे राजन्! संन्यासीगण ब्रह्मविद्याके द्वारा कर्मग्रन्थिका छेदन करनेमें समर्थ होनेपर भी मायासे सुखपूर्वक मुक्त नहीं हो सकते, क्योंकि काम-क्रोध आदि षड्वर्ग जिसमें मगरमच्छके रूपमें वर्त्तमान रहते हैं, उस भवसागरको वे बड़े कष्टसे पार होनेकी इच्छा करते तो हैं, परन्तु पार नहीं हो पाते हैं। अतएव वह अत्यन्त दुःखमय है। इसलिए सबके लिए भजनीय भगवान्के चरणकमलोंको नौका बनाकर दुस्तर समुद्ररूप कष्टमय विषय-वासना-समुद्रको सहज ही पार हो जाओ"—इस प्रकार महाराज पृथुके निकट मेरे पुत्र सनत्कुमारने जिनका अपकर्ष निर्णय किया है, ऐसे संन्यासियोंसे भी अधिक भक्ति रहनेके कारण देशान्तरमें स्थित

गृहस्थ भक्त बहुत श्रेष्ठ हैं। उन गृहस्थोंसे भी हजारों-हजारों गुणा प्रेमकी अधिकताके कारण व्रजवासीजन श्रेष्ठ हैं, क्योंकि आप साक्षात् पूर्णब्रह्म-स्वरूपमें उन व्रजवासियोंके अधीन हैं—यह भावार्थ है॥ ३६॥

**प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले।**
**प्रपन्नजनतानन्दसन्दोहं प्रथितुं प्रभो॥ ३७॥**

**अन्वयः**—प्रभो (हे प्रभो!) (आप) निष्प्रपञ्चः अपि भूतले प्रपन्न जनतानन्द सन्दोहं (प्रपञ्चातीत होकर भी शरणागतजनोंकी आनन्द राशि) प्रथितुं (विस्तार करनेके लिए) प्रपञ्चं विडम्बयसि (इनके जैसे प्रापञ्चिक लीलाका) व्यवहारं अनुकरोषि (अनुकरण करते हैं)॥ ३७॥

**अनुवाद**—हे विभो! आप इस प्रपञ्चसे अतीत हैं, फिर भी अपने शरणागत भक्तोंका आनन्द बढ़ानेके लिए आप भौमव्रजमें प्रकट होकर प्रापञ्चिक लीला-विलासका अभिनय करते हैं॥ ३७॥

**सारार्थदर्शिनी**—ननु, व्रजेऽस्मिन्नेतत्पुत्रादिभावं पूर्णब्रह्मणो मम न वस्तु इति केचिन्मन्यन्ते सत्यं ते भ्रान्ता एवेत्याह—प्रपञ्चमिति। निष्प्रपञ्चोऽपि प्रपञ्चातीतोऽपि त्वं भूतले सदा स्थितः सन् प्रपञ्चं विडम्बयसि प्रपञ्चस्थं पुत्रादिभावमनुकरोषि प्रापञ्चिकेषु पित्रादिषु प्रापञ्चिकाः पुत्रादयो यथा चेष्टन्ते तथैव त्वमपि चेष्टसे इत्यर्थः। तेन जीवानां यथा पितृपुत्रादिभावो ह्यवास्तवस्तथा तव न। तव तु सनिष्प्रपञ्चत्वाद्वास्तवो नित्य एवेति, तव लीला नित्या प्रपञ्चातीतोऽपि प्रपञ्चानुकरणमयीति सिद्धान्त उक्तः। किमर्थं विडम्बयसि? प्रपन्ना या जनता तस्या यस्तादृशीलीलास्वादनोत्थ आनन्दसन्दोहस्तं प्रथयितुं ब्रह्मानन्दाद्वैकुण्ठीयलीलानन्दादपि विस्तृतीकर्तुं भूतल इत्ययं भावः। प्रकाशे दीपो नातिशोभते यथान्धकारे एव श्वेतराजतपात्रे हीरकरत्नं नातिशोभते यथा नीलकाचादिपात्रे। तथैव चिन्मयवैकुण्ठे चिन्मयी लीला नातिचमत्करोति यथा मायमये प्रपञ्चे इति। यद्यपि व्रजमण्डलमपि चिन्मयमेव तदपि कृष्णस्य प्राकृतपुरुषसाधर्म्यमिव भूतलस्थव्रजमण्डलस्यापि प्राकृतभूतलसाधर्म्यमेव दृष्टमतोऽत्र लीला चमत्कारेत्येवेति। हे प्रभो! इति मामपि प्रपञ्चमध्ये गणयेति भावः॥ ३७॥

**भावानुवाद**—यदि कहें—कोई-कोई ऐसा समझते हैं कि व्रजमें मुझ परिपूर्णब्रह्ममें पुत्र आदि भाव यथार्थ नहीं हैं। इसके उत्तरमें कहते हैं—ऐसा कहनेवाले ही यथार्थ भ्रान्त हैं। आप प्रपञ्चातीत होकर भी इस भूतलपर (भौमव्रजमें) सदा विराजमान रहकर *'प्रपञ्चं विडम्बयसि'*—इस

प्रापञ्चिक जगत्के पिता-माता आदिके प्रति भौतिक जगत्के पुत्रगण जैसा व्यवहार करते हैं, आप भी वैसा ही अनुकरण कर रहे हैं। इस जगत्में जीवोंके पिता-पुत्र आदि भाव जैसे अवास्तव हैं, किन्तु आपके भाव वैसे नहीं हैं। बल्कि आपके नित्य प्रपञ्चातीत होनेके कारण आपके पुत्र आदि भाव भी वास्तव-नित्य हैं। आपकी लीलाएँ नित्य और प्रपञ्चातीत होनेपर भी प्रपञ्चकी अनुकरणमयी हैं—यही सिद्धान्त है। आप लौकिक व्यवहारका अनुकरण क्यों करते हैं? इसके लिए कहते हैं—*'प्रपन्न जनतानन्द सन्दोहं प्रथितुम्'*—आपके श्रीचरणोंमें आश्रित जो भक्तजन हैं, उन्हें जिस प्रकार लीला-आस्वादनसे आनन्द प्राप्त होता है, वैसा आस्वादन ब्रह्मानन्दमें यहाँ तक कि वैकुण्ठीय लीलानन्दमें भी नहीं मिल सकता, उसी अप्राकृत आनन्दके विस्तार द्वारा उसका अनुभव करानेके लिए इस भूतलमें आपका लीलाविहार होता है। यहाँ तात्पर्य यह है कि अत्यधिक प्रकाशवाले स्थानमें दीपककी उतनी शोभा नहीं होती, जितनी अन्धकारमें होती है। सफेद चाँदीके पात्रमें हीरेको रखनेसे उसकी उतनी शोभा नहीं होती, जितनी नीले-काँचके पात्रमें होती है। उसी प्रकार चिन्मय वैकुण्ठमें चिन्मयी लीला उतनी शोभित एवं आश्चर्यमयी नहीं होती, जितनी मायामय प्रपञ्चमें होती है। यद्यपि व्रजमण्डल भी चिन्मय है, फिर भी श्रीकृष्णके प्राकृत पुरुषके समान धर्मकी भाँति भूतल-स्थित व्रजमण्डलका भी प्राकृत भूतलके समान धर्म देखा जाता है। अतएव इस व्रजधाममें वह लीला अत्यधिक चमत्कारिक होती है। हे प्रभो! (आप कोई कार्य करनेमें या नहीं करनेमें या अन्यथा करनेमें समर्थ हैं) अतएव मेरी भी अपने शरणागतजनोंमें गणना कीजिये, अर्थात् अपने श्रीचरणाश्रित मुझे अपनी लीलाका आस्वादन कराइये—यह भाव है॥ ३७॥

**जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो।**
**मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः॥ ३८॥**

**अन्वयः**—प्रभो (हे प्रभो!) बहूक्त्या (अपने वागडम्बरके द्वारा) किं जानन्तः (भगवत्-तत्त्व जाननेका अभिमान करनेवाले) जानन्तु

(आपकी महिमाको जान लें) तव वैभवं मे (परन्तु आपका वैभव मेरे) मनसो वपुषः वाचः (मन, वाणी ओर इन्द्रियोंके) गोचरः न (विषयीभूत नहीं है)॥ ३८॥

**अनुवाद**—हे प्रभो! अधिक कहनेकी आवश्यकता ही क्या है? जो पण्डिताभिमानी व्यक्ति मानते हैं कि वे आपकी महिमासे अवगत हैं—वे ऐसा समझते रहें, किन्तु आपका वैभव मेरे तन, मन एवं वचनके गोचर नहीं है॥ ३८॥

**सारार्थदर्शिनी**—सत्यं तर्हि मत्स्वरूपस्य मद्व्रजवासिनां मदीयलीलाया मद्भक्तेश्च सर्वमेव तत्त्वं मदग्रेऽपि स प्रतिभमेवं व्याचक्षाणा भवद्विधा अस्मिन् जगति कियन्तो वर्तन्ते। तान् जिज्ञासे कथयेति वक्रोक्तिमाङ्क्य सत्रपं सकम्पं साऽनुतापमाह—जानन्त एवेति। ये जानन्तस्ते जानन्तु अहं तु महामूर्ख एवास्मीति भावः। ननु, तर्हि कथमेतावत्क्षणपर्यन्तं ब्रूषे एव तत्राह—किं बहूक्त्येति। त्वदग्रे बहूक्तिरेव मूर्खत्वद्योतिनीत्यर्थः। ननु, ब्रह्मन्! निष्कपटं ब्रूहीति तत्राह, नेति तव वैभवमैश्वर्यं मम मनसो न गोचर इति ध्यानेनान्तप्राप्त्यभावात् वपुष इत्यधुनैव चक्षुषाऽपि वाच इति *"गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुम्"* इति मया तावदुक्तमेव। यद्वा, तव मनसो वैभवं मम न गोचर इति त्वन्मनसि यत् किमप्यस्ति तत् किं मया ज्ञातुं शक्यते *"साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः"* इति पूर्वमेव मदुक्तेः। एवं तद्वपुष इति त्वद्वपुषि किमस्तीति तव वाच इति तव वेदलक्षणायां वाचि किमस्तीति, साक्षात्तव तु मयि मौनवत्त्वात् वचनगन्धस्याप्यप्राप्तिरेव। तस्मात् के खलु त्वदग्रे मदादयो वराका इति भावः॥ ३८॥

**भावानुवाद**—हे ब्रह्मन्! मेरा स्वरूप, मेरे व्रजवासियों, मेरी लीलाओं और मेरे भक्तोंके तत्त्वकी मेरे सामने ही बड़ी प्रतिभाके साथ व्याख्या करनेवाले तुम्हारे जैसे कितने ही लोग हैं—उनके विषयमें पूछ रहा हूँ, कहो? ऐसी वक्रोक्तिकी आशङ्काकर लज्जित, कम्पित और अनुतापके साथ ब्रह्माजी कहते हैं—*'जानन्त एव जानन्तु'* अर्थात् जो कहते हैं कि मैं जानता हूँ, वे जानें, किन्तु मैं तो महामूर्ख हूँ—यह भावार्थ है। यदि कहें कि तो अब तक तुम इतना पाण्डित्यपूर्ण भाषण क्यों दे रहे थे? इसके उत्तरमें कह रहे हैं—*'किं बहूक्त्या'* अधिक बातोंका क्या प्रयोजन है? आपके सामने बहुत भाषण देना भी मूर्खताका ही प्रकाशक है। यदि कहें—ब्रह्मन्! निष्कपट रूपसे कहो,

इसके उत्तरमें कह रहे हैं—*'न मे प्रभो'*—हे प्रभो! आपकी महिमा मेरे तन, मन और वचनसे अतीत है, उसका वर्णन करनेका मेरा सामर्थ्य नहीं है। *'तव वैभवम्'*—आपका ऐश्वर्य मेरे मनके गोचर नहीं है, क्योंकि ध्यानके द्वारा उसका अन्त नहीं पाया जा सकता। *'वपुषः'*—इस समय चक्षुओंके द्वारा आपका दर्शन करके भी मेरा यह शरीर आपको नहीं जान सकता है। *'वाचः'*—मेरी वाणी भी समर्थ नहीं है। *'गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुम्'* (सातवाँ श्लोक) अर्थात् जगत्के कल्याणके लिए आविर्भूत समस्त गुणोंके आधार-स्वरूप आपके अनन्त गुणोंकी सीमा कौन पा सकता है? इत्यादि श्लोकोंमें पहले ही मैंने कहा है। अथवा *'तव मनसो वैभवम्'*—आपके मनका वैभव मेरे गोचर नहीं है अर्थात् आपके मनमें क्या है, मैं इसे जाननेमें समर्थ नहीं हूँ। *'साक्षात्तवैव'* (द्वितीय श्लोक) अर्थात् साक्षात् असाधारण नियम्य-नियन्तारहित सच्चिदानन्दात्मक आपकी महिमा जाननेमें समर्थ नहीं हूँ, इत्यादि पहले ही मैंने कहा है। इसी प्रकार *'तद्वपुषः'*—आपके श्रीविग्रहमें क्या-क्या है, *'तव वाचः'* आपकी वेदरूप वाणीमें क्या है, इसे भी मैं जाननेमें समर्थ नहीं हूँ तथा मेरे समक्ष मौन रहनेके कारण आपकी वाणीका गन्ध भी मैं प्राप्त नहीं कर सका। अतएव आपके सामने मैं एक तुच्छातितुच्छ व्यक्ति हूँ—यह भाव है॥ ३८॥

**अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक्।**
**त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत् तवार्पितम्॥ ३९॥**

**अन्वयः**—कृष्ण (हे कृष्ण!) मां अनुजानीहि (मुझे जानेकी अनुमति प्रदान करें) सर्वदृक् (आप सर्वदर्शी हैं) त्वं सर्वं वेत्सि (अतएव आप मेरा बल, विद्या सबकुछ जानते हैं) त्वं एव जगतां नाथः (आप ही जगतके ईश्वर हैं) [अतएव मैंने अपने] जगत् (ममतास्पद विश्व जगत्को) एतत् च (और अपने शरीरको) तव (आपके निकट) अर्पितम् (अर्पण किया)॥ ३९॥

**अनुवाद**—हे सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण! आप सर्वद्रष्टा हैं, अतएव आप सबकुछ जानते हैं। सम्पूर्ण प्रपञ्च आपमें ही स्थित है

तथा आप सम्पूर्ण चराचर जगत्‌के एकमात्र ईश्वर हैं। अतः मैं ममतास्पद इस विश्वको और अपने शरीरको आपके प्रति समर्पित करता हूँ। आप इन्हें स्वीकार कीजिये तथा मुझे अपने लोकमें जानेकी अनुमति दीजिये॥ ३९॥

**सारार्थदर्शिनी**—ननु, मम वैभवं तव मास्तु गोचरस्तव वैभवमहं वेद्मि न वेत्ति तत्र वक्रोक्तिमाशङ्क्य किमहमत्र प्रत्युत्तरं कुर्यामिति व्यञ्जयन् सलज्जं सनिर्वेदमाह—अनुजानीहीति। अन्तर्भावितमार्थम् अनुज्ञापयेत्यर्थः। अत्र स्थले क्षणमपि स्थातुमयोग्यमतिनीचं मामाज्ञापय। यादृशोऽहं तादृशं स्थलं सत्यलोकमेव गच्छेयमिति भावः। हे कृष्णेति चित्तं तु त्वमत्राकर्षस्येव। किं तु *"तद्भूरिभाग्यमिह जन्म"* इति मत्प्रार्थनायां दृगिङ्गितेनाऽप्यस्त्विति श्रीमच्चरणैर्नोक्तमतः किं कुर्वे तस्मात् तत्पुलिनभोजन-केलेरन्तरायं कुर्वन्नयमपराधी त्वल्लीलाप्रातिकूल्यादेव श्रीमुखोद्गतवचनसुधालेश-मप्यनाप्नुवन्नहमितो झटित्येव दूरमपसरामि त्वं वत्सान् कालयित्वा पुलिने भुञ्जानैः प्रियसखैः सह सहासोक्तिप्रत्युक्तिकौतुकं भोजनलीलाशेषं समापयेति ध्वनयः। अयमहं त्वतितारल्यात् पुनः पुनः किं वा विज्ञापयामीत्याह—सर्वमस्मदादीनां मनोवपुर्वाचां वैभवं त्वमेव वेत्सि, किं च नाहमस्य जगतः स्रष्ट्रत्वान्नाथः किं तु त्वमेव जगतामन्येषामपि बहूनां नाथः। अत एतच्च जगत् क्षुद्रतरं तव त्वदीयमेव त्वय्यर्पितं। यमिच्छसि योग्यमस्य जानासि तमस्याधिकारिकं कुर्विति भावः॥ ३९॥

**भावानुवाद**—यदि आप कहते हैं—ब्रह्मन्! मेरा वैभव भले ही तुम नहीं जानते हो, किन्तु मैं तुम्हारा वैभव जानता हूँ या नहीं? इसपर मैं क्या उत्तर दूँगा, यही भाव व्यक्त करते हुए लज्जित होकर ब्रह्माजी अत्यन्त खेदपूर्वक कहने लगे—*'अनुजानीहि'*—अब आप मुझे जानेकी आज्ञा दें। मैं जैसा हूँ, उसी प्रकारके स्थूल सत्यलोकमें ही जाऊँ—यह भाव है। "हे श्रीकृष्ण!" इस सम्बोधनके द्वारा ब्रह्माजी कहना चाहते हैं कि आप ही मेरे मनको वृन्दावनमें आकर्षित कर रहे हैं। किन्तु *'तद्भूरिभाग्यमिह जन्म'* (चौंतीसवाँ श्लोक) अर्थात् इन गोकुलवासियोंमेंसे किसीकी भी पदधूलिके द्वारा अभिषिक्त होने योग्य कोई भी जन्म प्राप्त होनेसे यही मेरा महाभाग्य होगा—मेरे द्वारा ऐसी प्रार्थना करनेपर दृष्टिके सङ्केतसे भी आपने "ऐसा ही हो" यह नहीं कहा। अतएव अब मैं क्या करूँ? आपके पुलिन भोजन-लीलामें बाधा डालकर मैंने अपराध किया है। आपकी लीलाओंमें बाधा

डालनेके कारण मुझे आपके मुखनिःसृत वचनामृतका एक बिन्दु भी प्राप्त नहीं हो सका। अतः मैं यहाँसे अतिशीघ्र दूर जा रहा हूँ। आप बछड़ोंको एकत्रितकर पुलिनमें प्रिय सखाओंके साथ हास्य-परिहासपूर्वक भोजन लीला समापन कीजिये—यही ध्वनित हो रहा है। मैं अति चञ्चल हूँ, मैं बार-बार क्या निवेदन करूँ। आप सबकुछ जानते हैं। आप सर्वद्रष्टा और चराचर जगत्के अधिपति हैं। अतएव हमारे तन, मन, वचनकी ज्ञान, बल आदि सभी क्रियाओंको आप जानते हैं। मैं इस जगत्का स्रष्टा होनेके कारण इसका अधीश्वर नहीं हूँ। वास्तवमें आप ही इस जगत् और दूसरे-दूसरे जगतोंके अधीश्वर हैं। अतएव यह क्षुद्रतर जगत् भी आपका ही है, अतएव मैं इसे आपको ही समर्पित कर रहा हूँ। जिसे आप योग्य समझें, उसीको इसका अधिकारी बनायें—यह भावार्थ है॥ ३९॥

**श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन्,**
**क्ष्मानिर्ज्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ।**
**उद्धर्म्मशार्वरहर क्षितिराक्षसध्रुग्-**
**आकल्पमार्कमर्हन् भगवन् नमस्ते॥ ४०॥**

**अन्वयः**—(हे) श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन् (वृष्णिवंशरूप कमलके आनन्दप्रदत्त सूर्यस्वरूप श्रीकृष्ण!) क्ष्मानिर्ज्जर द्विजपशू-दधिवृद्धिकारिन् (पृथ्वी, देवता, द्विज और पशुरूपी समुद्रके वृद्धिकारी चन्द्रदेव!) उद्धर्म शर्वरहर (आप पाषण्डधर्मरूप निशाके अन्धकारको हरण करनेवाले) [तथा] क्षिति राक्षसध्रुक् (पृथ्वीमें स्थितकंस आदि राक्षसतुल्यजनोंका विनाश करनेवाले हैं) आर्कं (सूर्य आदि समस्त पूजनीय जनोंके) अर्हन् (आप सर्वपूज्य हैं) भगवन् ते नमः (हे भगवन्! आपको मैं प्रणाम करता हूँ)॥ ४०॥

**अनुवाद**—सभीके हृदयोंको अपने रूपमाधुर्यसे आकर्षित करनेवाले हे कृष्ण! आप वृष्णिवंशरूप कमलको विकसित एवं आनन्दित करनेवाले सूर्य हैं। आप भूमि, देव, ब्राह्मण एवं पशुरूपी समुद्रको बढ़ानेवाले चन्द्र हैं। पाखण्ड-धर्मरूपी रात्रिके अन्धकारको नाश

करनेवाले तथा पृथ्वीपर स्थित राक्षसतुल्य लोगोंका नाश करनेवाले हैं। हे सूर्यादि समस्त देवताओंके पूजनीय! मैं जब तक जीवित रहूँ, तब तक आपको प्रणाम करता रहूँ॥ ४०॥

**सारार्थदर्शिनी—**यद्यपि मामपराधिनं विज्ञाय न ब्रूषे तदपि स्वनेत्राभ्यां सानुग्रहावलोकनामृतं तु मह्यं देहि यथा तेनैवाहारेण नित्यं प्राणान् रक्षन् कल्पपर्यन्तं जीवितुं प्रभविष्यामीति व्यञ्जयन् प्रणमति—श्रीकृष्णेति। सूर्यस्वरूपं दक्षिणं नेत्रमालक्ष्याह—वृष्णिकुलपद्मस्य जोषः प्रफुल्लत्वं तत्प्रदायिन् मामपि पद्मसन्तानं कृपया प्रफुल्लयेति भावः। चन्द्रस्वरूपं वामनेत्रमालक्ष्याह—क्ष्माः क्ष्मातलस्था मनुष्यादयः निर्जराः स्वर्गस्थाः देवा द्विजाः पशवश्च वृन्दावनस्थाः पक्षिणो गावश्च त एवोदधयस्तेषां वृद्धिकारिन्! मामपि देवाधमं कृपया वर्द्धयेति भावः। युगपदेव नेत्रे द्वे एव पुष्पवन्तावालक्ष्याह—उद्धर्मः पाषण्डधर्मः स एव शार्वरमन्धतमसं। *"शार्वरंत्वन्धतमसम्"* इत्यमरः। तद्धरतीति तथा तेन स्वप्रभो त्वय्यपि मायाचिकीर्षालक्षण मम पाषण्डं कृपया हर यथा पुनरेवं न कुर्यामिति भावः। क्षितौ राक्षसा अघासुरादयस्तेभ्यो द्रुह्यसि द्रोहेणापि स्वर्गतिं ददासीत्यतस्त्वद्द्वयस्यवृन्दवत्सवृन्दविद्रोहित्वात् सत्यलोकब्रह्मराक्षसं मामपि दण्डप्रदानेनापि संस्कुरुष्वेति भावः। स्वप्रभोरनुग्रहं निग्रहं वा दृष्ट्वा दासो जीवितुमुत्सहते औदासीन्यं दृष्ट्वा न प्राणान् धर्त्तुमीष्टे इति भावः। हन्त हन्त। महामहेश्वरोऽपि वेत्रगुञ्जागैरिकपिच्छादिरचिताकल्पो गोचारकबालकैः समं खेलन् हृष्यतीत्यनौचित्यं मत्प्रभोरिति पूर्वं विचारितवतात्वानभिज्ञेन मया येष्वपराद्धं तानपि प्रसादयामीति मनसि विभाव्याह—आकल्पं त्वदीयगुञ्जादिवेषमभिव्याप्य आर्कं अर्को नाम वृक्षो भगवदनर्हपुष्पस्तमपि व्रजस्थमभिव्याप्य हे अर्हन, मत्पूज्य! किं वा हे योग्य कृपाऽकृपाभ्यां मद्भद्राभद्रं कर्तुं समर्थ! ते तत्ततसऽहिताय तुभ्यं नमः। *"सर्वसंशयहृत् सर्वभक्तिसिद्धान्तसन्ततिः। अस्तु ब्रह्मस्तुतिश्चित्तभित्तौ मे चारु चित्रिता"*॥ ४०॥

**भावानुवाद—**यद्यपि मुझे अपराधी जानकर आप कुछ भी नहीं कह रहे हैं, तथापि आप अपने नेत्रोंके द्वारा अनुग्रहपूर्वक अवलोकनरूप अमृतका पान करायें, जिससे उस कृपादृष्टिपातरूप अमृतका पानकर कल्पकाल तक मैं जीवन-धारण करनेमें समर्थ हो सकूँ। *'श्रीकृष्ण'* आदि श्लोकमें यही भाव व्यक्त करते हुए प्रणाम कर रहे हैं। सूर्य-स्वरूप दाहिनी आँखको लक्ष्यकर कह रहे हैं—आप वृष्णिकुलरूपी कमलके प्रकाशक हैं, अतः कमलसे पैदा होनेवाले मुझे भी विकसित करें—यही भाव है। चन्द्रस्वरूप बायें नेत्रको लक्ष्यकर कह रहे

हैं—आप जगत्में स्थित मनुष्यों, स्वर्गस्थित देवताओं, ब्राह्मणों, वृन्दावनके पक्षियों और गौसमूहरूप समुद्रका वर्द्धन करनेवाले हैं। अतः देवताओंमें अधम मुझे भी कृपापूर्वक वर्द्धन करें—यह भाव है। युगपत् दो नेत्ररूप चन्द्र-सूर्यको लक्ष्यकर कह रहे हैं—*'उद्धर्मशार्वरहर'*—हे विविध पाषण्डधर्मरूप निशाकालीन अन्धकारके विनाशक! अमरकोषमें 'शार्वर' शब्दका अर्थ अन्धकार है, इसलिए वे कह रहे हैं—हे मेरे प्रभो! आपके प्रति अपनी मायाका विस्तार करनेकी अभिलाषारूप मेरे पाखण्ड भावको कृपापूर्वक हरण कीजिये, जिससे फिर कभी मैं ऐसा न कर सकूँ—यह भाव है। *'क्षितिराक्षसध्रुक'*—हे पृथ्वीके असुरजनोंके शासक! पृथ्वीमें अघासुर आदि राक्षसोंको हिंसा-विद्वेष करनेपर भी आपने गति दी है, अतएव आपके सखाओं और बछड़ोंके प्रति द्रोह-आचरण करनेवाले सत्यलोकवासी मुझ ब्रह्मराक्षसको भी दण्ड देकर शोधन करें—यही भाव है। अपने प्रभुका अपने प्रति अनुग्रह या दण्ड देखकर सेवक जीवित रहनेमें उत्साहित होता है, परन्तु प्रभुको अपने प्रति उदासीन देखकर सेवक जीवित नहीं रह सकता—यह भाव है। हाय! हाय! महामहेश्वर होकर भी आप लकुटी, गुञ्जा, गैरिक (धातु), मोरपङ्ख आदिके द्वारा रचित वेशभूषा धारणपूर्वक गोचारण करनेवाले ग्वालबालोंके साथ क्रीड़ा करते हुए आनन्दित हो रहे हैं। आप मेरे प्रभु हैं, अतः अपने प्रभुके द्वारा ऐसा किया जाना मैंने अनुचित समझा था। यही कारण है कि मैंने ऐसा अपराध किया है। तब ब्रह्माजी मन-ही-मन विचार करने लगे कि जिनके प्रति मैंने अपराध किया है, उन्हें प्रसन्न करना होगा। इस प्रकारसे विचार करके वे कहने लगे—*'आकल्पम्'* आपके गुञ्जा आदि वेश-भूषासे आरम्भकर, *'आर्कम्'*—अर्क (आकन्द) नामका वृक्ष भगवत्-पूजाके अयोग्य होनेपर भी व्रजमें उत्पन्न होनेके कारण 'हे अर्हन' मेरा पूज्य है। हे योग्य! कृपा या अकृपाके द्वारा मेरा मङ्गल और अमङ्गल करनेके लिए उन-उन वस्तुओंके साथ आपको मैं नमस्कार करता हूँ। *'सर्वसंशयहृत्'* आदि कारिकाका अर्थ यह है कि समस्त प्रकारके संशयोंको दूर करनेवाले, सर्वभक्ति-सिद्धान्तपूर्ण ब्रह्मस्तुति मेरे चित्तरूपी भित्तिमें उज्ज्वल रूपसे चित्रित रहे॥ ४०॥

**श्रीशुक उवाच—**

**इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः।**
**नत्वाभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत॥ ४१॥**

**अन्वयः—**श्रीशुकः उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले) जगद्धाता (ब्रह्मा) इति (पूर्वोक्त प्रकारसे) अभीष्टं (अभिलषित) भूमानं (अपरिच्छिन्नरूप विष्णुका) अभिष्टूय (स्तवकर) त्रिः (तीन बार) परिक्रम्य (उनकी प्रदक्षिणा करके) पादयोः नत्वा स्वधाम (उनके चरणयुगलमें प्रणामकर) (अपने लोक सत्यलोकको) प्रत्यपद्यत (चले गये)॥ ४१॥

**अनुवाद—**श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! इस प्रकार सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजीने अपने अभीष्टदेव भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति की एवं तीन बार उनकी परिक्रमा करके उनके चरणयुगलमें प्रणाम किया और अपने धाम सत्यलोकको चले गये॥ ४१॥

**सारार्थदर्शिनी—**अभीष्टं भगवता प्रस्थपयितुमिति शेषः। यतो जगद्धाता अन्यथा सहसा तत्पदत्याजने विश्वशृष्टेरसिद्धेः। ततश्च *"यावदधिकारमव-स्थितिराधिकारिकाणाम्"* इति न्यायेनाधिकारान्ते तदभीष्टं सेत्स्यतीति बुद्ध्यते॥ ४१॥

**भावानुवाद—** *'अभीष्टम्'*—श्रीभगवान्के द्वारा प्रेरित होकर ब्रह्माजी अपने अभिलषित सत्यलोक-स्थित अपने भवनमें लौट गये। जगत्के सृष्टिकर्त्ता होनेके कारण अचानक उनके पदसे च्युत होनेसे विश्व-सृष्टिकार्यमें विघ्न हो सकता है। विशेषकर पदाधिकारी व्यक्तियोंका जितने दिन तक अधिकार है, उतने ही दिनों तक उसकी उस पदपर अवस्थिति देखी जाती है—इस नियमके आधारपर अधिकारकी समाप्ति होनेपर (द्विपरार्द्ध समाप्त होनेपर) उनका अभीष्ट पूर्ण होगा—ऐसा समझा जा रहा है॥ ४१॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति—**जीवमात्र ही आनन्द प्राप्तिके अभिलाषी हैं एवं एकमात्र आनन्द प्राप्तिकी लालसासे ही जीव सभी प्रकारके कर्म करते हैं। उनमेंसे जो बहिर्मुख जीव हैं, वे जड़-जगत्में ही आनन्द पानेके लिए प्रयास करते हैं। देह-दैहिक वस्तुओंकी सेवामें आत्मनियोग करनेके कारण वे पुनः-पुनः जन्म-मृत्युरूप विकराल कालके गालमें

चले जाते हैं। जो जीव पूर्वसञ्चित सौभाग्यके प्रभावसे जड़-जगत्को अनित्य, नश्वर और तुच्छ जानकर सच्चिदानन्द वस्तुके अनुसन्धानमें अनुरक्त होते हैं, वे ज्ञान-योगादि साधनोंका अनुष्ठानकर सिद्धदशामें ब्रह्म-परमात्मारूपमें सच्चिदानन्द वस्तुका साक्षात्कार प्राप्तकर कृतार्थ होते हैं। उनमेंसे जो विवेकी जीव हैं, वे सच्चिदानन्द विग्रहरूप भगवान्की चरणसेवाके आनन्दको ही सब साधनोंका सार जानकर प्रगाढ़ भक्तियोगके द्वारा उन्हींमें अनुरक्त होते हैं, तथा जो जीव आनन्द चिन्मयरसके आस्वादनमें चतुर हैं, वे परिपूर्ण भक्तवात्सल्य, करुणा और प्रेमाधीनताकी घनीभूत-मूर्त्ति स्वयं-भगवान् नराकृति परब्रह्म नन्दनन्दनके प्रेमसेवानन्द-रसके आस्वादनकी लालसासे उनकी सेवामें आत्मसमर्पण करते हैं।

इस प्रकार विविध वासनाविशिष्ट साधकगण अपने-अपने भाव और अन्तःकरणकी शक्तिके अनुरूप ही सच्चिदानन्द वस्तुको पानेके लिए विविध प्रकारके साधनोंका अनुष्ठान करते हैं। परन्तु भगवान्की कृपाके बिना किसी भी साधनसे कोई फल नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि सबके मूलमें एकमात्र भगवान्की कृपा ही है।

हे भगवन्! मैं नहीं जानता कि किस अनिर्वचनीय सौभाग्यके फलस्वरूप एवं आपकी अयाचित करुणाके बलसे मैं आपके चरणकमलोंके समीप उपस्थित हो सका हूँ। आपकी अयाचित करुणाकी कोई सीमा नहीं है। मेरे ब्रह्मपदकी प्राप्ति भी आपकी करुणाका ही दान है। किन्तु आपके चरणोंमें उपस्थित होकर मुझे इस ब्रह्मपदकी श्रेष्ठता अनुभव नहीं होती है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आपकी चरणसेवाका अधिकार ही सर्वश्रेष्ठ पद है, आपकी चरणसेवाका अधिकार-प्राप्त कीटाणु भी आपकी सेवासे वञ्चित ब्रह्मासे कोटि-कोटि गुणा श्रेष्ठ है। इसलिए कहता हूँ—हे नाथ! मुझे वह सौभाग्य प्राप्त हो, जिससे मैं इस ब्रह्मजन्ममें हो या पशु-पक्षी आदि किसी भी जन्मान्तरमें हो, जिस किसी भी उपायसे आपकी सेवाका अधिकार पा सकूँ। यह ब्रह्मजन्म एवं ऐसी देह या पशु-पक्षी जन्म एवं तदनुरूप देह विशेष लाभके लिए मेरा कोई भी आग्रह नहीं है। केवलमात्र मेरा आग्रह आपकी चरणकमलोंकी सेवामें ही है।

इस प्रकार ब्रह्माजी प्रथमतः नन्दनन्दनके श्रीचरणोंमें लोटकर हाथ जोड़कर उनके श्रीचरणकमलोंकी सेवामें अधिकार पानेके लिए प्रार्थनाकर दूसरे ही क्षण विचार करने लगे—मैं अतितुच्छ हूँ, अतएव प्रभुकी सेवाके योग्य नहीं हूँ। वृन्दावनके गो-गोपी एवं दूसरे-दूसरे नर-नारी, पशु-पक्षी आदि सभी श्रीकृष्णके नित्य पार्षद हैं, इसलिए वे ही अपने अधिकारके अनुरूप श्रीकृष्णकी सेवा कर सकते हैं।

*पशुर्मनुष्य पक्षी वा ये च वैष्णवसंश्रयाः।*
*तेनैव ते प्रयास्यन्ति तद्विष्णोः परमं पदम्॥*

मनुष्य, पशु, पक्षी आदि कोई भी जीव यदि कृष्णभक्तोंका चरणाश्रय ग्रहण करता है, तो उसके प्रभावसे उसे कृष्णकी सेवाका अधिकाररूप परमपद प्राप्त होता है। इसलिए ब्रह्माजी 'तदस्तु मे नाथ' श्लोकमें कृष्णसे उनके व्रजवासियोंकी सेवाका अधिकार प्राप्त करनेके लिए प्रार्थना कर रहे हैं—*"येनाहमेकोऽपि भवज्जमानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्।"*

"हे भगवन्! मैं पशु-पक्षी आदि कोई भी जन्म क्यों न पाऊँ, मेरी आपसे एक ही प्रार्थना है कि आपके व्रजवासी भक्तोंके अर्थात् गो, गोप, गोपी एवं व्रजमें स्थित पशु-पक्षी आदि किसी भी भक्तकी चरणसेवा कर सकूँ। उनकी कृपा होनेसे ही मैं कृतार्थ हो जाऊँगा एवं मुझे निःसन्देह आपकी सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त होगा।"

ब्रह्माजीने और भी कहा—व्रजवासियोंका यह महा-सौभाग्य है कि—*"यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्"* अर्थात् जो सर्वव्यापी और नित्य परमानन्दघन-विग्रह पूर्णब्रह्म हैं, वे व्रजवासियोंके प्रेममें मुग्ध और आकृष्ट होकर व्रजमें सर्वत्र विचरण कर रहे हैं और सबके साथ प्रेम-व्यवहार कर रहे हैं। इससे बढ़कर आश्चर्यका विषय और क्या हो सकता है? इसलिए कहता हूँ—हे भगवन्! जगत्में यदि किसीका सौभाग्य है तो वह एकमात्र व्रजवासियोंका है—*"अहोभाग्यं! अहोभाग्यं! नन्दगोपव्रजौकसाम्"* पूर्णब्रह्म, सनातन, परमानन्दघन-विग्रह, नन्दनन्दनके साथ व्रजवासी मात्रका स्वाभाविक बन्धुत्व है। अतएव उनके भाग्यकी सीमा नहीं है। अतः हे भक्तवत्सल! हे प्रेमाधीन पारावार! आप जिनके प्रेमऋणमें चिर-आबद्ध हैं, उन व्रजवासी

भक्तोंकी चरणधूलि प्राप्तिसे बढ़कर श्रेष्ठ लाभ और क्या हो सकता है?

इस प्रकार ब्रह्माजी व्रजवासियोंके सौभाग्यका वर्णन करते-करते आनन्दसे पुलकित होकर नन्दनन्दनसे कहने लगे—हे भगवन्! आपके प्रिय व्रजवासियोंके भाग्यके विषयमें कितना वर्णन करूँ! मेरे जैसा एक तुच्छ जीव उनके महिमा-समुद्रके एक बिन्दुको भी स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं है।

इस प्रकारसे प्रार्थना-स्तुतिकर अन्तमें ब्रह्माजीने कहा—हे भगवन्! मुझे कृपापूर्वक आदेश प्रदान करें, मैं अपने ब्रह्मलोकमें जाँऊ। मैं इस बृहदाकार रक्तवर्ण चतुर्मुख स्वरूपमें यदि आपके सामने खड़ा रहूँ, तो आपके सखा गोपबालकगण मुझे देखकर भयभीत हो जायेंगे तथा विस्मित होंगे। उससे आपके स्वच्छन्द विहारमें बाधा उपस्थित होगी, और मैं फिरसे अपराध-समुद्रमें डूब जाऊँगा। पहले आपके गोपबालकों और बछड़ोंको मायामुग्ध करनेकी चेष्टासे मैंने जो महा-अपराध सञ्चय किया है, उसकी ही कोई सीमा नहीं है, अतः मुझपर ऐसी कृपा करें कि फिरसे मैं कभी ऐसा अपराधमूलक कार्य न करूँ। यदि तत्क्षणात् मेरे इस ब्रह्माजन्मकी समाप्ति हो जाय और वृन्दावनमें तृण जन्म लाभकर मुझे आपके किसी भी परिकरकी चरणधूलि पानेका सौभाग्य प्राप्त होता, तो इससे मेरा जीवन कृतार्थ हो जाता। परन्तु हे सर्वेश्वर! यह तो मेरे वशमें नहीं है। आप जिस दिन मुझे ऐसा सौभाग्य प्रदान करेंगे, उसी दिन मैं उसे पाकर कृतार्थ हो जाऊँगा।

इस प्रकार ब्रह्मा नन्दनन्दनके निकट विविध प्रकारसे दैन्य निवेदन और अपने स्थानमें जानेके लिए प्रार्थना करते हुए बोले—हे श्रीकृष्ण! आप सभीके सब प्रकारके मङ्गलप्रदाता और सबके चित्तको आकर्षित करनेवाले हैं। कृपया मेरे तुच्छ प्रभुत्व और ऐश्वर्यके अभिमानसे उन्नत हुए मेरे मस्तकको झुकाकर मुझे अपने चरणोंमें सदा दासानुदास-रूपमें स्थान प्रदान करें।

हे यादवकुल-कमलभास्कर! आपके उदय या आविर्भावसे यादवकुलरूपी कमल प्रस्फुटित हुआ है और उसके सौरभसे त्रिलोक

परिपूर्ण हुआ है। आपने गोपराज नन्दको अपना पिता स्वीकार किया है एवं स्वयं जगत्-पिता होकर भी नन्दनन्दनके रूपमें जगत्में एवं वेद, तन्त्र, पुराणादिमें अपना परिचय प्रदान किया है। हे करुणाकर! आपकी करुणाकी बात क्या कहूँ? आपके उदय होनेपर पृथ्वी सम्वर्द्धित, स्वर्ग परमानन्दमें उद्भासित एवं गो-ब्राह्मण और देवकुल समृद्ध होकर समुद्रकी भाँति उद्वेलित हो रहे हैं। आपके जगत्में आविर्भाव होनेसे पहले सनातनधर्मकी विमल ज्योति विलुप्त होनेके कारण सम्पूर्ण जगत् अपधर्म, उपधर्म आदिके घने-अन्धकारमें डूब गया था। किन्तु आपके उदय होनेसे वह महा-अन्धकार चिरकालके लिए विलीन हो गया है। आपके आगमनसे पहले असुर और राक्षस आदि बहिर्मुख जीवोंके अत्याचारसे जगत् उत्पीड़ित हो रहा था। आपके आगमनसे वे समस्त असुर और राक्षस विनष्ट हो गये, हो रहे हैं तथा होंगे। अतएव हे भगवन्! आपकी महिमाका कितना वर्णन करूँ? आप ब्रह्माण्डसे वैकुण्ठ तक सर्वलोकवासी समस्त जीवोंके एकमात्र पूज्य और प्रणमय हैं। अतः आप मुझपर ऐसी कृपा करें कि मैं अपने जीवन-काल तक आपके इन श्रीचरणोंमें प्रणत होकर रहूँ। इस प्रकार ब्रह्माजीने श्रीनन्दनन्दनकी यथासाध्य स्तुति की। तत्पश्चात् उनकी तीन बार प्रदक्षिणा की एवं पुनः-पुनः भूमिपर लेटकर उनके श्रीचरणोंमें प्रणामकर सत्यलोकको लौट गये॥ ३०-४१॥

**ततोऽनुज्ञाप्य भगवान् स्वभुवं प्रागवस्थितान्।**
**वत्सान् पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकम्॥ ४२॥**

**अन्वयः**—ततः (उसके पश्चात्) भगवान् स्वभुवं (भगवान्ने ब्रह्माको) अनुज्ञाप्य (अपने भवनमें जानेके लिए अनुमति प्रदानकर) प्रागवस्थितान् वत्सान् यथा पूर्वसखं (पहलेकी भाँति तृण भक्षणरत बछड़ोंको लेकर पहले जहाँ सखा बैठे थे, उस) स्वकं (अपने) पुलिनं (भोजन-स्थान यमुना-पुलिनमें) आनिन्ये (ले आये)॥ ४२॥

**अनुवाद**—इसके बाद भगवान्ने ब्रह्माजीको उनके लोकमें जानेकी अनुमति प्रदान कर दी तथा उनके द्वारा चुराये गये पहलेकी

भाँति घास चरनेमें रत बछड़ोंको लेकर अपने उसी भोजन-स्थान यमुना-पुलिनपर लौट आये जहाँ उनके सखा बैठे थे॥४२॥

**सारार्थदर्शिनी—**स्वभुवं ब्रह्माणं अनुज्ञाप्येति मौनेनैव अनुजानीहि मां कृष्णेत्याज्ञाप्रार्थने कृते *"मौनं सम्मतिलक्षणम्"* इति ब्रह्मणा सहसावगमात्। मौनत्यागाभावस्तु पशुपवंशशिशुत्वदशायामङ्गीकृतस्य ब्रह्ममोहनार्थं नाट्यस्यारम्भपरिसमाप्तिसिद्ध्यर्थं। तत्र *"ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेऽपि च वत्सपान्। उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समन्ततः"* इति वत्सबालकान्वेषणनाट्यारम्भे नौमीड्येत्यादिब्रह्मस्तुतौ प्रवृत्तायां कुतस्त्योऽयं चतुर्मुखः किञ्चेष्टते किं वा मुहुर्ब्रूते इति स्ववत्सान्वेषणव्यग्रोऽहं गोपशिशुर्न बुद्ध्ये इति व्यञ्जकेन मौनेनैव तस्यैव नाट्यस्य परिसमाप्तिरिति। स्वाधीनब्रह्मणोऽग्रे कृष्णेन निजमहैश्वर्यस्याज्ञानमभिनीयते स्मेति तन्नाट्यशब्देनोच्यते *"तत्रोद्बृहत्पशुपवंशशिशुत्वनाट्यम्"* इत्यादिना वात्सल्यादिरसपरिकरव्रजेश्वर्यादीनामग तु तन्महाप्रेमाधीने कृष्णे निजमहैश्वर्यस्य तन्महाप्रेममाधुर्यरसाच्छादितस्याज्ञानं यथार्थमेवेति तत्र न तस्याभिनय इति। न तन्नाट्यशब्दे वाच्यमिति विवेचनीयम्। प्राक् प्राग्वदेव तृणचरणादिचेष्टाभिरवस्थितान् स्वकं स्वभोजनस्थानं पुलिनमानिन्ये। कीदृशं? यथापूर्वं पूर्वोपवेशादिकमनतिक्रम्य अपरित्यज्य वर्तमानाः सखायो यत्र तत्। समासान्त आर्षः। यद्वा, यथा यथावदेव स्थिताः पूर्वसखाः स्वरूपभूतसखेभ्यः पूर्वे सखायो यत्र तत्॥४२॥

**भावानुवाद—***'स्वभुवम्'*—भगवान्‌ने मौन रहकर ही अपनेसे जन्मे ब्रह्माको उनके लोकमें जानेकी आज्ञा दी। *'अनुजानीहि मां कृष्ण'* (३९वाँ श्लोक)—अर्थात् हे श्रीकृष्ण! मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये—ऐसी प्रार्थना करनेपर, *'मौनं सम्मति लक्षणम्'* मौन ही सम्मतिका लक्षण है—यह समझकर ब्रह्माजी अपने लोकमें चले गये। मौनको त्याग नहीं करनेका कारण था—भगवान्‌ने गोपवंशीय बालकका भाव धारणकर ब्रह्ममोहनके लिए जो नाटक किया था, उसकी समाप्ति करना। नाटकका प्रारम्भ तबसे हुआ, जब श्रीकृष्ण बछड़ोंको न देख पाकर लौट आये एवं यमुना-पुलिनमें गोपबालकोंको भी न देखकर फिरसे बछड़ों और ग्वालबालोंको वनमें ढूँढ़ने लगे।

*"नौमीड्य"* (श्रीमद्भा० १०/१४/१)—हे स्तवनीय! मैं आपको प्रणाम करता हूँ—इत्यादि वचनोंसे ब्रह्माके स्तव करनेमें प्रवृत्त होनेपर, यह चार मुखवाला चौमुँहा कहाँसे आया है? यहाँ क्या कर रहा है?

बार-बार क्या कह रहा है? मैं गोपबालक अपने बछड़ोंको ढूँढ़नेमें व्यस्त हूँ, मैं कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ—मानो ऐसे भावको व्यक्त करते हुए मौन अवस्थामें ही कृष्णने नाटककी परिसमाप्ति की। अपने अधीन ब्रह्माजीके सामने श्रीकृष्णने अपने महा-ऐश्वर्यको छिपाकर अज्ञानताका अभिनय किया, इसलिए इसे नाटक कहा गया है। जैसे—*"तत्रोद्वहत्-पशुपवंश-शिशुत्व नाट्यम्"* (श्रीमद्भा॰ १०/१३/६१)—आदि श्लोकमें कहा है अर्थात् गोपवंशीय बालककी लीलाका अभिनय करनेवाले। परन्तु वात्सल्य आदि रसोंके परिकर श्रीव्रजेश्वरी आदिके महान् प्रेमके अधीन कृष्णका ऐश्वर्य उनके प्रेम-माधुर्यके द्वारा आच्छादित होनेके कारण उनके निकट कृष्णकी अज्ञानता स्वाभाविक ही है। वह कोई अन्याय नहीं है, इसलिए उसे नाटक नहीं कहा जा सकता—ऐसा विवेचन करना होगा।

अब श्रीकृष्ण पहलेकी भाँति घास चरनेवाले बछड़ोंको अपने भोजनस्थान यमुना-पुलिनमें ले आये। कौन-से पुलिनमें—उसीका वर्णन करते हैं। *'यथापूर्वसखम्'*—जहाँपर पूर्वकी भाँति सखागण उपवेशनका परित्याग न कर बैठे हुए थे, अथवा जहाँपर श्रीकृष्णके स्वरूपभूत सखाओंसे पृथक् पूर्व नित्य सहचर श्रीकृष्णके निर्देशके अनुसार बैठकर भोजन कर रहे थे, उसी युमना-पुलिनमें वे बछड़ोंको ले आये॥ ४२॥

**एकस्मिन्नपि यातेऽब्दे प्राणेशं चान्तरात्मनः।**
**कृष्णं मायाहता राजन् क्षणार्धं मेनिरेऽर्भकाः॥ ४३॥**

**अन्वयः**—राजन् (हे महाराज!) अर्भकाः (बालकोंने) आत्मनः प्राणेशं (अपने प्राणेश्वर कृष्णके) अन्तरा (बिना) एकस्मिन् अब्दे (एक वर्ष) याते (व्यतीत करनेपर) अपि कृष्णमायाहताः (भी श्रीकृष्णकी मायाके द्वारा मोहित होकर उतने समयको) क्षणार्द्धं (अर्द्धक्षणके समान ही) मेनिरे (समझा)॥ ४३॥

**अनुवाद**—हे राजन्! यद्यपि ग्वालबालोंने अपने प्राणेश्वर कृष्णके बिना एक वर्ष बिता दिया था, तथापि कृष्णकी मायासे मोहित

होनेके कारण उन्हें वह समय आधे क्षणके समान ही प्रतीत हुआ॥ ४३॥

**सारार्थदर्शिनी—**अत्र तावत् कालाज्ञानं तथैव कवलपाणेः कृष्णस्यागतस्य तैः सह तथैव भोजनलीलाशेषादिकं दुस्तर्कयोगमायावैभवमेवेत्याह—एकस्मिन्नित्यादिचतुर्भिः। आत्मनः स्वस्य प्राणेशं कृष्णमन्तरा विनाऽपि योगमायया आहता आवृताः॥ ४३॥

**भावानुवाद—**यहाँ समयके विषयमें अज्ञता (बालकोंका एक वर्षके समयको आधे क्षणके समान मानना) एवं हाथमें दही-भातका कौर लेकर श्रीकृष्णका बालकोंके साथ वैसे ही भोजन-लीलाकी समाप्ति आदि सभी कार्य तर्कसे परे योगमायाका वैभव हैं—इसीको *'एकस्मिन्नपि'* आदि चार श्लोकोंमें कहा जा रहा है। *'आत्मनः प्राणेशं अन्तरा'*—अपने प्राणेश्वर श्रीकृष्णके बिना एक वर्षका समय बीतनेपर भी गोपबालकोंने योगमायाके प्रभावसे एक वर्षको आधे क्षणका समय समझा था॥ ४३॥

**किं किं न विस्मरन्तीह मायामोहितचेतसः।**
**यन्मोहितं जगत् सर्वमभीक्ष्णं विस्मृतात्मकम्॥ ४४॥**

**अन्वयः—**मायामोहित चेतसः इह किं किं न विस्मरन्ति (इस संसारमें कौन-सी ऐसी वस्तु है, जिसे मायामुग्ध जीव भूल नहीं सकते) यन्मोहितं (जिनकी मायाके द्वारा मोहित होकर) सर्वं जगत् अभीक्ष्णं (सम्पूर्ण जगत् पुनः-पुनः) विस्मृतात्मकं (अपनेको भी भूल जाते हैं)॥ ४४॥

**अनुवाद—**मायासे मुग्ध व्यक्ति इस जगत्में कौन-सी वस्तुको भूल नहीं सकते? वास्तवमें मायाके प्रभावसे मोहित होकर ही जगत्के सभी जीव बार-बार अपने स्वरूप तक को भूल जाते हैं॥ ४४॥

**सारार्थदर्शिनी—**मोहनसाधर्म्येण योगमायया बहिरङ्गमायां दृष्टान्तयति—किं किमिति। विस्मृत आत्मा येन तत्, तथैव योगमायया वर्षं व्याप्य कृष्णविरहदुःखं ते विस्मारिता इति भावः॥ ४४॥

**भावानुवाद**—मोहन करनेसे समानधर्मवशतः योगमायाके द्वारा बहिरङ्गा मायाका उदाहरण *'किं किं'* आदिसे दे रहे हैं। इस संसारमें माया-मोहित व्यक्ति क्या नहीं भूल जाते हैं? *'विस्मृतात्मकम्'*—इस सम्पूर्ण जगत्में स्थित जीवमात्र मायाद्वारा मोहित होकर (पुनः-पुनः शास्त्र और आचार्योंके द्वारा अपने स्वरूपके विषयमें प्रबोधित किये जानेपर भी) अपने स्वरूपको भूले हुए हैं। उसी प्रकार योगमायाके प्रभावसे गोपबालक एक वर्ष तक कृष्ण-विरह दुःखको भूल गये थे—यह भाव है॥ ४४॥

**ऊचुश्च सुहृदः कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा।**
**नैकोऽप्यभोजि कवल एहीतः साधु भुज्यताम्॥ ४५॥**

**अन्वयः**—ते सुहृदः कृष्णं ऊचुः (अतएव सखाओंने कृष्णको कहा) च ते (हे कृष्ण! तुम) अति रंहसा (अतिशीघ्र) स्वागतं (आ गये हो) एकः अपि कवलः (हमलोगोंने अभी एक भी ग्रास) न अभोजि (भोजन नहीं किया) इतः एहि साधु भुज्यताम् (अतएव यहाँ आकर अच्छी प्रकारसे भोजन करो)॥ ४५॥

**अनुवाद**—[कृष्णको आते देखकर सखाओंने उनसे बड़े उतावले होकर कहा—]हे कृष्ण! तुम तो बहुत शीघ्र ही लौट आये। तुम्हारा स्वागत है। देखो! हमने तो इस बीच एक ग्रास भी नहीं खाया है। अब यहाँ आओ और आनन्दसे भोजन करो॥ ४५॥

**सारार्थदर्शिनी**—अर्भका ऊचुः। अतिरंहसा सुखेनैवागतम्। दूरगतवत्सानयने घटिकैका त्ववश्यं भविष्यतीत्यस्माभिर्विचारितं त्वया तु क्षणार्द्धेनैवागतमिति भावः। एकोऽपि कवलो ग्रासस्त्वया विना नाभोजि तस्मादित एहि॥ ४५॥

**भावानुवाद**—गोपबालकोंने श्रीकृष्णसे कहा—हे कृष्ण! तुम अतिशीघ्र ही इन बछड़ोंको लेकर लौट आये हो। हमलोग समझ रहे थे कि बछड़े बहुत दूर निकल गये हैं, उन सबको लानेमें सम्भवतः एक घण्टा समय अवश्य लग जायेगा। परन्तु तुम आधे क्षणमें ही बछड़ोंको लेकर आनन्दसे लौट आये। *'एकोऽपि'*—तुम्हारे बिना हमने एक ग्रास भी भोजन नहीं किया, अथवा श्रीकृष्णके हाथमें दही-भातका

कौर देखकर कहने लगे—हे कृष्ण! तुमने एक ग्रास भी भोजन नहीं किया है। अतः हमारी मण्डलीके बीचमें पूर्ववत् आ जाओ तथा बैठकर सुखसे भोजन करो॥ ४५॥

**ततो हसन् हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य सहार्भकैः।**
**दर्शयंश्चर्माजगरं न्यवर्त्तत वनाद्व्रजम्॥ ४६॥**

**अन्वयः**—ततः (इसके पश्चात्) हृषीकेशः हसन् (हृषीकेश हँसते हुए) अर्भकैः सह अभ्यवहृत्य (बालकोंके साथ भोजन करके) आजगरं चर्म दर्शयन् वनात् व्रजं न्यवर्त्तत (उन्हें अजगरकी चमड़ी दिखाते हुए वनसे व्रजमें लौटकर आये)॥ ४६॥

**अनुवाद**—तब हृषीकेश श्रीकृष्णने बालकोंके साथ हँसते हुए भोजन किया और उन्हें अघासुररूप अजगरकी चमड़ी दिखाते हुए सभीके साथ वनसे व्रजमें लौट आये॥ ४६॥

**सारार्थदर्शिनी**—हसन्निति, तेषमानन्ददर्शनात्। अभ्यवहृत्येति वर्षे गतेऽप्यन्न-व्यञ्जनादीनां क्षणार्द्धमात्रपरिणामित्वं जातं तच्च न वैरस्यं जनयतीति भावः। दर्शयन्नित्यहो सखायः अद्य मृतोऽयं सर्पो वसारक्तादिकलिलो वर्तते एवेति पश्यतेति तद्वधस्य व्रजे प्रख्यापनार्थं योगमायैवं तावत्कालपर्यन्तं तत्तदाच्छादितमासीदिति ज्ञेयम् वनात् वनविहरणात् व्रजञ्जगामेति शेषः॥ ४६॥

**भावानुवाद**—सखाओंका आनन्द देखकर कृष्णने भी हँसते-हँसते उनके साथ भोजन समाप्त किया। यहाँपर एक वर्ष बीत जानेपर भी उसका परिणाम क्षणभरका समय होनेके कारण अन्न-व्यञ्जन आदिमें कोई विरसता नहीं आयी, वे सड़े-गले नहीं। *'दर्शयन्'*—अहो सखाओ! देखो! आज ही मारा गया यह सर्प चर्बी, रक्त आदिसे लथपथ है। उसके वधकी बात व्रजमें कहनेके लिए योगमायाने तब तक सबकुछ आच्छादित कर रखा था—यह समझना होगा। *'वनात्'*—श्रीकृष्ण सखाओंके साथ वन विहारसे व्रजमें लौटने लगे॥ ४६॥

**बर्हप्रसूनवनधातुविचित्रिताङ्गः,**
**प्रोद्दामवेणुदलशृङ्गरवोत्सवाढ्यः ।**

**वत्सान् गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्ति-**
**र्गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम्॥ ४७॥**

**अन्वयः**—[उस समय वे] बर्हप्रसूनवनधातुविचित्रताङ्गः (मोरपङ्ख, वनपुष्प तथा गैरिक आदि धातुओंके द्वारा विचित्र शोभित अङ्गवाले) प्रोद्दामवेणुदलशृङ्गरवोत्सवाढ्यः (एवं वेणुदल शृङ्ग आदिकी अति उच्च ध्वनि द्वारा परम समृद्धियुक्त) गोपीदृगुत्सवदृशिः (गोपियोंके नयनोंके उत्सव-स्वरूप) अनुगगीत पवित्र कीर्तिः (अनुचरोंके द्वारा गायी गयी पवित्र कीर्त्ति जिनकी है) वत्सान् (ऐसे श्रीकृष्णने बछड़ोंका) गृणन् (आदरके साथ आह्वान करते हुए) गोष्ठं प्रविवेश (गोष्ठमें प्रवेश किया)॥ ४७॥

**अनुवाद**—उस समय उनके मस्तकपर मनोहर मयूरपङ्ख सुशोभित था। उनके घुँघराले बालोंमें सुगन्धित वन्यपुष्प गुँथे हुए थे। श्यामल श्रीअङ्गोंमें नवीन गैरिकादि धातुओंसे चित्रकारी कर रखी थी। वे वेणु, सींगा आदिकी उच्च-ध्वनिसे समृद्ध होकर गोपियोंके नयनोंके उत्सव-स्वरूप हो रहे थे। पीछे-पीछे सखा उनकी निर्मल एवं लोकपावनी कीर्त्तिका गान करते हुए आ रहे थे। इस प्रकार उन्होंने आदरपूर्वक नाम ले-लेकर बछड़ोंको पुकारते हुए गोष्ठमें प्रवेश किया॥ ४७॥

**सारार्थदर्शिनी**—गृणन् उपलालनैराह्वयन् गोपीनां वत्सलानां दृशामुत्सवरूपा दृशिर्दर्शनं यस्य सः॥ ४७॥

**भावानुवाद**—बड़े प्यारसे धवली, श्यामली, यमुने आदि वचनोंसे बछड़े-बछड़ियोंको पुकारते हुए, वात्सल्यवती श्रीयशोदा आदि गोपियोंके नयनानन्द-वर्द्धनकारी श्रीकृष्णने गोष्ठमें प्रवेश किया॥ ४७॥

**अद्यानेन महाव्यालो यशोदानन्दसूनुना।**
**हतोऽविता वयञ्चास्मादिति बाला व्रजे जगुः॥ ४८॥**

**अन्वयः**—बालाः व्रजे (बालकगण व्रजमें पिता-माता आदिके सामने) अद्य अनेन यशोदानन्दसूनुना (कृष्णने आज एक) महाव्यालः (भयानक सर्पको) हतः वयं च अस्मात् (मार डाला और हमें उस सर्पसे) अविताः (बचाया) इति जगुः (इस प्रकार वर्णन किया)॥ ४८॥

**अनुवाद**—परीक्षित्! गोपबालक उस दिन व्रजमें आकर सबसे कहने लगे कि कृष्णने आज एक भीषण अजगरका वध करके उससे हमारी रक्षा की है॥ ४८॥

**सारार्थदर्शिनी**—यशोदानन्दयोर्भाग्यमानन्दो यशो वा यस्मात्तथाभूतेन सूनुनेति शाकपार्थिवादित्वान्मध्यपदलोपी कर्मधारयः तस्मान्महाव्यालाद्वयञ्चाविताः॥ ४८॥

**भावानुवाद**—*'यशोदानन्द-सूनुना'*—यशोदा और नन्दका भाग्य, आनन्द या यशः जिससे है, उनके ऐसे पुत्रके द्वारा अर्थात् आज ही यशोदा और नन्द बाबाके पुत्र कृष्णने वनमें जाकर एक विशालकाय साँपको मार दिया एवं उससे हमलोगोंकी रक्षा की॥ ४८॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—परमहंस-चूड़ामणि श्रीशुकदेव गोस्वामीने महाराज परीक्षित्के निकट ब्रह्माकृत कृष्णस्तुतिका वर्णन करके अन्तमें उनसे कहा—हे महाराज! इस प्रकार ब्रह्माजीने दीन-हीन होकर नम्रतापूर्वक भक्तोंका सङ्ग, व्रजवासियोंकी चरणधूलिको मस्तकपर धारण करनेके लिए सौभाग्य प्राप्ति आदि प्रार्थनामूलक स्तव-स्तुतिकर श्रीकृष्णसे अपने सत्यलोकमें जानेके लिए आज्ञा माँगी। परन्तु नन्दनन्दनने उनसे कोई बात ही नहीं की, वे केवल मुग्ध गोपबालककी भाँति चकित दृष्टिसे गोपबालकों और बछड़ोंको खोजनेमें व्याकुल होकर खड़े रहे। ब्रह्माजी द्वारा उनके चरणोंमें गिरकर इतनी स्तुति-प्रार्थना करनेपर भी वे मौन रहे। सर्वज्ञशिरोमणिकी मुग्धताका यह अभिनय अति अद्भुत है। ब्रह्माजी जब स्तव कर रहे थे, तब नन्दनन्दनका भाव देखनेसे प्रतीत हो रहा था कि मानो वे एक साधारण गोपबालक होनेके कारण ब्रह्माकी देवभाषाका तात्पर्य समझ नहीं पा रहे हैं। वे उस रक्तवर्ण, चतुर्मुख और दीर्घाकृति ब्रह्माको देखकर मानो भयभीत और विस्मित हो गये हैं, भय एवं विस्मयके कारण ही उनके मुखसे वाणी नहीं निकल रही है। विशेषकर उनके भावको देखनेसे लग रहा था कि मानो बछड़ों और बालकोंको खोकर वे अत्यन्त दुःखित और चिन्तित हैं तथा उन्हें समझमें नहीं आ रहा है कि उन्हें ऐसी स्थितिमें क्या करना चाहिये। ब्रह्माजी नन्दनन्दनके इस भावकी गम्भीरता और गोपबालकोचित अभिनय-चतुरताके-सिन्धुका एक बिन्दु भी ग्रहण नहीं

कर सके। परन्तु उन्होंने नन्दनन्दनको मौन देखकर समझा कि नन्दनन्दनने उन्हें अपने लोकमें जानेके लिए मौन सम्मति प्रदान की है। ब्रह्माजी इसीसे अपनेको परम कृतार्थ मानकर धीरे-धीरे वृन्दावनसे ब्रह्मलोककी ओर चल पड़े।

ब्रह्माने नन्दनन्दनके जिन बछड़ों और गोपबालकोंको मायामुग्धकर जहाँ छिपाया था, ब्रह्मलोक जाते समय उन्हें नन्दनन्दनको लौटानेका या उनके विषयमें उन्हें कुछ बतानेका भी वे साहस नहीं कर पाये। वे नन्दनन्दनकी कृपासे समझ गये कि अखिल-ब्रह्माण्डपति स्वयं-भगवान् नन्दनन्दन भी जिनके प्रेमके वशीभूत होकर आत्मविभोर रहते हैं, उन व्रजवासियोंको मुग्ध करनेका सामर्थ्य किसमें हो सकता है? उन्हें मोहित करनेकी चेष्टाकर वे आज स्वयं ही अपराधी हो गये हैं। इस प्रकार बहुत सोच विचारकर ब्रह्माजी सत्यलोककी ओर जाने लगे। नन्दनन्दनने भी मौन रहकर ही उन्हें सत्यलोक जानेकी अनुमति प्रदान कर दी। परन्तु उन्होंने अपने नाभिकमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजीका कोई अपराध ग्रहण नहीं किया। विशेषकर नन्दनन्दनकी लीलाशक्तिकी प्रेरणासे ही ब्रह्माजीकी गोपबालकों और बछड़ोंको मायामुग्ध और स्थानान्तरित करनेकी इच्छा हुई थी एवं इससे नन्दनन्दनको अनन्त गोपबालकों और अनन्त बछड़ोंके रूपमें व्रजकी गायों एवं गोपियोंके वात्सल्यप्रेमका आस्वादन करनेका अवसर भी प्राप्त हुआ था। इसलिए नन्दनन्दनने ब्रह्माको अपराधी नहीं माना।

अब नन्दनन्दन भी क्षणमात्र विलम्ब न कर तत्काल ही बछड़ोंको साथमें लेकर यमुना-पुलिनमें आकर उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने देखा कि श्रीदाम, सुबलादि गोपबालक भोजन न कर दही-भातका कौर हाथमें लेकर उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। कृष्णको देखकर वे आनन्दपूर्वक कहने लगे—"कृष्ण तुम बहुत जल्दी आ गये। आओ हमारे बीचमें बैठकर आनन्दपूर्वक भोजन करो।" इस प्रकार कृष्ण एवं सखाओंने हास-परिहासपूर्वक भोजन किया।

भोजन करनेके पश्चात् कृष्णने कहा—"सखाओ! देखो, सूर्य अस्त होनेवाला है। अब हमें शीघ्र ही व्रजकी ओर लौट जाना चाहिये, क्योंकि सभी व्रजवासी हमारे लिए व्याकुल होंगे।" यह

कहकर नन्दनन्दन गोपबालकोंके साथ बछड़ोंको लेकर व्रजकी ओर चल पड़े। उस समय सभी गोपबालक कृष्णको घेरकर चल रहे थे। कोई आनन्दसे वंशी तो कोई सींगा बजा रहा था तथा कोई मधुर स्वरसे नन्दनन्दनका गुणगान कर रहा था। इस प्रकार चलते हुए जब वे उस स्थानपर पहँचे, जहाँपर अघासुरका मृतदेह पड़ा हुआ था, तो परस्पर एक-दूसरेसे कहने लगे—"देखो! आज ही कृष्णके हाथोंसे मरा यह सर्प चर्बी, रक्त आदिसे लथपथ है।"

नन्दनन्दनने एक वर्ष पहले अघासुरका वध किया था। उसके पश्चात् उनके यमुना-पुलिनमें भोजन-विलासमें मत्त होनेपर जब ब्रह्माजीने आकर ग्वालबालों और बछड़ोंको चुरा लिया था, तब कृष्ण स्वयं ही अनन्त गोपबालक एवं बछड़े आदि बनकर पूर्ववत गोचारण करने लगे। वे नित्यप्रति प्रातःकाल व्रजसे गोपबालकोंके साथ बछडोंको चरानेके लिए वनमें जाते तथा सांयकालमें वापस व्रजमें लौट आते। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। एक वर्ष तक जिस प्रकार गोपबालक और गोवत्सगण कृष्णकी मायासे मुग्ध थे, उसी प्रकार ही अघासुरकी मृतदेहको भी सबके लिए अगोचर था। व्रजवासी गोपगण इस मार्गसे प्रायः ही आते-जाते रहते थे, परन्तु एक वर्ष तक अघासुरकी मृतदेहको किसीने नहीं देखा। इस एक वर्षके भीतर यमुना-पुलिनमें भोजनके लिए उपस्थित गोपबालकोंके लड्डूके टुकड़े, दही, भात आदि ज्यों-के-त्यों अविकृत रहे, वे सड़े-गले नहीं। अघासुरकी मृतदेह भी वैसी ही थी। इसीलिए गोपबालकोंने अघासुरकी मृतदेहको देखकर समझा कि आज ही प्रातःकाल कृष्णने इस विशाल अजगरको मारा है।

इस प्रकार धीरे-धीरे कृष्ण जब गोपबालकों और बछड़ोंके साथ व्रजके निकट उपस्थित हुए, तब असंख्य बछड़ोंकी ध्वनि, वेणु, सींगा आदिकी मधुर ध्वनि, गोपबालकोंके कोलाहल और कृष्णके गुणगानकी मधुर ध्वनिसे व्रज गूँजने लगा। उस मधुर ध्वनिको सुनकर वात्सलयवती व्रजगोपियाँ मङ्गल-ध्वनि एवं शङ्ख-ध्वनि करने लगीं तथा कृष्णके निकट आनेपर कोई उनके मस्तकपर धान, दुर्वा आदि फेंकने लगीं, कोई कृष्णको गोदीमें लेकर दधि, मक्खन आदि खिलाने

लगीं। कोई कहने लगीं—"क्या इतनी देर तक हमें छोड़कर तुम्हें गोष्ठमें रहना चाहिये? तुम समस्त व्रजवासियोंके नयनमणि हो। तुम्हें देखे बिना हम कैसे जीवित रह सकते हैं?" इस प्रकार वात्सल्यप्रेमवती व्रजगोपियाँ वात्सल्यप्रेमोचित व्यवहारसे उनका आनन्द-वर्द्धन करने लगीं।

नन्दनन्दन भी उनकी वात्सल्यप्रेमोचित सेवा ग्रहणकर सबकी मनोवासना परिपूर्णकर अपने भवनमें प्रवेश कर गये।

अब सभी गोपबालकोंने अपने माता-पिता, पास-पड़ोसियोंको यह बतलाया कि हमारे प्रियसखा कृष्णने आज वनमें एक अद्भुत कार्य किया। वनमें एक विशाल अजगरने आज हम सभी गोपबालकों और बछड़ोंको निगल लिया था, परन्तु हमारे सखा कृष्णने उसका वधकर हम सबकी रक्षा की। हमलोग अजगरके मुँहमें चले गये थे, परन्तु कृष्णने कुछ ही समयमें हमें अजगरके विकराल मुखसे बाहर निकाल लिया। इस प्रकार व्रजके घर-घरमें गोपबालकगण यशोदानन्दन कृष्णके परम अद्भुत बलवीर्यकी प्रशंसा और उनका गुणगान करने लगे। व्रजके समस्त नर-नारी कृष्णके इस अद्भुत कार्यके विषयमें सुनकर अति विस्मित तथा परमानन्दित हो गये॥ ४२-४८॥

**श्रीराजोवाच—**

**ब्रह्मन् परोद्भवे कृष्णे इयान् प्रेमा कथं भवेत्।**
**योऽभूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम्॥ ४९॥**

**अन्वयः**—राजा उवाच (श्रीपरीक्षित्ने कहा) ब्रह्मन् (हे ब्रह्मन् !) [व्रजवासियोंका] स्वोद्भवेषु तोकेषु (स्वयं अपने पुत्रोंके प्रति) अपि यः (भी जो प्रेम) अभूतपूर्वः (पहले नहीं था) परोद्भवे (परपुत्र) कृष्णे इयान् (कृष्णके प्रति ऐसा) प्रेमा (स्नेह) कथं भवेत् कथ्यताम् (कैसे सम्भव हुआ? [वर्णन कीजिये]॥ ४९॥

**अनुवाद**—महाराज परीक्षित्ने पूछा—हे ब्रह्मन्! व्रजवासियोंका अपने पुत्रोंके प्रति भी जैसा प्रेम नहीं था, वैसा अद्भुत प्रेम परपुत्र कृष्णके प्रति कैसे हो गया? इस विषयमें वर्णन कीजिये॥ ४९॥

**सारार्थदर्शिनी—** *"व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्याब्दमन्वहम्। शनैर्निःसीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत्"* इत्यादिना स्वतोकेभ्योऽपि परपुत्रे कृष्णे प्रेमाधिक्यं व्यञ्जितं। तत्र पृच्छति, ब्रह्मन्निति। परोद्भवे नन्दपुत्रे स्वोद्भवेषु स्वस्वपुत्रेष्वपि यः प्रेमा अभूतपूर्वः ब्रह्ममोहनात् पूर्वं न भूतः। लोके हि अतिगुणवत्तमादपि परपुत्रात् गुणहीनेऽपि स्वपुत्रे प्रेमाधिक्यं दृश्यत इत्यतो लोकविरुद्धत्वादिदं पृच्छते इति भावः॥४९॥

**भावानुवाद—**महाराज परीक्षित्ने प्रश्न किया—हे ब्रह्मन! *"व्रजौकसां स्वतोकेषु"* (श्रीमद्भा॰ १०/१३/२६), अर्थात् तेरहवें अध्यायके २६वें श्लोकमें आपने अपने-अपने पुत्रोंसे भी दूसरेके पुत्र कृष्णके प्रति व्रजवासियोंके अत्यधिक स्नेहका वर्णन किया गया है। उससे मुझे ऐसी आशङ्का हो रही है कि व्रजवासियोंका अपने-अपने पुत्रोंके प्रति जैसा प्रेम ब्रह्ममोहन-लीलासे पहले नहीं देखा गया, वैसा प्रेम ब्रह्ममोहनके पश्चात् दूसरेके पुत्र नन्दनन्दन कृष्णमें कैसे हुआ? इसका वर्णन करें। यहाँ तात्पर्य यह है कि संसारमें अत्यन्त गुणशाली दूसरेके पुत्रसे भी अपने गुणहीन पुत्रमें अधिक प्रेम देखा जाता है, परन्तु व्रजवासियोंका जैसा प्रेम अपने पुत्रोंमें भी कभी नहीं हुआ, वही अति उत्कृष्ट प्रेम परपुत्र कृष्णमें कैसे हुआ? यह लोकविरुद्ध होनेके कारण मैं आपसे पूछ रहा हूँ॥४९॥

**श्रीशुक उवाच—**

**सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव वल्लभः।**
**इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि॥५०॥**

**अन्वयः—**श्रीशुकः उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले) नृप (हे महाराज!) सर्वेषां अपि भूतानां स्वात्मा एव वल्लभः (सभी प्राणियोंको अपनी आत्मा ही प्रिय होती है) इतरेः (आत्मासे पृथक्) अपत्यवित्ताद्याः (पुत्र, धन आदि वस्तुएँ) हि (निश्चित रूपमें) तद्वल्लभतया एव (आत्माके प्रिय होनेके कारण गौण रूपमें प्रिय होती हैं, यथार्थ रूपमें प्रिय नहीं होती हैं)॥५०॥

**अनुवाद—**श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! अपनी आत्मा ही समस्त प्राणियोंको प्रिय होती है। आत्माके अतिरिक्त पुत्र, धन

आदि आत्माको प्रिय होनेके कारण ही गौण रूपमें प्रिय होते हैं, किन्तु साक्षात् प्रिय नहीं होते॥ ५०॥

**सारार्थदर्शिनी**—भो राजन्! ममतास्पदेभ्यः पुत्रादिभ्यः सकाशादहन्तास्पदे आत्मनि प्रेमाधिक्यमिति लोकरीतिः प्रथमं दृश्यतां तत एवास्य सिद्धान्तो भविष्यतीत्याह—सर्वेषामिति पञ्चभिः। वल्लभः लोकदृष्ट्या आत्यन्तिकप्रीतिविषयः। स च प्रतिदेहमेकैक एव न तथान्ये इत्याह—इतरे इति॥ ५०॥

**भावानुवाद**—हे राजन्! ममताके विषय पुत्र आदिसे भी अहन्ताके विषय आत्मामें अधिक प्रेम देखा जाता है—इस लौकिक रीतिको पहले अवलोकन करके बादमें इसका सिद्धान्त देखा जायेगा, इस अभिप्रायसे *'सर्वेषाम्'* आदि पाँच श्लोक कह रहे हैं। *'वल्लभः'*—लोकदृष्टिमें आत्मा ही अत्यधिक प्रीतिका विषय होती है। वह प्रत्येक देहमें एक रूपसे ही होती है, दूसरेके प्रति वैसे नहीं होती। इसे ही *'इतरे'* आदिसे कह रहे हैं, अर्थात् देव-तिर्यक्-मनुष्य आदि देहधारी सभी प्राणियोंको अपनी आत्मा ही वल्लभ अर्थात् अत्यधिक प्रिय होती है। जब कि पुत्र, धन आदि पदार्थ उस आत्माके अत्यन्त प्रिय होनेके कारण ही प्रिय होते हैं, परन्तु स्वभावतः स्वयं प्रियकर नहीं होते—यही लोक-प्रसिद्ध है॥ ५०॥

**तद्राजेन्द्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम्।**
**न तथा ममतालम्बिपुत्रवित्तगृहादिषु॥ ५१॥**

**अन्वयः**—राजेन्द्र (हे राजेन्द्र!) तत् (इसलिए) देहिनां स्वस्वकात्मनि (देहधारी प्राणियोंका अपनी-अपनी आत्माके प्रति) यथा स्नेहः भवति (जैसा स्नेह होता है) ममतालम्बि पुत्र वित्तगृहादिषु (ममताके विषयीभूत पुत्र, धन और घर आदिमें) तथा (वैसा स्नेह) न भवति (नहीं होता)॥ ५१॥

**अनुवाद**—हे राजेन्द्र! यही कारण है कि सभी देहधारी प्राणियोंको अपनी आत्माके प्रति जैसा स्नेह होता है, ममताके विषयीभूत अपने पुत्र, धन एवं गृहादिमें वैसा स्नेह नहीं होता है॥ ५१॥

**सारार्थदर्शिनी**—यथा निरुपाधिकः॥ ५१॥

**भावानुवाद**—*'यथा'*—आत्माके निरुपाधिक प्रेमका आस्पद (विषय) होनेके कारण प्राणियोंका जैसा प्रेम अपनी-अपनी अहङ्कारास्पद देहमें होता है, वैसा प्रेम ममतास्पद पुत्र-वित्त-गृह आदिमें नहीं होता है॥ ५१॥

**देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम।**
**यथा देहः प्रियतमस्तथा नह्यनु ये च तम्॥ ५२॥**

**अन्वयः**—राजन्य सत्तम (हे क्षत्रिय राजाओंमें महान्!) देहात्मवादिनां (शरीरमें आत्मबुद्धि-विशिष्ट) पुंसां अपि देहः यथा (पुरुषोंका देह जैसा) प्रियतमः (प्रिय होता है) तं अनु (उस देह सम्बन्धीय) ये च (जो कुछ स्त्री, पुत्र, गृह, सम्पदा आदि हैं) तथा न हि (वे वैसे प्रिय नहीं होते)॥ ५२॥

**अनुवाद**—हे क्षत्रियश्रेष्ठ! देहमें आत्मबुद्धि रखनेवाले पुरुषोंको अपनी देह जितनी प्रिय होती है, देह सम्बन्धी गृह, स्त्री अथवा पुत्रादि उतने प्रिय नहीं होते॥ ५२॥

**सारार्थदर्शिनी**—स चात्मा मूढैर्देह एव ज्ञायते इति तन्मतेनाह—देह एवात्मेति वदितुं वदितुं शीलं येषां तं देहं अनुभवन्ति ये पुत्रादयस्ते तथा न प्रियतमा इत्यर्थः॥ ५२॥

**भावानुवाद**—मूढ़ व्यक्ति देहको ही आत्मा समझते हैं। उन लोगोंके मतको बता रहे हैं—*'देहात्मवादिनाम्'*—देह ही आत्मा है, ऐसा कहना जिनका स्वभाव है, अर्थात् जो व्यक्ति देहमें आत्माका आरोपकर देहको ही आत्मा कहते हैं, ऐसे देहात्मवादियोंको देह जिस प्रकारसे प्रिय होती है, देहानुगत पुत्र-वित्त आदि वैसे प्रिय नहीं होते हैं॥ ५२॥

**देहोऽपि ममताभाक् चेत्तर्ह्यसौ नात्मवत् प्रियः।**
**यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिन् जीविताशा बलीयसी॥ ५३॥**

**अन्वयः**—चेत् (यद्यपि) देहः अपि ममताभाक् (यह शरीर भी ममताका विषय है) तर्हि (फिर भी) असौ (यह देह) आत्मवत् प्रियः न भवति (आत्मवत् प्रिय नहीं होती है) यत् (जिससे) अस्मिन् देहे जीर्यति (इस शरीरके जराजीर्ण होनेपर) अपि जीविताशा वलीयसी (भी जीनेकी आशा बलवती रहती है)॥ ५३॥

**अनुवाद**—यद्यपि यह देह ममताका विषय होती है, तथापि यह आत्माके समान प्रिय नहीं होती, क्योंकि देहके जराग्रस्त होनेपर भी जीवनकी आशा बलवती रहती है। अर्थात् देहत्याग करनेमें आत्माको अत्यधिक कष्ट होगा, यह जानकर कोई देहत्याग करना ही नहीं चाहता है। अतः आत्माके प्रति स्नेहकी अधिकताके कारण ही जीवित रहनेकी आशा बलवती रहती है॥ ५३॥

**सारार्थदर्शिनी**—देहात्मवादिनां तेषामपि कदाचिदीषद्विवेके सति आत्मैव प्रियः स्यान्न तथा देह इत्याह—देहोऽपि अहन्तास्पदीभूतोऽपि देह ईषद्विवेकेन यदि ममताभाक् स्यात्तदासौ देह आत्मवत् प्रियो न भवेत्। कित्वात्मानुरोधेनैव प्रियः स्यादित्यर्थः। तत्र लोकानुभवमेव प्रमाणयति—यदिति। सर्वत्र देहत्यागे आत्मनोऽतिकष्टं दृष्ट्वा तदति कष्टं ममात्मनो मा भवत्विति बुद्ध्यैव आत्मन्यतिस्नेहादेव देहे जीविताशा अधिका भवतीत्यर्थः॥ ५३॥

**भावानुवाद**—*'देहात्मवादिनाम्'*—जो ऐसा समझते हैं कि 'यह मेरा शरीर है', ऐसे अविवेकी देहात्मवादियोंका भी किसी कालमें विवेक उदित होनेपर जैसे आत्मा प्रिय बोध होती है, उस प्रकारसे देह कभी भी प्रिय नहीं होती है। देहात्मवादियोंके लिए यह शरीर अहन्तास्पद होनेपर भी यदि किञ्चत् विवेकवशतः ममताका विषय होता है, तो भी वह शरीर आत्मके समान प्रिय नहीं होता है; बल्कि शरीरमें आत्मा होनेके कारण ही शरीर प्रिय होता है। इस विषयमें 'यत्' आदिसे लौकिक अनुभवका उदाहरण दे रहे हैं। अर्थात् इस शरीरके व्याधिसे जीर्ण-शीर्ण होनेपर भी इस ममतास्पद शरीरको छोड़नेकी इच्छा नहीं होती। इसका कारण है कि सर्वत्र शरीर छोड़ते समय आत्माका अत्यधिक कष्ट देखकर—वह कष्ट मेरी आत्माको न हो, इसी बुद्धिसे आत्मामें अत्यधिक स्नेहके कारण इसी शरीरमें जीवित

रहनेकी आशा बलवती होती है, अर्थात् यह देह बची रहे, ऐसी इच्छा अधिकतर होती है—यह अर्थ है॥५३॥

**तस्मात् प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम्।**
**तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम्॥५४॥**

**अन्वयः**—तस्मात् सर्वेषां अपि देहिनां स्वात्मा प्रियतमः (अतएव समस्त प्राणियोंको अपनी आत्मा प्रिय होती है) एतत् सकलं चराचरं जगत् तदर्थं एव (इसलिए सम्पूर्ण चराचर जगत् उस आत्माके सुखके लिए ही होता है)॥५४॥

**अनुवाद**—अतः इससे स्पष्ट हो जाता है कि समस्त प्राणियोंको अपनी आत्मा ही सर्वाधिक प्रिय होती है। यह निखिल चराचर जगत् भी उस आत्माके सुखके लिए ही है॥५४॥

**सारार्थदर्शिनी**—तस्मादिति। चरं पुत्रकलत्रादि अचरं गृहघटपटादि। तेन लाकदृष्ट्या पुत्रादिभ्यः सकाशदात्मन एवात्यन्तिकप्रीतिविषयत्वं प्रतिपादितम्॥५४॥

**भावानुवाद**—*'तस्ताद्'*—अतएव जितने भी जीव हैं, सभीको आत्मा ही अधिक प्रिय होती है। 'चर' कहनेसे पुत्र-स्त्री आदि। 'अचर'—गृह, घट-पट आदि। शरीर, सन्तान, घट-पट आदि सम्पूर्ण जगत् आत्माके सुखके लिए ही प्रिय होते हैं। इस प्रकार लौकिक दृष्टिसे पुत्र आदिसे भी आत्माकी ही अत्यधिक प्रियता प्रतिपादित होती है॥५४॥

**कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।**
**जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥५५॥**

**अन्वयः**—त्वं एनं अखिलात्मनां (तुम इन श्रीकृष्णको समस्त जीवोंका) आत्मानं (आत्म-स्वरूप) अवेहि (जानो) सः अपि जगद्धिताय अत्र मायया देही इव आभाति (वे ही जगत्के कल्याण विधानके लिए अवतीर्ण हुए हैं तथा मायाके प्रभावसे सामान्य मनुष्योंके इन्द्रियग्राह्य स्थूलदेह-धारीके रूपमें प्रतीत हो रहे हैं)॥५५॥

**अनुवाद**—परीक्षित्! तुम इन श्रीकृष्णको समस्त जीवोंके आत्मा-स्वरूप जानो। वे जगत्के मङ्गलके लिए योगमायाका आश्रय लेकर कृपापूर्वक अवतीर्ण होकर साधारण व्यक्तियोंके इन्द्रग्राह्य मायिक उपाधि अथवा भौतिक देहधारीके रूपमें प्रतीत होते हैं॥ ५५॥

**सारार्थदर्शिनी**—विवक्षितं सिद्धान्तं प्रतिपादयंस्तत्त्वदृष्ट्या तस्याप्यात्मन आपेक्षिकप्रीतिविषयत्वमेव आत्यन्तिकप्रीतिविषयत्वं केवलं कृणस्यैवेत्याह—कृष्णमिति। अखिलानामात्मनां जीवानामप्यात्मानं परमात्मानमेव कृष्णमवेहि तेन पुत्रादिषु प्रीतिर्यथा देहानुरोधेन देहे च प्रीतिर्यथा आत्मानुरोधेन तथैवात्मन्यपि प्रीतिः परमात्मानुरोधेन स च परमात्मा कृष्ण एव मूर्त्तः पूर्ण एव। यदुक्तं *"विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्"* इत्यतः कृष्णस्यैवात्यन्तिक प्रीतिविषयत्वात्तत्रैव प्रीतेः पराकाष्ठेति स्वपुत्रेभ्योऽपि तत्र यत् प्रेमाधिक्यं तदुपपादितम्। किञ्च, जीवानां भक्त्यभावात् मायया ज्ञानावरणाच्च भक्त्यैक-प्रकाश्ये तस्मिन्स्तादृशत्वेनानुभवो मायिकजीवानामभक्तानां कथमस्त्वित्यतः पुत्रादिष्वेव लोकानां प्रीतिविषयत्वेनानुभवो न तस्मिन् व्रजवासिनां तु मायातीतत्वाद्भक्तिपूर्णत्वाच्च यथार्थ एवानुभव इत्यतस्तेषां स्वपुत्रादिभ्योऽपि तस्मिन् प्रेमाधिक्यं स्वाभाविकं वर्तते एवेति समाधेयम्। जगद्धितायावतीर्णः स कृष्णोऽपि मायया देहीव आभाति स्वाविद्यया मूढैर्जीव इव भौतिकदेहवान् प्रतीयत इत्यर्थः। यद्वा, माययैव यो देहस्तद्वानिव मायोपाधिरिव प्रतीयते न तु स मायोपाधिरित्यर्थः। अतएव मधुसूदनसरस्वतीपादैरपि *"सच्चित्सुखैकवपुषः पुरुषोत्तमस्य नारायणस्य महिमा नहि मानमेति।" "चिदानन्दाकारं जलदरुचिसारं श्रुतिगिरां व्रजस्त्रीणां हारम्"* इत्यादि बहुशो वर्णितम्। यद्वा, ननु परमात्मा खल्विन्द्रियग्राह्यो न भवेत्। कृष्णस्तु सर्वैर्दृश्यत एवेति तत्राह—जगत् एव हिताय मायया निर्हेतुकाचिन्त्यया कृपया सोऽपि अत्र जगज्जनेन्द्रियेषु देहीव आभाति स्वयमेव तद्ग्राह्यत्वेन प्रकाशते इति। अतर्कतदिच्छया तद्गृहीतैरिन्द्रियैव स गृह्यते, न पुनरिन्द्रियैः स्वयमेव शब्दादिरिव ग्रहीतुं शक्य इति भावः। अतएव भागवतामृतधृतं नारायणाध्यात्मवचनम। *"नित्याव्यक्तोऽपि भगवानीक्षते निजशक्तितः। तामृते परमानन्दं कः पश्येतामितं प्रभुम्"* इति तत्रत्या कारिका च *"ततः स्वयंप्रकाशत्वशक्त्या स्वेच्छाप्रकाशया। सोऽभिव्यक्तो भवेन्नेत्रे न नेत्रविषयत्वतः"* इति तत्र हि तमन्यदेशीयानामनुकूलजनानां स्वकृपादृष्टिदानेनैव स्वमाधुर्यग्राहणम्, प्रतिकूलानां कंसाद्यसुराणां तु पित्तदूषितरसनया मत्स्यण्डिका भोजनमिव प्राकृतैरेवेन्द्रियैस्तन्माधुर्य-ग्रहणरहितमेव दर्शनं ध्यानावेशसिद्ध्यर्थम् आवेशफलञ्च सर्वापराधोपशमनपूर्वको मोक्षः स एव तेषां हितम्। किञ्च, व्रजस्थानामैश्वर्यज्ञानशून्यानामन्येषामनुकूलप्रतिकूलानामपि यद्यपि सदेह्येवाभाति तदपि *"देहदेहिविभागोऽत्र नेश्वरे विद्यते क्वचित्"* इति मध्वाचार्यधृतमहावाराहवचनादेव शास्त्रज्ञैर्देहीति वक्तुमयोग्यत्वादिवशब्दप्रयोगः॥ ५५॥

**भावानुवाद**—पहले वर्णन किये गये सिद्धान्तका प्रतिपादन करनेके लिए कह रहे हैं—तत्त्वकी दृष्टिसे उस आत्माका भी आपेक्षिक प्रीतिविषयत्व ही है, आत्यन्तिक प्रीतिके विषय तो केवल श्रीकृष्ण ही हैं। इसके लिए कह रहे हैं—*'कृष्णम्'*, अर्थात् हे महाराज्! आप इन यशोदानन्दन श्रीकृष्णको प्राणिमात्रका परमात्मा समझें। *'अखिलात्मनाम्'*—वे समस्त आत्माओंकी आत्मा हैं, अर्थात् परमात्माको ही श्रीकृष्ण समझें। जिस प्रकार पुत्र आदिमें प्रीति शरीरके कारण होती है एवं देहमें प्रीति जैसे आत्माके कारण होती है, वैसे ही आत्मामें भी प्रीति परमात्माके कारण होती है एवं वे परमात्मा श्रीकृष्ण ही मूर्त्तिमान परिपूर्ण-स्वरूप हैं। जैसे श्रीगीतामें कहा है—*"विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्"* (श्रीगीता॰ १०/४२) अर्थात् "हे अर्जुन! इस पृथक्-पृथक् उपदिष्ट ज्ञानसे तुम्हारा क्या प्रयोजन है? मैं इस चित्-अचित् सम्पूर्ण जगत्को प्रकृतिके अन्तर्यामी पुरुषरूपमें एकांशमें धारणकर अवस्थित हूँ।" इससे श्रीकृष्णके ही आत्यन्तिक प्रीतिके विषय होनेके कारण उन श्रीकृष्णमें ही प्रेमकी परकाष्ठा है। अतएव व्रजवासियोंका जो अपने पुत्रोंसे भी अधिक प्रेम श्रीकृष्णके प्रति देखा जाता है, वह युक्तिसङ्गत ही है।

कुछ और भी कह रहे हैं—जो जीव मायाके द्वारा अज्ञानमें डूबे हुए हैं एवं भगवान्के प्रति भक्तिहीन हैं, उन्हें भगवान्के प्रति ऐसा प्रेम कैसे हो सकता है? इसीलिए बहिर्मुख लोगोंकी अपने-अपने पुत्र आदिके प्रति ही प्रीति होती है, श्रीकृष्णके प्रति नहीं। परन्तु मायातीत और भक्तिपूर्ण हृदयवाले व्रजवासियोंका अनुभव यथार्थ ही है, इसलिए अपने-अपने पुत्र आदिसे भी श्रीकृष्णमें स्वाभाविक रूपसे उनका अधिक प्रेम होता है। *'जगद्धिताय'*—जगत्-कल्याणके लिए अवतीर्ण हुए वे कृष्ण भी मूढ़ व्यक्तियोंके निकट अविद्यावशतः सामान्य जीवोंके समान भौतिक देहधारीके रूपमें ही प्रतीत होते हैं। अथवा जीव उन्हें माया द्वारा रचित देहवाला समझते हैं, परन्तु वे माया-उपाधियुक्त नहीं हैं। अर्थात् श्रीकृष्ण जगत् कल्याणके लिए इस संसारमें कृपापूर्वक अपनी स्वरूपशक्तिके प्रभावसे कल्प-कल्पमें अवतीर्ण होते हैं। यथार्थतः वे कर्माधीन मनुष्य जैसे नहीं हैं। अतएव श्रील

मधुसूदन सरस्वतीपादने भी कहा है—"सच्चित्-सुखैक-विग्रह पुरुषोत्तम नारायणकी महिमा कभी भी निर्द्धारित नहीं की जा सकती।" "जो सच्चिदानन्द-विग्रह जलधर-कान्तियुक्त, श्रुतिमन्त्रोंके सार-स्वरूप तथा व्रजरमणियोंके हार-स्वरूप हैं", इत्यादि।

यदि कहें कि परमात्मा कभी इन्द्रिय-ग्राह्य नहीं होते हैं, किन्तु कृष्णका तो सभी दर्शन करते हैं। इसके उत्तरमें कहते हैं—भगवान्‌का अवतार जगत्‌के हितके लिए होता है। वे अहैतुकी अचिन्तय कृपाके वशीभूत होकर स्वयं ही देहधारी जीवोंकी भाँति प्रकाशित होते हैं, जिससे सभी लोग अपनी इन्द्रियोंसे उन्हें ग्रहण कर सकें। इस प्रकार तर्कातीत भगवान् इन्द्रियग्राह्य नहीं होनेपर भी अपनी इच्छासे ही जीवोंके इन्द्रियग्राह्य होते हैं। अन्यथा जीवकी इन्द्रियाँ स्वयं ही शब्द आदिकी भाँति उन्हें ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं हैं। अतएव भागवतामृतधृत नारायण-अध्यात्म वचनसे जाना जाता है—*'नित्याव्यक्तोऽपि'* अर्थात् श्रीभगवान् नित्य अव्यक्त होनेपर भी अपनी कृपारूपी स्वरूपशक्तिके द्वारा इन्द्रियगोचर होते हैं। उस स्वरूपशक्तिकी कृपाके बिना कोई भी व्यक्ति स्वरूपतः और गुणतः अनन्त, परमात्मा श्रीहरिका दर्शन नहीं कर सकता।

वहाँपर भी कारिका है—*"ततः स्वयं प्रकाशत्वशक्त्या"* (लघुभागवतामृतमें २५२ अङ्कधृत कारिका), अर्थात् वे विभु श्रीहरि अपनी इच्छासे प्रकाशमान स्वप्रकाश-शक्तिके द्वारा नेत्रोंमें तादात्म्ययुक्त होकर अभिव्यक्त होते हैं, किन्तु नेत्रोंका विषय होकर प्रकाशित नहीं होते। यहाँपर जगत्‌का हित कहनेसे अन्य स्थानोंपर अनुकूलजनोंको अपनी कृपादृष्टि प्रदानकर उन्हें स्वमाधुर्य ग्रहण कराते हैं एवं पित्तदूषित जिह्वामें जिस प्रकार मिश्रीका आस्वादन नहीं हो सकता, उसी प्रकार कंस आदि असुर अपनी प्राकृत इन्द्रियोंके द्वारा उनका दर्शन आदि करनेपर भी उनके माधुर्यको ग्रहण नहीं कर पाते। परन्तु उनके दर्शन और ध्यान-आवेशकी सिद्धिके कारण उनके समस्त अपराध दूर हो जाते है और उन्हें मोक्षकी प्राप्ति होती है—इसके द्वारा ही उनका हित होना समझना होगा।

ऐश्वर्यज्ञानरहित व्रजवासियोंके निकट, यहाँ तक कि अनुकूल या प्रतिकूल दूसरे लोगोंके निकट यद्यपि वे देहधारीके रूपमें प्रतिभात होते हैं, तथापि "ईश्वरमें कभी देह और देहीका कोई भेद नहीं है।"—इस श्रीमन् मध्वाचार्य-धृत महावराहपुराणके वचनके अनुसार यहाँ शास्त्रज्ञ श्रीशुकदेव गोस्वामीने *'देही'* कहना युक्तिसङ्गत न मानकर *'इव'* (देहीकी भाँति) शब्दका प्रयोग किया है॥ ५५॥

**वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च।**
**भगवद्रूपमखिलं नान्यद्वस्त्विह किञ्चन॥ ५६॥**

**अन्वयः**—वस्तुतः (यथार्थतः) अत्र कृष्णं जानतां (जो कृष्ण-तत्त्वको जानते हैं) स्थास्नुं चरिष्णु च (स्थावर-जङ्गमात्मक) अखिलं (सम्पूर्ण विश्वको) भगवद्रूपं (भगवत्-रूप ही मानते हैं) इह अन्यत् वस्तु किञ्चन न (इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं मानते)॥ ५६॥

**अनुवाद**—वस्तुतः जो यथार्थ रूपमें कृष्ण-तत्त्वसे अवगत हैं, उनके मतमें स्थावर-जङ्गमात्मक अखिल विश्व श्रीकृष्ण-स्वरूप ही है। अर्थात् श्रीकृष्ण समस्त कारणोंके कारण हैं। कार्य एवं कारण अभिन्न होनेके कारण श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु है ही नहीं॥ ५६॥

**सारार्थदर्शिनी**—किञ्चापेक्षिक-प्रेमास्पदानि ये चात्मदेहपुत्राद्यास्तेऽपि विचारवतः स एवेत्यापेक्षिकप्रेमास्पदत्वमपि तस्यैवेत्याह-वस्तुत इति। वस्तुतस्त्वित्यर्थः। कृष्णं जानतां पुंसां मते स्थावरं जङ्गमं च सर्वं तद्रूपमेव तस्यैव सर्वकारणत्वात् कारणस्यैव कार्याकारत्वादिति भावः॥ ५६॥

**भावानुवाद**—और भी, आपेक्षिक प्रेमास्पद जो सब देह, पुत्र आदि हैं, विचार करनेपर वे सब भी श्रीकृष्ण ही हैं। इस प्रकार आपेक्षिक प्रेमास्पद भी श्रीकृष्ण ही हुए। इसे ही कह रहे हैं—*'वस्तुतः'*—वास्तविक पक्षमें यही अर्थ है। *'कृष्णं जानताम्'*—जो तत्त्वतः कृष्णको जानते हैं, ऐसे विचार-परायण महात्माओंके लिए स्थावर-जङ्गमात्मक सभी वस्तुएँ श्रीकृष्णमें ही अवस्थित रूपमें

प्रतिभात होती हैं, क्योंकि वे ही समस्त कारणोंके कारण हैं। कारण ही कार्य रूपमें रूपान्तरित होता है—यह भाव है। उनके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु ही संसारमें नहीं है, अर्थात् श्रीकृष्णमें जो वस्तु नहीं है, उस वस्तुकी कोई सत्ता नहीं है॥ ५६॥

**सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः।**
**तस्यापि भगवान् कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यताम्॥ ५७॥**

**अन्वयः**—सर्वेषां अपि वस्तूनां भावार्थः (सभी वस्तुओंका भाव अर्थात् कारण प्रधान) स्थितः (स्थिर है) भवति भगवान् कृष्णः तस्य अपि (भगवान् श्रीकृष्ण उन कारणोंके भी कारण हैं) [इसलिए] अतद्वस्तु (कृष्ण सम्बन्धरहित) किं (किसी वस्तुकी सत्ताका) रूप्यताम् (निरूपण हो सकता है?)॥ ५७॥

**अनुवाद**—सभी वस्तुओंका कारण प्रधान है, यही निर्णीत है। भगवान् श्रीकृष्ण उन समस्त कारणोंके भी कारण-स्वरूप हैं। अतएव कृष्ण-सम्बन्धसे रहित जो कोई वस्तु है—क्या उसका निरूपण किया जा सकता है?॥ ५७॥

**सारार्थदर्शिनी**—कुत इति तदाह—सर्वेषामपि। स्थावरजङ्गमानां भावः भवन्त्यस्मादिति भावः कारणं प्रधानं तद्रूपोऽर्थः स्थितः स्थिरो भवति तस्यापि भावस्य भावः कारणं कृष्ण एव अतः किमतत् श्रीकृष्णव्यतिरिक्तं वस्तु रूप्यताम्। यद्वा, वस्तूनां बुद्धीन्द्रियादीनां भावार्थः व्यङ्ग्योऽर्थः आत्मा स्थिरो भवति तस्याप्यंशत्वात्तद्व्यङ्ग्यो अंशी श्रीकृष्णः। अतः किं अतत् तद्भिन्नं वस्तु किं किमर्थं रूप्यतां स एव केवलं सेव्य इत्यर्थः॥ ५७॥

**भावानुवाद**—कैसे? इसके लिए कह रहे हैं—*'सर्वेषाम्'*—समस्त वस्तुओंका जो भाव है। यहाँ भाव कहनेसे जिससे समस्त वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, अर्थात् कारण प्रधान—यही निर्णीत हुआ है। अर्थात् स्थावर-जङ्गम या प्राकृत-अप्राकृत निखिल वस्तुओंकी जो सत्ता या अस्तित्व है, वह उनके उपादान आदि कारणोंमें स्थित है। उन समस्त कारणोंके भी कारण सर्वशक्ति-विशिष्ट भगवान् श्रीकृष्ण हैं। अतएव श्रीकृष्णके अतिरिक्त और क्या है जिसका निरूपण किया जा सकता

है अर्थात् कुछ भी नहीं है। अथवा *'वस्तूनाम्'*—बुद्धि, इन्द्रिय आदिके *'भावार्थ'*—कारण-स्वरूप आत्मा तथा उसके भी अंशी—श्रीकृष्ण। अतएव श्रीकृष्णको छोड़कर अन्य वस्तुको क्यों ढूँढ़ रहे हो? वे श्रीकृष्ण ही एकमात्र सेव्य हैं॥५७॥

**समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं,**
**महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः।**
**भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं,**
**पदं पदं यद्विपदां न तेषाम्॥५८॥**

**अन्वयः**—ये (जो व्यक्ति) पुण्ययशोमुरारेः (पवित्रकीर्त्ति श्रीकृष्णके) महत्पदं (ब्रह्मा-शिवादि देवताओंके आश्रय-स्वरूप) पदपल्लवप्लवं (चरणकमलरूपी नौकाका) समाश्रिताः तेषां भवाम्बुधिः (आश्रय ग्रहण करते हैं, उनके लिए भवसागर) वत्सपदं (गोस्पद तुल्य अर्थात् बछड़ेके खुर जैसा हो जाता है, जिसे वे सुखपूर्वक पार कर लेते हैं) परं पदं (उनकी वैकुण्ठ नामक स्थानमें गति होती है) विपदां (समस्त प्रकारके अशुभोंका) यत् पदं (स्थान जहाँपर) न (नहीं है)॥५८॥

**अनुवाद**—जो व्यक्ति पुण्यकीर्त्ति मुरारि श्रीकृष्णके ब्रह्मा-शिवादि महत्जनोंके आश्रय-स्वरूप चरणकमलरूपी तरणी (नौका) का आश्रय लेते हैं, उनके लिए यह भवसमुद्र बछड़ेके खुरसे बने गड्ढेके समान हो जाता है जिसे वे अनायास ही पार कर लेते हैं। उन्हें परमपद वैकुण्ठकी प्राप्ति हो जाती है, जो समस्त प्रकारकी विपत्तियोंसे मुक्त है॥५८॥

**सारार्थदर्शिनी**—तदेवं साधितं श्रीकृष्णस्यैव तच्चरणाश्रयणैकहेतु-कान्मायातरणादेवानुभवगोचरी भवतीति तच्चरणाश्रयिणामेव सर्वोत्कर्षमभिव्यञ्जयति—समाश्रिता इति। पुण्यं चारु मनोहरं यशो यस्य तस्य मुरारेः पदपल्लव एव प्लवस्तं ये सम्यक् कैवल्येनाश्रिताः। कीदृशं महतां पदम् आश्रयं। तेषां भवाम्बुधिर्वत्सपदं तीर्णतर्त्तव्यवस्तुभानानास्पदं भवति परं पदं नित्यधाम श्रीवृन्दावनवैकुण्ठादि तेषां परमास्पदं, विपदां यत्पदं दुर्विषयं तत्खलु तेषां कदाचिदपि न भवतीति तेषां मतिस्ततोऽन्यत्र नासज्जते इत्यर्थः॥५८॥

**भावानुवाद**—इस प्रकारसे श्रीकृष्णका ही प्रेमका विषय होना सिद्ध हुआ। एकमात्र उनका चरणाश्रय करनेपर ही मायासे पार होनेपर उसका अनुभव होता है। इसीलिए उनका चरणाश्रय करनेवालोंका सर्वोत्कर्ष प्रकाश कर रहे हैं। जिनका यश मनोहर है, ऐसे मुरारिके *'पदपल्लवप्लवम्'*—चरणकमल ही नौका-सदृश हैं। ब्रह्मा, रुद्र आदि महत्जनोंके भी आश्रय-स्वरूप ऐसे चरणकमलोंका जो भलीभाँति निष्कपट भावसे आश्रय ग्रहण करते हैं, उनके लिए यह दुस्तर भवसागर भी बछड़ेके खुरसे बने गड्ढेके समान अति क्षुद्र हो जाता है। वे अनायास ही इसे पार कर जाते हैं तथा परमपद नित्यधाम श्रीवृन्दावन, वैकुण्ठ आदि धाम उनके लिए परम आश्रय-स्थान हो जाते हैं। उन्हें इस दुःखमय जगत्का कदाचित् भी आश्रय ग्रहण नहीं करना पड़ता है। अर्थात् उनकी मति कभी भी श्रीकृष्णके चरणकमलोंको छोड़कर अन्यत्र कहीं आसक्त नहीं होती है—यह भावार्थ है॥ ५८॥

**एतत् ते सर्वमाख्यातं यत् पृष्टोऽहमिह त्वया।**
**तत् कौमारे हरिकृतं पौगण्डे परिकीर्तितम्॥ ५९॥**

**अन्वयः**—(हे राजन्!) कौमारे (पाँचवे वर्षमें) यत् (जो कार्य) हरिकृतम् (कृष्णने किये) [उसे] पौगण्डे (बालकोंने छठे वर्षमें) परिकीर्तितं इह (इस विषयमें कहा) त्वया अहं यत् पृष्टः (तुमने मुझसे जो पहले पूछा था) एतत् सर्वं (वह सब) ते (तुम्हारे निकट) आख्यातं (मैंने वर्णन किया)॥ ५९॥

**अनुवाद**—हे राजन्! कृष्णने पाँचवे वर्षमें जो लीला की, गोपबालकोंने छठे वर्षमें उसका वर्णन किया। इस विषयमें तुमने जो प्रश्न किया था, मैंने वह सबकुछ तुम्हारे निकट वर्णन किया है॥ ५९॥

**एतत् सुहृद्भिश्चरितं मुरारे-**
**रघार्दनं शाद्वलजेमनञ्च।**
**व्यक्तेतरद्रूपमजोर्वभिष्टवं,**
**शृण्वन् गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान्॥ ६०॥**

**अन्वयः**—नरः मुरारेः (श्रीकृष्णका) सुहृद्भिः (सखाओंके साथ) चरितं (आचरण) अघार्दनं (अघासुरका विनाश) शाद्वलजेमनं (वनमें स्थित घासोंके ऊपर भोजन) व्यक्तेतरं रूपं (जड़-प्रपञ्च जगत्से अतीत स्वरूप) अजोर्वभिष्टवं (ब्रह्मा-कर्त्तृक महान स्तोत्र) नरः (जो मानव) शृण्वन् (श्रवण) गृणन् (कीर्त्तन करता है, वह) अखिलार्थान् एति (समस्त प्रकारके अभीष्ट प्राप्त करता है)॥ ६०॥

**अनुवाद**—श्रीकृष्णकी सखाओंके साथ वन-क्रीड़ा, अघासुर विनाश, वनमें हरी-हरी घाससे युक्त भूमिके ऊपर भोजन करना, जड़-प्रपञ्चातीत बछड़ों और ग्वालबालोंके रूपमें प्रकट होना और ब्रह्मा द्वारा किये गये महत्-स्तोत्र आदिका जो श्रवण और कीर्त्तन करता है, वह मानव समस्त अभीष्टोंकी प्राप्ति कर लेता है॥ ६०॥

**सारार्थदर्शिनी**—सुहृद्भिश्चरितं *"मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीन्"* इत्यादिनोक्तं। व्यक्तात् प्रपञ्चादितरत्। अकारान्तमात्वर्षम्। अजस्य उरुर्महानभिसर्वतोभावेन स्तवस्तम्॥ ६०॥

**भावानुवाद**—सखाओंके साथ श्रीकृष्णका जो आचरण अर्थात् सखाओंका परस्पर छीका, लकुटी आदि चुराना, अघासुरका मोक्ष, कोमल घासपर बैठकर भोजन करना तथा प्रपञ्चातीत शुद्धानन्दात्मक बछड़ों और ग्वालबालोंका रूप धारण करना एवं ब्रह्मा द्वारा किये गये महान स्तोत्रका श्रवण, कीर्त्तन या पाठकर मनुष्य समस्त प्रकारके पुरुषार्थ प्राप्त करते हैं॥ ६०॥

**एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे।**
**निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः॥ ६१॥**

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ब्रह्मसूत्रभाष्ये पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे ब्रह्मस्तुतिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥**

**अन्वयः**—[राम-कृष्ण दोनोंने] व्रजे एवं निलायनैः (इस प्रकार व्रजमें लुकाछिपी खेल आदिके द्वारा) [तथा] सेतुबन्धैः (सेतु निर्माणके द्वारा) मर्कटोत्प्लवनादिभिः (बन्दरोंकी भाँति उछल-कूद आदिके

द्वारा) कौमारैः विहारैः (बालकोचित विहारके द्वारा) कौमारं (कौमार कालका) जहतुः (अतिक्रम किया)॥ ६१॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके चौदहवें अध्यायका
अन्वयः समाप्त।

**अनुवाद—**इस प्रकार श्रीबलराम और कृष्णने व्रजमें आँख-मिचौली, सेतुबन्धन एवं बानरोंके समान उछलना-कूदना आदि कौमार कालके उचित क्रीड़ाओंको करते हुए कौमारावस्थाको अतिक्रम किया॥ ६१॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके चौदहवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

**सारार्थदर्शिनी—***"ब्रह्मन्! कालान्तरकृतं तत्कालीनम् कथं भवेत्"* इति राजप्रश्नोत्तरं समाप्य पुनस्तत्कथामेवावलम्बमान आह—एवमिति। जहतुः संवृतवन्तौ। निलायनैः निलीयस्थिति-तदन्वेषणाद्यैः सेतुबन्धलङ्काप्रयाणक्षीराब्धिमथनादिभिरवतारान्तर-चरितैः॥ ६१॥

इति सारार्थदर्शिन्यां हर्षिण्यां भक्तचेतसाम्।
चतुर्दशोऽयं दशमे सङ्गत सङ्गत सताम्॥

इति श्रीमद्भागवत-दशमस्कन्धे श्रीविश्वनाथचक्रवर्ति-ठक्कुर-कृता
चतुर्दशाध्यायस्य सारार्थदर्शिनी-टीका समाप्ता॥ १४॥

**भावानुवाद—***"ब्रह्मन् कालान्तरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत्"* (श्रीमद्भा० १०/१२/४१), अर्थात् हे ब्रह्मन्! पूर्वमें किया हुआ कार्य तत्कालीन वर्त्तमान समयमें कैसे सम्भव हो सकता है? महाराज परीक्षित्के इस प्रश्नका उत्तर देते हुए श्रीशुकदेव गोस्वामी फिरसे उस कथाका आश्रयकर *'एवम्'* आदि कह रहे हैं। श्रीबलराम और कृष्णने कौमारकालके अनुरूप विहारके द्वारा कौमार अवस्थाको बिताया। *'निलायनैः'* अर्थात् लुका-छिपी क्रीड़ाके द्वारा। *'सेतुबन्धैः'* नदीमें सेतुबन्धनके द्वारा लङ्का गमनका अनुकरण एवं क्षीरसमुद्र-मन्थन आदि दूसरे अवतारोंके चरित्रोंका अनुकरण करते हुए लीला-विहार करने लगे॥ ६१॥

इस प्रकार भक्तोंको आनन्द देनेवाली दशम-स्कन्धके चौदहवें अध्यायकी सज्जन-सम्मत 'सारार्थदर्शिनी' टीका समाप्त हुई।

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके चौदहवें अध्यायकी श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर विरचित सारार्थदर्शिनी टीकाका भावानुवाद समाप्त।

**भावप्रकाशिकावृत्ति—**परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामीसे कृष्णकी परम-मधुर ब्रह्ममोहन-लीलाकी कथाको सुनकर महाराज परीक्षित् आनन्दमें विभोर हो गये। करोड़ों-करोड़ों ब्रह्मा, पञ्चानन शिव, नारद, शेष आदि जिनकी चरणधूलि पानेकी आशासे निरन्तर स्तव, स्तुति, पूजा-पाठ, स्मरण, मनन आदि करते रहते हैं, ऐसे स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णकी बाल-लीला-माधुरीमें डूबकर वे जितना चिन्तन कर रहे हैं, उतना ही उनके हृदयमें एक अभिनव भावका उदय होता जा रहा है। विशेषकर व्रजकी वात्सल्यप्रेममयी माताओंके नन्दनन्दनके प्रति अपूर्व स्नेहके विषयमें उन्होंने श्रीशुकदेव गोस्वामीसे जो सुना है, उसे वे किसी भी प्रकारसे भूल नहीं पा रहे हैं। उनके मनमें निरन्तर एक ही प्रश्न उदित हो रहा है कि व्रजकी वात्सल्यवती गोपियोंको नन्दनन्दन कृष्ण अपने गर्भजात सन्तानसे भी करोड़ों गुणा अधिक प्रिय क्यों है? साधारण रूपसे देखा जाता है कि सौन्दर्य-माधुर्य आदिकी अधिकता, आत्मीयता और दैहिक सम्बन्ध—इन तीन कारणोंसे प्रेम होता है। उनमेंसे दैहिक सम्बन्ध ही प्रीतिका विशेष कारण है। इसलिए अपना पुत्र गुणहीन होनेपर भी उसके प्रति जैसी प्रीति होती है, वैसी प्रीति नाना प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न दूसरोंके पुत्रोंके प्रति नहीं होती। परन्तु वात्सल्यप्रेममयी व्रजगोपियोंका यह आश्चर्यमय प्रेम-व्यवहार है कि वे अपने पुत्रोंकी अपेक्षा यशोदाके पुत्रको अत्यधिक प्रीति करती हैं।

यदि वे कृष्णको भगवान् समझकर वैसा करतीं, तो एकमात्र भगवत्-बुद्धि ही उनके असीम प्रेमका कारण बोध होता, परन्तु गोपियोंके प्रेम-विभावित हृदयमें कभी भी कृष्णके प्रति भगवत्-बुद्धि नहीं आयी। वे कृष्णको यशोदानन्दनके अतिरिक्त कुछ नहीं मानती

थीं। इसलिए देखा जाता है कि एकमात्र कृष्ण ही उनके प्रेमके पात्र हैं। श्रीकृष्ण जब केवलमात्र यशोदानन्दनके रूपमें लीला कर रहे थे, तब माताएँ अपने पुत्रोंकी उपेक्षा करके उन्हींको गोदमें बैठाकर लाड़-प्यार किया करती थीं और उन्हींको लेकर प्रमत्त रहती थीं। जबसे ब्रह्माजीके द्वारा बछड़ों और ग्वालबालोंको चुरानेपर कृष्ण स्वयं ही गोपबालक और बछड़े बन गये, तबसे वात्सल्यप्रेममयी माताएँ अपने-अपने पुत्रोंके रूपमें विराजमान कृष्णको अधिक प्रीति करने लगीं। अतएव देखा जाता है कि एकमात्र श्रीकृष्ण ही उनके प्रेमके विषय हैं। श्रीकृष्ण चाहे जिस किसी भी रूपमें उनके निकट क्यों न आयें, उसी रूपमें वे उनकी प्रीतिको आकर्षण करते हैं।

व्रजवासियोंकी ऐसी परम आश्चर्यजनक प्रीतिका कारण न जान पानेके कारण ही परीक्षित् महाराजने श्रीशुकदेव गोस्वामीसे पूछा कि—हे ब्रह्मन्! व्रजवासी गोप-गोपियाँ यशोदानन्दनको अपने पुत्रोंसे भी बढ़कर प्रेम क्यों करते हैं? कृपापूर्वक मुझे इसका रहस्य बतलाइये। महाराज परीक्षित्के इस प्रश्नको सुनकर श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे महाराज! जीवमात्रमें ही प्रीति है एवं उस प्रीतिकी स्वाभाविक गति एकमात्र श्रीकृष्णकी ओर ही है। जिनका प्रेम श्रीकृष्णके प्रति नहीं है, उनका प्रेम दूसरे लोगोंकी ओर चला जाता है, जिससे उनका प्रेम सार्थक नहीं होता है। जगत्में देखा जाता है कि जलकी स्वाभाविक गति समुद्रकी ओर ही होती है। जल कहीं भी क्यों न गिरे, समुद्रकी ओर ही प्रवाहित होता रहता है। परन्तु समुद्र न मिलनेपर किसी गड्ढेमें गिरकर कुछ ही दिनोंमें धूपसे सूख जाता है। उसी प्रकार जीवका प्रेम भी स्वाभाविक रूपसे श्रीकृष्णकी ओर ही धावित होता है, किन्तु श्रीकृष्णको न पाकर देह-दैहिकादि अनित्य वस्तुओंमें ही वह प्रेम आबद्ध हो जाता है और विविध प्रकारके शोक-मोह आदिके तापसे वह प्रेम सूख जाता है।

विशेष रूपसे विचार करनेपर यह समझा जा सकता है कि सभी अपनी-अपनी आत्मासे ही प्रेम करते हैं। 'मैं' कहनेसे जिसका अनुभव सबको होता है, उसीका नाम आत्मा है। यही आत्मा जितना प्रीतिका विषय है, उतना दूसरा कुछ भी किसीकी प्रीतिका विषय नहीं

है। सभी अपने स्त्री, पुत्र, विषय आदिको प्रीति करते हैं; परन्तु विचार करनेपर देखा जाता है कि आत्माके सुखके लिए ही स्त्री, पुत्र आदि सबके प्रिय होते हैं। आत्मसुखके बिना स्वतन्त्र रूपसे किसीका भी स्त्री, पुरुष आदिके प्रति प्रेम नहीं रहता है।

*"न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति"*—इस श्रुतिके वचनसे यह स्पष्ट रूपसे जाना जाता है कि हम अपने सुखके लिए ही सभीको प्रीति करते हैं, नहीं तो, आत्मसुखका सम्बन्ध न रहनेपर कोई किसीको प्रीति नहीं कर सकता। संसारमें बहुत-से दयालु व्यक्ति देखे जाते हैं, जिन्होंने परोपकार करनेमें अपना जीवन सर्मपण कर दिया है, परन्तु यदि उन्हें इससे तृप्ति नहीं मिलती, तो वे कदापि ऐसा नहीं करते। पिता-माता कितना कष्ट सहकर सन्तानका पालन करते हैं, किन्तु यदि इससे उन्हें आत्मतृप्ति नहीं मिले, तो वे कभी भी उन लालन-पालनके कष्टोंको स्वीकार नहीं करेंगे। अतएव आत्मा ही जीवको परमप्रिय है एवं आत्मसुखके लिए स्त्री-पुत्र आदि सबको प्रिय होते हैं।

जो व्यक्ति मूढ़ताके कारण शरीरको ही आत्मा समझता है, उसे अपना शरीर जैसा प्रिय होता है, वैसा दूसरा कुछ भी प्रिय नहीं होता। प्रायः ऐसा देखा भी जाता है कि घरमें आग लग जाये, तो अपनी रक्षा करनेके लिए लोग स्त्री, पुत्र, धन आदि सबकुछ छोड़कर जलते हुए घरसे निकलकर भाग जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आत्मा ही सबको अधिक प्रिय है। मायाबद्ध जीवोंको इसका ज्ञान नहीं होता कि जड़-देह आदिसे अतीत शुद्ध सच्चिदानन्द-स्वरूप ही आत्मा है। इसलिए वे परिदृश्यमान जड़-देहको ही आत्मा समझते हैं और उससे ही प्रीति करते हैं। उनकी ऐसी आत्म-भ्रान्ति रहनेपर भी वे आत्मज्ञानसे रहित नहीं हैं, क्योंकि 'मैं' के रूपमें एक वस्तुकी धारणा सभीको है। शास्त्र-श्रवण और साधन-अनुष्ठानके द्वारा जीव जब आत्माके विषयमें विचार करनेमें समर्थ होते हैं, तब वे समझ पाते हैं कि यह परिदृश्यमान जड़-देह आत्मा नहीं है।

जड़-देह यदि आत्मा होती, तो भयङ्कर व्याधिके कारण पीड़ित होनेपर व्यक्तिकी रोगग्रस्त देहको त्यागकर शान्ति प्राप्त करनेकी इच्छा

नहीं होती। अतएव आत्म-विचारमें प्रवृत्त और समर्थ होनेपर सभी समझ जायेंगे कि जड़-देहसे अतीत शुद्ध सच्चिदानन्द वस्तु ही आत्मा है एवं वही सबका निरुपाधिक प्रेमास्पद है। इस आत्माका सम्बन्ध होनेके कारण ही देह, धन, पुत्र, परिजन आदि आत्मीयके रूपमें सबके प्रीतिके पात्र होते हैं।

परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामीने इस प्रकार विविध प्रकारकी युक्तियोंके द्वारा महाराज परीक्षित्‌को समझाया कि यथार्थ रूपमें आत्मा ही सबकी प्रीतिका एकमात्र विषय है। जिन्हें इस शुद्ध सच्चिदानन्द-स्वरूप आत्माका ज्ञान प्राप्त होता है, वे समझ सकते हैं कि भगवान् आत्माके भी आत्मा हैं। जिस प्रकार सूर्य ही सूर्यकी किरणोंका मूल-स्वरूप है; जैसे समुद्र ही लहरियों, बुलबुलों आदिका मूल-स्वरूप है, वैसे ही श्रीभगवान् भी सभी आत्माओंके मूल-स्वरूप हैं।

*"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः"* गीताके इस वचनमें श्रीभगवान्‌ने अर्जुनसे कहा—"हे अर्जुन! जगत्‌में जितने जीव हैं, वे सभी मेरे ही सनातन अंश हैं।" अतएव जिनके अंश-स्वरूप जीवात्मा ही जीवोंको इतने प्रिय हैं, तब सर्वमूल-स्वरूप परमात्मा जीवके परम प्रियतम होंगे, इसमें क्या सन्देह है?

समस्त आत्माओंके आत्मा एवं परम आकर्षक परमानन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण अपने प्रेमवान भक्तोंके प्रेमसे आकर्षित होकर ही जगत्‌में अवतीर्ण होते हैं एवं उनके प्रेमके अनुरूप लीलाएँ करते हुए जगत्-जीवोंको कृतार्थ करते हैं। यद्यपि उनका प्राकृत देहसे कोई सम्बन्ध नहीं होता, फिर भी वे साधारण लोगोंकी दृष्टिमें देहधारी जीवकी भाँति प्रतीत होते हैं।

*"देह देहिर्विभागोऽत्र नेश्वरे विद्यते क्वचित्"*—वराहपुराणके इस वचनसे जाना जाता है कि जिस प्रकार जीवके देह और आत्मामें भेद होता है, भगवान्‌के श्रीविग्रह और उनकी आत्मामें वैसा भेद नहीं होता।

*"ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्"*—गीताके इस वचनमें भी श्रीभगवान्‌ने अर्जुनसे कहा—"मैं सर्वव्यापी ब्रह्मकी प्रतिष्ठा अर्थात् घनीभूत ब्रह्म-स्वरूप

श्रीविग्रह हूँ।" जगत्के जीवोंको कृतार्थ करनेके लिए यही घनीभूत ब्रह्म-स्वरूप सच्चिदानन्द-स्वरूप स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण जगत्में अवतीर्ण होकर समस्त जीवोंके दृष्टिगोचर होकर विविध प्रकारकी मधुर लीलाएँ करते हैं। किन्तु मायामुग्ध दृष्टिसम्पन्न बहिर्मुख जीव उनकी अयाचित कृपाको ग्रहण नहीं कर पाते या उन्हें सभी आत्माओंके आत्मा और सबका मूल-स्वरूप नहीं समझ पाते हैं। *"नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः"*—गीताके इस वचनसे जाना जाता है कि श्रीभगवान्के जगत्में अवतीर्ण होनेपर भी उनके अपनी योगमाया शक्तिके द्वारा आवृत होनेके कारण बहिर्मुख जीव उन्हें जान नहीं पाते हैं। किन्तु सच्चिदानन्द-विग्रह श्रीभगवान्के साथ जिनका प्रेम-सम्बन्ध है, उनके प्रेम एवं भगवान्के सच्चिदानन्द-स्वरूपके मिलनेपर एक अभिनव लीला-माधुर्यका प्रकाश होता है। व्रजके गो-गोपियोंके प्रेमके साथ मिलकर स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णका विविध प्रकारका लीला-माधुर्य प्रकाशित होता है। इसीलिए अखिल ब्रह्माण्ड-पालक श्रीभगवान् ग्वालबालके रूपमें व्रजमें मधुर लीलाएँ करते हैं।

जो श्रीकृष्ण-लीलाके अपार माधुर्य-सिन्धुमें अवगाहन करनेमें समर्थ नहीं हैं, वे भी यदि श्रीकृष्णकी अघ, बक, पूतना, केशी, धेनुक आदि असुरोंकी संसार-मोचन लीलाओंका चिन्तन करते हुए उनके चरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करते हैं, तो वे भी अनायास ही संसार-सिन्धुसे पार हो जाते हैं। पुराण, इतिहास आदिमें ध्रुव, प्रह्लाद, नारदादिके चरित्रमें देखा जाता है कि वे सभी एकमात्र श्रीकृष्णके चरणोंका आश्रय ग्रहण करके ही धन्य और कृतार्थ हुए हैं। अतएव श्रीकृष्णके चरणकमल ही एकमात्र महत्-पद हैं। सर्पविषकी भयङ्कर ज्वालासे पीड़ित व्यक्ति जैसे महौषधिका सेवनकर विषकी ज्वालासे मुक्त होता है, वैसे ही संसाररूपी सर्प-विषकी ज्वालासे पीड़ित व्यक्ति भी श्रीकृष्णके चरणकमलोंके स्पर्शसे चिरशान्ति प्राप्त करता है। विविध प्रकारके दुःख-दैन्य आदि तरङ्गोंसे परिपूर्ण भवजलधिको पार करनेकी यदि किसीकी इच्छा हो, तो श्रीकृष्णके चरणकमलरूपी नौकाका आश्रय ग्रहण करना ही उसका एकमात्र कर्त्तव्य है। इस नौकाका आश्रय ग्रहण करनेपर भवसिन्धु बछड़ेके खुरसे बने हुए क्षुद्र

गड्ढेके समान बन जाता है, अतएव उसे पार करनेमें लेशमात्र भी कष्ट नहीं होता है। जो श्रीकृष्णके चरणकमलरूपी नौकाका आश्रयकर भवसिन्धुके पार चले जाते हैं, वे नित्यकालके लिए परमपद गोलोक, वैकुण्ठ आदिमें वास करते हैं—उन्हें फिरसे जगत्में लौटकर नहीं आना पड़ता है।

इस प्रकार श्रीकृष्णके चरणाश्रयकी महिमाका कीर्त्तन करते हुए श्रीशुकदेव गोस्वामीने महाराज परीक्षित्को कहा—हे महाराज! पञ्चम वर्षकी आयुमें श्रीकृष्णके द्वारा की गयी अघासुर-वध लीलाको गोपबालकोंने श्रीकृष्णके छह वर्षकी आयुमें होनेवाली लीलाके रूपमें व्रजमें क्यों प्रकाश किया? इस प्रकार आपने जो प्रश्न किया था, उसके उत्तरमें मुझे जो कुछ कहना था, वह मैंने आपके समक्ष व्यक्त कर दिया। श्रीकृष्णने जिस दिन अघासुरका वध किया, उसी दिन ब्रह्माने गोपबालकों और गोवत्सोंको मायामुग्धकर स्थानान्तरित किया था। उसके पश्चात् श्रीकृष्णने स्वयं ही अनन्त गोपबालकों और गोवत्सोंका रूप धारणकर एक वर्ष तक व्रजमें गोपियों एवं गायोंके वात्सल्यप्रेमका आस्वादन करते हुए उनकी मनोवासनाओंको पूर्ण किया। उसके पश्चात् एक वर्ष बीत जानेपर अपने नित्य परिकर गोपबालकों और बछड़ोंको लेकर व्रजमें प्रवेश किया।

श्रीकृष्णकी मायासे मुग्ध होनेके कारण गोपबालक और बछड़े इस एक वर्षकी लीलासे बिलकुल भी अवगत नहीं थे। इसलिए जिस दिन वे श्रीकृष्णकी मायासे मुक्त होकर श्रीकृष्णके साथ व्रजमें लौटे, उसी दिन व्रजमें जाकर कहने लगे कि आज हमारे सखा श्रीकृष्णने एक विशाल अजगरको मारकर हम सबकी रक्षा की।

इस प्रकार श्रीशुकदेव गोस्वामीने महाराज परीक्षित्के प्रश्नके उत्तरमें ब्रह्ममोहन-लीलाका वर्णनकर अन्तमें कहा कि ब्रह्माने नन्दनन्दनके चरणोंमें गिरकर विविध प्रकारसे दैन्य विज्ञापन आदिके द्वारा विविध प्रार्थनाएँ कीं, किन्तु नन्दनन्दनने ब्रह्माकी प्रार्थना सुनी या नहीं, उनकी किसी भी भाव-भङ्गिमासे ब्रह्माजीकी समझमें यह नहीं आया। इसका कारण है कि नन्दनन्दनने अन्तमें केवल मौन रहकर ही ब्रह्माको अपने लोकमें जानेकी सम्मति दी, उन्होंने ब्रह्मासे एक भी बात नहीं

की। किन्तु इससे ब्रह्माकी अभिलाषा पूर्ण हुई या नहीं, इसमें सन्देह नहीं होना चाहिये, क्योंकि कल्पवृक्षके निकट कोई भी प्रार्थना करनेपर कल्पवृक्ष स्वाभाविक रूपसे ही प्रार्थियोंकी इच्छाको पूर्ण कर देता है। हमारे नन्दनन्दन भी वाञ्छाकल्पतरु हैं। अतएव उनके चरणोंमें गिरकर ब्रह्माजीने जो कुछ प्रार्थना की है, वह क्या अपूर्ण रह सकती है? नन्दनन्दनके चरणोंमें गिरकर दैन्य-विज्ञापन आदिके द्वारा केवल ब्रह्माजी ही कृतार्थ नहीं हुए, यहाँ तक कि जो लोग इस ब्रह्ममोहन-लीलाका श्रवण-कीर्त्तन आदि करते हैं या करेंगे वे भी कृतार्थ हो जाते हैं और कृतार्थ हो जायेंगे।

श्रीदाम, सुबलादि गोपबालकोंके साथ नन्दनन्दनका वन-वनमें सुखपूर्वक विचरण, अघासुर-मर्दन, यमुना-पुलिनमें भोजन, अनन्त गोपबालकों और बछड़ोंके रूपमें प्रकटन, ब्रह्मा द्वारा की गयी स्तुति आदि श्रीकृष्णकी परम अनिर्वचनीय लीला-कथाओंको जो लोग श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण करते हैं, उनकी समस्त प्रकारकी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। नन्दनन्दनकी इन सभी परम-मधुर लीला-कथाओंके श्रवण-कीर्त्तनादिके द्वारा अति सहज और निश्चित रूपसे मनुष्यमात्र ही कृतार्थ हो जाते हैं। दूसरे किसी साधनसे ऐसा सम्भव नहीं है। जप, योग, ध्यान, ज्ञान, तपस्यादि साधन करनेमें अधिकारका विचार है। सभी मनुष्योंको ये सभी साधन-अनुष्ठान करनेका अधिकार नहीं होता है। किन्तु श्रीकृष्णका भजन करनेमें ब्राह्मण, शुद्र, नर-नारी आदि सभीका ही अधिकार है।

श्रीशुकदेव गोस्वामीने नन्दनन्दनकी वत्सचारण-लीलासे ब्रह्ममोहन-लीला तक वर्णनकर अन्तमें कहा—हे महाराज! इस प्रकार नन्दनन्दन श्रीकृष्णने विविध बाल-लीला-विहारके द्वारा व्रजवासी गोप-गोपियोंके आनन्द-सिन्धुको वर्द्धित करते हुए अपना बाल्यकाल व्यतीत किया। अखिल ब्रह्माण्डपति होकर भी उन्होंने सख्यप्रेमके आधार गोपबालकोंके साथ कितनी मधुर बाल-लीलाएँ कीं, इसकी कोई सीमा नहीं है। कभी-कभी लुकाछिपी खेलते समय वे वन-वनमें स्थान-स्थानपर ढूँढ़कर भी सखाओंको ढूँढ़ नहीं पाते थे, इसलिए वे कभी-कभी हार भी जाते थे। वे सर्वज्ञ-शिरोमणि होकर भी छिपे हुए बालकोंको ढूँढ़

नहीं पाते थे, किन्तु गोपबालक करोड़ों-करोड़ों योगीन्द्र-मुनीन्द्रोंके लिए भी दुर्ज्ञेय उन स्वयं भगवान्‌को अति सहज रूपमें ढूँढ़ लेते थे।

नन्दनन्दन कभी बाललीलाके आवेशमें गोपबालकोंके साथ मिलकर श्रीरामचन्द्रने जैसे हनुमान, सुग्रीव आदि वानर सेनाकी सहायतासे लङ्का जानेके लिए समुद्रमें सेतुबन्धन किया था, वैसे ही यमुना, मानसगङ्गा, काम्यवनमें विमला-कुण्डके सन्निकट जलाशयमें सेतुबन्धनकर रावण-वध आदि लीलाओंका अभिनय करते, कभी बन्दरोंका अनुकरणकर उनकी ही भाँति एक वृक्षकी शाखासे दूसरी शाखापर कूदते फाँदते। इस प्रकार बाल्य-लीलाके आनन्दमें व्रजमें विहार करते हुए उन्होंने बाल्यकाल व्यतीत किया।

श्रीभगवान् मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह आदि विविध मूर्त्तियोंमें आविर्भूत होकर जगत्‌में विविध प्रकारसे लीला करते हुए जगत्‌के जीवोंको कृतार्थ करते हैं, किन्तु उन्होंने इस नन्दनन्दनकी लीलामें जो महामाधुर्य प्रकाश किया, वह दूसरी किसी भी लीलामें सम्भव नहीं है। उनकी व्रजलीलाका सिन्धु अपार और अनन्त है॥४९-६१॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके चौदहवें अध्यायकी
भावप्रकाशिकावृत्ति समाप्त।

# पन्द्रहवें अध्यायकी कथाका सार

इस अध्यायमें गोचारणरत श्रीबलराम-कृष्णके द्वारा धेनुकासुरके वधका, कालियके विषसे गोपबालकोंकी रक्षा तथा तालफल भक्षण आदिका वर्णन है।

पौगण्ड अवस्थामें प्रवेश करनेपर एक दिन बलराम-कृष्ण गोचारण करते हुए एक स्वच्छ सरोवर द्वारा सुशोभित वनमें प्रवेशकर सखाओंके साथ आनन्दपूर्वक वनविहार करने लगे। विहार करते-करते थकानवशतः कभी बलदेवजी सखाओंकी गोदमें सिर रखकर सो जाते तथा कृष्ण अपने बड़े भाईके चरण दबाकर उनकी थकानको दूर करने लगते। कभी कृष्ण स्वयं सखाओंकी गोदमें सिर रखकर सो जाते तथा सखा उनके चरण दबाने लगते। इस प्रकार वे नाना प्रकारकी क्रीड़ाओंमें मत्त रहते थे। उसी समय श्रीदाम, सुबल आदि सखाओंने बलराम-कृष्णको बताया कि गोवर्धन पर्वतके निकट ही अति स्वादिष्ट फलोंसे परिपूर्ण एक तालवन है। गधेका रूप धारणकर एक दुर्दान्त असुर उस वनकी रक्षा करता है। उसके भयसे उस वनके स्वादिष्ट फलोंका आस्वादन कोई नहीं कर पाता है। अतः उसके परिवारके साथ उसका वध करना आवश्यक है। यह सुनकर कृष्ण-बलराम अपने सखाओंकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिए उस वनमें गये। बलदेवजीने एक तालके वृक्षको हिलया तो उस वृक्षसे पके हुए फल गिरने आरम्भ हो गये। फलोंके गिरनेका शब्द सुनकर गधेका रूप धारणकारी धेनुकासुर दौड़ता हुआ वहाँपर आया तथा उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर बलदेवजीपर आक्रमण कर दिया। बलदेवजीने एक ही हाथसे उसके पीछेके दोनों पैर पकड़कर उसे घुमाते हुए तालवृक्षपर पटक दिया, जिससे उसके प्राण निकल गये। तब उसके बन्धु-बान्धव आ पहुँचे तथा उनके द्वारा क्रोधपूर्वक आक्रमण करनेपर कृष्ण-बलरामने एक-एककर सबका वधकर उनके उपद्रवसे उस वनको मुक्त कर दिया। तब सन्ध्याके समय जब कृष्ण

अपने बड़े भाईके साथ व्रजमें पहुँचे, तो रोहिणी तथा यशोदा माताने आकर उन्हें गोदमें लेकर उनका मुख चुम्बन किया। तत्पश्चात् उन्हें भोजन कराकर शय्यापर शयन कराया। एक दिन कृष्ण अपने बड़े भाईको साथ लिये बिना ही सखाओंके साथ यमुनाके तटपर गोचारणके लिए चले गये। वहाँपर गायों तथा बालकोंने प्याससे पीड़ित होकर यमुनाका विषमिश्रित जल पी लिया, जिससे वे सभी मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। तब कृष्णने अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिके द्वारा उन्हें पुनर्जीवित किया। पुनर्जीवन पाकर बालक अत्यन्त विस्मित हो गये तथा कृष्णकी कृपाका स्मरण करने लगे।

# पञ्चदशोऽध्याय

## धेनुकासुरका उद्धार और ग्वालबालकोंकी कालियनागके विषसे रक्षा

**श्रीशुक उवाच—**

**ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे,**
**बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ।**
**गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदै-**
**र्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः॥ १॥**

**अन्वयः**—श्रीशुक उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले—) ततः च पौगण्डवयः श्रितौ (पहलेसे भी अधिक रसको विस्तार करनेवाली षष्ठ वर्षकी आयुके द्वारा सेवित होकर) तौ (राम और कृष्ण दोनों भाई) व्रजे पशुपालसम्मतौ (व्रजमें गायोंके पालनमें नियुक्त) बभूवतुः (हुए) सखिभिः समं (सखाओंके साथ) गाः चारयन्तौ पदैः (गोचारण करते हुए अपने चरणचिह्नोंके द्वारा) वृन्दावनं अतीव पुण्यं चक्रतुः (वृन्दावन भूमिको अतिशय सुशोभित किया)॥ १॥

**अनुवाद**—श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे परीक्षित्! इसके बाद पौगण्ड अवस्था प्राप्त होनेपर अर्थात् बाल्यलीलाकी अपेक्षा अधिक रस प्रकट करनेके योग्य पौगण्ड अवस्थासे सेवित होकर बलराम-कृष्ण दोनों भाई व्रजमें गोपालन कार्यमें नियुक्त हुए। अब वे दोनों अपने सखाओंके साथ गोचारण करते हुए वृन्दावन जाने लगे और अपने ध्वज, वज्रादि चिह्नोंसे युक्त श्रीचरणकमलोंसे वृन्दावनको सुशोभित करने लगे॥ १॥

## सारार्थदर्शिनी टीका

धेनूनां रक्षणं ज्येष्ठस्तुतिः स्वैः सह खेलनम्।
धेनुकस्य वधो रक्षा विषात् पञ्चदशे गवाम्॥

ततः पञ्चमवर्षक्रीडानन्तरं पशूनां पालने सम्मतौ गोपैः सम्मतीभूतौ। तद्दिनं तु पाद्मे कार्तिकमाहात्म्ये दृष्टम्—शुक्लाष्टमी कार्तिके तु स्मृता गोपाष्टमी बुधैः तद्दिनाद्वासुदेवोऽभूद्गोपः पूर्वन्तु वत्सपः॥ इति॥ पदैः पदचिह्नैर्ध्वजादिभिः। पुण्यं चारु अतीवेति पूर्वमूनविंशतिचिह्नानां चरणयोर्लघुत्वाद्रेखानामतिसूक्ष्मत्वेनास्पष्टीभावात्॥ १॥

**भावानुवाद**—इस पन्द्रहवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा गोचारण, अग्रज बलदेवकी स्तुति, सखाओंके साथ क्रीड़ा-कौतुक, धेनुकासुरका वध और कालियके विषसे गायों तथा गोपोंकी रक्षाका विषय वर्णन हुआ है।

ततः—पाँचवे वर्ष तक की क्रीड़ाके पश्चात् (पौगण्ड अर्थात् छठे वर्षकी आयु होनेपर) *'पशुपाल-सम्मतौ'*—श्रीबलराम और कृष्णको व्रजमें गोचारणके लिए श्रीनन्द महाराज आदि गोपोंके द्वारा स्वीकृति मिली। पद्मपुराणके कार्तिक माहात्म्यमें उस दिनका इस प्रकार निर्णय किया गया है—"कार्त्तिक मासकी शुक्ला अष्टमी तिथि", जिसे विज्ञजन गोपाष्टमी कहते हैं, उस दिनसे श्रीकृष्ण गौओंको चराने लगे। इससे पहले वे बछड़ोंको चराते थे। *'पदैः'*—अपने श्रीचरणकमलोंमें स्थित ध्वज, वज्र आदि चिह्नोंसे श्रीवृन्दावनकी वनभूमिको अतिशय रूपमें सुशोभित करने लगे। पहले उनके उन्नीस चिह्नयुक्त चरणयुगल छोटे होनेके कारण उनके चरणचिह्न अति सूक्ष्म रूपमें अस्पष्ट थे, परन्तु अब बहुत ही स्पष्ट देखे जाने लगे॥ १॥

**तन्माधवो वेणुमुदीरयन् वृतो,**
**गोपैर्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः।**
**पशून् पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद्-**
**विहर्त्तुकामः कुसुमाकरं वनम्॥ २॥**

**अन्वयः**—तत् (इसके पश्चात्) स्वयशः गृणद्भिः (अपनी कीर्त्तिका कीर्त्तन करनेवाले) गोपैः वृतः बलान्वितः (गोपोंके द्वारा परिवेष्टित तथा बलरामके साथ) माधवः वेणुं उदीरयन् (माधवने वेणु बजाते

हुए) पशून् पुरस्कृत्य (गायोंको आगे करके) विहर्त्तुकामः (विहार करनेकी इच्छासे) पशव्यं (पशुओंके हितकारी) कुसुमाकरं (विविध पुष्प-विभूषित) वनं (वृन्दावनमें) आविशत् (प्रवेश किया)॥ २॥

**अनुवाद**—तत्पश्चात् श्रीकृष्णने अपनी कीर्त्तिका गान करनेवाले सखाओंसे घिरकर बलदेवजीके साथ वेणुवादन करते हुए गौओंको आगे करके विहारकी कामनासे पशुओंके हितकर एवं विविध पुष्पोंसे सुशोभित वृन्दावनमें प्रवेश किया॥ २॥

**सारार्थदर्शिनी**—तद्वनं पशव्यं पशुभ्यो हितम् आसमन्तादविशत् माधव इति श्लेषेण वसन्त इव तदुल्लासकः॥ २॥

**भावानुवाद**—*'तन्माधवः'*—भगवान् श्रीमाधवने श्रीबलदेवके साथ और अपने यशको गानेवाले ग्वालबाल सखाओंसे घिरकर पशुओंके हितकर वृन्दावनमें प्रवेश किया। माधव कहनेसे श्लेष अर्थमें वसन्त ऋतुकी भाँति वनभूमिको उल्लसित करनेवाले माधव अर्थात् श्रीकृष्ण॥ २॥

**तन्मञ्जुघोषालिमृगद्विजाकुलं,**
**महन्मनःप्रख्यपयःसरस्वता ।**
**वातेन जुष्टं शतपत्रगन्धिना,**
**निरीक्ष्य रन्तुं भगवान् मनो दधे॥ ३॥**

**अन्वयः**—भगवान् मञ्जुघोषालिमृगद्विजाकुलं (मधुर ध्वनिको प्रकाश करनेवाले भ्रमरों एवं पशु-पक्षियोंसे परिवेष्टित) महन्मनः प्रख्यपयः सरस्वता (महत्-पुरुषोंके हृदयकी भाँति स्वच्छ जलपूर्ण सरोवरों एवं) शतपत्र गन्धिना (सरोवरस्थित कमलकी सुगन्धवाही) वातेन जुष्टं (वायुके द्वारा सेवित) तत् (उस वनको) निरीक्ष्य रन्तुं (देखकर विहार करनेकी) मनः दधे (मनमें अभिलाषा प्रकट की)॥ ३॥

**अनुवाद**—भगवान्ने मधुर ध्वनि करनेवाले भ्रमरों एवं पशु-पक्षियोंसे परिपूर्ण महत्-जनोंके हृदयके समान अत्यन्त पावन जलमय सरोवरोंसे युक्त तथा सरोवरोंमें विकसित कमलोंकी सौरभसे सुवासित शीतल वायुसे सेवित वनको देखकर उसमें विहार करनेकी अभिलाषा की॥ ३॥

**सारार्थदर्शिनी**—तत्पञ्चेन्द्रियाह्लादकं वनं निरीक्ष्य मञ्जुघोषा अलयो मृगा द्विजाः पक्षिणश्च तैर्व्याप्तमिति विविधेन स्वौस्वर्येण श्रोत्रस्य वातेन जुष्टं सेवितमिति व्यञ्जितेन मान्द्येन महतां मनःप्रख्यं मनःसदृशं शीतलमधुरस्वच्छं पयो यत्र तत्सराश्रयत्वेनास्ति यस्य तेनेति शैत्येन च त्वगिन्द्रियस्य माधुर्येण रसनायाः, शतपत्रगन्धिनेति सौरभ्येण नासायाः, शतपत्रस्यसौन्दर्येण नेत्रस्याप्याह्लादकम्॥ ३॥

**भावानुवाद**—*'तत् निरीक्ष्य'*—पाँचों इन्द्रियोंके लिए परम आनन्दप्रद उस वृन्दावनका दर्शनकर भगवान् श्रीकृष्णकी वहाँ क्रीड़ा करनेकी इच्छा हुई। पञ्च इन्द्रियोंके लिए वृन्दावनभूमि कैसे आनन्ददायक है, इसे यहाँ दिखा रहे हैं—*'मञ्जुघोषालि-मृग-द्विजाकुलम्'*,—सुमधुर ध्वनि करनेवाले भ्रमरों एवं सुमधुर कलरव करनेवाले पक्षियोंके द्वारा परिव्याप्त होनेके कारण विविध प्रकारके सुस्वरोंके द्वारा वह कर्णेन्द्रियोंके लिए आनन्द-वर्द्धनकारी है। *'वातेन जुष्टम्'*—मृदु मन्दवायुके द्वारा सेवित होनेके कारण वह वन स्पर्श-इन्द्रियको उल्लसित करनेवाला है। *'महन्मनः प्रख्यपयः सरसता'* अर्थात् वह वन महत्-पुरुषोंके पवित्र मनकी भाँति स्वच्छ-निर्मल जलसे परिपूर्ण सरोवरोंके संस्पर्शसे सुशीतल है एवं उन सरोवरोंमें स्थित कमल पुष्पोंके सौरभवाही सुगन्धित पवनके द्वारा परिसेवित है। यहाँ शीतलताके द्वारा त्वचा इन्द्रियका, माधुर्यके द्वारा रसनाका, पद्मगन्धके सौरभसे नासिकाका एवं कमल-पुष्पोंके सौन्दर्यके द्वारा नेत्रेन्द्रियोंका आनन्ददायकत्व वर्णन हुआ है॥ ३॥

**स तत्र तत्रारुणपल्लवश्रिया,**
**फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः।**
**स्पृशच्छिखान् वीक्ष्य वनस्पतीन् मुदा,**
**स्मयन्निवाहाग्रजमादिपुरुषः ॥ ४॥**

**अन्वयः**—सः आदिपुरुषः (उन आदिपुरुष भगवान्ने) तत्र तत्र (उस वनमें) फल प्रसूनोरुभरेण (फल-पुष्पोंके भारसे) अरुणपल्लवश्रिया (अरुणवर्ण शोभित किशलयकी कान्तिके द्वारा) पादयोः (भगवान्के चरणयुगलको) स्पृशच्छिखान् (शाखाओंके अग्रभागके द्वारा स्पर्श करनेवाले) वनस्पतीन् (वृक्षोंको) वीक्ष्य (देखकर) मुदा (हर्षके साथ) स्मयन् इव (विस्मित होकर) अग्रजं (बलदेवको) आह (कहा)॥ ४॥

**अनुवाद**—आदिपुरुष भगवान्‌ने देखा कि बड़े-बड़े वृक्ष फल और फूलोंसे लदे हुए हैं और उनके भारसे वृक्षोंकी डालियाँ झुककर अपने नवीन कोपलोंकी लालिमासे उनके चरणोंका स्पर्श कर रही हैं, इसलिए श्रीकृष्ण आनन्दसे परिपूर्ण होकर अपने बड़े भाई बलदेवजीसे कुछ मुसकराते हुए कहने लगे॥ ४॥

**सारार्थदर्शिनी**—अरुणपल्लवानां श्रीःशोभा तयो सह अधोमुखत्वेन पादस्पर्शनात् फलानां प्रसूनानां चोरुभरेण पादयोः स्पृशन्त्यः शिखा येषां तान् वनस्पतीन् वृक्षान् विलोक्य स्मयन् स्मयमान इति विवक्षितस्य वनस्पतीनामुत्कर्षस्य पर्यवसानं स्वोत्कर्ष एव स्यात् स्वोत्कर्षस्य च स्वयमुक्त्यनौचित्यात्। मुदेत्यानन्दजनितेन गाम्भीर्याभावेनोक्त्या विना स्थातुमशक्तेश्च रामे सख्यभावोत्थेन स्मितेनानेन स्वमहोत्कर्षारोपस्तत्रैव व्यञ्जितः। अत्रा एवाग्रिमश्लोके आदिपुरुषेति स्वनाम्नाऽपि तस्य सम्बोधनं करिष्यते इवेति मदभिप्रायमिदं मदग्रजो मा बुद्ध्यतामिति स्मितनिन्हुवान्नतु स्मयन्नित्यर्थः। तथा हि—*"श्रीवृन्दावनतद्वासिमाधुर्योल्बणचेतसा। तत्स्तवे हरिणा रब्धे निजोत्कर्षावसायिनम्। तमालोच्य ततो राममपदिश्य व्यधायि सः। अतोऽत्र नैव तात्पर्यं रामोत्कर्षानुवर्णने। सख्यभावात्तदा रामे नर्मणेदमुदीरितम्।"* इति भागवतामृतीया सार्द्धकारिका। आदिपुरुष इति तदनुजत्वेऽपि स्वयं भगवत्त्वात्तदादिः॥ ४॥

**भावानुवाद**—उस वृन्दावनकी शोभाका वर्णन कर रहे हैं। उस वनमें स्थान-स्थानपर अरुणवर्णके नये-नये पल्लवोंके सौन्दर्यसे युक्त वृक्षसमूह फल-फूलोंके भारसे झुककर अपनी-अपनी शाखाओंके अग्रभागके द्वारा श्रीकृष्णके चरणयुगलका स्पर्श कर रहे हैं। यह देखकर आदिपुरुष श्रीकृष्ण आनन्दके साथ मुसकराते हुए बड़े भैया श्रीबलदेवजीसे कहने लगे। यहाँ वृक्षोंका उत्कर्ष वर्णन कर रहे हैं। वृक्षोंका उत्कर्ष वर्णन करनेपर अपना ही उत्कर्ष प्रकाशित होगा, जब कि अपना उत्कर्ष अपने मुखसे नहीं कहना चाहिये। परन्तु 'मुदा'—अर्थात् आनन्दकी अधिकताके कारण गम्भीरताके अभावमें बिना कहे रह नहीं सके। इसलिए सख्य-भावजनित ईषत् हास्यके द्वारा अपना महा-उत्कर्ष बलरामजीमें आरोपकर कहने लगे। यहाँ और आगेके श्लोकोंमें *'आदिपुरुष'* अपने इस नामके उल्लेखमें भी बलदेवजीको ही सम्बोधन करेंगे। *'स्मयन् इव'*—मानो हँसते हुए (मन्द मुस्कानके साथ) *'इव'* अर्थात् मेरे इस अभिप्रायको बलदेवजी न समझें। इसलिए हास्यको छिपा रहे हैं।

जैसा कि लघु भागवतामृतमें वर्णन हुआ है—*"श्रीवृन्दावन-तद्वासि-माधुर्योल्वणचेतसा"* (२३६ कारिका), अर्थात् श्रीवृन्दावन और वहाँके रहनेवाले सुन्दर मृग आदि पशुओं और कोकिल, मयूर आदि पक्षियोंके माधुर्य दर्शनसे अत्यन्त सन्तुष्ट होकर श्रीकृष्णने उनकी प्रशंसा करनेमें प्रवृत्त होनेपर सोचा कि यह तो मेरी अपनी ही प्रशंसा होगी। अपने मुँहसे अपनी प्रशंसा करना अनुचित है, इसलिए श्रीबलरामजीकी प्रशंसाके छलसे ऐसी प्रशंसा करने लगे। अतएव इस श्लोकका तात्पर्य श्रीबलरामका उत्कर्ष वर्णन करना नहीं है, परन्तु बलदेवजीके साथ सख्यभावके कारण ही उस समय परिहास करते हुए श्रीकृष्णने ऐसा कहा। *'आदिपुरुषः'*—बलरामजीसे आयुमें छोटे होनेपर भी स्वयं-भगवान् होनेके कारण उनके भी आदि श्रीकृष्ण ही हैं॥ ४॥

**श्रीभगवानुवाच—**

**अहो अमी देववरामरार्च्चितं,**
**पादाम्बुजं ते सुमनःफलार्हणम्।**
**नमन्त्युपादाय शिखाभिरात्मन-**
**स्तमोऽपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम्॥ ५॥**

**अन्वयः—**श्रीभगवान् उवाच (श्रीभगवान्‌ने कहा) देववर (हे देवश्रेष्ठ!) अहो अमी (ये सभी वृक्षसमुदाय) यत्कृतं (जिस अज्ञानके द्वारा) आत्मनः तरुजन्म (इन्होंने वृक्षरूपमें जन्म-ग्रहण किया) तमोऽपहत्यै (उस अज्ञानके विनाशके लिए) शिखाभिः (शाखाओंके अग्रभागसे) सुमनः फलार्हणं (फल-पुष्परूप पूजाके उपकरण) उपादाय (ग्रहणकर) अमरार्च्चितं (देवगण-पूज्य) ते (आपके) पादाम्बुजं (चरणकमलोंमें) नमन्ति (नमन कर रहे हैं)॥ ५॥

**अनुवाद—**भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे देव-शिरोमणे! ये समस्त वृक्ष अपनी वृक्ष-योनिके मूलकारण अपने अज्ञानके विनाश एवं आपका दर्शन और यश श्रवण करनेके लिए अपनी-अपनी डालियोंसे पुष्प-फलरूप पूजाकी सामग्री लेकर देवताओंके द्वारा पूजनीय आपके चरणकमलोंमें प्रणत हो रहे हैं। इनका जीवन धन्य है॥ ५॥

**सारार्थदर्शिनी—**स्वीयपुष्पफलादिभिः स्वप्रभोः श्रीकृष्णस्य चरणावर्चयाम इति मनोऽनुलापं युष्माकमहं जानामीति स्वविज्ञत्वं परमभक्तान् श्रीवृन्दावनीयवृक्षान् कटाक्षेण ज्ञापयन्नग्रजमाह—अहो इति। शिखाभिः स्वस्वशिरोभिरुपायनं तत्तदुपादाय पदाम्बुजं नमन्तीति भक्त्याशिरोभिरेव चरणयोस्तत्तदर्पयन्तीत्यर्थः। किमर्थम् आत्मनस्तमसोऽपराधस्यापहत्यै येनापराधेन कृतमुत्पादितं तरुजन्म। हन्ता स्माभिरपराध एव कश्चित् कृतः यत्कृष्णसन्निधिगमनासमर्थमस्माकं तरुजन्म विधात्रा कृतमिति तेषामनुरागोत्थं वचनमेवान्ववोचद्भगवान् वस्तुतस्तु ब्रह्मादिभिरपि प्रार्थ्यमानत्वाद्-वृन्दावनीयतरुजन्म नापराधफलमिति ज्ञेयम्॥ ५॥

**भावानुवाद—**"हमलोग अपने फल-फूल आदिसे अपने प्रभु श्रीकृष्णके चरणयुगलकी पूजा करेंगे"—तुमलोगोंका यह मनोभाव मैं जानता हूँ—ऐसी अपनी सर्वज्ञता दिखलाकर श्रीकृष्ण अपने परमभक्त श्रीवृन्दावनके वृक्षसमुदायके प्रति इङ्गितकर श्रीबलरामजीसे कहने लगे। अहो! ये वृक्षसमुदाय—*'शिखाभिः'*—अपनी-अपनी शाखाओंके अग्रभागमें फल-पुष्प आदि पूजाके उपकरण उपादेयके रूपमें ग्रहणकर आपके चरणकमलोंमें प्रणाम कर रहे हैं, अर्थात् भक्तिपूर्वक मस्तक द्वारा आपके चरणयुगलमें उसे अर्पण कर रहे हैं। किसलिए अर्पण कर रहे हैं? इसपर कहते हैं—*'तमोऽपहत्यै'*—जिस अपराधके कारण इन्होंने वृक्ष-जन्म प्राप्त किया उस अपराधको दूर करनेके लिए अर्पण कर रहे हैं। हाय! हमने ऐसा कौन-सा अपराध किया है, जिससे विधाताने हमें कृष्णके समीप जानेमें असमर्थ वृक्ष-जन्म दिया है। भगवान्ने उनके ऐसे अनुरागजनित वचनोंको ही कहा। परन्तु वास्तवमें ब्रह्मा आदिके भी प्रार्थनीय वृन्दावनीय वृक्ष-जन्म किसी अपराधका फल नहीं है—यही समझना चाहिये॥ ५॥

**एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं,**
**गायन्त आदिपुरुषानुपदं भजन्ते।**
**प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या,**
**गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम्॥ ६॥**

**अन्वयः—**अनघ (हे निष्पाप! हे आदिपुरुष!) एते अलिनः (ये भ्रमर-समुदाय) अखिललोकतीर्थं (सम्पूर्ण लोकोंके पावनकारी) तवः

यशः गायन्तः (आपके यशका गान करते हुए) अनुपदं भजन्ते (आपके पीछे-पीछे चल रहे हैं) अमी (ये) भवदीयमुख्याः (आपके विविध रूपोंके उपासकोंमें सर्व प्रधान) मुनिगणाः प्रायः (मुनिगण ही होंगे) गूढं (दूसरे रूपोंके उपासकोंके लिए भी दुर्लभ) आत्मदैवं (अपने आराध्यदेव आपको) वनेऽपि न जहति (वनमें भी छोड़ नहीं रहे हैं) [आप जिस प्रकार गोपबालकका वेष धारणकर वनमें आये हैं, वैसे ही आपके उपासक ये सभी मुनिगण भी भ्रमरोंके रूपमें आपके अनुगत होकर भ्रमण कर रहे हैं]॥ ६॥

**अनुवाद**—हे अनघ! हे आदिपुरुष! ये भ्रमर सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाले आपके यशका गान करते हुए आपका अनुगमन कर रहे हैं। ये निश्चय ही आपके भक्तोंमें श्रेष्ठ मुनिगण होंगे—मैं ऐसा समझता हूँ। ये अपने आराध्यदेव आपको वनमें भी एक क्षणके लिए नहीं छोड़ना चाहते। आप जिस प्रकार अपना ऐश्वर्य छिपाकर गोपबालकका वेश ग्रहण करके बाललीला करते हुए वनमें आये हैं, उसी प्रकार आपके उपासक ये मुनि भी भ्रमरोंका रूप धारण करके आपका अनुगमन करते हुए यहाँ वनमें आये हैं॥ ६॥

**सारार्थदर्शिनी**—तत्रत्यान् जङ्गमान् स्तौति द्वाभ्याम्। एतेऽलिनो भ्रमराः अनुपथं त्वदङ्गसौरभानुसारित्वात् वने क्वचिद्रहस्यलीलार्थं गूढं सहचराद्यगम्यमपि त्वां न जहति न त्यजन्ति। हे अनघैति तत्र गमनेऽप्येषां त्वघं त्वं न गृह्णासि। तस्मादेते भवदीयमुख्या एव मुनिगणा रहस्यलीलामननशीला भ्रमरी भवन्ति तेन भो भ्रमराः! मदतिरहस्यकुञ्जमपि प्रविश्याधस्मत्सौरभ्यमास्वादयतमासङ्कुचतेति तान् प्रति प्रसादो ध्वनितः॥ ६॥

**भावानुवाद**—अब दो श्लोकोंमें श्रीवृन्दावनके जङ्गम प्राणियोंकी प्रशंसा कर रहे हैं। *'एते अलिनः'*—ये सब भ्रमर आपके अङ्गकी सुगन्ध पाकर मार्गमें आपका पीछा कर रहे हैं। वनमें रहस्यपूर्ण लीलाओंके लिए गुप्त स्थान जो सखाओंके लिए भी अगम्य हैं, वहाँ भी ये आपका पीछा नहीं छोड़ रहे हैं। हे अनघ! इनके वहाँ जानेपर भी आप इनके अपराधको ग्रहण नहीं करते। अतएव ये आपके भक्तश्रेष्ठ मुनिगण आपकी रहस्य-लीलाका मनन करते हुए भ्रमरोंके

रूपमें विचरण कर रहे हैं। अतएव हे भ्रमरो! तुम इस अति रहस्यपूर्ण कुञ्जमें भी प्रवेशकर हमारे अङ्गकी सुगन्ध आदिका निःसङ्कोच रूपसे आस्वादन करो—इस प्रकार उनके प्रति आपका अनुग्रह प्रकाशित हो रहा है। तात्पर्य यह है कि आपके मनुष्यवेशमें निगूढ़ रूपसे छिपे रहनेपर भी आपके भक्त मुनिगण भी भ्रमरके वेशमें गुप्त रूपसे आपकी सेवा कर रहे हैं॥ ६॥

**नृत्यन्त्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः,**
**कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन।**
**सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय,**
**धन्या वनौकस इयान् हि सतां निसर्गः॥ ७॥**

**अन्वयः**—(हे) ईड्य (हे पूज्य) अमी शिखिनः (ये मोर-समुदाय) मुदाः (आनन्दके साथ) नृत्यन्ति (नाच रहे हैं) हरिण्यः गोप्य इव (हरिणियाँ गोपियोंकी भाँति) ईक्षणेन (दृष्टिपातके द्वारा) ते (आपका) प्रियं (प्रीति-विधान कर रही हैं) कुर्वन्ति कोकिलगणाः च सूक्तैः (कोयल-समुदाय मधुर ध्वनिके द्वारा आपका प्रीतिविधान कर रहा है) वनौकसः (ये सभी वनवासी) धन्याः (अति प्रशंसाके पात्र हैं) गृहं आगताय (घरमें आये अतिथियोंकी सन्तुष्टिके लिए) सतां (सज्जनोंका) इयान् हि निसर्गः (ऐसा आचरण स्वभावसिद्ध धर्म है)॥ ७॥

**अनुवाद**—हे पुरुषश्रेष्ठ! आप ही परम स्तवनीय हैं। देखिये! आपके वनमें आगमनसे प्रसन्न होकर मयूर नृत्य कर रहे हैं, हरिणियाँ गोपरमणियोंके समान तिरछी चितवनसे आपके प्रति प्रेम प्रकाश कर रही हैं तथा कोयलें सुमधुर कुहू-कुहूकी ध्वनिसे आपका स्वागत कर रही हैं। ये सभी वनवासी होनेपर भी धन्य हैं, क्योंकि घर आये अतिथिके सन्तोषके लिए इस प्रकारका आचरण करना ही सज्जनोंका स्वभाव है॥ ७॥

**सारार्थदर्शिनी**—ते गृहमागताय त्वां गृहमागतं सम्मानयितुं सूक्तैः प्रियं कुर्वन्तीति पुर्वेणैवान्वयः। इयान् सतां निसर्ग इति नृत्यसहर्षावलोकनप्रिय वचनैर्गृहागतस्य साधोः सम्मान्नमिति सतां स्वाभाविको धर्म इत्यर्थः॥ ७॥

**भावानुवाद**—*'ते गृहमागताय'*—कोयलें आपको अपने घरमें आया देखकर कर्ण-रसायन कल-ध्वनिके द्वारा आपका स्वागत कर रही हैं। *'इयान् हि सतां निसर्गः'*—घरमें आये हुए अतिथिका नृत्य, सहर्ष अवलोकन और प्रियवचनके द्वारा सम्मान करना—यही तो साधुओंका स्वाभाविक धर्म है॥७॥

**धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्-**
**पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः।**
**नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोके-**
**र्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः॥८॥**

**अन्वयः**—अद्य इयं धरणी धन्या त्वत्पादस्पृशः (आपके चरणयुगलका स्पर्श पाकर धरणी) तृणवीरुधः (तृणलता आदि धन्य हो गयी हैं) करजाभिमृष्टाः (आपके नखोंके स्पर्शसे) द्रुमलताः (वृक्षलता आदि धन्य हो गये हैं) सदयावलोकैः (आपके सकरुण कटाक्षपातसे) नद्यः अद्रयः (नदी, पर्वत-समुदाय) खगमृगाः (पशु, पक्षी आदि धन्य हो गये हैं) श्रीः (लक्ष्मीजी भी) यत्स्पृहा (जिसको प्राप्त करनेकी अभिलाषा करती हैं) भुजयोः अन्तरेण (आपके दोनों भुजाओंके बीच वक्षःस्थलको प्राप्तकर) गोप्यः अपि (गोपाङ्गनाएँ भी धन्य हैं)॥८॥

**अनुवाद**—अहो, आज पृथ्वीदेवी आपके श्रीचरणोंका स्पर्श प्राप्तकर अत्यधिक धन्य हो रही हैं तथा तृणादि भी आपके चरणस्पर्शसे धन्य हो रहे हैं। यहाँके वृक्ष, लताएँ और झाड़ियाँ सभी आपकी अङ्गुलियोंके नखोंका स्पर्श प्राप्तकर अपना अहोभाग्य मान रही हैं। नदी, पर्वत एवं पशु-पक्षी आपका सकरुण कटाक्ष प्राप्तकर कृतार्थ हो रहे हैं। श्रीदेवी भी जिस वक्षःस्थलकी प्राप्तिके लिए लालायित रहती हैं, उसी वक्षःस्थलका स्पर्श प्राप्त करके यहाँकी गोपियाँ धन्य हो रही हैं॥८॥

**सारार्थदर्शिनी**—एवं तत्तत्कर्तृकसेवया तान् स्तुत्वा श्रीरामकर्तृकप्रसादेनापि तानेवानुरक्तैरन्यैश्च सहितान् स्तौति—धन्येयं धरणी अद्येत्यवतारगतस्थूलकाल-मालम्ब्योक्तिवाचकेन पदेन त्वत्स्वरूपवराहशेषस्पर्शादपि त्वत्स्पर्शोऽस्या अति सुखद

इति द्योतितम्। कुतो धन्येयमिति चेत् धरणीस्थानां तृणादीनामपि त्वत् सम्पर्कादेवइत्याह—तृणानि च वीरुधश्च तास्त्वत्वादाभ्यां स्पृक् स्पर्शो यासां तथाभूता यतः द्रुमा लताश्च करजैः पुष्पत्रोटनार्थं नखैरभिमृष्टा स्पृष्टाः यतः नद्यादयश्च सकृपावलोकैः। यद्वा, सन् *"अयः शुभावहो विधिः"*, येभ्यस्तथाभूतैरवलोकैः सहिता यतः किञ्चित् सुगन्धशीतलां गोपीपर्यायां शारिवां वल्लीं वक्षसि कौतुकेन ध्रियमाणा विलोक्याह—गोप्यः श्यामवल्लयोऽपि भुजयोरन्तरं वक्षस्तेन सहिता यतः श्रीःशोभापि यस्मै स्पृहयति सा। या वल्लीशोभामपि शोभयतीत्यत एव वक्षसि त्वया ध्रियत इति भावः। पक्षे गोप्यो व्रजसुन्दर्यः यत्स्पृहा यस्मै भुजान्तरा लक्ष्मीरपि स्पृहयति। तथा हि भागवतामृतीयाः कारिकाः—*"सदा वक्षःस्थलस्थापि वैकुण्ठेशितुरिन्दिरा। कृष्णोरः-स्पृहयास्यैव रूपं विवृणुतेऽधिकम्॥ पौराणिकमुपाख्यानमत्र संक्षिप्य लिख्यते। श्रीः प्रेक्ष्य कृष्णसौंदर्यं तत्र लुब्धा ततस्तपः। कुर्वन्तीं प्राह तां कृष्णः किम् ते तपसि कारणं॥ विजिहीर्षे त्वया गोष्ठे गोपीरूपेति साऽब्रवीत्। तद्दुर्लभमिति प्रोक्ता लक्ष्मीस्तं पुनरब्रवीत्। स्वर्णरेखेव ते नाथ! वस्तुमिच्छामि वक्षसि। एवमस्त्विति सा तस्य तद्रूपा वक्षसि स्थिता"* इति॥ ८॥

**भावानुवाद**—इस प्रकार भ्रमर, पशु-पक्षी, तृण-गुल्म-लता आदिकी सेवा परिपाटीको देखकर उनकी प्रशंसा करके, श्रीबलरामजीके द्वारा उनपर किये गये अनुग्रहके द्वारा भी उनकी स्तुति कर रहे हैं—*'धन्येयमद्य धरणी'*—यह धरणी पहलेसे ही आपके विचित्र अवतारोंके श्रीचरणोंको स्पर्श करनेका सौभाग्य पाकर सौभाग्यवती हुई है। विशेषकर आपके स्वरूपभूत श्रीवराह और शेष (अनन्तदेव) के अनुग्रहसे अधिक माहात्म्यको प्राप्त होनेपर भी आज ही आपके श्रीचरणोंके स्पर्शसे यह परम धन्या या परम प्रशंसनीय हुई है। इसके द्वारा श्रीवराह और अनन्तदेवके स्पर्शसे भी (स्वयं-भगवान्) आपके चरणोंका स्पर्श इसके लिए परम सुखदायी है—यह प्रकाशित हुआ है। किस रूपमें यह पृथ्वी धन्य है? इसके उत्तरमें कहते हैं *'तृणवीरुधः'*—श्रीवृन्दावनके अतिक्षुद्र तृण, गुल्म, लता, दूर्वा घास आदि भी आपके चरणकमलोंके स्पर्शसे धन्य हुए हैं। उससे भी अधिक वृक्ष-लता आदि पुष्प-चयनके समयमें आपके नखोंका स्पर्श पानेके कारण धन्य हो रहे हैं। आपके कृपापूर्ण अवलोकनके द्वारा यमुना आदि नदियाँ, गोवर्द्धन आदि पर्वत और मृग आदि पशु, मयूर और कोकिल आदि पक्षी कृतार्थ हो रहे हैं। अथवा—*'सदय'* कहनेसे 'अय'—शब्द शुभकारी

है, जिनके लिए आपका अवलोकन शुभसूचक है, ऐसे अवलोकनके द्वारा आप उनपर अनुग्रह करते हैं। फिर कुछ सुगन्ध-शीतला गोपी-नामक श्यामलताको कौतूकवशतः वक्षःस्थलमें धारण करते हुए देखकर कह रहे हैं—*'गोप्यः'*—श्यामलता भी आपकी दोनों भुजाओंके बीच उस वक्षःस्थलके आलिङ्गनकी अभिलाषा करती है, जिसकी अभिलाषा *'श्रीः'*—लक्ष्मी भी करती है। यह वल्ली शोभाको भी सुशोभित करती है, इसलिए इसे आप वक्षःस्थलपर धारण कर रहे हैं—यह भाव है।

दूसरे पक्षमें—*'गोप्यः'*—व्रजसुन्दरियाँ एवं स्वयं लक्ष्मीदेवी भी जिस वक्षःस्थलके आलिङ्गनकी स्पृहा करती हैं। (अर्थात् स्वयं लक्ष्मी जिस वक्षःस्थलको आलिङ्गन करनेकी इच्छा करती हैं, उस आलिङ्गनको प्राप्तकर गोपी अर्थात् श्यामलताएँ भी परम धन्या हुई हैं।) जैसे कि लघुभागवतामृतमें कहा है—*"सदा वक्षःस्थलस्यापि"*—(२३६ अङ्क धृत कारिका) अर्थात् आपकी भुजाओंके मध्य वक्षःस्थलके आलिङ्गनसे व्रजाङ्गनाएँ धन्य हो गयी हैं। यत्स्पृहा—जिस वक्षःस्थलकी अभिलाषा लक्ष्मीदेवी भी करती तो हैं, किन्तु उसे पानेकी उनकी योग्यता नहीं है। लक्ष्मीदेवी सर्वदा वैकुण्ठनाथ नारायणकी वक्षःविलासिनी होकर भी श्रीकृष्णके वक्षःस्थलकी अभिलाषा करती हैं। उनके पति परव्योम-अधिपति नारायण-स्वरूपकी अपेक्षा श्रीकृष्णका सौन्दर्य और माधुर्य आदि अधिक है। इस विषयमें एक पौराणिक उपाख्यान है—किसी समय लक्ष्मीदेवी श्रीकृष्णका सौन्दर्य देखकर मोहित हो गयीं और उन्हें पानेके लिए कठोर तपस्या करने लगीं। श्रीकृष्णने उनसे पूछा—"देवि! तुम किसलिए तपस्या कर रही हो?" लक्ष्मीजीने कहा—"मैं गोपीरूप धारणकर आपके साथ वृन्दावनमें विहार करूँ—ऐसी मेरी अभिलाषा है।" श्रीकृष्णने कहा—"यह अत्यन्त दुर्लभ है", तब लक्ष्मीजी फिर बोलीं—"हे नाथ! मैं स्वर्ण रेखाके रूपमें आपके वक्षःस्थलमें निवास करना चाहती हूँ" तब श्रीकृष्णने कहा कि ऐसा ही हो। तबसे लक्ष्मीदेवी स्वर्ण रेखाके रूपमें श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर निवास करने लगीं॥ ८॥

**श्रीशुक उवाच—**

**एवं वृन्दावनं श्रीमत्कृष्णः प्रीतमनाः पशून्।**
**रेमे सञ्चारयन्नद्रेः सरिद्रोधःसु सानुगः॥ ९॥**

**अन्वयः**—श्रीशुकः उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले) प्रीतमनाः (अतिशय प्रसन्नचित्त श्रीकृष्ण) एवं श्रीमत् (इस प्रकार शोभायुक्त) वृन्दावनं (वृन्दावनधामके प्रति) प्रीतः (प्रसन्न होकर) सानुगः (अनुचरोंके साथ) पशून् सञ्चारयन् अद्रेः सरिद्रोधःसु (पर्वतके समीप स्थित नदियोंके तटपर) रेमे (विहार करने लगे)॥ ९॥

**अनुवाद**—श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! इस प्रकार श्रीकृष्ण परम सुन्दर वृन्दावनका अवलोकन करके बहुत आनन्दित हुए और प्रसन्नचित्तसे गोवर्द्धनकी तलहटीमें और यमुना नदीके तटपर अपने सखाओंके साथ गो-चारण करते हुए अनेक प्रकारसे लीला-विहार करने लगे॥ ९॥

**सारार्थदर्शिनी**—एवमिति स्पष्टम्। यद्वा, इत्थमग्रजं परितोष्य गोप्योऽन्तरेण भुजयोरिति निजोक्त्यैवोद्दीप्तकन्दर्पस्तत्सङ्ग एव गाः सखींश्च नियुज्य भोः श्रोमदार्य! क्षणमहमत्र सुबलेन सार्द्धं गोवर्द्धनकन्दरारोधसि विश्रम्यागन्तास्मि त्वमग्रे कालिन्दीरोधसुः तावद्विहरे त्युक्त्वा ततो वियुज्य पौगण्डेऽपि केशोराविर्भावाद्रहसि व्रजबालाभिः सार्द्धं रेमे इत्याह—एवमग्रजं स्तुत्या तद्द्वारैव पशून् वृन्दावनं सञ्चारयन् अद्रेः सरितो मानसगङ्गाया रोधःसु रेमे इत्यन्वयः। श्रीमती व्रजयोषिन्मुख्या सैव प्रीता प्रेमवती यस्मिन् सः। कुलाल कर्तृको घट इतिवत् प्रीतेत्यस्य विशेषत्वविवक्षया परनिपातः। अतएव प्रीतमनाः अनुगाभिः सखीभिः सहितः व्याख्यानस्यास्य रहस्यत्वादेतस्यावरकं रत्नस्य कनकसम्पुटमिव व्याख्यान्तरमवतारिकां विनैवास्ति तद्यथा श्रीमन्तो बलदेवाद्याः प्रीता यस्मिन् सः। सानुगः अनुगैः सहितः। अन्यत् समानम्॥ ९॥

**भावानुवाद**—*'एवम्'*—इत्यादिका अर्थ स्पष्ट है। अथवा—इस प्रकार बड़े भैयाको सन्तुष्टकर, *'गोप्योऽन्तरेण भुजयोः'* गोपबालाएँ जिनके भुजयुगलके मध्यवर्त्ती वक्षःस्थलके आलिङ्गनकी अभिलाषा करती हैं—ऐसे अपने वचनोंसे गूढ़ रूपमें अपनेको कामदेवसे भी अधिक सौन्दर्ययुक्त बता रहे हैं। गायों और सखाओंको बलदेवजीके पास छोड़कर यह कहते हुए चले गये—"हे आर्य! मैं क्षणकाल

सुबलके साथ गोवर्द्धनकी कन्दरामें या तलहटीमें विश्राम करके आता हूँ, आप भी तब तक कालिन्दीके तटपर विहार करें।" यह कहकर उनसे पृथक् होकर पौगण्ड-कालमें भी कैशोरका आविर्भाव होनेके कारण श्रीकृष्ण व्रजबालाओंके साथ निर्ज्जनमें विहार करते थे। इसीका *'एवम्'* इत्यादि पदों द्वारा वर्णन कर रहे हैं—इस प्रकार बड़े भैयाकी स्तुति करके और उन्हींके द्वारा गायोंको वृन्दावनमें विचरणके लिए भेजकर स्वयं गोवर्द्धन पर्वतके निकट मानसी गङ्गाके तटपर क्रीड़ा करने लगे। वे कैसे हैं? इसके लिए कह रहे हैं—*'श्रीमत् प्रीतमनाः'* व्रजाङ्गनाओंमें जो मुख्या—सर्वश्रेष्ठा हैं, ऐसी राधिका जिनके प्रति प्रेमवती हैं। यहाँ "कुम्हारके द्वारा घट"—ऐसे प्रयोगकी भाँति 'प्रीत' शब्दकी विशेषता कहनेके लिए परनिपात हुआ है। अतएव अनुगत सखियोंके साथ *'प्रीतमनाः'*—रत्न जैसे सोनेके सम्पुटमें रहता है, वैसे ही यहाँ रहस्यपूर्ण आवरण करके कहा गया है। और बिना आवरणकी अन्य व्याख्या है, जैसे—श्रीयुक्त बलदेवजी आदि जिनके प्रति अत्यन्त प्रीतियुक्त हैं, ऐसे श्रीकृष्ण अपने अनुगतजनोंके साथ वनमें विहार करने लगे॥ ९॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति—**परमहंस-चूड़ामणि श्रीशुकदेव गोस्वामी परीक्षित् महाराजके समक्ष श्रीकृष्णकी परम-मधुर बाललीला वर्णनकर कहने लगे—हे महाराज! नराकृति परब्रह्म, स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने गोकुलमें अवतीर्ण होकर वात्सल्यप्रेममय गोप-गोपियोंके वात्सल्यप्रेममें लालित, पालित और बड़े होकर बाल्यकालमें विविध प्रकारसे बाल-चपलता प्रकाशितकर उनका आनन्दवर्द्धन किया। तदनन्तर कुछ और बड़े होनेपर श्रीदाम-सुबलादि गोपबालकोंके साथ मिलकर उनके सख्यप्रेममें मुग्ध होकर हास-परिहास, नृत्य-गीत, कूदना-फाँदना, माखनचोरी आदि बालसुलभ आमोद-प्रमोद आदि किया और वत्सचारण प्रसङ्गमें वनगमन, लुकाछिपी, सेतुबन्धन, बन्दरोंके साथ खेल और गेंद-क्रीड़ा आदि विविध प्रकारकी बाललीलाओंके द्वारा अपने सखाओंको आनन्दित किया।

अखिल ब्रह्माण्ड-पालक श्रीकृष्णने बालकके रूपमें लीला करते-करते ही पूतना-मोक्ष, शकट-भञ्जन, तृणावर्तवध, बकासुर,

वत्सासुर, अघासुर आदिका विनाश और ब्रह्म-मोहन आदि अनेकानेक आश्चर्यमयी लीलाएँ की। व्रजलीलामें उन्होंने जैसा परिपूर्ण ऐश्वर्य और माधुर्य प्रकाशितकर लीलाएँ की हैं, वैसी लीलाएँ उन्होंने अपने किसी भी दूसरे श्रीराम आदि स्वरूपोंमें नहीं की।

इस प्रकार अनगिनत विचित्र लीलारसमें व्रजवासियोंके प्रेमसिन्धुको तरङ्गायित और उच्छलितकर नन्दनन्दनने अपना परम मधुर बाल्यकाल व्यतीतकर पौगण्ड-आयुमें पदार्पण किया।

*कौमारं पञ्चमाब्दान्तं पौगण्डं दशमावधि।*
*अषोडशात्तु कैशोरं यौवनन्तु ततः परं॥*

इस शास्त्र-वचनसे जाना जाता है कि पञ्चम वर्ष तक कौमार अर्थात् बाल्यकाल, दशम वर्ष तक पौगण्ड, सोलह वर्ष तक कैशोर एवं उसके पश्चात् यौवनकाल होता है।

श्रीकृष्णने चतुर्थ वर्ष पारकर जब पञ्चम वर्षमें प्रवेश किया, उस समय उन्होंने अघासुर-मोक्ष-लीला की। उसके पश्चात् ब्रह्माजी द्वारा उनके सखाओं और बछड़ोंका हरण करनेपर अनन्त गोवत्सों और गोपबालकोंका रूप धारणकर एक वर्ष तक व्रजवासी गौओं एवं गोपियोंके वात्सल्यप्रेम-रसका आस्वादन किया। उसमें उनका पञ्चम वर्ष बीत गया। उसके पश्चात् छह वर्षकी आयुमें ब्रह्माजीको अपना अद्भुत ऐश्वर्य दिखलाकर कृतार्थ किया एवं पूर्ववत् अपने पार्षद गोपबालकों और बछड़ोंको साथमें लेकर विविध प्रकारसे लीला-विनोद किया।

श्रीबलदेवजीने श्रीकृष्णसे आठ दिन पहले जन्म-ग्रहण किया था, अतएव श्रीकृष्णकी आयु जब छह वर्ष की थी, तब बलदेवजीकी आयु भी छह वर्ष की थी। राम-कृष्ण दोनों भाइयोंने पञ्चम वर्ष की आयु पारकर जब छठे वर्षमें पर्दापण किया, तब व्रजकी गोपियाँ उनके पौगण्ड वयसोचित अङ्ग-लावण्य, दैहिक-बलकी अधिकता एवं बृहदाकृति गायों और साँड़ोंके साथ उनकी विविध क्रीड़ाओंको देखकर परमानन्द प्राप्त करने लगीं।

बाल्यकालसे ही नन्दनन्दनकी बछड़ों और गायोंके प्रति प्रीति देखकर नन्दबाबा और प्रौढ़ गोपोंने परस्पर परामर्शकर यह स्थिर

किया कि श्रीकृष्ण और बलराम श्रीदाम, सुबल आदि सखाओंके साथ अब बछड़ोंके बदले गौओंको चरायें। इसका कारण था कि श्रीकृष्ण पहले जिन बछड़ियोंको चराते थे, अब वे बछड़ेवाली बड़ी-बड़ी गायें हो चुकी हैं। कृष्णसे प्रेमके कारण अब वे बड़ी गायें होनेपर भी कृष्णके साथ ही चरनेके लिए जाना चाहती हैं, अन्य वयोवृद्ध गोपोंके साथ नहीं। वयस्क गोपोंके प्रयास करनेपर भी वे गायें कृष्णको छोड़ना नहीं चाहती थीं। अतएव उन लोगोंने परामर्शकर यही निश्चय किया कि इन गौओंको चरानेका दायित्व कृष्णके ऊपर दे देना ही सर्वथा उचित रहेगा। उन्होंने यह भी देखा कि बलराम, कृष्ण एवं श्रीदाम, सुबलादि गोपबालक अब गोचरण कर सकते हैं। अतएव अधिक विलम्ब न करके उन्हें गोचारणमें नियुक्त करना चाहिये। गोपराजकी सभामें यह निश्चय होनेपर शुभदिन एवं शुभमुहूर्त्त देखकर नन्दबाबा और व्रजवासी गोपोंने कृष्णको तथा श्रीदाम, सुबल, आदि गोपबालकोंको गोचारणमें नियुक्त किया।

*शुक्लाष्टमी कार्तिके तु स्मृता गोपाष्टमी बुधैः।*
*तद्दिने वासुदेवोऽभूद्गोपाः पूर्वन्तु वत्सपः॥*

(पद्मपुराण)

पद्मपुराणके कार्त्तिक माहात्म्यमें वर्णन हुआ है कि कार्त्तिक मासकी शुक्लाष्टमी तिथिको पण्डितगण गोपाष्टमी कहते हैं। श्रीकृष्णके छठे वर्षकी आयुमें प्रवेश करनेपर उन्होंने इसी दिनसे प्रथम गोचारण प्रारम्भ किया। इससे पहले वे बछड़ोंको चराया करते थे।

कार्त्तिक मासकी शुक्लाष्टमीके दिन नन्दबाबाकी आज्ञा और सभी वयस्क गोपोंके अनुमोदनसे बलराम-कृष्ण दोनों भाइयोंने गोचारण आरम्भ किया।

नन्दनन्दन श्रीकृष्ण गोचारणमें नियुक्त होकर बलदेवजी और श्रीदाम, सुबलादि गोपबालकोंके साथ असंख्य गायोंको आगेकर वृन्दावनके विभिन्न स्थानोंमें विचरण करते हुए ध्वज, वज्र, अङ्कुश आदि पदचिह्नोंके द्वारा वनभूमिको अलंकृत करने लगे। श्रीभगवान् नारायण आदि अनन्त मूर्त्तियोंमें वैकुण्ठ आदि अनन्त धामोंमें विहार

तो करते हैं, परन्तु वृन्दावनको छोड़कर किसी भी अन्य धामको उनके चरणोंका स्पर्श नहीं मिल पाता है। इसका कारण है कि भगवान् अपने समस्त धामोंमें गरुड़ आदि वाहनपर या पादुका धारणकर विचरण करते हैं, किन्तु श्रीवृन्दावन-लीलामें जब वे गोपबालकके रूपमें गोचारण करते हैं, उस समय वे किसी वाहन या पादुकाका व्यवहार नहीं करते। इस लीलामें गायोंके पीछे-पीछे वनमें विविध स्थानोंमें विचरण करनेपर सर्वत्र उनके चरणोंका स्पर्श होता है, जिससे व्रजभूमि उनके चरणचिह्नोंसे विभूषित होनेके कारण वैकुण्ठ आदि धामोंसे भी अधिक श्रेष्ठ हो जाती है।

श्रीवृन्दावनकी वनभूमि स्वभावसे ही सुकोमल घास, पल्लव आदिसे सुशोभित होनेके कारण गौ-आदि पशुओंके लिए परम हितकारी है। नाना प्रकारके रङ्ग-बिरङ्गे फूलों और मधुर-मधुर फलोंके भारसे झुके हुए वृक्षों और लताओंकी पंक्तियोंसे सुशोभित, नाना प्रकारके पक्षियोंके मधुर कलरवसे गूँजनेवाली और वनके सुगन्धित पुष्पोंके सौरभसे सुवासित मन्द-शीतल वायुसे सेवित परम मनोरम वनभूमि कृष्ण और सखाओंके लिए बहुत ही उपयुक्त थी। कृष्ण-बलराम श्रीदाम, सुबलादि गोपबालकोंके साथ उस वनभूमिके विविध स्थानोंमें विचरणकर अभूतपूर्व आनन्द प्राप्त करने लगे। इससे पहले नन्दनन्दन जब श्रीदाम-सुबल आदि बालकोंके साथ बछड़े चराते थे, तब वनभूमिके दूसरी ओर व्रजके वयोवृद्ध गोपगण भी गोचारण करते थे। जब वे बछड़े छोड़कर गायें चराने लगे, तो बड़े-बड़े गोपोंने वनमें जाना छोड़ दिया। अब कृष्ण अपने सखाओंके साथ गोचारण करते हुए स्वच्छन्द रूपसे विहार करने लगे। इस प्रकार वृन्दावनकी वनभूमि केवलमात्र नन्दनन्दनकी ही स्वच्छन्द विहार-भूमिके रूपमें परिणत हो गयी।

नन्दनन्दन जब असंख्य गायोंको आगेकर बलदेवजी और श्रीदाम, सुबल आदि गोपबालकोंके साथ वनभूमिमें जाते थे, तब गोपबालक परमानन्दमें नन्दनन्दनकी मधुर लीलाओंका गान करते एवं नन्दनन्दन उच्चस्वरसे वेणुवादन करते, जिससे वनभूमिकी शोभा अत्यन्त बढ़ जाती थी। वृन्दावनकी वनभूमि सर्वदा भ्रमरोंके मधुर

गुञ्जन, शुक-मयूरादि पक्षियोंके मनोरम कूजनसे मुखरित एवं मृग और बन्दर आदि विविध पशुओंसे परिपूर्ण होनेके कारण अति मनोहर थी। वहाँके जलाशय श्रीभगवद्भक्त-चूड़ामणियोंके श्रीभगवत्-भावसे विभावित अन्तःकरणकी भाँति स्वच्छ, सुशीतल एवं अनगिनत कमलपुष्पोंके द्वारा परिशोभित हैं।

उन सभी जलाशयोंके शीतल जलकणोंके संस्पर्शसे एवं उनमें प्रस्फुटित कमलपुष्पोंकी सुगन्धसे सुवासित मृदु-मन्द पवन प्रवाहित होती थी। देखनेसे ऐसा प्रतीत होता, मानो वनभूमि भ्रमर आदिकी गुञ्जन-ध्वनि, मलय पवनके सुखस्पर्श, सरोवरोंके स्वच्छ जलमें प्रस्फुटित कमलोंकी शोभा एवं विविध प्रकारके फूलोंकी सुगन्धके द्वारा नन्दनन्दनके चक्षु, कर्ण, त्वचा, रसना और नासिका—इन पाँच इन्द्रियोंका आनन्दवर्द्धन करनेमें तत्पर हो रही हो। नन्दनन्दन व्रजभूमिकी ऐसी रमणीयता देखकर बड़े आनन्दित हुए और ग्वालबालोंके साथ आनन्दपूर्वक विहार करने लगे।

वनभूमिमें सर्वत्र गगनचुम्बी ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंकी डालियोंके अग्रभाग नये-नये अरुणवर्णके कोमल पल्लवोंसे सुशोभित थे एवं प्रत्येक वृक्ष अनगिनत फल और रङ्ग-बिरङ्गे पुष्प-गुच्छोंके भारको धारण करनेमें असमर्थ होकर मानो सबकुछ धारण करनेवाली वसुन्धराके वक्षःस्थलमें उसे समर्पण करनेके लिए अवनत होकर अपने फल-पुष्प आदिसे युक्त अग्रभागको भूमिसे संलग्न करनेकी चेष्टा कर रहे थे। अथवा वृन्दावनेश्वर श्रीकृष्णको वनभूमिमें आया देखकर वनवासी महावृक्ष पल्लव, पुष्प और फल आदि पूजाके उपहारोंको मस्तकपर धारणकर उनके चरणोंमें समर्पण करनेके लिए भक्तिभावसे झुक जाते थे।

वृक्षोंकी यह मनोहर शोभा देखकर नन्दनन्दन परमानन्दमें प्रफुल्लित हो गये एवं मृदु-मधुर मुसकानके साथ बलदेवजीको स्तुति-मिश्रित परिहास-वचन कहकर आनन्द-कौतुक करने लगे। बलदेवजी श्रीकृष्णके बड़े भाई होनेपर भी उनकी आयु श्रीकृष्णसे मात्र आठ दिन अधिक थी, बाल्यकालमें दोनों एकसाथ लालित-पालित हुए एवं एक ही साथ क्रीड़ा-विहार आदि करते थे, इसलिए

बलदेवजीका श्रीकृष्णके साथ वात्सल्य और सख्य दोनों भाव था। श्रीकृष्ण कभी बड़े भैयाकी भाँति उन्हें सम्मान देते और कभी सखाकी भाँति उनके साथ परिहास भी करते थे। एक साथ क्रीड़ा-विहार आदि करते हुए जब जैसा भाव प्रकाशित होता, वे उसीके अनुरूप एक-दूसरेसे आलाप, व्यवहार आदि करते थे।

परमपुरुष श्रीकृष्ण अपनी बाललीला या परिहास आदिमें जो कुछ भी बातें करते, वे कभी भी तत्त्वरहित, व्यर्थकी बातें नहीं होतीं। उनके परिहासपूर्ण वचन भी तथ्यपूर्ण होते थे। इस समय सख्यभावके प्रकाशित होनेपर श्रीकृष्ण बलदेवजीको परिहास करते हुए कहने लगे—हे देववर! ये सभी वृक्ष आपके चरणकमलोंकी पूजा करनेके लिए अपने मस्तकपर विविध प्रकारके फल, फूल, पल्लवादि धारणकर आपके चरणोंमें झुककर प्रणाम कर रहे हैं। इनके मनका भाव यह है कि ये जिस पापके फलसे वृक्ष-जन्मको प्राप्त हुए हैं, आपके चरणोंमें शरणागत होनेसे इनका वह पाप दूर हो जायेगा अथवा हे देववर! जो आपके चरणकमलोंकी सेवा करनेके लिए उत्कण्ठित होते हैं, वे समस्त शास्त्रोंका सार-सिद्धान्त हृदयङ्गम कर लेते हैं। अतः इन वृक्षोंमें किसी प्रकार तमः अर्थात् अज्ञान नहीं है। ये फल, फूल, पल्लव आदि मस्तकपर धारणकर आपके चरणोंमें समर्पण कर रहे हैं। जो कोई इसे देखेगा या सुनेगा, उसका भी समस्त प्रकारका अज्ञान-अन्धकार दूर हो जायेगा। अतः मानो ये संसारका अज्ञान-अन्धकार दूर करनेके लिए ही आपके चरणकमलोंकी पूजा कर रहे हैं। अथवा ये सभी वृक्ष एक ही स्थानमें खड़े रहकर आपकी मधुर लीलाका दर्शन कर रहे हैं। किन्तु वनके पशु-पक्षियोंकी भाँति आपके चरणोंके निकट न आ पानेके कारण मन-ही-मन दुःखी होकर आपके चरणोंमें फल, फूल, पल्लव आदि समर्पणकर इङ्गितपूर्वक प्रार्थना कर रहे हैं—हे देव! हमारी जड़ता दूर कर दें, जिससे हम जङ्गम होकर (चलकर) आपके चरणोंमें उपस्थित हो सकें।

नन्दनन्दन जब वनभूमिमें प्रवेश करते, तब मधुपानमें तत्पर भ्रमर उनके अङ्गकी सुगन्धसे मुग्ध और मत्त होकर प्रस्फुटित

कुसुम-गुच्छोंको परित्यागकर गुनगुनाते हुए उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगते। यह देखकर नन्दनन्दन अङ्गुलिसे भ्रमरोंको दिखलाकर बलदेवजीसे कहने लगे—यह देखिये! ये भ्रमर गुञ्जन करते हुए आपका पीछा कर रहे हैं। इनका भाव देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि ये आपके भक्त-चूड़ामणि हैं एवं भ्रमररूप धारणकर गुप्त रूपसे इस वनमें रहकर निरन्तर आपका ध्यान कर रहे हैं। अब अपने प्रभुका साक्षात् दर्शन पाकर इन्होंने परमानन्दमें मग्न होकर अपना मौन भङ्ग कर दिया है और गुन्-गुन् ध्वनिसे आपका गुणगान कर रहे हैं।

नन्दनन्दनके वनभूमिमें उपस्थित होनेपर वनके मोर भी परमानन्दमें विभोर होकर नृत्य करने लगते, हिरण घास चरना छोड़कर अपलक दृष्टिसे उनकी ओर देखते रहते एवं कोयलें पञ्चम तानमें गाने लगती। यह देखकर नन्दनन्दनने बलदेवजीसे कहा—आप सबके पूजनीय हैं, इसलिए आपके वनमें आनेपर सभी वनवासी यथासाध्य आपकी पूजा करके धन्य हो रहे हैं। देखिये, ये मयूर आपको देखकर परमानन्दमें विभोर होकर नृत्य कर रहे हैं। हिरणियाँ आपकी प्रियतमा गोपियोंकी भाँति अपलक नयनोंसे आपकी ओर देख रही हैं और कोयलें परमानन्दमें पञ्चमस्वरमें मधुरालाप कर रही हैं। इस प्रकार ये वनवासी मोर, हिरण एवं कोयल आदि सभी आपको वनभूमिमें अतिथिके रूपमें पाकर धन्य और कृतार्थ हो रहे हैं। उनके पास जो कुछ उत्कृष्ट वस्तुएँ हैं, उन्हीं सब वस्तुओंको उपहारके रूपमें आपके चरणोंमें अर्पणकर वे आपकी पूजा करनेमें प्रवृत्त हो रहे हैं। वह देखिये, मोर अपने रङ्ग-बिरङ्गे पङ्खोंको फैलाकर नृत्य करते हुए आपके आगमनपर आनन्द प्रकाश कर रहे हैं। हिरणियाँ अपलक नेत्रोंसे आपको निहारते हुए आपके प्रति अपने प्रेमको प्रकाशित कर रही हैं। कोयलें पञ्चमस्वरसे गाती हुई आपका स्वागत कर रही हैं। घरमें अतिथि आनेपर उनका यथासाध्य स्वागत-सत्कार करना महात्माओंका लक्षण है। आपके आगमनके उपलक्षमें मयूर नृत्य करके यह बता रहे हैं—हे देव! हम सभी प्रकारसे आपकी सेवाके अयोग्य हैं, आपकी सेवा कैसे करनी है, हम कुछ भी नहीं जानते

हैं, इसलिए आपका स्वागत करनेके लिए इसके अतिरिक्त और क्या कर सकते हैं? इस प्रकार हिरणियाँ दृष्टिपातसे और कोयलें मधुर आलापसे आपके प्रति आन्तरिक कृतज्ञता प्रकाशित कर रही हैं।

इस प्रकार वनभूमिके वृक्ष और पशु-पक्षी आदिका भाव देखकर श्रीकृष्णने बलदेवजीसे कहा कि वनभूमिके वृक्ष आदि जिस प्रकार आपकी सेवा करके कृतार्थ हुए हैं, उसी प्रकार वराहदेवकी कृपासे पृथ्वीके अतिधन्य होनेपर भी आपके चरणोंके स्पर्शसे वह अधिक सौभाग्यवती हुई है, क्योंकि आप ही मत्स्य, कूर्म, वराहादि समस्त अवतारोंके मूल-स्वरूप हैं, अतएव आपका चरणस्पर्श प्राप्त करना अति दुर्लभ है। वृन्दावन भूमिके इस महासौभाग्यसे भूमिसे उत्पन्न तृण, गुल्म आदि भी आपकी चरणधूलिका स्पर्श पाकर कृतार्थ हुए हैं। इसी प्रकार पुष्प आदि चयन करते हुए आपकी अङ्गुलियोंका स्पर्श पाकर वृक्ष-लता भी कृतार्थ हो गये हैं। आपके सकरुण दृष्टिपातसे गोवर्द्धन आदि पर्वत एवं कालिन्दी, मानसी गङ्गा आदि नदियाँ भी कृत-कत्य हो गयी हैं। आपका विस्तृत वक्षःस्थल वैकुण्ठ निवासिनी लक्ष्मीके लिए भी स्पृहणीय है, किन्तु वनमें पैदा हुई गोपीलता नामक श्यामवर्णकी लताका कैसा सौभाग्य है कि फूलोंकी मालाके साथ ग्रथित होकर उसे आपके वक्षःस्थलमें निवास करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। श्लोक ८ स्थित *"गोप्यऽन्तरेण भूजयोऽपि यत्स्पृहा श्रीः"* इस अंशसे रसिकेन्द्र-चूड़ामणि श्रीनन्दनन्दनने बलदेवजीके साथ हास-परिहास करते हुए गोपियोंके साथ बलदेवजीके सम्बन्धको सूचित किया है। यहाँपर गोपी शब्दके दो अर्थ हैं—श्यामवर्णकी लताविशेष एवं व्रजवासिनी गोप कन्याएँ। श्रीकृष्णने बलदेवजीके वक्षःस्थलपर पुष्पमालामें गोपी नामकी श्यामलताको देखकर मृदु हास्यके साथ कहा कि आपके वक्षःस्थलके स्पर्शसे गोपी कृतार्थ हुई है। इस परिहासके द्वारा व्रजकी गोपकन्याओंके साथ बलदेवजीका विहार भी सूचित हुआ है।

श्रीमद्भागवत दशम-स्कन्धके ६५वें अध्यायमें व्रजाङ्गनाओंके साथ श्रीबलदेवकी जिस रासक्रीड़ाका वर्णन हुआ है, श्रीकृष्णके परिहास वचनोंसे उसीकी भावी सूचना मिलती है एवं श्रीकृष्णकी

पौगण्ड आयुमें ही गोपियोंके साथ उनके मानसिक सम्बन्ध विशेषका भी इङ्गित मिलता है।

इस प्रकार रसिकेन्द्र-चूड़ामणि श्रीकृष्ण बलदेवजीके साथ विविध हास-परिहास करते हुए वनभूमिमें विहार करने लगे। वे वनशोभाके दर्शनसे परम प्रसन्न होकर गायोंके साथ कभी यमुनातीरपर, कभी मानसीगङ्गाके तीरपर और कभी गोवर्द्धनकी तलहटीमें विचरण करते हुए गोपबालकोंके साथ विविध प्रकारके क्रीड़ा-कौतुक आदिके द्वारा उनके सख्यरसका आस्वादन करते हैं। इस प्रकार नन्दनन्दन, बलदेवजी, श्रीदाम, सुबल आदि गोपबालकोंके साथ वृन्दावनके वन-वनमें विचरण और गोचारणकर सबको आनन्द-सागरमें निमग्न करने लगे एवं स्वयं भी आनन्दका आस्वादन करने लगे॥ १-९॥

**क्वचिद्गायति गायत्सु मदान्धालिष्वनुव्रतैः।**
**उपगीयमानचरितः पथि सङ्कर्षणान्वितः॥ १०॥**

**(अनुजल्पति जल्पन्तं कलवाक्यैः शुकं क्वचित्।**
**क्वचित् सबल्गुकूजमन्तमनुकूजति कोकिलम्॥)**

**क्वचिच्च कलहंसानामनुकूजति कूजितम्।**
**अभिनृत्यति नृत्यन्तं बर्हिणं हासयन् क्वचित्॥ ११॥**

**मेघगम्भीरया वाचा नामभिर्दूरगान् पशून्।**
**क्वचिदाह्वयति प्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया॥ १२॥**

**अन्वयः**—अनुव्रतैः (सखाओंके द्वारा) उपगीयमान चरितः (स्तुतकीर्त्ति) सङ्कर्षणान्वितः (बलरामके साथ) पथि क्वचित् (मार्गमें कहीं) मदान्धालिषु (मदमत्त भ्रमरोंकी) गायत्सु (अव्यक्त मधुरध्वनिके साथ) गायति (स्वयं भी उनका अनुकरण करते हुए गान करने लगे) क्वचित् (कहीं) जल्पन्तं (मधुर निनाद करनेवाले) शुकं कलवाक्यै (शुकपक्षियोंके अव्यक्त मधुर शब्दका) अनुजल्पति (अनुकरण करने लगते) क्वचित् (कहीं) सवल्गु (सुमधुर) कूजन्तं कोकिलं अनुकूजन्ति (कूजनकारी कोयलोंका अनुकरण करने लगते) क्वचित् (कहीं) कलहंसानां कूजितं अनुकूजति (कूजन करनेवाले कलहंसोंका अनुकरण करने लगते)

क्वचित् (कहीं) हासयन् (अनुचरोंको हँसाते हुए) नृत्यन्तं वर्हिणं (नृत्यशील मोरोंका अनुकरण करते हुए) अभिनृत्यति (नृत्य करने लगते) क्वचित् (कहीं) गो-गोपाल मनोज्ञया (गायों और गोपबालकोंके आनन्ददायी) मेघगम्भीरया वाचा (मेघके समान गम्भीर वाणीसे) [तथा] प्रीत्या (अत्यधिक प्रीतिके साथ) नामभिः (नाम ग्रहणके द्वारा) दूरगान् (दूर गये हुए) पशून् आह्वयति (पशुओंको आह्वान करते हैं)॥ १०-१२॥

**अनुवाद**—उस समय ग्वालबाल भगवान् श्रीकृष्णके लीला-चरित्रोंका मधुरस्वरसे गान करते थे। जब कृष्ण बलदेवजीके साथ मार्गमें जाते समय गुञ्जार करते मदमस्त भ्रमरोंको देखते, तो स्वयं भी उनके साथ मधुरस्वरसे गुनगुनाने लगते, कहीं सुमधुर कूजनपरायण कोयलोंके अनुरूप ही कूकने लगते, कहीं कलहंसोंके सुरीले कूजनका अनुकरण करते और कहीं अनुचरोंको हँसानेके लिए मोरोंके साथ ठुमक-ठुमककर नृत्य करके मयूरोंको उपहासका पात्र बना देते। कहीं दूर गयी गायोंको मेघके समान गम्भीर वाणीसे श्यामली, धवली आदि नामोंसे अत्यधिक प्रीतिके साथ पुकारते। उनके कण्ठकी मधुरध्वनि सुनकर गायों और ग्वालबालोंका चित्त अपने वशमें नहीं रहता था॥ १०-१२॥

**सारार्थदर्शिनी**—बर्हिणम् अभिलक्ष्यीकृत्य नृत्यति सखीन् हासयन् बर्हिणामेव रसोल्लासयन्॥ १०-१२॥

**भावानुवाद**—कभी नाचते हुए मयूरोंके साथ कृष्ण स्वयं भी नृत्य करने लगते और ऐसा नृत्य करते जिससे कि मयूरोंका भी आनन्दवर्द्धन होता। इसे देखकर ग्वालबाल हँसने लगते॥ १०-१२॥

**चकोरक्रौञ्चचक्राह्व-भारद्वाजांश्च वर्हिणः।**
**अनुरौति स्म सत्त्वानां भीतवद्व्याघ्रसिंहयोः॥ १३॥**

**अन्वयः**—क्वचित् (कहीं) चकोर क्रौञ्चचक्राह्वभारद्वाजांश्चवर्हिणः (चकोर, क्रौञ्च, चक्रवाक, भारद्वाज आदि पक्षियोंका) अनुरौति स्म (अनुकरण करते हुए शब्द करने लगते) [कहीं] सत्त्वानां (प्राणियोंमें) व्याघ्र-सिंहयोः भीतवत् (बाघ और सिंहसे भयभीत होकर भागते हुए

अन्य प्राणियोंकी ही भाँति स्वयं भी भयभीतकी भाँति भागने लगते)॥ १३॥

**अनुवाद**—कहीं कृष्ण चकोर, क्रौञ्च, चक्रवाक एवं भरदूल आदि पक्षियोंकी बोलीका अनुकरण करते और कभी बाघ तथा सिंहके समान गर्जना करते हुए प्राणियोंको डराते और स्वयं भी भयभीतसे होकर भागने लगते॥ १३॥

**सारार्थदर्शिनी**—किन्तु सत्त्वानां प्राणिनां मध्ये व्याघ्रसिंहयोः शब्देन भीतवत् भवति सखिषु पलायमानेषु स्वयमपि पलायते वस्तुतस्तु स्वस्य स्वाभाविकशौर्येण भयाभावो वतिप्रत्ययेनोक्तम्॥ १३॥

**भावानुवाद**—*'सत्त्वानाम्'*—कभी-कभी बाध और सिंह आदि हिंसक प्राणियोंका गर्जन सुनकर स्वयं भी भयभीतकी-सी लीला करते अर्थात् कृष्ण द्वारा हिरणादि जन्तुओंके समक्ष बाघ और सिंहकी भाँति गर्जन करनेपर जब हिरणादि जन्तु और सहचर गोपबालक भयसे भागने लगते, तब वे स्वयं भी भयभीतकी भाँति भागने लगते। वास्तवमें उनके स्वाभाविक शौर्यके कारण उनमें भयका अभाव है। यहाँ *'भीतवत्'*—यह 'वति' प्रत्ययके द्वारा सूचित हुआ है॥ १३॥

**क्वचित् क्रीडापरिश्रान्तं गोपोत्सङ्गोपवर्हणम्।**
**स्वयं विश्रमयत्यार्यं पादसंवाहनादिभिः॥ १४॥**

**अन्वयः**—क्वचित् क्रीडापरिश्रान्तं गोपोत्सङ्गोपवर्हणं (कहीं क्रीड़ाके कारण थकान होनेपर किसी सखाकी गोदरूपी तकियेंपर सिर रखकर) आर्यं (बलदेवजीके शयन करनेपर) स्वयं (श्रीकृष्ण) पादसम्वाहनादिभिः (पाद-सम्वाहन एवं वीजनादिके द्वारा उनकी सेवा करते)॥ १४॥

**अनुवाद**—जब कहीं बलदेवजी खेलते-खेलते थक जाते, तब वे किसी गोपकी गोदरूपी तकियेपर सिर रखकर लेट जाते, उस समय कृष्ण चरण दबाने आदि सेवाके द्वारा बड़े भाईकी थकावट दूर करते॥ १४॥

**सारार्थदर्शिनी**—उपवर्हणं शीर्षोपाधानम्॥ १४॥

**भावानुवाद—** *'उपवर्हणम्'* सिर रखनेका तकिया अर्थात् कभी-कभी खेलते-खेलते थक जानेपर बलरामजी अपना सिर किसी सखाकी गोदमें रखकर शयन करते तथा स्वयं कृष्ण चरण दबाने और वीजन आदिके द्वारा उनकी थकावट दूर करते॥ १४॥

**नृत्यतो गायतः क्वापि वल्गतो युध्यतो मिथः।**
**गृहीतहस्तौ गोपालान् हसन्तौ प्रशशंसतुः॥ १५॥**

**अन्वयः—**क्व अपि (कहीं) गृहीत हस्तौ (एक दूसरेका हाथ पकड़कर राम-कृष्ण दोनों) हसन्तौ (हँसते हुए) नृत्यतः गायतः वल्गतः (नाचते हुए, गाते हुए तथा कूदते हुए) मिथः (परस्पर एक दूसरेसे) युध्यतः गोपालान् प्रशशंसतुः (युद्धपरायण गोपबालकोंकी प्रशंसा करते)॥ १५॥

**अनुवाद—**कभी ग्वालबाल नाचते-गाते, ताल ठोंकते और परस्पर कुश्ती लड़ते। तब बलराम एवं कृष्ण दोनों एक-दूसरेका हाथ पकड़कर 'वाह-वाह' करते हुए उनकी प्रशंसा करते॥ १५॥

**सारार्थदर्शिनी—**हसन्तौ कृष्णरामौ नृत्यादीन् कुर्वतो गोपालान् प्रशशंसतुः॥ १५॥

**भावानुवाद—**कभी श्रीकृष्ण और बलराम नृत्य करनेवाले बालकोंके प्रति हास-परिहास करते हुए उनकी प्रशंसा करने लगते॥ १५॥

**क्वचित् पल्लवतल्पेषु नियुद्ध श्रमकर्शितः।**
**वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्सङ्गोपवर्हणः॥ १६॥**

**पादसम्वाहनं चक्रुः केचित् तस्य महात्मनः।**
**अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन्॥ १७॥**

**अन्वयः—**क्वचित् नियुद्ध श्रमकर्शितः (कहीं मल्लक्रीड़ा करते हुए थक जानेपर) वृक्षमूलाश्रयः (वृक्षके मूलका आश्रयकर) पल्लवतल्पेषु (पत्तोंके द्वारा बनायी हुई शय्यापर) गोपोत्सङ्गोपवर्हणः (किसी गोप-बालककी गोदको तकिया बनाकर) शेते (शयन करते) केचित् (कुछ

बालकगण) तस्य महात्मनः पादसम्वाहनः चक्रुः (उनके चरण दबाने लगते) हतपाप्मानः (सेवामें विघ्नरूप पापसे नित्यमुक्त) अपरे (कोई बालकगण) व्यजनैः समवीजयन् (वीजनके द्वारा वायु सञ्चालन करने लगते)॥ १६-१७॥

**अनुवाद**—कहीं मल्ल-क्रीड़ामें थक जानेपर कृष्ण वृक्षकी जड़में कोमल-कोमल पत्तोंसे निर्मित शय्यापर गोपबालकोंकी गोदरूपी तकियेपर सिर रखकर शयन करते। उस समय कुछ बालक उनके चरण दबाने लगते तथा सेवाविघ्नरूप पापसे नित्यमुक्त कुछ बालक उनको पङ्खेसे हवा करने लगते॥ १६-१७॥

**अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः।**
**गायन्ति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः॥ १८॥**

**अन्वयः**—महाराज (हे महाराज!) स्नेहक्लिन्नधियः (वे स्नेहसे द्रवितचित्त होकर) महात्मनः (उन महात्मा श्रीकृष्णको) मनोज्ञानि (प्रीतिदायक) तदनुरूपाणि (उस समयके अनुरूप) शनैः (धीरे-धीरे) गायन्ति स्म (गान करने लगते)॥ १८॥

**अनुवाद**—हे महाराज! तब वे गोपबालक स्नेह द्वारा द्रवीभूत चित्तसे उदार-शिरोमणि और परम-मनस्वी श्रीकृष्णको प्रिय लगनेवाले तथा उस समयके अनुरूप मनोहर गीतोंका गान करने लगते॥ १८॥

**सारार्थदर्शिनी**—तदनुरूपाणि यशांसीति शेषः॥ १८॥

**भावानुवाद**—*'तदनुरूपाणि'* तब वे गोपबालक श्रीकृष्णको प्रिय लगनेवाले एवं विश्रामकालके अनुरूप उचित गीत धीरे-धीरे गाने लगते॥ १८॥

**एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया,**
**गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन्।**
**रेमे रमालालितपादपल्लवो,**
**ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः॥ १९॥**

**अन्वयः**—रमालालित पादपल्लवः (लक्ष्मीजी जिनके कोमल चरणयुगलकी सेवा करती हैं, वे कृष्ण) स्वमायया निगूढात्मगतिः (अपनी मायाके द्वारा अपने ऐश्वर्यको छिपाकर) चरितैः (आचरणके द्वारा) गोपालजत्वं (गोपाल भावको) विडम्बयन् (प्रकट करते हुए) ईशचेष्टितः (कभी-कभी ऐश्वर्यभाव प्रकट हो जाता है) ग्रामैः समं (प्राकृत बालकोंके साथ) ग्राम्यवत् रेमे (साधारण बालककी भाँति विहार करते)॥ १९॥

**अनुवाद**—लक्ष्मीदेवी जिनके सुकोमल चरणयुगलकी आराधना करती हैं, वे ही भगवान् अपनी योगमायाके प्रभावसे अपने ऐश्वर्यको छिपाकर अपने आचरणके द्वारा गोपबालकोंकी भाँति माधुर्यमय भावको प्रकटित करते और प्राकृत बालकके समान बड़े प्रेमसे ग्रामीण खेल-खेलते हुए विहार करते। तथापि बीच-बीचमें उनका ऐश्वर्यमय भाव प्रकट हो ही जाता॥ १९॥

**सारार्थदर्शिनी**—स्वयोगमायया आवृतात्मैश्वर्यः स्वयं गोपात्मजोऽपि चरितै-र्गोपात्मजत्वं भूपालपुत्रत्वं विडम्बयन् तिरस्कुर्वन् सोऽप्येवं लीलां कर्तुं न जानातीति भावः। *"गोपो गोपालके गोष्ठाध्यक्षे पृथ्वीपतावपि"* इति मेदिनी। ऐश्वर्यदृष्ट्या रमालालितपादपल्लवोऽपि तदावरणात् केश्चिद्ग्राम्यैः बन्धुभिः सह कश्चिदग्रामात्रम्यो बन्धुरिव रेमे न केवलमावृतमेव तदैश्वर्यमित्याह-असुरमारणादिप्रस्तावे। ईशमैश्वर्यमयं चेष्टितं यस्य सः॥ १९॥

**भावानुवाद**—*'स्वमायया'*—भगवान् अपनी योगमायाके प्रभावसे अपने ऐश्वर्यमय स्वरूपको छिपाकर ऐसी लीलाएँ करने लगते जो पूर्णतः गोपबालकोंके समान ही प्रतीत होती। स्वयं गोपनन्दन होकर भी राजपुत्रके भावका तिरस्कार करते, अर्थात् राजपुत्र भी वैसी लीलाएँ करना नहीं जानते—यह भाव है। मेदिनी अभिधानके अनुसार—'गोप' शब्दका अर्थ गोपबालक, गोष्ठाध्यक्ष और पृथ्वीपति राजा भी होता है। ऐश्वर्यकी दृष्टिसे कह रहे हैं—*'रमालालित-पादपल्लवः'* स्वयं भगवती लक्ष्मी भी जिनके चरणकमलोंकी सेवा करती हैं। अपने ऐसे ऐश्वर्यको आच्छादितकर श्रीकृष्ण ग्रामीण गोपबालककी भाँति लीलाएँ करते थे। वे सब समय अपने ऐश्वर्यको छिपाते नहीं थे,

बल्कि समय-समयपर असुर-मारणादि लीलाओंके समय अपना ऐश्वर्य प्रकट भी करते थे। यही कह रहे हैं—*'ईशः चेष्टितः'*, ऐश्वर्यमय आचरण है जिनका, ऐसे कृष्ण॥ १९॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति—**नन्दनन्दन श्रीकृष्ण, बलदेवजी और गोप-बालकोंके साथ गोचारणके लिए वनभूमिमें जाकर वनकी शोभा दर्शनकर परम प्रसन्न हुए एवं वन-विहारमें प्रमत्त होकर पहले वनके वृक्ष, लता, मयूर और हरिणियों आदिका भाव देखकर बलदेवजीके साथ विविध प्रकारसे हास-परिहास करने लगे।

गोपबालकगण भी नन्दनन्दनकी गमन-भङ्गि, वचन-भङ्गि, अङ्ग-भङ्गि और क्रीड़ा-भङ्गि आदिकी प्रशंसा करते हुए उन्हें चारों ओरसे मण्डलाकारमें घेरकर वनपथपर आगे बढ़ने लगते। कृष्ण भी बलदेवजीके कन्धेपर दाहिनी भुजा रखकर एक वनसे दूसरे वनमें विहार करने लगे।

नन्दनन्दनके अङ्गगन्धसे सुधबुध खोकर खिले हुए नये-नये फूलों, पल्लवों तथा लताओंसे हजारों भ्रमर उड़कर आते एवं उनके चारों ओर गुनगुनाते हुए मँडराने लगते, इससे नन्दनन्दन भी परमानन्दमें मत्त होकर भ्रमरकी भाँति गुञ्जन करते-करते उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगते। यह देखकर ग्वालबाल भी परमानन्दमें विभोर होकर उनकी इस अभिनव क्रीड़ाकी प्रशंसा करते।

नन्दनन्दन कभी शुक पक्षीके मधुर आलापको सुनकर उससे भी अधिक मधुर आलाप करने लगते और कभी कोयलकी पञ्चम-तान सुनकर उससे भी अधिक मधुरस्वरसे 'कुहू-कुहू' करने लगते। इससे शुक-कोयल आदि कलकण्ठी पक्षीगण लज्जासे मुँह नीचा कर लेते एवं मन-ही-मन विचार करते कि नन्दनन्दनके सामने हमने अपनी कर्कश कण्ठ-ध्वनिको प्रकाशितकर अतीव निर्लज्जताका परिचय दिया है।

इसी प्रकार नन्दनन्दन जहाँ भी मयूरोंको परमानन्दमें मग्न होकर नृत्य करते हुए देखते, वहाँपर उपस्थित होकर दोनों हाथोंसे अपना उत्तरीय उठाकर उनकी तालमें ताल मिलाकर ऐसा नृत्य करते कि मयूर भी लज्जित होकर नृत्य करना बन्द कर देते। मयूरोंकी

पराजय देखकर गोपबालक जोर-जोरसे हँसने लगते एवं नन्दनन्दनको शत-शत धन्यवाद प्रदान करने लगते।

गौएँ जब घास चरनेके लोभसे बहुत दूर निकल जातीं, तब कृष्ण शरत्-कालीन बादलकी भाँति गम्भीर और मधुरस्वरसे उन्हें पुकारते। उनकी पुकार सुनकर वे मुँह और पूँछ उठाकर दौड़ती हुई कृष्णके निकटमें चली आती एवं गोपबालकगण उससे परम-आनन्दका अनुभव करने लगते।

कभी-कभी चकोर, क्रौंच, चकवा, भरदूल, मयूर आदि पक्षी नन्दनन्दनको देखकर परमानन्दित होकर उनके समीप आ जाते और सुमधुर ध्वनिसे उनका स्वागत करने लगते। यह देखकर नन्दनन्दन प्रत्येककी ध्वनिका अनुकरण करने लगते। कभी सबके साथ मिलकर उनकी जैसी मधुर ध्वनि निकालते, कभी-कभी उनसे भी अधिक मधुरध्वनिसे गोपबालकोंको विस्मित कर देते। इस प्रकार वन-वनमें विचरण करते समय यदि कभी उन्हें बाघ, सिंह आदि हिंसक प्राणी दीख पड़ता, तो वे अन्यान्य प्राणियोंकी भाँति भयभीत होनेका अभिनय करते, जिसे देखकर गोपबालकगण परमानन्दसे हँसने लगते। वृन्दावनके सिंह, बाघ आदि हिंसक पशु भी अपनी स्वाभाविक हिंसावृत्ति भूलकर शान्तभावसे आपसमें मिलकर रहते थे। अतएव उन्हें देखकर डरनेका कोई कारण नहीं था। विशेषकर जिनका नाम लेनेसे समस्त प्रकारके भय दूर हो जाते हैं, ऐसे सबके अभय-प्रदाता नन्दनन्दनको किस बातका भय हो सकता है? परन्तु उनकी मनोमुग्ध बाललीलाकी ऐसी ही चमत्कारिता है कि वे सिंह, बाघ आदिका गर्जन सुनकर भयप्राप्तिका अनुकरण करते थे।

कृष्णके साथ वन-विहार और क्रीड़ादि करते-करते जब बलरामजी थक जाते और किसी अधिक आयुवाले गोपबालककी गोदमें सिर रखकर लेट जाते, तब भ्रातृवत्सल कृष्ण अपने बड़े भैया बलदेवजीके चरण दबाने लगते। कृष्णको इस प्रकार बलदेवजीकी सेवा करते हुए देखकर सुबल, श्रीदाम आदि बालक भी विविध प्रकारसे बलदेवजीकी सेवा करने लगते। कोई उन्हें पङ्खा करने लगता तथा कोई उनके अङ्गोंको दबाने लगता। इस प्रकार कृष्ण और

गोपबालक बलदेवजीकी सेवाकर एक अभिनव आनन्दका अनुभव करते।

कभी कृष्ण, बलदेवजी एवं सुबल-श्रीदाम आदि सखा एक दूसरेका हाथ पकड़कर नृत्य करते हुए गान करते एवं विचित्र गतिभङ्गि प्रकाशकर आनन्दका अनुभव करते। कभी बाहुयुद्ध करते, कभी राम और कृष्ण दोनों भाई गोपबालकोंका नृत्य आदि देखकर परमानन्दमें ठठा लगाकर हँसने लगते एवं विविध प्रकारसे उनकी प्रशंसा करते। यथार्थमें बलराम-कृष्ण गानमें गन्धर्व-विजयी, नृत्यमें विद्याधर-विडम्बी एवं युद्धमें त्रिलोक-विजयी हैं, फिर भी वे बालरूपमें इस प्रकारकी लीलाएँ करते। वैसे ही उनके परिकर सखा भी उन्हींके समान गुण, स्वभाव आदिसे युक्त होनेपर भी साधारण बालकके रूपमें क्रीड़ा करते थे।

कभी कृष्णके गोपबालकोंके द्वारा बनायी गयी पल्लव-शय्यापर शयन करनेपर कोई गोपबालक परम आदरके साथ उनका चरण दबाने लगता, कोई-कोई सखा नये-नये पल्लवोंके गुच्छोंके द्वारा रचित पङ्खोंके द्वारा धीरे-धीरे वीजन करने लगते।

गोपबालकों द्वारा की जानेवाली कृष्णसेवाकी कोई सीमा नहीं है। इसलिए अनादिकालसे वे कृष्णसेवाके अधिकारी हैं। उनकी कृष्णसेवामें कभी भी विघ्न नहीं होता है। उनकी प्रेमसेवा ग्रहण करनेके लिए श्रीकृष्ण अनन्त ब्रह्माण्ड-विग्रह होकर भी उन जैसे गोपबालक होकर अनादिकालसे उनके साथ विविध प्रकारसे विहारकर उनका मनोरथ पूर्ण कर रहे हैं। श्रीकृष्ण मत्स्य, कूर्म आदि अनन्त मूर्त्तियोंमें अनन्त लीलाएँ तो करते हैं, किन्तु उनकी इस नन्दनन्दन-लीलाकी भाँति निज जनोंके प्रेमके वशीभूत रहनेकी लीला कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती है।

अनन्त लीलासिन्धु नन्दनन्दन श्रीकृष्णने श्रीदाम, सुबलादि गोपबालकोंके साथ सख्य-प्रेम-सिन्धुमें निमग्न होकर विविध मधुर लीलाएँ की हैं कि जिनका सम्पूर्ण रूपसे वर्णन करना किसीके लिए भी सम्भव नहीं है॥ १०-१९॥

**श्रीदामा नाम गोपालो रामकेशवयोः सखा।**
**सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रुवन्॥ २०॥**

**अन्वयः**—रामकेशवयोः सखा श्रीदामा नाम (बलराम और कृष्णका सखा श्रीदाम नामके) गोपालः (गोपालने) [तथा] सुबल स्तोककृष्णाद्याः (सुबल और स्तोककृष्ण आदि) गोपाः (गोपबालकोंने) प्रेम्णा (प्रेमपूर्वक) इदं अब्रुवन् (ऐसा कहा)॥ २०॥

**अनुवाद**—तत्पश्चात् एकदिन बलराम और कृष्णके प्रधान सखा श्रीदाम नामक गोप तथा सुबल, स्तोककृष्ण आदि अन्यान्य गोपबालकोंने बड़े सौहार्द-प्रेमसे उनसे इस प्रकार कहा॥ २०॥

**सारार्थदर्शिनी**—ईशचेष्टितत्वमेव दर्शयितुमाह-श्रीदामेति। प्रेम्णेति कृष्णरामावेव स्वव्याजेन तालफलानि भोजयितुमित्यर्थः॥ २०॥

**भावानुवाद**—*'श्रीदामा नाम'* आदि द्वारा भगवान्की चेष्टाको दिखा रहे हैं। सुबल, श्रीदाम आदि सखागण अत्यन्त प्रीतिके साथ कृष्ण और बलरामजीको सुमधुर ताल फल खिलानेके लिए अपने-अपने भोजनके बहाने इस प्रकार कहने लगे॥ २०॥

**राम राम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिवर्हण।**
**इतोऽविदूरे सुमहद्वनं तालालिसंकुलम्॥ २१॥**

**फलानि तत्र भूरीणि पतन्ति पतितानि च।**
**सन्ति किंत्ववरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना॥ २२॥**

**अन्वयः**—राम राम (हे राम! हे राम!) दुष्टनिवर्हण (दुष्टोंका दमन करनेवाले) महाबाहो कृष्ण (हे महाबलशाली कृष्ण!) इतः (इस स्थानके) अविदूरे (अति निकटमें) तालालिसंकुलं (तालवृक्षोंसे परिव्याप्त) सुमहत् वनं (एक विशाल वन है) तत्र भूरीणि (वहाँ बहुत-से) फलानि (तालफल) पतन्ति पतितानि च (गिरते हैं तथा गिरे हुए हैं) किन्तु दुरात्मना (किन्तु दुष्टात्मा) धेनुकेन (धेनुकासुरने) [उन फलोंको] अवरुद्धानि सन्ति (अपने अधिकारमें रखा है)॥ २१-२२॥

**अनुवाद**—हम सबको सर्वदा प्रसन्न करनेवाले हे बलरामजी! आपकी भुजाओंका पराक्रम अगाध है। हे मनमोहन श्रीकृष्ण! दुष्टोंका दमन करना तो तुम्हारा स्वभाव ही है। इस स्थानसे थोड़ी ही दूरीपर तालवृक्षोंसे परिपूर्ण एक विशाल वन है। वहाँ बहुत-से तालफल पककर गिरते रहते हैं और बहुत-से पहलेके भी गिरे हुए होंगे, परन्तु वहाँ एक धेनुक नामका दुरात्मा असुर रहता है, जिसने उन फलोंको अपने अधिकारमें रखा हुआ है॥ २१-२२॥

**सारार्थदर्शिनी**—इतो गोवर्द्धनादविदूरे क्रोशचतुष्टयान्तरे तारफरा इति तालसीति ख्यातप्रदेशगतं वनम्—*"अस्ति तालवनं नाम धेनुकासुररक्षितम्। मथुरापश्चिमे भागे अदूरादेकयोजनम्॥"* इति वारहोक्तेः। पश्चिमे पश्चाद्भवे भागे इति नैर्ऋतकोणे इति व्याख्येयं तत्रैव तद्दर्शनात्। तालानामालिभिर्व्याप्तं। श्लेषेण तालानाम-लिवर्णत्वेनातिस्वादुजातीयत्वं ध्वनितम्। किन्तु धेनुकेन अवरुद्धानि वशीकृतानीत्यत एव हे राम! तव महासत्त्वपरीक्षा। हे कृष्ण! तवापि दुष्टनिबर्हणत्वपरीक्षाद्य कर्तव्येति भावोऽयं तयोः सख्यभावेन बलिष्ठत्वज्ञानान्न प्रेम्णा विरुद्ध्यते। प्रत्युत वीररसो त्साहोद्दीपनत्वेन संरुद्ध्यत एवेतिज्ञेयम्॥ २१-२२॥

**भावानुवाद**—*'इतः अविदूरे'*—गोवर्द्धन पर्वतसे कुछ ही दूर चार कोसके भीतर 'तारतफा या तालसी' नामोंसे प्रसिद्ध एक विशाल वन है। वराहपुराणमें कहा है—"मथुराके पश्चिमकी ओर एक योजन विस्तारवाला तालवन नामका एक वन है, जो धेनुकासुरके द्वारा सुरक्षित है।" पश्चिम कहनेसे मथुराके नैर्ऋतकोणमें, ऐसी व्याख्या करनी होगी, क्योंकि वहीं तालवन देखा जाता है। *'तालालिसंकुलम्'* वह वन तालवृक्षकी पंक्तियोंसे परिव्याप्त है। श्लेष अर्थमें—तालफलोंका भ्रमरोंके समान वर्ण होनेके कारण उनका सुस्वादु-जातिका होना सूचित हुआ है। परन्तु दुष्ट धेनुकासुर उन मधुर फलोंको किसी भी दूसरे व्यक्तिको खाने नहीं देता, केवल अपने प्रिय राजा कंसके लिए उन्हें सुरक्षित रखता है। अतएव हे राम! आज तुम्हारे बलकी परीक्षा होगी, हे कृष्ण! आज तुम्हारे दुष्ट दमनकी परीक्षा होगी—गोपबालकोंका सख्यभाव अति बलिष्ठ होनेके कारण ऐसे वचन उनके प्रेमके विरुद्ध नहीं है। दूसरी ओर उत्साह वीररसका उद्दीपन होनेके कारण इससे प्रेम परिपुष्ट ही हो रहा है—यही समझना होगा॥ २१-२२॥

**सोऽतिवीर्योऽसुरो राम हे कृष्ण खररूपधृक्।**
**आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिर्वृतः ॥ २३ ॥**

**अन्वयः**—राम (हे राम! हे कृष्ण!) आत्मतुल्य बलैः (अपने समान बलशाली) अन्यैः ज्ञातिभिः (दूसरे-दूसरे बान्धव असुरोंके साथ) बहुभिर्वृतः (मिलकर) खररूपधृक् (भयानक गधेका रूप धारणकर) सः असुरः (वह धेनुकासुर) अतिवीर्य (महापराक्रमी है)॥ २३ ॥

**अनुवाद**—हे राम! हे कृष्ण! वह असुर गधेके रूपमें वहाँ रहता है और उसके अनेक बान्धव भी गधेके रूपमें वहाँ रहते हैं। वह स्वयं तो बड़ा बलवान है ही, उसके साथी भी उसके समान ही बलवान हैं॥ २३ ॥

**सारार्थदर्शिनी**—सोऽतिवीर्येत्यादिना तयोः पराक्रमोत्तेजनम्॥ २३ ॥

**भावानुवाद**—*'सोऽतिवीर्य'*—गधेका रूप धारण करनेवाला वह असुर महाबलशाली है, इत्यादि वचनोंके द्वारा ग्वालबाल कृष्ण-बलरामके पराक्रमको उत्तेजित करने लगे॥ २३ ॥

**तस्मात् कृतनराहाराद्भीतैर्नृभिरमित्रहन्।**
**न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसंघैर्विवर्जितम्॥ २४ ॥**

**विद्यन्तेऽभुक्तपूर्वाणि फलानि सुरभीणि च।**
**एष वै सुरभिर्गन्धो विषूचीनोऽवगृह्यते॥ २५ ॥**

**अन्वयः**—अमित्रहन् (हे शत्रुविनाशन श्रीकृष्ण!) कृतनराहारात् (नरमांसभोजी) तस्मात् (उस धेनुकासुरके भयसे) भीतैः नृभिः पशुगणैः पक्षिसंघैः विवर्जितं (भयभीत होकर मनुष्य, पशु एवं पक्षियोंने उस वनको परित्याग किया है) न सेव्यते (उस वनकी कोई सेवा नहीं करते) [उस वनमें] अभुक्त पूर्वाणि (पहले किसीने नहीं खाये हैं, ऐसे) सुरभीणि (सुगन्धयुक्त) फलानि च विद्यन्ते (फलसमूह विद्यमान हैं) एषः विषुचीनः (उन फलोंकी सर्वत्र परिव्याप्त) सुरभिः गन्धः (सुगन्ध) अवगृह्यते वै (हम यहींसे अनुभव कर रहे हैं)॥ २४-२५ ॥

**अनुवाद**—हे शत्रुविनाशन श्रीकृष्ण! वह असुर मनुष्योंका मांस खाता है और अब तक न जाने कितने मनुष्योंको मारकर खा चुका है। उससे भयभीत होकर मनुष्य, पशु और पक्षी—सभीने उस वनका परित्याग कर दिया है, कोई भी उस वनमें नहीं जाता है। उस वनमें अति सुगन्धित तालफल हैं जिन्हें पहले किसीने कभी खाया नहीं है। उनकी सुगन्ध हम यहींसे अनुभव कर रहे हैं॥ २४-२५॥

**सारार्थदर्शिनी**—आवयोरग्रे तस्य तदीयानाञ्चातिवीर्यं खपुष्पायमाणं भविष्यतीति चेत्तर्हि चलतं तत्रत्यान्नरान्निर्भयान् तान् तालभोजिनश्च दत्त-युष्मदाशिषः कुरुतमित्याहुः—तस्मादिति। ननु, कस्यां दिशि तद्वनं तद्ब्रूतेत्यत आहुः—एष वै गन्धः भाद्रमासीयप्राच्यसमीरणेनानीत इति भावः॥ २४-२५॥

**भावानुवाद**—यदि कृष्ण कहें कि हमारे सामने उस असुर और उसके परिवारके असुरोंका महान बल आकाश कुसुमकी भाँति व्यर्थ हो जायेगा, तो उसके लिए कहते हैं—तब अभी चलो, वहाँके मनुष्योंको निर्भयकर तालका मधुर फल खिलाकर उनका आशीर्वाद ग्रहण करो। यदि कहें कि वह वन किस ओर है, तो उसके लिए कह रहे हैं—*'एष वै गन्धः'* उन फलोंकी सर्वत्र व्याप्त सुगन्ध हम यहींसे अनुभव कर रहे हैं। इससे भाद्र मासमें पूर्वदिशाकी वायुके द्वारा लायी गयी सुगन्ध समझना चाहिये॥ २४-२५॥

**प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गन्धलोभितचेतसाम्।**
**वाञ्छास्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते॥ २६॥**

**अन्वयः**—कृष्ण (हे कृष्ण!) गन्धलोभित चेतसां (फलके गन्धसे लुब्धचित्त) नः (हमें) तानि (उन फलोंको) प्रयच्छ (दान करें) महती वाञ्छा (फल पानेके लिए हममें बड़ी लालसा) अस्ति (है) राम (हे राम!) यदि रोचते (यदि इसमें आपकी सम्मति हो तब) गम्यताम् (वहाँ चलें)॥ २६॥

**अनुवाद**—हे कृष्ण! हमारा मन इस गन्धसे बड़ा लुब्ध हो रहा है और उन फलोंको पानेके लिए मचल रहा है। अतः तुम हमें उन

फलोंको खिलाओ। हे बलराम! यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो वहाँ चला जाय॥ २६॥

**सारार्थदर्शिनी**—नोऽस्मभ्यं प्रयच्छ यतोऽस्माकं वाञ्छाऽस्ति॥ २६॥

**भावानुवाद**—*'प्रयच्छ तानि नः'*—उन तालफलोंको हमें अवश्य खिलाओ, क्योंकि उन फलोंको खानेकी हमारी बड़ी लालसा हो रही है॥ २६॥

**एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया।**
**प्रहस्य जग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनं प्रभु॥ २७॥**

**अन्वयः**—प्रभु (राम और कृष्ण दोनों भाइयोंने) एवं सुहृद्वचः (सहचरोंकी बात) श्रुत्वा सुहृत् प्रियचिकीर्षया (सुनकर उन सुहृदोंका प्रसन्न करनेकी इच्छासे) प्रहस्य गोपैः वृतौ (हँसते हुए गोपोंसे घिरकर) तालवनं जग्मतुः (तालवनमें प्रवेश किया)॥ २७॥

**अनुवाद**—बलराम और कृष्ण अपने सहचरोंके इन वचनोंको सुनकर हँसते हुए उनकी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेकी इच्छासे उन्हें साथ लेकर तालवनकी ओर चल दिये॥ २७॥

**सारार्थदर्शिनी**—प्रहस्येत्यहो गर्दभोऽप्येवं बलीत्यसम्भाव्यत्वान्मृषैव वा ब्रूतेति भावः॥ २७॥

**भावानुवाद**—*'प्रहस्य'*—हँसते हुए, अहो! एक गधा भी क्या इतना बलवान हो सकता है, ऐसा सम्भव नहीं है, या तुम लोग झूठ बोल रहे हो—यही भाव है॥ २७॥

**बलः प्रविश्य बाहुभ्यां तालान् सम्परिकम्पयन्।**
**फलानि पातयामास मतङ्गज इवौजसा॥ २८॥**

**अन्वयः**—बलः (बलदेव) प्रविश्य (तालवनमें जाकर) ओजसा (बलपूर्वक) मतङ्गज इव (मत्त हाथीकी भाँति) बाहुभ्यां तालान् (अपने हाथोंसे तालवृक्षोंको) सम्परिकम्पयन् (हिलाकर) फलानि पातायामास (फलोंको गिराने लगे)॥ २८॥

**अनुवाद**—तालवनमें प्रवेश करते ही बलदेवजी मदमत्त हाथीके समान अपनी भुजाओंसे तालवृक्षोंको हिलाकर फलोंको भूमिपर गिराने लगे॥ २८॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामी नन्दनन्दनकी गोचारण, गोष्ठक्रीड़ा तथा गोपबालकोंके साथ सख्यप्रेम-आस्वादनकी लीलाओंका वर्णनकर गोचारणके समय उनकी असुर मारणलीला एवं उसमें उनके असमोर्ध्व ऐश्वर्यका प्रकाश एवं व्रजवासियोंके हित-आचरण लीलाके आस्वादनके लिए दूसरे एकदिनकी गोचारण-लीलाका वर्णन करने लगे।

इस प्रकार नित्य नवीन क्रीड़ा-रसका आस्वादन करते-करते भाद्रमासमें एकदिन श्रीकृष्ण गोचारण करते-करते गोवर्द्धन पर्वतके निकट पहुँचे। बलरामजी और कृष्ण दोनों भाई वृक्षके नीचे शिलाखण्डपर बैठे हुए थे, गायें भी निकट ही कोमल-कोमल घास चर रही थीं। कृष्ण और बलरामजीके प्रियसखा श्रीदाम, सुबल, स्तोककृष्ण आदि असंख्य गोपबालक सुमधुर एवं सुगन्धित फलोंको संग्रह करनेके लिए वन-वनमें घूम रहे थे, तभी वे पके हुए तालफलोंकी सुगन्ध पाकर मन-ही-मन विचार करने लगे—"बलराम और कृष्णको हमें ताल फल खिलाने होंगे। किन्तु तालवन यहाँसे कुछ दूर है और वहाँ धेनुकासुर नामका एक बलशाली असुर रहता है। उस असुरके भयसे कोई उस तालवनमें प्रवेश नहीं कर पाता है। हमारे सखा कृष्ण और बलरामने अघासुर, बकासुर आदिको जैसे अनायास ही खेल-खेलमें मार डाला था, वैसे ही यदि धेनुकासुरको भी मार दें, तो हम तालवनसे सुपक्व और सुमिष्ट तालफल लाकर उन्हें खिला सकते हैं। किन्तु हम यदि कृष्णको कहें कि भैया कृष्ण! चलो, तालवनमें जाकर तुम्हें तालफल खिलायेंगे", तो हो सकता है कि कृष्ण कहें कि मुझे भूख नहीं है या मुझे तालफल अच्छा नहीं लगता। परन्तु यदि हम कहें कि हमारी तालफल खानेकी बड़ी इच्छा है, तब कृष्ण निश्चित ही हमारी इच्छाको पूर्ण करनेके लिए तालवनमें जायेगा। उस समय धेनुकासुरने यदि उसे रोकनेकी चेष्टा की या उसपर आक्रमण किया, तो वह उसे अवश्य ही मार डालेगा।

ऐसा सोचकर वे बलरामजी और कृष्णके पास जाकर मधुरकण्ठसे कहने लगे—हे राम! तुम हमारे साथ विविध प्रकारकी गोष्ठ-लीलामें मत्त हो। तुम व्रजवासियोंका मनोरञ्जन करनेमें समर्थ हो, इसलिए तुम राम नामसे प्रसिद्ध हो, अतएव तुम निश्चित ही हमारा मनोरथ पूर्ण करोगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे कृष्ण! तुम दुष्टोंका दलन करनेवाले हो। तुमने अघासुर, बकासुर आदि अनेक दुष्टोंका विनाशकर हम सबकी रक्षाकी है, अतएव तुम्हारे लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। तुम्हारे इच्छा करनेपर हमारी मनोवासना अवश्य ही पूर्ण होगी।

यहाँसे कुछ ही दूरीपर तालवन नामका एक बहुत विशाल वन है। वहाँ अनगिनत तालके वृक्ष हैं, जो पके हुए तालफलोंसे लदे हैं। उन वृक्षोंसे कितने पके हुए फल गिरे हुए हैं, इसकी कोई सीमा नहीं है।

*अस्ति गोवर्द्धनं नाम क्षेत्रं परमदुर्लभम्।*
*मथुरा पश्चिमे भागे अदूराद्योजनद्वयम्॥*

*अस्ति तालवनं नाम धेनुकासुररक्षितम्।*
*मथुरापश्चिमे भागे अदूरादेकयोजनम्॥*

(वराहपुराण)

वराहपुराणमें यह वर्णन है कि मथुराके पश्चिम भागमें दो योजन दूर गोवर्द्धन नामका एक परम पुण्यक्षेत्र सुशोभित है एवं उससे एक योजन दूर धेनुकासुरके द्वारा संरक्षित तालवन नामका एक सुविशाल वन है।

इस तालवनके विषयमें हरिवंशमें वर्णन है—

*स तु देशः समः स्निग्ध सुमहान् कृष्णमृत्तिकः।*
*दर्भप्रायः स्थलीभूतो लोष्ट्रपाषाणवर्जितः॥*

तालवन समतल, स्निग्ध एवं काली मिट्टीवाला वन है। वहाँ अधिकतर कुशवाले स्थान हैं एवं वहाँ पत्थर, कङ्कड़ आदि नहीं हैं। अतः वहाँ सभी बिना कष्टके ही क्रीड़ा-विहार कर सकते हैं।

श्रीदाम, सुबल और स्तोककृष्ण आदि गोपबालक श्रीकृष्ण और बलरामजीसे कहने लगे कि हमलोग गोवर्द्धन पर्वतकी तलहटीमें आये हैं। यहाँसे मात्र चार कोस दूर तालवन है। अतः हम अनायास ही

उस तालवनमें जा सकते हैं। परन्तु वहाँ धेनुकासुर नामका एक महाबलशाली असुर रहता है, उसके भयसे हमारा तालवनमें प्रवेश करनेका साहस नहीं होता है। धेनुकासुर गधेके रूपमें रहता है और महापराक्रमी है। यदि वह अकेला रहता, तो हम सभी मिलकर उसे मार डालते। किन्तु उसके परिवारवाले भी उसके ही जैसे गधेका रूप बनाकर रहते हैं और वे भी महापराक्रमी हैं। इसलिए हे कृष्ण! हे बलरामजी! तुम्हीं वहाँ जाकर हमारे लिए तालफल ला सकते हो।

धेनुकासुर आदि जितने भी असुर तालवनमें वास करते हैं, वे सभी नरमांस-भोजी एवं अत्यधिक हिंसक स्वभावके हैं। उनके भयसे तालवनमें मनुष्य नहीं जा सकते। यहाँ तक कि गायें और पक्षी तक भी भयसे वहाँ प्रवेश नहीं करते। दुष्ट धेनुकासुरके अत्याचारसे कोई उन फलोंका उपभोग नहीं कर सकता। देखो, वर्षाकालीन वायुके द्वारा लायी गयी तालवनके सुपक्व तालफलोंकी मृदु-मधुर सुगन्ध चारों ओर फैल रही है।

बलदेवजी और कृष्णने अपने सुहृद सखाओंकी प्रार्थना सुनकर उनका मनोरथ पूर्ण करनेकी इच्छा की एवं हँसते-हँसते कहने लगे—सखाओ! तुम्हारी जब तालफल खानेकी अभिलाषा हुई है, तब वह निश्चित ही पूर्ण होगी। चलो, हम अभी तालवन चलते हैं। यह कहकर श्रीदाम, सुबल आदि असंख्य गोपबालकोंसे घिरकर कृष्ण और बलराम तालवनकी ओर अग्रसर होने लगे॥ २०-२८॥

**फलानां पततां शब्दं निशम्यासुररासभः।**
**अभ्यधावत् क्षितितलं सनगं परिकम्पयन्॥ २९॥**

**अन्वयः**—असुररासभः (गधेका रूपधारी वह धेनुकासुर) पततां फलानां शब्दं निशम्य (गिरते हुए फलोंका शब्द सुनकर) सनगं क्षितितलं (पर्वतसहित भूतलको) परिकम्पयन् अभ्यधावत् (कँपाते हुए दौड़ता हुआ सामने आया)॥ २९॥

**अनुवाद**—जब तालफल भूमिपर गिरने लगे, तब उनके गिरनेका शब्द सुनकर गधेके रूपमें वह असुर पर्वतोंके साथ-साथ भूमिको भी कम्पित करता हुआ उस ओर दौड़ा॥ २९॥

**सारार्थदर्शिनी**—सनगं कुलपर्वतैरपि सहितम्॥ २९॥

**भावानुवाद**—*'सनगम्'*—पर्वतोंके साथ सारी पृथ्वीको कँपाते हुए धेनुकासुर बड़े वेगसे गोपबालकोंके समीप आया॥ २९॥

**समेत्य तरसा प्रत्यग्द्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली।**
**निहत्योरसि काशब्दं मुञ्चन् पर्यसरत् खलः॥ ३०॥**

**अन्वयः**—बली (बलवान) खलः (तथा क्रूर स्वभाववाले धेनुकासुरने) तरसा (अति वेगके साथ) समेत्य प्रत्यग्द्वाभ्यां (निकटमें आकर पीछेके) पद्भ्यां बलं (पैरोंसे बलदेवके) उरसि (वक्षःस्थलमें) निहत्य (आघातकर) काशब्दं (गधेका जैसा कर्कश शब्द) मुञ्चन् (करता हुआ) पर्यसरत् (चारों और दौड़ने लगा)॥ ३०॥

**अनुवाद**—वह असुर बड़ा ही बलवान एवं क्रूर स्वभाववाला था। बड़े वेगसे बलरामजीके सामने आकर उसने अपने पिछले पैरोंसे उनके वक्षःस्थलपर आघात किया और उसके बाद वह दुष्ट गधेके समान बड़े जोरसे रेंकता हुआ चारों ओर दौड़ने लगा॥ ३०॥

**सारार्थदर्शिनी**—प्रत्यग्द्वाभ्यां पश्चिमाभ्यां द्वाभ्यां काशब्दमिति गर्दभशब्दानुकरणं पर्यसरत् परितोऽधावत्॥ ३०॥

**भावानुवाद**—धेनुकासुरने पीछेके पैरोंसे बलदेवजीके वक्षःस्थलपर बड़े जोरसे दुलत्ती मारी तथा गधेके समान बड़े कर्कश स्वरसे रेंकता हुआ इधर-उधर दौड़ने लगा, अर्थात् पुनः पदाघात करनेका अवसर ढूँढ़ते हुए चारों ओर दौड़ने लगा॥ ३०॥

**पुनरासाद्य संरब्ध उपक्रोष्टा पराक् स्थितः।**
**चरणावपरौ राजन् बलाय प्राक्षिपद्रुषा॥ ३१॥**

**अन्वयः**—राजन् (हे महाराज!) संरब्धः (अत्यन्त क्रोधी स्वभाववाला) उपक्रोष्टा (गधेका रूपधारी वह धेनुकासुर) पुनः आसाद्य (फिरसे समीप आकर) पराक् स्थितः (बलदेवजीकी ओर पीठकर खड़ा हो गया तथा) रुषा (महाक्रोधसे) अपरौ चरणौ (पीछेके

दोनों पैरोंको) बलाय (बलदेवको लक्ष्य करके) प्राक्षिपत् (फेंकने लगा)॥ ३१ ॥

**अनुवाद**—हे राजन्! वह गधारूपी असुर अति क्रोधित होकर पुनः रेंकता हुआ बलरामजीके पास पहुँचा और उनकी ओर पीठ करके बड़े क्रोधसे उनपर दुलत्ती चलाने लगा॥ ३१ ॥

**सारार्थदर्शिनी**—संरब्धः कोपि उपक्रोष्टा निकट एव काशब्दं कुर्वन् पराक् पृष्ठीकृत्यस्थितः॥ ३१ ॥

**भावानुवाद**—बहुत ही क्रोधित होकर वह गधेका रूप धारण करनेवाला असुर जोरसे रेंकता हुआ फिरसे बलरामजीके समीप आकर उनकी ओर पीठकरके खड़ा हो गया तथा उनपर दुलत्ती चलाने लगा॥ ३१ ॥

**स तं गृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना।**
**चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम्॥ ३२ ॥**

**अन्वयः**—सः (बलदेवने) एकपाणिना (एक हाथसे) तं (धेनुकासुरके) प्रपदोः गृहीत्वा (दोनों पैर पकड़कर) भ्रामयित्वा (घुमा-घुमाकर) भ्रामणत्यक्तजीवितं (घुमानेसे उसके प्राणोंके निकल जानेपर उसे) तृणराजाग्रे (तालवृक्षोंके ऊपर) चिक्षेप (फेंक दिया)॥ ३२ ॥

**अनुवाद**—तब बलदेवजीने अपने एक ही हाथसे उसके दोनों पैर पकड़ लिये और उसे आकाशमें जोर-जोर-से घुमाने लगे। घुमानेके वेगके कारण उस असुरके प्राण निकल गये। तब बलदेवजीने उसे तालवृक्षोंके ऊपर दे मारा॥ ३२ ॥

**सारार्थदर्शिनी**—तं धेनुकं प्रपदोः पदयोरग्रभागे इत्यर्थः। तृणराजस्तालः॥ ३२ ॥

**भावानुवाद**—बलरामजी एक हाथसे ही धेनुकासुरके दोनों पैर पकड़कर घुमाने लगे, तत्पश्चात् उन्होंने तालवृक्षके ऊपर उसकी मृतदेहको पटक दिया॥ ३२ ॥

**तेनाहतो महातालो वेपमानो महच्छिराः।**
**पार्श्वस्थं कम्पयन् भग्नः स चान्यं सोऽपि चापरम्॥ ३३॥**

**अन्वयः**—तेन आहतः (मरे हुए धेनुकासुरके शरीरके आघातसे) महच्छिराः (विशाल मस्तकवाला) महातालः वेपमानः (महान तालवृक्ष कम्पित होकर) पार्श्वस्थं (पासके वृक्षको भी) कम्पयन् (कँपाते हुए) भग्नः (टूट गया) सः अपि च अपरं (उसने दूसरेको गिराया, इस प्रकार एक-दूसरेसे टकराकर वृक्ष गिरने लगे)॥ ३३॥

**अनुवाद**—उस असुरके शरीरके आघातसे वह महान तालका वृक्ष, जिसका ऊपरी भाग बहुत विशाल था, स्वयं तो तड़तड़ाता हुआ गिरा ही, साथ ही उसने पासमें सटे हुए दूसरे तालवृक्षको भी गिरा दिया। इस प्रकार एकसे दूसरा, दूसरेसे तीसरा, तीसरेसे चौथा—बहुत-से तालवृक्ष गिर पड़े॥ ३३॥

**बलस्य लीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः।**
**तालाश्चकम्पिरे सर्वे महावातेरिता इव॥ ३४॥**

**अन्वयः**—बलस्य (बलदेवके द्वारा) लीलया (अति सहज रूपसे) उत्सृष्टखरदेहहताहताः (फेंके गये उस गधेकी आकृतिवाले धेनुकासुरके शरीरके द्वारा पर्यायक्रमसे आहत होकर) सर्वे तालाः (सभी तालवृक्ष) महावातेरिताः (प्रबल आँधी तूफानसे) इव चकम्पिरे (पीड़ितकी भाँति कम्पित होने लगे)॥ ३४॥

**अनुवाद**—बलरामजीके द्वारा खेल-ही-खेलमें फेंके हुए असुरके शरीरके आघातसे कतारमें लगे समस्त तालवृक्ष एक-दूसरेसे टकरानेके कारण इस प्रकार हिल गये मानो किसी प्रबल झंझावातने उन्हें झकझोर दिया हो॥ ३४॥

**सारार्थदर्शिनी**—उत्सृष्टेन खरदेहेन हतैस्तालैराहताः प्राप्ताघाताः॥ ३४॥

**भावानुवाद**—श्रीबलरामके द्वारा अति सहज रूपसे फेंके गये उस धेनुकासुरके शरीरके आघातसे जो-जो तालवृक्ष गिर पड़े थे, उनके

टकरानेसे बहुत-से अन्य तालवृक्ष भी मानों प्रबल झंझा-वातवशतः काँपने लगे॥ ३४॥

**नैतच्चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे।**
**ओतप्रोतमिदं यस्मिंस्तन्तुष्वङ्ग यथा पटः॥ ३५॥**

**अन्वयः**—अङ्ग (हे महाराज!) जगदीश्वरे भगवति अनन्ते हि (निश्चित रूपसे जगदीश्वर भगवान् अनन्तदेवके लिए) एतत् (यह कार्य) चित्रं न (कोई आश्चर्यजनक नहीं है) यस्मिन् इदं (जिनमें यह ब्रह्माण्ड) तन्तुषु पटः इव ओतं प्रोतं (कपड़ोंमें सूतकी भाँति ओतप्रोत रूपसे वर्त्तमान है)॥ ३५॥

**अनुवाद**—हे राजन्! जिस प्रकार सूतोंमें वस्त्र ओतप्रोत रहता है, उसी प्रकार निखिल ब्रह्माण्ड जिनमें ओतप्रोत रहता है, उन जगदीश्वर भगवान् अनन्तदेवके लिए यह कार्य कुछ अद्भुत नहीं है॥ ३५॥

**सारार्थदर्शिनी**—विश्वम् ओतं अग्रतन्तुषु पट इव ग्रथितं प्रोतं तिर्यक् तन्तुषु पटवदेव ग्रथितं सर्वतोऽनुस्यूतं वर्त्तत इत्यर्थः॥ ३५॥

**भावानुवाद**—सूतोंमें वस्त्रकी भाँति अर्थात् सूतोंमें जैसे वस्त्र ओतप्रोत रहता है, वैसे ही यह सम्पूर्ण विश्व श्रीबलदेवजीमें ओतप्रोत है। ऐसे जगदीश्वर भगवान् अनन्तदेवके लिए तालवृक्षोंको हिला देना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है॥ ३५॥

**ततः कृष्णञ्च रामञ्च ज्ञातयो धेनुकस्य ये।**
**क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन् सर्वे संरब्धा हतबान्धवाः॥ ३६॥**

**अन्वयः**—ततः ये धनुकस्य ज्ञातयः (अनन्तर धेनुकासुरके जितने आत्मीय थे) हतबान्धवाः (अपने बान्धवकी मृत्युपर) सर्वे संरब्धा (वे सभी क्रुद्ध होकर) क्रोष्टारः (आक्रोशपूर्वक) अभ्यद्रवन् (बलदेवजीकी ओर दौड़ते हुए आये)॥ ३६॥

**अनुवाद**—इसके बाद धेनुकासुरके जो बन्धु-बान्धव थे, वे अपने बान्धवकी मृत्युसे बड़े ही क्रोधित होकर अति वेगके साथ बलराम और कृष्णपर टूट पड़े॥ ३६॥

**तांस्तानापततः कृष्णो रामश्च नृप लीलया।**
**गृहीतपश्चाच्चरणान् प्राहिणोत् तृणराजसु॥ ३७॥**

**अन्वयः**—नृप (हे राजन्!) कृष्णः रामः च आपततः (राम और कृष्ण आनेवाले) तान् तान् (उन असुरोंके) लीलया (अनायास रूपमें) गृहीतपश्चाच्चरणान् (पीछेके पैरोंको पकड़कर) तृणराजेसु (तालवृक्षोंके ऊपर) प्राहिणोत् (फेंकने लगे)॥ ३७॥

**अनुवाद**—हे राजन्! तब कृष्ण एवं बलराम दोनों ही अपने समीप आनेवाले असुरोंके पिछले पैरोंको पकड़कर उन्हें खेल-ही-खेलमें तालवृक्षोंके ऊपर पटकने लगे॥ ३७॥

**सारार्थदर्शिनी**—हे नृप॥ ३७॥

**भावानुवाद**—हे राजन्! बलरामजी और श्रीकृष्णने बड़े वेगसे दौड़कर आये हुए उन असुरोंके पीछेके दोनों पैरोंको पकड़कर खेल-ही-खेलमें उन्हें तालवृक्षोंके ऊपर पटक दिया॥ ३७॥

**फलप्रकरसङ्कीर्णं दैत्यदेहैर्गतासुभिः।**
**रराज भूः सतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलम्॥ ३८॥**

**अन्वयः**—[उस समय] सतालाग्रैः (टूटे हुए तालवृक्षोंके ऊपर) गतासुभिः (प्राणहीन दैत्य देहसमूहके द्वारा) घनैः (बादलोंसे) नभस्तलं इव (गगनमण्डलकी भाँति) फलप्रकरसङ्कीर्णं भूः रराज (फलोंके द्वारा परिव्याप्त धरणीकी शोभा होने लगी)॥ ३८॥

**अनुवाद**—उस समय सारी भूमि गिरे हुए तालवृक्षों, तालफलों और प्राणहीन दैत्योंके शरीरोंसे पट गयी, जिससे उस भूमिकी इस प्रकार शोभा हो रही थी, जिस प्रकार मेघ-मालाओंसे आकाश ढक जाता है॥ ३८॥

**सारार्थदर्शिनी**—फलप्रकरसङ्कीर्णं यथा स्यात् तथा भू रराज। केः दैत्यदेहैः निर्भिन्नतालाग्रसहितैः तेषां स्वतः श्यामत्वात् रुधिरोक्षितत्वाच्च घनैः श्यामरक्तैर्नभस्तलमिव *"तलं स्वरूपाधारयोः"* इति विश्वः॥ ३८॥

**भावानुवाद**—*'फलप्रकर सङ्कीर्णम्'*—उस समय वहाँकी भूमि फलोंसे पट गयी और उससे बड़ी सुशोभित हो गयी। कैसे सुशोभित हुई? इसके लिए कह रहे हैं—*'दैत्यदेहैः'* गिरे हुए तालवृक्षोंके सहित मृत असुरोंके शरीरों और बहुत-से तालफलोंसे वह भूमि पट गयी और परम सुशोभित होने लगी। तालफल स्वाभाविक रूपसे काले होते हैं, उनमें रक्त लगनेके कारण, श्याम-रक्त आदि विविध वर्णके बादलोंके द्वारा आकाशकी जैसी शोभा होती है, वैसी ही पृथ्वीकी भी शोभा होने लगी॥ ३८॥

**तयोस्तत् सुमहत् कर्म निशम्य विबुधादयः।**
**मुमुचुः पुष्पवर्षाणि चक्रूर्वाद्यानि तुष्टुवुः॥ ३९॥**

**अन्वयः**—विबुधादयः (देवता आदि) तयोः (राम-कृष्णके) तत् सुमहत्कर्म निशम्य (उस सुमहान कर्मको देखकर) पुष्पवर्षाणि मुमुचुः वाद्यानि चक्रुः तुष्टुवुः (पुष्पवर्षण, वाद्यध्वनि और स्तुति करने लगे)॥ ३९॥

**अनुवाद**—बलराम और कृष्णकी इस सुमहती एवं मङ्गलमयी लीलाको देखकर देवता पुष्प-वर्षण करते हुए वाद्य बजाने लगे और स्तुति करने लगे॥ ३९॥

**अथ तालफलान्यादन् मनुष्या गतसाध्वसाः।**
**तृणं च पशवश्चेरुर्हतधेनुककानने॥ ४०॥**

**अन्वयः**—अथः (धेनुकासुरके वधके पश्चात्) गतसाध्वसाः (निर्भय होकर) मनुष्याः (सभी लोग) तालफलानि आदन् (तालफलोंका भक्षण करने लगे) पशवः (एवं गायें) हतधेनुक कानने तृणञ्च चेरुः (उस वनमें घास चरने लगीं)॥ ४०॥

**अनुवाद**—धेनुकासुरके वधके पश्चात् सभी लोग निर्भय होकर उस वनके स्वादिष्ट तालफल खाने लगे एवं गाय आदि पशु भी स्वच्छन्दतासे वहाँ घास चरने लगे॥ ४०॥

**सारार्थदर्शिनी**—मनुष्यास्तत्रत्याः पुलिन्दादय एव न तु गोपाला आदन् गर्दभरक्तोक्षितत्वेन फलेषु घृणोत्पत्तेः॥ ४०॥

**भावानुवाद**—*'मनुष्याः'*—केवल पुलिन्द जातीय मनुष्य ही निर्भय रूपसे उस वनके तालफल खाने लगे, किन्तु ग्वालबालोंने नहीं खाये, क्योंकि गधोंके रक्तसे सने हुए होनेके कारण तालफलोंके प्रति उन्हें घृणा हो गयी थी॥ ४०॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—श्रीदाम, सुबल आदि अनगिनत गोपबालकोंसे घिरकर बलरामजी और कृष्ण दोनों भाई गोवर्द्धनकी तलहटीसे होकर तालवनमें पहुँचे। उन्होंने देखा कि वह वन पके हुए तालफलोंसे लदे हुए असंख्य गगनचुम्बी तालवृक्षोंसे भरा हुआ है। किन्तु धेनुकासुरके भयसे वहाँ कोई भी नहीं जाता था, जिससे वह वन बिल्कुल निस्तब्ध एवं सुनसान पड़ा हुआ था। केवल बीच-बीचमें वायुके झोंकोंसे हिलते-डुलते तालपत्रोंका शब्द सुनायी पड़ता था, जो मानो यह सूचित कर रहा था कि तालवृक्ष अब असुरके अधीन नहीं रह सकते।

बलदेवजी बड़े जोरसे गर्जन करते हुए और ताल ठोंकते हुए सबसे आगे चल रहे थे। उस वनमें प्रवेशकर वे दोनों हाथोंसे तालवृक्षोंको पकड़कर उसी प्रकार हिलाने लगे, जैसे मदमत्त गजराज केलेके वनमें प्रवेशकर सूँड़के द्वारा केलेके वृक्षोंको हिला देता है। उससे असंख्य तालफल भूमिपर गिरने लगे। एक तालवृक्षके हिलनेसे दूसरे तालवृक्ष भी काँपने लगे तथा उनसे भी असंख्य तालफल गिरने लगे। देखते-देखते वहाँकी भूमि तालफलोंसे पट गयी। तालवृक्षोंके हिलने और तालफलोंके गिरनेका तुमुल शब्द सुनकर तालवनके दूसरे भागमें रहनेवाला महाबलवान और महापराक्रमी धेनुकासुर अत्यन्त क्रोधित होकर वहाँपर आ पहुँचा। उस समय क्रोधसे उसकी आँखें

लाल हो रही थीं। अनगिनत ग्वालबालोंके साथ बलरामजी और कृष्णको देखकर वह बड़े वेगसे उनकी ओर झपटा।

धेनुकासुरकी आकृति एक बहुत बड़े गधेकी भाँति थी, उसकी चलन-भङ्गिको देखनेसे लगता था कि जैसे एक विशाल पर्वत चल रहा हो। उसके बलवीर्यकी बात क्या कहें, देवता तक भी उससे डरते थे। जब वह बड़े वेगसे बलदेवजी, कृष्ण और गोपबालकोंकी ओर झपटा, तब उसके पैरोंकी धमकसे पृथ्वी डगमगाने लगी एवं आकशमार्गमें स्थित देवता भी भयसे काँपने लगे।

धेनुकासुरने बड़े वेगसे बलदेवजीके सामने आकर अपने पिछले पैरोंसे उनके वक्षःस्थलपर दुलत्ती मारी एवं कर्कश स्वरसे रेंकता हुआ मण्डलाकारमें दौड़ने लगा तथा फिरसे बलदेवजीपर आक्रमण करनेका अवसर खोजने लगा। कुछ क्षण बाद उसने फिरसे बलदेवजीके सामने आकर उनको पीछेके पैरोंसे आघात किया।

बलदेवजी अब तक शान्तभावसे खड़े थे। मदमत्त हस्तीको पुष्पमालाके द्वारा आघात करनेपर जैसे उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वैसे ही बलदेवजी भी धेनुकासुरकी दुलत्तीकी मारसे विचलित नहीं हुए। द्वितीय बार जैसे ही उसने दुलत्ती मारी, वैसे ही उन्होंने बाँयें हाथसे उसके दोनों पैरोंको पकड़ लिया और अलातचक्रकी भाँति आकाशमें घुमा-घुमाकर उसे मार डाला एवं उसकी मृतदेहको तालवृक्षके ऊपर पटक दिया। धेनुकासुरकी पर्वत जैसी मृतदेहके प्रबल आघातसे वह तालवृक्ष काँपता हुआ बगलवाले वृक्षपर जा गिरा। इस प्रकार एक दूसरेसे टकराकर बहुत-से तालवृक्ष गिर पड़े। उस समय ऐसा जान पड़ रहा था, मानो सबको प्रबल आँधीने झकझोर दिया हो।

बलदेवजीका यह कार्य असम्भव-सा या परम आश्चर्यजनक हो सकता है, किन्तु उनके स्वरूपका विचार करनेपर यह कार्य उनके लिए एक खेलमात्र था। बलदेवजी अखिल ब्रह्माण्डपति सर्वशक्तिमान स्वयं-भगवान् कृष्णके द्वितीय व्यूह मूलसङ्कर्षण हैं, अतः वे कृष्णसे भिन्न नहीं हैं। इन्हीं सङ्कर्षणके अंशके अंश पुरुषावतारसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि होती है एवं मत्स्य, कूर्म आदि अवतार प्रकाशित

होते हैं। अतः ऐसे सामान्य धेनुकासुरका वध उनके लिए आश्चर्यजनक नहीं है।

इस प्रकार धेनुकासुरकी मृत्यु होनेपर उसके आत्मीय परिजन गधोंका रूप धारण करनेवाले असुर क्रोधित होकर गोपबालकोंकी ओर झपटे। उनके रेंकनेकी कर्कश-ध्वनिसे दसों दिशाएँ गूँज उठीं और पृथ्वी काँपने लगी। यह देखकर श्रीकृष्ण और बलदेवजी सखाओंको पीछे धकेलकर आगे बढ़ गये और अति सहज रूपसे असुरोंके पिछले पैरोंको पकड़-पकड़कर तालवृक्षोंके ऊपर पटकने लगे। इस प्रकार दोनोंने तालवनके सभी असुरोंका विनाश कर दिया। उनके द्वारा पटके गये असुरोंकी देहोंके आघातसे तालवनके रहे-सहे तालवृक्ष भी टूटकर गिर गये। उस समय तालवनकी भूमि श्वेत, रक्त, नील, पीत आदि विविध वर्णवाली मेघमालाओंसे परिव्याप्त आकाशकी भाँति सुशोभित हो रही थी।

धेनुकासुर और उसके अनुगामियोंकी मृत्यु होनेसे तालवन अब पूर्ण रूपसे निर्भय वन हो गया। तब सभी लोग निर्भय होकर तालवनमें आने-जाने लगे और तालफल खाने लगे। गायें आदि पशु भी निर्भय रूपसे वहाँ विचरण करते हुए घास चरने लगे। इस प्रकार श्रीकृष्ण और बलदेवजीकी कृपासे तालवन सबके लिए सुखदायी भूमि बन गया। उस दिन गोपबालक तालफल खा नहीं सके, क्योंकि इतने असुरोंके खूनसे सने हुए फलोंको देखकर उन्हें घृणा हो गयी। उसके बाद वे गोचारणके लिए तालवनमें नित्य-प्रति आने लगे॥ २९-४०॥

**कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः।**
**स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजो व्रजमाव्रजत्॥ ४१॥**

**अन्वयः—**पुण्यश्रवणकीर्तनः (जिनके नामका श्रवण-कीर्त्तन पुण्यजनक है, ऐसे) कमलपत्राक्षः (कमललोचन श्रीकृष्णने) साग्रजः (बलदेवके साथ) अनुगैः गोपैः (अनुचर गोपोंके द्वारा) स्तूयमानः (प्रशंसित होकर) व्रजं आव्रजत् (व्रजमें प्रवेश किया)॥ ४१॥

**अनुवाद—**जिनके वेणुगीतका श्रवण करनेसे कर्णपुट पवित्र हो जाते हैं, उन कमललोचन कृष्णने अपने बड़े भाईके साथ व्रजमें प्रवेश

किया। उस समय उनके पीछे-पीछे चलती हुई गोपालमण्डली उनकी स्तुति कर रही थी॥ ४१॥

**सारार्थदर्शिनी—**वनाद्गोष्ठप्रवेशलीलामाह त्रिभिः-कृष्ण इति। व्रजस्थानां चित्तास्याकर्षणं कमलपत्राक्ष इति नेत्रनासयो राकर्षणम्। पुण्ये धन्ये श्रवणे कर्णौ यतस्तथाभूतं कीर्तनं वेणुगानं यस्य सः इति श्रोत्रस्याप्याकर्षणं ध्वनितम्॥ ४१॥

**भावानुवाद—**वनसे गोष्ठमें प्रवेश-लीलाका—*'कृष्णः'* इत्यादि तीन श्लोकोंमें वर्णन कर रहे हैं, इससे व्रजस्थित सबके चित्तका आकर्षण, *'कमलपत्राक्षः'* अर्थात् कमलनयन—इससे नेत्र और नासिकाका आकर्षण, *'पुण्यश्रवण-कीर्तनः'*—जिससे दोनों कान भी कृतार्थ हो जाते हैं, ऐसा वेणुगीत है जिनका, इससे कानोंका आकर्षण भी प्रकट हो रहा है॥ ४१॥

**तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धवर्ह-**
**वन्य प्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम्।**
**वेणुं क्वणन्तमनुगैरूपगीतकीर्तिं**
**गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन् समेताः॥ ४२॥**

**अन्वयः—**गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धवर्हवन्य प्रसुनरुचिरेक्षणचारुहासं (उस समय गायोंके चरणोंसे उड़ी धूलिसे कृष्णके केश रञ्जित हो रहे थे। उनके सिरपर मोरपङ्ख एवं केशोंमें वनकुसुम गुँथे हुए थे, उनका सुमधुर हास्य और मनोहर कटाक्षपात भी प्रकाशित हो रहा था) वेणुं क्वणन्तं (वे वेणु बजाते हुए आ रहे थे) अनुगैः (अनुचरगण) उपगीत कीर्तिं (उनका यशोगान कर रहे थे, ऐसे) तं (उन श्रीकृष्णको) दिदृक्षित दृशः (दर्शन करनेकी अभिलाषासे उत्सुक नयनोंसे) गोप्यः (गोपियाँ) समेताः (मिलकर) अभ्यगमन् (वहाँ समुपस्थित हुईं)॥ ४२॥

**अनुवाद—**उस समय गायोंके खुरोंसे उड़ी धूलिकणोंसे श्रीकृष्णकी घुँघराली अलकावलियाँ रञ्जित हो रही थीं। उनके सिरपर मोरमुकुट था एवं बालोंमें सुन्दर-सुन्दर वन्य-फूल गुँथे हुए थे। उनके मुखपर मधुर मुसकान एवं नेत्रोंमें मनोहर चितवन थी। वे मधुर-मधुर वेणु बजाते हुए आ रहे थे। उनके पीछे-पीछे चलनेवाले साथी ग्वालबाल

उनके मधुर यशका गान कर रहे थे। गोपियाँ उन्हें देखनेकी इच्छासे दल बनाकर आयी हुई थीं, न जाने कबसे श्रीकृष्णके दर्शनोंके लिए उनके नयन तरस रहे थे॥ ४२॥

**सारार्थदर्शिनी—**व्रजबालानां विशेषत आकर्षणमाह—तं गोप्योऽभ्यगमनं गोरजोभिश्छुरितेषु व्याप्तेषु कुन्तलेषु बद्धं बर्हं वन्यप्रसूनानि च यस्य रुचिरमीक्षणं चारुहासश्च यस्य, ईक्षणयोरचारुहासो वा यस्य तं। दिदृक्षिताः सञ्जातदर्शनेच्छा दृशो यासांता इति गोपीकर्तृकं लज्जा भयहेतुकं वर्ज्जनममानयन्त्यो दृशस्तदा करणत्वं परित्यज्य स्वतन्त्रकर्तृत्वं प्राप्ता इति ध्वनिः। तेन च प्रतिवेशिनां श्रोत्र-घ्राणेन्द्रियाणां वेणुसौस्वर्याङ्गसौरभ्यसम्पल्लाभमालक्ष्य मात्सर्येणैव स्वेषां रङ्कत्वमसहमानाः स्वाश्रयभूता गोपीः परित्यज्येव सम्पन्नीभवितुमिव चापल्यात् स्वयमेव कृष्णपार्श्वं चलिता इत्युत्प्रेक्षा ध्वन्यते। समेता इति सर्वा एव कुलवध्वः स्वस्वगृहान् विहाय चलन्ति पश्य मामेव किं त्वं वारयन्ती वधिष्यसीति स्व-स्व-श्वश्रूः प्रत्युत्तरयन्त्य इति भावः॥ ४२॥

**भावानुवाद—**अब *'तम्'* इत्यादि द्वारा कृष्णके प्रति विशेष रूपसे व्रजबालाओंका आकर्षण दिखा रहे हैं। वे गोपियाँ श्रीकृष्णकी ओर आने लगीं, उस समय कृष्णका स्वरूप कैसा था? इसके लिए कह रहे हैं—*'गोरजश्छुरित'* गायोंके खुरोंसे उठी धूलिसे धूसरित उनके केशकलापोंमें मयूरपुच्छ लगा हुआ था तथा केश वन्यपुष्पसे गुँथे हुए थे एवं जिनके नयन मनोहर एवं हास्य अति मधुर था, ऐसे कृष्णका दर्शन करनेके लिए गोपियाँ आयीं। *'दिदृक्षित दृशः'*—जिनके नेत्रोंमें कृष्णके दर्शनकी अभिलाषा जाग्रत हुई है, ऐसी व्रजबालाएँ। इससे गोपियों द्वारा लज्जा एवं भयहेतु निषेधकी अवज्ञा करते हुए उनके नेत्र उस समय करणत्वका परित्यागकर स्वतन्त्रकर्त्तृत्वको प्राप्त हो गये थे—ऐसा सूचित हो रहा है। अर्थात् गोपियोंके अधीन उनके नेत्र उस समय किसी प्रकारकी भी बाधा-निषेधको न मानकर स्वयं ही स्वतन्त्र भावसे श्रीकृष्णके मुखकमलका दर्शन करनेके लिए समुत्सुक हुए थे। इससे वह नेत्र अपने पड़ोसी कान और नाकको क्रमशः वेणुकी मधुर ध्वनि और कृष्णकी अङ्ग-सौरभ प्राप्तिरूप सम्पदको प्राप्त करते हुए देखकर, मानो मात्सर्यवश अपनी दीनदशाको सहन न कर पानेके कारण अपनी आश्रय-स्वरूपा गोपियोंको परित्यागकर समृद्ध होनेके

लिए चपलताके कारण स्वयं ही कृष्णके समीप जाने लगे—यह भाव प्रकट हो रहा है। *'समेताः'*—समस्त कुलवधुएँ परस्पर मिलकर अपना-अपना गृह परित्यागकर जा रही थी, यदि किसीकी सास उसे रोकती, तो वह कहती—देखो, केवलमात्र तुम मुझे ही क्यों मना कर रही हो, क्या मुझे मारना चाहती हो? इस प्रकार वे गोपियाँ अपनी-अपनी सासको प्रत्युत्तर देती हुईं श्रीकृष्णकी ओर जाने लगीं—यही भावार्थ है॥ ४२॥

**पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृङ्गै-**
**स्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽह्नि।**
**तत् सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं**
**सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षम्॥ ४३॥**

**अन्वयः**—व्रजयोषितः (व्रजाङ्गनाएँ) अक्षिभृङ्गैः (नयनरूप भ्रमरोंके द्वारा) मुकुन्दमुखसारघं (मुकुन्दके मुखकमलका मधु) पीत्वा (पानकर) अह्नि विरहजं (सारे दिनके विरहजनित) तापं जहुः (तापको परित्याग करती थीं) [श्रीकृष्णने भी] सव्रीडहासविनयं (उनके लज्जा सहित हास्य और विनययुक्त) यत् अपाङ्गमोक्षं (कटाक्ष दृष्टिरूप) तत् सत्कृतिं (सत्कारको) समधिगम्य (स्वीकारकर) गोष्ठं विवेश (गोष्ठमें प्रवेश किया)॥ ४३॥

**अनुवाद**—व्रजाङ्गनाओंने अपने भ्रमररूप नेत्रोंके द्वारा व्रजमें प्रवेश करनेवाले कृष्णके मुखकमलका मकरन्द पान करके समस्त दिनके विरहजनित तापको शान्त किया। श्रीकृष्णने भी उनके लज्जायुक्त हास्य एवं विनययुक्त प्रेममयी कटाक्षरूप सत्कारको स्वीकार करते हुए व्रजमें प्रवेश किया॥ ४३॥

**सारार्थदर्शिनी**—अभिगम्य किं चक्रुरित्यत आह—पीत्वेति। मुकुन्दस्य मुखे सारघं स्मितरूपं मधु अक्षिभृङ्गैः पीत्वा नत्वपाङ्गभृङ्गैः पीत्वेत्यनेन कृष्णस्यादृष्ट-गोपीकस्यान्यमनस्कस्यैव यत् साहजिकं स्मितं तत् ताभिर्निःशङ्कतया सम्पूर्णनेत्रैरेव पीतमिति गम्यते। ततश्च द्वितीयक्षणे कृष्णस्य तत्रावधाने सति हर्षोत्थो हासस्तासां यदैवाजनि तदैवोद्भूतया लज्जया स सम्पूर्णावलोको हासश्चावृतः वामकरकृतमवगुण्ठनं च। किञ्चित् संवृत्तं तत्तदावरणव्यञ्जितो विनयश्चाभूदित्येतत् सर्वमाधुर्यमेव

कृष्णोऽनुबभूवेत्याह—तत्सत्कृतिं तादृशावलोकनरूपां सत्कृतिं ताभिः कृतं किञ्चिदुपायनप्रदानरूपं सम्मानमित्यर्थः। समधिगम्य सम्यग्विदग्धशिरोमणित्वादधिगम्य सरसास्वादं स्वीकृत्य गोष्ठं विवेश। अत्र सत्कारसमधिगमक्रिययोः क्रमेण सव्रीडेत्यादिविशेषणद्वयं तेन च व्रीडया सहितो हासो विनयश्च यत्र तद्यथा स्यात्तथा तासां सत्कृतिं। यतः प्राप्नुवतः अपाङ्गस्य मोक्षो यत्र तद्यथा स्यात्तथा समधिगम्य गोष्ठं विवेशेत्यर्थः। ताभिः कृता सव्रीडहासविनया तादृशावलोकरूपा सत्कृतिः तस्याश्चाधिगमः कृष्णेन तत्प्राप्नुवद पाङ्गमोक्षसहितः कृत इति फलितम्। अत्र सम्पूर्णनेत्राभ्यां दर्शने तासां लज्जया सद्यो विमुखीभावः स्यादतस्तत्कटाक्षप्राप्त्यर्थमेव कृष्णेना पाङ्गमोक्ष इति ज्ञेयम्। अथैतद्विवरणं ताभिः प्रत्येकं स्वनयनाञ्जलावौत्सुक्यं सञ्चारिणा स्वपरिजनेनानीयावलोकनकुसुममर्पितं तथैव स्वाधरपल्लवाञ्जलौ हर्षसञ्चारिणा स्वपरिजनेनानीयार्पितं हास कुसुमञ्च गृहीत्वा एतद्वस्तुद्वयम्एवास्मद्गृहे तत्र भवते देयमेतावदेव वस्त्वस्ति तत् कृपया गृह्यतामिति यदैव दर्शितं तदैव तदुपायनमानेतुं कृष्णेन स्वप्रष्योऽपाङ्गोऽन्वयुज्यत। स च महाचपलः पूर्वमेव तद्दृयं तासामन्तर्गृहगतमऽपि चोरयितुमुद्यतः अतः कृष्णेन बद्धैव स्थापित आसीत् ताभिस्तस्मिन्नुपायनद्वये प्रकटीकृत्य दित्सिते सति स एव बन्धान्मोचितः सन् शूर इव शीघ्रं गत्वा तद्यदैव ग्रहीतुमारभत तत् क्षण एव तासां कोषाधिकारिण्या सख्या व्रीडया प्रादुर्भूय तदुपायनद्वयमावरीतुं प्रववृते ततश्च तयोर्विग्रहे प्रवृत्ते सन्ध्यर्थं विनये च तासां परिजने समायाते स च बलवान् कृष्णप्रेष्योऽपाङ्गो व्रीडा-विनयाभ्यां सहितमेव सहासावलोकनमुपायनमाकृष्यनीय कृष्णाय प्रादात्। स च तत्रिकमतिदुर्ल्लभ-महारत्नमिव प्राप्य स्वहृदयमन्दिराभ्यान्तर एव स्थापयामासेति कथा सत्कारव्यञ्जितोपलब्धा व्रीडा दीनां सर्वेषामेव च व्यञ्जकत्वेऽपि सत्कार मोक्षयोर्व्यञ्जकत्वातिशयात् कथेयमुपलब्धा, यद्वा व्रजयोषितोऽह्नि तापं जहुः। कास्ता व्रजयोषितः? यासामपाङ्गमोक्षं तत्तां प्रसिद्धां सत्कृतिं सत्कारं समधिगम्य गोष्ठं विवेश। कीदृशं सव्रीड़हासविनयम्। अत्र यत् पदस्योत्तरवाक्यगतत्वान्न तत्पदापेक्षा॥ ४३॥

**भावानुवाद**—श्रीकृष्णके सामने आकर व्रजबालाओंने क्या किया? इसके लिए *'पीत्वा'* इत्यादि कह रहे हैं। *'मुकुन्दमुख सारघम्'*—मुकुन्दके मुखमें जो स्मित-हास्यरूप मधु है, उसे *'अक्षिभृङ्गै'*—नेत्ररूप भौरोंके द्वारा, किन्तु अपाङ्गरूपी भ्रमर द्वारा नहीं, पानकर समस्त दिनका श्रीकृष्ण-विरहजनित जो सन्ताप था, उसे दूर किया। *'पीत्वा'*—पान करके, यह कहनेका तात्पर्य है कि गोपियोंको न देखकर अन्यमनस्क कृष्णकी जो स्वाभाविक मन्द-मुस्कान थी, उसका गोपियोंने निःसङ्कोच भावसे सम्पूर्ण नेत्रोंके द्वारा पान किया, ऐसा समझना होगा। इसके

पश्चात् जब कृष्णने उनकी ओर देखा, तब गोपियोंको बड़ा आनन्द होनेसे वे हँस पड़ीं। किन्तु लज्जाके कारण तुरन्त उन्होंने कृष्णका सम्पूर्ण अवलोकन एवं अपनी हँसीको छिपानेके लिए बाँये हाथसे घूँघट द्वारा मुखको ढक लिया। ऐसे आवरणके साथ गोपियोंका विनय भी प्रकाशित हो रहा था, यह सब माधुर्य श्रीकृष्णने अनुभव किया। इसे *'तत् सत्कृतिम्'* इत्यादि द्वारा कह रहे हैं—ऐसे अवलोकनरूप सत्कार अर्थात् उनके द्वारा प्रदत्त उपहारका सम्मान किया—यह अर्थ है। *'समधिगम्य'* विदग्ध-शिरोमणि श्रीकृष्णने उस सरस सत्कारको भलीभाँति स्वीकारकर गोष्ठमें प्रवेश किया। यहाँ सत्कार और समधिगम (सम्यक् रूपसे सम्मान प्राप्ति) इन दोनों क्रियापदोंमें यथाक्रमसे *'सव्रीड'* इत्यादि दो विशेषण प्रयोग हुए हैं। लज्जाके साथ हास्य और विनय होनेपर जैसा होता है, वैसा गोपियोंका सत्कार है। वैसे सम्मानको कृष्णने भी अपने कटाक्षसे स्वीकारकर गोष्ठमें प्रवेश किया।

यहाँ गोपियोंके द्वारा किया गया लज्जायुक्त हास्य और विनययुक्त तिरछी चितवनरूप सत्कार तथा कृष्णके द्वारा अपनी तिरछी चितवनसे उन दोनों उपहाररूप सत्कारोंको स्वीकार करना—यही इसका सार है। यहाँ प्रफुल्ल नेत्रोंसे देखनेपर गोपियाँ लज्जावश अपना मुख फिरा लेंगी—इसलिए गोपियोंके कटाक्षको पूर्ण रूपसे पानेके लिए कृष्ण भी अधखुली तिरछी चितवनसे उनकी ओर देख रहे हैं, ऐसा समझना चाहिये।

यहाँ विस्तृत रूपमें यह समझना चाहिये—गोपियोंने अपनी-अपनी नयनरूप अञ्जलियोंमें उत्कण्ठावशतः अपने परिजन सञ्चारी भावोंके द्वारा लाये गये तिरछी चितवनरूप पुष्पोंको श्रीकृष्णको अर्पण किया। वैसे ही उन्होंने अपने अधर-पल्लवरूपी अञ्जलीमें अपने परिजन हर्ष-सञ्चारीभावोंके द्वारा लाये गये हास्य कुसुम-प्रदान करते हुए कहा—आपको देनेके लिए हमारे घरोंमें बस इतना ही है, कृपापूर्वक इसे ग्रहण कीजिये। यह देखकर श्रीकृष्ण सोचने लगे कि जब ये नेत्रोंमें मधुर तिरछी चितवन और अधरोंमें स्मित-हास्यको उपहारमें

लायी हैं, तब उसे स्वीकार करना ही चाहिये। ऐसा सोचकर कृष्णने अपने सेवक—अपाङ्ग अर्थात् अपनी तिरछी चितवनको उन उपहारोंको ग्रहण करनेके लिए नियुक्त किया। किन्तु वह अपाङ्गरूपी महा-चञ्चल सेवक कृष्णकी आज्ञाके पहले ही उन दोनों उपहारोंके गोपियोंके हृदयके भीतर रहनेपर भी उन्हें चुरा लेनेके लिए विकल हो रहा था; किन्तु अब तक वह कृष्णके हृदयमें बँधा हुआ था। अब जब गोपियाँ स्वयं ही उन दोनों उपहारोंको अपने हृदयसे निकालकर देने लगीं, तब कृष्णके सेवक अपाङ्ग (तिरछी चितवन) ने बन्धनसे मुक्त होकर वीरकी भाँति शीघ्र ही आगे दौड़कर उन्हें लेना चाहा। उसी समय गोपियोंकी कोषाध्यक्षा सखी लज्जा आ पड़ी और उन दोनों उपहारोंको छिपाने लगी। तदनन्तर कृष्णके भेजे हुए तिरछी चितवन और गोपियोंकी सखी लज्जामें वाद-विवाद होने लगा। उसी समय उन लोगोंका परिजन विनय उन दोनोंमें सन्धि (सुलह) करानेके लिए उपस्थित हुआ। उसके आनेपर कृष्णके भेजे हुए बलवान अपाङ्गने लज्जा और विनयके साथ ही गापियोंकी तिरछी चितवनरूप उपहारको लाकर कृष्णको दे दिया। कृष्णने भी लज्जायुक्त हास्य और विनययुक्त तिरछी चितवन—इन तीनों उपहारोंको अति दुर्लभ महामूल्यवान रत्नोंकी भाँति प्राप्तकर उन्हें उपने हृदय-मन्दिरमें स्थापित कर लिया—यह बात 'सत्कार' शब्दकी व्यञ्जनासे प्राप्त होती है। और लज्जा आदि सबके प्रकाशित होनेपर भी सत्कार और कटाक्षके अधिक प्रकाशित होनेके कारण ऐसा बोध होता है। अथवा *'व्रजयोषितः'*—व्रजाङ्गनाएँ दिनमें कृष्णके विरहतापसे जल रही थीं, अब शान्त हो गयीं। ये व्रजाङ्गनाएँ कौन हैं? इसके उत्तरमें कह रहे हैं—*'यदपाङ्गमोक्षम्'*—जिनके तिरछी चितवन—अपाङ्गरूप प्रसिद्ध सत्कारको प्राप्तकर कृष्णने गोष्ठमें प्रवेश किया। वह अपाङ्ग कैसा है? इसके लिए कहते हैं—*'सव्रीड-हास-विनयम्'*—गोपियोंके लज्जायुक्त हास्य और विनयसे युक्त है।

यहाँ यत् और तत् पदका नित्य सम्बन्ध रहनेपर भी यहाँ यत् पद दूसरे वाक्यमें होनेसे तत् पदकी कोई अपेक्षा नहीं है॥ ४३॥

**तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले।**
**यथाकामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः॥ ४४॥**

**अन्वयः**—पुत्रवत्सले यशोदा रोहिण्यौ तयोः पुत्रयोः (पुत्रवत्सला यशोदा एवं रोहिणीदेवीने पुत्र कृष्ण और रामके) यथा कालं (समयानुसार) यथा कामं (इच्छाके अनुरूप) परमाशिषः (उत्कृष्ट भोगको) व्यधत्तां (सम्पन्न किया)॥ ४४॥

**अनुवाद**—पुत्रवत्सला माँ यशोदा और रोहिणीदेवीने कृष्ण एवं बलरामके इच्छानुरूप उत्तम-उत्तम भोज्य पदार्थ यथा समयपर तैयार किये॥ ४४॥

**सारार्थदर्शिनी**—यथाकामं पुत्रयोर्वाञ्छितं भक्ष्यादिकमनतिक्रम्य यथाकालं प्रदोषादिकं भोजनकालमनतिक्रम्य परमाशिषो भक्ष्यपरिधेयादिभोगान्॥ ४४॥

**भावानुवाद**—माँ यशोदा और रोहिणीदेवीने दोनों पुत्रोंकी अभिलाषाके अनुसार यथाकालमें अर्थात् भोजन करनेके समयको अतिक्रम न करते हुए स्वादिष्ट पकवान, व्यञ्जन आदि खाद्य पदार्थ उन्हें खिलाये तथा सुन्दर वस्त्र पहनाये॥ ४४॥

**गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्द्दनादिभिः।**
**नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रग्गन्धमण्डितौ॥ ४५॥**

**अन्वयः**—तत्र (घरमें) मज्जनोन्मर्द्दनादिभिः (स्नान, मार्जनादि क्रियाके द्वारा) गताध्वानश्रमौ (थकावट दूरकर) रुचिरां नीवीं (मनोहर वस्त्रोंको) वसित्वा (पहनकर) दिव्यस्रग्गन्धमण्डितौ (दिव्य माला, गन्ध आदिसे विभूषित हुए)॥ ४५॥

**अनुवाद**—यशोदा और रोहिणीदेवीने स्नान तथा अङ्गमार्जन आदिके द्वारा कृष्ण-बलरामके वनविहारका परिश्रम दूर किया। तत्पश्चात् उन्हें दिव्य वस्त्र, माला एवं चन्दन आदिसे विभूषित किया॥ ४५॥

**सारार्थदर्शिनी**—न श्रमोऽश्रमः स चेश्वरत्वात् नरलीलया तस्याभावस्त्वनश्रमः गतोऽध्वनोऽनश्रमः स एव ययोस्तौ। नीवीं परिधानवस्त्रम्॥ ४५॥

**भावानुवाद**—*'गताध्वानश्रमौ'*—उन दोनोंने कृष्ण-बलरामके पथकी क्लान्तिको दूर किया। अथवा *'न श्रमः अश्रमः'*—अर्थात् जो श्रम नहीं है, वही अश्रम है। ईश्वर होनेके कारण नरलीलामें उनका कोई परिश्रम नहीं होता है॥ ४५॥

**जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ।**
**संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे॥ ४६॥**

**अन्वयः**—(तदनन्तर) जनन्युपहृतं (माताओंके द्वारा प्रदत्त) स्वाद्वन्नं (सुस्वादु भोजन) प्राश्य (भोजनकर) वरशय्यायां (मनोरम शय्यामें) संविश्य उपलालितौ (शयनपूर्वक) व्रजे सुखं (व्रजमें सुखपूर्वक) सुषुपतुः (निद्रित हुए)॥ ४६॥

**अनुवाद**—उसके बाद बलराम और कृष्ण माताओंके द्वारा परोसा हुआ स्वादिष्ट भोजन ग्रहणकर व्रजमें मनोरम शय्यापर सो गये॥ ४६॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामीने बलदेव और गोपबालकोंके साथ श्रीकृष्णकी गोष्ठ-क्रीड़ा और धेनुकासुर वध-लीलाका वर्णनकर अन्तमें कहा—हे महाराज! अनन्त माधुर्य और ऐश्वर्यके निकेतन श्रीनन्दनन्दनने पौगण्ड अवस्थामें प्रवेश करनेपर प्रतिदिन गोचारणके समय कितनी मधुर-मधुर लीलाएँ और असुर-मारणादि ऐश्वर्यमयी लीलाएँ कीं, उनकी कोई सीमा नहीं है। मैंने तो केवल उनका दिग्-दर्शन कराया है। नन्दनन्दन प्रतिदिन पूर्वाह्नमें बलदेवजी और श्रीदाम, सुबलादि गोपबालकोंके साथ गोचारण करनेके लिए वनमें जाते हैं एवं विविध प्रकारका क्रीड़ा-विहार करते हैं। उससे वे गोपबालकोंका आनन्दवर्द्धन और स्वयं उनके सख्यप्रेमका आस्वादनकर तृतीय प्रहरमें घर लौटकर आते हैं। व्रजके वात्सल्यप्रेमके आधार वयस्क गोप-गोपियाँ, गोपकन्याएँ और गोपवधुएँ दिन भरके अदर्शनके पश्चात् कृष्णके मुखचन्द्रका दर्शनकर कितना आनन्द अनुभव करती हैं, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

नन्दनन्दनके श्रीअङ्गोंमें पौगण्डकी आयुमें ही कैशोर अवस्थाकी शोभा अभिव्यक्त हुई एवं श्रीराधा आदि गोपवधुओं और गोपकन्याओंमें

भी कैशोर अवस्थाके अनुरूप हावभाव प्रकाशित हुए। संसारमें भी बहुत-से बलिष्ठ बालकोंमें बाल्य अवस्थामें ही कैशोरकी शोभा देखी जाती है। अखिल-ब्रह्माण्डपति सच्चिदानन्द-विग्रह श्रीनन्दनन्दनमें यह कुछ भी असम्भव नहीं है। श्रीराधा आदि व्रजवधुएँ भी उन्हींकी ह्लादिनीशक्तिकी घनीभूत मूर्त्तियाँ हैं एवं श्रीकृष्णके साथ उनका सम्बन्ध भी अनादिकालसे ही है। इसलिए इस विषयमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। परन्तु अनन्त-लीलासिन्धु नन्दनन्दनकी मधुरलीला कैसे प्रकाशित हुई है, यहाँ वही आस्वादनीय है।

श्रीनन्दनन्दनके दोनों नेत्र स्वभावसे ही कमलदलकी भाँति बड़े-बड़े हैं। कैशोर-शोभाके आविर्भावसे मानो वे और भी बड़े और आकर्षक हो गये। कानों तक विस्तृत दोनों नेत्रोंके कोनोंमें लालिमाने प्रकाशित होकर मानो उन्हें और भी मत्त और चञ्चल बना दिया। उनकी कैशोर शोभायुक्त पौगण्ड आयुकी क्रीड़ाभङ्गिका दर्शनकर, श्रवणकर तथा कीर्त्तनकर व्रजकी गोप-गोपियाँ, विशेषकर व्रजवधुएँ कृष्णके विरहजनित तापको शान्त करती हैं। पूर्वाह्नसे अपराह्न काल तक गोचारण आदि विविध प्रकारका क्रीड़ा-विहारकर जब वे घरकी ओर लौटते हैं, तब श्रीदाम, सुबलादि गोपबालकगण उनके लीलाविहार आदिका कीर्त्तन करते-करते उनके पीछे-पीछे चलते हैं। कृष्ण भी बलदेवजीके कन्धेपर दाहिना हाथ रखकर चञ्चल-कमलनयनोंसे चारों ओर दृष्टिपात करते हुए व्रजमें प्रवेश करते हैं। आगे-आगे असंख्य गायें, दाहिनी ओर बलदेवजी एवं चारों ओर श्रीदाम, सुबलादि अनगिनत गोपबालकोंको साथ लेकर जब नन्दनन्दन अपराह्नकालमें वनसे व्रजमें प्रवेश करते हैं, तब गायोंके खुरोंसे उठनेवाली धूलसे धूसरित उनके मुख आदि श्रीअङ्गोंकी शोभाका दर्शनकर व्रजवासियोंके मन, प्राण, इन्द्रियाँ सभी मुग्ध होकर आनन्दसिन्धुमें निमग्न हो जाते हैं।

उनके सिरपर काले-काले घुँघराले केश-कलाप मुकुटकी भाँति बँधे होते हैं। उसके निम्न भागमें मालती पुष्पोंके द्वारा गूँथी हुई माला और चूड़ेमें रङ्ग-बिरङ्ग मयूरपङ्ख सुशोभित होता है। मालतीकी मालाको देखनेसे ऐसा लगता है, मानो नीलगिरिके शिखरके ऊपर शान्त-स्निग्ध और तरङ्ग-विहीन स्वच्छ सुरधुनी-धारा मण्डलाकारमें

प्रवाहित हो रही है एवं चूड़ेमें स्थित मयूरपुच्छ प्रबल आँधीके वेगसे धूलि-धूसरित और मेघाच्छन्न आकाशपटमें इन्द्रधनुषके समान प्रतीत होता है। गोष्ठ-क्रीड़ाके समय नाचने, गाने और कूदने-फाँदने एवं गायोंके पीछे-पीछे दौड़नेके समय नन्दनन्दनके मुकुटके रूपमें निबद्ध केश-कलापका कुछ अंश स्खलित होकर ललाटके ऊपर गिर जाता है, जो कृष्णके तीव्र गमनके कारण तथा हवाके झोंकेसे हिलने-डुलने लगता है। गायोंके खुरोंसे उठनेवाली धूलसे धूसरित उनके केशपाशसे परिशोभित ललाटको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कमलपराग-अनुरागी काले-काले भौंरे उड़कर उनके नीलकमल विनिन्दित मुखारविन्दमें प्रवेश करनेके लिए प्रबल चेष्टा कर रहे हैं। किन्तु उनकी चेष्टा सफल नहीं हो पा रही है। उनके मुखकमलकी बात क्या कहूँ, उसे देखनेसे ऐसा लगता है, मानो वह समस्त प्रकारके सौन्दर्य, माधुर्य, सौकुमार्य, लावण्य और कमनीयताका उत्पत्ति-स्थान है। जगत्की समस्त सुन्दर वस्तुओंके सौन्दर्य, माधुर्य और लावण्यका आस्वादन करनेके लिए विधाताने मानो जीवोंके नयनोंका सृजन किया है। जिसने इस सौन्दर्य-माधुर्यके उत्पत्ति-स्थान श्रीकृष्णके मुखारविन्दका अवलोकन नहीं किया, उनके दोनों नयन व्यर्थ हैं—मोरपङ्खपर अङ्कित नेत्रके समान ही हैं।

असीम-सौन्दर्य-माधुर्यके निकेतन श्रीकृष्णके मुखका मधुर-हास्य देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो अभी-अभी प्रस्फुटित नीलकमलसे अमृत-विनिन्दित मधुधारा प्रवाहित हो रही है। नयन-भङ्गि देखनेसे लगता है, मानो नृत्यपरायण दो खञ्जन पक्षी क्रमशः अग्रसर होकर वहीं अपना घर बनानेके लिए दौड़े आ रहे हैं।

इस प्रकार प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्गकी असीम शोभा विस्तार करते हुए नन्दनन्दन जब वनसे व्रजमें लौटने लगते हैं, तब मार्गमें उनके निकटमें स्थित चराचर समस्त प्राणी मुग्ध और बेसुध हो जाते हैं। जो दूर रहते हैं, वे भी कृष्णके मधुर वंशीनाद और कृष्णके सखा गोपबालकोंके 'हो' 'हो' शब्दसे आकृष्ट होकर कोई मार्गके किनारे, कोई घरके द्वारपर, कोई झरोंखेपर उपस्थित होकर अपलक नेत्रोंसे कृष्णके असमोर्ध्व रूप-माधुर्यका आस्वादनकर परितृप्त हो जाते हैं।

नन्दनन्दनने जिस दिनसे गोचारण करना प्रारम्भ किया है, उसी दिनसे यशोदा मैया आदि प्रौढ़ा गोपियाँ अपराह्नमें कृष्णकी बाँसुरीकी तान सुनते ही मक्खन आदि हाथमें लेकर घरसे बाहर निकल आती हैं एवं अपने-अपने द्वारपर खड़ी होकर कृष्णके आनेकी प्रतीक्षा करती रहती हैं। गोपियोंके हृदयमें कृष्णके दर्शनसे एक अपूर्व भाव सञ्चरित होता है। कृष्णका मुखकमल नहीं देखनेसे मानो उनका हृदय शून्यकी भाँति प्रतीत होता है, किन्तु कृष्णके निकट जानेमें सङ्कोच बोध होता है—इस प्रकार उनमें ऐसे नाना प्रकारके भावोंकी अभिव्यक्ति होने लगती है। श्रीकृष्ण जब अपराह्नमें वनसे व्रजमें लौटते हैं, तब समस्त भाग्यवती व्रजवधुएँ और व्रजकी कन्याएँ दूरसे कृष्णकी वेणुध्वनि सुनकर घरके सभी कार्योंको परित्यागकर अपने-अपने भावकी सङ्गिनी अनुरागिणी सखियोंके साथ मिलकर द्वारपर आ खड़ी होती हैं एवं कृष्ण-दर्शनकी लालसासे सतृष्ण नयनों और व्याकुल हृदयसे कृष्णके आगमनकी प्रतीक्षा करती हैं।

श्रीकृष्ण जब वेणुवादन करते-करते इन नवानुरागवती व्रजवधुओंके समीप आ जाते हैं, तब वे व्रजाङ्गनाएँ अपने-अपने नयनोंसे उनके मुखकमलसे निकलनेवाली मकरन्द-सुधाका पानकर आनन्दमें मत्त हो जाती हैं—उस समय ऐसा लगता है, मानो कृष्णके निकट न जाकर द्वारपर ही खड़ी रहनेके कारण उनके नयनोंने उनका परित्याग कर दिया है तथा स्वयं ही स्वतन्त्र भावसे जाकर भ्रमरके समान कृष्णके मुखकमलपर मँड़रा रहे हैं। अथवा व्रजवधुओंके नयन भृङ्गार (जलपात्र विशेष) हैं, उन पात्रोंमें वे अपने प्रियतम कृष्णके मुखकमल-निःसृत सौन्दर्य-मधुको भरकर उसे पान करके दिन भरकी दर्शन-पिपासा एवं विरहताप दूरकर परितृप्त हो रही हैं। कृष्ण भी उनके लज्जायुक्त हास्य और विनययुक्त तिरछी चितवनसे परम सन्तुष्ट होकर अपने गृहकी ओर चल पड़े।

इस प्रकार नन्दनन्दन वनसे व्रजमें लौटते समय बलदेवजी एवं श्रीदाम, सुबलादि गोपबालकोंसे दृष्टि बचाकर व्रजवधुओंका नयनानन्दवर्द्धन एवं नयन-भङ्गिसे उनका आदर-सत्कार ग्रहण करते हुए पूर्ववत् वेणुवादन करते हुए अपने गृहकी ओर बढ़ने लगे।

श्रीदाम, सुबलादिकी माताएँ भी अपने-अपने गृहद्वारपर दूध, मक्खन आदि लेकर कृष्णके आगमनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। कृष्ण उपयुक्त समयमें सबकी मनोकामना पूर्णकर एवं श्रीदाम सुबलादिको उनके-उनके घरोंमें भेजकर दाऊ भैयाके साथ अपने भवनके द्वारपर आ पहुँचे।

यशोदा मैया और रोहिणीजी दिनभरकी प्रतीक्षाके पश्चात् कमलके समान मुखवाले कृष्ण और बलदेवजीको देखकर वात्सल्यरसमें विभोर हो गयीं। उनके नेत्रोंसे अश्रु एवं स्तनोंसे दुग्धधारा स्वतः ही क्षरित होने लगी, जिससे उनके वक्षःस्थलके वस्त्र भीग गये और उससे वहाँकी भूमि भी गीली हो गयी। उन्होंने अत्यन्त व्याकुल होकर कृष्ण और बलदेवजीको गोदमें उठा लिया एवं बार-बार उनके मुखका चुम्बन करते हुए उन्हें लेकर अन्तःपुरमें प्रवेश किया। वे दोनों कृष्ण और बलदेवके समस्त अङ्गोंको हाथोंसे सहलाने लगी और उनके मुखका निरीक्षण करती हुई उनका कुशल पूछने लगीं। तत्पश्चात् उन्होंने उन दोनोंकी थकान दूर कराकर उन्हें स्नान कराया तथा दिव्य वस्त्र, अलङ्कार तथा माला-चन्दन आदि धारण कराकर भोजन-गृहमें ले गयीं।

वहाँपर कृष्ण-बलराम मैयाके द्वारा परोसे गये चर्व्य, चूष्य, लेह्य, पेय—इन चार प्रकारके भोजन पदार्थोंसे परितृप्त हुए और फिर उन्होंने शयनगृहमें जाकर दुग्ध-फेन जैसी शय्यापर शयन किया। सेवकगण उनकी यथायोग्य ताम्बुल-समर्पण, चामर-वीजन, पाद-सम्वाहन आदि सेवा करने लगे। यशोदा मैया और रोहिणीजी उनके अङ्गोंको अपने हाथोंसे धीरे-धीरे सहलाने लगीं, जिससे बलराम-कृष्ण दोनों भाई परमानन्दपूर्वक सो गये॥ ४१-४६॥

**एवं स भगवान् कृष्णो वृन्दावनचरः क्वचित्।**
**ययौ राममृते राजन् कालिन्दीं सखिभिर्वृतः॥ ४७॥**

**अन्वयः**—राजन् (हे महाराज!) एवं (इस प्रकार) वृन्दावनचरः स भगवान् श्रीकृष्णः क्वचित् (वृन्दावनविहारी भगवान् श्रीकृष्ण किसी एकदिन) सखिभिः वृतः (सखाओंसे घिरकर) रामं ऋते (बलदेवके बिना ही) कालिन्दीं ययौ (यमुना-किनारे गये)॥ ४७॥

**अनुवाद**—हे राजन्! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावनमें विचरण करते हुए अनेक प्रकारकी लीलाएँ करते थे। एकदिन वे बलदेवके बिना ही अपने सखा ग्वालबालोंसे घिरकर यमुना-पुलिनपर गये॥ ४७॥

**सारार्थदर्शिनी**—एवं कार्तिकगोपाष्टमीदिनलीलां समाप्य तद्वर्षीयनिदाघगतस्य कस्यचिद्दिनस्य लीलामाह-एवमिति राममृते इति जन्मर्क्षशान्तिकस्नानार्थं मातृभ्यां तस्य तद्दिने गृह एवोपवेशितत्वात्॥ ४७॥

**भावानुवाद**—इस प्रकार कार्त्तिक महीनेकी गोपाष्टमीके दिनकी लीलाका समापनकर उसी वर्षकी ग्रीष्मकालीन किसी एक दिनकी लीलाका वर्णन *'एवम्'* आदिसे कर रहे हैं। *'राममृते'* श्रीबलरामको छोड़कर अर्थात् उनका जन्मनक्षत्रका दिन होनेके कारण माङ्गलिक स्नानके लिए दोनों माताओंने बलरामजीको गृहमें रोक लिया था, इसलिए बलरामजी उस दिन नहीं गये॥ ४७॥

**अथ गावश्च गोपाश्च निदाघातपपीडिताः।**
**दुष्टं जलं पपुस्तस्यास्तृषार्त्ता विषदूषितम्॥ ४८॥**

**अन्वयः**—निदाघातपपीडिताः (ग्रीष्मकालीन सूर्यकी किरणोंके तापसे पीड़ित होकर) तृषार्त्ताः गावः च गोपाः च विषदूषितं तस्याः (प्यासी गायों और गोपोंने कालिन्दीके विषसे दूषित) दुष्टं जलं (अशुद्ध जलका) पपुः (पान किया)॥ ४८॥

**अनुवाद**—ग्रीष्मकालीन सूर्यकी तीव्र किरणोंके तापसे गौएँ एवं ग्वालबाल अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे। प्याससे उनका कण्ठ सूखा जा रहा था, अतः उन्होंने कालिन्दीका विष-दूषित जल पी लिया॥ ४८॥

**सारार्थदर्शिनी**—गाव इति पश्चात् शनैरागच्छन्तं कृष्णमनपेक्ष्य तृषार्त्तत्वात् द्रुतगामिन्यः तदनुद्रुताः केचन गोपाश्च॥ ४८॥

**भावानुवाद**—*'गावः'*—गायोंके पीछे-पीछे धीरे-धीरे आनेवाले कृष्णकी अपेक्षा न करके प्यासी होनेके कारण शीघ्र चलनेवाली गौओं और उन्हें चरानेवाले किसी-किसी ग्वालबालने यमुनाके उस विषैले जलको पी लिया॥ ४८॥

**विषाम्भस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः।**
**निपेतुर्व्यसवः सर्व्वे सलिलान्ते कुरूद्वह॥ ४९॥**

**वीक्ष्य तान् वै तथाभूतान् कृष्णो योगेश्वरेश्वरः।**
**ईक्षयामृतवर्षिण्या स्वनाथान् समजीवयत्॥ ५०॥**

**अन्वयः**—कुरूद्वह (हे परीक्षित!) दैवोपहतचेतसः (श्रीभगवान्की लीलाशक्तिके वैभवके द्वारा लुप्त-बुद्धि) सर्वे (सभी गोप और गायें) व्यसवः (उस विषाक्त जलके स्पर्शसे प्राणहीन होकर) सलिलान्ते (जलके किनारे) निपेतुः (गिर गये) योगेश्वरेश्वरः कृष्णः स्वनाथान् (योगेश्वरोंके भी ईश्वर कृष्णने अपने आश्रितजनोंको) तान् तथाभूतान् (इस प्रकार मृत) वै वीक्ष्य अमृतवर्षिण्या ईक्षया (देखकर अमृतवर्षिणी दृष्टि द्वारा) समजीवयत् (उन्हें फिरसे जीवित किया)॥ ४९-५०॥

**अनुवाद**—हे कुरुवंशधर परीक्षित्! भगवान्की लीलाशक्तिके वैभवके द्वारा लुप्त-बुद्धि सभी गोपों एवं गायों द्वारा विषाक्त जलके पीते ही वे प्राणहीन होकर यमुनाजीके तटपर गिर पड़े। उनके स्वामी और सर्वस्व तो एकमात्र श्रीकृष्ण ही थे। योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्णने जब अपने आश्रितोंको इस प्रकारसे मृत देखा, तो अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिके द्वारा उन्हें पुनः जीवित कर दिया॥ ४९-५०॥

**सारार्थदर्शिनी**—देवो भगवांस्तस्येदं दैवं लीलाशक्तिवैभवं तेनोपहतबुद्धयः *"कृष्णेनाद्भुतकर्मणा"* इति वक्ष्यमाणत्वात्। व्यसव इति लीलासौष्ठवार्थं योगमाययैव नित्यानामपि तेषामसूनाच्छाद्य तथा दर्शनात्॥ ४९-५०॥

**भावानुवाद**—*'दैवोपहतचेतसः'*—देव कहनेसे यहाँ भगवान्का बोध होता है तथा दैव उनकी लीलाशक्तिका वैभव है। उसके द्वारा जिनकी बुद्धि लुप्त हो गयी, ऐसी गौएँ और ग्वालबाल उस विषैले जलका स्पर्श करते ही प्राणहीन होकर यमुनाके तटपर गिर पड़े। यहाँपर लीला-माधुर्यके लिए योगमायाने ही नित्यपरिकर गोपबालकों और गायोंके प्राणोंका आच्छादनकर ऐसा दिखलाया था॥ ४९-५०॥

**ते सम्प्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलान्तिकात्।**
**आसन् सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परम्॥ ५१॥**

**अन्वयः**—ते सर्वे सम्प्रतीतस्मृतयः (तब वे पूर्व स्मृति प्राप्तकर) जलान्तिकात् (जलके किनारेसे) समुत्थाय (उठकर) परस्परं वीक्षमाणाः सुविस्मिताः आसन् (परस्पर एक दूसरेका मुख देखते हुए अतिशय आश्चर्ययुक्त हुए)॥ ५१॥

**अनुवाद**—जैसे ही उन्हें चेतना आयी, वे यमुनाके तटपर उठ बैठे और आश्चर्यचकित होकर एक-दूसरेका मुख देखने लगे, अर्थात् हम तो मर गये थे, अब जीवित कैसे हो गये!॥ ५१॥

**सारार्थदर्शिनी**—ते जलान्तिकात्समुत्थाय सुविस्मिता इति। मृता एव वयं केन जीविताः केनाप्यौषधेन विषहरमन्त्रेण वा परस्परमिति सखे! किंत्वमेतद्रहस्यं जानासीति प्रत्येक-प्रश्नात्। एवं महासन्देहे प्रवर्त्तमाने भो वयस्याः, आं मयैवैतत्कारणम् *"अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथे"* इति गर्गाचार्यवचन-स्मरणात् सम्यगवगतमिति केनाप्युक्ते सति सर्वे एव सम्यक् प्रकारेण प्रतीता प्रतीतिविषयीकृता स्मृतिस्तदीया यैस्तथाभूता आसन्नित्यन्वयः॥ ५१॥

**भावानुवाद**—वे उठकर जलके किनारे खड़े हो गये और बड़े विस्मयके साथ कहने लगे—"भाई! हम लोग तो मर गये थे। किन्तु हमें किसने किस औषधिसे या किस मन्त्रसे जीवित कर दिया। सखे! इसका रहस्य जानते हो", इस प्रकार एक-दूसरेसे पूछने लगे। ऐसा महासन्देह उपस्थित होनेपर उन्हें गर्गाचार्यके वचनका स्मरण हुआ। उन्होंने कहा था कि इससे (कृष्णसे) तुम लोग सभी विपदाओंसे मुक्त हो जाओगे। गर्गाचार्यके इस वचनका स्मरण होनेपर वे समझ गये कि कृष्णने ही हमारी रक्षा की है॥ ५१॥

**अन्वमंसत तद्राजन् गोविन्दानुग्रहेक्षितम्।**
**पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः॥ ५२॥**

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ब्रह्मसूत्रभाष्ये पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे धेनुकवधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥**

**अन्वयः**—राजन् (हे महाराज!) विषं पीत्वा परेतस्य (विष पानकर मृत होनेपर भी) आत्मनः तत् पुनरुत्थानं (उन्होंने पुनर्जीवन

प्राप्त किया) गोविन्दानुग्रहेक्षितं (यह एकमात्र गोविन्दकी अनुग्रह-दृष्टिसे हुआ है) अन्वमंसत (उन्होंने यही निर्द्धारण किया)॥५२॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके पन्द्रहवें अध्यायका
अन्वयः समाप्त।

**अनुवाद**—हे राजन्! तब उन्होंने यही निश्चय किया कि विषैला जल पीनेसे हमलोग मर चुके थे, परन्तु कृष्णकी ही अनुग्रहपूर्ण दृष्टिसे हमलोग फिरसे जीवित हो गये हैं॥५२॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके पन्द्रहवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

**सारार्थदर्शिनी**—अनु अनन्तरमैकमत्येन व्रजराजेष्टदेव श्रीनारायणेनाविष्टस्य गोविन्दस्य अनुग्रहेक्षितमेव कारणममंसत। यस्मात् पीत्वा विषमित्यादि॥५२॥

इति सारार्थदर्शिन्यां हर्षिण्यां भक्तचेतसाम।
दशमेऽस्मिन् पञ्चदशः सङ्गत सङ्गत सताम्॥

इति श्रीमद्भागवत-दशमस्कन्धे श्रीविश्वनाथचक्रवर्ति-ठक्कुर-कृता
पञ्चदशाध्यायस्य सारार्थदर्शिनी-टीका समाप्ता॥१५॥

**भावानुवाद**—*'अन्वमंसत'*—तब सभीने एक मतसे यही विचार किया कि कृष्णमें व्रजराज श्रीनन्द महाराजके आराध्य श्रीनारायणका आवेश होता है। अतः उन्हींकी कृपादृष्टिसे हम जीवित हुए हैं, क्योंकि विषयुक्त जल पीनेसे हमलोग मर चुके थे॥५२॥

इस प्रकार भक्तोंको आनन्द देनेवाली दशम-स्कन्धके पन्द्रहवें अध्यायकी सज्जन-सम्मत 'सारार्थदर्शिनी' टीका समाम्त हुई।

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके पन्द्रहवें अध्यायकी श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर विरचित सारार्थदर्शिनी टीकाका
भावानुवाद समाप्त।

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—प्रतिदिन वनगमन और गोष्ठ-क्रीड़ा करते हुए ग्रीष्मकालमें एक दिन कृष्ण बलदेवजीके बिना ही श्रीदाम,

सुबलादि सखाओंके साथ गोचारण करते हुए यमुनाके किनारे गये। सम्भवतः उस दिन बलदेवजीका जन्मनक्षत्र योग होनेके कारण माता रोहिणीने माङ्गलिक कार्यके लिए उन्हें गोचारणके लिए नहीं जाने दिया। विशेषकर श्रीकृष्ण जिस दिन कोई दुःसाहसमयी लीला करते हैं, उस दिन उनकी लीलाशक्तिकी प्रेरणासे किसी-न-किसी कारणवश बलदेवजी वनमें नहीं जाते हैं।

कृष्ण जब असंख्य सखाओंसे घिरकर एवं असंख्य गायोंके साथ यमुना-तटपर उपस्थित हुए, उस समय दोपहरका समय था। सूर्यकी प्रखर किरणोंसे भूमि तप रही थी। ऐसे समयमें यमुनाके तटपर आते ही प्यासी गायों तथा सखाओंने जल पीना आरम्भ कर दिया। यमुनाका जल सर्वत्र अमृत-सा मधुर होनेपर भी उस स्थानका जल घोर विषैला था। उस विषैले जलको पीते ही गाय तथा गोपबालक प्राणहीन होकर यमुनाके तटपर गिर पड़े।

गौओं और ग्वालबालोंको अचानक मरा हुआ देखकर व्रजजीवन नन्दनन्दनने अपनी अमृत-दृष्टिसे उन्हें जीवित कर दिया। मृत व्यक्तिको पुनर्जीवन दान करना सनक, सनन्दन, शेष, नारदादि योगेश्वरोंके लिए भी अति तुच्छ-सी बात है। अतएव योगेश्वरेश्वर स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णके लिए यह कार्य कुछ भी नहीं है। विशेषकर जो एकमात्र श्रीकृष्णको ही अपना सर्वस्व एवं जीवनका सारस्वरूप जानते हैं, उनका जीवन क्या कभी विपदग्रस्त हो सकता है?

वे सभी गोपबालक अचानक जीवित होकर बड़े विस्मित हुए और आश्चर्यसे एक-दूसरेको देखने लगे। हे महाराज! भले ही निर्बुद्धिपरायण गौवें जानें या न जानें, परन्तु गोपबालकोंने समझ लिया कि उनके प्राणसखा कृष्णकी अनुग्रह-दृष्टिसे ही उन सबको पुनर्जीवन प्राप्त हुआ है। वे अघासुरके मुख-विवरमें प्रवेश करके भी ऐसी ही विपत्तिमें फँसे थे और कृष्णकी कृपासे उन्होंने पुनर्जीवन प्राप्त किया था। इसलिए वे आज भी समझ गये कि यहाँके विषैले जलके स्पर्शसे हम सब मर ही गये थे, परन्तु अपने प्राणकृष्णकी कृपासे हम पुनः जीवित हो गये हैं। गोपबालक श्रीकृष्णके इस महाप्रभावसे विस्मय

और आनन्द-सागरमें डूबकर अपलक नेत्रोंसे कृष्णकी ओर देखते हुए कठपुतलियोंकी भाँति जलके समीप खड़े रह गये॥ ४७-५२॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके पन्द्रहवें अध्यायकी भावप्रकाशिकावृत्ति समाप्त।

# सोलहवें अध्यायकी कथाका सार

इस अध्यायमें यमुना-ह्रदमें श्रीकृष्णकी कालिय-दमन-लीला तथा नागपत्नियोंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर उनके प्रति कृष्णकी करुणाका वर्णन हुआ है।

यमुनाके विषैले जलको शुद्ध करनेकी इच्छासे कृष्ण यमुनाके तटपर स्थित कदम्बवृक्षपर चढ़कर वहाँसे यमुना-ह्रदमें कूद पड़े तथा उसके जलमें मत्त हाथीकी भाँति निर्भय होकर विहार करने लगे। अपने वास-स्थानको क्षुब्ध देखकर कालिय इसे सहन न कर सका। वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर तुरन्त कृष्णके सामने आकर उनके अति कोमल अङ्गोंमें डँसने लगा तथा उन्हें अपने फेंटेमें जकड़ लिया। यह देखकर कृष्णके सखा मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। उधर व्रजमें भी भूमिकम्पन, उल्कापात, बायें अङ्गोंमें कम्पन आदि नाना प्रकारके अपशकुन दिखायी देने लगे। ऐसे अपशकुनोंको देखकर व्रजवासी विचार करने लगे कि आज कृष्ण बड़े भाई बलदेवके बिना ही वनमें गया है, अतः न जाने आज वह किस भयङ्कर विपत्तिमें फँस गया है। इस प्रकार चिन्तित होकर वे कृष्णके पदचिह्नोंका अनुसरण करते हुए यमुनाके तटपर उपस्थित हुए। वहाँपर यमुना-ह्रदमें अपने प्राणोंके प्राण-स्वरूप कृष्णको कालियके फेंटेमें निश्चेष्ट देखकर उन्हें सारा संसार ही शून्य दिखायी देने लगा। वे सभी व्याकुल होकर ह्रदमें प्रवेश करनेको तैयार हो गये। तब कृष्णके प्रभावको जाननेवाले बलदेवजीने उन्हें ऐसा करनेसे रोक लिया। कृष्णने समस्त व्रजवासियोंको अपने लिए अत्यन्त व्याकुल देखकर अपने शरीरको इतना बढ़ा लिया कि कालियको उन्हें मुक्त करनेके लिए बाध्य होना पड़ा। तब भगवान् क्रीड़ाशील गरुड़की भाँति कालियके चारों ओर घूमने लगे। फिर वे उसके फणोंपर चढ़कर विचित्र ताण्डव नृत्य करने लगे, जिससे उनके चरणोंके आघातसे उसके फण लहुलुहान हो गये तथा वह मुखसे रक्त उगलने लगा। अन्तमें कालिय चराचर जगत्के गुरु

पुराणपुरुष नारायणका स्मरण करते हुए उनके शरणागत हुआ। कालियको अत्यन्त पीड़ित देखकर उसकी पत्नियाँ अपने बच्चोंके साथ कृष्णके चरणकमलोंमें उपस्थित हुईं तथा अपने पतिकी मुक्तिकी कामनासे बहुत प्रकारसे उनकी स्तुति करती हुई कहने लगीं—"हे कृष्ण! आपने हमारे दुष्ट पतिको जो दण्ड प्रदान किया, वह उचित ही है। कालियने न जाने कौन-सा पुण्य किया है कि जिसके प्रभावसे यह साक्षात् लक्ष्मीके लिए भी दुर्लभ आपकी चरणरेणुको अपने मस्तकपर धारण कर सका है। हे प्रभो! इस कालियने अज्ञानताके कारण आपके चरणोंमें जो अपराध किया है, आप कृपापूर्वक उसे क्षमाकर हमें इसके प्राणोंकी भिक्षा प्रदान कीजिये।"

कालियकी पत्नियोंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर कृष्णने कालियको छोड़ दिया। तब धीरे-धीरे कालियकी इन्द्रियों और प्राणोंमें कुछ शक्ति आयी तथा दैन्यपूर्ण वचनोंसे वह अपने अपराधको स्वीकारकर कृष्णकी स्तुति करने लगा। स्तुति करनेके पश्चात् वह कृष्णके आदेशकी प्रतीक्षा करने लगा। तब भगवान्‌ने उसे अपने परिवार सहित यमुना-ह्रदको त्यागकर रमणकद्वीप जानेका आदेश दिया। इस प्रकार इस अध्यायमें भगवान्‌के कालिय-दमनका माहात्म्य तथा भगवान्‌के आदेशसे कालियके रमणकद्वीप गमनका वर्णन हुआ है।

# षोडशोऽध्यायः

## कालियनागका दमन और नागपत्नियों द्वारा स्तुति

**श्रीशुक उवाच—**
**विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः।**
**तस्या विशुद्धिमन्विच्छन् सर्पं तमुदवासयत्॥ १॥**

**अन्वयः**—वादरायणिः (श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा) विभुः कृष्णः कृष्णां (विभु श्रीकृष्णने यमुनाको) कृषाहिना (कालियसर्पके) दूषितां (विषसे दूषित हुआ) विलोक्य (देखकर) तस्याः (यमुनाकी) विशुद्धिं अन्विच्छन् (शुद्धि करनेकी अभिलाषासे) तं सर्पं उदवासयत् (वहाँसे सर्पको निर्वासित किया)॥ १॥

**अनुवाद**—श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! तत्पश्चात् जब सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि महाविषधर कालियनागके विषसे यमुनाका जल विषैला हो गया है, तब उस जलको विशुद्ध करनेकी कामनासे उन्होंने उस सर्पको वहाँसे निकाल दिया॥ १॥

### सारार्थदर्शिनी टीका

न्यगृह्णात् कालियं कृष्णो दर्शयन् स्वमपाद्व्रजम्।
स्तुतोऽहिभिः प्रसन्नस्तान् षोडशे निरसारयत्।
कृष्णां यमुनाम् उदवासयत् तस्मान्निःसारितवान्॥

**भावानुवाद**—इस सोलहवें अध्यायमें श्रीकृष्णने कालियनागका दमनकर अपना दर्शन प्रदानकर व्रजजनोंकी रक्षा की एवं नागपत्नियोंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर कालियनाग और उसके परिवारको उस यमुनाके ह्रदसे निकाल दिया—इन विषयोंका वर्णन हुआ है।

श्रीकृष्णने *'कृष्णाम्'*—यमुनाको कालियके विषसे विषैला देखकर कालियनागको वहाँसे निकाल दिया॥ १॥

**श्रीराजोवाच—**

**कथमन्तर्जलेऽगाधे न्यगृह्णाद्भगवानहिम्।**
**स वै बहुयुगावासं यथासीद्विप्र कथ्यताम्॥ २॥**

**अन्वयः**—श्रीराजा उवाच (महाराज परीक्षित्ने कहा) विप्र (हे ब्रह्मन्!) भगवान् (श्रीकृष्णने) कथं (किस प्रकारसे) अगाधे (अगाध) अन्तर्जले (जलके मध्यमें) अहिं (कालियनागका) न्यगृह्णात् (दमन किया) स वै (वह कालियनाग) बहुयुगावासं (वहाँ बहुत युगोंसे) यथा (जिस प्रकारसे) आसीत् (रह रहा था, यह समस्त) कथ्यताम् (मेरे निकट वर्णन करें)॥ २॥

**अनुवाद**—श्रीपरीक्षित्ने पूछा—हे ब्रह्मन्! भगवान् श्रीकृष्णने किस प्रकार अगाध जलमें कालियनागका दमन किया था? जलचर जीव न होते हुए भी वह नाग उस अगाध जलमें किस प्रकार अनेक युगोंसे रह रहा था? आप कृपापूर्वक इसका कारण बतलाइये॥ २॥

**सारार्थदर्शिनी**—बहुनि युगानि व्याप्य आवासो यत्र तद्यथा स्यात्तथा आसीत् विशेषतः प्रकर्षेण कथ्यताम्॥ २॥

**भावानुवाद**—वह कालिय बहुत युगों तक जिस प्रकार उस ह्रदमें निवास करता रहा, उसका कारण विशेष रूपसे मेरे निकट वर्णन करें॥ २॥

**ब्रह्मन् भगवतस्तस्य भूम्नः स्वच्छन्दवर्त्तिनः।**
**गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतं जूषन्॥ ३॥**

**अन्वयः**—ब्रह्मण् (हे ब्रह्मन्!) स्वच्छन्दवर्त्तिनः तस्य भूम्नः (स्वतन्त्र और अपरिच्छिन्न) भगवतः गोपालोदार चरितं (भगवान्का गोपालनरूप उदार सुख देनेवाला चरित्र) अमृतं (अमृततुल्य है) जुषन् (उसका सेवन करते हुए) कः तृप्येत (कौन तृप्त हो सकता है)॥ ३॥

**अनुवाद**—हे ब्रह्मन्! भगवान् अनन्त हैं और वे स्वेच्छापूर्वक लीला-विहार करते हैं। उनकी गोपालनरूप लीला अमृतके समान सुखदायक है। उस लीलाके सेवनसे भला कौन तृप्त हो सकता है?॥ ३॥

**सारार्थदर्शिनी**—गवां श्लेषेण सर्वभक्तश्रोत्रादीन्द्रियाणां च पालनेनोदारं सुखदातृचरितम्॥ ३॥

**भावानुवाद**—*'गोपालोदारचरितम्'*—गौओंके, श्लिष्ट अर्थमें समस्त भक्तजनोंकी कर्ण आदि इन्द्रियोंके पालनरूप उदार अमृततुल्य सुखदायी चरित्रका सेवन करके कौन व्यक्ति तृप्त हो सकता है? बल्कि उसके सेवनकी इच्छा उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है॥ ३॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—नन्दनन्दन श्रीकृष्णने छह वर्षकी आयुमें प्रवेश करनेपर उसी वर्षके कार्त्तिक मासमें गौओंको चराना प्रारम्भ किया। तत्पश्चात् ग्रीष्मकालमें कालिय-दमन एवं भाद्रमासमें धेनुकासुर-मर्दन लीला की थी। किन्तु श्रीमद्भागवतमें कालिय-दमन-लीलासे पहले ही धेनुकासुर-वधकी लीलाका वर्णन हुआ है एवं *"विलोक्य दूषितां कृष्णाम्"* आदि और *"हत्वा रासभदैतेयान्"* आदि श्लोकोंको देखनेसे प्रतीत होता है कि श्रीकृष्णकी धेनुकासुर-वध लीला, कालिय-दमन लीलासे पूर्ववर्त्ती है। परन्तु विष्णुपुराण, हरिवंशपुराण आदि ग्रन्थोंको देखनेसे पता चलता है कि कालिय-दमन-लीला धेनुकासुर-वध-लीलासे पूर्ववर्त्ती है। श्रीमद्भागवतमें भी कालिय-दमन-लीला वर्णनके प्रसङ्गमें *"अथ गावश्च गोपश्च निदाघ-ताप पीडिताः"* श्लोकमें श्रीशुकदेव गोस्वामीने भी स्पष्ट कहा है—गौओं और ग्वालबालोंने ग्रीष्मकालीन सूर्यके तीव्र तापमें प्याससे व्याकुल होकर यमुनाके विषैले जलको पी लिया था। धेनकासुर-वध लीलाके वर्णनसे यह जाना जाता है कि उस समय तालवनमें तालके फल पके हुए थे। भाद्रपद मासमें ही तालफल पकते हैं, इसलिए श्रीकृष्णने भाद्रमासमें ही धेनुकासुरका वध किया था।

*"दमिते सर्पराजेतु कृष्णेन यमुना ह्रद"* आदि हरिवंशके वचनोंसे यह जाना जाता है कि श्रीकृष्णने यमुना-ह्रदमें सर्पराज कालियका

दमन करनेके पश्चात् धेनुकासुरका वध किया था। किन्तु श्रीशुकदेव गोस्वामी श्रीकृष्ण द्वारा गोचारणका आरम्भ, गोष्ठक्रीड़ा आदि सुखदायी लीलाओंका वर्णन करनेके पश्चात् श्रीकृष्णकी विरहमयी दुःखदायी कालिय-दमन-लीलाका वर्णनकर महाराज परीक्षित् और श्रोताओंको दुःख नहीं देना चाहते थे। इसलिए गोष्ठ-क्रीड़ामें श्रीकृष्णके असमोर्ध्व माधुर्य एवं भक्तवात्सल्यमयी लीलाओंके वर्णनके पश्चात् धेनुकासुर-वध-लीलामें उन्होंने श्रीकृष्णके असमोर्ध्व ऐश्वर्यका वर्णनकर श्रीकृष्णके स्वरूप-ऐश्वर्य-माधुर्य-सिन्धुमें श्रोताओंके चित्तको निमज्जित किया तथा स्वयं भी उसमें डूब गये। किन्तु धेनुकासुर-वध-लीलामें श्रीकृष्णके असुर-मारण एवं ऐश्वर्य-प्रकाशका वर्णन करते-करते उसीके आवेशमें वे धेनुकासुर-वध-लीलाके पश्चात् कालिय-दमन-लीलाके कुछ अंशका वर्णन कर बैठे। किन्तु उस लीलामें व्रजके गो, गोप और गोपियोंके कृष्ण-विरहका स्मरण होनेसे उन्होंने उस (पन्द्रहवे) अध्यायको समाप्त कर दिया। तत्पश्चात् दुःखका वेग शान्त होनेपर उन्होंने सोलहवें अध्यायके प्रथम श्लोकमें कहा है कि परम करुणामय श्रीकृष्णने यमुना नदीके जलको कालियसर्पके विषसे विषैला देखकर उसे विशुद्ध किया एवं कालियसर्पको सपरिवार वहाँसे निकाल दिया।

कालियनागने किस प्रकारसे श्रीकृष्णको दंशन और वेष्टन किया? उसे देखकर व्रजके गोप-गोपियोंकी क्या अवस्था हुई तथा कृष्ण-विरहमें उन्होंने क्या किया? इन सब विषयोंको उन्होंने पन्द्रहवे अध्यायमें प्रकाशित नहीं किया। किन्तु महाराज परीक्षित् संक्षिप्त रूपसे कालिय-दमन-लीला सुनकर परितृप्त न हो सके। उनकी सम्पूर्ण कथा श्रवण करनेकी इच्छा होनेपर श्रीशुकदेव गोस्वामीने विस्तृत रूपसे कालिय-दमन-लीलाका वर्णन किया।

श्रीकृष्णके यमुना-तीरपर जानेसे लेकर विषैले जलके स्पर्शसे मृत गोपबालकों एवं गायोंके जीवित होनेतककी लीलाको सुननेसे सबके मनमें ऐसा प्रश्न हो सकता है कि श्रीकृष्णके अनुग्रहसे जब गायें और गोपबालक जीवित हो उठे, तब उन्हींकी कृपासे यमुनाका विषैला जल निर्मल क्यों नहीं हो गया? इसके समाधानमें श्रीशुकदेव

गोस्वामीने कहा—हे महाराज! श्रीकृष्णने मन-ही-मन सोचा कि मेरी लीलाभूमि वृन्दावनमें ऐसा विषैला जल नहीं रहना चाहिये। विशेषकर यमुनाका एक नाम 'कृष्णा' है। अतएव नामकी समानताके कारण यह मेरी सखी है। अतः इसे सब प्रकारसे निर्मल होना चाहिये। यह विचारकर अचिन्त्य अनन्त महाशक्ति-निकेतन श्रीकृष्णने कालियनागको यमुना-ह्रदसे निकाल दिया एवं यमुनाके जलको निर्मल बना दिया।

श्रीकृष्ण स्वभावसे ही समस्त जीवोंके दुःखोंको दूर करनेवाले हैं। अतएव उनके सभी कार्य सबके लिए परम हितकारी होते हैं। उन्होंने कालियनागको वृन्दावनसे बाहरकर उसके महागर्वको चूर्ण-विचूर्णकर दिया एवं उसके आसुरिक स्वभावको दूरकर देवताओंका हित किया। यमुनाका जल निर्मल होनेपर व्रजवासी चिरकालके लिए शङ्कामुक्त हो गये एवं निर्भयतापूर्वक यमुना-ह्रदका पानी पीने लगे।

श्रीशुकदेव गोस्वामीके इस संक्षिप्त वर्णनसे परितृप्त न होकर महाराज परीक्षित्‌ने उनसे विनीत भावसे प्रश्न किया—हे गुरुदेव! यद्यपि अचिन्त्य अनन्त शक्तिशाली भगवान् श्रीकृष्ण कोई भी कार्य करनेमें समर्थ हैं, फिर भी मेरी यह जाननेकी अति उत्कण्ठा हो रही है कि उन्होंने उस अगाध जलसे कालियको कैसे बाहर किया एवं कालियनाग वहाँ बहुत कालसे निवास क्यों कर रहा था? कृपया आप मुझे इसका रहस्य सुनाइये॥ १-३॥

**श्रीशुक उवाच—**

**कालिन्द्यां कालियस्यासीद्ह्रदः कश्चिद्विषाग्निना।**
**श्रप्यमाणपया यस्मिन् पतन्त्युपरिगाः खगाः॥ ४॥**

**अन्वयः**—श्रीशुकः उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा) कालिन्द्यां (यमुनाके जलमें) कालियस्य विषाग्निना (कालियके अग्निकी भाँति अति उग्र विषकी ज्वालासे) श्रप्यमानपयाः (निरन्तर खौलते हुए जलवाला) कश्चित् ह्रदः आसीत् (कोई ह्रद था) यस्मिन् (जिस ह्रदमें) उपरिगाः (ह्रदके ऊपरसे जानेवाले) खगाः (पक्षी भी) पतन्ति (विषके आकर्षणसे उसमें गिरकर प्राण त्याग देते थे)॥ ४॥

**अनुवाद**—श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे परीक्षित्! उस यमुना जलके बीचमें एक ह्रद था। कालियके अग्नि तुल्य विषकी ज्वालासे निरन्तर उसका जल खौलता रहता था। यहाँ तक कि उस ह्रदके ऊपरसे उड़नेवाले पक्षी भी उस विषकी ज्वालाके प्रभावसे झुलसकर उस ह्रदमें गिर जाते और प्राणोंको खो बैठते थे॥४॥

**सारार्थदर्शिनी**—कालिन्द्यां ह्रद इति हरिवंशोक्तयोजनप्रमाणस्तस्या दक्षिणे भागे तत्प्रवाहेणास्पृष्ट एव। अन्यथा तद्विषसम्पृक्तप्रवाहवती सा मथुरादिदेश-स्थजनैरव्यवहाययैंवाभविष्यदिति ज्ञेयं। श्रप्यमाणं पच्यमानं पयो यस्य सः॥४॥

**भावानुवाद**—*'कालिन्द्यां ह्रदः'*—श्रीहरिवंशमें कहा गया है—"यमुनाके दक्षिण भागमें एक योजन परिमाणवाला एक ह्रद था", वह यमुनासे सटा हुआ, किन्तु यमुनाकी धारासे अलग था, जिस कारण उसका जल यमुनाकी धारामें मिलता नहीं था। नहीं तो, कालियनागके विषके मिलनेसे मथुरावासियोंके लिए भी यमुनाका जल विषैला होनेके कारण व्यवहार योग्य नहीं रहता। कालियनागके अग्नितुल्य विषकी ज्वालासे उस ह्रदका जल निरन्तर खौलता रहता था॥४॥

**विप्रुष्मता विषदोर्मिमारुतेनाभिमर्शिताः।**
**म्रियन्ते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिरङ्गमाः॥५॥**

**अन्वयः**—विप्रुष्मता (जलकणोंसे युक्त) विषदोर्मिमारुतेन (विषाक्त लहरियोंको स्पर्श करनेवाले वायुके) अभिमर्षिताः (स्पर्शसे) यस्य (जिस ह्रदके) तीरगाः (तटमें) स्थिरजङ्गमाः प्राणिनः (स्थावर-जङ्गम आदि प्राणि) म्रियन्ते (प्राण त्याग देते थे)॥५॥

**अनुवाद**—उस ह्रदके विषैले जलकी उत्ताल तरङ्गोंका स्पर्श करके तथा उसके नन्हे-नन्हे जल-कणोंको वहनकर बाहर आती वायुके स्पर्शसे ह्रदके तीरपर स्थित वृक्ष एवं पशु-पक्षी आदि सभी झुलस जाते और उसी समय प्राणोंका त्याग कर देते थे॥५॥

**सारार्थदर्शिनी**—विप्रुष्मता अम्बुकणयुक्तेन विषोदकतरङ्गस्पर्शिमारुतेन अभिमृष्टाः स्पृष्टाः॥५॥

**भावानुवाद**—उस ह्रदके जलकण अत्यन्त विषैले हो गये थे। वायु जब उन जलकणोंको स्पर्श करती थी, तो विषैले जलकण उसमें मिल जाते थे, जिससे उस दूषित वायुके स्पर्शसे यमुनाके तट और आस-पासके सभी पेड़-पौधे सूख गये थे और जीव-जन्तु मर गये थे॥ ५॥

**तं चण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन,**
**दुष्टां नदीञ्च खलसंयमनावतारः।**
**कृष्णः कदम्बमधिरुह्य ततोऽतितुङ्गा-**
**दास्फोट्य गाढरशनो न्यपतद्विषोदे॥ ६॥**

**अन्वयः**—खलसंयमनावतारः (दुष्टदलनके लिए अवतीर्ण) कृष्णः तं (कृष्ण उस कालियको) चण्डवेगविषवीर्यं (प्रचण्ड वेगशाली विषप्रभावयुक्त) अवेक्ष्य (देखकर) तेन नदीं च (उसके द्वारा यमुना नदीको) दुष्टां (कलुषित देखकर) कदम्बं (तटमें स्थित कदम्बवृक्षमें) अधिरुह्य गाढरशनः (चढ़कर कमरके कपड़े और आभूषणोंको दृढ़ रूपसे बाँधकर) ततः अति तुङ्गात् (उस अति उच्च वृक्षसे) आस्फोट्य (ताल ठोंकते हुए) विषोदे (विषमय ह्रदमें) न्यपपत् (कूद गये)॥ ६॥

**अनुवाद**—हे परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण दुष्टोंका दमन करनेके लिए ही अवतीर्ण होते हैं। जब उन्होंने देखा कि कालियके विषका वेग बड़ा प्रचण्ड है और वह भयानक विष ही उसका महान बल है जिसके द्वारा मेरे विहार करनेकी स्थली यमुनाजी भी विषैली हो गयी हैं, तब उन्होंने कमरके-फेंटेको कसकर बाँधा और तटपर स्थित एक बहुत ऊँचे कदम्बवृक्षपर चढ़कर भुजाओंसे ताल ठोंकते हुए वे उस वृक्षसे विषैले ह्रदमें कूद पड़े॥ ६॥

**सारार्थदर्शिनी**—तं कालियं कदम्बमिति *"भाविना श्रीकृष्णचरणस्पर्शभाग्येन स एकस्तत्तीरे न शुष्कः अमृतमाहरता गरुत्मताक्रान्तत्वादिति पुराणान्तरमिति"* श्रीस्वामिचरणाः। गाढं दृढं बद्धा रशना रशनापदोपलक्षिताः कुन्तलोष्णीषादयोऽपि येन सः। आस्फोट्य बाहुं करतलेनाहत्य॥ ६॥

**भावानुवाद**—उस महा-विषधर कालियनागको देखकर कृष्ण कदम्बवृक्षके ऊपर चढ़ गये। श्रील श्रीधरस्वामिपाद कहते हैं—भविष्यमें कृष्णके चरणकमलोंके स्पर्शका सौभाग्य प्राप्त करनेके लिए एक ही कदम्बवृक्ष उस ह्रदके तटपर हरा-भरा खड़ा था। अथवा दूसरे पुराणोंमें ऐसा वर्णन मिलता है—गरुड़ अमृत-कलश लेकर इस वृक्षपर बैठे थे, इसलिए यह सूखा नहीं। श्रीकृष्णने अपने केशोंको तथा पीताम्बरसे कमरको अच्छी प्रकारसे कसकर बाँध लिया, फिर दोनों हाथोंसे ताल ठोंकते हुए कदम्बवृक्षकी सबसे ऊपरकी शाखासे उस विषैले ह्रदमें कूद पड़े॥ ६॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—श्रीकृष्णकी कालिय-दमन-लीलाको सुननेके लिए महाराज परीक्षित्के पुनः-पुनः आग्रह करनेपर श्रीशुकदेव गोस्वामी व्रजवासी गोप-गोपियोंके लिए दुःखदायी उस लीलाका वर्णन करनेमें प्रवृत्त हुए। किन्तु उन्होंने जिस प्रकारसे दूसरी-दूसरी लीलाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया, वैसे इस लीलाका विस्तार रूपसे वर्णन नहीं किया।

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे महाराज! श्रीवृन्दावनसे प्रवाहित होनेवाली यमुनाके दक्षिण भागमें एक विशाल और बहुत ही गहरा जलसे भरा हुआ ह्रद था। महाविषधर सर्पराज कालियनाग उसे अपने लिए सर्वथा सुरक्षित स्थान जानकर बहुत समयसे उसमें वास कर रहा था। कालिय सम्भवतः जलस्तम्भन विद्याके प्रभावसे वहाँकी जलराशिको स्तब्धकर या जलके पास ही भू-भागमें अपनी पत्नियों और परिवारके साथ वास करता था। उसका विष इतना तीव्र था कि उस ह्रदका विषैला जल सर्वदा खौलता रहता था। उस विषैले ह्रदमें कोई जलजन्तु नहीं रहता था। यहाँ तक कि उसके ऊपर आकाश-मार्गसे यदि कोई पक्षी उड़कर जाता, तो वह भी वहाँकी विषैली वायुके स्पर्शसे तत्काल ही प्राण त्यागकर ह्रदमें गिर जाता।

कालियह्रद यमुनाके दक्षिण दिशामें यमुनासे सटा हुआ एक गहरा और विशाल जलाशय था। यमुनाका प्रवाह उसके उत्तरदिशासे होकर प्रवाहित होता था। इसलिए उसमें कालियका विष मिश्रित नहीं

होता था। यदि उसमें वह विषजल मिल जाता, तो मथुरावासी कोई भी व्यक्ति यमुनाके जलका व्यवहार नहीं कर सकता था।

श्रीहरिवंशमें इस भीषण विषैले ह्रदका वर्णन देखा जाता है—कालिय-ह्रद एक योजन परिमित (चारक्रोश) लम्बा-चौड़ा और गहरा था तथा देवताओंके लिए भी उसे लाँघना अतीव दुष्कर था। उसमें किसी प्रकारके जलजन्तु वास नहीं कर सकते थे। यहाँ तक कि कोई जलचर पक्षी भी उसके ऊपरसे उड़ते नहीं थे। उस अगाध जलराशिको देखनेसे मेघाच्छन्न आकाशका भ्रम होता था। उसके विषैले जलसे उठे हुए धुँएसे चारों ओर कुहरा-सा दीखता था। इसलिए कालिय ह्रदकी तट-भूमि अगम्य थी। जब कभी तृण या वृक्षके पत्ते उस खौलते हुए कालिय-ह्रदमें गिर पड़ते, तो जलकर भस्म हो जाते थे। उसमें ऊँची-ऊँची तरङ्गें उठती रहती थीं। उसके चारों ओर एक योजन तकका स्थान विषकी ज्वालासे सदा जलता रहता था।

एक दिन ग्रीष्मकालकी दोपहरमें श्रीकृष्ण श्रीदाम, सुबलादि गोपबालकोंके साथ गोचारण करते-करते उस अति दुर्गम और भीषण स्थानमें उपस्थित हुए। प्यासी गायें दूरसे जलाशयको देखकर तीव्र गतिसे दौड़ती हुई कालिय ह्रदके तटपर जा पहुँची। वहाँ पहुँचकर जैसे ही उन्होंने उसका विषैला जल पान किया, वैसे ही वे सब-की-सब प्राण त्यागकर वहीं गिर पड़ीं। ग्वालबाल भी उन गायोंको लौटानेके लिए उनके पीछे-पीछे दौड़कर गये, किन्तु ह्रदके तटपर पहुँचते ही वे भी प्राण त्यागकर गिर पड़े। तब श्रीकृष्णने अपनी अमृतमय दृष्टिसे गायों और गोपबालकको जीवित कर दिया। गोपबालक अपनेको तथा गायोंको पुनः जीवित देखकर बहुत विस्मित हुए। अब कृष्ण मन-ही-मन चिन्ता करने लगे कि कालियनागके विषमय जलसे सभी निर्दोष प्राणी मर रहे हैं। अतः इस ह्रदका जल निर्मल करना चाहिये। इस प्रकार दुष्टोंको दण्ड देनेवाले श्रीहरिने कालियनागके घमण्डको चूर करने तथा यमुनाके विषैले जलको निर्मल बनानेके लिए सोच-विचारकर निकटवर्त्ती कदम्बवृक्षकी ओर देखा।

कालियनाग श्रीभगवान्‌के भक्तचूड़ामणि गरुड़का महाशत्रु था एवं सदा-सर्वदा गरुड़के अनिष्टकी चिन्ता करता रहता था। उस कालियनागके कारण वृन्दावनके अति समीप बहनेवाली और अमृतके समान जलवाली यमुनाके इस ह्रदका जल इतना विषैला हो गया कि वह जल सर्वदा खौलता रहता था। उसके जलके स्पर्शसे सैकड़ों निर्दोष प्राणी मर गये थे। विशेषकर श्रीकृष्णके परमप्रिय व्रजवासियोंके वासस्थानके निकट यह विषैला ह्रदके होनेके कारण वे अति कष्टसे जीवन यापन कर रहे थे। और जब कृष्णके सखा तथा ग्वालबाल भी उसका जल पान करनेके कारण मर गये, तो अन्तमें उन्होंने यह स्थिर किया कि कालियका दमन करना और यमुनाके निकटवर्त्ती ह्रदका जल शोधन करना मेरा परम कर्त्तव्य है। श्रीहरिवंशमें यह वर्णन पाया जाता है कि भगवान् श्रीकृष्णने कालियनागका मान-मर्दनकर उसके अत्यन्त तीव्र विषसे विषैले हुए यमुना जलको निर्मल करना अपना प्रधान कर्त्तव्य स्थिर किया—

*एतदर्थञ्च सारोऽयं व्रजेऽस्मि गोपजन्म च।*
*अमीषामुत्पथस्थानां निग्रहार्थं दुरात्मनाम्॥*
*एनं कदम्बमारुह्य तदेव शिशुलीलया।*
*विनिपत्य ह्रदे घोरे दमयिष्यामि कालियम्॥*

(हरिवंश)

इन व्रजवासी सज्जनोंको दुःख देनेवाले दुष्टोंका दमन करनेके लिए ही मेरा गोपकुलमें जन्म और व्रजमें वास हुआ है। मैं बाल्यलीलाके बहाने इस कदम्बवृक्षपर चढ़कर इस विषैले ह्रदमें कूद जाऊँ एवं महाविषधर कालियनागका दमन करूँ।

श्रीगोपालचम्पू ग्रन्थमें भी ऐसा ही वर्णन है—

*ततश्च सावहित्थमित्थमुवाच—अहो वयस्याः।*
*किञ्चिद् दूरचरतया चारयन्तश्चरन्तु।*

श्रीकृष्णने मन-ही-मन कालिय-दमनका सङ्कल्पकर प्रकट रूपमें गोपबालकोंसे कहा—हे प्यारे सखाओ! देखो, इस यमुना-ह्रदमें कालिय नामका एक महाविषधर सर्प जल-स्तम्भन विद्याके प्रभावसे अपना

वासस्थान निर्माणकर वास कर रहा है। उस दुष्ट सर्पके फुँफकारसे ऐसी विषज्वाला निकलती है कि उससे चारों ओरके वृक्ष, लताएँ और घास जलकर भस्म हो गयी हैं। इसके ऊपरसे उड़नेवाले पक्षी और आस-पास आनेवाले गाय, बैल, हिरण आदि पशु भी प्राण त्याग कर देते हैं। इसे तुमलोग अपनी आँखोंसे देख रहे हो। इस ह्रदके किनारे तुमलोग जो कदम्बवृक्ष देख रहे हो, यह कालियसर्पकी विष ज्वालासे दग्ध नहीं होता तथा सदा-सर्वदा पत्र, पुष्प आदिसे हरा-भरा रहता है। इसका कारण यह है कि गरुड़ जब अमृत-कलश लेकर नाग लोक जा रहे थे, तब वे कुछ क्षणके लिए इसपर बैठे थे। उस समय उस अमृत-कलशसे एक बूँद अमृत इस वृक्षपर गिर गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि इस कदम्बवृक्षके ऊपर कोटरमें आज भी वह विषहारक अमृत विद्यमान है। अतएव मैं इस वृक्षपर चढ़कर उस कोटरको ढूँढ़ने जा रहा हूँ, तुमलोग इस विषैले ह्रदसे कुछ दूरीपर गौएँ चराओ। मैं शीघ्र ही आ रहा हूँ।

यह कहकर श्रीकृष्णने गोपबालकोंको आश्वस्त किया और कदम्बवृक्षपर चढ़नेके लिए तैयार हुए। बालकोंको कुछ न कहकर श्रीकृष्ण यदि सहसा वृक्षपर चढ़ते तो गोपबालक घबरा जाते एवं वे श्रीकृष्णको निषेध करते। श्रीकृष्णके मधुर वचनोंसे सन्तुष्ट होकर सभी ग्वालबाल एकटक कृष्णकी ओर देखने लगे।

कालियनागके विषके प्रभावसे ह्रदके तीरपर एक तृण तक नहीं बचा था, किन्तु कृष्ण जिस कदम्बपर चढ़कर कालिय ह्रदमें कूद गये, वह कदम्ब कैसे जीवित रहा—ऐसा सन्देह सबके मनमें हो सकता है।

इसलिए श्रीधरस्वामिपादने अपनी टीकामें कहा है—*"कदम्बमिति भावि श्रीकृष्ण चरणस्पर्शभाग्येन एकस्तत्तीरेऽपि न मृतः अमृतमाहरता गरुत्मताक्रान्तत्वादिति पुराणान्तरम्।"*

यद्यपि महाविषधर कालियनागके विषैले जलके कणोंसे युक्त वायुके स्पर्शसे उस ह्रदकी तट भूमिपर तृण तक सभी कुछ जल गया था, फिर भी वहाँपर एक कदम्बवृक्ष हरा-भरा जीवित था। इसका कारण यह है कि कृष्ण भविष्यमें उस कदम्बवृक्षपर चढ़ेंगे तथा उससे कालिय-ह्रदमें कूदेंगे, जिससे उस वृक्षको उनके श्रीचरणोंको स्पर्श

करनेका सौभाग्य प्राप्त होगा। इस प्रकार भावी सौभाग्यवशतः कालियके तीव्र विषके स्पर्शसे वर्त्तमानमें भी उस वृक्षका कोई अनिष्ट नहीं हुआ। यहाँ तात्पर्य यह है कि जिसने श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श प्राप्त कर लिया है, उसकी बात तो बहुत दूर, जिसकी सुदूर भविष्यमें भी श्रीकृष्णचरण प्राप्तिकी सम्भावना है, उसका भी कालियसर्पके विषकी भाँति तीव्र विषसे कोई भी अनिष्ट नहीं होता है। जिनके नाम, रूप, गुण, लीला-कथा आदि श्रवण-कीर्त्तन करनेसे या मन-ही-मन उनके चरणोंमें शरणागत होनेसे संसाररूपी सर्पविषसे भी मुक्ति मिल जाती है, उन श्रीकृष्णके साक्षात् चरणोंको स्पर्श करनेका सौभाग्य जिन्हें भविष्यमें भी प्राप्त होनेवाला होता है, कालियका विष उनका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता, इसमें कहनेकी बात ही क्या है?

अन्यान्य पुराणोंमें ऐसा वर्णन है कि पक्षीराज गरुड़ स्वर्गके देवताओंको पराजितकर अमृत-कलश लेकर जब नागलोक जा रहे थे, उस समय वे कुछ समयके लिए अमृत-कलशको लेकर इस कदम्बवृक्षकी शाखापर बैठे थे। इसलिए यह कदम्बवृक्ष अमर हो गया, कालियके विषसे दग्ध नहीं हुआ। इस कदम्बवृक्षके विषयमें वराहपुराणमें वर्णन है—

*कालिय ह्रद पूर्वेण कदम्बो महितद्रुमः।*
*शतशाखं विशालाक्षि पुण्यं सुरभिगन्धि च॥*

*स च द्वादश मासानि मनोज्ञः सुख शीतलः।*
*पुष्पायति विशालाक्षि प्रभासन्तो दिशो दश॥*

कालिय-ह्रदके पूर्वभागमें एक सुप्रसिद्ध एवं सर्वलोक-पूज्य कदम्बवृक्ष है। उसकी सैकड़ों शाखा-प्रशाखाएँ दसों दिशाओंमें सुविस्तृत हैं एवं उसकी सुगन्धसे दसों दिशाएँ महकती रहती हैं। उस कदम्बवृक्षमें बारह महीने फूल खिलते रहते हैं एवं उस वृक्षके परम मनोहर एवं सुशीतल पल्लवादिकी शोभासे दसों दिशाएँ सुशोभित रहती हैं।

श्रीकृष्ण कालियका मान-मर्दन करनेके लिए उस कदम्बवृक्षके निकट गये और उन्होंने अपनी कमरको पीताम्बरसे कसकर बाँधा और घुँघराले केशोंको भी बाँध लिया। तदनन्तर ग्वालबालोंका

आनन्द-उत्साह बढ़ानेके लिए पुनः-पुनः ताल ठोंकने लगे और फिर वे कदम्बवृक्षकी सर्वोच्च शाखापर चढ़ गये।

*"आरुढश्चपलः कृष्णः कदम्बशिखरं मुदा"*

श्रीहरिवंशमें वर्णन है कि बाल्यलीलाके आवेशमें परम चपलता और आनन्द प्रकाश करते-करते श्रीकृष्ण उस कालिय-ह्रदके तटवर्त्ती कदम्बवृक्षकी सबसे ऊँची शाखापर चढ़ गये।

श्रीकृष्ण जब कदम्बवृक्षपर चढ़ गये, तब श्रीदाम-सुबलादि सखा एकटक श्रीकृष्णकी ओर देखने लगे। किसीने कुछ भी नहीं कहा। वे श्रीकृष्णकी लीलाशक्तिके प्रभावसे चुपचाप ह्रदसे कुछ दूर खड़े रहे। इस प्रकार वे अनन्त स्वतन्त्र लीलापरायण स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण अपनी बाललीलाके आवरणमें अपनी अचिन्त्य महा-ऐश्वर्य शक्तिको छिपाकर चञ्चल बालककी भाँति कदम्बवृक्षपर चढ़ गये एवं उसकी शाखाके अग्रभागसे उन्होंने महा-विषैले कालिय-ह्रदमें छलाँग लगा दी॥ ४-६॥

**सर्पह्रदः पुरुषसारनिपातवेग-**
**सङ्क्षोभितोरगविषोच्छ्वसिताम्बुराशिः ।**
**पर्य्यक् प्लुतो विषकषायितभीषणोर्म्मि-**
**धीमन् धनुःशतमनन्तबलस्य किं तत्॥ ७॥**

**अन्वयः**—धीमन् (हे धीमन्!) [उस समय] सर्पह्रदः पुरुषसार निपातवेगसंक्षोभितोरगविषोच्छ्वसिताम्बुराशिः (पुरुषोत्तम भगवान्के कूदनेके वेगसे कालियके विषसे खौलता हुआ उस ह्रदका जल क्षुब्ध होकर) पर्यक् (चारों और) शतं धनुः (सौ धनुष परिमित स्थान तक) प्लुतः (फैल गया) विषकषायित भीषणोर्म्मिः (विष कषायित भयङ्कर लहरियाँ जिसमें उठ रही थी) तत् (ह्रदका ऐसा भाव) अनन्त बलस्य (असीम वीर्यशाली भगवान्के लिए) किं (कुछ भी असम्भव नहीं है)॥ ७॥

**अनुवाद**—हे परम बुद्धिमान परीक्षित्! यमुना-ह्रदका जल कालियनागके प्रचण्ड विषके कारण पहलेसे ही उबल रहा था। उसमें

विषयुक्त भयङ्कर तरङ्गें उठ रही थीं। अब भगवान् पुरुषोत्तमके कूदनेसे उसका जल चारों ओर उछलकर चार सौ हाथ तक फैल गया। परन्तु अचिन्त्य, असीम, पराक्रमशाली भगवान्के लिए यह कुछ भी अद्भुत बात नहीं है॥ ७॥

**सारार्थदर्शिनी—**ततश्च पुरुषस्य कृष्णस्य सारेण बलेन यो निपातवेगस्तेन संक्षोभितानां उरगाणां विषैरुन्नतोऽम्बुराशिर्यस्य सः। विषेण कषयीकृता रक्तपीतवर्णीकृता भयङ्करा ऊर्मयो यस्य सः। *"निर्यासेऽपि कषायोस्त्री"* इत्यत्र क्षीरस्वामिना तथा व्याख्यानात् पयर्यक् परितः धनुःशतं प्लुतःप्रसृतः—*"अष्टभिर्यवमध्यैः स्यादङ्गुलं तैरित्रभिर्भवेत्। तालं त्रितालको हस्तो हस्तौ दौ किष्कुरुच्यते॥ किष्कुद्वयं धनुःप्रोक्तम्"* इति॥ ७॥

**भावानुवाद—**श्रीभगवान् कुछ बल प्रकटकर उस विषैले ह्रदमें कूद गये। उनके महावेगपूर्वक कूदनेसे सर्पोंके विषसे खौलती हुई जल-राशि जिसमें लाल-पीले रङ्गकी भयङ्कर लहरियाँ उठ रही थीं, क्षुब्ध होकर चार सौ हाथ तक चारों ओर फैल गयी॥ ७॥

**तस्य ह्रदे विहरतो भुजदण्डघूर्ण-**
**वार्घोषमङ्ग वरवारणविक्रमस्य।**
**आश्रुत्य तत् स्वसदनाभिभवं निरीक्ष्य,**
**चक्षुःश्रवाः समसरत् तदमृष्यमाणः॥ ८॥**

**अन्वयः—**अङ्ग (हे राजन्!) चक्षुःश्रवाः (आखोंसे श्रवण करनेवाला कालियनाग) ह्रदे विहरतः (अपने ह्रदमें विहार करनेवाले) तस्य वरवारणविक्रमस्य (मत्त-मातङ्ग जैसे प्रभावशाली श्रीकृष्णके) भुजदण्ड घूर्णवार्घोषं (भुजयुगलके द्वारा ताड़ित जलका महाशब्द) आश्रुत्य तत्स्वसदनाभिभवं (श्रवणकर एवं ह्रदरूप अपने आवास-स्थानको विक्षुब्ध) निरीक्ष्य तत् अमृष्यमाणः (देखकर सहन नहीं कर पानेके कारण वहाँपर) समसरत् (वहाँ उपस्थित हुआ)॥ ८॥

**अनुवाद—**हे राजन्! अतुल पराक्रमशाली श्रीकृष्ण कालिय-ह्रदमें कूदकर मत्त-मातङ्गके समान जल-क्रीड़ा करने लगे। उनकी भुजाओंके आघातसे जलमें महाशब्द होने लगा, जो कालियको सहन नहीं हुआ।

आँखसे सुननेवाला वह सर्प वहाँ उपस्थित होकर यह देखनेकी चेष्टा करने लगा कि मेरे आवास-स्थानका इस प्रकारसे कौन तिरस्कार कर रहा है॥ ८॥

**सारार्थदर्शिनी—**विहरतः विचित्रजलवाद्यसन्तारादिना क्रीडतः भुजदण्डाभ्यां घूर्णा येषां तथाभूतानां वारां जलानां घोषं श्रुत्वा तत्ततो घोषादेव स्वसदनस्याभिभवं निरीक्ष्य तत्तम् असहमानः॥ ८॥

**भावानुवाद—**उस ह्रदमें विहार करते हुए कृष्ण विचित्र जलवाद्य कर रहे थे तथा अपनी भुजाओंसे जलको उछालते हुए तैर रहे थे। उनके जल-विहारसे जो शब्द हो रहा था, उससे अपने आवास-स्थानका तिरस्कार देखकर उसे सहन न कर पानेके कारण कालियनाग क्रोधसे तिलमिला उठा तथा फुँफकारते हुए श्रीकृष्णके समीप आ गया॥ ८॥

**तं प्रेक्षणीयसुकुमारघनावदातं,**
**श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुन्दरास्यम्।**
**क्रीडन्तमप्रतिभयं कमलोदराङ्घ्रि,**
**सन्दश्य मर्म्मसु रुषा भुजया चछाद॥ ९॥**

**अन्वयः—**भुजगः (कालियसर्पने) प्रेक्षणीय सुकुमार घनावदातं (दर्शनीय अतीव मनोहर सुकुमार, नवीन बादलके समान उज्ज्वल कान्तियुक्त) श्रीवत्स पीतवसनं (श्रीवत्स चिह्नयुक्त तथा पीतवसनधारी) स्मितसुन्दरास्यं (सहास्य सुरम्यवदन) कमलोदराङ्घ्रि (एवं कमलतुल्य सुकोमल चरण-विशिष्ट) अप्रतिभयं (निर्भय होकर) क्रीडन्तं (विहार करनेवाले कृष्णके) मर्म स्थानेषु (मर्मस्थलोंमें) रुषां (क्रोधसे) सन्दश्य (दाँतोंसे आघात करते हुए) चछाद (अपने शरीरके द्वारा उन्हें लपेट लिया)॥ ९॥

**अनुवाद—**कालियने देखा कि उसके सामने मनोहर, सुकुमार, वर्षाकालीन मेघके समान उज्ज्वल कान्तिसे युक्त एक साँवला-सलोना श्यामल बालक है। उसने पीत-वसन धारण कर रखे हैं और उसके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न है। उसके सुरम्य मुखपर मन्द-मन्द, मनोरम मुसकान है। उसके सुकोमल चरण कमल-तुल्य हैं। वह बिना

किसी भयके उस विषाक्त जलमें आनन्दपूर्वक विहार कर रहा है। यह देखकर कालियनागने क्रोधित होकर श्रीकृष्णके मर्मस्थानोंको डँसते हुए उन्हें अपने फेंटेमें जकड़ लिया॥ ९॥

**सारार्थदर्शिनी—**प्रेक्षणीयमतिसुखदमपि रूपं कालियं प्रति विपरीतमभूदित्याह- श्रीवत्से विहारवशात् आयातं पीत वसनं यस्य तम् यद्वा श्रिया लक्ष्मीरेखया युक्तं वत्सं वक्षो यस्य पीते वसने यस्य स च स च तम्। *"ऊरोवत्सञ्च वक्षश्च"* इत्यमरः। भुजया भोगेन॥ ९॥

**भावानुवाद—**श्रीकृष्णका रूप अति मनोहर है एवं उनका दर्शन अति सुखदायी है, फिर भी कालियको उनका दर्शन अति दुःखदायी प्रतीत हुआ। वे नवीन बादलके समान श्यामल कान्तिवाले हैं, लीला-विहारके कारण जिनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिह्न है तथा जो पीताम्बर धारण करनेवाले हैं अथवा जिनका वक्षःस्थल लक्ष्मी-रेखासे युक्त है एवं जिनका उत्तरीय और परिधान वस्त्र पीला है, ऐसे श्रीकृष्णको कालियनागने अपने फेंटेमें बाँध लिया॥ ९॥

**तं नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्ट-**
**मालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्त्ताः।**
**कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा,**
**दुःखानुशोकभयमूढधियो निपेतुः॥ १०॥**

**अन्वयः—**कृष्णे अर्पितात्म सुहृदर्थकलत्रकामाः (कृष्णके प्रति समर्पित आत्मा, सुहृत्, अर्थ, स्त्री, काम आदि सबकुछ जिन लोगोंने समर्पण किया है, ऐसे) तत् प्रियसखाः (कृष्णके सखा) पशुपाः (गोपालगण कृष्णको) तन्नागभोग परिवीतं (कालियके देह द्वारा परिवेष्टित एवं) अदृष्टचेष्टं (निश्चेष्ट देखकर) आलोक्यभृशार्त्ताः (अतिशय आर्त्त) दुःखानुशोकभयमूढधियः (दुःख, शोक और भयसे हतबुद्धि होकर) निपेतुः (निश्चेष्ट होकर भूमिपर गिर पड़े)॥ १०॥

**अनुवाद—**प्रिय परीक्षित्! श्रीकृष्ण नागपाशमें बँधकर निश्चेष्ट हो गये। यह देखकर उनके जिन प्रिय सखाओंने अपना शरीर, सुहृद, धन-सम्पत्ति, स्त्री-पुत्र, भोग और कामनाएँ आदि सबकुछ श्रीकृष्णको

ही समर्पित कर रखा था, वे सभी ग्वालबाल अति पीड़ित हो गये और उसी समय दुःख, पश्चाताप तथा भयकी विह्वलतासे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १०॥

**सारार्थदर्शिनी—**परिवीतं वेष्टितम् अदृष्टचेष्टमिति। कालियस्योत्साहवर्द्धनार्थं क्षणं भीतस्तब्धवत् स्थितं। यद्वा, अरे कालिय त्वया यथेष्टं प्रथमं दश्यतां वेष्ट्यताम् अहं पश्चात् बलं दर्शयिष्यामीति वीरदर्पेण स्थितम्। पशुपाः केचित् गोपाः शालिक्षेत्रस्थाः कृषकाश्च शीघ्रमायाताः ते कीदृशाः कृष्णेऽपिता लालनार्थमात्मादयो यैस्ते॥ १०॥

**भावानुवाद—**श्रीकृष्णको सर्पके फेंटेमें निश्चेष्ट देखकर सभी बालक किङ्कर्त्तव्यविमूढ़ होकर भूमिपर गिर पड़े। कालियनागका उत्साह बढ़ानेके लिए श्रीकृष्ण क्षणभरके लिए भयभीत और निश्चेष्टसे हो गये। अथवा अरे कालिय! तू भले ही मुझे जितना भी डँस और बाँध, अन्तमें मैं तेरा घमण्ड चूर-चूरकर दूँगा—इस प्रकारका भाव प्रकाशित करते हुए कुछ क्षण तक गर्वित वीरकी भाँति चुपचाप पड़े रहे। *'पशुपाः'* उस समय कोई-कोई गोप और खेती करनेवाले कुछ किसान भी शीघ्र ही वहाँपर आ पहुँचे। कृष्णको कालियके बन्धनमें देखकर वे भी किङ्कर्त्तव्यविमूढ़ होकर मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। वे कैसे थे? इस विषयमें कह रहे हैं—उन लोगोंने अपनी आत्मा, सुहृद, अर्थ, स्त्री-पुत्र, कामनाएँ आदि सबकुछ कृष्णको अर्पण कर दिया था॥ १०॥

**गावो वृषा वत्सतर्य्यः क्रन्दमानाः सुदुःखिताः।**
**कृष्णे न्यस्तेक्षणा भीता रुदन्त्य इव तस्थिरे॥ ११॥**

**अन्वयः—**गावः (गायें) वृषाः वत्सतर्य्यः (बैल, बछड़े और बछिया) क्रन्दमानाः सुदुःखिताः कृष्णे न्यस्तेक्षणाः (अतिशय दुःखपूर्वक रोते-रोते श्रीकृष्णके प्रति दृष्टि डालकर) भीता रुदन्त्य इव तस्थिरे (भयभीत होकर रोने लगे)॥ ११॥

**अनुवाद—**गाय, बैल, बछड़े और बछिया आदि अत्यधिक दुःखपूर्वक कृष्णकी ओर देखकर भयभीत होकर मानो विलाप करने लगे॥ ११॥

**सारार्थदर्शिनी—**रूदन्त्य इवेति भयवैयग्रेणाश्रूणां शोषात्॥ ११॥

**भावानुवाद—**भय और घबराहटके कारण गाय, बैल आदिके आँसू भी सूख गये थे॥ ११॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति—**परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामीने परीक्षित्के निकट श्रीकृष्णके कदम्बवृक्षपर चढ़ने और कालिय-ह्रदमें कूदनेकी लीलाका वर्णनकर उन्हें उत्साहित करनेके लिए कहा—हे परम बूद्धिमान! आप तो श्रीभगवान्के अचिन्त्य-अनन्त-महाशक्तिका तत्त्व जानते हैं। अतएव उनके कूदनेके वेगसे कालिय-ह्रदका जल उछलकर चार सौ हाथ तक फैल गया। यद्यपि वह ह्रद समुद्रसे भी अधिक सुगम्भीर था एवं कालियके विषसे निरन्तर खौलता रहता था तथा उसमें लाल-पीले आदि विविध रङ्गोंवाली बड़ी-बड़ी तरङ्गें उठती रहती थीं। यहाँ तक कि वह पर्वतके गिरनेसे भी क्षुब्ध होनेवाला नहीं था, तथापि वह ह्रद छह वर्षके बालक कृष्णके कूदनेके वेगको सहन न कर सका। उनके कूदनेके साथ-ही-साथ सुगम्भीर कालिय-ह्रदकी जलराशि क्षुब्ध होकर चारों ओर चार सौ हाथ तक फैल गयी। गोपबालक और गायें श्रीकृष्णकी लीलाशक्तिके प्रभावसे पहलेसे ही उस विषैले ह्रदसे दूर खड़े थे, इसलिए फैला हुआ विषैला जल उन्हें स्पर्श न कर सका। अब कृष्ण कालिय-ह्रदमें चञ्चल बालककी भाँति विविध प्रकारकी जलक्रीड़ा करने लगे तथा जलवाद्य बजाने लगे, जिससे एक योजन विस्तारवाले ह्रदका विषैला जल और भी क्षुब्ध हो गया। उस ह्रदमें महाविषधर कालिय एवं उसके परिवारके असंख्य विषधर सर्प निवास करते थे। किन्तु श्रीकृष्ण उसमें निर्भय होकर तैर रहे थे।

उन्हें इस प्रकार निर्भय होकर जलक्रीड़ा करते हुए देखकर तटपर स्थित ग्वालबाल परमानन्दित हो रहे थे—इसमें कोई सन्देह नहीं है, किन्तु कालियको इसके विपरीत क्रोध आ रहा था। श्रीकृष्ण जब जलवाद्य बजा रहे थे और जलको पीट रहे थे, तब उस शब्दको सुनकर कालियनाग क्रोधसे तमतमा उठा और फुँफकारने लगा। मानो वह इस प्रकार कह रहा था—अरे! किसका ऐसा साहस है कि इस

महाविषैले ह्रदमें तैर सके? साधारण जीवोंकी तो बात ही क्या, देवता भी इस ह्रदकी ओर देख तक नहीं सकते। हाँ, गरुड़की बात अलग है, वह मुझे भी पराजित कर सकता है। किन्तु सौभरि ऋषिके शापके कारण वह यहाँ आ नहीं सकता। तब क्या गरुड़से भी प्रभावशाली कोई महापराक्रमी जीव ऐसे महाविषैले ह्रदमें खेल रहा है? या फिर गरुड़ ही सौभरि ऋषिको प्रसन्नकर इस ह्रदमें आ गये हैं?

इस प्रकार कालिय यमुना-ह्रदके तटवर्त्ती अपने आवास-स्थानसे अपना सिर निकालकर इधर-उधर देखने लगा। किन्तु उसे कुछ दिखा नहीं। तब वह क्रोधसे तिलमिलाकर अति तीव्रगतिसे अपने आवास-स्थानसे निकलकर पुनः चारों ओर देखने लगा। तब कालियने दूरसे देखा कि इस ह्रदमें क्रीड़ा करनेवाला पक्षीराज गरुड़, इन्द्र, चन्द्र, वरुण आदि कोई देवता नहीं है, न ही कोई प्रबल पराक्रमी असुर है, अपितु एक छोटा-सा सुकुमार बालक है। उसके शरीरकी कान्ति नवीन बादलोंकी भाँति श्याम वर्णकी है, उसके वस्त्र पीले रङ्गके हैं, उसके सुविशाल वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिह्न सुशोभित है, उसके अति सुन्दर घुँघराले केश हैं तथा उसके अधरोंपर मधुर-मन्द मुसकान खेल रही है। किन्तु हाय! कालियनागका ह्रदय वज्रसे भी कठोर था, कृष्णके ऐसे अद्भुत मनोरम स्वरूपका दर्शन करके भी वह पिघला नहीं। वह अपनी सर्पजातिके स्वभाव-सुलभ महाक्रूरताका परित्याग नहीं कर सका। वह अपने हजारों फणोंको फैलाकर फुँफकारते हुए कृष्णकी ओर झपटा।

कालियको फुँफकारते हुए वेगसे अपनी ओर आते देखकर कृष्ण तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे पहलेकी ही भाँति निर्भय होकर परम आनन्दसे क्रीड़ा करते रहे। कालियने क्रोधसे तिलमिलाकर कृष्णको पकड़नेका प्रयास किया, परन्तु कृष्ण शीघ्रतासे तैरते हुए दूर निकल गये। इससे वह और भी अधिक क्रोधित हो गया तथा कृष्णका पीछा करने लगा।

तदनन्तर श्रीकृष्णके पीछे-पीछे बड़े वेगसे आता हुआ कालिय भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाशक्तिकी प्रेरणासे उनके समीप आ पहुँचा।

सैकड़ों योगीन्द्र, मुनीन्द्रादि अपने निर्विकल्प समाधिगत हृदयमें जिन चरणकमलोंको ध्यानमें भी स्पर्श नहीं कर पाते, असुर-स्वभावसम्पन्न कालिय करोड़ों जन्मों तक भी तीव्रगतिसे तैरते हुए क्या कभी उनके चरणकमलोंके निकट आ सकता था? परन्तु कृष्णकी लीलाशक्ति उसके घमण्डको नष्ट करनेके लिए उसे उनके चरणकमलोंके समीप ले आयी। कृष्णके समीप आकर कालिय ध्वज, वज्र, अङ्कुश आदि चिह्नोंसे परिशोभित उनके दोनों चरणोंका दर्शन करके भी प्रेमभावसे उन्हें अपने हृदयमें धारण नहीं कर सका। इसके विपरीत वह क्रोधके कारण ब्रह्मा, शिव, शेष आदिके द्वारा वन्दित एवं महालक्ष्मीके द्वारा परिसेवित श्रीचरणोंमें पुनः-पुनः डँसने लगा।

कालियके पुनः-पुनः डँसनेपर भी कृष्ण लेशमात्र भी विचलित नहीं हुए तथा पूर्ववत् जलक्रीड़ा करते रहे। मूर्ख कालिय इससे भी उनके श्रीचरणोंके प्रभावको समझ नहीं सका। जिन चरणोंका स्मरण करनेसे संसाररूपी सर्प भी विषहीन हो जाता है, तब क्या उन चरणोंका कालियके विषसे कोई अनिष्ट हो सकता था? श्रीकृष्णके चरणोंमें बार-बार डँसनेपर भी जब कालिय उनका कुछ भी नहीं बिगड़ा, तब वह उनके हृदयमें डँसने लगा। जब उससे भी श्रीकृष्णका कुछ भी नहीं बिगड़ा, तब उसने चरणोंसे गले तक श्रीकृष्णको अपने फेंटेमें लपेट लिया तथा उन्हें पीस डालनेकी चेष्टा करने लगा।

कृष्ण उसके फेंटेमें बँधकर निश्चेष्टसे हो गये। कालिय उन्हें पीस डालनेके लिए जितना प्रयास कर रहा था, कृष्ण अपनी देहको उतनी ही क्षीण करते जा रहे थे। इसके फलस्वरूप कालिय अपने शरीरके घर्षणसे स्वयं ही कष्ट अनुभव करने लगा।

इधर नन्दनन्दनको कालियनागके फेंटेमें बँधकर निश्चेष्ट हुआ देखकर गोपबालक स्थिर नहीं रह सके। वे सभी हाय! हाय! करते हुए रोने लगे तथा कटे हुए वृक्षकी भाँति ह्रदके किनारे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। वे सब यदि मूर्च्छित न हुए होते, तो अवश्य ही हा कृष्ण! हा कृष्ण! पुकारते हुए श्रीकृष्णके निकट जानेके लिए ह्रदमें प्रवेश कर जाते।

गोपबालकोंके रोने-चिल्लानेकी आवाज सुनकर आस-पास खेतोंमें काम कर रहे लोग भी दौड़े-दौड़े वहाँपर आ गये। जैसे ही उनकी दृष्टि कालियके बन्धनमें पड़े कृष्णकी ओर पड़ी, वे भी हा-हाकार करने लगे। इतना ही नहीं, गाय, बैल, बछड़े आदि सभी कृष्णकी ओर देखकर अश्रुधारा प्रवाहित करते हुए करुण स्वरसे डकराने लगे। यद्यपि उनके पास अपने हृदयकी पीड़ा व्यक्त करनेके लिए कोई भाषा नहीं थी या अपने प्यारे कृष्णको कालियनागके फेंटेसे छुड़ानेके लिए कोई उपाय भी नहीं था, किन्तु उनका हृदय कृष्णप्रेमसे परिपूर्ण था। वे कृष्णके अतिरिक्त कुछ नहीं जानते थे, इसलिए उन्हें इस प्रकार सङ्कटग्रस्त देखकर वे करुण स्वरसे आर्त्तनाद करने लगे॥ ७-११॥

**अथ व्रजे महोत्पातास्त्रिविधा ह्यतिदारुणाः।**
**उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः॥ १२॥**

**अन्वयः**—अथ (उस समय) व्रजे भुवि (व्रजमें भूकम्प) दिवि (आकाशमें उल्कापात आदि) आत्मनि (शरीरमें वाम अङ्ग स्फुरणरूप) आसन्न भयशंसिनः (निकटवर्त्ती भयसूचक) त्रिविधाः अतिदारुणाः महोत्पाताः उत्पेतुः (त्रिविध अति दारुण महा उत्पात होने लगे)॥ १२॥

**अनुवाद**—उस समय व्रजमें भूमिकम्प और आकाशसे उल्कापात होने लगा तथा प्राणियोंके शरीरोंके वाम अङ्ग फड़कने लगे। इस प्रकार ये तीनों प्रकारके अति भयङ्कर लक्षण निकटस्थ किसी अशुभ घटनाकी सूचना देने लगे॥ १२॥

**सारार्थदर्शिनी**—त्रिविधाः भुवि भूकम्पादयः दिवि उल्कापातादयः आत्मनि वामनेत्रस्फुरणादयः भगवतः खल्वमङ्गलाशङ्काराहित्येऽपि यदुत्पातप्राकट्यं तद्गवां गोपादीनां च दुःखसूचनार्थं किंवा तत्तदधिष्ठातृदेवानामपि कृष्णे प्रीतिमत्त्वेनैश्वर्यविस्मरणात् कृष्णेऽप्य शुभाशङ्किनः उत्पातं प्रकटयामासुरिति॥ १२॥

**भावानुवाद**—*'त्रिविधाः'*—पृथ्वीमें भूमिकम्प, आकाशमें उल्कापात और प्राणियोंके बाँये नेत्र फड़कने लगे, जो किसी महाभयङ्कर महा-उत्पातकी सूचना देने लगे। श्रीभगवान्‌के किसी प्रकारके अमङ्गलकी

आशङ्का न रहनेपर भी यहाँ जो अशुभ लक्षण दीख रहे थे, वे गायों तथा गोपोंकी विपत्तिको ही सूचित कर रहे थे। अथवा कृष्णको कालियके बन्धनमें देखकर देवता भी मोहित हो गये तथा कृष्णका ऐश्वर्य भूलकर उनके अनिष्टकी आशङ्कासे ऐसे अशुभ लक्षणोंको दिखाने लगे, जिससे कि व्रजवासी शीघ्र आकर कृष्णको बचा सकें॥ १२॥

**तानालक्ष्य भयोद्विग्ना गोपा नन्दपुरोगमाः।**
**विना रामेण गाः कृष्णं ज्ञात्वा चारयितुं गतम्॥ १३॥**

**तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं मत्वा प्राप्तमतद्विदः।**
**तत्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः॥ १४॥**

**आबालवृद्धवनिताः सर्वेऽङ्ग पशुवृत्तयः।**
**निर्जग्मुर्गोकुलाद्दीनाः कृष्णदर्शनलालसाः॥ १५॥**

**अन्वयः**—तान् (उन अशुभ लक्षणोंको) आलक्ष्य नन्दपुरोगमाः (देखकर नन्द महाराज आदि) गोपाः रामेन बिना (गोपबालक बलदेवके बिना) गाः (गायोंको) चारयितुं कृष्णं गतं ज्ञात्वा भयोद्विग्ना (चरानेके लिए कृष्णको लेकर गये हैं, यह जानकर भयसे उद्विग्न होकर तथा) अतद्विदः (कृष्णके ऐश्वर्यज्ञान-विहीन माधुर्य-परायण) तैः दुर्निमित्तैः निधनं प्राप्त मत्वा तत्प्राणाः तन्मनस्काः (कृष्णगतप्राण और तद्गतचित्त गोपगण उन दुर्लक्षणोंको देखकर कृष्णकी मृत्य स्थिरकर) ते (गोप) दुःखशोकभयातुराः (दुःख, शोक, भयसे कातर हो गये) पशुवृत्तयः (श्रीकृष्णके प्रति अतिशय स्नेह वात्सल्यभाव-विशिष्ट) सर्वे आबालवृद्धवनिताः वै दीनाः कृष्णदर्शनलालसाः (बालक-वृद्ध-वनिता सभी कृष्णदर्शनकी लालसासे) गोकुलात् निर्जग्मुः (व्रजसे निकल पड़े)॥ १३-१५॥

**अनुवाद**—नन्द आदि प्रमुख गोपोंने जब इन अपशकुनोंको देखा और फिर यह ज्ञात होनेपर कि कृष्ण बलदेवको साथ लिये बिना ही सखाओंके साथ गोचारणके लिए चला गया है, वे सब भयसे अत्यन्त व्याकुल हो गये॥ १३॥

कृष्णके ऐश्वर्यज्ञानसे रहित माधुर्यपर तथा उनमें समर्पित प्राण, चित्त और मनवाले गोपोंने उन भयङ्कर लक्षणोंको देखकर यह निश्चय कर लिया कि आज तो कृष्णकी मृत्यु हो ही गयी होगी। अतः वे दुःख, भय एवं शोकसे कातर हो गये॥ १४॥

कृष्णके प्रति वात्सल्य भाववाले व्रजके बालक, वृद्ध, स्त्री आदि सभी अपने प्यारे कन्हैयाको देखनेकी उत्कट लालसासे अपना-अपना घर-द्वार छोड़कर गिरते-पड़ते वनकी ओर दौड़ पड़े॥ १५॥

**सारार्थदर्शिनी—**तानालक्ष्य गोकुलान्निर्जग्मुरिति तृतीयेनान्वयः! निधनमेव प्राप्तं मत्वा नितरां धनं श्रीयमुनाह्रदरूपं स्वविहारास्पदमिति सरस्वतीसम्वादः महाशोकात् पशूनामिव बुद्धिविवेकप्रतीकारज्ञानशून्या वृत्तिः सत्ता येषां ते॥ १३-१५॥

**भावानुवाद—***'तान् आलक्ष्य'*—उन महा-अपशकुनोंको देखकर श्रीनन्द बाबा एवं यशोदा मैया आदि गोप-गोपियाँ गोकुलसे बाहर निकल पड़े। कृष्ण निधनको प्राप्त हो गया है—ऐसा समझकर वे गोकुलसे निकल आये, अथवा सरस्वतीदेवीके पक्षमें अर्थ है—*'निधन'* कहनेसे निरतिशय धन अर्थात् यमुना-ह्रदरूप कृष्णका विहार-स्थान अर्थात् कृष्ण यमुना-ह्रदरूप अपने विहार-स्थानको प्राप्त हुए हैं। *'पशुवृत्तयः'*—महाशोकके कारण पशुओंकी भाँति बुद्धि, विवेक एवं प्रतिकारके विषयमें ज्ञानरहित होकर बालक-वृद्ध-वनिता सभी गोकुलसे बाहर निकल आये॥ १३-१५॥

**तांस्तथा कातरान् वीक्ष्य भगवान् माधवो बलः।**
**प्रहस्य किञ्चिन्नोवाच प्रभावज्ञोऽनुजस्य सः॥ १६॥**

**अन्वयः—**अनुजस्य (अनुज श्रीकृष्णके) प्रभावज्ञः (प्रभावको जाननेवाले) सः भगवान् माधवः बलः (भगवान् बलदेवने) तान् (उन गोपोंको) तथा कातरान् वीक्ष्य प्रहस्य (इस प्रकार कातर देखकर मन्द हास्य करते हुए) किञ्चित् न उवाच (कुछ नहीं कहा)॥ १६॥

**अनुवाद—**श्रीकृष्णके प्रभावको अच्छी प्रकारसे जाननेवाले भगवान् बलदेवजी गोपोंको इस प्रकार कातर देखकर मन्द-मन्द मुसकराने लगे, परन्तु मुखसे कुछ नहीं बोले॥ १६॥

**सारार्थदर्शिनी**—*"मा विद्या च यतः प्रोक्ता तस्या ईशो यतो भवेत्। तस्मान्माधवनामाऽसि धवः स्वामीति कीर्तितः॥"* इति हरिवंशोक्तनिरुक्तेः प्रभावं लीलैश्वर्यं जानातीति सः। तस्य स्वानुजमहाप्रेमवत्त्वेऽपि प्रेम्णा तदैश्वर्यानामावरणं कृष्णेच्छानुरञ्जितलीलाशक्त्यैव अन्यथा श्रीनन्दादीन् शोकावेगेन सर्पह्रदं मंक्षु शीघ्रं मिमंक्षून् को वारयितुं प्रभवेदिति भावः प्रहस्येति मत्स्वरूपेण शेषनागेन सह क्रीड़ा न रोचते किन्तु प्राकृतक्षुद्रकालियसर्पाधमेनैवेति तस्य नरलीलत्वस्मरणात् किञ्चिन्नोवाचेति तेषां शोकान्धानां कृष्णं दिदृक्षूणां तदावरणस्यानौचित्यादशक्यत्वाच्च किन्तु स्वप्रहासशोकाभावदर्शनं यतो न किञ्चिदनिष्टाभाव-मूहयित्वा प्राणजिहासां शिथिलयामास॥ १६॥

**भावानुवाद**—*'माधवो बलः'*—मायाधीश श्रीबलराम। श्रीहरिवंशमें 'मा' शब्दका अर्थ विद्या कहा गया है। उसके अधीश्वर होनेके कारण वे माधव नामसे कीर्त्तित हुए हैं। *'प्रभावज्ञः'*—वे अपने अनुज कृष्णका प्रभाव अर्थात् उनके लीला-ऐश्वर्यको जानते हैं। अनुजके प्रति महाप्रेमयुक्त होनेपर भी प्रीतिवशतः उनके ऐश्वर्यका आवरण श्रीकृष्णकी इच्छासे अनुरञ्जित लीला-शक्ति द्वारा ही हुआ था, अन्यथा शोकाकुल श्रीनन्दादिको तत्क्षणात् कालिय-ह्रदमें निमजित होनेसे निवारण करनेमें कौन समर्थ हो सकता था? *'प्रहस्य'*—यह विचारकर कि मेरे स्वरूपभूत शेषनागके साथ क्रीड़ा करनेमें तुम्हारी रूचि नहीं है, परन्तु प्राकृत क्षुद्र सर्पाधम कालियके साथ क्रीड़ा कर रहे हो, इस प्रकार उनकी नरलीलाका स्मरणकर बलरामजी मन्द-मन्द हँसने लगे। परन्तु उन्होंने मुखसे कुछ भी नहीं कहा, क्योंकि शोकसे अन्धे हुए व्रजवासियोंकी कृष्ण-दर्शनकी इच्छामें बाधा देना अनुचित था और ऐसा सम्भव भी नहीं था। किन्तु स्वयं हँसकर और शोकका अभाव दिखलाकर कृष्णका किसी प्रकारका अनिष्ट नहीं हो सकता है, यह समझाकर उन्होंने व्रजवासियोंके प्राणत्याग करनेकी इच्छाको शान्त किया॥ १६॥

**तेऽन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः।**
**भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटम्॥ १७॥**

**अन्वयः**—ते (गोपगण) दयितं (प्रिय) कृष्णं अन्वेषमाणाः भगवल्लक्षणैः (कृष्णके शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि चिह्नोंसे

सुशोभित) पदैः (पदचिह्नोंके द्वारा) सुचितया (सूचित) पदव्या (मार्गमें) यमुनातटं जग्मुः (यमुनाके तटपर गये)॥ १७॥

**अनुवाद—**व्रजवासी अपने प्रिय कृष्णको खोजते हुए मार्गमें जहाँ-जहाँ उनके शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि चिह्नोंसे युक्त चरणोंकी छाप दिखायी देती, उनसे कृष्णके गन्तव्यकी सूचना प्राप्तकर उन्हीं चिह्नोंका अनुसरण करते हुए यमुना-तटपर पहुँचे॥ १७॥

**सारार्थदर्शिनी—**भगवन्तं लक्षयन्तियानि तैः पदैः सूचितया पदव्या॥ १७॥

**भावानुवाद—**जिन समस्त चरणचिह्नोंसे भगवान्‌को जाना जाता है, उन्हीं पदचिह्नोंको देखते-देखते वे लोग यमुनाकी ओर चल पड़े॥ १७॥

**ते तत्र तत्राब्जयवाङ्कुशाशनि-**
**ध्वजोपपन्नानि पदानि विश्पतेः।**
**मार्गे गवामन्यपदान्तरान्तरे,**
**निरीक्ष्यमाणा ययुरङ्ग सत्वराः॥ १८॥**

**अन्वयः—**अङ्ग (हे महाराज!) ते (व्रजजन) तत्र तत्र मार्गे (उस मार्गमें) गवां अन्यपदान्तरान्तरे (गायोंके पदचिह्नोंके बीचमें) विश्पतेः (कृष्णके) अब्जयवाङ्कुशाशनिध्वजोपपन्नानि (पद्म, जौ, अङ्कुश, वज्र एवं ध्वज आदि चिह्नयुक्त) पदानि (पदचिह्नोंको) निरीक्षमाणाः (देखते हुए) सत्वराः (अतिशीघ्र) ययुः (जाने लगे)॥ १८॥

**अनुवाद—**हे राजन्! मार्गमें गौओंके पदचिह्नोंके बीच-बीचमें उन्हें पद्म, जौ, अङ्कुश, वज्र एवं ध्वजा युक्त श्रीकृष्णके पदचिह्न दिखायी पड़ जाते थे, जिन्हें देखकर वे शीघ्रातिशीघ्र चलने लगे॥ १८॥

**सारार्थदर्शिनी—**पदैः पदवीज्ञानप्रकारमाह—ते इति। विश्पतेः विशां वैश्यानां गोपानां पत्युरध्यक्षस्य कृष्णस्य, षत्वाभाव आर्षः। अन्येषां पदानामन्तरान्तरे मध्ये तत्रदपोहेन गवां श्रुतीनां मार्गे सत्वरा अप्रमत्ता योगिनस्तत्तदुपाध्यपवादेन यथा परं तत्त्वं मृगयन्ति तद्वदिति भावः॥ १८॥

**भावानुवाद**—व्रजवासियोंने पदचिह्नोंके द्वारा कैसे अपना मार्ग स्थिर किया, उसे 'ते' इत्यादि द्वारा कह रहे हैं। *'विश्पतेः'*—गोपोंके पति अर्थात् अध्यक्ष—श्रीकृष्णके। जैसे अप्रमत्त योगी व्यग्र होकर वेद मार्गके अनुसार चलकर उन वेदोक्त उपाधियोंको दूरकर परमतत्त्वका अन्वेषण करते हैं, वैसे ही व्रजवासी गोचारण मार्गमें गायों और गोपबालकोंके पदचिह्नोंके बीच-बीचमें कृष्णके ध्वज, वज्र, जौ, अङ्कुश और पद्मयुक्त पदचिह्नोंको देखकर शीघ्रतापूर्वक चलने लगे—यही भावार्थ है॥ १८॥

**अन्तर्ह्रदे भुजगभोगपरीतमारात्,**
**कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयान्ते।**
**गोपांश्च मूढधिषणान् परितः पशूंश्च,**
**संक्रन्दतः परमकश्मलमापूरार्त्ताः॥ १९॥**

**अन्वयः**—(वे व्रजवासी!) अन्तर्ह्रदे (ह्रदके अन्दर) आरात् (दूरसे) भुजगभोगपरीतं (सर्प-शरीरके द्वारा परिवेष्टित) निरीहं (निश्चेष्ट) कृष्णं उपलभ्य (कृष्णको देखकर एवं) जलाशयन्ते (जलाशयके समीपमें) मूढधिषणान् (हतबुद्धि) गोपान् (गोपोंको तथा) परितः (चारों ओर) संक्रन्दतः (क्रन्दनरत) पशून् च (पशुओंको देखकर) आर्त्ताः (अत्यन्त पीड़ित) परमकश्मलं (और मोहको) आ आपुः (प्राप्त हुए)॥ १९॥

**अनुवाद**—उन्होंने दूरसे ही देखा कि कालिय-ह्रदमें कालियसर्पकी देहसे जकड़े हुए कृष्ण निश्चेष्ट होकर पड़े हैं और उस ह्रदके पास ही ग्वालबाल भी अचेत पड़े हैं। गाय, बैल, बछड़े आदि सभी आर्त्तस्वरसे क्रन्दन कर रहे हैं। यह सब देखकर गोप-गोपियाँ अत्यधिक पीड़ित और मोहग्रस्त हो गये॥ १९॥

**सारार्थदर्शिनी**—सामान्यतो गोपगोपीजनानां वैक्लव्यमाह—तत श्चान्तर्ह्रदे ह्रदमध्ये भुजगभोगपरीतं सर्पशरीरवेष्टितं भो बालकाः, वृत्तान्तं तावत्कथयत किं कालियेनैव तीरात् कृष्णो बलादाकृष्य जले पातितः किंवा कृष्ण एव तीरादवप्लुत्य जले पतितः? तत्रापि स्वबुद्ध्या अन्यस्य कस्यचिदादेशेन वेत्यादिप्रश्ने मूढधियः

मूर्च्छित बुद्धीन् वक्तुं किमपि चेष्टितुं चासमर्थान् गोपान् वीक्ष्य परमकश्मलं तन्मूर्च्छातः सकाशादप्यतिमूर्च्छाम्॥ १९॥

**भावानुवाद**—साधारण भावसे समस्त गोपों और गोपियोंकी विकलताको दिखा रहे हैं। *'अन्तर्ह्रदे'*—उस ह्रदमें कालियनागके फेंटेमें बँधे हुए निश्चेष्ट कृष्णको देखकर वे पूछने लगे—"बालको! क्या हुआ? क्या कालियनाग कृष्णको खींचकर पानीमें ले गया? अथवा कृष्ण ही तटसे पानीमें कूद गया? उसने अपनी इच्छासे ऐसा किया या किसीके आदेशसे?" इस प्रकार बहुत-से प्रश्न करनेपर भी हतबुद्धि बालक कुछ भी न बतला सके। कुछ भी बोलने या हाथ-पैर हिलानेमें असमर्थ उन गोपबालकोंको देखकर व्रजवासिगण उनकी मूर्च्छासे भी अधिकतर मूर्च्छा दशाको प्राप्त हो गये॥ १९॥

**गोप्योऽनुरक्तमनसो भगवत्यनन्ते**
**तत्सौहृदः स्मितविलोकगिरः स्मरन्त्यः।**
**ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदुःखतप्ताः**
**शून्यं प्रियव्यतिहृतं ददृशुस्त्रिलोकम्॥ २०॥**

**अन्वयः**—प्रियतमे भगवति अनन्ते अहिना ग्रस्ते (अनन्त गुणशाली प्रियतम भगवान् अनन्तदेवके सर्पग्रस्त होनेपर) अनुरक्तमनसः (कृष्णके प्रति आसक्तचित्तवाली) गोप्यः तत्सौहृदस्मितविलोकगिरः (गोपियाँ उनका प्रेम, हास्य, अवलोकन एवं रहस्यवार्त्ताका) स्मरन्त्यः भृश दुःख तप्ताः (स्मरण करती हुई अत्यन्त दुःख सन्तप्त हृदयसे) त्रिलोकं शून्यं ददृशुः (त्रिलोकको शून्य देखने लगीं)॥ २०॥

**अनुवाद**—प्रियतम भगवान् अनन्तदेवको कालियसर्पसे ग्रस्त देखकर उनमें अनुरक्तचित्त गोपियाँ उनके प्रेम, मधुर-मुसकान, प्रेमभरी चितवन तथा रहस्यपूर्ण मधुर वाणीका ही स्मरण करने लगीं। कृष्ण विरहयुक्त होनेके कारण अत्यधिक दुःखसे सन्तप्त हृदयमें उन्हें तीनों लोक ही सूने दिखायी देने लगे॥ २०॥

**सारार्थदर्शिनी**—तत्रानुरागवतीनां वैक्लव्यमाह—भगवति परमसुन्दरे अनन्तगुणे तस्य सौहृदं स्वविषयकं प्रेमस्मितं विलोकं रहसि कृतां गिरं सौरतवार्तां च स्मरन्त्यः

त्रिलोकं प्रियेण व्यतिकृतं विरहितं तद्विरहदावाग्निभस्मीभूतत्वाच्छून्यं *"व्यतिहृतमिति"* पाठे प्रियेणैव विशेषेणातिशयेन च हृतं स्वदशान्तःपातीतिकृतं ददृशुः॥ २०॥

**भावानुवाद**—उन व्रजवासियोंमेंसे श्रीकृष्णमें परम अनुरागवती व्रजबालाओंकी विकलताका वर्णन कर रहे हैं। *'भगवति'*—परम सुन्दर अनन्त गुणविशिष्ट प्रियतम श्रीकृष्णके प्रति निरन्तर प्रेमवती गोपियाँ अपने प्रति उनके सप्रेम हास्य, अवलोकन और एकान्तमें सुरतक्रीड़ा सम्बन्धीय वार्त्तालापका स्मरणकर प्रियतमके वियोगरूप दावाग्निके द्वारा भस्मीभूत होकर चारों ओर शून्य देखने लगीं। *'व्यतिहृतम्'*—पाठके द्वारा अपनी दशाकी भाँति त्रिजगत्को भी कृष्ण-विरहमें जलते हुए देखा॥ २०॥

**तां कृष्णमातरमपत्यमनुप्रविष्टां**
**तुल्यव्यथाः समनुगृह्य शुचः स्रवन्त्यः।**
**तास्ता व्रजप्रियकथाः कथयन्त्य आसन्**
**कृष्णाननेऽर्पितदृशो मृतकप्रतीकाः॥ २१॥**

**अन्वयः**—(अनन्तर) तुल्यव्यथाः (समदुःखिता) ताः (गोपियाँ) अपत्यं अनुप्रतन्तां (पुत्रशोकसे कातरा) कृष्णमातरं समनुगृह्य (यशोदा माताके निकट) शुचः स्रवन्त्यः (शोक प्रकाश करती हुई) ताः ताः व्रजप्रियकथाः (व्रजमें कृष्णके द्वारा आचरित लीलाओंका) कथयन्त्यः कृष्णानने (वर्णन करती हुई कृष्णके मुखकी ओर) अर्पितदृशः (नयन देकर) मृतकप्रतीकाः (मृततुल्य निश्चेष्ट होकर) आसन् (अवस्थान करने लगीं)॥ २१॥

**अनुवाद**—तब अत्यन्त दुखित गोपियाँ पुत्र शोकमें कातर माता यशोदाके पास जाकर शोक प्रकट करने लगीं एवं व्रजमें कृष्णके द्वारा की गयी लीलाओंका वर्णन करते-करते कृष्णके मुखकी ओर दृष्टिपात करते ही मृततुल्य निश्चेष्ट भावको प्राप्त हो गयीं॥ २१॥

**सारार्थदर्शिनी**—तत्र वात्सल्यवतीनां वैक्लव्यमाह—ताः प्रसिद्धाः पुरन्ध्रयः अपत्यम् अनुलक्षीकृत्य प्रतप्तां सन्तापजर्ज्जरां प्रविष्टाम् इति पाठे अपत्य एव लीनतां प्राप्तां मूर्च्छतामिति यावत्। कृष्णमातरं यशोदां सम्यगनुगृह्येत्यधुनाप्यस्याः

शरीरे प्राणाः प्रायो वर्त्तन्ते तदिदं नोपेक्षणीय मिति तद्भुजाभ्यामङ्केकृत्य शीतलसलिलेनाश्रुलालाक्लिन्नं मुखं मुहुर्मुहुः प्रक्षाल्य व्रजप्रियस्य कृष्णस्य कथास्तास्ताः उच्चैः कथयन्त्यः तच्चेतनानाप्रापनार्थमिति भावः। ताः कीदृश्यः शुचः शोकस्यस्रवन्त्यो नद्यः *"स्रवन्ती निम्नगापगा"* इत्यमरः। स्वतरङ्गेनान्यानपि प्लावयन्त्य इति भावः। अन्ते तु मृतकस्येव प्रतीकाः अवयवा यासां ताः॥ २१॥

**भावानुवाद**—अब वात्सल्यवती गोपियोंकी विकलताका वर्णन कर रहे हैं—श्रीयशोदाजीके समान दुःखमें दुःखी उनकी सखी-स्वरूपा गोपियाँ पुत्रशोकसे जर्जरित यशोदाजीको यत्नपूर्वक दृढ़तासे पकड़कर कहने लगीं—"हाय! हाय! अभी भी इनके शरीरमें प्राण हैं, इसलिए इनके शरीरको छोड़ना उचित नहीं है"—ऐसा विचारकर दोनों हाथोंसे यशोदाजीको अपनी गोदमें रखकर शीतल जलसे उनके अश्रु और मुखसे निकलनेवाली लारको पुनः-पुनः धोने लगीं तथा कृष्णकी कथाओंको सुनाकर उन्हें सचेतन करनेका प्रयास करने लगीं। वे कैसी हैं? इसके लिए कह रहे हैं—वे सभी शोककी नदीकी भाँति हैं। अमरकोषमें कहा गया है—स्रवन्ती, निम्नगा, अपगा नदीके पर्यायवाची शब्द बताये गये हैं, अर्थात् अपनी लहरियोंके द्वारा दूसरोंको प्लावित कर देती हैं—यह भाव है। *'मृतकप्रतीकाः'*—मृतकी भाँति जिनके अङ्ग हैं, अर्थात् क्षणभरमें वे मरे हुए व्यक्तिकी भाँति अचेतन हो गयीं॥ २२॥

**कृष्णप्राणान् निर्विशतो नन्दादीन् वीक्ष्य तं ह्रदम्।**
**प्रत्यषेधत् स भगवान् रामः कृष्णानुभाववित्॥ २२॥**

**अन्वयः**—कृष्णानुभाववित् (कृष्णके प्रभावको जाननेवाले) सः भगवान् रामः (भगवान् बलदेवजीने) कृष्णप्राणान् (कृष्णगतप्राण) नन्दादीन् तं ह्रदं निर्विशतः (नन्द महाराज आदि गोपोंको उस ह्रदमें प्रवेश करते हुए) वीक्ष्य (देखकर) प्रत्यषेधत् (उन्हें रोक लिया)॥ २२॥

**अनुवाद**—कृष्णके प्रभावको जाननेवाले बलदेवजीने जब देखा कि नन्दबाबा आदि गोप ह्रदमें प्रवेश करने जा रहे हैं, तो उन्होंने उन सबको ऐसा करनेसे रोक दिया॥ २२॥

**सारार्थदर्शिनी**—प्रत्यषेधदिति। भो आर्यपादाः! *"अनेन सर्वदुर्गाणि युयमञ्जस्तरिष्यथ"* इति गर्गवचनादस्यत्वे तादृशदुर्गोत्तरणं किं चित्रमिति विचार्य विवेकं भजत। युष्मासु ह्रदं प्रविष्टेषु पश्चात् स्वस्त्यागतस्यास्यमदनुजस्य लालनपालनादिकं कैः कर्तव्यं *"गोपायस्व समाहितः"* इति गर्गमहर्षिनिर्देशलङ्घने प्रवृत्ताः कथं स्थेत्यादिवाक्यैरित्यर्थः। भगवान् इति तत्र सामर्थ्यम्॥ २२॥

**भावानुवाद**—*'प्रत्यषेधत्'*—कृष्ण ही जिनके एकमात्र जीवन हैं ऐसे श्रीनन्दबाबा आदि समस्त व्रजवासियोंको विषैले कालिय-ह्रदमें प्रवेश करनेके लिए प्रस्तुत देखकर श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाले बलरामजी उन्हें रोकने लगे, अर्थात् "हे परम पूजनीय जन! कृष्ण आपलोगोंको समस्त प्रकारकी विपत्तियोंसे पारकर देंगे—क्या आपलोग गर्गाचार्यकी इस भविष्यवाणीको भूल गये हैं? कृष्ण द्वारा इस विपदसे उद्धार पानेमें कुछ भी आश्चर्य नहीं हैं, अतः धैर्य धारण कीजिये। विशेषता यदि आपलोग इस ह्रदमें प्रवेशकर मर जायेंगे, तो बताइये भैया कृष्णके निर्विघ्न रूपसे इस ह्रदसे निकलकर आनेपर उसका पालन-पोषण कौन करेगा? और भी सुनिये—'सावधानीसे इस बालककी रक्षा करना'—गर्गाचार्यकी इस आज्ञाका आप सब लोग उल्लङ्घन क्यों करना चाहते हैं?" इत्यादि सान्त्वनापूर्ण वचनोंसे बलरामजीने उन्हें ह्रदमें प्रवेश करनेसे रोका। *'भगवान् रामः'*—इस वचनसे ऐसा सूचित होता है कि बलरामजी रक्षा करनेमें समर्थ थे॥ २२॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—कालिय-ह्रदमें नन्दनन्दनकी ऐसी दशाको देखकर उनके सखा स्वयं भी प्राण धारण करनेमें असमर्थ हो गये। "हा व्रजजीवन! हा कृष्ण!" कहकर विलाप करते हुए वे भी कालिय-ह्रदके तटपर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उनके करुण और मर्मस्पर्शी विलापको सुनकर निकटके खेतोंसे वयोवृद्ध गोप भी दौड़कर आये एवं उस भयानक दृश्यको देखकर वे भी अचेतन हो गये। अपने प्राण-स्वरूप कृष्णकी ऐसा दुर्दशा देखकर गाय, बैल आदि पशुओंकी आँखोंसे भी अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। वे सब भी कृष्णकी ओर करुण-दृष्टिसे देखकर मानो हुँकारके द्वारा विलाप करने लगे एवं वज्रपातके आघातसे घायलकी भाँति निर्जीव-से खड़े

रह गये। किन्तु कोई भी इस प्राणान्तकारी घटनाका समाचार व्रजमें पहुँचानेमें समर्थ नहीं हो सका।

व्रजवासी गोप-गोपियाँ प्रतिदिन पूर्वाह्नमें प्यारे कृष्णको गोचारणमें भेजकर उत्कण्ठित होकर तृतीय प्रहरकी प्रतीक्षामें रहते थे। आज भी वे उसी प्रकार उत्कण्ठित थे। जिस प्रकार प्रतिदिन वे दोपहरसे ही प्यारे कृष्णके भोजनके लिए मक्खन और पकवान आदि प्रस्तुत करनेमें व्यस्त रहते थे, आज भी वे वैसे ही व्यस्त थे। किन्तु आज उनका प्राणकृष्ण गोचारणमें जाकर कालियनागके पाशमें स्पन्दनहीन होकर बँधा हुआ है एवं उनके विरहमें दुःखी गोपबालक एवं गाय-बैल आदि पशु भी मूर्च्छित पड़े हैं—इस बातको वे नहीं जानते थे। तब आकाश मार्गमें स्थित देवतागण यह संवाद व्रजमें देनेके लिए व्याकुल हो उठे एवं उन्होंने विविध अमङ्गलसूचक सङ्केतोंसे उन्हें इसके विषयमें बतलाना आरम्भ कर दिया।

देखते-देखते देवताओंकी प्रेरणासे व्रजभूमिमें, आकाशमें और व्रजवासियोंके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें विविध प्रकारके अमङ्गलसूचक लक्षण दिखायी देने लगे। क्षण-क्षणमें भूकम्प, दिनमें ही सियारोंका हुँआ-हुँआ शब्द, कौओंकी कर्कश ध्वनि, दिनमें उल्लुओंका विकट शब्द आदि विविध प्रकारके अपशकुन व्रजभूमिमें दिखलायी पड़ने लगे। आकाशसे बार-बार उल्कापात, दिनमें तारोंका दिखना, सूर्यकी तेज-हीनता आदि अपशकुन दिखलायी देने लगे। व्रजवासी पुरुषोंके बाँये अङ्ग फड़कने लगे तथा अचानक हृत्कम्प आदि विविध दैहिक अमङ्गल भी दीखने लगे। इससे सभी व्रजवासी किङ्कर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे उनका कुछ खो गया हो, उन्हें किसी भी प्रकारसे शान्ति नहीं मिल रही थी। तब सभी व्रजवासी नर-नारी नन्द-भवनमें आकर उपस्थित हुए एवं देखा कि यशोदा, रोहिणी, नन्द, उपनन्द आदि भी उन आकस्मिक अपशकुनोंको देखकर धैर्य खो बैठे हैं।

व्रजवासियोंके अच्छे-बुरे, सुख-दुःख, मङ्गल-अमङ्गल आदिका सम्बन्ध तो केवल कृष्णके सम्बन्धमें ही था। कृष्णके सुख-दुःखके अतिरिक्त उन्हें अपने किसी भी सुख-दुःखकी चिन्ता नहीं रहती थी।

इसलिए व्रजमें जब अकस्मात् विविध प्रकारके अमङ्गलसूचक चिह्न दिखायी देने लगे, तब सभीका मन एकमात्र कृष्णके लिए व्याकुल हो उठा। नन्दबाबा आदि गोपोंने विचार किया कि आज हमारा चञ्चल कृष्ण बलरामको साथ लेकर नहीं गया है। इसलिए निश्चित ही कोई दुःसाहसिक कार्य करनेके कारण विपत्तिमें फँस गया है। कृष्णने अघासुर, बकासुर आदि महाप्रभावशाली असुरोंके साथ विरोध करके बहुत-से दुःसाहसिक कार्य किये हैं, किन्तु हमने व्रजमें ऐसे अमङ्गलसूचक अपशकुन पहले कभी नहीं देखे, इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि आज कृष्ण दूसरे दिनोंकी अपेक्षा कोई बहुत बड़ा दुःसाहसिक कार्य कर बैठा है तथा किसी बड़ी विपत्तिमें पड़ गया है, इसीलिए हमलोगोंका हृदय काँप रहा है।

वात्सल्यप्रेमके सागरमें डूबे हुए व्रजवासी गोप-गोपियाँ श्रीकृष्णके सच्चिदानन्द स्वरूप या असमोर्ध्व ऐश्वर्यके विषयमें नहीं जानते थे। उनके हृदयमें कृष्णके प्रति पुत्रभावके अतिरिक्त अन्य किसी भावके लिए कोई स्थान नहीं था। इसलिए जिनका नाम लेनेसे सब प्रकारके अमङ्गल दूर होते हैं, ऐसे सर्व अमङ्गलहारी, परम मङ्गलमय श्रीहरिके अमङ्गलकी सम्भावना करके वे व्याकुल हो उठे। उनका मन, प्राण सर्वदा कृष्णके प्रति वात्सल्यरसमें निमग्न रहता था। सर्वदा कृष्णके हितकी चिन्ता एवं उनका सुख विधान करना ही उनके जीवनका व्रत एवं मनका सुदृढ़ सङ्कल्प था। किन्तु आज व्रजवासीजन कृष्णका कोई समाचार नहीं जान पा रहे थे। उनका प्राणकृष्ण कहाँ है, यह भी वे नहीं जानते थे। कौन-से मार्गसे एवं कहाँ जानेसे वे अपने प्राणोंके प्राण कृष्णको देख सकेंगे, यह उनकी धारणामें नहीं आ पा रहा था, किन्तु फिर भी वे गिरते-पड़ते व्रजके मार्गोंमें दौड़ने लगे। नन्द, यशोदा, रोहिणी एवं व्रजवासीगण समस्त गोप-गोपियोंको इस प्रकार कृष्णके अमङ्गलकी आशङ्कासे अत्यन्त व्याकुल एवं शोक सन्तप्त देखकर भी श्रीबलदेवजीने उन्हें कुछ नहीं कहा या उनकी जैसी व्याकुलता प्रकाश नहीं की।

व्रजवासियोंकी व्याकुलता देखकर श्रीबलदेवजीका हृदय भी अत्यन्त दुःखी था, किन्तु वे अपना दुख छिपाकर उन्हें सान्त्वना

देनेके लिए मन्द-मन्द हँसते हुए उनके पीछे-पीछे चलने लगे। यदि बलदेवजी भी व्रजवासियोंकी भाँति कृष्ण-विरहमें अधीर एवं व्याकुल हो जाते, तब तो व्रजवासी हताश होकर प्राण परित्याग ही कर देते, किन्तु उन्हें मुसकराता हुआ देखकर व्रजवासियोंके मनमें कुछ आशा और धैर्यका सञ्चार हुआ एवं वे सोचने लगे कि बलदेव जब अपने छोटे भैयाके लिए व्याकुल नहीं है, तब निश्चय ही उसका समाचार जानता है। किन्तु उनकी प्रबल कृष्ण-विरहाग्निको वह विचार भी शान्त नहीं कर सका, वे केवल "हा कृष्ण! हा कृष्ण!" कहकर विलाप करते-करते व्रजपथपर अग्रसर हो रहे थे।

असंख्य गोपबालकों और असंख्य पशुओंको साथमें लेकर कृष्ण जिस मार्गसे गोचारणके लिए गये थे, उस मार्गमें कृष्णके साथ-साथ असंख्य गोपबालकों और गायोंके पदचिह्न भी थे, किन्तु व्रजवासियोंको उनमेंसे केवल कृष्णके ही पदचिह्न दिखायी पड़े। इसका कारण है कि उनके चरणोंमें विद्यमान ध्वज, वज्र, अङ्कुश, चक्र आदि चिह्नोंको धरतीदेवी अलङ्कारके रूपमें अपने वक्षःस्थलमें धारणकर मानो गर्वके साथ स्वर्गादि ऊर्ध्व लोकोंको दिखा रही थीं कि ऐसा भाग्य चतुर्दश भुवनमें कोई भी प्राप्त नहीं कर सका।

व्रजवासी गोप-गोपियाँ *'गवां मार्गे'* अर्थात् गायोंके गमन मार्गमें—*'अन्यपदान्तरान्तरे'*—दूसरे ग्वालबालों एवं गायोंके पदचिह्नोंके बीच-बीचमें *'निरीक्षमाणाः'*—कृष्णके पदचिह्नोंको देखते-देखते *'सत्वराः ययुः'*—शीघ्रतासे कृष्णको ढूँढ़ते हुए अग्रसर हुए। इसी प्रकार जगत्में जो *'गवां मार्गे'*—श्रुतिनिर्दिष्ट मार्गपर चलते हैं, वे कृष्णको पा लेते हैं। (गो शब्दका अर्थ वेद भी है) *'अन्यपदान्तरान्तरे'*—श्रुतियोंमें उक्त विविध सकाम कर्म, अभिचार, अर्थवाद, धनुर्वेद, आयुर्वेद आदि पदोंके (वाक्योंके) बीच-बीचमें जो कृष्णपद हैं, अर्थात् भगवान्का स्वरूप, माधुर्य एवं उनकी उपासनादिके बोधक जितने वचन हैं, उनका अनुशीलन करते-करते जो ऐकान्तिक होकर सावधानीपूर्वक चलते हैं, *'सत्वराः'*, वे शीघ्र ही श्रीकृष्णके निकट पहुँच सकते हैं। श्रुतियोंके दूसरे वचनोंपर दृष्टि पड़नेपर या दूसरे पदोंको देखकर श्रीकृष्णको भूलनेपर कोई भी कृष्णके समीप नहीं जा सकता। गोकुलके

गोप-गोपियाँ कृष्णके पदचिह्नोंको देखते-देखते ही कृष्णके निकट पहुँचे। जगत्‌में जो 'गोप' अर्थात् वेद-विश्वासी हैं, वे ही वेदोक्त श्रीकृष्णपदका आश्रयकर श्रीकृष्णके निकट जानेमें समर्थ होते हैं। कृष्णके पथमें जैसे असंख्य गोपबालकोंके पदचिह्न रहनेपर भी उनमें अविकृत रूपसे कृष्ण-पदचिह्न विराजमान हैं, वैसे ही श्रुति-निर्दिष्ट पथमें भी असंख्य सकाम कर्मादि बोधक पद रहनेपर भी उनमें कृष्ण स्वरूपादिके बोधक पद भी अविकृत रूपमें अवस्थित हैं।

*"मार्गे गवामन्यपदान्तरान्तरे निरीक्ष्यमाणा ययुरङ्ग सत्वराः"*—इस प्रकार आधे श्लोकका विवेचन करनेपर व्रजवासियोंके कृष्णके समीप पहुँचनेके वृत्तान्तके साथ-साथ सर्वसाधारणके लिए भी श्रीकृष्णके समीप जानेका उपाय देखा जाता है।

इस प्रकार व्रजवासीजन कृष्णके पदचिह्नोंका अनुसरणकर जितना ही यमुनाकी ओर अग्रसर हो रहे थे, उतना ही कृष्णके अनिष्टकी आशङ्कासे उनका हृदय और भी अधिक अधीर हो रहा था। इसका कारण था कि जिस ओर वे चरणचिह्न दिखायी दे रहे थे, उसी दिशामें यमुना-ह्रदमें महाविषधर कालियसर्प निवास करता था, जिसके कालकूट विषसे यमुना-ह्रद अत्यन्त विषैला हो गया था और उसके तीरवर्त्ती स्थान भी ऐसे विषाक्त हो गये थे कि वहाँ जाने मात्रसे प्राणी मृत्युको प्राप्त हो जाते थे। इसे सभी व्रजवासी जानते थे। अतः उन्होंने सोचा कि अवश्य ही कृष्ण कालिय-ह्रदके विषैले जलमें जाकर विषके प्रभावसे मर गया होगा। यह सोचकर वे व्याकुल होकर पहलेसे भी अधिक तीव्र गतिसे कालिय-ह्रदकी ओर अग्रसर होने लगे। तभी कुछ आगे जाकर उन्होंने दूरसे देखा कि सचमुच ही उनके प्राणोंसे भी प्रिय कृष्णको कालियनागने अपने फेंटेमें जकड़ा हुआ है एवं वह निश्चेष्ट हो गया है।

यह हृदय-विदारक दृश्य देखकर व्रजवासियोंकी क्या दशा हुई, उसका भाषामें वर्णन नहीं हो सकता। वे सभी अपने दोनों हाथोंसे अपनी छाती तथा सिर पीटते हुए—"हा कृष्ण! हा व्रजजीवन!" कहकर विलाप करते हुए कालिय-ह्रदके तटपर उपस्थित हुए एवं वहाँपर देखा कि श्रीदाम, सुबल आदि गोपबालकगण भी मूर्च्छित

होकर पड़े हुए हैं एवं उनके शरीरोंमें भी प्राण हैं या नहीं, इसका बोध नहीं हो पा रहा था। उनसे कुछ ही दूर असंख्य गौवें भी निर्जीवकी भाँति खड़ी थीं एवं अश्रुव्याप्त नयनोंसे कालिय-ह्रदके मध्यमें कालियनागके पाशमें जकड़े हुए कृष्णके मुखकी ओर एकटक देख रही थीं। उनके शरीरोंमें भी प्राण हैं या नहीं, यह निर्णय करना बड़ा ही कठिन हो रहा था।

व्रजवासी पहले श्रीदाम, सुबलादि गोपबालकोंको उच्चःस्वरसे पुकारकर पूछने लगे, "हे कृष्णके प्यारे सखाओ! तुम सभी कृष्णके साथमें थे, तुमलोग यह बतलाओ कि हमारा प्राणप्रिय कृष्ण कैसे कालियके फेंटेमें आ गया। क्या कृष्ण ह्रदके तटपर आया था और कालियने वहाँसे बलपूर्वक उसे ह्रदमें खींच लिया अथवा चञ्चल कृष्ण स्वयं ही तटसे ह्रदमें कूद गया? कृष्णने यदि ऐसा ही किया तो, क्या अपनी बुद्धिसे ऐसा दुःसाहसिक कार्य किया या किसीने उसे परामर्श दिया? कैसे कृष्णकी ऐसी दशा हुई, हमें बताओ।" व्रजवासियोंने इस प्रकार गोपबालकोंसे कितनी ही बातें एक साथ पूछीं, परन्तु किसी भी बालकने न तो कोई उत्तर दिया और न ही सङ्केतसे भी कुछ कहा। इससे व्रजवासियोंने स्पष्ट रूपसे समझ लिया कि ये गोपबालक अब इस जगत्में नहीं हैं। तब तो व्रजवासी और भी अधीर हो गये एवं मन-ही-मन विचार करने लगे कि हाय! हाय! हमारे शरीरोंसे प्राण क्यों नहीं निकल जाते?

उसके पश्चात् गोपवधुएँ और गोपबालिकाएँ यमुना-तटपर उपस्थित होकर अपने प्राण-प्रियतम श्रीकृष्णको कालियनागके पाशमें बँधा हुआ देखकर त्रिजगत्को शून्यमय देखने लगीं। उन सभी गोपवधुओं एवं गोपबालिकाओंने नव-अनुरागके कारण कृष्णके चरणोंमें देह, मन, प्राण सब कुछ समर्पणकर मन-ही-मन कृष्णको ही अपने जीवनके सार सर्वस्वके रूपमें वरण किया था। वे उस समय कृष्णके मन्द मुसकानयुक्त मुख, मनमोहक नयन-भङ्गि एवं मधुर कोमल आलाप (वचन) आदि स्मरणकर मन-ही-मन मरणसे भी अधिक यातनाका अनुभव करने लगीं। किन्तु प्रेम-स्वभाव-सुलभ लज्जाके वशीभूत होकर वे उच्चःस्वरसे "हा कृष्ण! हा प्राणवल्लभ!" कहकर

आवेगके साथ विलाप नहीं कर सकीं। बस, वे कठपुतलियोंकी भाँति कालियके पाशमें बँधकर निश्चेष्ट हुए कृष्णके मुखकमलको अश्रुभरे अपलक नयनोंसे दूरसे ही देखने लगीं। कृष्णकी जननी यशोदा, रोहिणी एवं यशोदाके समान आयुवाली वात्सल्यमयी गोपियाँ सबसे अन्तमें यमुना-तटपर पहुँची एवं दूरसे ही अपने हृदयानन्द-वर्द्धन कृष्णको कालियनागके पाशमें बँधा हुआ देखकर शोकसिन्धुमें निमग्न हो गयीं।

अपने अञ्चलकी निधि, जीवनके जीवन-स्वरूप कृष्णको दूरसे कालियनागके पाशमें आबद्ध अवस्थामें देखकर वात्सल्यप्रेमकी महासागर कृष्णजननी यशोदाकी क्या स्थिति हुई होगी, इसका कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता। उन्होंने जहाँसे कृष्णको देखा, वहींपर निर्वाक और स्पन्दनहीन होकर मूर्त्तिकी भाँति खड़ीकी खड़ी रह गयीं। उस समय वे जीवित हैं या मृत, यह भी समझमें नहीं आ रहा था। उनके नेत्रोंमें पलकें नहीं झपक रही थीं, हृदयमें स्पन्दन नहीं था, मुँहसे एक शब्द नहीं निकल रहा था, अर्थात् उनके शरीरमें जीवित होनेका कोई लक्षण ही नहीं दिखायी दे रहा था। केवलमात्र उनके पलकरहित नयन कृष्णके मुखकी ओर एकटकसे लगे हुए थे तथा तप्त अश्रुजलकी धारा वर्षण कर रहे थे।

माता यशोदाको इस प्रकार शोचनीय दशामें देखकर बलदेवजीकी जननी रोहिणीजी एवं यशोदाकी समान आयुवाली कृष्ण-वात्सल्यवती गोपियाँ शीघ्र ही दौड़कर यशोदाजीके निकट आयीं एवं सम्वेदनापूर्ण हृदयसे यशोदाको घेरकर उन्हें नाना प्रकारसे सान्त्वना देने लगीं। यद्यपि कृष्णको कालियग्रस्त देखकर उनका हृदय भी शोकसे विदीर्ण हो रहा था, फिर भी वे कृष्णकी पूतनावध आदि लीलाओंका स्मरणकर अपने हृदयको एवं उन लीला-कथाओंका वर्णनकर यशोदाजीको सान्त्वना देनेका प्रयास करने लगीं।

वात्सल्यवती गोपियाँ यशोदाजीको कहने लगीं—"हे कृष्णकी मैया! तुम कृष्णके लिए क्यों वृथा चिन्ता और अनुताप कर रही हो? क्या तुम्हें महातपस्वी गर्ग मुनिकी बातें स्मरण नहीं हैं? विशेषकर तुम्हारा पुत्र जब केवल छह दिनका शिशु था, तभी उसने

भयानक पूतना राक्षसीका वध कर डाला था। तत्पश्चात् उसने शकट-भञ्जन, यमलार्ज्जुन-भञ्जन आदि कितने ही अलौकिक कार्य किये हैं। तृणावर्त्त, वत्सासुर, बकासुर, अघासुर आदि महापराक्रमी एवं देवताओं द्वारा भी दुर्दमनीय दैत्य, वृन्दावनके जीवन-स्वरूप हमारे प्यारे कृष्णको मार डालनेके लिए आये, किन्तु वे सभी मृत्युको प्राप्त हुए। हे यशोदे! यद्यपि कृष्ण, तुम्हारे स्तनदुग्धसे लालित-पालित हुआ है, फिर भी वह दुष्टोंको दमन करनेमें बड़ा चतुर है। अघासुर जैसे चार कोस लम्बे-चौड़े शरीरवाले महा-विषधरको जिस कृष्णने अनायास ही मार डाला, भला उसे यह नाग कैसे मार सकता है? तुम थोड़ी देर ठहर जाओ, तब देखना कि तुम्हारा कृष्ण कैसे दुष्ट कालियको मारकर तुम्हारे निकट आता है तथा मैया! मैया! कहकर तुम्हारी गोदीमें चढ़कर तुम्हारे तप्त प्राणोंको शीतल करता है।"

वात्सल्यप्रेमवती गोपियाँ इस प्रकार कृष्णकी पूतनावध आदि लीलाओंका वर्णनकर यशोदाको सान्त्वना तो प्रदान कर रही थीं, परन्तु उन्हें ज्ञात था कि इस प्रकारसे वे कृष्ण-जननी यशोदाको धैर्य धारण नहीं करा सकती थीं। फिर भी वे बार-बार प्रयास कर रही थीं तथा विचार कर रही थीं कि हम जब तक सम्भव हो, तब तक यशोदाको पकड़कर रखनेका प्रयास करेंगी, उसके पश्चात् जब सम्भव नहीं होगा, तब यशोदाके साथ-साथ हम सभी कालिय-ह्रदमें कूद जायेंगी।

*सर्वा यशोदया सार्द्धं विशामोऽत्र महाह्रदे।*
*नागराजस्य नो गन्तुमस्ताकं युज्यते व्रजे॥*

*दिवसः को बिना सूर्यं बिना चन्द्रेणका निशा।*
*बिना वृषेण का गावो बिना कृष्णेन को व्रजः॥*

*बिना कृता न यास्यामः कृष्णे जानेन गोकुलं।*
*अरण्यं नातिसेव्यञ्च वारिहीनं यथा सरः॥*

(विष्णुपुराण)

श्रीविष्णुपुराणमें ऐसा वर्णन है—वात्सल्यवती गोपियाँ मन-ही-मन विचार करने लगीं कि हम भी यशोदाके साथ कालिय-ह्रदमें प्रवेश

करेंगी, परन्तु व्रजमें लौटकर नहीं जायेंगी। इसका कारण है कि जैसे सूर्यके बिना दिवस, चन्द्रके बिना रजनी एवं बैलके बिना गाय निरर्थक है, वैसे ही कृष्णके बिना व्रज भी निरर्थक और शोभा-विहीन है। जल-विहीन सरोवर जैसे शोभा-विहीन होता है एवं वहाँ स्नान-पान आदि कार्य नहीं होते हैं, वैसे ही कृष्णके न होनेपर गोकुल भी शोभा-रहित और निरर्थक है।

कालिय-ह्रदके तटपर जिस कदम्बवृक्षसे कृष्णने ह्रदमें छलाङ्ग लगायी थी, उस कदम्बवृक्षके नीचे कृष्णके प्रति अनुरागवती गोपवधुएँ और गोपबालिकाएँ निर्वाक और निस्पन्दन होकर अपलक नेत्रोंसे कृष्णका मुखकमल दर्शन कर रही थीं और सोच रही थीं कि कृष्णशून्य व्रजमें जानेसे हमारा कोई लाभ नहीं है। हम भी 'कृष्ण! कृष्ण!' कहकर यमुनामें कूदकर कृष्णविरहकी ज्वालासे शान्ति प्राप्त करेंगी।

*यत्र नेन्दीवरदल प्रख्यकान्तिरयं हरिः।*
*तेनापि मार्तवासेन रतिरतीति विस्मयः॥*

*उत्फुल्ल पङ्कजदल स्पष्टकान्ति विलोचनम्।*
*अपश्यन्तो हरिं दीनाः कथं व्रजे भविष्यथ॥*

*अत्यर्थमधुरालाप हृताशेष मनोधनाः।*
*न बिना पुण्डरीकाक्षं यास्यामो नन्दगोकुलम्॥*

*भोगेन वेष्टितस्यापि सर्पराजस्य पश्यत।*

(श्रीविष्णुपुराण)

श्रीविष्णुपुराणमें और भी वर्णन है कि कृष्णानुरागवती गोपवधुएँ एवं गोपबालिकाएँ अपने प्राणवल्लभ श्रीकृष्णको कालियनागके पाशमें बँधा हुआ देखकर अत्यन्त व्याकुल होकर विचार करने लगीं एवं एक-दूसरेसे कहने लगीं कि हमारे प्यारे श्यामसुन्दर कृष्ण जहाँ नहीं हैं, वहाँ वास करनेकी अभिलाषा होना परम आश्चर्यका विषय है। प्रफुल्ल कमलदल-सदृश आकर्ण विस्फारित नयनवाले नन्दनन्दनको न देखकर हम कैसे व्रजमें वास करेंगी। जिन्होंने परम मधुर आलापसे

हमलोगोंका मन चुरा लिया है, ऐसे कृष्णको साथ लिये बिना हम किसी भी प्रकारसे गोकुलमें प्रवेश नहीं करेंगी।

इस प्रकार जब व्रजवासीजन कृष्णके विरहमें अधीर होकर प्राण त्याग करनेके लिए यमुनाकी ओर जाने लगे, तब बलदेवजीने उन सबको रोकनेका भरसक प्रयास किया। किसीको मधुर वचनोंके द्वारा और किसीको हाथोंसे पकड़कर, इस प्रकार सैकड़ों रूप धारण करके सबको रोका। तब बलदेवजीने सङ्केतपूर्वक कृष्णसे निवेदन किया—"हे व्रजजीवन! अब सर्पके साथ खेलना छोड़कर व्रजवासियोंके जीवनकी रक्षा करो।" बलरामजीकी चेष्टासे व्रजवासी यमुनामें तो प्रवेश नहीं कर सके, किन्तु सभी श्रीकृष्ण विरहमें अधीर होकर "हा कृष्ण! हा कृष्ण!" कहकर विलाप करने लगे॥ १२-२२॥

**इत्थं स्वगोकुलमनन्यगतिं निरीक्ष्य,**
**सस्त्रीकुमारमतिदुःखितमात्महेतोः ।**
**आज्ञाय मर्त्यपदवीमनुवर्त्तमानः,**
**स्थित्वा मुहूर्त्तमुदतिष्ठदुरङ्गबन्धात्॥ २३॥**

**अन्वयः**—मर्त्यपदवीमनुवर्त्तमानः (जगत्में जिसे दण्ड दिया जाता है, उसका दोष लोगोंको दिखाया जाता है, ऐसे ही नरवत लीलाका अनुकरण करते हुए) मुहूर्त्तं स्थित्वा अनन्यगतिं इत्थं आज्ञाय आत्महेतोः (एक मुहूर्त्त तक कालियके फेंटेमें चुपचाप पड़े रहकर अपनेको व्रजजनोंका एकमात्र आश्रय जानकर एवं अपने लिए) सस्त्री-कुमारं स्वगोकुलं अतिदुःखितं निरीक्ष्य (स्त्री-पुत्र आदि सहित गोकुलवासियोंको अत्यन्त दुःखी देखकर) उरग-बन्धात् (कालियनागके बन्धनसे) उदतिष्ठत् (बाहर आ गये)॥ २३॥

**अनुवाद**—परीक्षित्! भगवान् कृष्णका कालियनागके शरीरमें बँध जाना तो केवल मनुष्यों-जैसी एक लीलामात्र थी। स्वयंको गोकुलवासियोंकी एकमात्र गति एवं रक्षक जानकर तथा यह देखकर कि ये सभी गोकुलवासी स्त्री एवं पुत्रादिके साथ अत्यन्त दुःखी होकर रो रहे हैं, कृष्ण थोड़ी देरके लिए उसी अवस्थामें रहकर कालियनागके बन्धनसे बाहर निकल आये॥ २३॥

**सारार्थदर्शिनी—**अनन्यगतिमिति पुंस्त्वमार्षम्। आज्ञाय सम्यक् ज्ञात्वा मुहूर्त्तं घटिकाद्वयं स्तब्ध इव स्थित्वा किं रे कालीय! त्वया विक्रमसर्वस्वमहं दर्शित एव सम्प्रति गोपबालकोप्ययं विक्रमलवं दर्शयति पश्येत्युक्त्वा उरङ्ग उरगस्तद्बन्धात् उदतिष्ठत्॥ २३॥

**भावानुवाद—** *'अनन्यगतिम्'*—अपनेको गोकुलवासियोंका एकमात्र रक्षक जानकर दो घड़ी (४८ मिनट) तक चुपचाप रहकर "रे कालिय! तूने अपना सारा विक्रम दिखाया, अब इस गोपबालकका किञ्चित विक्रम देख", यह कहकर मानो कृष्ण कालियके फेंटेसे निकल आये॥ २३॥

**तत्प्रथ्यमानवपुषा व्यथितात्मभोग-**
**स्त्यक्त्वोन्नमय्य कुपितः स्वफणान् भुजङ्गः।**
**तस्थौ श्वसन् स्वसनरन्ध्रविषाम्बरीष-**
**स्तब्धेक्षणोल्मुकमुखो हरिमीक्षमाणः॥ २४॥**

**अन्वयः—**(अनन्तर) भुजङ्गः (कालिय) तत्प्रथ्यमान वपुषा (क्रमशः बढ़ते हुए भगवान्के शरीरके भारसे) व्यथितात्मभोगः (अत्यन्त पीड़ाग्रस्त होनेपर) त्यक्त्वा (भगवान्को छोड़कर) स्वफणान् उन्नमय्य (अपने फणोंको उठाकर) कुपितः (क्रोधके साथ) हरिं ईक्षमाणः (श्रीहरिको देखने लगा) श्वसन रन्ध्र विषाम्बरीषस्तब्धेक्षणोल्मुकमुखः (उस समय उसका नासारन्ध्र विषमय मण्डपाक पात्रकी भाँति सन्तप्त और स्तब्ध एवं मुख अङ्गारके समान हो रहा था) स्वसन् तस्थौ (वह लम्बी लम्बी साँसें ले रहा था)॥ २४॥

**अनुवाद—**उस समय भगवान् श्रीकृष्णने अपने शरीरको क्रमशः फुलाकर बहुत वर्द्धित कर लिया। इससे कालियनागका शरीर टूटने लगा और उसने कृष्णको छोड़ दिया तथा क्रोधित होकर फणोंको ऊँचाकर फुँफकारते हुए कृष्णकी ओर देखने लगा। उस समय उसके नासा-छिद्रोंसे विषैली उत्तप्त साँसें निकल रही थीं, आँखें भट्टीपर तपे पात्रके समान लाल-लाल हो रही थीं तथा उसके मुखसे आगकी लपटें निकल रही थीं॥ २४॥

**सारार्थदर्शिनी**—उत्थानप्रकारमेव दर्शयन् कालियस्य ग्लानिमाह—तदिति। तेन कृष्णेन प्रथ्यमानं वेष्टनसमयगतसङ्कोचनां परित्यज्य विस्तार्यमाणं यद्वपुर्भुजङ्गादिकं तेन व्यथितः त्रुट्यन्निव पीडितः आत्मनो भोगो यस्य सः। वेष्टनमुन्मुच्य तं त्यक्त्वा स्वफणान् उन्नमय श्वसन् केवलमीक्ष्यमाण एव तस्थौ। कीदृशः श्वसनरंध्रेषु नासाविवरेषु विषं यस्य। तथा अम्बरीषं ज्वलद्विषभर्जनपात्रं भाँड इति ख्यातं तद्वत् प्राप्तानि स्तब्धानि ईक्षणानि यस्य। तथा उल्मुकानि निस्सरन्ति मुखेभ्यो यस्य स च स च स च सः॥ २४॥

**भावानुवाद**—कृष्णके नागके पाशसे निकल आनेपर कालियकी ग्लानिका वर्णन कर रहे हैं—*'तत्प्रथ्यमान वपुषा'* कृष्णने कालियके पाशमें अपने संकुचित किए हुए शरीरको ऐसा बढ़ाया कि कालियका शरीर टूटने लगा, जिससे उसे अत्यन्त पीड़ा होने लगी। अतः उसने अपना फेंटा खोल लिया तथा फणोंको ऊपर उठाकर लम्बी-लम्बी साँसें लेता हुआ कृष्णकी ओर एकटक देखने लगा। वह कालियनाग कैसा था? उसका वर्णन कर रहे हैं—उस समय उसकी नाकके छिद्रोंसे निरन्तर विष निकल रहा था। उसके नेत्र विषके घड़े जैसे तप्त और स्तब्ध हो रहे थे तथा मुखसे प्रज्ज्वलित अग्निकण निकल रहे थे॥ २४॥

**तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं,**
**द्वे सृक्वणी ह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम्।**
**क्रीडन्नमुं परिससार यथा खगेन्द्रो,**
**बभ्राम सोऽप्यवसरं प्रसमीक्षमाणः॥ २५॥**

**अन्वयः**—[भगवान् भी] क्रीडन् खगेन्द्रः यथा (क्रीड़ापरायण गरुड़की भाँति) द्विशिखया (दो भागोंमें विभाजित) जिह्वया द्वे सृक्वणी (जिह्वासे होंठोंके किनारोंको चाटनेवाले) परिलेलिहानं अति करालविषाग्नि-दृष्टिं (अतिशय भयङ्कर महा उग्र विषानल-दृष्टिवाले) तं अमुं (उस कालियके) परिससार (चारों ओर घूमने लगे) सः अपि (कालिय भी) अवसरं प्रसमीक्षमाणः (दंशन करनेका अवसर पानेके लिए) बभ्रमे (घूमने लगा)॥ २५॥

**अनुवाद**—कालियनाग दो भागोंमें विभक्त अपनी जिह्वाके द्वारा अपने होठोंके दोनों किनारोंको चाट रहा था एवं उसके अति उग्र नेत्रोंसे विषकी ज्वाला निकल रही थी। उस समय भगवान् अपने वाहन गरुड़के समान उसके साथ खेलते हुए उसके चारों ओर घूमने लगे। वह साँप भी उन्हें डँसनेकी इच्छासे उनके पीछे-पीछे घूमने लगा॥ २५॥

**सारार्थदर्शिनी**—द्वे स्वीये सृक्वण्यौ पुनः पुनर्लिहन्तं तममुं परि परितः ससार तं भ्रमयितुं तस्य सर्वतो बभ्रामेत्यर्थः। स कालियोऽपि दंशनस्य अवसरं समीक्ष्यमाण एव बभ्राम कृष्णकर्तृकभ्रमणलाघवाद्दंशनावसरं न प्रापेति तिर्यग्भ्रमि-खेलयापि तं जिगायेत्यर्थः॥ २५॥

**भावानुवाद**—अपने प्रत्येक मुखकी दो-दो जिह्वाओं द्वारा होठोंको चाटनेवाले कालियनागको थका देनेके लिए कृष्ण उसके चारों ओर घूमने लगे। कालिय भी उन्हें डँसनेका अवसर ढूँढ़ता हुआ निरन्तर उनके पीछे घूमने लगा। किन्तु कृष्ण इतनी तेजीसे घूम रहे थे कि उसे डँसनेका कोई अवसर ही नहीं मिल पा रहा था। इस प्रकार घूमनेकी क्रीड़ा द्वारा कृष्णने कालियनागको थका दिया॥ २५॥

**एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांस-**
**मानम्य तत्पृथुशिरःस्वधिरूढ आद्यः।**
**तन्मूर्द्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्र-**
**पादाम्बुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त्त ॥ २६॥**

**अन्वयः**—अखिलकलादिगुरुः (समस्त कलाओंमें पण्डित) आद्यः (आदिपुरुष भगवान्ने) एवं परिभ्रमहतौजसं (घूमते-घूमते निस्तेज हुए कालियके) उन्नतांस (उठी हुई गर्दनको) आनम्य तत्पृथुशिरःसु (झुकाकर उसके विशाल मस्तकके ऊपर) अधिरूढ (चढ़कर) तन्मुर्द्धरत्ननिकर स्पर्शातिताम्रपदाम्बुजः (कालियके फणोंपर स्थित मणि-समूहके स्पर्शसे जिनके चरणकमल अनुरञ्जित हो रहे थे) ननर्त्त (ऐसे आदिपुरुष श्रीकृष्ण नृत्य करने लगे)॥ २६॥

**अनुवाद**—इस प्रकार घूमते-घूमते कालिय निस्तेज हो गया और उसका बल क्षीण हो गया था। तब भगवान् श्रीकृष्णने उसके ऊपर उठे हुए फणोंको थोड़ा दबा दिया और उछलकर उनपर सवार हो गये। कालियनागके फणोंपर बहुत-सी मणियाँ थीं, जिनके स्पर्शसे उनके स्वाभाविक सुकुमार चरणकमलोंकी लालिमा और भी बढ़ गयी। विविध प्रकारके नृत्य-गीत-कलादिके आदि-प्रवर्त्तक श्रीकृष्ण उसके फणोंपर नृत्य करने लगे॥ २६॥

**सारार्थदर्शिनी**—उन्नतावुच्चावंसौ यस्य तम् आनम्येति परिभ्रमहतौजस्त्वात् भ्रमणासमर्थस्य तस्य शिरांस्येव एकहस्तेनैवानम्य तत्राधिरूढः सन्ननर्त्तः *"शिरः स कृष्णो जग्राह स्वहस्तेनावनम्ये"* इति हरिवंशोक्तेः तस्य मूर्द्धषु ये रत्ननिकरास्तेषां कठोराणां स्पर्शेनातिसुकुमारत्वादतिताम्रमत्यरुणं पदाम्बुजं यस्य सः। स्थालीशरावादिषु कलाज्ञापनाय नटा नटन्ति। अयं तु सर्वकलानामादिगुरुत्वात् चञ्चलेषु कालियमूर्द्धसु ननर्तेति स्वकलाभिज्ञत्वदर्शनेयं व्रजसुन्दरीषु पूर्वरागवतीषु ज्ञेया॥ २६॥

**भावानुवाद**—जिसके ऊँचे-ऊँचे फण थे, ऐसे कालियको कृष्णने घुमाते-घुमाते थकाकर उसके मस्तकोंको बायें हाथसे झुका दिया तथा उसके विशाल मस्तकपर चढ़कर नृत्य करने लगे। श्रीहरिवंशमें भी कहा है—"श्रीकृष्ण एक हाथके द्वारा कालियके मस्तकको झुकाकर उसपर चढ़ गये।" *'तन्मूर्ध रत्ननिकर'*—अर्थात् कालियनागके मस्तकपर स्थित कठोर मणियोंके स्पर्शसे उनके अति सुकुमार चरण अत्यन्त लाल हो जानेसे अत्यन्त सुशोभित होने लगे। साधारण नटलोग अपनी कला दिखानेके लिए घड़े आदिके ऊपर नृत्य करते हैं, परन्तु विविध प्रकारकी नृत्यकलाके आदि गुरु होनेके कारण कृष्णने कालियके चञ्चल मस्तकपर नृत्य करना प्रारम्भ कर दिया। पूर्वरागवती व्रजसुन्दरियोंको अपनी नृत्य-कला दिखलाना ही उनका उद्देश्य था—ऐसा समझना चाहिये॥ २६॥

**तं नर्त्तुमुद्यतमवेक्ष्य तदा तदीय-**
**गन्धर्वसिद्धसुरचारणदेववध्वः**
**प्रीत्या मृदङ्गपणवानकवाद्यगीतः,**
**पुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः॥ २७॥**

**अन्वयः**—तदा तं (उस समय कृष्णको) नर्त्तुं (नृत्य करनेके लिए) उद्यतं अवेक्ष्य तदीय गन्धर्व सिद्ध मुनि चारण देववध्वः (उद्यत देखकर उनके अनुरागी, गन्धर्व, सिद्ध, मुनि, चारण और अप्सरागण) प्रीत्या (आनन्दके साथ) मृदङ्ग पणवानक वाद्य गीत पुष्पोहारनुतिभिः (मृदङ्ग, पणव, आनक आदि वाद्य, गीत, पुष्प उपहार एवं स्तवपाठ आदि करते हुए) सहसा उपसेदुः (उनके समीप उपस्थित हुए)॥ २७॥

**अनुवाद**—उसी समय श्रीकृष्णको नृत्य करनेके लिए तत्पर देखकर उनके अनुरागी गन्धर्व, सिद्ध, मुनि, चारण और अप्सराएँ बड़े आनन्दके साथ मृदङ्ग, ढोल, दुन्दुभि, नगाड़े आदि वाद्य-यन्त्रोंके साथ पुष्प उपहार लेकर स्तवपाठ करते हुए उनके समीप आ गये॥ २७॥

**सारार्थदर्शिनी**—नर्त्तुं नर्त्तितुं तदीयेति वाद्यं विनैव स्वमुखे नैवोच्चारितैस्थैथैशब्दैः प्रभुर्नृत्यति। तद्वयं कं समयं प्रतिस्थिता इति विचार्येति भावः॥ २७॥

**भावानुवाद**—श्रीकृष्णको नृत्य करते हुए देखकर उनके गन्धर्व आदि भक्तोंने देखा कि हमारे प्रभु बिना किसी वाद्य-यन्त्रके केवल 'थै-थै'—शब्द उच्चारणकर नृत्य कर रहे हैं। अतएव हम और किस समयकी प्रतिक्षा करेंगे? अतः वे उसी समय वाद्य आदि यन्त्रोंके साथ उनके समीप आ पहुँचे॥ २७॥

**यद्यच्छिरो न नमतेऽङ्ग शतैकशीर्ष्ण-**
**स्तत्तन्ममर्द्द खलदण्डधरोऽङ्घ्रिपातैः।**
**क्षीणायुषो भ्रमत उल्वणमास्यतोऽसृङ्-**
**नस्तो वमन् परमकश्मलमाप नागः॥ २८॥**

**अन्वयः**—अङ्ग (हे महाराज!) शतैकशीर्ष्णः (सौ फणोंवाले कालियके) क्षीणायुषः (मृतप्राय होनेपर भी) यत् भ्रमतः (घूमते-घूमते) यत् शिरः न नमते (जो सिर झुक नहीं रहा था) खल दण्डधरः (दुष्टदमनकारी श्रीकृष्णने) अङ्घ्रिपातैः (अपने चरणोंके आघातसे) तत् तत् (उस-उस मस्तकको) ममर्द (मर्दन कर दिया) नागः (कालिय) आस्यतः (मुखसे) नस्तः (नासिकासे) उल्वणं (उग्र) असृक्

(खूनकी) वमन् (उल्टी करता हुआ) परमकश्मलं (परम मोहको) आप (प्राप्त हो गया)॥ २८॥

**अनुवाद**—हे राजन्! कालियनागके एक सौ सिर थे। परिभ्रमणशील कालिय अपने जिस-जिस सिरको नहीं झुकाता था, दुष्टदमनकारी भगवान् श्रीकृष्ण अपने पदाघातसे उसी मस्तकको कुचल डालते थे। इससे कालियकी जीवनशक्ति क्षीण हो गयी। वह मुख एवं नासिकासे रक्त उगलने लगा और अन्तमें मूर्च्छित-प्राय हो गया॥ २८॥

**सारार्थदर्शिनी**—शतम् एकानि मुख्यानि शिरांसि यस्य तस्य अग्रे फणासहस्रोक्तेः। यत् यत् न नमत्युच्चीभवति तत्रैव सहसारूह्य अङ्घ्रिपातैस्तानेव क्षणान्ममर्द। तदा च आस्यतो मुखेभ्यःनस्तो नासाविवरेभ्यः असृग्वमन्॥ २८॥

**भावानुवाद**—*'शतैकशीर्ष्णः'*—यहाँ 'एक' शब्द मुख्यार्थमें है, क्योंकि आगे कालियको सहस्र फणोंवाला कहेंगे। अतएव एक सौ प्रधान मस्तकधारी कालियके जो जो मस्तक झुक नहीं रहे थे, उन-उन मस्तकोंपर चढ़कर दुष्टदमनकारी श्रीकृष्ण नृत्यके बहाने चरणोंसे प्रहार करने लगे। तब कालिय मुख और नासिकासे रक्त उगलता हुआ मूर्च्छित-प्राय हो गया॥ २८॥

**तस्याक्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरःसु**
**यद्यत् समुन्नमति निःश्वसतो रुषोच्चैः।**
**नृत्यन् पदानुनमयन् दमयाम्बभूव**
**पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान् पुराणः॥ २९॥**

**अन्वयः**—अक्षिभिः गरलं उद्वमतः रुषोच्चैः निश्वसतः तस्य (कालिय क्रोधसे दीर्घश्वास छोड़ रहा था तथा नेत्रोंसे विष उगल रहा था) शिरःसु (उसके मस्तकोंमेंसे) यत् यत् समुन्नमति (जो जो मस्तक ऊँचा उठा हुआ था) नृत्यन् (कृष्णने नृत्य करते हुए) पदानुनमयन् (अपने चरणोंसे अवनत करते हुए) दमयाम्बभूव (उसका दमन कर दिया) इह (इस अवसरपर गन्धर्व आदि देवतागण) पुराणः पुमान् इव पुपुष्पैः प्रपूजितः (पुष्प आदिसे उनकी पूजा करने लगे। उस समय

कृष्ण भी अनन्त-शय्यामें शयनकारी नारायणकी भाँति शोभा पाने लगे)॥ २९॥

**अनुवाद**—कालिय क्रोधसे लम्बी-लम्बी साँसें छोड़ रहा था तथा नेत्रोंसे विष उगल रहा था। उसका जो-जो सिर ऊपर उठता, भगवान् श्रीकृष्ण उस-उस सिरको अपने चरणोंसे रौंद डालते। उस समय देवता गन्धर्व आदि पुष्पोंसे कृष्णकी पूजा करने लगे। कृष्ण भी उस समय शेषशायी नारायणके समान शोभा पाने लगे॥ २९॥

**सारार्थदर्शिनी**—तस्य शिरःसु मध्ये यत् यत् समुन्नमति तत्तदेव पदाङ्घ्रिप्रहारेणानुनमयन् अस्मिन्नवसरे हृष्टैर्गन्धर्वादिभिर्वृष्यमाणैः पुष्पैः प्रपूजित इव प्रसन्नः सन् तेषामेव हितार्थं तं दमयाम्बभूव॥ २९॥

**भावानुवाद**—कालियनागके मस्तकोंमेंसे जो मस्तक ऊपर उठता, श्रीकृष्ण नृत्य करते-करते उसी मस्तकको पदाघातके द्वारा नीचे झुका देते। उस समय गन्धर्व आदिके द्वारा पुष्प-उपहारसे पूजित होकर ही मानो प्रसन्न-चित्त होकर श्रीकृष्णने उनके हितके लिए उस दुष्ट कालियका घमण्ड चूर्ण-विचूर्ण कर दिया॥ २९॥

**तच्चित्रताण्डवविरुग्णफणासहस्रो,**
**रक्तं मुखैरुरु वमन् नृप भग्नगात्रः।**
**स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं,**
**नारायणं तमरणं मनसा जगाम॥ ३०॥**

**अन्वयः**—नृप (हे महाराज!) तच्चित्रताण्डवविरुग्णफणा सहस्रः (श्रीकृष्णके उस विचित्र ताण्डवके वेगसे उसके हजारों फण घायल हो गये) भग्नगात्रः (शरीर शिथिल हो गया) [उससे वह] मुखैः (मुखसे बहुत अधिक मात्रामें) रक्तं वमन् (खूनकी उल्टी करता हुआ) मनसा चराचरगुरुं पुराणं पुरुषं नारायणं स्मृत्वा तं अरणं जगाम (मन-ही-मन चराचरगुरु पुराणपुरुष नारायणका स्मरणकर उनकी शरणमें आ गया)॥ ३०॥

**अनुवाद**—हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णके इस विचित्र ताण्डव-नृत्यके वेगसे कालियके हजारों फण क्षत-विक्षत हो गये। उसका सारा शरीर

शिथिल हो गया था। वह अपने सभी मुखोंसे प्रचुर मात्रामें रक्त उगलने लगा। तब उसने मन-ही-मन चराचरके आदिगुरु पुराणपुरुष भगवान् नारायणका स्मरण किया और उनके शरणागत हो गया॥ ३०॥

**सारार्थदर्शिनी—**परमभक्ताभिस्तपत्नीभिः कृपारूपं भक्तिबीजं पूर्वयुप्तमपि पूर्वपूर्वापराधजनितक्रौर्यदोषव्याप्ते कालियस्य तस्यान्तःकरणे दुष्टक्षेत्रे इव प्ररोढुमसमर्थमेवासीत्। तदा तु श्रीचरणस्पर्शेन तत्कृतदण्ड प्राप्त्या च तत्तद्दोषक्षये सति सहसैव तद्भक्तिबीजमङ्कुरितं बभूवेत्याह—स्मृत्वेति। मद्वैरिणो गरुडादप्यस्य परः सहस्रगुणाधिकं बलं मयोपलब्धं तस्मान्मत्पत्नीभिरुपदिष्टभक्तिः कोऽयमेव परमेश्वर इति स्वीयस्मृतिगोचरीकृत्येत्यर्थः। चराचरगुरुमित्यसाधारणं बलं दर्शयन्नहमेव परमेश्वर उपास्य इति मूढमपि मां ज्ञापयन् कृपया मच्छिरोऽर्पितचरणो गुरुर्भवन् प्रसीदति। तमिममहमिदानीं शरणं यामीति। अरणं शरणम्॥ ३०॥

**भावानुवाद—**कालियनागकी पत्नियाँ परम भक्तिमती थीं। अतः उन्होंने कालियनागके हृदयमें भक्तिलताका बीज पहलेसे ही बोया तो था, किन्तु पूर्व-पूर्व जन्मोंके अपराधोंसे उदित खलतादोषके कारण उसके बञ्जर भूमिके समान हृदयमें वह भक्तिबीज अङ्कुरित नहीं हो पा रहा था। किन्तु अब श्रीकृष्णके चरणोंके स्पर्शसे तथा उनके द्वारा दिये गये दण्डसे उसके सभी अपराध क्षीण हो गये और तत्क्षणात् उसके हृदयमें भक्तिका बीज अङ्कुरित हो गया। इसे ही *'स्मृत्वा'* इत्यादिसे कह रहे हैं। अब कालियके मनमें विचार करने लगा—मेरे शत्रु गरुड़से भी ये हजारों गुना अधिक बलशाली हैं। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी पत्नियाँ जिनकी भक्ति करनेका उपदेश दिया करती थीं, ये ही वे परमेश्वर होंगे। *'चराचर गुरुम्'*—ये समस्त प्राणियोंके नियन्ता हैं। "मैं ही परमेश्वर हूँ, सबका उपास्य हूँ"—मूढ़ मतिसम्पन्न मुझको यही समझानेके लिए इन्होंने अपने असाधारण बलका प्रदर्शन करते हुए मेरे मस्तकपर अपने श्रीचरण अर्पण किये और गुरु होकर मुझपर कृपा की। अतएव अब मैं इनके शरणागत होता हूँ। कालिय नाग ऐसा सोचकर मन-ही-मन कृष्णके शरणापन्न हुआ॥ ३०॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति—**यमुनाकूलपर स्थित गोकुलवासी गोप-गोपियोंने कृष्ण-विरहमें व्याकुल होकर यमुनाजलमें प्राण त्याग करनेका दृढ़ सङ्कल्प कर लिया था एवं बलदेवजी भी नाना प्रकारसे चेष्टा करके

भी उन्हें रोक नहीं पा रहे थे, इसलिए वे इङ्गितसे कृष्णको बहुत कुछ कहने लगे। इन सब कारणोंसे कृष्णने शीघ्र ही कालिय-ह्रदके तटपर आकर नन्द, यशोदा आदि गोप-गोपियोंको सान्त्वना देनेका विचार बना लिया था। व्रजवासियोंकी यमुनाजलमें कूदनेकी व्याकुलता देखकर वे स्पष्ट समझ गये थे कि यदि मैं थोड़ी देर और कालियनागके पाशमें बँधा रहा, तो समस्त व्रजवासी निश्चय ही मर जायेंगे। नन्दनन्दनका हृदय अत्यन्त कोमल है, अतः वे व्रजवासियोंके लिए व्याकुल हो उठे। जब श्रीकृष्णकी आयु छह वर्षकी थी, तब कालियका मान-मर्दन करनेके लिए उन्होंने छोटे बालकरूपमें रहना ही उचित समझा। अतः आकारमें क्षुद्र रहकर ही वे व्यवहारमें विशालता प्रकाशित करने लगे। उन्होंने गोपशिशुके समान छोटे-से शरीरके भीतर ऐसी विशालता प्रकाशित की जिससे कालियकी एक-एक गाँठ चूर-चूर हो गयी। उसका दृढ़ बन्धन अब ढीला पड़ गया तथा श्रीकृष्ण उसके फेंटेसे बाहर निकल आये।

अब कालियने क्रोधसे अधीर होकर कृष्णके सामने अपने सैकड़ों फणोंको ऊपर उठा लिया और लम्बी-लम्बी साँसें लेते हुए अपने मुखोंसे ज्वलन्त अङ्गारकी भाँति विष उगलने लगा। उसकी आँखें दहकती हुई भट्टीके समान प्रतीत हो रही थीं। कृष्ण उसे थकानेके लिए उसके चारों ओर घूमने लगे। कालियनाग भी क्रोधित होकर उन्हें डँसनेके लिए उनके पीछे-पीछे घूमने लगा। घूमते-घूमते थककर वह इतना चूर हो गया कि अब और घूम नहीं सका तथा एक ओर खड़ा हो गया। अब वह केवल उग्र दृष्टिसे कृष्णकी ओर देखने लगा। उस समय कृष्ण बाँये हाथसे बलपूर्वक उसके मस्तकको झुकाकर उसपर चढ़ गये। समस्त कारणोंके कारण कृष्ण जब कालियके मस्तकपर चढ़ गये तब कालियके मस्तकमें स्थित मणियोंके स्पर्शसे कृष्णके चरण लाल हो गये, उससे उनके श्रीचरणोंकी अनुपम शोभा हो गयी। तब कृष्णने कालियके मस्तकोंपर नृत्य करना आरम्भ किया।

जिनकी मायाके प्रभावसे तृणसे ब्रह्मा तक सब जीव निरन्तर विविध भावसे नृत्य करते हैं, आज उन नटराजका नृत्य देखकर

गरुड़, विष्वक्सेन आदि विष्णुके पार्षदगण उनके ताल और लयका अनुसरणकर परमानन्दसे उनके गुण एवं लीला आदिका गान करने लगे। चारणगण परमानन्दसे उस नृत्यके तालपर मृदङ्ग-पणवादि बजाने लगे। समस्त देवता और देववधुएँ भी नन्दनकाननके मन्दार-पारिजात आदि कुसुम चयनकर परमानन्दसे श्रीकृष्णके ऊपर वर्षण करने लगे। सिद्धोंने हरिचन्दन, कुङ्कुमादि दिव्य सुगन्धित चूर्ण छिड़कते हुए दसों दिशाओंको सुगन्धसे आमोदित कर दिया। नारद, सनकादि मुनिगण परमानन्दसे कृष्णकी दुष्ट दमन-लीलाकी महिमाका गान करते हुए स्तुति करने लगे। इस प्रकार कृष्णको कालियके मस्तकपर नृत्य करते देखकर भूलोकसे ब्रह्मलोक तक एक अनिवर्चनीय परमानन्द छा गया।

स्वर्गके चारणोंका वाद्य-वादन, गन्धर्वोंका गान, नारद आदिकी स्तुति और देवताओंकी पुष्प-वृष्टिसे उत्फुल्लित और उत्साहित होकर नटराज नन्दनन्दन कालियके ऊँचे-ऊँचे मस्तकोंके ऊपर विविध नृत्य कला-विलास-रसका आस्वादन करने लगे। नृत्यके समय उनकी वनमाला नृत्यके तालमें सञ्चालित होकर एक अभिनव शोभाका विकास कर रही थी। इस प्रकार नटवरशेखर कृष्ण यमुनानीर एवं तीरपर स्थित गो, गोप, गोपी, दूरमें स्थित वृक्ष-लताओं और आकाशमें स्थित देवतावृन्द आदि सभीके हृदयमें एक अभिनव भावको जगाते हुए परमानन्दसे नृत्य करने लगे।

किन्तु उस परमानन्द स्रोतमें बहिर्मुख कालियका हृदय पिघला नहीं, इस भावकी तरङ्गमें उसका हृदय स्पन्दित नहीं हुआ। सभी नटोंके गुरु, शरणागत-वाञ्छाकल्पतरु स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णको मस्तकपर धारण करके भी वह परमानन्दमें नृत्य नहीं कर सका, क्योंकि उसके हृदयसे तब भी हिंसा प्रवृत्ति दूर नहीं हुई थी। वह बार-बार अपने मस्तकपर स्थित श्रीकृष्णके चरणोंमें डँसनेका तथा उन्हें हृदमें फेंकनेका प्रयास करने लगा।

कालियके छतरीकी भाँति सुविशाल एक हजार फण थे। उनमेंसे एक सौ फण बृहद् आकारवाले और तीव्र विषसे युक्त थे। इसके अतिरिक्त जितने भी फण थे, वे सभी क्षुद्र आकारवाले और विषहीन थे। कालिय अपने मस्तकपर स्थित श्रीकृष्णके चरणोंमें

डँसनेके लिए अपने विशाल आकृति और विषयुक्त सैकड़ों फणोंमेंसे एक-एकको उठाने लगा और विपरीत भावसे गर्दन घुमाकर श्रीकृष्णके चरणोंमें डँसनेका प्रयास करने लगा। किन्तु उसकी ऐसी कुचेष्टा किसी भी प्रकारसे फलवती नहीं हो सकी। कालिय जिस फणको उठाता दुष्ट दमनकारी श्रीहरि नृत्य करते-करते, उस फणको अपने चरणोंसे मसल डालते। इस प्रकार कालियनागके बृहदाकार सभी फण लहुलुहान होकर नीचेकी ओर झुक गये।

इस प्रकार श्रीकृष्णके चरणोंके पुनः-पुनः प्रहारसे कालिय मरणासन्न हो गया। वह सम्पूर्ण विश्वको घूमता हुआ देखने लगा। कुछ ही देरमें कालियकी घूमनेकी भी शक्ति जाती रही। अब वह समस्त जगत्को अन्धकारमय देखने लगा। उसकी नाक और मुखसे निरन्तर रक्तकी धारा बहने लगी।

इस प्रकार पूर्ण रूपसे पीड़ित होनेपर भी कालियकी दुष्ट बुद्धि और हिंसा-प्रवृत्ति नहीं गयी। जब वह अत्यन्त परिश्रान्त और पीड़ित हो जाता, तो स्थिर होकर मृतवत् खड़ा हो जाता, किन्तु थोड़ा-सा स्वस्थ होते ही फिरसे कृष्णके पादप्रहारसे टूटे हुए अपने फणोंको उठानेकी चेष्टा करता और क्रोधपूर्वक उग्र दृष्टिसे कृष्णकी ओर देखता। किन्तु भगवान्ने उसकी सभी प्रकारकी चेष्टाओंको व्यर्थ कर दिया। इस प्रकार नन्दनन्दन श्रीकृष्ण दुष्ट कालियका सम्पूर्ण रूपसे दमनकर उसके सुविस्तृत फणोंके ऊपर तालसे नृत्य करने लगे।

कालिय अत्यन्त देवद्रोही एवं गरुड़का महाशत्रु था, किन्तु उसके विषके प्रभावके कारण कोई भी उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता था। गरुड़के लिए भी विषैला यमुना-ह्रद अगम्य था। इसलिए गरुड़ भी कालियका कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे। किन्तु आज श्रीकृष्णकी कृपासे उनका चिरशत्रु कालिय चिरकालके लिए दण्डित हुआ एवं फणोंके टूटनेसे वह विषहीन हो गया। गरुड़ादि पार्षदगण एवं देव, चारण, सिद्ध और मुनिगण सर्वदा ही शेषशायी नारायणकी स्तुति पूजा आदि करते थे, किन्तु व्रजलीलामें उन्होंने कृष्णका भुजङ्ग (सर्पके साथ) विहार आज ही देखा। आज कालियके मस्तकपर कृष्णके नृत्यको देखकर उनकी मनोवासना पूर्ण हुई एवं वे परमानन्दमें पूर्ववत् स्तुति पूजादि करने लगे।

श्रीकृष्णके इस विचित्र ताण्डवसे जब कालियके सभी फण टूट गये एवं वह मुखसे निरन्तर खून उगलने लगा और कृष्णके शरीरका भार सहनेमें असमर्थ हो गया, तब उसके मनका भाव बदल गया। उसके हृदयकी हिंसा-प्रवृत्ति विलुप्त हो गयी एवं कृष्णके बल-वीर्य आदिका स्मरणकर उसके हृदयमें उनके स्वरूपको जाननेकी प्रवृत्ति जाग उठी। वह मन-ही-मन विचार करने लगा, जो निर्भय होकर मेरे मस्तकपर नृत्य कर रहे हैं, जिनके चरणोंके प्रहारसे मेरे सभी फण विचूर्ण हो गये, ये कौन हैं? एक दिन रमणकद्वीपमें अपने महाशत्रु गरुड़के पङ्खोंकी चोटके महाप्रभावको अनुभवकर मैं समझ गया था कि मेरे अन्दर जितना भी बलवीर्य क्यों न हो, वह गरुड़के सामने अति तुच्छ है एवं उन्हींके भयसे मैं बहुत समयसे अपना वासस्थान रमणकद्वीप छोड़कर इस यमुना-ह्रदमें वास कर रहा हूँ। तब मेरी धारणा थी कि जगत्‌में मुझसे अधिक बलशाली एकमात्र गरुड़ हैं, क्योंकि मैं गरुड़के अतिरिक्त किसीसे भी पराजित नहीं हुआ। किन्तु आज इस छोटे-से बालकने अपने कोमल चरणोंके आघातसे मेरे समस्त फणोंको चूर्ण-विचूर्ण कर दिया है। इसके पराक्रमके समक्ष तो करोड़ों गरुड़ोंका पराक्रम भी कुछ नहीं है। अतएव जो मेरे मस्तकपर नृत्य कर रहा है, अवश्य ही यह कोई साधारण बालक नहीं हैं। अतः इनके समक्ष अपना बल प्रदर्शन करनेकी अपेक्षा इनके चरणोंमें शरणागत होना ही श्रेयस्कर है। अब तक इनके प्रति मैंने जितना भी बल प्रयोग किया, वह मेरी मूर्खताके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। अज्ञानताके कारण मैंने जो कुछ किया, उसे मेरे मस्तकपर स्थित महापुरुष अपने गुणोंसे क्षमा कर दें। चिरकालके लिए मेरी कुबुद्धि दूरकर मुझे अपने चरणोंमें आश्रय प्रदान करें, यही मेरी एकमात्र अभिलाषा है। इस प्रकार कालिय श्रीकृष्णके पादप्रहारसे पीड़ित होकर उनके चरणोंमें शरणागतिकी प्रयोजनीयता समझने लगा। किन्तु यथार्थ रूपमें वह अभी भी उनके स्वरूपको नहीं समझ पाया था। अब वह क्रमशः अपनी पत्नियोंकी बातें स्मरण करने लगा।

कालियकी पत्नियाँ कृष्णकी परमभक्त और कृष्णसेवा-परायणा थीं। वे कालियको बहिर्मुख देखकर अत्यन्त दुःखी थीं। उसकी बहिर्मुखताको दूर करनेके लिए वे निरन्तर कृष्णसे प्रार्थना करती थीं।

वे कालियको सर्वदा ही कृष्णगुण, कृष्ण-माहात्म्य, कृष्णलीला आदि सुनाया करती थीं, किन्तु वह सब कालियके दूषित हृदयको किञ्चित् मात्र भी स्पर्श नहीं कर पाता था। जिस प्रकार बञ्जर भूमिमें बीज बोनेसे वह अङ्कुरित नहीं होता, वैसे ही जन्म-जन्मान्तरोंके महा-अपराधोंके कारण कलुषित हृदयवाले कालियके हृदयमें किसी भी प्रकारसे भक्तिबीज अङ्कुरित नहीं होता था। कालियकी पत्नियाँ भक्तचूड़ामणि थीं। अतएव उसकी इच्छा न रहनेपर भी वे उसे कृष्ण-कथा श्रवण कराती थीं, जिससे कि उसके हृदयपर कुछ तो प्रभाव पड़े; किन्तु कालियके जन्म-जन्मके अपराधोंके कारण उसके दुष्ट हृदयमें लेशमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता था। परन्तु आज कृष्णके चरणोंका स्पर्श प्राप्तकर कालियके हृदयकी दुर्वासनाओंकी जड़ उखड़ गयी एवं वह क्रमशः शरणागतिके पथपर बढ़ने लगा।

कालियके इस प्रकार बदलनेका कारण ढूँढ़नेपर देखा जाता है कि कालियने भक्तचूड़ामणि गरुड़के साथ विरोधकर उनके बाँये पङ्खकी चोट खायी थी, जिसके फल-स्वरूप उसने श्रीवृन्दावनके यमुना-ह्रदमें वास करनेका सौभाग्य प्राप्त किया था। पहले कालिय दुष्ट और बहिर्मुख सर्पोंका सङ्ग करता था। इससे स्पष्ट रूपसे जाना जाता है कि दुष्ट और बहिर्मुख लोगोंके साथ मित्रता करनेकी अपेक्षा कृष्णकी सेवामें निरत रहनेवाले भक्तोंके साथ शत्रुता भी कल्याणदायक है, क्योंकि भक्तोंके साथ शत्रुता रहनेपर भी संसार-बन्धनसे छुटकारा पानेका सुयोग रहता है, किन्तु बहिर्मुख व्यक्तिके साथ शत्रुता हो या मित्रता, उससे भवबन्धन और भी सुदृढ़ होता है। कृष्णभक्तके साथ शत्रुता होनेपर भी उसके हृदयमें हमारे हितकी अभिलाषा रहती है, किन्तु बहिर्मुखके हृदयमें केवल स्वार्थ ही रहता है।

कालियके कृतार्थ होनेका दूसरा कारण यह है कि उसकी सभी पत्नियाँ कृष्णके भजन-परायणा थीं। यद्यपि कालिय उनके कृष्णभजनमें या कृष्णकथा चर्चामें कभी भी योगदान नहीं करता था, किन्तु अपनी भक्तिमती पत्नियोंके साथ एकत्र वास करनेके कारण उसकी भक्ति उन्मुखी सुकृति हो रही थी। विशेषकर कालियकी पत्नियोंके मनमें सर्वदा प्रबल वासना रहती थी कि हमारे पति भी यदि हमारी भाँति

कृष्णभक्त होते, तब हम कृष्णसेवा करते हुए परमानन्दसे दाम्पत्य जीवन व्यतीत करतीं। परन्तु हाय! हमारे भाग्यमें यह नहीं लिखा है। अतः चिरकाल इस कृष्णभजनसे विमुख पतिके साथ ही हमें जीवन बिताना पड़ेगा। कालियकी पत्नियोंकी इस प्रकार कालियके हितकी कामना करना भी उसके कृतार्थ होनेमें सहायक हुआ।

कालियके कृतार्थ होनेका तृतीय कारण यह है कि उसे बहुत समय तक निरन्तर वृन्दावनमें स्थित यमुना-ह्रदमें वास करनेका सुयोग मिला था। गरुड़के भयसे कालिय एक मुहूर्त्तके लिए भी यमुना-ह्रदसे बाहर नहीं निकलता था। उसका दृढ़ सङ्कल्प था कि वह चिरकाल वहीं वास करेगा, क्योंकि वह जानता था कि यमुना-ह्रदसे बाहर आनेपर गरुढ़ उसे मार डालेंगे।

उसका यह सुदीर्घ कालका व्रजवास भी उसकी शरणागति प्राप्तिका अन्यतम कारण है। यद्यपि *"दिनमेकं निवासेन हरौ भक्तिः प्रजायते"* पद्मपुराणके वचनसे भी जाना जाता है कि एकदिन मात्र व्रजवास करनेसे ही श्रीकृष्णके चरणोंमें भक्ति प्राप्त होती है, फिर भी कालियकी कृष्णभक्ति प्राप्तिमें इतना विलम्ब देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि अपराधी व्यक्तिका अपराध जब तक दूर नहीं होता है, तब तक भक्तिदेवीकी कृपा प्रकाशित होनेमें विलम्ब होता है। विशेषकर कृष्णकी प्रकटलीलाके समयमें श्रीवृन्दावनमें वास करना कालियके लिए परम सौभाग्यकी बात थी। श्रीकृष्णके प्रकट विहारका दर्शन करनेसे किसीके हृदयमें कोई दुर्वासना नहीं रहती है। वृन्दावन विहारी श्रीकृष्ण उस अपराधको दूर कर देते हैं, इसलिए उन्होंने कालियके हृदयको शोधनकर उसे अपने चरणोंमें शरणागत बना लिया॥ २३-३०॥

**कृष्णस्य गर्भजगतोऽतिभरावसन्नं,**
**पार्ष्णिप्रहारपरिरुग्नफणातपत्रम् ।**
**दृष्ट्वाहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य पत्न्यः**
**आर्त्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबन्धाः॥ ३१॥**

**अन्वयः**—अमुष्य (कालियकी) पत्न्यः गर्भजगतः (पत्नियाँ भी ब्रह्माण्ड-भाण्डोदर) कृष्णस्य अतिभरावसन्नं (श्रीकृष्णके अतिशय भारसे

श्रान्त-अवसादग्रस्त) पार्ष्णिप्रहारपरिरुग्नफणातपत्रं (पादप्रहारसे निपीड़ित फणधारी) अहिं (अपने भर्त्ता कालियको) दृष्ट्वा आर्त्ताः (देखकर अतिशय दुःखी हुईं) श्लथद्-वसन-भूषण-केशबन्धाः (तथा उनके वसन, भूषण, केशबन्धन शिथिल हो गये थे) [ऐसी कालियकी स्त्रियाँ] आद्यं (पुराणपुरुष श्रीकृष्णके निकटमें) उपसेदुः (समुपस्थित हुईं)॥ ३१॥

**अनुवाद**—सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको अपने उदरमें धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके भारसे कालिय अत्यन्त पीड़ित हो गया तथा कृष्णकी एड़ियोंके प्रहारसे उसके छत्रके समान फण क्षत-विक्षत हो गये। यह देखकर कालियकी पत्नियाँ अत्यधिक दुःखी हो गयीं। वे अति विकल भावसे पुराणपुरुष श्रीकृष्णकी शरणमें आयीं। भयके कारण उनके वस्त्र और आभूषण अस्त-व्यस्त हो रहे थे तथा उनका केशबन्धन भी खुल गया था॥ ३१॥

**सारार्थदर्शिनी**—गर्भे जगन्ति यस्य तस्य अतएवाऽतिभरेण आद्यं श्रीकृष्णम् आर्त्ता इत्येतावत्कालपर्यन्तं या पत्यावुदासीना एवासन्। बहिर्मुखोऽयं भगवत्कृतदण्डेन म्रियते चेत्म्रियतां। वयं विधवा एव भूत्वा भगवन्तं भजामेति, यदा तु मनसा शरणं गतस्य तस्य पत्युर्दैन्यनिर्वेदविषादवितर्कमित्यादिसञ्चारिलक्षणं मुखाद्यङ्गेषु ददृशुस्त-देवाहो अस्मद्भाग्यवशादयं वैष्णवोऽभूत्तदस्य रक्षणे यतामहे इति, संहतास्तास्तत्र जातस्नेहत्वादार्त्ताः श्रीमच्चरणसन्निधिमाजग्मुः॥ ३१॥

**भावानुवाद**—जिनके उदरमें अनन्त करोड़ ब्रह्माण्ड विराजमान हैं, ऐसे श्रीकृष्णके पादप्रहार और भारसे पूर्ण रूपसे पीड़ित अपने पति कालियको अब कृष्णका शरणागत जानकर कालियनागकी पत्नियाँ आदिपुरुष श्रीकृष्णके चरणोंके समीप आयीं। अब तक जो स्त्रियाँ अपने पतिके प्रति उदासीन थीं तथा सोच रही थीं कि भगवान्से बहिर्मुख ऐसा पति भगवान्के दण्डसे यदि मर जाये तो अच्छा है, हम विधवा होकर ही प्रभुका भजन करेंगी। किन्तु जब उन्होंने मनके द्वारा भगवान्के शरणागत अपने पतिके दैन्य, निर्वेद, विषाद वितर्क इत्यादि सञ्चारी लक्षण भावोंको उसके मुखादि अङ्गोंपर देखा, तो वे सोचने लगीं—अहो! हमारे सौभाग्यसे हमारा पति वैष्णव हो गया है। अतएव अब हमें इसकी रक्षाके लिए प्रयास करना चाहिये, ऐसा

विचारकर वे सभी पतिके प्रति उदित स्नेहके कारण कातर होकर कृष्णके चरणोंके समीप उपस्थित हुईं॥ ३१॥

**तास्तं सुविग्नमनसोऽथ पुरस्कृताभ्र्याः**
**कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः।**
**साध्व्यः कृताञ्जलिपुटाः शमलस्य भर्त्तु-**
**र्मोक्षेच्छवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः॥ ३२॥**

**अन्वयः**—अथ सुविग्नमनसः साध्व्यः ताः (अनन्तर उद्विग्न चित्तवाली साध्वी नागपत्नियाँ) पुरस्कृताभ्र्याः (अपने बच्चोंको आगे करके) कृताञ्जलिपुटाः (हाथ जोड़कर) शमलस्य (पापी) भर्त्तुः (पतिकी) मोक्षेच्छवः (मुक्तिकी कामनासे) तं शरणदं भूतपतिं शरणं (शरणदाता भूतपति श्रीकृष्णके शरणागत होकर) भुवि कायं निधाय प्रणेमुः (भूतलमें गिरकर प्रणाम करने लगीं)॥ ३२॥

**अनुवाद**—उस समय उन साध्वी नागपत्नियोंका चित्त बड़ा उद्विग्न हो रहा था। वे अपने पापी पतिकी मुक्तिकी कामनासे अपने बालकोंको आगेकर हाथ जोड़कर सम्पूर्ण प्राणियोंके स्वामी एवं शरणदाता भगवान्‌की शरणमें गयीं तथा भूमिपर गिरकर उन्हें प्रणाम किया॥ ३२॥

**सारार्थदर्शिनी**—तास्तं प्रथमं प्रणेमुः—भुवीति। ह्रदस्य मध्ये कश्चित् द्वीपो बुद्ध्यते यत्रैव स्थितःकृष्णः कालियवेष्टितो गोकुलजनैरदृश्यतेति ज्ञेयं। पुरः कृष्णस्याग्रे कृता अर्भा बाला याभिस्ता इति कृपाजननार्थम॥ ३२॥

**भावानुवाद**—नागपत्नीोंने पहले भूमिपर गिरकर कृष्णको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। *'भुवि'*—कहनेसे भूतल समझा जाता है। इससे प्रतीत होता है कि उस ह्रदके मध्यमें कोई द्वीप (टापू) था, जहाँ गोकुलवासियोंने कृष्णको कालियके पाशमें बँधे हुए देखा था। *'पुरस्कृताभ्र्याः'* शिशु सन्तानको देखकर कृष्णकी कृपा होगी, यही समझकर वे अपने समस्त शिशुओंको आगेकर अपने पतिके अपराधोंको क्षमा करानेकी अभिलाषासे कृष्णके शरणागत हुईं॥ ३२॥

**नागपत्न्य ऊचुः—**

**न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्विषेऽस्मि-**
**स्तवावतारः खलनिग्रहाय।**
**रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टि**
**र्धत्से दमं फलमेवानुशंसन्॥ ३३॥**

**अन्वयः—**नागपत्न्यः ऊचुः (नागपत्नियाँ कहने लगीं—) (हे देव!) खलनिग्रहाय (दुष्ट-दमनके लिए) तव अवतारः (आपका अवतार हुआ है) [इससे] कृत किल्विषे (पापाचारी) अस्मिन् (हमारे पतिके प्रति) दण्डः (दण्ड-विधान) न्यायः हि (युक्तियुक्त ही हुआ है) रिपोः सुतानां अपि (शत्रु और अपने पुत्र दोनोंके प्रति आप) तुल्यदृष्टिः (समदृष्टिसम्पन्न) [होते हैं एवं उनके] फलं (भविष्यके कल्याणरूपी फलका) अनुशंसन् (विचार करते हुए) एव दमं (दण्ड) धत्से (विधान करते हैं)॥ ३३॥

**अनुवाद—**नागपत्नियोंने कहा—हे देव! दुष्टोंके दमनके लिए ही आप इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं। इसलिए हमारे इस पापाचारी पतिके लिए यह दण्ड सर्वथा उचित ही है। आप तो शत्रु एवं पुत्र दोनोंके प्रति ही समदर्शी हैं तथा पापोंका प्रायश्चित कराने और भविष्यमें परम मङ्गल करनेके लिए ही किसीको दण्ड देते हैं॥ ३३॥

**सारार्थदर्शिनी—**प्रथमं स्तवन्त्यः कोपमुपशमयितुं दण्डमनुमोदयन्ति-न्याय इति। अनेन साधुद्रोहलक्षणस्य स्वखलत्वस्य फलमवश्य प्राप्यं प्राप्तमिति भावः। शिष्टपालनदुष्टनिग्रहकृतस्तव तु क्वापि वैषम्यं नैवास्तीत्याहुः। रिपोः सुतानां रिपुसुतेषु अपिकारात् स्वसुतेषु च तुल्यदृष्टेः। रिपोरपि पुत्रस्य शिष्टस्य प्रह्लादस्य पालनदर्शनात् स्वस्यापि सुतस्य नरकासुरस्य वधदर्शनाच्चेति भावः। नच खलनिग्रहेऽपि नैर्घृण्यमित्याहुः धत्से इति। खलत्वहेतुकनानानरकदुःखोपशमपूर्वकनित्यसुखमयमोक्षलक्षणं फलमेव दीयते मयेत्यनुशंसन् कथयन्नेव दमं दण्डं धत्से॥ ३३॥

**भावानुवाद—**सर्वप्रथम कृष्णका क्रोध शान्त करनेके लिए नागपत्नियाँ *'न्यायः हि दण्डः'* द्वारा दण्डका अनुमोदन कर रही हैं। महा-अपराधी कालियको आपने जो दण्ड दिया है, वह न्याय सङ्गत है, क्योंकि आप साधु-द्रोही दुष्टोंको दण्ड देने और साधुओंके प्रति

अनुग्रह करनेवाले हैं, आपका अवतार इसीलिए हुआ है। यह नागराज साधुद्रोहरूपी अपनी दुष्टताका फल प्राप्त कर चुका है। सज्जन-पालन और दुष्ट-दमनरूपी आपके इस कार्यमें कहीं भी विषमता नहीं है। शत्रु और पुत्रमें आपकी समान दृष्टि रहती है। अथवा शत्रुपुत्रमें और अपने पुत्रमें आप समदर्शी हैं। शत्रुपुत्र प्रह्लादकी समस्त प्रकारकी विपत्तियोंसे आपने रक्षा की, परन्तु अपने पुत्र नरकासुरका विनाश किया। दुष्टोंको दण्ड देनेमें भी आपकी कृपा ही देखी जाती है। इसे नागपत्नियाँ *'धत्से'* इत्यादि द्वारा कह रही हैं। आप दुष्टोंको नरक आदि नाना प्रकारके दुःख प्रदानकर उनके खलस्वभावका नाश करते हैं, तत्पश्चात् उन्हें नित्य सुखमय मोक्षलक्षण फल प्रदान करते हैं॥ ३३॥

**अनुग्रहोऽयं भवताः कृतो हि नो,**
**दण्डोऽसतां ते खलु कल्मषापहः।**
**यद्द्वन्द्वशूकत्वममुष्य देहिनः,**
**क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव सम्मतः॥ ३४॥**

**अन्वयः**—[जिससे] ते (आपका दिया हुआ) दण्डः खलु (दण्ड निश्चित रूपसे) असतां (पापी प्राणियोंका) कल्मषापहः (पापनाशकारी होता है) [इसलिए] हि (निश्चित रूपसे) भवता नः (हमारे प्रति आपके द्वारा) अयं (यह दण्ड) अनुग्रहः (अनुग्रहके लिए ही) कृतः (किया गया है) अमुष्य देहिनं यत् (विशेषकर हमारे इस स्वामीने जिस पापसे) द्वन्द्वशूकत्वं (सर्पयोनि प्राप्त की है, उस पापके नाशके लिए) ते (आपका) क्रोधः अपि अनुग्रहः एव (क्रोध करना भी परम अनुग्रह है) सम्मतः (ऐसा हम मानती हैं)॥ ३४॥

**अनुवाद**—यह निश्चित है कि पापियोंके पाप-नाशके लिए ही आप दण्डकी व्यवस्था करते हैं। अतः दण्डके रूपमें यह आपका हमपर अनुग्रह ही है। विशेषतः हमारा पति जिन पापोंके कारण सर्पयोनिको प्राप्त हुआ है, उन पापोंके नाशके विषयमें हम आपके क्रोधको अनुग्रह ही मानती हैं॥ ३४॥

**सारार्थदर्शिनी**—तस्मात्दुष्टेष्वपि तव वस्तुतस्त्वनुग्रह एव निग्रहाकार इत्याहुः—अनुग्रह इति। नोऽस्माकं दण्डः कल्मषं प्राचीनविविधपापम् अपहन्तीति सः यतः कल्मषात् अमुष्य देहिनो जीवस्य द्वन्द्वशूकत्वं तस्मात् क्रोधोऽपीत्यादि॥ ३४॥

**भावानुवाद**—अतएव दुष्टोंके प्रति आपका जो दण्ड है, वह वास्तविक अनुग्रह है। वह देखनेमें दण्ड जैसा प्रतीत होता है, परन्तु वास्तवमें वह परम अनुग्रह-विशेष है। हमारे प्रति आपने जो दण्डविधान किया है, यह दण्डके रूपमें दिखायी देनेपर भी यथार्थतः अनुग्रह ही है। इसका कारण है कि *'कल्मषापहः'*—ऐसा दण्ड निश्चित रूपमें दुष्टोंके पूर्व जन्मकृत विविध पापोंका निवारक हुआ करता है। *'यद् द्वन्द्वशूकत्वम्'*—जिन पापोंके कारण अनेक योनियोंमें भ्रमण करनेवाले इस देही जीवने इस समय सर्पयोनि प्राप्त की है, आपने दण्डके द्वारा इसके उन समस्त पापोंको नष्ट कर दिया है। अतः इसके लिए आपका दण्ड अनुग्रह-स्वरूप ही है॥ ३४॥

**तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं,**
**निरस्तमानेन च मानदेन।**
**धर्मोऽथवा सर्वजनानुकम्पया,**
**यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः॥ ३५॥**

**अन्वयः**—यतः (जिस पुण्यके कारण) सर्वजीवः (समस्त जीवोंके सन्तुष्ट होनेपर सर्व-जीवोंके आश्रय-स्वरूप) भवान् तुष्यति (आप भी सन्तुष्ट होते हैं) निरस्तमानेन (गर्व छोड़कर) मानदेन (अमानी एवं मानद होकर) अनेन (हमारे पतिने) पूर्वं (पूर्व जन्ममें) किं तपः सुतप्त (कौन-सी तपस्या की थी) अथवा सर्वजनानुकम्पया (या समस्त जीवोंकी हित-बुद्धिसे) धर्मः (कौन-सा महत्-पुण्य कार्य किया है, वह हम नहीं जानती हैं)॥ ३५॥

**अनुवाद**—आप सभी जीवोंके आश्रय-स्वरूप हैं। अतः जो सम्मान आदि प्रदान करके दूसरोंको सन्तुष्ट करते हैं, आप उनसे प्रसन्न होते हैं। हमारे इस स्वामीने अवश्य ही अपने पूर्व जन्ममें मानरहित होकर दूसरोंका सम्मान करते हुए कोई बहुत बड़ी तपस्या की होगी अथवा इसने समस्त जीवोंके कल्याणकी बुद्धिसे किसी

धर्मका आचरण किया होगा, जिसके कारण आप इसपर सन्तुष्ट हुए हैं॥ ३५॥

**सारार्थदर्शिनी—**इदानीं तु निग्रहाकारोऽपि नैवायमनुग्रहः, किन्तु शिष्टजनता-कष्टलभ्यमपि वस्त्वयमनायासेनैव लभते स्म यत्तत्र तु किं प्राचीनं सुपुण्यमस्तीति वितर्कयन्त्य आहुः—तप इति। निरस्तमानेन गर्वशून्यत्वादन्यकृतसम्माननाभिलाषरहितेन मानदेन अन्येभ्यो मानं ददतेति तपसो वैष्णवीयत्वं सूचितम्। वैष्णवेतरेषु तपस्विषु अवमानित्वमानदत्वादर्शनात्। *"नाहं वेदैर्नतपसा"* इति त्वदुक्तेरन्यतपसस्त्वत्-प्रसादकत्वाभावाच्च। सर्वजन अनुकम्पया उपलक्षितो यो धर्मः स कृत् इति धर्मस्यापि वैष्णवीयत्वम्। कर्मिणां सर्वभूत अनुकम्पयानुत्पतेः यतस्तपसो धर्माद्वा हेतोस्तुष्यति। अस्य शिरःसु रङ्गस्थलीकृतेषु प्रहर्षनृत्याचरणात्। सर्वजीवः सम्माननानु-कम्पादिना सर्वजीवेषु सन्तोषितेषु सर्वजीवमन्दिरो भवानपि सन्तुष्यतीत्यर्थः। श्लेषेण सर्वास्त्वं जीवयसि त्वत्सन्तोषकं इममेव किं पार्ष्णिप्रहारैर्हंसीति द्योतितम्॥ ३५॥

**भावानुवाद—**यह दण्ड जैसा दीखनेपर भी वास्तवमें अनुग्रह है, क्योंकि सज्जन जिस वस्तुको अत्यन्त कष्टसे अर्जित करते हैं, उसे इसने अति सहज रूपमें प्राप्त कर लिया है। इसने उस वस्तुको किस कारणसे पाया है? उसके विषयमें विचारकर कह रही हैं—*'तपः'* आदि। अर्थात् इसने पूर्वजन्ममें पुण्यजनक कार्य किया है। हमारे पति इस नागराजने पूर्वजन्ममें गर्वरहित होकर दूसरोंसे सम्मानकी अभिलाषा न करते हुए तथा दूसरोंको सम्मान प्रदान करते हुए कोई कष्टकर तपस्या की होगी। इस प्रकार 'अमानी मानद' रूपी तपस्याके द्वारा वैष्णवता सूचित हुई है, क्योंकि वैष्णवोंके अतिरिक्त दूसरे-दूसरे तपस्वियोंमें अमानी-मानदत्व नहीं देखा जाता। *"नाहं वेदैर्न तपसा"* (श्रीगीता ११/५३) अर्थात् वेद, दान, तपस्या आदि उपायोंके द्वारा कोई मेरा दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होता है—आपके इस वचनसे स्पष्ट होता है कि अन्य प्रकारके धार्मिक कृत्य आपको प्रसन्न नहीं कर सकते। *'सर्वजनानुकम्पया'*—अथवा इसने समस्त जीवोंके हितके लिए कोई महत्-कार्य किया था जिसके प्रभावसे सर्व जीवोंके जीवन-स्वरूप आप इसपर परम सन्तुष्ट हुए हैं।

यहाँ 'सर्वजन हिताय' बुद्धिसे जो धर्मानुष्ठान किया जाता है, वह धर्म भी वैष्णवता ही है। कर्मियोंमें समस्त जीवोंके प्रति अनुकम्पाका उदय नहीं होता, अतः उनके द्वारा किये गये धर्मानुष्ठानके

द्वारा आप ऐसे सन्तुष्ट नहीं होते हैं। अहो! इस कालियके फणोंको रङ्गस्थली बनाकर आपने आनन्दसे नृत्य किया। सम्मान और अनुकम्पाके द्वारा समस्त जीवोंके सन्तुष्ट होनेपर समस्त जीवोंके मन्दिर-स्वरूप आप भी सन्तुष्ट हो जाते हैं, यह अर्थ है। श्लेष अर्थमें—आप सभी जीवोंको जीवन प्रदान करते हैं, तो फिर इस कालियनागको अपने चरणोंके प्रहारसे क्यों कष्ट प्रदान कर रहे हैं?॥ ३५॥

**कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे,**
**तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः ।**
**यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत् तपो,**
**विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता॥ ३६॥**

**अन्वयः**—(हे देव!) ललना (सुन्दरी) श्रीः (लक्ष्मीदेवीने) कामान् (दूसरे विषयोंको) विहाय सुचिरं धृतव्रता (छोड़कर चिरकाल तक व्रतपरायण होकर) यद्वाञ्छया (केवलमात्र आपकी चरणरेणु प्राप्तिकी आशासे) तपः अचरत् (तप किया) तव अङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः अस्य कस्य अनुभावः (यह कालिय कौन-से पुण्यके प्रभावसे आपकी उस चरणरेणुको प्राप्त करनेका अधिकारी हुआ) न विद्महे (वह हम नहीं जानती हैं)॥ ३६॥

**अनुवाद**—हे देव! जिस पदरेणुकी प्राप्तिकी आशासे आपकी अर्द्धाङ्गिनी परम सुन्दरी लक्ष्मीजीने समस्त विषय-भोगोंका परित्याग करके बहुत दिनों तक व्रत-नियमोंको धारण करते हुए तपस्या की थी, यह कालिय किस पुण्यके प्रभावसे आपकी उसी चरणरेणुको प्राप्त करनेका अधिकारी बन गया—यह हमारी समझमें नहीं आ रहा है?॥ ३६॥

**सारार्थदर्शिनी**—किञ्च न तप आदि हेतुक एष भाग्योदयः किन्त्वतर्क्यं तव कृपावैभवमेवेदमित्याहुः—कस्येति त्रिभिः। अस्य महानीचस्यांपि कालियस्य कस्य तावदनुभावः फलं तन्न जानीमहे। फलमेव किं दृष्टं तत्राहुः तव नन्दपुत्रस्य अङ्घ्रिरेणोरपि स्पर्शे स्वकर्तृको योऽधिकारः सोऽपि तप आदिसर्वसुकृतदुर्ल्लभः,

अयं तु अङ्घ्रिद्वयकर्तृकं स्पर्शं तं च नृत्यलक्षणं तत्रापि स्वशिरस्सु प्रापेति भाग्यस्य कियान् महिमा वाच्य इति भावः। ब्रह्मादिसर्वभक्तेभ्योऽधिकापि श्रीस्तव नारायणरूपस्य ललनापि यस्य गापोलरुपस्य तव चरणस्पर्शवाञ्छया तप आचरत् तदपि न प्राप॥ ३६॥

**भावानुवाद**—इसके ऐसे भाग्योदयके लिए कोई तपस्या आदि कारण नहीं है, केवल आपका तर्कातीत कृपावैभव ही इसका कारण है—इसे 'कस्य' इत्यादि तीन श्लोकमें कह रही हैं। इस महानीच कालियकी यह कौन-सी सुकृतिका फल है, हम उसे नहीं जानती हैं। यदि कहें कि तुम लोगोंने कौन-सा फल देखा है? उसके उत्तरमें कहती हैं—*'तवाङ्घ्रिरेणु स्पर्शाधिकारः'*—आप नन्दनन्दनने स्वयं इसे अपनी चरणरेणु स्पर्शका अधिकार प्रदान किया है, जो तपस्या आदि समस्त प्रकारकी सुकृतियोंके द्वारा भी दुर्लभ है। इस कालियनागने अपने मस्तकपर, नृत्यके समय आपके श्रीचरणोंका जो स्पर्श प्राप्त किया है, इससे इसके सौभाग्यकी कितनी महिमा कही जाय?

*'यद्वाञ्छया'*—ब्रह्मादि सभी भक्तगण भी जिनके अनुग्रहकी अभिलाषा करते हैं, ऐसी लक्ष्मीदेवीने श्रीनारायणकी ललना होकर भी श्रीगोपालरूपी आपकी चरणरेणुको स्पर्श करनेकी लालसासे समस्त प्रकारकी कामना-वासनाओंको परित्यागकर कठोर नियमोंका पालन करते हुए बहुतकाल तक तपस्या की, परन्तु फिर भी आपकी चरणरेणुको प्राप्त नहीं कर पायीं॥ ३६॥

**न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं,**
**न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम्।**
**न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा,**
**वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः॥ ३७॥**

**अन्वयः**—यत् (तुम्हारे) पादरजः प्रपन्नाः (चरणरजः प्राप्त जनगण) नाकपृष्ठं (स्वर्गलोक) न सार्वभौमं (सार्वभौम राज्यपद) न च पारमेष्ठ्यं (ब्रह्मपद) न रसाधिपत्यं (रसातलका आधिपत्य) न योगसिद्धीः (योगसिद्धि या) अपुनर्भवं (मुक्ति) वा न वाञ्छन्ति (भी नहीं चाहते)॥ ३७॥

**अनुवाद**—जिन्होंने आपकी चरणरजकी प्राप्ति कर ली है, वे स्वर्गलोकका राज्य, पृथ्वीका चक्रवर्त्ती सम्राटपद, ब्रह्मापद, रसातलका आधिपत्य, अणिमादि योगसिद्धि अथवा मोक्ष—इनमेंसे किसी की भी कामना नहीं करते॥ ३७॥

**सारार्थदर्शिनी**—एतावन्महिमभिर्मत्पादरेणुभिः किं फलं स्यादिति चेन्मैवं वाच्यं तव चरणरेणव एव फलं सर्वफलेभ्योऽप्यधिकमित्याहुः नेति। प्रपन्ना एव न वाञ्छन्ति किं पुनस्तत्प्राप्ताः अपवर्गमपि किं पुनर्नाकपृष्ठादिंकम्॥ ३७॥

**भावानुवाद**—यदि कहें कि ऐसी महिमायुक्त मेरी चरणरेणुके द्वारा क्या फल प्राप्त होगा? इसके उत्तरमें *'न नाकपृष्ठम्'* इत्यादि द्वारा कह रही हैं—आप ऐसा कभी नहीं कह सकते, क्योंकि आपकी चरणरेणु ही सब प्रकारके फलोंसे भी अधिक फलदायी है। *'प्रपन्नाः'*—आपकी चरणरेणुके शरणागत भक्तगण स्वर्ग या अन्य किसी पदकी कामना नहीं करते। उसमें भी जिसने आपकी चरणरेणु प्राप्त कर ली है, उसके विषयमें तो कहना ही क्या? वे मोक्षकी भी अभिलाषा नहीं करते, स्वर्गलोककी तो बात ही क्या है? इस प्रकार यहाँपर कैमुतकी न्याय द्वारा समझना होगा॥ ३७॥

**तदेष नाथाप दुरापमन्यै-**
**स्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः।**
**संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो,**
**यदिच्छतः स्याद्विभवः समक्षः॥ ३८॥**

**अन्वयः**—(हे) नाथ (प्रभो!) यदिच्छतः (जिस चरणरेणुकी अभिलाषाकर) संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणः (संसारचक्रमें भ्रमणकारी जीव) विभवः (उत्कृष्ट फलको) समक्षः स्यात् (साक्षात् रूपसे प्राप्त करते हैं) क्रोधवशः (क्रोधके वशीभूत) अपि एषः तमोजनिः (तमोगुणसे उत्पन्न) अहीशः (इस सर्पराजने) अन्यैः दुष्प्रापं (लक्ष्मी-ब्रह्मा आदिके लिए भी दुर्लभ) तत् (उस पदरजको) आप (प्राप्त किया) [यह आश्चर्यजनक बात है]॥ ३८॥

**अनुवाद**—हे प्रभो! जिस पदरजकी कामनामात्रसे ही संसारचक्रमें भ्रमणशील जीव संसारके वैभवोंकी तो बात ही क्या, ब्रह्मादिके लिए भी दुर्लभ मोक्षकी भी प्राप्ति कर लेते हैं, वह परम पवित्र पदरज इस क्रोधी और तमोगुणी योनिमें उत्पन्न सर्पराज कालियको किस प्रकार प्राप्त हो गयी?॥ ३८॥

**सारार्थदर्शिनी**—अन्यैर्लक्ष्म्यादिभिरपि किञ्च, सर्वफल मुकुटभूतमपि त्वत्पादरजः सकामजन्यस्य फलसाधनमपि भवतीत्याहुः-संसारेति। इच्छतः सकामस्य शरीरिणः यत् यतो विभवः समक्षः इच्छाविषयीभूतादपि यतः अपेक्षिता सम्पत्तिः प्रत्यक्षैव भवतीत्यर्थः॥ ३८॥

**भावानुवाद**—*'अन्यैः दुरापम्'*—लक्ष्मी आदिके लिए भी सुदुर्लभ आपकी उस पदरजको महा-अपराधी, तमोगुणमें उत्पन्न, महा-क्रोधी इस नागराजने प्राप्त कर लिया। सर्वफल-शिरोमणि होकर भी आपकी चरणरेणु सकाम व्यक्तियोंके लिए फलका साधन-स्वरूप भी है, अर्थात् संसारचक्रमें परिभ्रमणशील, *'इच्छतः शरीरिणः'*—सकाम जीवोंकी इच्छा होते ही तत्क्षणात् उन्हें वाञ्छित सम्पदकी प्राप्ति हो जाती है॥ ३८॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—कालिय-दमनकारी श्रीहरिने कालियके मस्तकपर नृत्य करते हुए जब कालियके सैकड़ों मस्तकोंको चूर्ण कर दिया, तब कालिय बहुत जन्मोंसे सञ्चित अपराधोंसे मुक्त हो गया एवं उसका सारा घमण्ड चूर-चूर हो जानेसे वह चिरकालके लिए श्रीहरिके चरणोंमें शरणागत हो गया। इससे शरणागत-प्रतिपालक, दीनवत्सल श्रीहरि कालियके प्रति प्रसन्न हुए एवं अपने विचित्र ताण्डवको समाप्तकर रुईसे भी अतिकोमल और हल्के होकर कालियके मस्तकपर कुसुमके समान कोमल चरणोंको स्थापितकर विराजित हो गये। वे कालियके प्रति सुप्रसन्न होकर और उसे चरणोंके प्रहारसे मुक्त करके उसके कुचले हुए फणोंके बीचमें सुललित भङ्गिमें स्थित हो गये, वहाँसे उतरे नहीं।

इसका कारण यह है कि कालियने कुछ क्षण पहले ही श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श प्राप्त किया, किन्तु बहिर्मुखतारूपी दोषके

कारण वह उन चरणोंका माधुर्य आस्वादन नहीं कर सका। जिन चरणकमलोंको ध्यानयोगमें अपने हृदयकमलमें धारणकर कमलयोनि ब्रह्माके नयनकमलोंसे प्रेमाश्रु प्रवाहित होते रहते हैं, कालिय उन्हीं चरणोंको मस्तकपर धारण करके लेशमात्र भी आनन्द प्राप्त नहीं कर सका, अपितु पुनः-पुनः उन चरणोंके प्रहारसे जर्जरित हो गया तथा उसका समस्त अभिमान दूर हो गया। इसलिए परम करुणामय नन्दनन्दनने मन-ही-मन स्थिर किया कि जब कालियके समस्त प्रकारके अपराध दूर हो गये हैं और यह मेरे चरणोंमें शरणागत हो गया है, तब यह कुछ देर तक मुझे मस्तकमें धारणकर एवं मेरे चरणोंका स्पर्श प्राप्तकर आनन्दित और कृतार्थ हो। जब तक जीव श्रीकृष्णके चरणोंमें शरणागत नहीं होता, तब तक पित्तसे दूषित रसनामें जैसे मीठी वस्तु भी कड़वी लगती है, वैसे ही साक्षात् कृष्णकी प्राप्तिमें भी आनन्दके बदले दुःखकी अनुभूति होती है।

कृष्ण जब यमुना-ह्रदमें कूदकर तैरने लगे थे, तब कालिय क्रोधमें अधीर होकर तीव्र गतिसे उनके निकट आया था एवं कालिय-पत्नियाँ भी अपने परमाराध्यको अपने वासस्थलमें आया देखकर आनन्दमें अधीर होकर कालियके पीछे-पीछे दौड़कर आयीं; किन्तु कालिय निकट आकर कृष्णके चरणोंको डँसने लगा—यह देखकर उसकी पत्नियाँ भयभीत, लज्जित एवं संकुचित होकर कृष्णके समक्ष उपस्थित नहीं हुईं। वे कुछ देर तक हाथ जोड़कर कृष्णकी लीला देखने लगीं एवं मन-ही-मन पतिकी बहिर्मुखता दूर करनेके लिए सर्वदोषहारी कृष्णके चरणोंमें प्रार्थना करने लगीं। कृष्ण जब कालियके मस्तकपर चढ़कर नृत्यके बहाने कालियके फणोंपर पदाघात कर रहे थे और उससे कालिय अत्यन्त पीड़ाका अनुभव करते हुए मृतप्राय हो रहा था, तब कालियकी पत्नियाँ दूरसे ही यह दुष्ट-दमन लीला देख रही थीं और मन-ही-मन विचार कर रही थीं कि हमारा बहिर्मुख पति कृष्णके पदाघातसे मर जाये तो अच्छा है। तब हम भले ही विधवा हो जायेंगी, परन्तु हमारे पतिको दूसरे जन्ममें निश्चित ही कृष्णभक्ति प्राप्त होगी।

श्रीकृष्णने अपनी भक्त कालिय-पत्नियोंकी मनोकामना पूर्ण की, किन्तु उन्हें विधवा नहीं बनाया, बल्कि उनके पतिकी समस्त प्रकारकी दुर्वासनाओंको दूरकर उसे अपने चरणोंमें शराणागत बनाया एवं उसके मस्तकपर अपने सुकोमल चरण रखकर प्रसन्न होकर वहीं खड़े रहकर चारों ओर देखने लगे। श्रीकृष्णका प्रसन्न मुख और कालियके शरीरमें शरणागतिके लक्षण देखकर कालियकी पत्नियाँ परमानन्दमें विभोर हो गयीं एवं अपने पतिके प्राणोंकी भीख माँगनेके लिए शीघ्र ही कृष्णके चरणोंमें उपस्थित हुईं। उन्हें अपने कटि-वस्त्रोंके गिर जाने या केश-पाश खुले होनेका भी स्मरण नहीं रहा—वे जिस स्थितिमें थीं, उसी स्थितिमें पतिकी प्राण-रक्षाके लिए व्याकुल होकर जगत्-पतिके चरणोंमें उपस्थित हुईं।

श्रीकृष्णके समीप आनेपर उन लोगोंने देखा कि उनका चिर-बहिर्मुख पति कालिय अनन्त ब्रह्माण्ड-भाण्डोदर कृष्णके भारसे अत्यन्त थका हुआ है एवं अपने क्षत-विक्षत फणों तथा नासिकासे रक्त उगलता हुआ मृतप्राय अवस्थामें है। यह देखकर कालियकी पत्नियोंके चित्तमें अत्यन्त क्षोभका सञ्चार हुआ और वे मन-ही-मन अनुताप करने लगीं—"हाय! भक्त-वाञ्छाकल्पतरुकी अपार करुणासे हमारी अभिलाषा पूर्ण हुई और हमारे पतिके हृदयमें भक्तिभाव प्रकाशित हुआ है, परन्तु दुर्भाग्यवश हम अपने भक्त पतिकी सेवाकर जीवन सार्थक नहीं कर पायेंगी। यदि एक मुहूर्त्तके लिए भी हम अपने भक्त पतिकी सेवा कर पातीं, तो हम कृतार्थ हो जातीं।" यह विचारकर वे कालियके प्राणोंकी रक्षाके लिए व्याकुल हो उठीं एवं अपने-अपने शिशुओंको आगे करके हाथ जोड़कर कृष्णके सामने खड़ी हो गयीं तथा लज्जा, भय, सङ्कोच आदि त्यागकर पुनः-पुनः कृष्णके चरणोंमें प्रणाम करने लगीं। *'भुवि कायं निधाय'*—इस अंशसे देखा जाता है कि कालियकी पत्नियोंने भूमिपर लेटकर कृष्णके चरणोंमें प्रणाम किया। अतएव इससे समझा जाता है कि कालिय-ह्रदमें कोई द्वीप (टापू) होगा अथवा कृष्णने जब कालिय-दमन-लीला करनेका सङ्कल्प किया तभी कृष्णकी लीलाशक्तिके प्रभावसे वहाँ कोई द्वीप प्रकट हुआ होगा। कृष्ण यदि जलके भीतर कालियके मस्तकपर

चढ़ते, तब तो उनके पदाघातसे पीड़ित होकर वह जलमें डूबकर भाग जाता। इसलिए कृष्णकी कालिय-दमन-लीला एवं कालियकी पत्नियोंके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति कालिय-ह्रदके बीचमें स्थित किसी द्वीपमें ही हुई थी, ऐसा प्रतीत होता है।

श्रील सनातन गोस्वामीकृत बृहद्भागवतामृत ग्रन्थमें देखा जाता है कि श्रीकृष्णने कालियकी पत्नियोंके उत्तरीय वस्त्रोंसे लगाम बनाकर उससे कालियको नथा एवं बाँये हाथसे उसे पकड़कर घोड़ेकी पीठपर चढ़नेकी भाँति कालियकी पीठपर चढ़कर कालियको दौड़ाया था। इसलिए कालिय-ह्रदमें कोई टापू अवश्य रहा होगा। कालियकी पत्नियोंने यमुना-ह्रदके बीच स्थित टापूमें पुनः-पुनः श्रीकृष्णके चरणोंमें दण्डवत्-प्रणाम किया और अन्तमें वे अपने महापराधी पतिके अपराध क्षमाके लिए शरणागत-प्रतिपालक नन्दनन्दनके चरणोंमें हाथ जोड़कर स्तुति करने लगीं।

कालिय-ह्रदके मध्यमें कृष्णके चरणोंके प्रहारसे मृतप्राय कालियके फणोंके ऊपर कृष्ण प्रसन्न होकर खड़े थे एवं चारों ओरसे उन्हें घेरकर स्खलित कटि-वस्त्रों और बिखरे केशोंवाली कालियकी पत्नियाँ हाथ जोड़कर उनकी स्तुति कर रही थीं। उनमेंसे जो प्रधान थीं, वही स्तुति कर रही थीं, दूसरी सभी हाथ जोड़कर खड़ी थीं। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें देखा जाता है—कालियकी पत्नियोंमें जिसने कृष्णकी स्तुतिकी थी—उसका नाम सुवला था।

*मरणाभिमुखं कान्तं दृष्ट्वा च सुवला सती।*
*नागिनीभिः सह प्रेम्णा रुरोद पुरतो हरेः॥*

*पुटाञ्जलियुता तूर्णं प्रणम्य श्रीहरिं भियां।*
*धृत्वा पदारविन्दञ्च तमुवाच भयाकुला॥*

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें वर्णन है कि कालियकी पत्नी सुवला, कालियको मृत्युके मुँहमें जाते हुए देखकर दूसरी पत्नियोंके साथ मिलकर कृष्णके निकट जाकर रोने लगी एवं हाथ जोड़कर कृष्णको प्रणाम करती हुई पतिकी मृत्युके भयसे व्याकुल होकर कृष्णकी स्तुति करने लगी।

कालियकी पत्नियाँ अपने पतिके अपराधको क्षमा कराने एवं उसके प्राणोंकी भिक्षा माँगनेके लिए कृष्णके चरणोंमें शरणागत हुईं।

*अनन्यसाध्ये स्वाभीष्टे महाविश्वासपूर्वकम्।*
*तदेकोपायतायाञ्चा प्रपत्तिः शरणागतिः॥*

(श्रीवीराघवाचार्य-धृत वचनम्)

अभीष्ट सिद्धि एकमात्र सुदृढ़ विश्वासपूर्वक कृष्णके चरणोंमें प्रार्थनापूर्वक शरणागत होनेपर ही होती है। इसलिए कालियकी पत्नियाँ यथार्थ रूपमें शरणागत होकर ही कृष्णके चरणोंमें अपना अभीष्ट ज्ञापन करनेमें प्रवृत्त हुईं। उन्होंने पहले छह श्लोकोंमें कृष्णके द्वारा कालियके दण्डका अनुमोदन, अगले दस श्लोकोंमें कृष्णकी स्तुति एवं पाँच श्लोकोंमें अपना अभीष्ट ज्ञापन किया है।

*दण्डानुमोदनं षडभिर्दशभिश्च हरेस्तुतिः।*
*प्रार्थनं पञ्चभिः श्लोकैस्ततः पन्नागयोषिताम॥*

(श्रीधरस्वामि)

कालियकी पत्नियाँ श्रीकृष्णके चरणोंमें आकर उनके द्वारा कालियको प्रदान किये गये दण्डका अनुमोदनकर कहने लगीं—"हे सर्वेश्वर! हे अनन्त कल्याणगुण सागर! आपने कालियको जो दण्ड प्रदान किया है, यह इसके लिए उपयुक्त ही हुआ है, क्योंकि इसके जैसा अपराधी त्रिजगत्में कोई नहीं है। इसने आपके भक्तचूड़ामणि गरुड़की अवज्ञा की है। आपके लीलाक्षेत्र वृन्दावनमें आकर अपने तीव्र विषसे यमुनाके जलको विषैला बना दिया है, जिससे यमुनातीर और नीरमें रहनेवाले चल-अचल सभी प्राणी विषज्वालासे जलकर भस्म हो गये हैं। आपके सखा गोपबालक और बछड़े विषैले जलके पानसे अचेत हो गये। फिर अन्तमें इसने आपको भी पुनः-पुनः डँसा और अपने फेंटेमें बाँधा। अतएव इसके अपराधोंकी कोई सीमा नहीं है। अपराधीको दण्ड प्रदान करनेके लिए ही आप मत्स्य, कूर्म आदि विविध रूपोंमें अवतरित होते हैं। आपका अपना पुत्र भी यदि दुष्ट प्रकृतिवाला एवं साधुओंका पीड़नकारी होता है, तो आप उसे भी दण्ड देनेमें देर नहीं करते एवं आपके महाशत्रुका पुत्र भी यदि साधु

स्वभावसम्पन्न एवं सज्जनोंका अनुरागी होता है, तब आप उसपर भी अनुग्रह करते हैं। आपका अपना पुत्र पृथ्वीगर्भजात नरकासुर सज्जनोंका पीड़क होनेके कारण आपके हाथों मारा गया एवं आपके महाशत्रुका पुत्र प्रह्लाद आपके परम अनुग्रहका पात्र हुआ, इसे सभी जानते हैं। अतएव अपराधीको दण्ड देना और सज्जनोंपर अनुग्रह करना यह आपका स्वभाव है। आपमें अपने-परायेका विचार नहीं है। अपराधी होनेपर उसे दण्ड प्रदानकर आप जगत्का कल्याण करते हैं। अतएव इस महापराधी एवं आपके भक्तोंके विद्वेषी कालियके प्रति आपने जो दण्डविधान किया है, वह सब प्रकारसे समुचित ही हुआ है।

"हे भगवन्! कालियका जीवन जैसे कृतार्थ हुआ है एवं कालियके प्रति आप जो प्रसन्न हुए हैं, उससे स्पष्ट समझा जाता है कि इसने निश्चित रूपमें पूर्व जन्मोंमें अमानी होकर एवं सर्वजीवोंमें अन्तर्यामी रूपमें आपका अधिष्ठान जानकर सर्वजीवोंको सम्मान प्रदानकर और समस्त प्राणियोंके हितकर कार्योंमें संलग्न रहकर शुद्धभक्ति-याजनरूप तपस्या एवं धर्मानुष्ठान किया है। शुद्धभक्तिके द्वारा आप प्रसन्न होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है, किन्तु कालियकी भाँति अपने मस्तकपर आपके चरणोंका स्पर्श पानेका सौभाग्य सबके भाग्यमें नहीं होता है। शुद्धभक्तिका याजन करके ध्रुव, प्रह्लाद, नारद, व्यास आदि बहुत-से भक्त कृतार्थ तो हुए हैं, किन्तु उनमेंसे कोई भी कालियकी भाँति अपने सिरपर आपकी चरणधूलि धारण करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सका। कालियके पूर्व-जन्मकृत तपस्या और धर्मानुष्ठानके द्वारा आप प्रसन्न हुए हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु उसने किस साधनसे आपके चरणोंकी धूलिका स्पर्श करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है, हम किसी प्रकारसे इसका निर्णय नहीं कर पा रही हैं। जिस चरणधूलिको प्राप्त करनेके लिए ब्रह्मा-शिवादि भी प्रार्थना करते हैं, दूसरोंकी तो बात ही क्या, स्वयं आपकी प्रेयसी लक्ष्मीजी, निरन्तर आपके नारायण स्वरूपके श्रीचरणोंकी सेवा करती हैं, किन्तु आपके श्रीगोपाल-स्वरूपके चरणोंको स्पर्श करनेका अधिकार प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकीं।"

श्रीकृष्णके चरणोंको स्पर्श करनेका अधिकार पानेके लिए लक्ष्मीजी तीव्र तपस्या कर रही हैं, यह पद्मपुराणमें वर्णन है—

*श्री प्रेक्ष्य कृष्णसौन्दर्यं तत्र लुब्धा ततस्तपः।*
*कुर्वतीं प्राह तां कृष्णः किन्ते तपसि कारणम्॥*
*विजिहीर्षे त्वया गोष्ठे गोपी रूपेति साब्रवीत्।*
*तदुर्लभमिति प्रोक्ता लक्ष्मीस्तं पुनरब्रवीत॥*
*स्वर्णरेखेव ते नाथ वन्तुमिच्छामि वक्षसि।*
*एवमस्त्विति सा तस्य तद्रपा वक्षसि स्थिता॥*

(पद्मपुराण)

वैकुण्ठवासिनी लक्ष्मी, गोपाल-विग्रह कृष्णका सौन्दर्य दर्शनकर मुग्ध हो गयीं एवं उनकी चरण-सेवाधिकारकी प्राप्तिके लोभसे उन्होंने तीव्र तपस्या की। कृष्णने लक्ष्मीजीको तपस्या करते हुए देखकर उनसे पूछा कि तुम्हारी इस तीव्र तपस्याका कारण क्या है? तब लक्ष्मीजीने कृष्णसे कहा कि मैं गोपीरूपमें आपके साथ विहार करना चाहती हूँ। यह सुनकर कृष्णने कहा—यह अतीव दुर्लभ है। तब लक्ष्मीजीने फिरसे कृष्णके निकट प्रार्थना की—मैं स्वर्णरेखा बनकर ही आपके वक्षःस्थलमें वास करना चाहती हूँ। कृष्णने इसे स्वीकार करते हुए उन्हें स्वर्णरेखाके रूपमें अपने वाम वक्षःस्थलमें आश्रय प्रदान किया। कालियकी पत्नियाँ कृष्णसे कहने लगीं—हे भगवन्! जिसने आपकी श्रीचरणरेणुका आश्रय ग्रहण किया है, उसे मोक्षपद प्राप्ति की भी इच्छा नहीं रहती। मुक्त जीव भगवान्‌के निर्विशेष स्वरूपमें सायुज्य प्राप्तकर केवल समस्त प्रकारके सुखों और दुःखोंसे अतीत हो जाते हैं। किन्तु आपके चरणोंमें आश्रय प्राप्त करनेसे जीव चिरकालके लिए आपकी सेवाका सुख आस्वादनकर कृतार्थ हो जाते हैं॥ ३१-३८॥

**नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने।**
**भूतवासाय भूताय पराय परमात्मने॥ ३९॥**

**अन्वयः**—पुरुषाय (अन्तर्यामी रूपमें वर्त्तमान) महात्मने (सर्व व्यापक) भूतावासाय (आकाश आदि भूतोंके आश्रय-स्वरूप) भूताय

(पञ्च महाभूतसे भी परे) पराय (उनके कारण रूपमें) परमात्मने (तथा उनके कारणसे भी अतीत) भगवते (अचिन्त्य ऐश्वर्य आदि गुणसम्पन्न) तुभ्यं नमः (आपको प्रणाम है)॥ ३९॥

**अनुवाद**—हे प्रभु! आप अनन्त एवं अचिन्त्य ऐश्वर्य आदि गुणोंके भण्डार हैं, आपको हमारा नमस्कार है। आप समस्त जीवोंके अन्तर्यामी, सर्वव्यापक एवं आकाश आदि समस्त भूतोंके आश्रय-स्वरूप हैं। आप आकाश आदि पञ्चमहाभूतोंकी सृष्टिके पहलेसे भी विद्यमान थे। आप समस्त-कारणोंके कारण-स्वरूप होकर भी समस्त कारणोंसे अतीत स्वयं परमात्मा हैं॥ ३९॥

**सारार्थदर्शिनी**—*"षड्भिः श्लोकैः कृपामेवं विवृत्य दशभिः पुनः। एकादश नतीश्चक्रुर्भक्त्या कालिययोषितः।"* भक्तेरुपास्यत्वेनाहुः—भगवते अप्राकृतषड्ऐश्वर्यवते। पुरुषाय नराकाराय। महात्मने नराकृत्यापि सर्वव्यापकाय योगिभिरुपास्यत्वेनाहुः सर्वभूतनिवासाय भूताय पूर्वमपि सते॥ ३९॥

**भावानुवाद**—छह श्लोकोंमें श्रीभगवान्‌की कृपाका वर्णनकर कालियनागकी पत्नियाँ अब फिरसे दस श्लोकोंमें भक्तिभावसे श्रीभगवान्‌को नमस्कार कर रही हैं। भक्तिके उपास्य रूपमें वर्णन करते हुए कह रहीं हैं—*'भगवते'* आप अप्राकृत षड्विध ऐश्वर्य आदि गुणोंसे सम्पन्न एवं नराकार हैं। नराकार रूपमें भी सर्वव्यापक आपको नमस्कार है। तत्पश्चात् योगियोंके उपास्यरूपमें वर्णन कर रही हैं—*'भूतावासाय'* आप आकाशादि समस्त भूतोंके आश्रय-स्वरूप हैं, क्योंकि आकाश आदिसे भी पहले आप विद्यमान थे, ऐसे आपको हम प्रणाम कर रही हैं॥ ३९॥

**ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये।**
**अगुणायाविकाराय नमस्ते प्राकृताय च॥ ४०॥**

**अन्वयः**—ज्ञान विज्ञाननिधये (ज्ञान और विज्ञानकी निधि) ब्रह्मणे अगुणाय अविकाराय अनन्तशक्तये प्राकृताय (चिन्मात्र ब्रह्म-स्वरूप, तर्कातीत अनन्त कल्याण गुणसम्पन्न, प्राकृत गुण और विकाररहित, प्रकृतिके प्रवर्त्तक) ते (आपको) नमः (नमस्कार है)॥ ४०॥

**अनुवाद**—आप प्राकृत गुणोंसे रहित निर्गुण हैं। आपमें कोई प्राकृत विकार नहीं होनेके कारण आप निर्विकार हैं। आप भौतिक-प्रकृतिके आदि प्रवर्त्तक एवं ब्रह्म-स्वरूप हैं। आप अनन्त महिमा एवं अचिन्त्यशक्तिसे युक्त हैं। आप परमात्मा-स्वरूप और ज्ञान-विज्ञानकी निधि हैं। हम आपको नमस्कार करती हैं॥ ४०॥

**सारार्थदर्शिनी**—ज्ञानिभिरुपास्यत्वेनाहुः-ज्ञानविज्ञानयोःसम्पर्दोनिधिरिव निधिस्तस्मै। पुनर्भक्तोपास्ये नराकारे तस्मिन्मन्दधीभिः प्रसञ्जितान् गुणविकारादिदोषान् वारयन्त्य आहुः। अनन्तशक्तये अतर्क्यानन्तशक्तिसमुद्राय। अगुणायाविकाराय प्राकृतगुण-विकाररहिताय। अप्राकृताय अप्राकृतगुणविकारसहिताय इत्यर्थः॥ ४०॥

**भावानुवाद**—इस श्लोकमें ज्ञानियोंके उपास्यके रूपमें वर्णन कर रही हैं—*'ज्ञान-विज्ञान-निधये'*—ज्ञान और विज्ञानकी निधिस्वरूप अर्थात् ज्ञान और विज्ञानसे परिपूर्ण आपको प्रणाम है। फिरसे भक्तोंके उपास्य नराकृति-स्वरूपमें मन्दबुद्धिजनोंके द्वारा आरोपित गुण-विकारादि दोषोंका खण्डन करते हुए कह रही हैं—*'अनन्तशक्तये'* आप अनन्त अचिन्त्यशक्तिके समुद्र हैं, आप प्राकृत गुणरहित एवं निर्विकार हैं। अप्राकृत अनन्त शक्तियुक्त आपको नमस्कार है॥ ४०॥

**कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे।**
**विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे॥ ४१॥**

**अन्वयः**—कालाय (काल-स्वरूप) कालनाभाय (कालशक्तिके आश्रय-स्वरूप) विश्वाय (विश्व-स्वरूप) कालावयव साक्षिणे (कालका अवयव अर्थात् सृष्टि आदि समवायके साक्षी-स्वरूप) तदुपद्रष्ट्रे (केवल उनके द्रष्टा ही नहीं, अपितु उनके कर्त्ता भी हैं) विश्वहेतवे (सर्वकारक-स्वरूप अर्थात् सम्पूर्ण विश्वके कारण-स्वरूप आपको नमस्कार है)॥ ४१॥

**अनुवाद**—आप काल-स्वरूप हैं, अर्थात् सृष्टि आदिके कारण हैं एवं कालशक्तिके आश्रय और कालके अवयव, अर्थात् सृष्टि आदि समवायके साक्षी हैं। आप विश्वरूप एवं दृश्य विश्वके द्रष्टा, कर्त्ता और सर्वकारणकारण हैं॥ ४१॥

**सारार्थदर्शिनी**—कालविशेषे देशविशेषे च प्रादुर्भवति तस्मिन् तत्तत्परिच्छेदादि-दोषान् वारयन्त आहुः—कालाय कालस्वरूपाय कालनाभाय कालशक्त्याश्रयाय तथापि कालावयवानां सृष्टादिसमवायानां साक्षिणे एव न तु तेषु सक्ताय। विश्वाय विश्वरूपाय। तहि किं जडोऽहं न ही तदुपद्रष्टे न च द्रष्टृमात्राय किन्तु तत्कर्त्रे। न च कर्तृमात्राय किं विश्वहेतवे विश्वस्य हेतुसमुदायाय॥ ४१॥

**भावानुवाद**—श्रीभगवान्‌का देशविशेष और कालविशेषमें आविर्भाव होनेपर भी देश और कालके द्वारा उनके परिच्छिन्न (आवृत होने) आदि दोषोंको निराकरण करते हुए कह रही हैं—*'कालाय कालनाभाय'* आप काल-स्वरूप और कालशक्तिके आश्रय होनेपर भी सृष्टि आदि समवायके साक्षी-स्वरूप हैं, अतएव आप काल और कालशक्तिमें संलग्न नहीं हैं। *'विश्वाय'*—आप विश्वरूप हैं। यदि कहें कि तब क्या मैं जड़ हूँ? इसके उत्तरमें कहती हैं—*'तदुपद्रष्टे'*, आप विश्वके द्रष्टा हैं। आप केवल द्रष्टा ही नहीं, बल्कि उसके कर्त्ता भी हैं। आप केवल कर्त्ता ही नहीं, बल्कि आप विश्वके भी कारण हेतु सर्वकारण हैं। ऐसे आपको नमस्कार है॥ ४१॥

**भूतमात्रेन्द्रियप्राण-मनोबुद्ध्याशयात्मने ।**
**त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये॥ ४२॥**

**नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते।**
**नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये॥ ४३॥**

**अन्वयः**—भूतमात्रेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने (आप पञ्च महाभूत, पञ्च तन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, पञ्च प्राण, मन, बुद्धि और अहङ्कार, चित्त या अन्तःकरण—इन सभी स्थूल और सूक्ष्म जड़-वस्तुओंको चैतन्य प्रदान करनेवाले) त्रिगुणेनाभिमानेन (एवं त्रिगुणात्मक अभिमानके द्वारा) गूढस्वात्मानुभूतये (चेतनके अंशभूत जीवोंकी स्वरूप अनुभूतिको आच्छादित करनेवाले) अनन्ताय (आप देश, काल, सीमासे अतीत अपरिच्छिन्नस्वरूप) सूक्ष्माय (अदृश्यहेतु दुर्ज्ञेय) कूटस्थाय (एवं विकारशून्य होनेसे कूटस्थ) विपश्चिते (सर्वज्ञ) नानावादानुरोधाय (आप अपनी मायाके द्वारा अस्ति, नास्ति आदि विविध प्रकारके सत् और असत् सिद्धान्तोंके प्रकाशक) वाच्य-वाचक-शक्तये (आप शब्द और अर्थकी

बहुत प्रकारकी शक्तियोंके मूल कारण-स्वरूपमें प्रतीत होते हैं) नमः (ऐसे आपको प्रणाम है)॥ ४२-४३॥

**अनुवाद**—हे भगवन्! आप पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्राएँ, दस इन्द्रियाँ, दस अथवा पाँच प्राण, मन, बुद्धि और अहङ्कार—इन सब स्थूल एवं जड़-वस्तुओंको चेतना प्रदान करनेवाले हैं। त्रिगुणात्मक अभिमानके द्वारा आप अपने चेतन-स्वांशभूत जीवोंके भी स्वरूपकी अनुभूति आच्छादित करते हैं। आप देश, काल एवं सीमासे अतीत, अनन्त हैं। आप दृश्य वस्तुओंमेंसे एक न होनेके कारण दुर्ज्ञेय हैं और विकाररहित होनेके कारण कूटस्थ और सर्वज्ञ हैं। आप अपनी बहिरङ्गा मायाशक्तिके द्वारा "अस्ति—ईश्वर हैं" और "नास्ति—ईश्वर नहीं हैं"—आदि अनेक प्रकारके सत् एवं असत् सिद्धान्तोंके प्रकाशक हैं, आप शब्द एवं अर्थकी बहुत प्रकारकी शक्तियोंके मूल कारणरूपमें प्रतीत होते हैं। हम ऐसे आपको नमस्कार करती हैं॥ ४२-४३॥

**सारार्थदर्शिनी**—न च हेतुमात्रायपि यतो भूतादीनाम् आत्मने चेतयित्रे अतोद्भुतं चरित्रं यतो जडानपि चेतयसि चेतनानपि जडीकरोषीत्याहुः। त्रिगुणो योऽभिमानस्तेन गूढा आवृता शोभना आत्मनो जीवस्याऽनुभूतिर्ज्ञानं येन तस्मै॥ ४२॥

ननु किमत्र तत्त्वं तत्राहुः—अनन्ताय अस्यान्त वयं न प्राप्नुम इत्यर्थः। तत्र हेतुः सूक्ष्माय दुर्ज्ञेयत्वादित्यर्थः। ननु, जीवात्मानं मदभिन्नमेव पण्डिता आहुस्तत् किमहमात्मानमेव मोहयामि तत्र मैवं वादीरित्याहुः—कूटस्थाय *"एकरूपतया तु यः कालव्यापी स कूटस्थः"* इत्यभिधानात् त्वमेकेनैवाप्रच्युत-स्वरूपेण सर्वकालं व्याप्नोषि सः तु देवमनुष्यतिर्यगादिभिरनेकैः प्रच्युतैः स्वरूपैः कञ्चिदेव बाल्यं व्याप्नोतीति कथं त्वदभिन्नः स इति भावः। देवमनुष्यादित्वं वस्तुतो जीवस्य न स्वरूपमिति चेत्तदपि त्वत्तः स भिन्न एवेत्याहुः। विपश्चिते सर्वज्ञाय सत्वल्पज्ञ एव प्रसिद्ध इत्यर्थः। किञ्च, तदपि जीवात्मा इति ईश्वराद्भिन्न इति, जड इति, चेतन इति एक इत्यनेक इत्यादिना नानावादान् अनुरुणत्सि कौतुकाथमवकाशयसीति तस्मै। अत एव त्वदिच्छावशादेव तत्र मिथो दिवादिनो मिथः संवादिनश्च पण्डिताः शब्दमेव प्रमाणीकुर्वन्तीत्याहुः—वाच्यानामर्थानां वाचकानांच शब्दानाञ्च नानाविधाः शक्तयो यस्मात्तस्मै॥ ४३॥

**भावानुवाद**—आप केवल विश्वके कारणमात्र ही नहीं, आकाश आदि पञ्चभूतोंको चेतना अर्थात् ज्ञान प्रदान करनेवाले भी हैं।

इसलिए आपका चरित्र अद्भुत है, क्योंकि आप जड़को भी चेतना प्रदान करते हैं और चेतनको भी जड़ बना देते हैं। इसीको *'त्रिगुणेनाभिमानेन'* इत्यादि द्वारा कर रही हैं—सृष्टिकार्यमें जो त्रिगुणात्मक अभिमान है, उसके द्वारा आप अपने अंशभूत जीवात्माकी अनुभूति अर्थात् तत्त्वज्ञानको आच्छादित करते हैं, ऐसे आपको नमस्कार है। यदि कहें कि इसका क्या कारण हो सकता है? उसके उत्तरमें कह रही हैं—*'अनन्ताय'*—आप अनन्त-स्वरूप हैं, हमलोग आपका अन्त नहीं पा सकती हैं, यह अर्थ है। उसका कारण है—*'सूक्ष्माय'*—आप दुर्ज्ञेय होनेके कारण सूक्ष्म भी हैं। यदि कहें कि विद्वान व्यक्ति जीवात्माको मुझसे अभिन्न मानते हैं। इससे क्या मैं स्वयं ही अपनेको मोहित करता हूँ? इसके उत्तरमें कहती हैं—आप ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि आप कूटस्थ हैं, अर्थात् आप उपाधि द्वारा प्रदत्त विकारसे रहित होनेके कारण कूटस्थ हैं। शब्दकोषमें ऐसा कहा गया है कि जो सदा-सर्वदा सभी कालोंमें एक समान रहते हैं, वे कूटस्थ हैं। आप ही सदा-सर्वदा सभी कालोंमें एक समान रहते हैं, किन्तु जीवात्मा देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि अनेक (विकृत) स्वरूपोंमें बाल्य, यौवन, वृद्धावस्थाको प्राप्त होते हैं। इसलिए जीवात्मा आपसे अभिन्न कैसे हो सकता है? यदि कहें कि देव, मनुष्य आदि वास्तवमें जीवका स्वरूप नहीं हैं, तो भी जीवात्मा आपसे भिन्न ही है। इसे *'विपश्चिते'* द्वारा कह रही हैं—आप सर्वज्ञ हैं, जीवात्मा अल्पज्ञ है, यह प्रसिद्ध है। और भी *'नानावादानुरोधाय'*—जीवात्मा ईश्वरसे भिन्न है, जड़ है, चेतन है, एक है, अनेक है, इत्यादि नाना प्रकारके मतवादोंका अवसर जिन्होंने कौतुकके लिए प्रदान किया है, ऐसे आपको नमस्कार है। अतएव आपकी इच्छानुसार स्वपक्ष और विपक्षके विद्वान लोग शब्दको ही प्रमाणके रूपमें स्वीकार करते हैं। इसीको *'वाचावाचकशक्तये'* द्वारा कह रही हैं—क्योंकि आपसे वाच्य (अर्थ) और वाचक अर्थात् शब्दकी नाना प्रकारकी शक्ति हुआ करती है। अथवा आप वाच्य शक्ति (अभिधेय शक्ति) और वाचक शक्ति (अभिधान शक्ति) के भेदसे भी नाना रूपोंमें प्रतीत होते हैं, ऐसे आपको नमस्कार है॥ ४२-४३॥

**नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये।**
**प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः॥ ४४॥**

**अन्वयः—**प्रमाणमूलाय (आप समस्त प्रमाणोंके मूल-स्वरूप हैं) कवये (और स्वतःसिद्ध ज्ञान-स्वरूप या निरपेक्ष ज्ञानको प्रकाश करनेवाले वेदव्यास-स्वरूप) नमः शास्त्रयोनये (आपसे सम्पूर्ण शास्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है) प्रवृत्ताय निवृत्ताय (आप प्रवृत्ति और निवृत्ति-परक निगम शास्त्र-स्वरूप हैं) नमः नमः (आपको नमस्कार, नमस्कार है)॥ ४४॥

**अनुवाद—**प्रत्यक्ष, अनुमानादि प्रमाणोंको प्रमाणित करनेवाले मूल आप ही हैं। आप स्वतःसिद्ध ज्ञान-स्वरूप हैं। आप ही श्रीमद्भागवत-स्वरूप एवं भागवत्-प्रकाशक वेदव्यास-स्वरूप हैं। आप ही समस्त शास्त्रोंके मूल उद्गम स्थान हैं। आप ही शास्त्र प्रवर्त्तक और प्रवृत्ति एवं निवृत्तिमूलक निगम शास्त्र-स्वरूप हैं। हम आपको बार-बार नमस्कार करती हैं॥ ४४॥

**सारार्थदर्शिनी—**शिष्टशब्दमात्रस्य प्रामाण्येपि श्रीभागवतस्य सर्वाधिक्यमाहुः। प्रमाणमूलाय श्रीभागवतस्वरूपाय कवये तत्कर्त्रे वेदव्यासस्वरूपाय स प्रामाण्यार्थमेव व्यासरूपो भवसीत्याहुः। शास्त्रयोनये अतएव शास्त्रस्य योनये प्रादुर्भावकाय शास्त्रं श्रीभागवतमेव योनिः प्रमाणं यस्य *"शास्त्रयोनित्वा"* दित्यत्रैव व्याख्यानात्। तथा चतुर्वर्गप्रतिपादकं शास्त्रमपि प्रमाणमित्याहुः। प्रवृत्तशास्त्राय निवृत्तशास्त्राय तन्मूलनिगम शास्त्राय॥ ४४॥

**भावानुवाद—**शिष्ट शब्दमात्रकी ही प्रमाणिकता होनेपर भी श्रीमद्भागवतके वचनोंकी सर्वाधिक प्रमाणिकताका वर्णन कर रही हैं—*'प्रमाणमूलाय'* अर्थात् आप समस्त प्रमाणोंके मूल श्रीमद्भागवत-स्वरूप हैं एवं *'कवये'* उसके प्रकाशक वेदव्यास-स्वरूप हैं। आप ही प्रमाण करनेके लिए व्यासके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। *'शास्त्र योनये'* आपसे ही समस्त शास्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है, इसलिए आप शास्त्र-योनि या शास्त्र-प्रवर्त्तक हैं। श्रीमद्भागवत शास्त्र ही योनि है, इसका प्रमाण वेदान्तसूत्र है—*'शास्त्रयोनित्वात्'*। उसी प्रकार ही चतुवर्ग-प्रतिपादक शास्त्र भी प्रमाण हैं। इसे कह रही हैं—आप प्रवृत्तात्मक और

निवृत्तात्मक शास्त्रोंके सार-स्वरूप निगम शास्त्र हुए हैं, आपको नमस्कार है॥ ४४॥

**नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च।**
**प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः॥ ४५॥**

**अन्वयः**—वसुदेव सुताय (वासुदेवको) रामाय (सङ्कर्षणको) प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय सात्वतां पतये कृष्णाय नमः (प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—चर्तुव्यूहात्मक सात्वतपति कृष्णको नमस्कार है)॥ ४५॥

**अनुवाद**—वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध—इस चतुर्व्यूहात्मक सात्वतपति श्रीकृष्णको हम नमस्कार है॥ ४५॥

**सारार्थदर्शिनी**—सर्वशास्त्रप्रतिपादितसारस्वरूपाणि तु तव चत्वार्येवेत्याहुः, नमः इति। चकारान्नन्दसुताय च। सात्वतां सात्वतवंशोत्पन्न शूरादीनां पर्जन्यादीनां च पतये पालकाय॥ ४५॥

**भावानुवाद**—सर्वशास्त्र-प्रतिपादित सार-स्वरूप आपके चार श्रीविग्रह हैं, इसे *'नमः कृष्णाय'* इत्यादि द्वारा कह रही हैं। *'वसुदेव सुताय च'* यहाँ 'च' कारका प्रयोग होनेसे नन्दनन्दन आपको भी नमस्कार करती हैं। *'सात्वतां पतये'*—सात्वत वंशमें उत्पन्न शूर आदि एवं पर्जन्य आदिके पालक आपको हम नमस्कार करती हैं॥ ४५॥

**नमो गुणप्रदीपाय गुणात्माच्छादनाय च।**
**गुणवृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्टे स्वसंविदे॥ ४६॥**

**अन्वयः**—गुणप्रदीपाय (आप बुद्धि आदिके अधिष्ठातृ देवता-स्वरूप सङ्कर्षण आदि चार मूर्त्तियोंमें चित्त आदिके प्रकाशक) गुणात्माच्छादनाय (आप उपासकोंकी प्रतीतिके अनुसार फल वैचित्र्यको प्रदान करनेके लिए अपने स्वरूपको आच्छादितकर विविध रूपोंमें प्रकाशित होते हैं) गुणवृत्त्युपलक्ष्याय (चित्त आदिके अध्यावसाय आदि वृत्तिके द्वारा आप कुछ मात्रामें अनुमित होते हैं) गुणद्रष्ट्रे (आप गुणोंके द्रष्टा) स्व सम्विदे (और प्रत्यक्षादि ज्ञानके अगोचर हैं) नमः (अतएव आपको नमस्कार है)॥ ४६॥

**अनुवाद**—आप बुद्धि आदिके अधिष्ठातृ-स्वरूप सङ्कर्षण आदि चार मूर्त्तियोंमें चित्तादिके प्रकाशक हैं। आप उपासकोंकी प्रतीतिके अनुसार अनेकों प्रकारके फल प्रदान करनेके लिए स्व-स्वरूपको आच्छादित करके नाना रूपोंमें प्रकाशित होते हैं। चित्त आदिकी अध्यवसाय आदि वृत्तिके द्वारा ही आपके स्वरूपका कुछ-कुछ सङ्केतमात्र मिलता है। आप उन गुणोंके द्रष्टा एवं प्रत्यक्ष आदि ज्ञानके अगोचर हैं। अतएव हम आपको नमस्कार करती हैं॥ ४६॥

**सारार्थदर्शिनी**—यतस्तेष्वेव गुणानां प्रेमवश्यत्वादीनां प्रकर्षेण प्रकाशकाय। तथा प्रकाशितेन प्रेमवश्यत्वगुणेन आत्माच्छादनाय आवृतनिजैश्वर्याय। तदपि त्वं भक्तितत्त्वज्ञैर्ज्ञातस्वरूप एव भवसीत्याहुः। गुणस्य भक्तवात्सल्यातिशयस्य वृत्या असाधारणसत्तया उपलक्ष्याय स्वयं भगवन्तं विना कोऽप्येवं न भवतीति ज्ञेयाय। यतो गुणद्रष्ट्रे स्वभक्तस्य गुणमेव पश्यति न तु दोषगन्धमपि यस्तस्मै। अतएव स्वेषु भक्तेष्वेव सम्विदनुभवो यस्य तस्मै॥ ४६॥

**भावानुवाद**—*'गुण प्रदीपाय'*—आप भक्तोंके प्रति प्रेम-वश्यता आदि गुणोंके प्रकाशक हैं एवं उन प्रेम-वश्यता आदि गुणोंके द्वारा अपने ऐश्वर्यको आच्छादित करते हैं, तथापि भक्तितत्त्वके ज्ञाता आपको जान ही लेते हैं। इसे *'गुणवृत्ति उपलक्ष्याय'* द्वारा कह रही हैं। अतिशय भक्तवात्सल्य गुणकी वृत्ति कहनेका तात्पर्य है—असाधारण सत्ता, जिसके द्वारा आप जान लिये जाते हैं। अर्थात् स्वयं-भगवान्‌के बिना ऐसा कोई नहीं हो सकता, इस प्रकारसे आप उनके द्वारा जाने जाते हैं। इसका कारण है कि *'गुणद्रष्टे'* आप अपने भक्तोंका गुण ही दर्शन करते हैं, किन्तु उनका लेशमात्र भी दोष नहीं देखते हैं। अतएव आपके भक्त ही आपका अनुभव करते हैं, ऐसे आपको नमस्कार है॥ ४६॥

**अव्याकृत विहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये।**
**हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने॥ ४७॥**

**अन्वयः**—अव्याकृत विहाराय (अतएव आपकी महिमा तर्कातीत है) सर्वव्याकृत सिद्धये (समस्त कार्योंकी उत्पत्ति और प्रकाशके हेतुके रूपमें केवल अनुमित होते हैं, परन्तु आपका साक्षात्कार नहीं होता

है) [हे] हृषीकेश (इन्द्रियोंके प्रवर्त्तक) मुनये मौनशीलिने ते (मौन और आत्माराम आपको) नमः अस्तु (नमस्कार है)॥ ४७॥

**अनुवाद**—आपकी महिमा तर्कसे अतीत है। आप मूल प्रकृतिमें नित्य विहार करते हैं। स्थूल एवं सूक्ष्म जगत्के कार्योंकी उत्पत्ति एवं प्रकाशके हेतुके रूपमें आपका केवल अनुमान ही किया जाता है। हे हृषीकेश! आप भक्तितत्त्वसे रहित मुनियोंके लिए मौनशील एवं आत्माराम हैं। आपको नमस्कार है॥ ४७॥

**सारार्थदर्शिनी**—लीलापुरुषोत्तमस्य तवलीलामाधुर्याधिक्य-मित्याहुः—अव्याकृतः अनिर्वाच्यत्वादव्युत्पादितः प्राकृतो वा विहारो यस्य तस्मै। यद्वा, न व्याकृतो विवाहादिव्यापाररहित एव विहारो यस्य सः। सर्वेषां भक्तविशेषाणामेव व्याकृतानां तत्सेवोचितविशिष्टाकृतीनां सिद्धिर्यस्मात्तस्मै। अतएव हृषीकेश भक्तसर्वेन्द्रियाकर्षक, भक्तिहीनेषु मुनये आत्मरामाय अतएव तेषु स्वाभीप्सितप्रार्थकेषु सत्सु मौनशीलिने न किमपि ब्रुवते तेभ्यः सुखं दुःखाभावं च न ददते॥ ४७॥

**भावानुवाद**—लीला-पुरुषोत्तम आपकी लीला-माधुरी बड़ी आलौकिक है—इसे *'अव्याकृत विहाराय'* द्वारा कह रही हैं। अनिर्वचनीय अर्थात् जिनका लीला-विहार अप्रकटित या जिनकी लीला प्रपञ्चातीत है, ऐसे आपको हम नमस्कार करती हैं। अथवा विवाह आदिके बिना ही जिनका लीला-विहार है। समस्त भक्तोंके समक्ष उनकी सेवाके योग्य स्वरूपोंकी सिद्धि जिससे होती है, ऐसे आपको प्रणाम निवेदन करती हैं। अतएव हे हृषीकेश! अर्थात् आप भक्तजनोंकी समस्त इन्द्रियोंके आकर्षक हैं। भक्तिहीनजनोंके निकट आप मुनि अर्थात् आत्माराम हैं। उनके द्वारा अभिलषित प्रार्थना करनेपर भी आप मौन रहते हैं, कुछ नहीं कहते हैं। अथवा उन्हें न तो सुख प्रदान करते हैं, और न ही उनका दुःख दूर करते हैं॥ ४७॥

**परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः।**
**अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे॥ ४८॥**

**अन्वयः**—परावरगतिज्ञाय (आप स्थूल-सूक्ष्म गतिको जाननेवाले) सर्वाध्यक्षाय (सबके अधिष्ठाता-स्वरूप) अविश्वाय (विश्वसे अतीत)

विश्वाय (विश्व-स्वरूप) तद्द्रष्ट्रे (विश्व-नियन्ता) अस्य हेतवे (इस विश्वके कारण) ते (आपको) नमः (नमस्कार है)॥४८॥

**अनुवाद**—आप स्थूल एवं सूक्ष्म भूतसमूहकी गतिको जाननेवाले हैं। आप सर्वाधिष्ठाता हैं, आप विश्वसे अतीत तथा विश्वरूप भी हैं, आप विश्व नियन्ता एवं विश्वके कारण हैं। ऐसे आपको हम नमस्कार करती हैं॥४८॥

**सारार्थदर्शिनी**—यतः परेषामुत्कृष्टानां भक्तानाम् अवरेषां निकृष्टानामभक्तानां च गतिं प्राप्यं जानते। सर्वाध्यक्षाय सर्वफलाध्यक्ष्यत्वात् ज्ञात्वा तत्तत्समुचितफलस्य दात्रे इत्यर्थः। कर्मफलदातृत्वेऽपि न तव कर्मसम्बन्धः। यतोऽविश्वाय प्रपञ्चातीताय तदपि मायाशक्त्या विश्वाय समये विश्वं स्राष्टुं तस्य विश्वस्य द्रष्ट्रे तथैवास्य विश्वस्य हेतुं प्रधानं च चेतयितुं विकारयितुं वा तस्य द्रष्ट्रे *"क्रियार्थोपपदस्य"* इत्यादिना चतुर्थी॥४८॥

**भावानुवाद**—*'परावरगतिज्ञाय'*—पर अर्थात् उत्तमभक्तोंके एवं अवर अर्थात् निष्कृष्ट अभक्तोंके प्राप्य विषयको आप जानते हैं। *'सर्वाध्यक्षाय'*—आप सर्वफलाध्यक्ष हैं, इसलिए आप उनके समुचित फलदाता भी हैं—यह अर्थ है। परन्तु कर्मफलके दाता होकर भी आपका कर्मोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि आप प्रपञ्चातीत हैं। फिर भी आप मायाशक्तिके द्वारा समयपर विश्वकी सृष्टि करते हैं, इसलिए आप विश्वके कारण एवं द्रष्टा भी हैं। अर्थात् विश्वके हेतु—प्रधानको चेतना प्रदान करनेमें अथवा विकार प्राप्त करानेमें आप उनके दृष्टा हैं। आप स्वरूपतः विश्वसे पृथक् होकर भी विश्व-स्वरूप, विश्वके द्रष्टा एवं विश्वके कारण हैं। हम आपको नमस्कार करती हैं॥४८॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—कालियनागकी पत्नियाँ श्रीकृष्णसे प्रार्थना करने लगीं—"हे भगवन्! आप अचिन्त्यशक्ति-निकेतन हैं। आपकी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे कुछ भी असम्भव नहीं है, अथवा आपकी अनन्त शक्तियोंमें परस्पर कोई विरोध नहीं है। आप अनन्त ब्रह्माण्डोंमें और अनन्त जीवोंके हृदयमें वर्त्तमान रहकर भी अपरिच्छिन्न है।" *"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"* आदि श्रुतिवाक्योंमें आपकी अपरिच्छिन्नता एवं

*"तत्सृट्वा तदेवानुप्राविशत्"*—अर्थात् श्रीभगवान्‌ने जगत्‌की सृष्टिकर अन्तर्यामीरूपमें उसमें प्रवेश किया, आदि श्रुतिवाक्योंमें आपके अन्तर्यामी होनेका परिचय मिलता है। जो अपरिच्छिन्न (असीम) है, वह कभी भी कहीं भी प्रवेश नहीं कर सकता, किन्तु आप अपनी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डव्यापी होकर भी ब्रह्माण्डके भीतर और ब्रह्माण्ड-स्थित अनन्त जीवोंके हृदयमें अनुप्रविष्ट हैं। आपकी अपरिच्छिन्नता ही सत्य है, परन्तु अन्तर्यामीरूपमें जीवोंके हृदयमें आपके प्रवेशको मायिक, औपाधिक या भ्रम-कल्पित भी नहीं कहा जा सकता है। इसलिए आपकी अचिन्त्यशक्तिका ही ऐसा प्रभाव है। आकाशादि पञ्चभूत आपकी ही मायाशक्तिके विकार हैं, अतएव वे आपसे पृथक् नहीं हैं। अनन्त जीव भी आपके ही अंश हैं, अतएव वे भी आपसे पृथक् नहीं हैं। आप समस्त भूतोंके आश्रय होकर भी सर्वभूत-स्वरूप एवं समस्त जीवोंके नियन्ता होकर भी सर्वजीव-स्वरूप हैं। आपके लिए सब कुछ सम्भव है, क्योंकि आप सर्वभावसे अवस्थित हैं, आप सर्वात्मक हैं। आप 'पर' अर्थात् जगत्‌के कारण हैं, फिर भी आप 'परमात्मा' अर्थात् कारणातीत हैं। जगत्‌के स्वरूपकी आलोचना करनेपर उसके कारणके रूपमें आपको ही ग्रहण करना पड़ता है। इस प्रकार आपकी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे आपका कारणत्व और कारणातीतत्व दोनों ही सम्भवपर है।

"हे भगवन्! आप काल-स्वरूप कालचक्रके प्रवर्त्तक हैं। काल-अवयव अर्थात् कालसृष्ट क्षण, दण्ड, प्रहर, मास, वत्सर, युग, कल्प आदिके आप ही स्रष्टा और द्रष्टा हैं। अतएव आपके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। आप सर्वेश्वर, सर्वाधार हैं। आपकी प्रेरणासे सभी प्रेरित होते हैं, किन्तु आप निश्चल, निश्चेष्ट हैं, फिर भी आप विचित्र लीलामय हैं। यह परिदृश्यमान विश्व आपकी ही मूर्त्ति है। आपके विराट विग्रहमें अनन्त करोड़ ब्रह्माण्ड अवस्थित हैं। आप ही विश्वके निर्माता और आप ही विश्वके उपादान हैं। आप अनन्त अर्थात सर्वव्यापी होकर भी अति सूक्ष्म हैं।" *"अणोरणीयान् महतो महीयान्"* आदि श्रुतिवचनोंसे आप एक ओर अणु एवं दूसरी ओर परम महान हैं। इस परिदृश्यमान जगत्‌में देखा जाता है कि जो

अणु है, वह अणु ही है और जो बृहत् है, वह बृहत् ही है। अणुमें बृहत्वका समावेश नहीं हो सकता, परन्तु आपकी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे आपमें कुछ भी असम्भव नहीं है। आपने मैया यशोदाकी गोदमें गोप-शिशुके रूपमें अपने मुखमें अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डोंको दिखलाकर अपनी इस अचिन्त्य महाशक्तिका परिचय दिया है।

"हे भगवन्! आप ही समस्त प्रमाणोंके मूल हैं। आपकी शक्तिसे ही प्रमाणोंसे यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। आपके स्वरूपको जानने, आपके स्वरूपको निर्द्धारण करने और उससे सम्बन्धित युक्ति तर्क आदिकी अवतारणासे लेकर व्यवहारिक जगत्के सभी कार्य किसी-न-किसी प्रमाणके द्वारा साध्य होते हैं।"

जिससे यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है, वही प्रमाणके रूपमें शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है। (*प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम्।*) प्रमाणके बिना यथार्थ ज्ञान नहीं होता है और किसी-की-किसी भी कार्यमें प्रवृत्ति नहीं होती है। जैसे कोई व्यक्ति सामने धन-रत्न आदि पड़ा हुआ देखकर आग्रहके साथ ग्रहण करनेके लिए जाता है। कोई किसी हिंसक प्राणीको देखकर भाग जाता है; जिसे आगकी आवश्यकता है, वह धुआँ देखकर उधर ही बढ़ता है। वनपथके पथिकजन वनवासियोंके मुखसे 'इधर वनमें बाघ है' सुनकर भयके कारण लौट जाते हैं।

हरिनाम-कीर्त्तनसे सभी पाप क्षीण हो जाते हैं, समस्त अनर्थ दूर होते हैं, परम प्रेमका प्रकाश होता है, इत्यादि शास्त्रोंके वचनोंको सुनकर ही साधक साधनमें प्रवृत्त होता है। इस प्रकार सभी व्यवहार प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द आदि प्रमाणोंके द्वारा सम्पन्न होते हैं। उसमेंसे नेत्र, कर्ण आदि इन्द्रियोंके द्वारा जो यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है, वही प्रत्यक्ष ज्ञान है एवं चक्षु, कर्ण आदि इन्द्रियाँ उस प्रत्यक्ष ज्ञानकी जनक होनेसे वह प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसी प्रकार अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और ऐतिह्य आदि प्रमाण विविध दर्शनादि शास्त्रोंमें देखे जाते हैं एवं दार्शनिकोंने उनके यथायथ लक्षणोंका विचार आदि भी किया है। युक्ति और धारणाके अनुसार दार्शनिकोंमेंसे किसीने एक, किसीने दो, किसीने तीन और किसीने उससे भी अधिक प्रमाणोंको स्वीकार किया है। इस प्रकार दस प्रमाणोंको

दार्शनिकोंने ग्रहण किया है। *"यद्यपि प्रत्यक्षानुमानशब्दार्षोपमानार्थापत्त्यभाव सम्भवैतिह्यचेष्टाख्यानि दश प्रमाणानि विदितानि, तथापि भ्रम-प्रमाद-विप्रलिप्सा-करणापाटव दोषरहित वचनात्मकः शब्द एव मूलं प्रमाणम्॥"* अर्थात् गौड़ीय वैष्णवदर्शनाचार्य श्रीलजीव गोस्वामीने अपनी सर्वसम्वादिनी टीकामें कहा है—यद्यपि विभिन्न दार्शनिकोंके विचारोंके अनुसार प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, ऋषि-वाक्य, उपमान, अर्थापत्ति, अभाव, सम्भव, ऐतिह्य एवं चेष्टा—ये दस प्रकारके प्रमाण है, फिर भी भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा (वञ्चना करनेकी इच्छा) और करणापाटव (इन्द्रियोंकी अपटुता)—इन चार प्रकारके दोषोंसे रहित रचनात्मक शब्द अर्थात् वेद आदि शास्त्र-वचन ही मूल प्रमाण हैं।

प्रमाणके विषयमें दार्शनिक आचार्योंमें कोई भी मतभेद क्यों न हो, श्रीलजीव गोस्वामीके कथनसे जाना जाता है कि दार्शनिक सम्प्रदायमें कुल दस प्रमाण स्वीकृत हुए हैं। इनमेंसे सभी दार्शनिकोंके द्वारा सभी प्रमाण स्वीकृत नहीं होनेपर भी प्रमाणोंका अस्तित्व सभी स्वीकार करते हैं। कालियकी पत्नियोंने श्रीभगवान्‌से यही कहा—"हे भगवन्! आप ही समस्त प्रमाणोंके मूल हैं। आपकी शक्तिसे ही यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है।" *"चक्षुषश्चक्षुः उत श्रोत्रस्य श्रोत्रम्"* आदि श्रुतिवचनोंसे जाना जाता है कि भगवान् नेत्रोंके भी नेत्र और कर्णोंके भी कर्ण हैं। उनकी शक्ति-सञ्चारके बिना चक्षु अपनी शक्तिसे कुछ भी देख नहीं सकते या कर्ण अपनी शक्तिसे सुन नहीं सकते। इस प्रकार अनुमान आदि प्रमाणसमूह आपकी शक्तिके बिना यथार्थ ज्ञान उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं हैं। ये सभी प्रमाण जीवके यथार्थ ज्ञान प्राप्तिके लिए एकमात्र कारण हैं, किन्तु आप समस्त प्रमाणोंके बिना ही सर्वदा सर्व-विषयक यथार्थ ज्ञानसे परिपूर्ण हैं। *"अपाणि पादो जवनोग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः"* आदि श्रुतिवाक्योंसे जाना जाता है कि आप चक्षुकी सहायताके बिना भी दर्शन करते हैं एवं कर्णकी सहायताके बिना भी श्रवण करते हैं। आप सर्वप्रमाण-स्वरूप, निरपेक्ष, स्वतःसिद्ध ज्ञानवान हैं। विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायोंमें प्रत्यक्ष आदि दस प्रकारके प्रमाण स्वीकृत होनेपर भी प्रत्यक्ष आदि किसी भी प्रमाणके द्वारा श्रीभगवान्‌का स्वरूप नहीं जाना जा सकता या

भगवत्-प्राप्तिके साधन-अनुष्ठानके विषयमें यथार्थ ज्ञान नहीं मिलता है। एकमात्र शास्त्र ही इस विषयमें यथार्थ और अभ्रान्त प्रमाण हैं। वेद-पुराणादि समस्त शास्त्र श्रीभगवान्‌से ही प्रकाशित हुए हैं एवं उन्हींके अनुग्रहके दान हैं। *"अस्यैव महतो भूतस्य निःश्वसित मेतद्ऋग्वेदः सामवेद"* आदि श्रुतिवाक्योंसे जाना जाता है कि वेद-पुराणादि सभी शास्त्र श्रीभगवान्‌के निःश्वाससे निकली हुई वाणी हैं। इस प्रकार कालियकी पत्नियोंने श्रीभगवत्-स्वरूपकी अचिन्त्य, अनन्तशक्तिके विषयमें वर्णनकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर उनके श्रीविग्रहके अचिन्त्य वैभवका स्मरणकर कहा—"हे भगवन्, आप परममोहन नन्दनन्दनके स्वरूपमें कालियके मस्तकपर विराजमान हैं। आपका यह श्रीविग्रह ही विभिन्न धामोंमें विभिन्न मूर्त्तियोंमें प्रकाशित है। आप ही वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इस चतुर्व्यूहके रूपमें वैकुण्ठ आदि धामोंमें अवस्थित हैं।" यद्यपि श्रीभगवान्‌की मत्स्य, कूर्मादि अनन्त मूर्त्तियाँ हैं, तथापि स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण वासुदेव आदि चतुर्व्यूहके रूपमें मथुरामण्डलमें अवतीर्ण हुए हैं।

इस परम मधुर व्रजलीलामें आप अपनी प्रेम-वश्यतादि गुणोंको प्रकाश करते हैं, इसलिए आप गुण-प्रदीप हैं। (*गुणान् प्रेमवश्यतादीन प्रदीपयति प्रकाशयतीति तथा*) व्रजलीलामें आप भक्ताधीनता, प्रेमवश्यता आदि गुणोंके द्वारा अपना स्वरूप-ऐश्वर्य आच्छादित रखते हैं। इसलिए व्रजके गोप और गोपियाँ आपको सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान तथा विश्व-नियन्ताके रूपमें नहीं जानते। वे नन्दनन्दनरूपमें ही आपकी असमोर्ध्व माधुर्य-राशिका आस्वादन करते हैं। हे भगवन्! आपकी लीला आपके लिए ही सम्भव है। आप अपनी अचिन्त्य महाशक्तिके प्रभावसे सभी कुछ कर सकते हैं, हम क्षुद्रसे भी क्षुद्र हैं, आपके श्रीचरणोंमें हमारा बार-बार प्रणाम स्वीकार हो॥ ३९-४८॥

**त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान् विभो,**
**गुणैरनीहोऽकृत कालशक्तिधृक्।**
**तत्तत्स्वभावान् प्रतिबोधयन् सतः,**
**समीक्षयामोघविहार ईहसे॥ ४९॥**

**अन्वयः**—(हे) विभो! अनीहः (निष्क्रिय होकर भी) त्वं अकृतकालशक्तिधृक् (आप अनादि कालशक्तिधारी होकर) सतः (प्रधानके प्रति) समीक्षया (दृष्टि डालते हुए) गुणैः (सत्त्व, रजः, तमोगुणके द्वारा) अमोघ विहारः (अव्यर्थ चेष्टापरायण होकर) अस्य (पूर्व कल्पके पश्चात् लयप्राप्त विश्वके जीवोंके) तत्तत् स्वभावान् (शान्त, घोर, मूढ़त्व आदि उन पूर्व स्वभावोंको) प्रतिबोधयन् (फिरसे जगाते हुए) हि जन्मस्थिति संयमान् (इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति, संहार आदि) ईहसे (करते हैं)॥ ४९॥

**अनुवाद**—हे प्रभो! अनादि कालशक्तिधारी आप निष्क्रिय होकर भी प्रधानके प्रति ईक्षणपूर्वक पूर्व कल्पके अन्तमें लयप्राप्त विश्वगत जीवोंके शान्त, घोर, मूढ़ आदि पूर्व स्वभावोंको गुणोंके द्वारा जाग्रत करके इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति एवं संहारादि करते हैं। प्रकृतिके प्रति ईक्षणरूप आपकी लीला अव्यर्थ एवं अमोघ है॥ ४९॥

**सारार्थदर्शिनी**—स्वसृष्ट्या प्रधानं चेतनयुक्तं विकृतं च कृत्वा मम किं फलमिति चेत्तत्राहुः-त्वमिति। सतः प्रधानस्य समीक्षया अस्य विश्वस्य पूर्वंकल्पान्ते तत्रैव लीनस्य तत्तत्स्वभावान् तांस्तान् संस्काररूपेण सतः स्वभावान् घोरत्वादीन् प्रतिबोधयन् जन्मादीन् गुणैरज-आदिभिः ईहसे करोषि। गुणानां कर्तृत्वस्य त्वय्युपचाराद्वस्तुतस्तु त्वमनीहः, अकृता क्षणादिर्या कालशक्तिस्तां धारयतीति सः एवञ्च प्रधानगत ईक्षणरूपस्तव विहारोऽमोघः॥ ४९॥

**भावानुवाद**—यदि कहें कि प्रधानको चेतनायुक्त और विकृत करनेसे मेरा क्या लाभ है? इसपर कह रही हैं—*'सतः समीक्षया'*—प्रधानके प्रति ईक्षणकर पूर्व कल्पके अन्तमें प्रकृतिमें लीन हुए जीवोंके संस्कारोंके रूपमें वर्तमान घोरत्व आदि स्वभावको जाग्रतकर, *'गुणैः'*—रज आदि गुणोंके द्वारा इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं। गुणोंका कर्त्तृत्व आपमें उपचारित होनेपर भी वास्तविक रूपमें आप निष्क्रिय हैं। *'अकृतकालशक्तिधृक्'*—आप अनादिसिद्धा कालशक्तिको धारण करते हैं, अतएव प्रकृतिमें ईक्षणरूप आपकी लीला अव्यर्थ है॥ ४९॥

**तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां**
**शान्ता अशान्ता उत मूढयोनयः।**
**शान्ताः प्रियास्ते ह्यधुनार्वितुं सतां**
**स्थातुश्च ते धर्म्मपरीप्सयेहतः॥५०॥**

**अन्वयः**—तस्य एव ते (जगत्-स्रष्टाके) त्रिलोक्यां शान्ताः अशान्ताः उत (इस त्रिलोकीमें शान्त, अशान्त और) मूढयोनयः तनवः (मूढ़योनियाँ सभी आपके अंश है) धर्मपरीप्सया (फिर भी धर्मरक्षा करनेकी अभिलाषासे) ईहतः (चेष्टायुक्त एवं) सतां (साधुओंका) अवितुं (पालन करनेके लिए) अधुना स्थातुः च (वर्त्तमान रूपमें अवस्थित) ते (आपके) हि (निश्चित रूपसे) ते शान्ताः (शान्तगण ही) प्रियाः (प्रिय होते हैं)॥५०॥

**अनुवाद**—त्रिलोकीमें शान्त, अशान्त और मूढ़ सभी योनियाँ आपकी अंश हैं। तथापि इस समय धर्मकी रक्षाकी इच्छासे चेष्टायुक्त एवं सज्जनोंके पालनके लिए अवतीर्ण आपको निश्चित् रूपसे शान्तगण ही प्रिय हैं॥५०॥

**सारार्थदर्शिनी**—केनाभिप्रायेणैवं स्तुध्वे इति चेत् तत्राहुः—तस्यैव पुर्वोक्तलक्षणस्य तव विश्वहेतुत्वाद्विश्वरूपस्य अमूः शान्ताद्यास्तनवः शान्तादिस्भावान् त्वमेव प्रतिबोधयसि चेत्तत्र घोरस्वभावोऽयं कालियः स्वस्वभावं क्रौर्य कथं त्यक्तुं शक्नोत्विति भावः। तथापि तवाधुना शान्ताः प्रियाः। कुतः? सतां धर्मपालनेच्छया ईहतः प्रवर्तमानस्य अतस्तानवितुं स्थातुः स्थितस्य॥५०॥

**भावानुवाद**—यदि कहें कि किस अभिप्रायसे तुम ऐसा स्तव कर रही हो? उसके लिए कह रही हैं—*'तस्यैव'*—त्रिलोकीमें वर्त्तमान ये शान्त, अशान्त और मूढ़योनि (सात्त्विक, राजसिक और तामसिक) सभी विश्वके परम कारणत्वहेतु विश्वरूपी आपके ही शरीर हैं, उनके शान्त आदि स्वभावोंको आप ही जाग्रत करते हैं। अतः यह घोर स्वभाववाला कालियनाग अपनी स्वाभाविक क्रूरता परित्याग करनेमें कैसे समर्थ हो सकता है? तथापि इस समय सात्त्विकभावसम्पन्न-जन ही आपके प्रिय हैं, क्योंकि आप साधुओंके धर्मका प्रतिपालन करनेकी

इच्छासे प्रवृत्त होकर उनकी रक्षा करनेके लिए ही अवतीर्ण हुए हैं॥ ५०॥

**अपराधः सकृद्भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः।**
**क्षन्तुमर्हसि शान्तात्मन् मूढस्य त्वामजानतः॥ ५१॥**

**अन्वयः**—हे शान्तात्मन्! भर्त्रा (हमारे पालनकर्त्ता) स्वप्रजाकृतः (आपके पुत्रतुल्य पाल्य) अपराधः (इस सर्पने जो अपराध किया है) सकृत् (एकबार) सोढव्य (सहन करने योग्य है) मूढस्य (क्योंकि तामसिक जातिके स्वभावके कारण ज्ञानहीन) त्वां अजानताः (यह आपकी अद्भुत लीला आदिको नहीं जानता) क्षन्तुं अर्हसिः (अतएव यह क्षमाके योग्य है)॥ ५१॥

**अनुवाद**—हे शान्तात्मन्! हमारे पालनकर्त्ता तथा आपके पुत्रतुल्य पाल्य इस सर्पने जो अपराध किया है, उसे आपको एक बार सहन कर लेना चाहिये। यह मूढ़ आपके प्रभावको जानता नहीं है, अतः इसका अपराध क्षमा योग्य है॥ ५१॥

**सारार्थदर्शिनी**—अतः शान्तलोकविप्रियकारित्वलक्षणोऽस्यापराधोऽभूदेव स च सकृत् सोढव्य इति। अधुना दण्डयित्वा शिक्षितोऽप्ययं त्वदीयशान्तजनेषु यदि पुनरप्यपराध्यति तदा न सोढव्य इति भावः। क्षन्तुमर्हसीत्यर्थपौनरुक्त्यमतिवैयग्र्यव्यञ्जकं क्षन्तुमित्यपराधमिति शेषः। शान्तात्मन्निति क्षन्तृत्वे हेतुः मूढस्याजानत इति क्षन्तव्यत्वे हेतुः॥ ५१॥

**भावानुवाद**—इस नागराजने शान्त लोगोंके प्रति अप्रिय कार्य करके अपराध किया है। आप कृपा करके अपने पुत्रके किये हुए अपराधको एकबार सहन करें। अब आपके द्वारा दण्ड प्राप्तकर नागराजने शिक्षा प्राप्त की है। यदि यह पुनः आपके साधुओंके प्रति अपराध करे, तो आप इसे अवश्य दण्डित करें। यहाँ *'क्षन्तुमर्हसि'* का अर्थ है—यह आपके क्षमा योग्य है। अत्यन्त व्यग्रताके कारण यहाँ पुनरुक्ति हुई है—अपराध क्षमा करें, यही अर्थ है। हे *'शान्तात्मन्'*—यह सम्बोधन क्षमा करनेके लिए हुआ है। यह कालियनाग मूढ़ अज्ञ है—यही उसके द्वारा क्षमा प्राप्त करनेका हेतु जानना होगा॥ ५१॥

**अनुगृह्णीष्व भगवन् प्राणांस्त्यजति पन्नगः।**
**स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम्॥ ५२॥**

**अन्वयः**—[हे] भगवन्! अनुगृह्णीष्व (अनुग्रह करें) पन्नगः (आपके भारसे पीड़ित होकर यह सर्प) प्राणान् त्यजति (प्राण त्याग कर रहा है) साधुशोच्यानां (साधुओंकी अनुकम्पाकी पात्र) स्त्रीणां नः (हम सब स्त्रियोंको) पतिप्राणः (पतिरूप प्राण) प्रदीयताम् (प्रदान करें)॥ ५२॥

**अनुवाद**—हे भगवन्! अनुग्रह कीजिये। आपके भारसे प्रपीड़ित होकर यह सर्प मरने ही वाला है। साधुपुरुष सदा-सर्वदा हम जैसी अबलाओंपर अनुग्रह करते हैं। अतः आप हमें हमारे प्राण-स्वरूप पतिको दे दीजिये॥ ५२॥

**सारार्थदर्शिनी**—ननु, चिकित्सास्य साध्वेव कृता रोगो गत एव, किन्तु रोगशेषदूरीकरणार्थं सप्ताष्टाः पार्ष्णप्रहारा अवशिष्यन्ते तेषु सम्मतिर्दीयतामित्यत आहुः—अनुगृह्णीष्वेति। सदोषशेषोऽनुग्रहामृतप्रदानेनैव नाशनीयोः नतु दण्डतीव्रौषधपायनेन। यतोऽसौ सम्प्रति प्राणांस्त्यजति, ननु, त्यजतु प्राणान् किमनेन विगीतेन सर्पशरीरेण अतः परं दिव्यदेहो मद्भक्त एव भविष्यति तत्राहुः—स्त्रीणामिति सुन्दरीणामस्माकं वैधव्ये सति कश्चिदन्यः पापिष्ठः सर्पो बलात् कामयिता भविष्यतीत्यतः शोच्यानामस्माकमयमेव सम्प्रतुत्यत्पन्नवैष्णवताकत्वात् प्राणः स्नेहास्पदीभवन् प्राणतुल्यः॥ ५२॥

**भावानुवाद**—यदि कहें कि मैं इसके अहङ्काररूपी रोगकी चिकित्सा कर रहा हूँ। विशेषकर इसका रोग प्रायः दूर हो चुका है, जो कुछ बचा रह गया है, उसे भी दूर करनेके लिए इसके सिरपर सात-आठ पादप्रहार करने बाकी रह गये हैं। अतः यदि तुमलोग सहमति प्रदान करती हो, तो इसका रोग पूर्ण रूपसे समाप्त कर दूँ। इसके उत्तरमें कह रही हैं—हे भगवन्! आप अनुग्रह करें। आप अनुग्रहरूपी अमृत प्रदानकर इसके अवशिष्ट गर्वरोगको भी दूर करें, परन्तु और अधिक दण्डरूप कड़वी औषधि सेवन कराकर रोग मुक्त न करें। इसका कारण है कि अब यह सर्प प्राण-त्याग करनेवाला ही है। यदि कहें कि इसका प्राण-त्याग करना ही युक्ति-सङ्गत है, क्योंकि निन्दनीय सर्प-शरीर द्वारा इसका क्या कल्याण होगा? इसके

बाद दिव्य देहधारी होकर यह मेरा भक्त ही होगा। उसके उत्तरमें कह रही हैं—हम स्त्री जाति एवं सुन्दरी हैं। विशेषकर हमारे विधवा हो जानेपर दूसरा कोई पापिष्ठ सर्प आकर बलपूर्वक हमारा सतीत्व नष्ट कर देगा। इस भयसे हम कातर हो रही हैं। और फिर यह नागराज अब परम वैष्णव हो गया है, इसलिए अब यह हमारे लिए प्राण-तुल्य प्रिय हो गया है। अतएव आप हमारे प्रिय पतिको न मारें, हमें इसके प्राणोंकी भिक्षा प्रदान करें॥ ५२॥

**विधेहि ते किङ्करीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया।**
**यच्छ्रद्धयानुतिष्ठन् वै मुच्यते सर्वतो भयात्॥ ५३॥**

**अन्वयः**—तव आज्ञया (आपके आदेशसे) श्रद्धया यत् कर्म (श्रद्धापूर्वक जिस कर्मका) अनुतिष्ठन् (अनुष्ठानकर) [जीव] वै (निश्चित् रूपसे) सर्वतः भयात् मुच्यते (समस्त भयोंसे मुक्त होता है) ते किञ्करीणां (आपकी दासीस्वरूपा हमें) अनुष्ठेयं (वैसे कर्मका आचरण करनेके लिए) विधेहि (आदेश करें)॥ ५३॥

**अनुवाद**—हे भगवन्! आपके आदेशसे जीव श्रद्धापूर्वक जिन सेवाओंको करके समस्त प्रकारके भयसे मुक्त होता है, आप अपनी दासी हमलोगोंके प्रति भी वैसे सेवा-कार्यका आदेश प्रदान कीजिये॥ ५३॥

**सारार्थदर्शिनी**—भवत्वयं युष्मभ्यं पतिर्दत्त एव किन्तु यन्मया आदिश्यते तत्कर्तव्यमिति तत्र ससम्भ्रममवश्यमेवेत्याहुः—विधेहीति। तच्चेतःस्थानादन्यत्र शीघ्रं यातेत्यग्रे व्यक्तीभविष्यति॥ ५३॥

**भावानुवाद**—भगवान् यदि कहें कि अच्छा, मैं तुम्हारे पतिको प्राण दान देता हूँ, किन्तु मैं जो आदेश करूँगा, क्या तुम लोग उसका पालन करोगी? मानो यह बात सुनकर नम्रतापूर्वक नागपत्नियाँ कहने लगीं—अवश्य ही हम उसका पालन करेंगी, आज्ञा करें। वह आदेश है—यहाँसे शीघ्र ही अन्यत्र प्रस्थान करो। यह आगे व्यक्त होगा॥ ५३॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता श्रीनन्दनन्दनने कालियके प्रति जो दण्ड विधान किया है, उसे कालियकी पत्नियोंने पूर्ण रूपसे

स्वीकार किया एवं उसे न्यायसङ्गत मानकर श्रीकृष्णकी अचिन्त्य महाशक्तिके वैभवका कीर्त्तन करती हुईं पुनः-पुनः श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रणाम करने लगीं। कालियकी पत्नियोंने *'नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने'* आदि दस श्लोकोंमें श्रीकृष्णके पचपन विशेषणोंका वर्णन करते हुए कृष्णमाहात्म्यको प्रकाश किया है।

*विशेषणैरसंकीर्णैः पञ्चपञ्चाशतानुतः।*
*अहिस्त्रीभिः प्रसन्नो वस्तासामिव भवेद्धरिः॥*

(श्रीधरस्वामि)

श्रीधरस्वामिपादने कालियकी पत्नियोंके द्वारा दस श्लोकोंमें किये गये प्रणामकी व्याख्या करनेके पश्चात् अन्तमें कहा है—कालियकी पत्नियोंने पचपन विशेषणोंके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति करके जिस प्रकार उन्हें प्रसन्न किया, उसी प्रकार जो व्यक्ति कालियकी पत्नियोंके द्वारा की गयी इस कृष्ण-स्तुतिका पाठ करेंगे, श्रीकृष्ण उनके प्रति भी वैसे ही प्रसन्न होंगे।

कालियकी पत्नियाँ भगवान्से कहने लगीं—"हे भगवन्! आपके द्वारा प्रकृतिमें ईक्षण (प्रेरणा) करनेपर महत्तत्व आदिके क्रमसे अनन्त ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि होती है एवं जीवोंकी पूर्व सृष्टिके कर्म संस्कारोंके जाग्रत होनेके कारण यथायोग्य देह और स्वभाव आदि प्राप्त होता है। इसमें आप कोई पक्षपात नहीं करते। अथवा—*'सताः समीक्षया'* अर्थात् पूर्वकल्पगत साधकभक्तोंको देखनेके लिए आप प्रकृतिमें ईक्षण करके ही जगत्की सृष्टि करते हैं एवं पूर्व जन्मकृत संस्कारोंके साथ आपके भक्तगण जगत्में जन्म-ग्रहणकर आपके चरणकमलोंका भजन करते हैं एवं आप भी उनका पालन करते हैं और महाप्रलयमें फिरसे आप सबको प्रलय-निद्रामें सुलाकर अपनेमें स्थापन कर लेते हैं। संसारमें देखा जाता है कि स्नेहमयी जननी जिस प्रकार सोते हुए पुत्रको जगाकर दुग्ध पान कराती है, विविध प्रकारसे उसका लालन-पालन आदि करती है एवं समयपर अपने पुत्रको गोदमें धारण करती है और शयन कराती है, उसी प्रकार आप भी प्रलय-रात्रिके अन्त होनेपर अपने भक्तोंको जगाकर उन्हें यथायोग्य कृपामृतका आस्वादन कराते हैं और अनेकों प्रकारसे उनका पालन-पोषणादि

करते हैं, फिर प्रलय-रात्रिके आनेपर उन्हें गोदमें धारणकर अनन्त शय्यामें शयन करते हैं।

"हे भगवन्! आप विराट् रूपमें अनन्त ब्रह्माण्डोंको अपने अङ्गमें धारणकर अवस्थान करते हैं। जगत्के सभी जीव एवं समस्त प्रकारकी वस्तुएँ आपकी उस विराट् देहके अन्तर्गत रहती हैं। यद्यपि पूर्व-पूर्व जन्मोंके कर्म-संस्कारके अनुसार कोई जीव शान्त प्रकृतिके, कोई जीव अशान्त प्रकृतिके और कोई जीव मूढ़ प्रकृतिके होकर जन्म-ग्रहण करते हैं, फिर भी वे सभी आपकी विराट् विभूतिके अन्तर्गत हैं। इसलिए उनके स्वभावके लिए वे किसी प्रकार उत्तरदायी नहीं हैं। अतः कोई भी आपका प्रिय या अप्रिय नहीं है। तथापि किसीपर आपका अनुग्रह और किसीके प्रति आपका दण्ड देखा जाता है। परन्तु विचार करके देखनेपर आपका अनुग्रह और दण्ड एक ही समान बोध होते हैं। जो असुर प्रकृति जीव आपके दण्डसे मारे जाते हैं, वे भी अन्तमें भवबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। अतएव आपके लीलाके तत्त्व और उद्देश्यको न तो कोई समझ पाता है और न ही हृदयङ्गम कर पाता है। हे भगवन्! इस बार आप जो लीला कर रहे हैं, उसमें देखा जा रहा है कि आप अपने चरणाश्रित सज्जनोंकी रक्षा कर रहे हैं और धर्मकी स्थापना कर रहे हैं। आपकी इस लीलामें सात्त्विक प्रकृतिके सज्जनगण ही आपके प्रिय हैं एवं राजस और तामस प्रकृतिके जीवगण आपके अप्रिय हैं। इसलिए आप सज्जनोंकी रक्षाके लिए राजस, तामस प्रकृतिके दुष्टोंको यथायोग्य दण्ड देते हैं। यद्यपि आपकी सभी लीलाओंमें ऐसा ही नियम है, फिर भी वर्त्तमान लीलाको देखकर हम आपके चरणोंमें कुछ निवेदन कर रही हैं।

"आपकी वर्त्तमान लीलामें यह दुष्ट कालियनाग किसी भी प्रकारसे आपका अनुग्रह पानेके योग्य नहीं है। आपने इसे जो दण्ड दिया है, वह कोई अन्याय नहीं, बल्कि न्यायसङ्गत ही है, क्योंकि आपके भक्तचूड़ामणि गरुड़से लेकर व्रजवासी तक सभीके प्रति इसने अपराध किया है। अतएव इस विषयमें हमारा कुछ भी वक्तव्य नहीं है, तथापि हमारा निवेदन है—यद्यपि कालियने अपने बहिर्मुखता

दोषके कारण कभी भी आपको प्रभु नहीं समझा, परन्तु पिताका अत्याचारी पुत्र भी पुत्र ही होता है। राजाकी उदण्ड प्रजा भी प्रजा ही होती है। बहिर्मुख जीवके आपको सर्वेश्वर और सर्वपिता नहीं माननेपर भी वे आपके ही नियम्य और पुत्र हैं। आप सम्पूर्ण जगत्के पिता हैं। अतएव कोई भी जीव यदि अपने बहिर्मुखता दोषके कारण आपके चरणोंमें अपराध करता है, तो आपको उसका अपराध क्षमा कर देना चाहिये। कम-से-कम उसके एक जन्मका अपराध तो क्षमा करना ही चाहिये।

"हे भगवन्! आप करुणावारिधि हैं, इसी आशासे हम आपके चरणोंमें प्रार्थना कर रही हैं। आप इसके प्रति दयादृष्टि करें। आप यदि कालियके इस देहका विनाशकर जन्मान्तरमें दिव्य देह देकर उसे भक्तिवासनासे युक्तकर अनुग्रह करते भी हैं, तो भी हमारी मनोवासना पूर्ण नहीं होगी। हमारे मनमें प्रबल इच्छा है कि भक्तपतिकी अनुगामिनी होकर हम आपके चरणोंकी सेवा करें। कालियका भाव देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा है कि अब वह आपके चरणोंमें शरणागत हुआ है। अतएव आप यदि इसके प्राणोंकी भिक्षा देते हैं, तो हम भक्तपतिकी सङ्गिनी बन सकती हैं। इसका कारण है कि हम स्त्रीजाति हैं, स्वभावतः हम अबला और पराधीन हैं। यदि हमारा अपने पतिसे वियोग होता है, तब दूसरा कोई दुष्ट सर्प बलपूर्वक हमारा पतिव्रता धर्म नष्ट कर देगा। उस स्थितिमें हो सकता है कि हमलोग आपकी चरणसेवासे भी वञ्चित हो जाएँ। इसलिए आप कृपापूर्वक हमें हमारे पतिके प्राणोंकी भिक्षा प्रदान करें। स्त्रीजातिका पति ही प्राण-स्वरूप होता है, अतएव कालियको प्राणदान देनेपर हमें भी प्राणदान मिलेगा। *'आर्त्तानां शरणस्त्वहम्'*—आपके ही श्रीमुखकी वाणी है। अतः हम आर्त्त होकर आपके चरणोंमें शरणागत हुई हैं। हमारे पतिके प्राण दान देकर हम सबकी रक्षा करें॥"४९-५३॥

**श्रीशुक उवाच—**

**इत्थं स नागपत्नीभिर्भगवान् समभिष्टुतः।**
**मूर्च्छितं भग्नशिरसं विससर्ज्जाङ्घ्रिकुट्टनैः॥५४॥**

**अन्वयः**—श्रीशुकः उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा) सः भगवान् (भगवान्ने) नागपत्नीभिः इत्थं (नागपत्नियोंके इस प्रकार) समभिष्टुतः (स्तव करनेपर) अङ्घ्रिकुट्टनैः (पादप्रहारसे) भग्नशिरसं (टूटे हुए मस्तकवाले) मूर्च्छितं (मूर्च्छित कालियको) विससर्ज्ज (छोड़ दिया)॥ ५४॥

**अनुवाद**—श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—प्रिय परीक्षित्! भगवान्ने अपने पादप्रहारोंसे कालियनागके फणोंको चूर्ण-विचूर्ण कर डाला था, जिस कारण वह मूर्च्छित-सा हो रहा था। उसकी पत्नियोंने जब भगवान् श्रीकृष्णकी इस प्रकार स्तुति की, तब श्रीकृष्णने दया करके उसे छोड़ दिया॥ ५४॥

**सारार्थदर्शिनी**—अङ्घ्रिभ्यां कुट्टनैः प्रहारैर्भग्नशिरसं कालियं तत्याज तच्छीर्षेभ्यः सहसैवावप्लुत्य तदग्रे तस्थावित्यर्थः॥ ५४॥

**भावानुवाद**—भगवान् श्रीकृष्णने अपने चरणयुगलके प्रहारसे भग्न-मस्तक और मूर्च्छितप्राय कालियका परित्याग कर दिया, अर्थात् अचानक उसके मस्तकसे उतरकर उसके सामने खड़े हो गये॥ ५४॥

**प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः कालियः शनकैर्हरिम्।**
**कृच्छ्रात् समुच्छ्वसन् दीनः कृष्णं प्राह कृताञ्जलिः॥ ५५॥**

**अन्वयः**—दीनः (दुर्बल) कालियः शनैः (कालिय धीरे-धीरे) प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः (इन्द्रिय एवं प्राणोंकी शक्ति प्राप्तकर) कृच्छ्रात् समुच्छ्वसन् (अति कष्टसे निःश्वास परित्यागकर) कृताञ्जलिः कृष्णं प्राह (हाथ जोड़कर श्रीकृष्णको कहने लगा)॥ ५५॥

**अनुवाद**—कालिय बेसुध हो रहा था। अब क्रमशः उसकी इन्द्रियों एवं प्राणोंमें कुछ-कुछ शक्तिका सञ्चार होने लगा, जिससे उसमें कुछ चेतना आ गयी। वह बड़े कष्टसे श्वास ले रहा था। कुछ क्षणोंके बाद वह हाथ जोड़कर अति दीनभावसे भगवान् श्रीकृष्णसे कहने लगा॥ ५५॥

**सारार्थदर्शिनी**—कृच्छ्रादितिकष्टादेव कथञ्चित् कृताञ्जलिः सर्वाङ्गव्यथावत्त्वात् नतु भूमौ दण्डवन्निपत्य प्रणामसमर्थ इति भावः॥५५॥

**भावानुवाद**—तब कालियनाग अतिकष्टसे किसी प्रकार निःश्वास परित्याग करते हुए हाथ जोड़कर श्रीकृष्णसे कहने लगा। उसके सभी अङ्गोंमें पीड़ा होनेके कारण वह भूमिपर गिरकर प्रणाम करनेमें भी असमर्थ था—यह भाव है॥५५॥

**कालिय उवाच—**

**वयं खलाः सहोत्पत्त्या तामसा दीर्घमन्यवः।**
**स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः॥५६॥**

**अन्वयः**—[हे] नाथ, वयं (हम सर्पजातिके हैं) खलाः (जन्मसे ही दुष्ट है) उत्पत्त्या सह तामसाः (जन्मसे ही तामसिक स्वभावके तथा) दीर्घमन्यवः (महाक्रोधशाली हैं) लोकानां (प्राणियोंका) स्वभावः यदसद्ग्रहः (स्वभाव दुष्टग्रह-स्वरूप है) [अतएव वह] दुस्त्यजः (अपरिहार्य है)॥५६॥

**अनुवाद**—कालियनागने कहा—हे नाथ! हम सर्प-जन्मसे ही दुष्ट, तमोगुणी और बड़े क्रोधी स्वभावके होते हैं। प्राणियोंका स्वभाव दुराग्रह-स्वरूप है, अतः अपना स्वभाव छोड़ पाना कठिन होता है॥५६॥

**सारार्थदर्शिनी**—यत् यतो असतो विरुद्धत्वेन ज्ञातस्यापि रागद्वेषदेर्ग्रहो ग्रहणं विदुषमपि किम्पुनर्मूढा नामस्माकमिति भावः॥५६॥

**भावानुवाद**—देह-गृह आदिमें आसक्त होना उचित नहीं है, यह जानकर भी उसका त्याग करना विद्वान व्यक्तियोंके लिए भी बड़ा कठिन है। फिर मुझ जैसे मूढ़ सर्पकी तो बात ही क्या है?॥५६॥

**त्वया सृष्टमिदं विश्वं धातर्गुणविसर्ज्जनम्।**
**नानास्वभाववीर्यौजो-योनिबीजाशयाकृति ॥५७॥**

**अन्वयः**—[हे] धातः (हे सृष्टिकर्त्ता!) त्वया नानास्वभाववीर्यौजो योनिबीजाशयाकृति (आपने ही विविध स्वभाव, वीर्य, ओज, योनि, बीज, अन्तःकरण और स्वभाव आदिसे युक्त) गुणविसर्जनं (गुणजात) इदं विश्वं सृष्टम् (इस विश्वकी सृष्टि की है)॥५७॥

**अनुवाद**—हे सृष्टिपति! आपने ही नाना प्रकारके स्वभाव, वीर्य, बल, योनि, बीज, चित्त एवं आकृतियुक्त इस गुणजात जगत्की सृष्टि की है॥५७॥

**सारार्थदर्शिनी**—गुणैर्विविधं सर्जनं सृष्टिर्यत्र तत्। विविधत्वमाह—नानास्वभावादयो यस्य तत्॥५७॥

**भावानुवाद**—आपने ही गुणोंके भेदसे इस जगत्में नाना प्रकारके स्वभाव, वीर्य, बल, योनि, बीज, चित्त और आकृतियोंका निर्माण किया है। अर्थात् आपने ही शान्त, उग्र आदि विविध स्वभाव एवं देहशक्ति, इन्द्रियशक्ति, मातृशक्ति, पितृशक्ति, वासना और आकृति विशिष्ट इस गुणजात विश्वकी सृष्टि की है॥५७॥

**वयञ्च तत्र भगवन् सर्पा जात्युरुमन्यवः।**
**कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम्॥५८॥**

**अन्वयः**—[हे] भगवन्! सर्पा तत्र वयं (इस विचित्र जगत्में हम सर्पजाति) जात्युरुमन्यवः (जन्मसे ही अतिशय क्रोधपरायण हैं) मोहिताः स्वयं कथं दुस्त्यजां त्वन्मायां त्यजामः (मूढ़चित्त हम कैसे आपकी दुस्त्यज मायाका त्यागकर सकते हैं)॥५८॥

**अनुवाद**—हे भगवन्! इस विचित्र सृष्टिमें हमारी सर्पजाति जन्मसे ही अति क्रोधी स्वभावकी होती है। अतः हमारा चित्त तो वैसे ही मायासे मोहित रहता है, तो फिर हम किस प्रकार इस दुस्त्यज मायाका परित्याग कर सकते हैं?॥५८॥

**सारार्थदर्शिनी**—जात्या जन्मनैव बहुकोपाः॥५८॥

**भावानुवाद**—हम जन्मसे ही अथवा स्वभाव और जातिसे ही अत्यन्त क्रोधी होते हैं॥५८॥

**भवान् हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः।**
**अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद्विधेहि नः॥५९॥**

**अन्वयः**—तत्र (मायाका परित्याग करनेके विषयमें) सर्वज्ञः जगदीश्वरः भवान् हि कारणं (आप ही एकमात्र कारण हैं) अनुग्रहं निग्रहं वा (अनुग्रह और निग्रहके विषयमें जो कुछ) मन्यसे नः (भी हमारे लिए उचित समझते हैं) तत् विधेहि (वही विधान करें)॥५९॥

**अनुवाद**—आप सर्वज्ञ और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके स्वामी हैं। मायाको त्याग करनेके विषयमें भी आप ही एकमात्र कारण हैं, अतः आपकी कृपाके बिना कोई भी मायाको छोड़नेमें समर्थ नहीं हो सकता। अतः अब आप हमारे प्रति अनुग्रह या निग्रह जैसा भी उचित समझें, वैसा कीजिये॥५९॥

**सारार्थदर्शिनी**—तत्र मायात्यागे॥५९॥

**भावानुवाद**—आपकी मायाको पार करनेके विषयमें आप ही एकमात्र कारण हैं। आपकी कृपाके बिना कोई भी मायासे छुटकारा नहीं पा सकता॥५९॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—नागपत्नियोंने विविध प्रकारसे श्रीकृष्णके स्वरूप एवं उनके अचिन्त्य ऐश्वर्यका वर्णनकर कालियके मस्तकपर नृत्य करनेवाले नन्दनन्दनकी स्तुति की एवं उनके चरणोंमें बहुत-सी प्रार्थनाएँ करते हुए कालियके प्राणोंकी भिक्षा माँगी। भगवान् श्रीहरि स्वभावसे ही परम करुणामय हैं। इसलिए उन्होंने कालियको कृतार्थ करनेके लिए उसके मस्तकपर आरोहण किया एवं नृत्यके बहाने पदाघात करके उसके अभिमानसे ऊपर उठे हुए सैकड़ों फणोंको कुचल दिया तथा उन्हें नीचे झुका दिया। कालियके प्रति उनका किसी भी प्रकारका क्रोध नहीं था, केवल उसके जन्म-जन्ममें सञ्चित गर्वको दूर करनेके लिए ही वे उसका दमन करनेमें प्रवृत्त हुए थे। इस प्रकार उन्होंने कालियको अपने चरणोंका विक्रम समझाकर चिरकालके लिए अपना शरणागत बना दिया।

साधारण रूपसे कृष्णकी इस लीलासे यह प्रतीत होता है कि कृष्णने कालियके प्रति कठोर दण्ड विधान किया है। परन्तु विचार करनेपर देखा जाता है कि ऐसा अनुग्रह तो किसी महाभाग्यवानको भी नहीं मिलता। कृष्ण जब कालियके मस्तकसे उतर गये, तब कालियकी जीवनीशक्ति एवं इन्द्रियशक्ति लौट आयी। श्रीकृष्णके चरणोंके पुनः-पुनः प्रहारसे एवं अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड-भाण्डोदर श्रीमूर्त्तिके अत्यधिक भारसे वह मृतप्राय होकर बहुत कष्टसे खड़ा हो पा रहा था। कृष्णके मस्तकसे उतर जानेके बाद वह दीर्घ निःश्वास त्यागकर अर्द्धमीलित नेत्रोंसे श्रीकृष्णके चरणोंकी ओर देखने लगा। तथापि वह कृष्णके चरणोंमें झुक नहीं सका, क्योंकि उसमें झुकनेका सामर्थ्य भी नहीं रह गया था। तब वह अति दीन भावसे हाथ जोड़कर उन दीनबन्धुके चरणोंमें पुनः-पुनः प्रणाम करने लगा।

कालिय-दमन-लीलापर विचार करनेसे देखा जाता है कि कालियका स्वरूप एक बृहदाकार सर्पका था। उसने अपने लम्बे-मोटे शरीरके द्वारा कृष्णके शरीरको लपेट लिया था एवं कृष्णने उसके फणोंके ऊपर नृत्य किया था। किन्तु *'प्रतिलब्धेन्द्रिय प्राणः'* श्लोकमें देखा जाता है कि कालियने हाथ जोड़कर श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रणाम किया। इससे प्रतीत होता है कि कालिय असुर या राक्षस आदिकी भाँति इच्छानुसार रूप धारण कर सकता था। यद्यपि श्रीधरस्वामिपाद आदि टीकाकारोंने इस विषयमें कुछ भी नहीं कहा है, किन्तु श्रीगोपालचम्पू ग्रन्थमें श्रीजीव गोस्वामिपादने इस विषयमें कुछ नहीं कहनेपर भी अन्यत्र कहा है—*'काद्रवेयस्य देवाभनानाशक्ति विधारिण'*—इससे देखा जाता है कि कद्रुनन्दन कालियनाग देवताओंकी भाँति विविध प्रकारसे शक्तिशाली था, अतएव उसके लिए हाथ जोड़कर कृष्णके चरणोंमें प्रणाम करना असम्भव नहीं था।

कालिय अपने दैहिकबल और विषबलके अभिमानमें मत्त एवं बहिर्मुख-शिरोमणि था। किन्तु श्रीकृष्णकी अपार करुणासे जब उसका सारा घमण्ड चूर-चूर हो गया, तब वह श्रीकृष्णके चरणोंमें शरणागत हुआ। उस समय उसके हृदयमें सब प्रकारके तत्त्वज्ञानका उदय हुआ। श्रीकृष्ण ही सर्वेश्वर एवं सर्वनियन्ता हैं, उनकी इच्छाके बिना किसीका

कुछ भी करनेका सामर्थ्य नहीं है। उन्होंने विश्वकी प्रत्येक वस्तुकी, प्रत्येक जीव और उनके सर्वविध आकृति और प्रकृतिकी सृष्टि की है, यह समस्त तत्त्व शरणागतिके प्रभावसे कालियको अनुभव होने लगे। तब कालिय तन, मन और वचनके द्वारा श्रीकृष्णके चरणोंमें आत्म-समर्पण करके प्रार्थना करने लगा—"हे विश्व-विधाता! हमलोग स्वभावसे ही तमोगुणी, दुष्ट-प्रकृति एवं अत्यन्त क्रोधी स्वभावके हैं। हे प्रभो! आप सबकुछ जानते हैं। आप जैसा उचित समझें, मुझे वैसा ही दण्ड दें॥"५४-५९॥

**श्रीशुक उवाच—**

**इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान् कार्यमानुषः।**
**नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि मा चिरम्।**
**स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यते नदी॥ ६०॥**

**अन्वयः—**श्रीशुकः उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा) कार्यमानुषः (हे राजन्! नरलीलाके द्वारा मनुष्यरूपमें प्रतीयमान) भगवान् इति वचः (भगवान्ने सर्पवाक्य) आकर्ण्य प्राह (सुनकर कहा) सर्प त्वया अत्र न स्थेयं (हे सर्प! तुम यहाँपर अब मत रहो) सज्ञात्यपत्यदाराढ्यः (अपने ज्ञाति, बन्धु, स्त्री-पुत्रोंके साथ) मा चिरं (अतिशीघ्र) समुद्रं याहि (समुद्रकी यात्रा करो) [क्योंकि] गो नृभिः नदी (गाय और मनुष्यगण सर्वदा इस यमुनाका जल) भुज्यते (उपभोग करते हैं)॥ ६०॥

**अनुवाद—**श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! नर-लीलाके द्वारा मनुष्यरूपमें दिखायी पड़नेवाले भगवान् श्रीकृष्णने कालियनागकी बात सुनकर कहा—हे सर्प! अब तुम्हें यहाँ नहीं रहना चाहिये, तुम शीघ्र ही अपने जाति-भाई, स्त्री, पुत्रोंके साथ समुद्रमें चले जाओ, क्योंकि गौएँ एवं मनुष्य सर्वदा ही इस यमुनाजलका उपभोग करते हैं॥ ६०॥

**सारार्थदर्शिनी—**कार्येषु ब्रह्मरुद्रादिदुष्करेष्वपि कालियनिग्रहादिकर्मसु मानुषः एव न तु तत्तत्कृत्यसमुचितचक्रपाण्यादिरूप इत्यर्थः। यद्वा, कार्यं क्रीडा लीला

तयैव मानुषः लीलामयमानुषस्वरूप इत्यर्थः। यद्वा, कस्य ब्रह्मणोऽप्याश्चर्यश्चासौ मानुषश्चेति सः। यद्वा, कार्यं मानुषस्येव यस्य सः, यतो गोभिर्नृभिश्च नदी भुज्यते तटप्रवाहागतघासपत्रफलजलानां भोगौचित्यात्॥ ६०॥

**भावानुवाद—***'भगवान् कार्यमानुषः'*—कार्य अर्थात् ब्रह्मा-रुद्र आदिके लिए भी दुष्कर कालियनिग्रह आदि कर्म, वह भी मनुष्यकी भाँति ही रहकर कर दिया। अर्थात् कृष्णने बिना चक्र आदि धारण किये एक साधारण बालकके रूपमें ही कालिय निग्रह कर दिया। अथवा नरवत लीलाके द्वारा जो साधारण मनुष्य रूपमें प्रतीत होते हैं, वास्तविक रूपसे वे मनुष्यकी भाँति पाञ्चभौतिक देह-विशिष्ट नहीं हैं। अर्थात् लीलामय मनुष्य विग्रह हैं—यही अर्थ है। अथवा 'क' शब्दसे ब्रह्मा, जो ब्रह्माके लिए भी आश्चर्यजनक मनुष्य हैं, ऐसे भगवान्। अथवा मनुष्यकी भाँति जिनके कार्य हैं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णने कालियसे कहा—"तुम अब इस स्थानमें नहीं रह सकोगे, क्योंकि गायें और मनुष्य यहाँका जल पीते हैं। नदीके तट स्थित तृण, पत्र, फल, जल आदि उनके उपभोगकी वस्तुएँ हैं॥" ६०॥

**य एतत् संस्मरेन्मर्त्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनम्।**
**कीर्त्तयन्नुभयोः सन्ध्योर्न युष्मद्भयमाप्नुयात्॥ ६१॥**

**अन्वयः**—यः मर्त्त्यः (जो मनुष्य) उभयोः सन्ध्योः (सायं-प्रातः) तुभ्यं (तुम्हारे प्रति) एतत् मदनुशासनं (मेरा यह आदेश-वाक्य) संस्मरेत् कीर्त्तयन् (स्मरण और कीर्त्तन करेगा) युष्मद्भयं न आप्नुयात् (वह तुमसे कोई भय प्राप्त नहीं करेगा)॥ ६१॥

**अनुवाद**—जो मनुष्य प्रातःकाल एवं सायंकाल तुम्हारे प्रति दिये गये मेरे इस आदेश-वाक्यका स्मरण एवं कीर्त्तन करेगा, उसे सर्प जातिसे कभी भी भय प्राप्त नहीं होगा॥ ६१॥

**सारार्थदर्शिनी**—तव मत्पादस्पर्शे मम च त्वद्दण्ड इत्यावयोः कीर्त्तिराचन्द्रार्कं स्थास्यतीत्याह—य इति। न युष्मत्तो भयमाप्नुयादिति तेन पद्यद्वयमिदं सर्पोच्चाटने मन्त्र एव ज्ञेयं। तथा च ऋग्वेदस्य मन्त्रान्तरं *"यमुनाह्रदे हि सो यातो यो नारायणवाहनः। यदि कालिकदन्तस्य यदि काकालिकाद्भयम्। जन्मभूमिपरित्रातो निर्विषो याति कालिकः"* इति॥ ६१॥

**भावानुवाद**—*'तुभ्यं मदनुशासनम्'* तुम्हारे मस्तकपर मेरा चरणस्पर्श एवं तुम्हारे प्रति मेरा जो दण्ड विधान है—हम लोगोंकी यह कीर्त्ति तब तक विराजमान रहेगी, जब तक चन्द्र-सूर्य रहेंगे। इसे ही कह रहे हैं—जो व्यक्ति दोनों सन्ध्याओंमें अर्थात् प्रातःकाल एवं सायंकाल तुम्हारे प्रति मेरे दण्डका स्मरण और कीर्त्तन करेगा, वह तुम्हारे भयसे मुक्त हो जायेगा। पूर्वश्लोक और इस श्लोकको सर्प-उच्चाटन मन्त्रके रूपमें समझना चाहिये। ऋग्वेदमें भी ऐसा मन्त्र देखा जाता है—*'यमुनाह्रदे हि सो यातो'* इत्यादि॥ ६१॥

**योऽस्मिन् स्नात्वा मदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः।**
**उपोष्य मां स्मरन्नर्च्चेत् सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ६२॥**

**अन्वयः**—यः अस्मिन् मदाक्रीडे (जो मेरे विहार-स्थान इस ह्रदमें) स्नात्वा जलैः देवादीन् तर्पयेत् (स्नानकर देव, ऋषि, पितृ, मनुष्य आदिका तर्पण एवं) उपोष्य (उपवासकर) मां स्मरन् अर्चेत् (मेरा स्मरण एवं अर्चन पूजा करेगा) [वह] सर्वपापैः प्रमुच्यते (समस्त पापोंसे मुक्त होगा)॥ ६२॥

**अनुवाद**—यह कालिय-ह्रद मेरा विहार-स्थान हो गया है। जो इसमें स्नान करके इसके जलसे देवता और पितरोंका तर्पण करेगा और उपवास रखकर मेरा स्मरण एवं पूजन करेगा, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जायगा॥ ६२॥

**सारार्थदर्शिनी**—इतोऽपि हेतोस्त्वया निर्गन्तव्य मेवेत्याह—योऽस्मिन्निति। त्वयि स्थिते तत्र सम्भवतीति भवः॥ ६२॥

**भावानुवाद**—दूसरा और भी एक कारण है, जिसके लिए तुम्हें यहाँसे जाना होगा, उसे *'योऽस्मिन्'* इत्यादि द्वारा कह रहे हैं—अर्थात् जो व्यक्ति मेरे विहार-स्थान इस ह्रदमें स्नानकर इसके जलके द्वारा देवता, ऋषि एवं पितरोंका तर्पण करेगा एवं इस तीर्थमें आकर उपवास करता हुआ मेरा स्मरणकर इसके जलसे मेरी पूजा-अर्चना करेगा, वह सब प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जायेगा। किन्तु तुम्हारे यहाँ रहनेपर यह सम्भव नहीं होगा—यह भावार्थ है॥ ६२॥

**द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः।**
**यद्भयात् स सुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पादलाञ्छितम्॥ ६३॥**

**अन्वयः**—यद्भयात् (जिस गरुड़के भयसे) रमणकं द्वीपं हित्वा (तुमने रमणकद्वीपको छोड़कर) एतं ह्रदं उपाश्रितः (इस ह्रदका आश्रय लिया था) सः सुपर्णः (वह गरुड़) न अद्यात् मत्पादलाञ्छितं त्वां (तुम्हारे मस्तकपर मेरे चरणचिह्न देखकर तुम्हें कभी नहीं खायेगा)॥ ६३॥

**अनुवाद**—जिस गरुड़के भयसे तुमने रमणकद्वीपको छोड़कर इस ह्रदमें आश्रय लिया था, वे गरुड़ तुम्हारे मस्तकपर अङ्कित मेरे पदचिह्नोंको देखकर अब तुम्हें नहीं खायेंगे॥ ६३॥

**सारार्थदर्शिनी**—न च ते गरुडाद्भयं भावीत्याह-द्वीपमिति॥ ६३॥

**भावानुवाद**—विशेषकर गरुड़से तुम्हें किसी प्रकारका भय नहीं रहेगा। इसे ही *'द्वीपम्'* इत्यादि द्वारा कर रहे हैं—जिस गरुड़के भयसे तुमने रमणकद्वीप छोड़कर इस ह्रदमें आश्रय ग्रहण किया है, वे गरुड़ मेरे पदचिह्नके द्वारा सुशोभित तुम्हें कभी भी नहीं मारेंगे और न ही खायेंगे॥ ६३॥

**भावप्रकाशिकावृत्ति**—श्रीनन्दनन्दनके पादप्रहारसे भग्नमस्तक और क्षीणदेह कालियने किसी प्रकारसे दीर्घ-निःश्वास त्यागकर हाथ जोड़कर श्रीकृष्णके निकट जो कुछ कहा, उससे वे कालियके प्रति प्रसन्न हुए और समझ गये कि अब कालियका घमण्ड दूर हो गया है और वह उनका आदेश अवश्य ही पालन करेगा। तब 'कार्य मानुष' स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर मधुर वचनोंसे कालियको कुछ आदेश किया।

श्लोक ६० स्थित 'कार्य मानुष' शब्दसे भगवान्की विविध लीलाओं और कृपाको इङ्गित किया गया है। श्रीभगवान् दुष्ट-दमनादि कार्योंसे जगत्का कल्याण करनेके लिए अपने नित्यसिद्ध नराकृति परब्रह्म-स्वरूपमें जगत्में अवतीर्ण होते हैं, इसलिए वे 'कार्य मानुष' हैं। या जिनके कार्यसे अर्थात् लीलासे प्रेमभक्ति प्राप्तकर मनुष्य यथार्थ मनुष्य हो जाता है, उनका नाम 'कार्य मानुष' है। या जो

स्वयं-भगवान् होकर भी मनुष्यकी भाँति बाल्यलीला आदि करते हैं, उनका नाम 'कार्य मानुष' है।

'कार्य मानुष' स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने कालियसे कहा—"हे सर्प! मेरे लीला-स्थान व्रजमण्डलमें तुम्हारा निवास करना उचित नहीं है, क्योंकि तुम जातिगत स्वभावसे अत्यन्त क्रोधी और महा-विषधर हो। यद्यपि मेरे चरणस्पर्शसे तुम्हारा समस्त प्रकारका विषदोष दूर हो गया है, फिर भी तुम्हारा यहाँ निवास करना उचित नहीं है, क्योंकि तुम्हारी यह भीषण मूर्त्ति सभीको भयभीत करेंगी। मेरे इस लीलास्थानमें मेरे प्रेमी पार्षदगण निवास करते हैं। तुम्हारी पत्नियाँ मेरी भक्तचूड़ामणि हैं, इसीलिए मैंने अघासुर आदिकी भाँति तुम्हारा वध नहीं किया है, केवलमात्र कुछ दण्ड देकर तुम्हारा दैहिक-बल और महा-विषधर होनेका तुम्हारा घमण्ड दूर किया है। तुम अब प्रसन्न होकर मेरा लीलास्थल परित्यागकर अपने परिवारके साथ अपने पूर्व स्थान रमणकद्वीपमें चले जाओ। तुम्हारे यमुना-ह्रदमें वास करनेसे यमुना-ह्रदका जल और तट ऐसा विषाक्त हो गया है कि कोई भी मनुष्य या पशु-पक्षी आदि न तो यमुना-ह्रदके तटपर आ सकता है, न इसका जल पान कर सकता है। यदि कोई भूलकर आ जाता है, तो उसे प्राणोंसे हाथ धोना पड़ता है। यमुना-ह्रदमें तुम्हारे रहनेसे कितने ही जीवोंकी अकाल मृत्यु हुई है। अतएव तुम एवं तुम्हारे परिवारके सर्पोंके रमणकद्वीपमें चले जानेपर यमुनाके इस ह्रदका जल निर्मल हो जायेगा एवं व्रजवासी नर-नारीगण स्वच्छन्द रूपसे इसके जलमें स्नान आदि कर सकेंगे और इसके तटपर गाय आदि पशुगण विचरण कर सकेंगे। अतः हे कालिय! मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि तुम क्षणमात्र भी विलम्ब न करके अतिशीघ्र अपने पूर्व वास-स्थानमें चले जाओ। मैं तुम्हें यमुना-ह्रदसे निकालकर ही व्रजमें प्रवेश करूँगा।

"हे कालिय! मैंने तुम्हें *'मात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि मा चिरम्'* यह जो आदेश दिया एवं तुम्हें विविध प्रकारसे जो दण्ड दिया, जो व्यक्ति प्रातःकाल और सायंकालमें मेरे इस आदेश-वाक्यका स्मरण और कीर्त्तन करेगा, उसे कभी भी तुमसे या तुम्हारे वंशजात किसी भी सर्पसे भय नहीं रहेगा।"

श्रीपाद सनातन गोस्वामीने अपने श्रीबृहद्भागवतामृत ग्रन्थमें श्रीकृष्णकी कालिय-दमन-लीलाका वर्णनकर अन्तमें कहा है—*"निज वाहनतां निन्ये प्रसादभरमाचर"* अर्थात् श्रीकृष्णने कालियके प्रति कृपा करके उसे अपना वाहन बनाया।

परम करुणामय श्रीकृष्णने महादुष्ट कालियको इस प्रकार सर्वदोषोंसे मुक्त करके एवं उसे यमुना-ह्रद परित्यागकर अपने स्थानमें जानेके लिए कृपादेश प्रदान करते हुए कहा—"हे कालिय! मैंने इस यमुना-ह्रदमें तुम्हारे साथ विविध प्रकारका क्रीड़ा-विहार किया है। इस स्थानपर तुम्हारा घमण्ड दूर हुआ है, अनादि जन्मोंकी सञ्चित तुम्हारी बहिर्मुखता दूर हुई है एवं मेरे प्रति तुम्हें भक्ति प्राप्त हुई है। अतएव यह यमुना-ह्रद एक महातीर्थ एवं समस्त जीवोंके लिए परम मङ्गलदायी हो गया है। इस स्थानपर केवल तुम ही कृतार्थ हुए, ऐसा नहीं, अपितु यदि कोई भी जीव यहाँपर आकर इस यमुना-ह्रदमें स्नान एवं देव, ऋषि और पितरोंका तर्पण करेगा एवं विधिपूर्वक उपवासकर मेरी इस लीलाका स्मरणकर मेरी पूजा करेगा, तो वह कायिक, वाचिक और मानसिक त्रिविध पापोंसे चिरकालके लिए मुक्ति प्राप्त करेगा।

"हे कालिय! समुद्र मध्यस्थित रमणकद्वीप ही नागोंके लिए उपयुक्त वास-स्थान है। तुम पहले भी उसी रमणकद्वीपमें ही वास करते थे, किन्तु गरुड़के साथ विरोध होनेसे प्राणभयके कारण तुमने इस यमुना-ह्रदमें आश्रय लिया है। तुम अब निर्भय होकर रमणकद्वीपमें जाओ। गरुड़ अब तुम्हारे साथ कोई विरोध नहीं करेगा और न ही तुम्हारा वध करेगा, क्योंकि मेरे पदप्रहारसे तुम्हारा हृदय पवित्र हो गया है और तुम समस्त प्रकारके कर्मफलोंसे मुक्त हो गये हो। मैं जिसे दण्ड देता हूँ, उसे साक्षात् दण्डधर भी दण्ड देनेका साहस नहीं कर सकते। मेरे दण्ड देनेपर जीव सब प्रकारके दण्डोंसे मुक्त हो जाता है। विशेषकर मैंने तुम्हारे मस्तकपर नृत्य किया, इससे तुम्हारे मस्तकपर मेरे पदचिह्न अङ्कित हो गये हैं। यह देखकर गरुड़ तुम्हारे साथ कोई शत्रुता नहीं करेगा, अपितु तुम्हें मेरे पदचिह्नोंसे सुशोभित भक्तश्रेष्ठ जानकर अति आदर और आग्रहके साथ तुम्हारे साथ

मित्रता करेंगे। इसलिए तुम्हें कोई भय नहीं है, तुम मेरे पदचिह्नोंको मस्तकमें धारणकर निर्भय होकर चले जाओ। तुम अब सब प्रकारके भयोंसे चिरकालके लिए मुक्त हो गये हो॥"६०-६३॥

**श्रीऋषि उवाच—**

**मुक्तो भगवता राजन् कृष्णेनाद्भुतकर्मणा।**
**तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यश्च सादरम्॥६४॥**

**अन्वयः—**श्रीऋषिः उवाच (श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा) राजन् (हे महाराज!) अद्भुतकर्मणा भगवता कृष्णेन मुक्तः नागः (अद्भुतकर्मा भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा मुक्त कालियनाग) पत्न्यः च (और उसकी पत्नियोंने) मुदा (आनन्दके साथ) सादरं तं (आदरपूर्वक श्रीभगवान्‌की) पूजयामास (पूजा की)॥६४॥

**अनुवाद—**श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार बड़ी अद्भुत लीलाएँ किया करते हैं। भगवान्‌की ऐसी आज्ञा पाकर मुक्त कालियनाग एवं उसकी पत्नियोंने बड़े आदरसे उन भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की॥६४॥

**सारार्थदर्शिनी—**अद्भुतकर्मणेति कालियाद्व्रजस्थजीवस्य त्राणं कालियस्यापि गरुडात्त्राणमिति हिस्यहिसकयोरुभयोरपि कल्याणमित्यद्भुतं कर्म। कृष्णेनेतिस्वभक्त-गरुडापराधस्य स्वप्रियव्रजस्थजीवापराधस्य च च कर्षणं परमभक्तकालियपत्नी-प्रीत्यनुरोधात् कृतमिति भावः॥६४॥

**भावानुवाद—**श्रीकृष्णकी एक-एक लीला अद्भुत है। उन्होंने कालियसे व्रजस्थित जीवोंकी एवं कालियकी भी गरुड़से रक्षा की अर्थात् हिंस्य और हिंसक दोनोंका कल्याण किया। दूसरी ओर श्रीकृष्णनामका प्रयोग करनेका यह अभिप्राय है कि जो कृष अर्थात् आकर्षण करते हैं—यह अर्थ प्रयोग हुआ है। जिन्होंने कालियकी परमभक्त पत्नियोंके प्रीतियुक्त अनुरोधसे उसके अपराधको दूर किया अर्थात् अपने भक्त गरुड़के प्रति अपराध और व्रजस्थित अपने प्रिय प्राणियोंके वधके अपराधको आकर्षण अर्थात् दूर किया है॥६४॥

**दिव्याम्बरस्रङ्मणिभिः परार्द्धैरपि भूषणैः।**
**दिव्यगन्धानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया॥ ६५॥**

**पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजम्।**
**ततः प्रीतोऽभ्यनुज्ञातः परिक्रम्याभिवन्द्यतम्॥ ६६॥**

**सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमब्धेर्जगाम ह।**
**तदैव सामृतजला यमुना निर्विषाभवत्।**
**अनुग्रहाद्भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः॥ ६७॥**

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ब्रह्मसूत्रभाष्ये पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे कालियनिर्यापणं नाम षोड़शोऽध्यायः॥ १६॥**

**अन्वयः**—दिव्याम्बरस्रङ्मणिभिः (दिव्य, वस्त्र, माला, रत्न) परार्द्धैः भूषणैः अपि (महामूल्यवान आभूषणों) दिव्यगन्धानुलेपैः च (दिव्य गन्धानुलेपन) महत्या उत्पलमालया च (एवं कमलकी मालाके द्वारा) गरुडध्वजं जगन्नाथं पूजयित्वा प्रसाद्य (गरुड़ध्वज जगन्नाथकी पूजाकर उनकी प्रसन्नता विधानकर) ततः प्रीतः (सन्तुष्ट होकर) अभ्यनुज्ञातः (तथा आदेश लेकर) तं परिक्रम्य (उनकी परिक्रमा करके) अभिवन्द्य (एवं वन्दनाकर वह कालिय) सकलत्रसुहृत्पुत्रः अब्धेः (अपने स्त्री-पुत्र-आत्मीयसहित समुद्रके मध्यवर्त्ती) द्वीपं (रमणकद्वीपमें) जगाम (चला गया) तदा एव क्रीडामानुषरूपिणः भगवतः अनुग्रहात् सा यमुना निर्विषा अमृतजला अभवत् (उस समय लीला-मानव विग्रह भगवान्के अनुग्रहसे वह यमुना विषहीन होकर अमृततुल्य बन गयी)॥ ६५-६७॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके सोलहवें अध्यायका अन्वयः समाप्त।

**अनुवाद**—कालियनागने अपनी पत्नियों सहित दिव्य वस्त्र, पुष्प-माला, मणि, उत्तम आभूषण, दिव्य गन्ध, चन्दन एवं अति-आकर्षक कमलोंकी माला द्वारा गरुड़ध्वज भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करके उन्हें प्रसन्न किया। इसके बाद बड़ी प्रीति और आनन्दसे उनकी परिक्रमा

और वन्दना की एवं उनका आदेश प्राप्त किया। फिर वह अपनी पत्नियों, मित्रों तथा पुत्रोंको साथ लेकर समुद्रके मध्य-स्थित रमणकद्वीपकी ओर चला गया। तबसे लीला-मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णके अनुग्रहसे यमुनाजीका जल विषहीन ही नहीं हुआ, बल्कि अमृतके समान मधुर भी हो गया॥ ६५-६७॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके सोलहवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

**सारार्थदर्शिनी—**सादरमिति पूर्वश्लोकोक्तेर्हे प्रभो! दुष्टतायाः परमावधिरूपे मयि कृपायाः परमावधिरर्पितं त्वया यदहो प्राकृताप्राकृत लोकेषु मदन्यः कोऽपि ध्वजवज्राङ्कुशादिचिह्नानि स्वमुद्धिर्न न धत्ते तदहं साम्प्रतं श्रीमदङ्गानि मद्दन्तदंशोत्थ-विषदाहतप्तानि सुगन्धसुशीतलचन्दरसेन सस्त्रीक एव पाणिभिः स्पृशन्ननुलिम्पानि शृङ्गारयानि चेत्यतः क्षणमत्रैव दिव्यासने उपविशेत्युपवेश्य स्ववाञ्छितं पूरयित्वा लब्धभगवत्प्रसादस्ततो निर्जगामेत्याह—दिव्येति सार्द्धद्वयेन। मणिभिरित कृष्णप्रादुर्भाव-काले तद्वक्षःस्थल एवासीत् यः कौस्तुभः स एव तस्य नरलीलत्वशोभाव्याघाताभावार्थं तदैवालक्षितं कालियकोषागारमध्ये प्रविष्टोऽभूत्। अतएव बहुरत्नालङ्कारप्रदानसमये कालियपत्नीभिरपरिचित एव स्वीयरत्नविशेषज्ञानेन कौस्तुभो दत्तः यदुक्तम्। *"कौस्तुभाख्यो मणिर्येन प्रविश्य ह्रदमौरगम्। कालियप्रेयसीवृन्दहस्तैरात्मोपहारितः॥"* इति गणोद्देश-दीपिकायां। प्रसाद्येति भगवानपि कालियमूर्द्धस्वभयहस्ततलनिधानेन तदीयसर्वाङ्ग-व्यथामुपशमयामासेति भावः। गरुडध्वजं प्रसाद्येति भो गरुडवाहन! प्रभो! सम्प्रत्यहं गरुडस्य ज्येष्ठभ्रातुर्दासोऽभूवम् अतः कदाचिद्दूरदेशस्य गन्तव्यत्वे सत्यहमपि स्ववाहनत्वेन स्मर्तव्यो निमेषमात्रेणैव शतकोटियोजनगामी दासानुदास इति तदुक्तिर्गम्यते। अतः कालियारूढ एव कंसनिर्दिष्टः कृष्णो मथुरां जगामेति पौराणिकी कथा क्वचित् श्रूयते इति। क्रीडामानुषरूपिण इति नित्ययोगे इनिः॥ ६५-६७॥

इति सारार्थदर्शिनयां हर्षिण्यां भक्तचेतसाम्।
दशमे षोड्शोऽध्यायः सङ्गत सङ्गत सताम्॥

इति श्रीमद्भागवत-दशमस्कन्धे श्रीविश्वनाथचक्रवर्ति-ठक्कुर-कृता
षोड्शाध्यायस्य सारार्थदर्शिनी-टीका समाप्ता॥ १६॥

**भावानुवाद—** *'सादरम्'*—पूर्वश्लोकमें कालिय और उसकी पत्नियोंने परम आदरके साथ प्रेमपूर्वक श्रीकृष्णकी पूजा की, अब उन्होंने किस प्रकार श्रीकृष्णका आदर किया, यह दिखा रहे हैं। हे प्रभो! दुष्टताकी

चरमसीमासे युक्त मेरे प्रति आपकी कृपाकी भी चरमसीमा अर्पित हुई है। इसका कारण है कि मेरे अतिरिक्त प्राकृत या अप्राकृत लोकमें दूसरे किसीने भी अपने मस्तकपर ध्वज, वज्र, अङ्कुशादि चिह्नोंसे युक्त आपके चरणकमलोंको धारण नहीं किया। अब मैं अपने विषैले दाँतोंके डँसनेसे उत्पन्न विषदाहसे तप्त आपके श्रीअङ्गोंमें अपनी स्त्रियोंके साथ अपने हाथोंसे सुगन्धित सुशीतल चन्दन-रसका अनुलेपन-पूर्वक आपका शृङ्गार करना चाहता हूँ। इसलिए क्षणकाल इस दिव्यासनपर बैठिये—यह कहकर श्रीकृष्णको दिव्यासनपर बैठाकर कालियने अपनी अभिलाषा पूर्णकी तथा भगवान्‌की कृपा प्राप्तकर वह सपरिवार वहाँसे चला गया। यहाँ 'दिव्य' इत्यादि ढाई श्लोकोंमें यही कह रहे हैं। *'मणिभि'*—मणि शब्दसे यहाँ कौस्तुभमणिको समझना होगा। श्रीकृष्णके आविर्भावके समय कौस्तुभमणि उनके वक्षःस्थलमें थी। यह तीसरे अध्यायके दसवें श्लोकमें वर्णन हुआ है। किन्तु नरलीलामें विशेषकर ऐश्वर्यरहित लीलामें कोई बाधा न हो, इस आशङ्कासे वह मणि अलक्षित रूपसे भगवान्‌की इच्छासे कालियनागके कोषागारमें प्रविष्ट हुई थी। कालियनागकी पत्नियोंको कौस्तुभमणिकी जानकारी नहीं थी, वे उसे अपना रत्न जानती थीं। अतएव बहुत-से रत्न अलङ्कार आदि प्रदान करते समय उन्होंने श्रीकृष्णको कौस्तुभमणिको भी प्रदान किया। गणोद्देशदीपिका नामके ग्रन्थमें वर्णन हुआ है—*'कौस्तुभाख्यो मणिर्येन'* इत्यादि। *'प्रसाद्य'*—इस वाक्यमें श्रीभगवान्‌ने भी कालियनागके मस्तकपर अपना अभय करकमल अर्पणकर उसके सम्पूर्ण शरीरकी पीड़ाको शान्त कर दिया—यह भावार्थ है।

*'गरुडध्वजं प्रसाद्य'*—गरुड़ध्वज भगवान्‌को सुप्रसन्न करके। यहाँ गरुड़ध्वज नामके उल्लेखके द्वारा एक अन्तर्निहित अर्थ पाया जाता है कि गरुड़ जैसे आपके वाहन हैं, वैसे ही मैं भी आपका वाहन हूँ। हे गरुड़वाहन प्रभो! अब मैं ज्येष्ठ भ्राता गरुड़का दास बन गया हूँ। अतएव जब कभी आपको किसी दूरदेशमें जाना पड़े, तब आप मुझे अपने वाहनके रूपमें स्वीकार करें। आपका यह दासानुदास क्षणभरमें सौ करोड़ योजनका पथ अनायास ही गमन करनेमें समर्थ है—ऐसी कालियकी उक्ति है। अतएव किसी पुराणमें देखा जाता

है—कंसके द्वारा बुलानेपर श्रीकृष्ण कालियनागके ऊपर सवार होकर मथुरामें आये थे। *'क्रीडा-मानुषरूपिणः'*—क्रीड़ाके लिए मनुष्य रूपधारी भगवान् श्रीकृष्णके अनुग्रहसे यमुना-ह्रदका जल न केवल विषरहित हुआ, बल्कि अमृतके समान मधुर और स्वादिष्ट भी हो गया। यहाँ क्रीड़ाप्रधान मनुष्यरूपी—इस अर्थमें नित्य योगमें मतुवर्थीय इनि प्रत्यय हुआ है, अर्थात् श्रीकृष्णका मनुष्य जैसा रूप है, परन्तु वे मनुष्य नहीं हैं। जिनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुन्दर और सुगठित हैं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णने कालियपर कृपा की तथा समस्त प्राणियोंकी रक्षा की॥ ६५-६७॥

इस प्रकार भक्तोंको आनन्द देनेवाली दशम-स्कन्धके सोलहवें अध्यायकी सज्जन-सम्मत 'सारार्थदर्शिनी' टीका समाप्त हुई।

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके सोलहवें अध्यायकी श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर विरचित सारार्थदर्शिनी टीकाका भावानुवाद समाप्त।

**भावप्रकाशिकावृत्ति—**परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामीने महाराज परीक्षित्के प्रश्नके अनुसार श्रीकृष्णकी कालिय-दमन-लीलाका आदिसे अन्त तक वर्णनकर अन्तमें कहा—हे महाराज! अपार करुणाके सागर श्रीकृष्णकी कृपासे कालियनागने अपने अनादि जन्म-सञ्चित बहिर्मुखता दोषका परित्याग किया एवं बल और तीव्र विषके घमण्डसे गरुड़ एवं व्रजवासी गो-गोपियोंके निकट किये गये अपराधसे मुक्त हो गया। श्रीकृष्णकी एक-एक लीला परम अद्भुत है। उनकी अद्भुत लीलाओंको देखकर उनका तात्पर्य समझना अति कठिन है। उन्होंने कालियको जैसा कठोर दण्ड दिया, वैसा अपने किसी महाशत्रुको भी नहीं दिया। उन्होंने जब अघासुर, बकासुर, वत्सासुर आदिका संहार किया, तब उन्हें अधिक समय तक कष्ट भोगना नहीं पड़ा। किन्तु उन्होंने जब कालियके मस्तकपर सवार होकर नृत्यके बहाने उसके सैकड़ों फणोंको तोड़ डाला, तब भी उसकी मृत्यु नहीं हुई, जिसके कारण वह मरणाधिक कष्टका भोग करने लगा। इससे प्रतीत होता है कि श्रीकृष्णने ऐसा निष्ठुर व्यवहार कदापि किसीके साथ नहीं किया।

परन्तु अन्तमें देखा जाता है कि कालियने भगवान्‌के जिस अनुग्रहको प्राप्त किया, वैसा आज तक किसीके भाग्यमें सम्भव हुआ है—यह सन्देह है। श्रीकृष्णने कालियके बहिर्मुख व्यवहारको ग्रहणकर उसके स्थानपर उसे शरणागति और भक्तिकी वासना प्रदान की। यह अन्यत्र कहीं नहीं देखा गया। यद्यपि पूतना राक्षसी हिंसावृत्तिके बदले धात्री जैसी गति प्राप्तकर कृतार्थ हुई थी, किन्तु वह गति उसके वर्त्तमान शरीरमें नहीं, बल्कि राक्षसी शरीरके अन्तके पश्चात् सिद्धदेह प्राप्त होनेपर ही उसे कृष्णसेवाका अधिकार प्राप्त हुआ था। किन्तु कालियका कैसा सौभाग्य है कि वह वर्त्तमान शरीरमें ही श्रीकृष्णके चरण स्पर्शकर उनका सेवाधिकार प्राप्तकर कृतार्थ हो गया। इसलिए कहा गया है कि श्रीकृष्णके जैसी अद्भुत लीलाएँ करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। उनकी सभी लीलाएँ परम अद्भुत और अति चमत्कारपूर्ण हैं।

श्रीकृष्णकी इस परम अद्भुत लीलामें कालिय कितने प्रकारसे कृतार्थ हुआ है और कितने प्रकारसे उस महाबहिर्मुखके प्रति श्रीकृष्णकी कृपा वर्षित हुई है, उसकी कोई सीमा नहीं है। गरुड़के निकट अपराध होनेसे कालियनाग अपना वास-स्थान रमणकद्वीप छोड़कर यमुना-ह्रदमें छिपकर रहनेके लिए बाध्य हुआ था एवं निरन्तर गरुड़के भयसे भयभीत रहता था। किन्तु श्रीकृष्णकी कृपासे कालियनागको अपने वास-स्थानमें निवास करनेका पुनः सौभाग्य प्राप्त हुआ। साथ ही चिरकालके लिए उसका गरुड़का भय भी दूर हुआ एवं गरुड़के साथ चिरकालकी उसकी शत्रुता मित्रतामें बदल गयी। जो कालिय बहिर्मुखता दोषके कारण गरुड़ और समस्त भक्तोंके द्वारा तिरस्कृत था, वह कालिय श्रीकृष्णकी कृपासे अपने मस्तकपर श्रीकृष्णके पदचिह्न धारणकर सबका पूज्य बन गया। सभी कृष्णभक्त कालियके मस्तकपर श्रीकृष्णके चरणचिह्न देखकर उसे प्रणाम करेंगे तथा सम्मान प्रदान करेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

कालियका कितना सौभाग्य है? ब्रह्मादि देवतागण तक श्रीकृष्णकी सेवा करनेके लिए लालायित रहते हैं, लक्ष्मीजीने भी उनके चरण-स्पर्शके लिए तीव्र तपस्या की, परन्तु कालियको सहज

ही उनके चरणोंको धारण करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्रीकृष्णके नृत्य-कालीन चरण-विन्याससे कालियके सैकड़ों फण उनकी चरणोंकी धूलिसे सिक्त हुए। ब्रह्मादि देवतागण कभी भी श्रीकृष्णकी आदेश-वाणीको प्रत्यक्ष रूपमें सुन नहीं सके, वे सभी शास्त्र-वचनोंके रूपमें श्रीकृष्णकी आदेश-वाणीका पालनकर धन्य हुए हैं। किन्तु कालियको *'मात्र स्थेयं त्वया सर्प'* आदि वाक्यमें श्रीकृष्णने साक्षात् आदेश दिया। इस प्रकार श्रीकृष्णके साक्षात् वचनामृत माधुर्यका आस्वादन ब्रह्मादिके भाग्यमें भी नहीं हुआ। ब्रह्माजीने श्रीकृष्णके गोवत्स आदि हरणकर अपनेको महा-अपराधी जानकर श्रीवृन्दावनमें आकर श्रीकृष्णके चरणोंमें लोट-पोट होकर उनकी स्तव स्तुति की थी, किन्तु श्रीकृष्णने उन्हें कोई आज्ञा नहीं दी। ब्रह्माजीने श्रीकृष्णकी मौन-सम्मतिको अनुग्रहका दान मानकर अपनेको कृतार्थ माना और अपने ब्रह्मलोकमें चले गये। ब्रह्माजी अपने चारों मुखोंसे चतुर्वेद-उक्त स्तुति गानकर उनकी सेवा करते हैं, किन्तु कालियने अपने जीवनमें कभी भी श्रीकृष्णकी सेवा नहीं की, अपितु भक्तोंको कष्ट देकर भयङ्कर अपराध ही किया था। उसके पश्चात् यमुना-ह्रदमें वासकर श्रीकृष्णके लीला-स्थानको दूषित किया एवं उसके विषके प्रभावसे श्रीकृष्णके पार्षद गोपबालक और गायें मर गयीं। यहाँ तक कि अन्तमें उसने श्रीकृष्णके अङ्गोंमें भी बार-बार डँसा और उन्हें अपने फेंटेमें बाँधकर उन्हें पीडित करनेकी चेष्टा की। उस अपराधके कारण श्रीकृष्णने उसका दमन किया और उसके मस्तकपर चढ़कर पुनः-पुनः पादप्रहारके द्वारा उसके सैकड़ों फणोंको तोड़ डाला। इससे कालिय श्रीकृष्णके चरणोंमें शरणागत हुआ। श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर उसके मस्तकपर अपने पदचिह्न अङ्कित कर दिये और स्वयं अपने श्रीमुखसे उसे वहाँसे चले जानेकी आज्ञा दी।

परमाद्भुत लीला-रसके समुद्र श्रीकृष्णने इस प्रकार कालियके भयसे समस्त जीवोंको मुक्त कर दिया तथा साथ ही गरुड़जीके भयसे कालियको भी मुक्त कर दिया। सबसे बड़ी बात यह है कि कालियको चिरकालके लिए भयसे मुक्तकर उसके साथ उसके भक्षक गरुड़की मित्रता स्थापित कर दी।

इस प्रकार श्रीकृष्णकी अपार करुणासे समस्त प्रकारके दोषों एवं भयसे कालियनाग चिरकालके लिए मुक्त हो गया। श्रीकृष्णकी महान कृपासे कालिय चिर-कृतार्थ हुआ और श्रीकृष्णने नृत्यके बहाने उसके फणोंको कुचल दिया था, जिससे वह अत्यन्त पीड़ाका अनुभव कर रहा था, परन्तु श्रीकृष्णके करकमलोंके स्पर्शसे उसकी वह समस्त पीड़ा भी दूर हो गयी।

कालिय मन-ही-मन चिन्ता करने लगा—जिनकी कृपासे भववेदना दूर हो जाती है, उनकी कृपासे तुच्छ अङ्गवेदना दूर होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। तब कालियने क्षणमात्र भी विलम्ब न करके अपनी पत्नियोंके साथ श्रीकृष्णके चरणोंमें दण्डवत्-प्रणाम किया तथा प्रेमपूर्वक उनकी पूजा करने लगा। इस प्रकार कालिय नाना प्रकारसे अनुताप करता हुआ अपनी पत्नियोंके साथ श्रीकृष्णके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें दिव्यातिदिव्य मृगमद, कुङ्कुम, चन्दन आदिका लेपन करने लगा। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कालिय अपने डँसनेसे बने घावों और विषदाहयुक्त श्रीकृष्णके अङ्गोंमें सुगन्धित सुशीतल चन्दन-रसका लेपकर उनकी पीड़ा और दाहको शान्त करनेके लिए व्याकुल हो गया था।

कालिय श्रीकृष्णको यमुना-ह्रदके मध्यस्थित द्वीपमें दिव्य सिंहासनपर बिठाकर विविध प्रकारसे उनकी सेवा करने लगा। वह प्रार्थना करने लगा—हे भगवन्! जैसे मेरी बहिर्मुखता और दुष्टताकी सीमा नहीं है, वैसे ही आपकी करुणाकी भी कोई सीमा नहीं है। नहीं तो, मेरे जैसे महादुष्टका मस्तक क्या आपके वज्र, अङ्कुशादि चरणचिह्नोंके द्वारा सुशोभित हो सकता था? हे अयाचित करुणाके सागर! आपने जब अयाचित रूपसे इस जीवाधमको अपनी चरणसेवामें अधिकार प्रदान किया है, तब कुछ समय इस दिव्य आसनपर बैठकर मेरी समस्त प्रकारकी मनोवासनाओंको पूर्णकर मुझे कृतार्थ करें। यह कहकर उसने दिव्य वस्त्रों एवं नाना प्रकारके दिव्य अलङ्कारों, मणियों और रत्नोंसे श्रीकृष्णका शृङ्गार किया। इस प्रकार परमानन्दमें विभोर होकर श्रीहरिकी चरणसेवाकर वह धन्य और कृतार्थ हुआ।

श्रीकृष्णगणोद्देशदीपिका ग्रन्थमें देखा जाता है—कालिय एवं उसकी पत्नियोंने विविध दिव्यरत्नोंके द्वारा श्रीकृष्णको विभूषित किया था। उन दिव्य रत्नोंमें श्रीकृष्णने अपने परम प्रिय कण्ठभूषण 'कौस्तुभमणि' को भी प्राप्त किया था।

*कौस्तुभाख्यो मणिर्येन प्रविश्य ह्रदमौरगम्।*
*कालिय प्रेयसीवृन्दहस्तैरात्मोपहारितः॥*

श्रीकृष्णने कालिय-ह्रदमें प्रवेशकर कालियकी पत्नियोंके हाथोंसे 'कौस्तुभ' नामक मणि उपहार-स्वरूप प्राप्त की।

'कौस्तुभमणि' श्रीकृष्णका नित्यसिद्ध कण्ठहार है। यह दिव्यातिदिव्य महा-उज्ज्वल पद्मरागमणि-विशेष है। आगममें कहे गये श्रीकृष्ण-ध्यानमें एवं श्रीकृष्णके नारायण आदि समस्त प्रकारकी विलासमूर्त्तियोंके ध्यानमें इस कौस्तुभमणिका वर्णन है एवं उपासना पद्धतिमें भी इस कौस्तुभमणिकी उपाङ्ग रूपमें पूजाकी व्यवस्था है।

श्रीभगवान् सच्चिदानन्द-विग्रह हैं, उनके हस्त, पद आदि श्रीअङ्ग एवं वसन, भूषण, आयुध आदि उपाङ्गसमूह भी सच्चिदानन्दके विकार हैं। जब वे जगत्में अवतीर्ण होते हैं, तब वे अपने इन सभी सच्चिदानन्दमय अङ्ग-उपाङ्गोंको साथमें लेकर आते हैं।

श्रीमद्भागवत दशम-स्कन्धके तृतीय अध्यायमें कंसके कारागारमें श्रीकृष्णके आविर्भावके प्रसङ्गमें देखा जाता है—उस समय वे पीताम्बर, वनमाला, किरीट, केयूर, कौस्तुभमणि और शङ्ख, चक्रादि सहित आविर्भूत हुए थे। किन्तु जब उन्होंने यशोदानन्दनके रूपमें नन्दालयमें जन्म लिया, तब नन्द, यशोदा और व्रजके वात्सल्यप्रेममय गोप-गेपियोंके प्रेमके अनुरूप नरबालकके रूपमें ही जन्म लिया, इसलिए उस समय उनका पीताम्बर, वनमाला आदि सभी कुछ अदृश्य था। उनकी परम प्रिय कौस्तुभमणि तब यमुना-ह्रदके मध्य-स्थित कालियके कोषागारमें विविध रत्नोंके साथ गुप्त रूपसे मिलकर अवस्थित थी। कालियकी पत्नियाँ जब श्रीकृष्णका शृङ्गार करनेके लिए कोषागारसे विविध रत्न लेकर आयीं, तब कौस्तुभमणि भी उन आभूषणोंके साथ श्रीकृष्णके कण्ठहारके रूपमें सुशोभित हुई। कालिय या उनकी पत्नियोंको कौस्तुभमणिकी महिमाका ज्ञान नहीं

था। इस प्रकार श्रीकृष्णकी परम प्रिय कौस्तुभमणिने अपने उचित स्थानको प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार श्रीकृष्णका पीतवसन एवं वनमाला आदि भी श्रीकृष्णके नरबालकके रूपमें आविर्भूत होनेके समय गुप्त रूपसे विद्यमान थे। परन्तु वे भी निश्चित रूपसे किसी-न-किसी प्रकारसे श्रीकृष्णके निकट आये हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं है।

कालिय एवं उसकी पत्नियोंने परमानन्दमें विभोर होकर श्रीकृष्णकी पूजा की और विविध दिव्य-अलङ्कारों, रत्नों और मणियोंके द्वारा श्रीकृष्णको विभूषित किया। तत्पश्चात् कालिय प्रार्थना करने लगा—हे गरुड़वाहन! आपने मेरे ज्येष्ठ भ्राता गरुड़को जैसे अपने दासके रूपमें ग्रहण किया है एवं कहीं जानेके लिए उनकी पीठपर सवार होकर जाते हैं, वैसे ही इस जीवाधमको भी अपना दास बनाकर कृतार्थ करें। मेरे ज्येष्ठ भ्राता गरुड़ आपके भक्तचूड़ामणि हैं, किन्तु शत्रुके रूपमें मैंने आपका विरोध किया है। आजसे मैं आपका दास बन गया हूँ। आप मुझे गरुड़जीका कनिष्ठ भ्राता और दास जानकर यदि अपने वाहनके रूपमें ग्रहण करेंगे, तब मैं भी आपको अपनी पीठपर बैठाकर कहीं भी ले जा सकता हूँ। आपका आदेश होनेपर मैं निमेष मात्रमें सैकड़ों योजन दौड़ सकता हूँ।

कालियने इस प्रकार अपनी पत्नियोंके साथ मिलकर श्रीकृष्णकी पूजा एवं स्तुति आदिके द्वारा अपनेको कृतार्थ किया। श्रीकृष्णने भी उसकी सेवासे परम प्रसन्न होकर उसे रमणकद्वीपमें जानेके लिए आदेश प्रदान किया।

तब श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर कालियने अपनी पत्नियोंके साथ उनकी प्रदक्षिणा की एवं पुनः-पुनः उनके चरणोंमें लोट-पोट होकर प्रणाम किया। अन्तमें वह अपने मनसे श्रीकृष्णके चरणोंका ध्यान, मुखसे उनके नाम-गुण आदिका कीर्त्तन करते-करते पुत्र, पत्नी और आत्मीय स्वजन आदिके साथ यमुना-ह्रदसे निकलकर समुद्रके मध्यस्थित रमणकद्वीपमें चला गया।

श्रीसनातन गोस्वामिपादकृत बृहद्वैष्णवतोषणी टीकामें वर्णन है—*"श्रीकालिन्दीतः नदी वर्त्मना गङ्गया तत्समुद्र गमनस्य सर्वैरेव*

*साक्षात् दर्शनात्"* कालिय जब श्रीकृष्णके आदेशसे यमुना-ह्रद परित्यागकर रमणकद्वीपमें गया, तब यमुनाके जलपथसे गङ्गामें आकर गङ्गा प्रवाहको अवलम्बनकर समुद्रमें चला गया। तीरपर स्थित सभी व्रजवासियोंने कालियको इस प्रकार जलपथसे जाते हुए प्रत्यक्ष रूपसे देखा। सम्भवतः बृहत्-काय कालियके असंख्य सर्पोंके साथ स्थलपथसे जानेसे बहुत-से ग्राम, नगर आदि उजड़ सकते थे और वहाँके लोग भयभीत हो सकते थे, इसलिए भगवान्‌की इच्छासे प्रेरित होकर उसने सपरिवार जलमार्गसे ही समुद्रके लिए यात्रा की।

भगवान् श्रीकृष्णकी इस कालिय-दमन-लीलामें केवलमात्र कालिय विष-दोषसे मुक्त हुआ, ऐसा नहीं, उसके विषदोषसे विषैला यमुना-ह्रदका जल भी उनकी कृपासे विषरहित एवं अमृतसे भी अधिक मीठा और सुस्वादु हो गया। उस दिनसे व्रजवासी गो-गोप-गोपियाँ आनन्दपूर्वक उस जलका उपयोग स्नान-पान आदिमें करने लगे।

*"कामं दामोदर मम मनः पन्नगः पीनभोगो*
*दुष्टाशीर्भिः कुटिवलनैः क्षोभयत्येष लोकम्॥*
*तद्विक्रान्तस्त्वमुदितपदद्वन्द्वपंकेरुहास्कं*
*कुर्वन् दर्वीकरदमन हे ताण्डवैर्दण्डामुम्॥"*

(स्तवमाला)

श्रीमन् महाप्रभुके प्रधान पार्षद श्रीलरूप गोस्वामीने श्रीकृष्णकी कालिय-दमन-लीलाका आश्रयकर उनकी माहात्म्य-सूचक स्तुति करते हुए अन्तमें दैन्यपूर्वक निवेदन किया है—हे कालिय निग्रहकारिन्! आपकी कालिय-दमन-लीलामें कालियसर्प यथोचित रूपमें दण्डित हुआ है। किन्तु उससे आपकी सर्वनिग्रह-लीला परिपूर्ण या परिसमाप्त नहीं हुई है, क्योंकि कालियसे भी महा-कुटिल एवं विषमय मेरा मनरूपी महासर्प मेरे हृदयरूपी महाह्रदमें निवास कर रहा है एवं सैकड़ों वासनारूप महा-फणोंको फैलाकर सर्वदा मुझे डँसता रहता है। कालियके अतिस्थूल, सुविस्तृत एवं सैकड़ों फणोंसे मेरे विषयभोग-वासनारूपी फणसमूह किसी अंशमें कम नहीं हैं। कालिय जैसे अपने विषमय दाँतों एवं स्वभावसिद्ध कुटिल गतिसे सर्वदा दूसरोंका अनिष्ट करता था, वैसे ही मेरा मनरूप महासर्प भी विविध भोग-इच्छारूप

विषमय दन्तपंक्तिके द्वारा दूसरोंके अनिष्ट-चिन्तारूपी कुटिल गतिसे सर्वदा मेरा अनिष्ट करनेमें व्यस्त रहता है। अतएव हे परम विक्रमशालिन्! आपने जिस प्रकारसे विचित्र ताण्डवके द्वारा कालियके शतफणोंको भग्नकर उसका दमन किया एवं उसके मस्तकपर अपने चरणचिह्न अङ्कित कर दिये थे, वैसे ही मेरे मनरूपी महासर्पको भी दण्डित करें। आपके पादप्रहारसे जैसे कालियके सैकड़ों फण टूट गये थे, वैसे ही मेरे मनरूपी महासर्पके शत-शत वासनारूपी फण भी भग्न हो जाँय एवं कालियकी भाँति मेरा मस्तक भी आपके पदचिह्नोंसे चिह्नित होकर चिर-कृतार्थ हो जाय।

नराकृति परब्रह्म नन्दनन्दनकी समस्त प्रकारकी लीलाएँ ही अपार करुणापूर्ण हैं। उनकी लीलाओंमें कितने-कितने बहिर्मुख-शिरोमणि कृतार्थ हुए हैं, जिसकी कोई सीमा नहीं है। उनमेंसे कालिय-दमन-लीलामें उन्होंने जैसी परम-अद्भुत कृपाका वितरण किया है, ऐसा दूसरी किसी भी लीलामें देखा नहीं गया है। पूतना, शकटासुर, तृणावर्त्त, अघासुर, बकासुर, वत्सासुर आदि असंख्य बहिर्मुख जीव श्रीकृष्णके निग्रहसे कृतार्थ हुए हैं। वे सभी बहिर्मुख देह परित्यागकर शुद्ध-जीव स्वरूपको प्राप्त हुए एवं भवबन्धनसे मुक्त हो गये, परन्तु उनमेंसे किसीने भी श्रीकृष्णकी चरणसेवाका अधिकार प्राप्त नहीं किया। एकमात्र पूतना राक्षसीने धात्रीरूपमें श्रीकृष्णसेवाका अधिकार प्राप्त किया, किन्तु उसने भी राक्षसी देह त्यागकर गोलोकमें ही धात्री जैसी गति प्राप्त की। परन्तु कालियके प्रति श्रीकृष्णकी कैसी अनिर्वचनीय कृपा है कि कालियने अपने चिर-बहिर्मुख देहमें ही श्रीकृष्णकी चरणसेवाका अधिकार प्राप्त किया एवं चिरकालके लिए श्रीकृष्णके चरणचिह्नोंसे अपना मस्तक सुशोभितकर चिर-कृतार्थ हुआ॥ ६४-६७॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके सोलहवें अध्यायकी
भावप्रकाशिकावृत्ति समाप्त।

# श्लोक-सूची

[श्रीमद्भागवतम् दशम-स्कन्ध (अध्याय ९-१६)]


**अ**

अजानताम् १०/१४/१९
अज्ञानसंज्ञौ १०/१४/२६
अणिमाद्यैः १०/१३/५२
अतः क्षमस्वाच्युत १०/१४/१०
अतोऽर्हतः १०/१०/२१
अत्र भोक्तव्यम् १०/१३/६
अत्रैव माया- १०/१४/१६
अथ गावश्च १०/१५/४८
अथ तालफलानि १०/१५/४०
अथ व्रजे १०/१६/१२
अथाघनामा- १०/१२/१३
अथापि ते १०/१४/२९
अथाप्यभिभवन्त्येनम् १०/११/५६
अद्यानेन महाव्यालः १०/१४/४८
अद्यैव त्वदृतेऽस्य १०/१४/१८
अनुगृह्णीष्व १०/१६/५२
अनुग्रहोऽयम् १०/१६/३४
अनुजानीहि नौ १०/१०/३७
अनुजानीहि माम् १०/१४/३९
अन्तः प्रविश्य १०/१०/४
अन्तर्भवेऽनन्त १०/१४/२८
अन्तर्हृदे १०/१६/१९
अन्ये तदनुरूपाणि १०/१५/१८
अन्वञ्चमाना जननी १०/९/१०
अन्वमंसत तद्राजन् १०/१५/५२
अपराधः १०/१६/५१
अम्भोजन्मजनिः १०/१३/१५
अविदूरे व्रजभुवः १०/११/३८
अव्याकृत १०/१६/४७
असतः श्रीमदान्धस्य १०/१०/१३
अस्मान् किमत्र १०/१२/२४
अस्यापि देव १०/१४/२
अहो अमी देववर- १०/१५/५
अहोऽतिधन्या १०/१४/३१
अहोऽतिरम्यम् १०/१३/५
अहो बतास्य १०/११/५५
अहो ब्रह्मविदाम् १०/११/५७
अहो भाग्यमहो १०/१४/३२
अहो मित्राणि १०/१२/१९

**आ**

आङ्घ्रिमस्तकम् १०/१३/४९
आत्मादिस्तम्बपर्यन्तैः १०/१३/५१
आत्मानमेवात्म- १०/१४/२५
आबालवृद्धवनिताः १०/१६/१५
आस्तृतायाममार्गः १०/१२/२२

**इ**

इत एतेऽत्र १०/१३/४२
इति नन्दादयः १०/११/५८
इति व्यवस्याजगरम् १०/१२/१६

इति सञ्चिन्त्य १०/१३/३८
इतीरेशेऽतर्क्ये १०/१३/५७
इत्थं द्विजा १०/१२/४०
इत्थं मिथः १०/१२/२५
इत्थं सङ्कीर्तित १०/१०/३९
इत्थं यशोदा १०/११/२०
इत्थं सताम् १०/१२/११
इत्थं स नागपत्नी- १०/१६/५४
इत्थं स्म १०/१२/४४
इत्थं स्वगोकुलम- १०/१६/२३
इत्यन्तरेणार्जुनयोः १०/१०/२६
इत्यभिष्टूय १०/१४/४१
इत्थमात्मा १०/१३/२७
इत्याकर्ण्य १०/१६/६०
इत्युक्तौ तौ १०/१०/४३
इत्युक्त्वाद्रि- १०/१३/१४

उ

उत्क्षेपणम् १०/१४/१२
उत्तार्य गोपी १०/९/७
उत्थातव्यमितो- १०/११/२३
उत्थायोत्थाय १०/१३/६३
उलूखलं विकर्षन्तम् १०/११/३
उलूखलं विकर्षन्तम् १०/११/६
उलूखलाङ्घ्रेरुपरि १०/९/८

ऊ

ऊचुश्च सुहृदः १०/१४/४५

ऋ

ऋषेर्भागवतमुख्यस्य १०/१०/२४

ए

एकदा गृहदासीषु १०/९/१
एकदा चारयन् १०/१३/२८
एकस्त्वमात्मा १०/१४/२३
एकस्मिन्नपि १०/१४/४३
एतत् कौमारजम् १०/१२/३७
एतत् ते १०/१४/५९
एतत् सुहृद्भिश्चरितम् १०/१४/६०
एतेऽलिनस्तव १०/१५/६
एते यदा १०/१२/१५
एवं निगूढात्मगतिः १०/१५/१९
एवं परिभ्रमहतौजसम् १०/१६/२६
एवंविधं त्वाम् १०/१४/२४
एवं विहारैः कौमारैः १०/११/५९
एवं विहारैः कौमारैः १०/१४/६१
एवं वृन्दावनम् १०/१५/९
एवं व्रजौकसाम् १०/११/३७
एवं सकृद्दर्शाजः १०/१३/५५
एवं सन्दर्शिता १०/९/१९
एवं स भगवान् १०/१५/४७
एवं सम्मोहयन् १०/१३/४४
एवं साधारणम् १०/१०/१२
एवं सुहृत् १०/१५/२७
एवं स्वगेहदामानि १०/९/१७
एवमुक्त्वा स १०/१०/२३
एवमेतेषु भेदेषु १०/१३/४३
एषां घोषनिवासिनामुत १०/१४/३५
एषान्तु भाग्यमहिमा १०/१४/३३

क

कथमन्तर्जलेऽगाधे १०/१६/२
कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः १०/१०/१
कदाचिद्यमुनातीरे १०/११/४१
कस्यानुभावोऽस्य १०/१६/३६

कालस्वभावसंस्कार- १०/१३/५३
कालाय कालनाभाय १०/१६/४१
कालिन्द्याम् १०/१६/४
किं किं न १०/१४/४४
किमेतदद्भुतमिव १०/१३/३६
कृतागसं तम् १०/९/११
कृत्यं किमत्रास्य १०/१२/२८
कृष्णं महाबकग्रस्तम् १०/११/४९
कृष्णः कमलपत्राक्षः १०/१५/४१
कृष्ण कृष्ण १०/१०/२९
कृष्ण कृष्णारविन्दाक्ष १०/११/१५
कृष्णप्राणान् १०/१६/२२
कृष्णमेनमवेहि १०/१४/५५
कृष्णवत्सैः १०/१२/३
कृष्णस्तु गृहकृत्येषु १०/९/२२
कृष्णस्य गर्भजगतः १०/१६/३१
कृष्णस्य विष्वक् १०/१३/८
केचिद्वेणून् १०/१२/७
केचित् पुष्पैर्दलैः १०/१३/९
केयं वा कुत १०/१३/३७
को वेत्ति १०/१४/२१
क्रीडन्तं सा १०/११/१४
क्रीणीहि भोः १०/११/१०
क्वचिच्च १०/१५/११
क्वचित् क्रीडा- १०/१५/१४
क्वचित् पल्लवतल्पेषु १०/१५/१६
क्वचिद्गायति १०/१५/१०
क्वचिद्वनाशाय १०/१२/१
क्वचिद्वादयतो वेणुम् १०/११/३९
क्वाप्यदृष्ट्वा १०/१३/१७
क्वाहं तमः १०/१४/११
क्षौमं वासः १०/९/३


**ग**


गताध्वानश्रमौ १०/१५/४५
गावस्ततो गोष्ठम् १०/१३/२४
गावो वृषा १०/१६/११
गुणात्मनस्तेऽपि १०/१४/७
गृहीत्वापरपादाभ्याम् १०/११/४३
गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यः १०/१०/३२
गोगोपीनां मातृता- १०/१३/२५
गोधनानि १०/११/३२
गोपवृद्धा १०/११/२१
गोपास्तद्रोधनायास- १०/१३/३२
गोपा नन्दादयः १०/११/१
गोपीभिः स्तोर्भि- १०/११/७
गोप्योऽनुरक्तमनसः १०/१६/२०
गोप्यो रूढरथा १०/११/३३


**च**


चकोरक्रौञ्चचक्राह्व- १०/१५/१३
चक्रवातेन १०/११/२५
चतुर्भुजाः शङ्खचक्र १०/१३/४७
चन्द्रिकाविशदस्मेरैः १०/१३/५०


**ज**


जगत्रयान्तोद- १०/१४/१३
जनन्युपहृतम् १०/१५/४६
जानन्त एव १०/१४/३८
ज्ञातं मम १०/१०/४०
ज्ञानविज्ञाननिधये १०/१६/४०
ज्ञाने प्रयासमुदपास्य १०/१४/३


**त**


तं गोरजश्छुरित- १०/१५/४२
तं चण्डवेगविषवीर्यम् १०/१६/६

तं जिह्वया १०/१६/२५
तं तालुमूलम् १०/११/५०
तं दृष्ट्वा १०/१०/६
तं नर्त्तुमुद्यतमवेक्ष्य १०/१६/२७
तं नागभोग- १०/१६/१०
तं प्रेक्षणीय- १०/१६/९
तं मत्वात्मजमव्यक्तम् १०/९/१४
तं वत्सरूपिणम् १०/११/४२
तं वीक्ष्य १०/११/४४
तच्चित्रताण्डव- १०/१६/३०
तच्चेज्जलस्थम् १०/१४/१५
तच्छ्रुत्वा भगवान् १०/१२/३०
तच्छ्रुत्वैकधियः १०/११/३०
ततः कृष्णञ्च १०/१५/३६
ततः कृष्णो मुदम् १०/१३/१८
ततः प्रवयसो १०/१३/३४
ततश्च पौगण्डवयः १०/१५/१
ततोऽतिकायस्य १०/१२/३१
ततोऽतिकुतुकोद् १०/१३/५६
ततोऽतिहृष्टाः १०/१२/३४
ततोऽनुज्ञाप्य १०/१४/४२
ततोऽर्वाक् प्रतिलब्धाक्षः १०/१३/५८
ततो नृप- १०/१३/२३
ततो वत्सान् १०/१३/१६
ततो विदूरात् १०/१३/२९
ततो हसन् १०/१४/४६
तत् तत्राद्यैव १०/११/२९
तत्तद्वत्सान् १०/१३/२१
तत्तेऽनुकम्पाम् १०/१४/८
तत्प्रथ्यमानवपुषा १०/१६/२४
तत्र श्रिया १०/१०/२८
तत्रोद्वहत् पशुपवंश १०/१३/६१
तत्रोपनन्दनामाह १०/११/२२
तत् श्रुत्वा भगवान् १०/१२/३०
तथाघवदनान्मृत्यो १०/१३/४
तथापि भूमन् १०/१४/६
तथा यशोदा- १०/११/३४
तथेति पाययित्वार्भा १०/१३/७
तदद्भुतस्तोत्र १०/१२/३५
तदस्तु मे १०/१४/३०
तदहं मत्तयोर्माध्व्या १०/१०/१९
तदा घनच्छदा १०/१२/२९
तदा बकारिम् १०/११/५२
तदीक्षणोत्प्रेम- १०/१३/३३
तदेष नाथाप १०/१६/३८
तद्गच्छतम् १०/१०/४२
तद्दामबध्यमानस्य १०/९/१५
तद्ब्रूहि मे १०/१२/४२
तद्दूरिभाग्यमिह १०/१४/३४
तद्राजेन्द्र १०/१४/५१
तन्मञ्जुघोषालि- १०/१५/३
तन्मातरो वेणु- १०/१३/२२
तन्माधवो वेणु- १०/१५/२
तपः सुतप्तम् १०/१६/३५
तमङ्कमारूढमपाययत् १०/९/५
तमापतन्तं स १०/११/५१
तम्यां तमोवन्नैहारम् १०/१३/४५
तयोर्यशोदा- १०/१५/४४
तयोस्तत् सुमहत् १०/१५/३९
तस्मादिदम् १०/१४/२२
तस्मात् कृतनराहाराद् १०/१५/२४
तस्मात् प्रियतमः १०/१४/५४

तस्मै तुभ्यम् १०/१०/३३
तस्य ह्रदे १०/१६/८
तस्याक्षिभिः १०/१६/२९
तस्यैव १०/१६/५०
तां कृष्णमातरम् १०/१६/२१
तांस्तथा १०/१६/१६
तां स्तन्यकाम १०/९/४
तांस्तानापततः १०/१५/३७
तानालक्ष्य १०/१६/१३
तान् वीक्ष्य १०/१२/२७
तान् दृष्ट्वा १०/१३/१३
तामात्तयष्टिम् १०/९/९
तावत् प्रविष्टाः १०/१२/२६
तावत् सर्वे १०/१३/४६
तावदेत्य- १०/१३/४०
तावद्रागादयः १०/१४/३६
तास्तं सुविग्नमनसः १०/१६/३२
तेऽन्वेषमाणा दयितम् १०/१६/१७
ते तत्र ददृशुर्बाला १०/११/४७
ते तत्र तत्राब्ज- १०/१६/१८
तेनाहतो महातालः १०/१५/३३
तेनैव सर्वेषु १०/१२/३२
तेनैव साकम् १०/१२/२
ते सम्प्रतीतस्मृतयः १०/१५/५१
तैर्दुर्निमित्तैर्नधनम् १०/१६/१४
तौ दृष्ट्वा १०/१०/७
तौ वत्सपालकौ १०/११/४५
त्यक्त्वा यष्टिम् १०/९/१२
त्वं महान् १०/१०/३१
त्वं ह्यस्य १०/१६/४९
त्वमेकः सर्वभूतानाम् १०/१०/३०
त्वया सृष्टमिदम् १०/१६/५७
त्वामात्मानम् १०/१४/२७


**द**


दरिद्रस्यैव युज्यन्ते १०/१०/१७
दरिद्रो निरहंस्तम्भः १०/१०/१५
दर्शयंस्तद्विदाम् १०/११/९
दृष्ट्वा तम् १०/१२/१८
दृष्ट्वाथ तत्स्नेहवशः १०/१३/३०
दृष्ट्वा त्वरेण १०/१३/६२
दृष्ट्वार्भकान् १०/१२/१४
दावोष्णखरवातः १०/१२/२३
दिव्याम्बरस्र- १०/१६/६५
देवर्षिर्मे प्रियतमः १०/१०/२५
देवसंज्ञितमप्यन्ते १०/१०/१०
देहः किमन्नदातुः १०/१०/११
देहात्मवादिनाम् १०/१४/५२
देहोऽपि ममताभाक् १०/१४/५३
द्वीपं रमणकम् १०/१६/६३


**ध**


धन्येयमद्य धरणी १०/१५/८
धराधरोष्ठः १०/१२/१७
धूलिधूसरिताङ्गस्त्वम् १०/११/१८


**न**


न चान्तर्न १०/९/१३
न ते तदुक्तम् १०/११/५
न नाकपृष्ठम् १०/१६/३७
नमः कृष्णाय १०/१६/४५
नमः परमकल्याण १०/१०/३६
नमः प्रमाणमूलाय १०/१६/४४
नमस्तुभ्यम् १०/१६/३९

नमोऽनन्ताय १०/१६/४३
नमो गुणप्रदीपाय १०/१६/४६
न ह्यन्यो १०/१०/८
नायं सुखापो १०/९/२१
नारायणस्त्वं न १०/१४/१४
नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य १०/१०/१६
नृत्यन्त्यमी शिखिन १०/१५/७
नृत्यतो गायतः १०/१५/१५
नेमं विरिञ्चो १०/९/२०
नैतच्चित्रं भगवति १०/१५/३५
नैतद्विचित्रम् १०/१२/३८
नैते सुरेशा १०/१३/३९
नोपेयातां यदाहूतौ १०/११/१३
नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे १०/१४/१
न्याय्यो हि १०/१६/३३

प

परावरगतिज्ञाय १०/१६/४८
पश्य पश्य १०/११/१९
पश्येश मेऽनार्यमनन्त १०/१४/९
पादसम्वाहनं चक्रुः १०/१५/१७
पीत्वा मुकुन्द- १०/१५/४३
पीनाहिभोगोत्थितम् १०/१२/३३
पुनरासाद्य १०/१५/३१
पुरा नारदशापेन १०/९/२३
पुरेह भूमन् १०/१४/५
पूजयित्वा १०/१६/६६
प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः १०/१६/५५
प्रतिस्पर्द्धेते १०/१२/२१
प्रतीक्षते त्वाम् १०/११/१७
प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि १०/१४/३७
प्रयच्छ तानि १०/१५/२६

फ

फलप्रकरसङ्कीर्णम् १०/१५/३८
फलप्रवालस्तवक- १०/१२/४
फलविक्रयिणी १०/११/११
फलानां पतताम् १०/१५/२९
फलानि तत्र १०/१५/२२

ब

बर्हप्रसूनवनधातु- १०/१४/४७
बलः प्रविश्य १०/१५/२८
बलस्य लीला- १०/१५/३४
बाला ऊचुरनेनेति १०/११/४
बालेन निष्कर्षयता १०/१०/२७
बिभर्त्ति क्वचिदाज्ञप्तः १०/११/८
ब्रह्मन् कालान्तरकृतम् १०/१२/४१
ब्रह्मन् परोद्भवे १०/१४/४९
ब्रह्मन् भगवतस्तस्य १०/१६/३

भ

भवान् हि १०/१६/५९
भारतैवं वत्सपेषु १०/१३/१२
भूतमात्रेन्द्रिय- १०/१६/४२
भूम्यां निपतितौ १०/११/२

म

मुक्तं बकास्यादुपलभ्य १०/११/५३
मुक्तः कथञ्चित् १०/११/२४
मुक्तो भगवता १०/१६/६४
मुष्णन्तोऽन्य- १०/१२/५
मेघगम्भीरया १०/१५/१२

य

य एतत् १०/१६/६१

यत्पादपांशुर्बहुजन्म- १०/१२/१२
यत्र नैसर्गदुर्वैराः १०/१३/६०
यथा कण्टकविद्धाङ्गः १०/१०/१४
यदाऽसीत् तदपि १०/९/१६
यदि दूरम् १०/१२/६
यदिमौ लोकपालस्य १०/१०/२०
यदृच्छया च १०/१०/५
यद्यच्छिरो न १०/१६/२८
यन्न म्रियेत १०/११/२६
यस्यावतारा १०/१०/३४
यस्य कुक्षाविदम् १०/१४/१७
यानि यानीह १०/९/२
यावदौत्पातिकोऽरिष्टः १०/११/२७
यावद्वत्सप- १०/१३/१९
यावन्तो गोकुले १०/१३/४१
योऽस्मिन् १०/१६/६२

**र**

राजन्नाजगरम् १०/१२/३६
राम राम १०/१५/२१
रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा १०/१०/२

**व**

वनं वृन्दावनम् १०/११/२८
वयं खलाः १०/१६/५६
वयं धन्यतमा १०/१२/४३
वयञ्च तत्र १०/१६/५८
वस्तुतो जानतामत्र १०/१४/५६
वाणी गुणानुकथने १०/१०/३८
वारुणीं मदिराम् १०/१०/३
वासुदेवस्य १०/१०/२२
विकर्षन्तः १०/१२/९
विच्छायाभिः १०/१२/८
विद्यन्तेऽभुक्तपूर्वाणि १०/१५/२५
विधेहि ते १०/१६/५३
विप्रुष्मता १०/१६/५
विभ्रद्वेणुं जठरपटयोः १०/१३/११
विलोक्य दूषिताम् १०/१६/१
विषाम्भस्तदुपस्पृश्य १०/१५/४९
वीक्ष्य तान् १०/१५/५०
वृद्धान् बालान् १०/११/३१
वृन्दावनं गोवर्द्धनम् १०/११/३६
वृन्दावनं सम्प्रविश्य १०/११/३५
वृषायमाणौ १०/११/४०
व्रजस्य रामः १०/१३/३५
व्रजौकसां स्वतोकेषु १०/१३/२६

**श**

शनैरथोत्थाय १०/१३/६४
शृणुष्वावहितः १०/१३/३
श्रीदामा नाम १०/१५/२०
श्रीवत्साङ्गददोरत्न- १०/१३/४८
श्रीकृष्ण वृष्णि- १०/१४/४०
श्रुत्वा तद्विस्मिता १०/११/५४
श्रेयःसृतिम् १०/१४/४

**स**

सकलत्रसुहृत्पुत्रः १०/१६/६७
सकृद्यदङ्गप्रतिमा १०/१२/३९
सञ्जातकोपः १०/९/६
स तं गृहीत्वा १०/१५/३२
स तत्र तत्रारुण- १०/१५/४
सतामयं सारभृताम् १०/१३/२
सत्यज्ञानानन्तानन्द- १०/१३/५४

सत्यमर्ककरारक्तम् १०/१२/२०
सपद्येवाभितः पश्यन् १०/१३/५९
स भवान् १०/१०/३५
समाश्रिता ये १०/१४/५८
समेत्य गावः १०/१३/३१
समेत्य तरसा १०/१५/३०
सरित्तीरगतम् १०/११/१२
सर्पह्रदः १०/१६/७
सर्वेषामपि भूतानाम् १०/१४/५०
सर्वेषामपि वस्तूनाम् १०/१४/५७
सर्वे मिथो १०/१३/१०
स वै बको १०/११/४८
साकं भेकैर्विलङ्घन्तः १०/१२/१०
साधुपृष्टं महाभाग १०/१३/१
साधूनां समचित्तानाम् १०/१०/१८
साधूनां समचित्तानाम् १०/१०/४१
सुरेष्वृषिष्वीश १०/१४/२०
सोऽतिवीर्योऽसुरः १०/१५/२३
स्वं स्वं वत्सकुलम् १०/११/४६
स्वमातुः स्विन्नगात्राया १०/९/१८
स्वयमात्मा– १०/१३/२०

**ह**

हन्यन्ते पशवो १०/१०/९
हे रामागच्छ १०/११/१६

# गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन

(श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज द्वारा अनूदित एवं सम्पादित)

## ग्रन्थावली

१. श्रीमद्भगवद्गीता
(श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीकृत सारार्थवर्शिनी-टीकानुवाद सहित)

२. श्रीमद्भगवद्गीता (पाकेट-संस्करण)
(गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत
रसिकरञ्जन-टीकानुवाद सहित)

३. श्रीमद्भागवतम् श्लोकानुवादमात्र प्रथम-खण्ड (स्कन्ध १-४)
(गौड़ीय-वैष्णवाचार्योंकी टीकाओंपर आधारित)

४. श्रीमद्भागवतम् दशम-स्कन्ध प्रथम-खण्ड (अध्याय १-८)
(श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीकृत सारार्थदर्शिनी-टीकानुवाद सहित)

५. श्रीमद्भागवतम् दशम-स्कन्ध द्वितीय-खण्ड (अध्याय ९-१६)
(श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीकृत सारार्थदर्शिनी-टीकानुवाद सहित)

६. श्रीमद्भागवतम् दशम-स्कन्ध तृतीय-खण्ड (अध्याय १७-२८)
(श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीकृत सारार्थदर्शिनी-टीकानुवाद सहित)

७. श्रीबृहद्भागवातमृतम् (प्रथम-खण्ड)
(श्रील सनातन गोस्वामीकृत टीकानुवाद सहित)

८. श्रीबृहद्भागवातमृतम् (द्वितीय-खण्ड, प्रथम-भाग)
(श्रील सनातन गोस्वामीकृत टीकानुवाद सहित)

९. श्रीबृहद्भागवातमृतम् (द्वितीय-खण्ड, द्वितीय-भाग)
(श्रील सनातन गोस्वामीकृत टीकानुवाद सहित)

१०. श्रीमद्भागवतीय-चतुःश्लोकी
(श्रील श्रीधरस्वामी, श्रील जीव गोस्वामी, श्रील विश्वनाथ एवं अन्यान्य वैष्णवाचार्योंकी टीकाओंके अनुवाद सहित)

११. श्रीरासपञ्चाध्यायी
(श्रील श्रीधरस्वामी, श्रील जीव गोस्वामी, श्रील विश्वनाथकृत टीकाओंके अनुवाद सहित)

१२. वेणु-गीत (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीकृत सारार्थदर्शिनी-टीकानुवाद सहित)

१३. श्रीभागवतार्कमरीचिमाला (गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत)

१४. वेदान्तसूत्र (प्रथम-अध्याय)
(श्रील बलदेव विद्याभूषणकृत गोविन्दभाष्य एवं सूक्ष्मा-टीकानुवाद सहित)

१५. गीत-गोविन्द (श्रीजयदेव गोस्वामीकृत, बालबोधिनी-टीकानुवाद सहित)

१६. शिक्षाष्टक (श्रीचैतन्यमहाप्रभुके मुख-निसृत उपदेश, सटीका)

१७. श्रीब्रह्म-संहिता (श्रीब्रह्मजीकी स्तुति, श्रील जीव गोस्वामी एवं श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत टीकानुवाद सहित)

१८. श्रीदामोदराष्टकम् (श्रील सत्यव्रत मुनिकृत, श्रील सनातन गोस्वामीकृत टीकानुवाद सहित)

१९. उज्ज्वलनीलमणि (सम्पूर्ण) (श्रील रूप गोस्वामीकृत, सटीका)

२०. उपदेशामृत (श्रील रूप गोस्वामीकृत, सटीका)

२१. उत्कलिकावल्लरी (श्रील रूप गोस्वामीकृत)

२२. श्रीश्रीराधाकृष्णगणोद्देश-दीपिका (श्रील रूप गोस्वामीकृत)

२३. श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका (श्रील कवि कर्णपूर गोस्वामीकृत)

२४. मनःशिक्षा (श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीकृत, सटीका)

२५. सत्क्रियासार-दीपिका (श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामीकृत)

२६. माधुर्य-कादम्बिनी (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकृत, सटीका)

२७. श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुबिन्दु (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकृत)

२८. उज्ज्वलनीलमणिकिरण (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकृत)

२९. श्रीभागवतामृतकणा (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकृत)

३०. रागवर्त्मचन्द्रिका (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकृत)

३१. प्रेम-सम्पुट (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकृत)

३२. चमत्कार-चन्द्रिका (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकृत)

३३. सङ्कल्प-कल्पद्रुम (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकरकृत)

३४. जैव-धर्म (जीवका धर्म)
(गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत)

३५. श्रीचैतन्य-शिक्षामृत (गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत)

३६. श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षा
(गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत)

३७. भजनरहस्य (गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत, सटीका)

३८. भक्ति-तत्त्व-विवेक (गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत)

३९. श्रीनवद्वीपधाम-माहात्म्य (परिक्रमा-खण्ड)
(गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत)

४०. प्रेम-प्रदीप (गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत
पारमार्थिक उपन्यास)

४१. वैष्णव-सिद्धान्त-माला (गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत)

४२. श्रीगौड़ीय-गीतिगुच्छ (गौड़ीय-वैष्णवाचार्यों द्वारा रचित स्तव-स्तुतियों
एवं भजनोंका अपूर्व सग्रंह)

४३. मायावादकी जीवनी (श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकृत)

४४. गौड़ीय-कण्ठहार (श्रीपाद अतिन्द्रय भक्तिगुणाकर प्रभुकृत)

४५. श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका चरित्र एवं शिक्षा
(श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

४५. श्रीव्रजमण्डल-परिक्रमा (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

४६. अर्चन-दीपिका (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

४७. श्रीचैतन्यमहाप्रभुके स्वयं भगवत्ता-प्रतिपादक कतिपय शास्त्रीय प्रमाण (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

४८. श्रीरायरामानन्द-सम्वाद (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत, श्रीचैतन्यचरितामृतपर आधारित)

४९. श्रीजगन्नाथ-रथयात्रा (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

५०. नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत, श्रीचैतन्यभागवतपर आधारित)

५१. चार-वैष्णवाचार्य एवं गौड़ीय-दर्शन (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

५२. हरिनाम-महामन्त्र (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

५३. श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमा (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

५४. श्रीचैतन्य महाप्रभुके दानकी विशेषता (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

५५. प्रबन्धपञ्चकम् (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

५६. श्रीचैतन्य-चरित्र-पीयूष (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

५७. भक्त-प्रह्लाद—निर्भीक युवराज (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

५८. महर्षि दुर्वासा और श्रीदुर्वासा-आश्रम (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

५९. भगवद्गीता-सार (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

६०. शिवतत्त्व (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

६१. आत्माके छिपे रहस्य (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

६२. दिव्य-प्रेमकी विधि (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

६३. श्रीश्रीभागवत-पत्रिका (मासिक)